

विषय-सूची

जनवरी
१९४७

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।।)

विश्वमित्र कार्यालय

कलकत्ता



विषय-सूची

विश्वामित्र

सम्पादक—

शिवदेव उपाध्याय 'सतीश' बी० ए०, बी० एल०

जनवरी १९४७ वर्ष १५, संख्या---१ माघ २००३

मिलन यामिनी

स्नेह दो तो आज लौ फिर सिर उठाये !

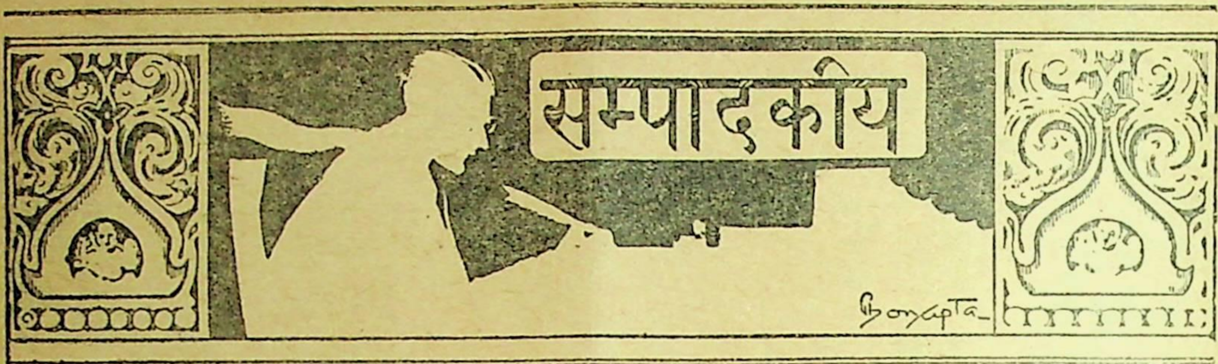
देश-दुनियाने मुझे बलसे दबाया,
भाग्य भी लेकर तिमिरका भार आया,
अग्निका कण मैं रहा फिर भी बचाये !
स्नेह दो तो आज लौ फिर सिर उठाये !

प्रेमके पथपर किरण मैंने बिछाई,
किंतु मेरी चाल जगतीको न भायी,
पर कहां था हाथ जो मुझको बुझाये !
स्नेह दो तो आज लौ फिर सिर उठाये !

कांति भी खोयी, धुएंसे भी घिरा मैं,
ज्योतिके पथसे नहीं पीछे फिरा मैं,
वर्तिकामें आग हूं अब भी जगाये !
स्नेह दो तो आज लौ फिर सिर उठये !

प्राणका यह दीप जलनेके लिये है,
प्यारसे अन्तर पिघलनेके लिये है,
आज हम दोनों नियम अपने निभायें !
स्नेह दो तो आज लौ फिर सिर उठाये !

—बच्चन



विधान परिषद—

निश्चित तिथि पर गत ९ दिसम्बरसे भारतीय विधान परिषदका अधिवेशन प्रारम्भ हुआ और यह भारत के राजनीतिक इतिहासकी यह एक महत्वपूर्ण घटना है। जिन विरोधों, कठिनाइयों एवं परिस्थितियोंमें परिषदका प्रारम्भ हुआ, वे उसके भावी संघर्षों की परिचायक हैं किन्तु साथ ही देशके दृढ़ निश्चयका सूचक भी। मुसलिम लीगके कतिपय सदस्योंके अतिरिक्त परिषदके प्रारम्भिक अधिवेशन में देशके सभी दलों सभी सम्प्रदायों, सभी विचारों एवं सभी हितोंके प्रतिनिधियोंने भाग लिया और सभीने परिषदको पूर्ण क्षमता सम्पन्न स्वीकार किया। स्वतन्त्र भारतीय प्रजातन्त्रकी रूपरेखा विषयक नेहरूजीका प्रस्ताव सराहनीय है और वह परिषदके प्रारम्भिक दिनोंमें उपस्थित किया जाना चाहिये था। कांग्रेसने परिषदमें अजेय बहुमतका आश्रय न लेकर अपने विरोधियोंके इस मिथ्या आरोपका खंडन किया है कि वह अपने बहुमत द्वारा स्वेच्छा चारिताका अवलम्बन करेगी। उक्त प्रस्ताव २० जनवरी तकके लिये परिषदके स्थगित होने तक स्थगित कर दिया गया है। परिषद पूर्ण क्षमता सम्पन्न है। वह सभी बाहरी हस्तक्षेपोंके विरुद्ध है और वह भारतके नव विधानके निर्माणके लिये कृत संकल्प है। और यही सराहनीय निश्चय भी है। लीगने अभी उससे असहयोग किया है। वह आदान-प्रदान नहीं आत्मसमर्पण चाहती है। लेकिन जिस प्रकार आदान-प्रदान आत्मसमर्पण नहीं है, उसी प्रकार आत्मसमर्पण भी आदान प्रदान नहीं है। लीग परिषदमें सम्मिलित हो, उसे सम्मिलित होनेकी सभी समुचित सुविधाएं मिलें और उसे ऐसी सभी सुविधाएं मिली भी हैं किन्तु फिर भी यदि वह सहयोग नहीं करना चाहती तो उसके ७९ सदस्य ४० करोड़ भारतीयोंके भाग्य विधायक नहीं बनाये जा सकते। देशके ऐसे संकटकालमें अपने इतिहासका, अपने भविष्यका और अपने राष्ट्रका निर्माण करना होगा। अतः उसे सभी प्रतिक्रियागामी शक्तियोंका प्रतिकार भी करना होगा और उसे कार्यान्वित करना होगा। ब्रिटेनकी इच्छा या अनिच्छा पर राष्ट्र अवलम्बित रह कर अपने भाग्यको सदस्योंके लिये आशंकाओं एवं शंकाओंके बीचमें छोड़ नहीं सकता और जब तक सत्य हमारा साधन, विवेक हमारी प्रणाली और स्वाधीनता हमारा लक्ष्य है तब तक हमारे संकल्पको पराहत करनेका प्रयत्न करने वाली शक्तियां कैसी भी हों और कितनी भी हों, हमें वे पराजित नहीं कर सकतीं।

प्रमुख कठिनाई—

६ दिसम्बरके वक्तव्यमें ब्रिटिश सरकारने कहा है कि प्रमुख कठिनाई ब्रिटिश कैबिनेट मिशनके १६ मई वाले वक्तव्यके १९ वें प्रकरण तथा ९ वीं और ८ वीं शर्त की व्याख्याके सम्बन्धमें उपस्थित हुई। ये शर्तें और प्रकरण जो प्रान्तोंके वर्गीकरणके सम्बन्धमें हैं, निम्नाशयके हैं।

नया वैधानिक समझौता कार्यान्वित होनेके उपरांत कोई भी प्रान्त किसी गुटसे अपना नाता तोड़ सकता है। नयी विधान परिषदके मातहत प्रथम साधारण निर्वाचन होनेके उपरान्त कोई भी प्रान्तीय असेम्बली इस प्रकारका निर्णय कर सकती है। गुटोंका निर्णय साधारण बहुमत द्वारा होगा इस मतको मुस्लिम लीगने तो स्वीकार कर लिया है। मगर कांग्रेस इसका विरोध करती है। कांग्रेस की यह व्याख्या है कि इस वक्तव्यका वास्तविक अर्थ यह है कि वर्गीकरणके सम्बन्धमें प्रान्तोंको उसी तरह हक है, जैसा उन्हें अपने विधानके सम्बन्धमें है।

सम्राटकी सरकारका खयाल है कि १६ मई वाले वक्तव्यका यह भाग अत्यधिक महत्वपूर्ण है। तमाम पार्टियां

विधान परिषद्की बैठकमें शामिल होकर एक विधान तैयार करेंगी, जिसे सम्राटकी सरकार पार्लमेण्टमें पेश करेगी। सरकार उम्मीद करती है कि कांग्रेसकी तरह मुस्लिम लीग भी इस तथ्यको स्वीकार करेगी कि व्याख्याका निर्णय फेडरल कोर्ट करेगा।

अगर वह विधान परिषद् जिसमें भारतीय आबादी के एक बड़े भागका प्रतिनिधित्व नहीं हैं विधान तैयार करती है तो ब्रिटेन विधानको बलात् नहीं लादेगा। कांग्रेस का कहना है कि वह भी इस प्रकारके विधानको किसी भागपर लादनेके लिये जोर नहीं डालेगा।

वक्तव्य नहीं, निर्णय—

मंत्रिदल मिशन द्वारा प्रस्तावित १६मईकी विधान योजना की प्रांतोंकी गुट व्यवस्था सम्बन्धी धाराओंकी व्याख्याको लेकर लन्दनमें कांग्रेस, मुसलिमलीग और सिख प्रतिनिधियों के आयोजित विचार विनिमयके परिणाम सम्राटकी सरकार के ६ दिसम्बरके निर्णयके रूपमें प्रकट हुए हैं। ब्रिटिश प्रीमियर मेजर एटलीने उक्त दलोंके प्रतिनिधियोंको आमंत्रित तो किया था विचार-विनिमय द्वारा दलोंके ताद्विषयक मतभेद के निराकरणके लिये, किन्तु उसने स्वयं उनपर अपना निर्णय लाद दिया। इसीलिये ६ दिसम्बरके उसके निर्णयको वक्तव्य नहीं कहा जा सकता। वह तो वास्तवमें निर्णय ही है क्योंकि उसमें यद्यपि कांग्रेससे उसे स्वीकार करने का 'अनुरोध' किया गया है। किन्तु साथ ही यह भी कह दिया गया है कि सम्राटकी सरकार अन्तिम रूपसे मंत्रिदल मिशनकी ही व्याख्या स्वीकार करेगी और पार्लमेण्टमें भारत सचिव लार्ड पेथिक लारेन्सने घोषणाकी है कि फेडरल कोर्ट भी यदि उसके विपरीत अपना निर्णय दे तो उसे भी माननेके लिये ब्रिटिश सरकार बाध्य नहीं है। ऐसी स्थितिमें ६ दिसम्बरका वक्तव्य, वक्तव्य नहीं, निर्णय है। और मुसलिम लीगके उससे सहमत होनेकी दशामें कांग्रेस उसे स्वीकार कर विधान परिषदमें लीगका सहयोग प्राप्त करे अथवा उसे ठुकराकर तज्जनित परिस्थितियोंका मुकाबला करे।

१५ मार्च बनाम ६ दिसम्बर—

भारतकी वैधानिक समस्याके समाधानके लिये मन्त्रिदल मिशनके भारतके लिये प्रस्थानके पूर्व सम्राटकी सरकारकी ओरसे प्रधान मन्त्री मि० एटलीने १५ मार्चको एक घोषणा की थी जिसमें उन्होंने कहा था कि भारतपूर्ण स्वाधीन होनेका अधिकारी है। उसे ब्रिटिश कामनवेल्थ के अन्तर्गत अथवा बहिर्गत रहनेका भी अधिकार है और उसे अपने भावी भाग्य-निर्माणका भी पूर्ण अधिकार है। ब्रिटिश हस्तक्षेपको भावी विधान-निर्माणमें सर्वथा अस्वीकार किया गया है। यह सम्राटकी सरकारकी ओरसे आश्वासन नहीं, वचन दिया गया था और अब ६ दिसंबरको वही सरकार विधान परिषद् द्वारा निर्मित विधान के कार्यान्वित करनेके सम्बन्धमें भारतके इच्छुक एवं अनिच्छुक भागोंका प्रपंच रच रही है। अपने उपनिवेशों, अधीनस्थ देशों एवं मैंन्डेट प्रणालीके अन्तर्गत अंचलोंके प्रति ब्रिटिश साम्राज्यकी प्रवंचक घोषणाओंका अतीतमें अभाव नहीं रहा है और भविष्यमेंभी नहीं रहेगा, यदि ब्रिटिश साम्राज्य अस्त-व्यस्त एवं विछिन्न होनेसे सुरक्षित रहा। भारतके सम्बन्धमें आज भी उसका यही विश्वासघात चरितार्थ हो रहा है। भारतके आन्तरिक मतभेदोंकी बात कोरी प्रवंचना है। मुस्लिम लीगके प्रति ब्रिटेनकी प्रोत्साहक नीति भारतके मतभेदोंके आधारपर ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितोंके संरक्षणकी प्रेरणापर अवलम्बित है। यही उसने आयरलैंडमें किया था, और यही वह भारतमें कर रहा है। ब्रिटिश सद्भावनाके प्रति भारतीय लोकमतकी आस्था उसकी वर्तमान नीतिके कारण विचलित हुई है और इसकी प्रतिक्रियाएं खतरनाक सम्भावनाओंसे भरी हुई हैं।

यूरोपका पुनर्गठन—

मि० विन्सटन चर्चिल फ्रान्सके नेतृत्वमें यूरोपको पुनर्गठित करनेके लिये चिन्तित हैं। युद्धोत्तर कालमें कई बार उन्होंने तथा उनके अनुयायी दूसरे टोरियोंने यह आवाज उठायी है। अपने इसी कार्यक्रम द्वारा वे विश्व-शान्तिकी प्रतिष्ठाकी भी बात करते हैं। मि० चर्चिल प्रतिगामी विचार-धाराके प्रतीक हैं और वे स्पष्ट देख रहे हैं कि युद्धोत्तरकालमें सारा विश्वकी विचार-धाराका प्रवाह प्रगतिशीलताकी ओर हुआ है और यूरोपीय देश भी इसके अपवाद नहीं हैं। पूंजीवादी एवं साम्राज्यवादी शक्तियोंका विश्व एवं यूरोपकी इस प्रगतिशील विचार-धारा पर सशंकित होना स्वाभाविक है और चर्चिलने यूरोपके पुनर्गठनकी जो यह आवाज उठायी है, उसकी प्रेरणा इस आशंका एवं इसके निराकरणके लिये ही है। ब्रिटेनके अपने हितोंके संरक्षणकी प्रेरणा भी उसमें है क्योंकि युद्धोत्तरकालमें ब्रिटेनका सारा प्रभाव यूरोप पर

विलुप्त हो चुका है। शक्ति सन्तुलनका सिद्धान्त नष्ट हो चुका है और यूरोपके कितनेही देश रूसी विचार-धारासे प्रभावित एवं कितने ही स्पष्टतः रूसी प्रभाव-क्षेत्रके अन्तर्गत आ चुके हैं। रूस और ब्रिटेनकी युद्धकालीन बीस वर्षीय सन्धि भी है, किन्तु अनेक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर रूस और ब्रिटेनका मतैक्य उतना नहीं है, जितना उनका अनैक्य है।

ऐसी स्थितिमें ब्रिटेन पूंजीपति एवं साम्राज्यवादी प्राचीन यूरोपीय विचार धाराको पुनर्जीवित एवं संगठित करना चाहते हैं और वस्तुतः यदि इसने कार्यमें फलीभूत हो सकें तो प्रतिगामी शक्तियां यूरोपमें केन्द्रित हो जायेंगी और प्रगतिशील शक्तियोंसे उनका संघर्ष अवश्यम्भावी है। एशियाई देशोंकी समस्या इस पर प्रकाश डालेगी। प्रायः समस्त एशिया पर यूरोपका प्रभुत्व अथवा प्रभाव रहा है और अब भी बहुत है। मि० चर्चिलकी योजनाके अनुसार पुनर्गठित यूरोप पुनः अपने अपने अस्तंगत प्रभुत्व एवं कार्यान्वित करनेका प्रयत्न करेगा और एशियाका वर्तमान मनोभाव उसे चुनौती देगा। तो क्या इसकी प्रतिक्रिया विश्व-शान्ति में दिखायी देगी ? और आज भी प्राचीन जर्जर यूरोपीय विचार-धाराका जो कुछ भी अवशेष रह गया है, उसकी प्रतिक्रियाएं क्या विश्व-शान्तिके कारण उत्पन्न कर रही हैं ? अतः स्थिति स्पष्ट है कि चर्चिल दल पुनः युद्धके कारण उत्पन्न करनेमें प्रयत्नशील हैं। वर्तमान ब्रिटिश वैदेशिक नीतिके प्रति आज मजदूर दलमें जो विरोध प्रकट किया जा रहा है, यह इसका प्रमाण है और इसीलिये स्टैलिनने उस दिन स्पष्ट कहा था कि मि० चर्चिल संसारमें सबसे बड़ा युद्ध चाहने वाले व्यक्ति हैं। इस लिये यूरोपके पुनर्गठनकी चर्चिल-योजना विश्व शान्तिके लिये सर्वाधिक विघातक है और आजभी यूरोपके जिन देशोंमें प्राचीन यूरोपीय नीति—जो सदा ही साम्राज्यवादी औपनिवेशिक एवं शोषणकी रही है—जिस रूपमें, जिस प्रणालीसे और जिन अंचलोंमें संचालित हो रही है, वहां युद्धके कारण स्पष्ट हैं। इण्डोचीन, भारत, बर्मा, इण्डोनेशिया सभीकी स्थिति अनेक जटिलताओं एवं अनेक भयावनी सम्भावनाओंसे परिपूर्ण है और चर्चिल सभी देशोंकी प्रगतिके विरुद्ध हैं और यूरोपके लिये निश्चय ही यह अत्यधिक अशुभ घड़ी होगी यदि यूरोप चर्चिल योजनाके साथ पुनर्गठित हो। लेकिन चर्चिल योजना को पराभूत करने वाली शक्तियां आज इतनी सजग एवं इतनी सतर्क हो चली हैं, प्राचीन जर्जर साम्राज्यवादी विचार-धारा अपने सहज कुकृत्यों द्वारा इतनी कुख्यात हो चली हैं और उनके दुष्परिणाम संसारमें इतने स्पष्ट हो चले हैं कि उनके विरुद्ध तद्विषयक तथ्य ही उनके सबसे बड़े तर्क हैं। संसारके सभी अवनतराष्ट्र, संसारके सभी उपनिवेश और संसारकी सभी रंगीन जातियां अपने विरुद्ध इस प्रकारके किसी भी षड्यन्त्रको पराहत करनेके लिये सजग एवं सतर्क हैं और उन्होंने अपनी स्वाधीनताका जो अभियान प्रारम्भ किया है, वह अन्तिम लक्ष्य तक अनवरत बढ़ता चलेगा, इसके लिये वे कृत संकल्प हैं। यूरोप पर विश्व-शान्तिका निश्चय ही उत्तरदायित्व है, अतः तद्विषयक उसका अविवेक विश्व-शान्तिके लिये ही नहीं, मानवताके लिये ही नहीं, उसके लिये भी घातक है।

महिला-सम्मेलन—

अकोलामें अखिल भारतीय महिला सम्मेलनके १९ वें अधिवेशनके अध्यक्षपदसे भाषण करते हुए लेडी रामारावने महिलाओंके सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्रोंमें समानाधिकार की मांग की और कहा कि स्वतन्त्र भारतके नये विधानमें स्त्रियोंके अधिकारोंकी सुरक्षा होनी चाहिये। हमें संतोष है कि लेडी रामाराव जहां महिलाओंके अधिकारोंके लिये इतनी सतर्क हैं। वहीं उन्होंने उनके उत्तरदायित्वोंके प्रति भी उपेक्षा नहीं दिखायी है। उन्होंने शिशु-पालन तथा ग्रामीण महिलाओंके जीवनके धरातलको उन्नत करनेके लिये सतत प्रयत्नशील रहनेपर भी जोर दिया है और यह ठीक ही कहा है कि भारतकी तीन चौथाई जन-संख्या देहातोंमें है। अतः महिलाओंको केवल बड़े बड़े नगरोंमें ही अपनी शक्ति केन्द्रित नहीं करनी चाहिये, बल्कि देहातोंमें पहुंचकर ग्रामीण महिलाओंको स्वास्थ्य, स्वच्छता, शिशु-पालन एवं शिक्षाकी ओर प्रगतिशील करना चाहिये। महिलाओंके अधिकार स्वाधीन भारतमें सुरक्षित हैं। दूसरे देशोंमें जिस मताधिकारके लिये महिलाओंको जेल यातनाएं तक भुगतनी पड़ी हैं, वह भारतीय महिलाओंको स्वतः मिला है। देशका नेतृवर्ग महिला आन्दोलनके प्रति केवल मौखिक सहानुभूति ही नहीं रखता, बल्कि स्वतः भी उसके उन्नयनके लिये प्रयत्नशील है और महिलाओंने स्वयं जिस प्रकार देशकी प्रगतिमें सहयोग दिया है, उससे उन्होंने देशके सभी क्षेत्रोंमें अपना स्थान बना लिया है। राष्ट्र कभी सम्पूर्णतः उन्नति कर नहीं

सकता, जब तक उसका नारी समाज भी समानरूपसे उन्नत नहीं हो जाता ।

फ्रांस और इण्डोचीन—

फ्रांसके तृतीय गणतन्त्रका अन्तिम अधिवेशन २१ मई १९४० को समाप्त हुआ और गत २४ दिसम्बर १९४६ को उसके चतुर्थ गणतन्त्रकी स्थापना हुई । किन्तु एक ओर जहां फ्रांसके चतुर्थ गणतन्त्रकी प्रतिष्ठा हुई है, वहीं दूसरी ओर फ्रांसने अपने साम्राज्यवादको भी पुनर्जीवित करनेके लिये निश्चय किया है और उसके निश्चयोंके अनुसार इण्डोचीनमें उसकी समस्त सामरिक शक्ति केन्द्रित हो रही है और इण्डोचीनमें विशाल पैमाने पर युद्धके संचालनके लिये सभी अवकाश प्राप्त सैनिकोंकी छुट्टियां मंसूख की जा रही हैं और इण्डोचीनके स्वाधीनता संग्रामको सर्वथा विध्वस्त करनेके लिये फ्रांस कृत-संकल्प प्रतीत हो रहा है । उधर इण्डोचीन भी है जिसने सभी स्वाधीनता विरोधी शक्तियों को पराभूत करनेका समान रूपसे निश्चय किया है । वह साम्राज्यवादके नागपाशसे मुक्ति चाहता है और वह भी विशाल पैमाने पर अपनी स्वाधीनताके लिये अपने बलिदानों द्वारा सभी मूल्य चुकाना चाहता है । युद्ध-कालमें नात्सी चरणोंमें नतमस्तक फ्रांसके नेता जनरल देगाल द्वारा संचालित नीतिका अवलम्बन इण्डोचीनके सम्बन्धमें किया जा रहा है । उनकी नीति स्वदेशको स्वतन्त्र पर अपने प्राचीन उपनिवेशोंको परतन्त्र देखनेकी रही है किन्तु फ्रांस के विगत आम निर्वाचनोंमें जेनरल देगालके दलकी पराजय हुई है और फ्रांसमें साम्यवादी एवं समाजवादी दलको बहुमत प्राप्त हुआ है । दोनों ही दल प्रगतिशील विचार-धाराका प्रतिनिधित्व करनेका दावा करते हैं और निर्वाचनोंमें उनके बहुमत प्राप्त करने पर इस बातकी आशा निराधार नहीं हुई थी कि न केवल उनकी आन्तरिक बल्कि उनकी वैदेशिक नीति भी प्रगतिशील होगी । किन्तु आज भी—उन्हीं दलोंके बहुमत द्वारा गठित सरकार इण्डोचीन के सम्बन्धमें जेनरल देगालकी उसी जर्जर औपनिवेशिक नीतिका संचालन कर रही है । इसीलिये लन्दनके एक पत्र 'स्पेक्टेटर' ने उस दिन लिखा है कि, "अन्नामी एवं फ्रान्सीसी सेनाओंका युद्ध कुत्सित होता जा रहा है किन्तु जिन आधारों पर शान्ति की स्थापना की जा सकती है, वे अभी भी अज्ञात हैं । दोनों ही दलोंके लिये सन्तोष धारण करनेकी आवश्यकता है, किन्तु दोनोंमेंसे किसीको सन्तोष नहीं है । जापानी पराजयके पश्चात् पूर्वमें सर्वत्र स्वाधीनताकी लहर दौड़ गयी, किन्तु सर्वत्रकी भांति इण्डोचीनमें इसके साथ सहयोग नहीं किया गया ।" लेकिन सहयोग कैसे किया जाय ? ७ मार्च १९४६ की सन्धिके अनुसार यद्यपि फ्रांसीसी संघके अन्तर्गत उसकी स्वाधीनता स्वीकार भी की गयी है, किन्तु जैसा कि 'स्पेक्टेटर' ने अपने उक्त लेखमें स्वीकार किया है और जिसके लिये कितने ही स्पष्ट तथ्य हैं । इण्डोचीन फ्रांसीसी प्रभुत्वको किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं करना चाहता और उधर फ्रांस है जो उसकी समस्याका समाधान स्वाधीनता, विवेक एवं सद्भावनाके आधार पर नहीं, अपनी सामरिक शक्ति द्वारा करना चाहता है, इसलिये संघर्ष अनिवार्य है और इसीलिये संघर्ष चल भी रहा है । इण्डोचीन के स्वाधीनता संग्रामके प्रति सभी स्वाधीनता प्रेमी देशोंकी आन्तरिक सहानुभूति होगी । खेदका विषय है कि फ्रांसकी वर्तमान सरकार प्रगतिशीलताका दावा करती हुई भी औपनिवेशिक शक्तिका ही अवलम्बन नहीं कर रही है । अपनी समस्त सामरिक शक्तिका अवलम्बन करनेका भी मन्तव्य उसने प्रकट किया है । फ्रांसके वर्तमान मन्त्रिमण्डलकी अवधि कुछ इन गिने सप्ताहोंकी ही है और शीघ्र ही उसके चतुर्थ गणतन्त्रसे नयी नीतिकी आशा की जा सकती है । यद्यपि साम्राज्यवादी शक्तियोंसे इस प्रकारकी आशा प्रायः दुराशामात्र ही प्रमाणित हुई है । किन्तु इतना स्पष्ट है कि यदि फ्रांसने विवेकसे काम न लेकर इण्डोचीनमें अपने औपनिवेशिक साम्राज्यवादको सदाके लिये अक्षुण्ण रखनेका ही आदर्श बनाया हो, तो निश्चय ही बहुत दिनों तक उसका यह विघातक आदर्श अक्षुण्ण नहीं रह सकता । सारे एशियामें नयी विचार-धारा प्रवाहित हो रही है । सारा एशिया आज सजग, सक्रिय एवं सबल हो रहा है और वह सभी साम्राज्यवादियोंके कुचक्रोंको विफल करेगा । इण्डोचीनका भाग्य जिस प्रकार समग्र एशियाके साथ बिजड़ित है और वह स्वाधीन होकर रहेगा, उसी प्रकार समस्त साम्राज्यवादियोंके भाग्यसे फ्रांसका भाग्य भी पृथक नहीं है और फ्रांसीसी साम्राज्यवादका ध्वंस भी अवश्यम्भावी है । आज या कल, किन्तु ध्वंस ध्रुव निश्चित है ।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन—

कराचीमें अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मे-

लनके ३४ वें अधिवेशनके अध्यक्षपदसे श्री वियोगी हरिने जो भाषण किया है, वह अनेक दृष्टियोंसे अत्यधिक महत्व-पूर्ण है। उन्होंने अपने भाषणमें आधुनिक साहित्यका न केवल मार्मिक विवेचन किया है, बल्कि उसके भावी उन्नयनके लिये बहुमूल्य संकेत भी दिये हैं। भाषाके स्वरूप एवं तत्सम्बन्धी विभिन्न प्रयत्नोंपर भी उन्होंने प्रकाश डाला है और इस बातका स्पष्ट मन्तव्य प्रकट किया है कि उसका स्वरूप बिगाड़नेका प्रयत्न न किया जाय, राष्ट्र भाषाको साम्प्रदायिकतासे अछूता रखा जाय और विभिन्न भाषाओंके विचारोंका आदान-प्रदान अवश्य किया जाय किन्तु उन्हें अपने प्राकृतिक रूपमें विकसित होनेके लिये छोड़ दिया जाय। हिन्दी-उर्दू भाषाओंके समन्वयके सम्बन्धमें भी उनका यही मत है और हिन्दी साहित्य सम्मेलनके मत का ही उन्होंने प्रतिपादन किया है, जो उचित ही है। भाषाके सम्बन्धमें पिछले कुछ दिनोंसे हिन्दी हिन्दुस्तानी का जो प्रपंच छिड़ा हुआ है, हमारा ख्याल है कि वह अनावश्यक है और इस विषयमें श्री वियोगी हरिने जो मन्तव्य प्रकट किया है, उसमें इस समस्याका समुचित समाधान है। हमें आशा है उनके अभिभाषणकी उपयोगिता एवं महत्व देखते हुए सभी हिन्दी हितैषी ध्यान पूर्वक पढ़ेंगे एवं विचार करेंगे।

ब्रिटिश वैदेशिक नीति--

ब्रिटिश मजदूर दलके कितने ही सदस्य उसकी वैदेशिक नीतिके कितने कटुआलोचक रहे हैं, यह उनके द्वारा पार्लमेण्टमें अपने ही दलकी सरकारके प्रस्तावोंपर संशोधन उपस्थित करनेके तथ्यों द्वारा पिछले दिनों स्पष्ट हो चुका है और अब कितने ही सदस्योंने बेविनकी 'रूसके प्रति कठोर नीति' के विरोधमें प्रचार कार्य करनेका निश्चय किया है। इस विरोधी दलके एक प्रवक्ता मि० टी० गटिंगसने कहा है कि मजदूर दलके कितने ही नेताओंने इसका विरोध करते हुए ब्रिटेनको अमेरिकाका उपनिवेश सा बना डाला है लेकिन इस कार्यमें उन्हें सफलता नहीं मिलेगी। उन्हें रूसके प्रति अपनी नीति परिवर्तित करनी ही पड़ेगी और उन्होंने यहां तक आशाकी है कि मि० बेविनको अपने पदसे ही पृथक हो जाना पड़ेगा। ब्रिटेनकी वर्तमान वैदेशिक नीतिके प्रति मजदूर सरकारके कितने ही हिमायतियोंका भी असंतुष्ट होना सर्वथा स्वाभाविक है। जिस समाजवादीदलसे प्रगतिशील विचार धाराके समर्थनकी आशा हो, वह यदि उसी प्राचीन औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी प्रतिक्रिया गामी नीतिका अवलम्बन करे तो प्रगतिशील व्यक्तियों एवं समूहोंको सन्तोष नहीं हो सकता। हमारा ख्याल है कि यदि मजदूर दलने अपनी इस नीतिको समय रहते ही परिवर्तित नहीं कर दिया और प्रगतिशीलता नहीं अपनायी तो उसके अस्तित्वके लिये खतरा है। आशा है अनुदारके लिये वह स्वयं अपनी आत्मघातक नीति द्वारा पुनः शासनारूढ़ होनेका अवसर प्रदान करनेकी अदूरदर्शिता नहीं दिखायेगा।

राष्ट्रमण्डल और दक्षिण अफ्रीका--

दक्षिण अफ्रीकाकी पार्लमेण्टके राष्ट्रीयदलके नेता डा० डी० एफ मलानने फील्ड मार्शल स्मट्ससे राष्ट्र मण्डल के प्रस्तावको ठुकरा देनेकी अपील करते हुए कहा गया है कि "अगर फील्डमार्शल स्मट्सने प्रवासी भारतीय-सम्बंधी संयुक्त राष्ट्रमण्डलके प्रस्तावको कार्यान्वित किया तो इसका अर्थ यह होगा कि दक्षिण अफ्रीकाने अपने आन्तरिक मामले में बाहरी हस्तक्षेपको स्वीकार कर लिया और ऐसी स्थिति में राष्ट्रवादियों द्वारा उनका विरोध किया जाय।" दक्षिण अफ्रीकाके दूसरे गौरांग भी इसी मतके हैं और स्वयं फील्ड मार्शल स्मट्स भी राष्ट्रमण्डलके प्रस्तावको कार्यान्वित करनेके पक्षमें नहीं हैं। अतः यदि राष्ट्रमण्डलका प्रस्ताव दक्षिण अफ्रीकाने स्वीकार नहीं किया तो उसके नियमोंके अनुसार मण्डलको उसके विरुद्ध काररवाई करनी चाहिये, यहांतक कि उसे सदस्यतासे वंचित करनेके लिये भी उसे निर्णय करना चाहिये। और यदि मण्डलने ऐसा नहीं किया तो उसकी प्रतिष्ठामें बट्टा लगेगा और वह अन्यान्य राष्ट्रोंका विश्वास भाजन नहीं बना रह सकता। ऐसे प्रश्नोंपर दुर्बलता दिखानेके परिणाम-स्वरूप राष्ट्रसंघ समाप्त हो गया और उससे भिन्न राष्ट्रमण्डलका भी भाग्य नहीं हो सकता, यदि मण्डलने तद्विषयक दुर्बलता दिखायी। अतः राष्ट्र मण्डलको इस विषयमें विवेक, न्याय एवं सतर्कतासे काम लेनेके लिये सजग रहना चाहिये। दक्षिण अफ्रीका राष्ट्र-मण्डलका सदस्य रहते हुए उसके निर्णयोंकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

दक्षिण अफ्रीकामें सत्याग्रह

श्री स्वामी भवानी दयाल संन्यासी

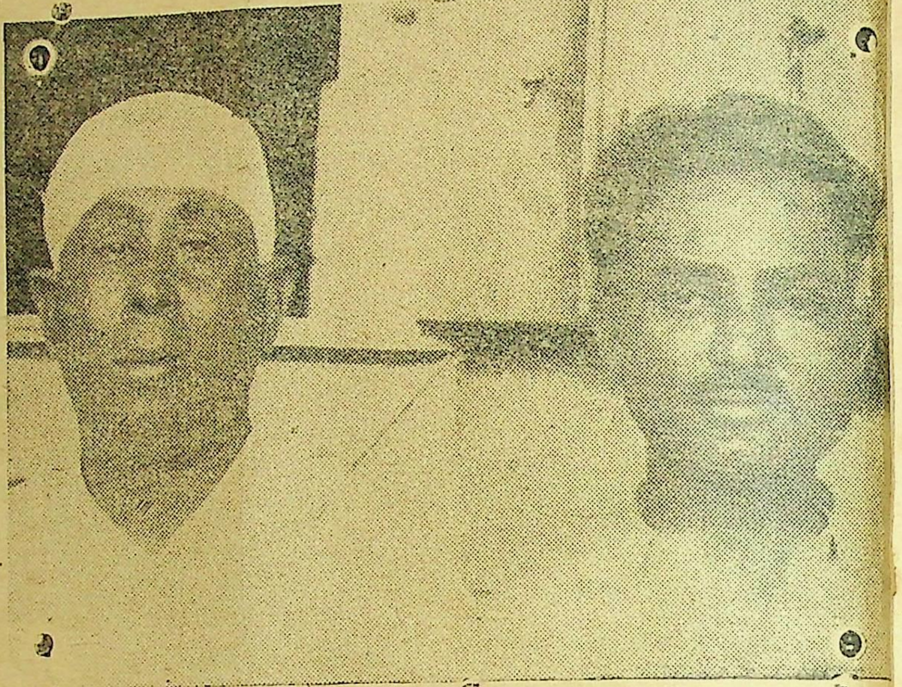
संयुक्त राष्ट्र संघमें हिन्दुस्तानके अभियोगका उत्तर देते हुए दक्षिण अफ्रीका सरकारके प्रतिनिधि श्री हीटन निकल्सने जो विष वमन किया है उसपर मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि सांपका स्वभाव ही है जहर उगलना। पर संसारके राष्ट्रोंकी आंखमें धूल झोंकनेके लिये उन्होंने इतिहासको झूठा सिद्ध करनेका जो दुस्साहस किया है उस पर मुझे कुछ आश्चर्य अवश्य है। जहां उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम विग्रह, छूत-अछूत प्रभेद, बहु-विवाहका प्रचलन और एक ही भाषाको दो लिपियोंमें लिखनेका दुराग्रह आदि हमारी कमजोरियोंकी चर्चा कर मजाक उड़ाया है, वहां उन्होंने सत्यकी हत्या करते हुए यह भी कह डाला है कि जो भारतीय मजदूर यहांसे गिरमिटमें नेटाल गये थे उनके साथ यह शर्त लगी थी कि गिरमिट की अवधि पूरी होनेपर उनको स्वदेश लौट आना अनिवार्य होगा। पर उनको वहां भारतकी अपेक्षा अधिक आराम और सुख मिला, इसलिये वे वहां स्थायी रूपसे बस गये और दक्षिण अफ्रीकाके लिये एक कठिन समस्या बन गये।



राष्ट्रपति अचार्य कृपलानीने फील्ड मार्शल स्मट्स की नीतिकी कटुभर्त्सना की है

पर हीटन निकल्सको इस अनूठी और नयी बातसे इतिहास तो नहीं बदल सकेगा। उन्होंने संयुक्तराष्ट्र संघके सामने अपनी सरकारकी झुठाई का ही प्रदर्शन किया है। इतिहास इस बातका गवाह है कि आजसे पचासी साल पहले सन् १८६० में पराधीन भारतके बच्चे गिरमिट की गुलामी अपनी जननी जन्मभूमिकी पवित्र गोदसे बिछुड़कर, गरजते और उबलते हुए सागरके भीषणावृत्ति वक्षस्थलको पार करते हुए, उस सुदूर नेटालमें गोरोंको पैमालीसे बचाने और मालामाल बनानेके लिये गये थे, जो उन दिनों सघनवनसे आच्छादित हिन्सक जन्तुओंका क्रीड़ा क्षेत्र था। हबशियोंको दासत्वके बन्धनसे विमुक्त हो जानेके कारण नेटालके गोरे किसानोंका दिवाला निकलनेकी नौबत आ पहुंची थी, ठीक उसी आड़े वक्तपर भारतकी

विदेशी सरकार नेटालके गौरांगों के काम आ गयी। सन् १८९७ की राज्यक्रान्ति असफल हो चुकी थी, भारतीय अपने भविष्यसे हताश होकर निर्जीव-सा हो रहे थे, उसी समय उनको गिरमिटकी गुलामीमें नेटाल भेजा गया। विश्वके इतिहासमें यह विचित्र घटना थी। असभ्य और जंगली हबशी गुलामीसे मुक्ति पागये पर राम और कृष्णकी संतान अकबर और शेरशाहकी औलाद, संसार को सभ्यताके सबक सिखानेवाले भारतीय गुलामीकी जंजीरमें बांधकर विदेशों और उपनिवेशों में अपमान का जीवन बिताने के लिये भेजे गये। क्या पराधीनतासे बढ़कर संसारमें, और भी कोई पाप है ?



मारिशस के दो प्रख्यात
सत्याग्रही सैनिक

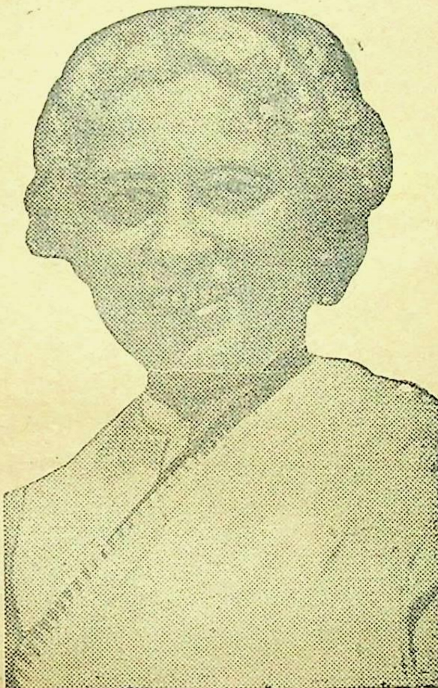
भारतीय मजदूरोंकी मेहनतसे नेटाल आबाद हो गया, जहां भयंकर जंगल थे। वहां नगर और गांव बस गये। चायके बगान और गन्नेके खेत लहलहाने लगे, रेलवे लाइनें खुल गयीं। अनेक कल-कारखाने खड़े हो गये, सभी प्रकार के उद्योग-धन्धोंकी उन्नति हुई। भारतीयोंकी बदौलत नेटाल अपने पैरोंपर खड़ा हो गया और वहांका सर्वोपरि नगर डरबन तो भारतीयों के ही परिश्रमका फल है। नेटाल के गोरे समृद्धिशाली बन गये।

गिरमिटमें हीटन निकल्सके कथनानुसार यह शर्त नहीं थी कि पांच साल गोरोंकी गुलामी करके भारतीय मजदूरोंको स्वदेश लौट आना लाजिमी होगा, बल्कि शर्त यह थी कि जो भारतीय मजदूर वहां रहना पसन्द न करेंगे और स्वदेश लौटनेका दावा करेंगे तो उनको अपने खर्चसे स्वदेश पहुंचा देना नेटाल सरकारके लिये अनिवार्य होगा। भारतीय मजदूरोंको वहां बस जानेके लिये नाना प्रकारके प्रलोभन दिये जा रहे थे। यहां तक कि उनको मुफ्तमें जमीन इस शर्त पर दी जाती थी कि वे भारत लौटनेका इरादा त्याग दें। पर एक चौथाई सदीके बाद जब गौरांगों ने देखा कि भारतीय नेटालमें निरा मजदूरही नहीं रहे, वे किसान और व्यापारी भी बन रहे हैं, तब उनका माथा अवश्य ठनका। वे भारतीयोंकी गुलामीसे खुश थे, पर उनका फूलना-फलना उनकी आंखोंका कांटा बन गया।

जब गोरांगोंकी हालत बहुत अच्छी हो गयी और खतरेकी कोई आशंका नहीं रही तब सन् १८९५ में पहले पहल यह कानून अवश्य बनाया गया कि भविष्यमें जो मजदूर भारतसे गिरमिट लिखाकर नेटाल आवेंगे, उनको गिरमिटकी मियाद पूरी होनेपर देश लौट जाना लाजिमी होगा। यदि नहीं लौटेंगे और वहां बस जायगे तो उनको सालाना तीन पौण्ड टैक्स देना पड़ेगा।

सच पूछिये तो उन्नीसवीं सदीकी अन्तिम दशाब्दीमें ही भारतीयों पर अत्याचार शुरू हुआ और उनके विरुद्ध कानून बनने लगे। उससे पहले तो उनको हर सूरतमें वहां रोक रखनेकी कोशिश की जाती थी। पर भारतीयों के सद्गुण ही गोरोंकी दृष्टिमें उनके स्वार्थके लिये अहितकर प्रतीत हुए और उनपर कानूनी प्रहार होने लगे। सन् १८९५ के बाद आनेवाले भारतीय मजदूरोंपर तीन पौण्ड का टैक्स लगा। सन् १८९६ में एक कानून बनाकर उनका पार्लियामेंटरी मताधिकार हड़प लिया गया। सन् १८९७

में इमिग्रेशन कानून बनाकर नवीन भारतीयोंका प्रवेश वर्जित कर दिया गया और उसी साल एक कानून और पास कर उनके व्यापार की प्रगतिपर प्रतिबन्ध लगाया गया। सन् १८९७ के इमिग्रेशन कानूनमें यह कसर थी कि शिक्षित भारतीय, जो किसी यूरोपियन भाषामें परीक्षा देकर पास हो सकते थे और वहांके इमिग्रेशन अमलदारकी रायमें शिक्षित जंचते थे, उनको नेटालमें प्रवेश और प्रवास करने का अधिकार था, । पर सन् १९१३ में इमिग्रेशन कानूनमें संशोधन करके यह कसर मिटा दी गयी। ऐसा कानून बना कि भारतके नेहरू, बोस, पटेल, आजाद और जिन्ना भी दक्षिणी अफ्रीकाकी भूमिपर पैर नहीं रख सकते हैं।



श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडितको स्मट्सपर महत्वपूर्ण विजय मिली है।

सन् १९२४ में एक ऐसा कानून बना कि नेटालके भारतीयों का म्युनिसिपल मताधिकार भी जाता रहा। जो कुछ कोर-कसर रह गयी थी उसे इस साल जनरल स्मट्स के 'घेटो कानून' ने पूरी कर दी। अब इस विधानके अनुसार उनको अछूतोंकी भांति शहरों और कस्बोंसे अलग बसना पड़ेगा। उनके लिये अलग क्षेत्र निर्धारित होंगे उससे बाहर उनको जमीन खरीदना, मकान बनाना और रहना कानून से अपराध समझा जायेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघमें जनरल स्मट्स और उनके सहयोगियोंने प्रवासी भारतीयोंकी सुख-समृद्धिकी चर्चाकर संसारको धोखा देनेमें कोई बात उठा नहीं रखी है। पर दक्षिण अफ्रीकामें प्रवासी भारतीयोंकी स्थिति भारतके हरिजनोंसे भी गयी-बीती है। सच पूछिये तो वहां भारतीय अछूत ही समझे जाते हैं और उनको गोरोंके सम्पर्कसे अलग ही रखा जाता है। रेलवे स्टेशन, डाकघर और सरकारी आफिसोंमें उनके लिये अलग स्थान होते हैं। चायघर और होटलोंके दरवाजे उनके लिये बन्द हैं। सिनेमा और नाटक गृहमें उनका प्रवेश वर्जित है। गोरोंके स्कूल और कालेजों में भारतीय बच्चे दाखिल नहीं हो सकते। सार्वजनिक गुसलखाने और पाखानेका उपयोग करनेका उनको अधिकार नहीं है। वास्तवमें गुलामसे भी बदतर हालतमें वे किसी तरह अपना गुजर-बसर कर रहे है।

जनरल स्मट्स आज न्यूयार्कमें संसारके राष्ट्रोंके सामने शेखी बघार रहे हैं उसपर मुझे अफसोसकी हंसी आती है। वास्तवमें प्रवासी भारतीयोंका स्मट्ससे बढ़कर और कोई वैरी नहीं है। वे अव्वल दर्जेके धूर्त और दगाबाज है, विश्वासघात करना तो उनके बायें हाथका खेल है। महात्मा गांधीसे बार बार विश्वासघात किया। स्वर्गीय गोखलेको वचन देकर वे मुकर गये। सन् १९१४में महात्मा गांधीसे सत्याग्रह संग्राममें हारकर उन्होंने एक समझौता कर लिया था जो गांधी स्मट्स संधिके नामसे मशहूर है। पर उस समझौतेको भंग करनेमें उनको कोई संकोच न हुआ। प्रथम महायुद्धमें उनकी ऐसी प्रसिद्धि हुई कि वे संसारके महापुरुषोंकी श्रेणीमें गिने जाने लगे। पर भारतीयोंके प्रति उनके रुखमें कोई अन्तर नहीं आया। महायुद्धकी समाप्तिके बाद ही उन्होंने अपनी पृथक्करण नीति को कार्यान्वित करनेके लिये एक कमीशन बैठा दिया। पर कमीशनकी रिपोर्टकी मनोकामना पूरी न हुई। कमीशनने राय दी कि भारतीयोंको अलग बसाना मानों उनको गुलामीकी हालतमें पहुंचा देना है और उसकी प्रतिक्रिया यूरोपियनोंपर भी हुये बिना न रहेगी।

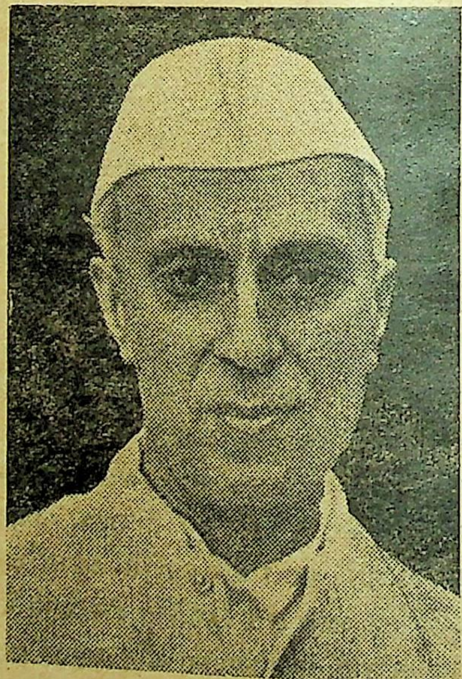
पर स्मट्सको इसकी क्या परवाह ?। उन्होंने सन् १९२४ में 'क्लास एरियाज बिल' CLASS AREAS BILL पार्लियामेण्टमें पेश कर ही दिया। इसका भारतीयोंने प्रचंड विरोध किया भारतकी राष्ट्रीय महा सभाने श्रीमती सरोजिनी देवीको दक्षिण अफ्रीका भेजकर प्रवासी



गांधीजीने (बैरिस्टरके रूपमें) सर्व प्रथम दक्षिण अफ्रीकामें सत्याग्रहका श्री गणेश किया

भारतीयोंसे सहानुभूति प्रकट की थी। पर दैवयोगसे उसी समय एक ऐसी घटना घट गयी कि जनरल स्मट्सका सितारा डूब गया। पार्लियामेण्टके एक उपनिर्वाचनमें उनकी पार्टीका एक उम्मीदवार हार गया, इससे खिन्न होकर उन्होंने पार्लियामेण्ट ही भंग कर दी और अपने विपक्षियों की शक्तिकी परीक्षा लेनेकी ठान ली। सन् १९२९ में नवीन निर्वाचन हुआ और उसमें स्मट्सकी वही दशा हुई जो हाल के विलायतके निर्वाचनमें चर्चिलकी हुई है। उनकी ऐसी करारी हार हुई, जिसकी उन्होंने स्वप्नमें भी कल्पना न की थी। राष्ट्रीय दलके जनरल हर्ट जोग वहांके सर्वेसर्वा हो गये, उनके दलकी सरकार बनी। हर्ट जोग एक ईमानदार और ईश्वर भक्त बोअर थे। भारतीयोंके प्रति उनकी भावना कोई अच्छी न थी, पर राजनीतिक दृष्टिसे उन्होंने भारतसे विग्रह करना उचित नहीं समझा। इसलिये सन् १९२७में उन्होंने भारतसे संधि कर ली जो सन् १९२७ के केपटाउन-संधिके नामसे प्रख्यात है। हर्ट जोगने सचाई और इमानदारीसे सन्धिका पालन किया। जबतक उनके हाथमें सत्ता रही, प्रवासी भारतीयोंके दिन चैनसे कटे।

सन् १९३९ में उधर यूरोपमें द्वितीय महायुद्धकी आग लगी और इधर दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंके बुरे दिन आ गये। हर्ट जोगने स्मट्सको अपने मंत्री मण्डलमें मिला लिया था पर ऐन मौकेपर स्मट्सने उनको ऐसा धोखा दिया कि बेचारे उसी व्यथासे साल भर बाद मर भी गये। छल कपट और विश्वासघातसे स्मट्स फिर दक्षिण अफ्रीकाके भाग्य विधाता बन गये, शासनसूत्र फिर उनके हाथमें आ गया। एक तरफ तो स्मट्स विश्व बंधुत्व, लोकतन्त्र और मानवी स्वाधीनताका राग अलापते थे और दूसरी तरफ दक्षिण अफ्रीकामें प्रवासी भारतीयोंके सर्वनाश करनेकी कोशिश करते रहे। शासनारूढ़ होते ही उन्होंने भारतके हाई कमिश्नरके जरिये कुछ स्वयंभू भारतीय नेताओंसे लिखित आश्वासन ले लिया कि भविष्यमें कोई भारतीय गोरांग क्षेत्रमें जमीन-मकान मोल न लेगा। इसके चन्द महीनेके बाद उन्होंने डरबनमें एक कमेटी बनाई और उसको यह काम सौंपा कि वह भारतीयोंको गोरोंके मुहल्लेमें जमीन में जमीन लेने या बसनेसे रोके। इसपर भी सन्तोष न हुआ तो एक कमीशन बैठा दिया। कमीशनने सारी स्थितिकी पूरी जांच करके राय दी कि गोरोंकी आशंका सर्वथा निर्मूल है। प्रवासी भारतीयोंने गोरोंके मुहल्लोंमें जमीन मकान मोल लेने और बसनेका कोई संगठित प्रयत्न नहीं किया। जिन भारतीयोंने गोरोंके महल्लेमें प्रवेश किया है उनकी संख्या नगण्य है और वे भी इस लिये गोराङ्ग क्षेत्रमें

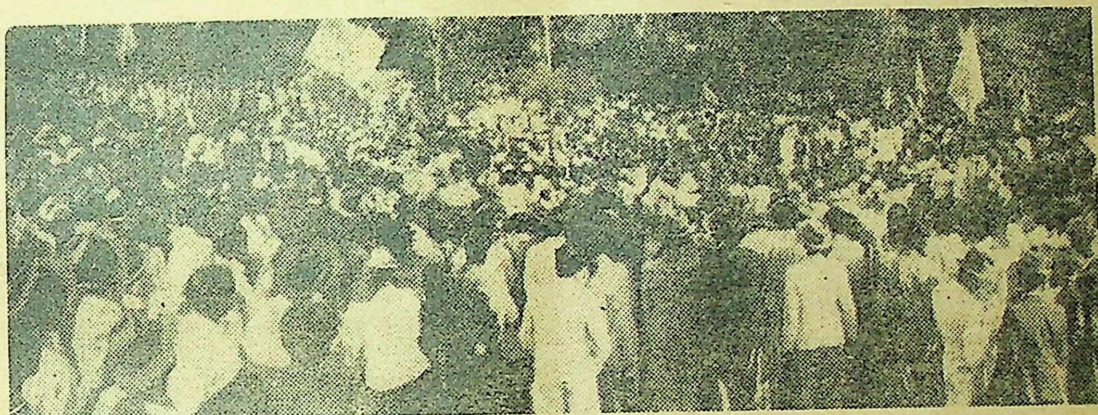


भारत सरकारके वैदेशिक विभाग के सदस्य, पंडित नेहरू

जानेपर मजबूर हुए हैं, क्योंकि भारतीय बस्तियोंको म्युनिसपैल्टीने सर्वथा बिसार रखा है।

कमीशनकी निष्पक्ष और नेक सलाह जनरल स्मट्स को नहीं रुची। उन्होंने झटपट दूसरा कमीशन बैठा दिया और उसको यह काम सौंपा कि सन् १९२७ से १९४३ तक भारतीयोंने गोरोंसे जितनी जमीन खरीदी है उनकी सिर्फ तालिका तैयार कर दे। वे जमीनें कहां हैं गोराङ्गोंके महल्लेमें या भारतीयोंकी बस्तीमें यह बतलानेकी जरूरत नहीं। कमीशनको राय और सलाह देनेके अधिकारसे वंचित कर दिया गया। इसके लिये कमीशन बैठानेकी जरूरत थी ही नहीं, रजिस्ट्रारके दफ्तरसे ही जमीनके क्रय-विक्रयकी तालिका मिल सकती थी। पर स्मट्सको तो कमीशनका ढोंग रचना था। दो सप्ताहके अन्दर कमीशनने रजिस्ट्रार से पूछ कर तालिका और नेटाल भरको गोरोंकी बपौती विघातक थी, अतएव सर्वत्र ही इसका विरोध हुआ। स्मट्सने अपनी सफाई देते हुए फर्माया कि नेटालकी हालत ऐसी भयंकर हो गयी थी कि यदि कोई उपाय न किया जाता तो शांति-भंगकी आशंका थी। लाचार होकर स्थिति को ज्योंकी त्यों बनाये रखनेके लिये यह कानून बनाना पड़ा है, पर यह मियादी कानून है, स्थायी नहीं। हम एक जुडिशियल कमीशन बैठा रहे हैं। कमीशन सारी परिस्थितिकी जांच-पड़ताल कर जो राय और सलाह देगा, उसीके अनुसार भारतीय समस्या स्थायी रूपसे हल की जायगी।

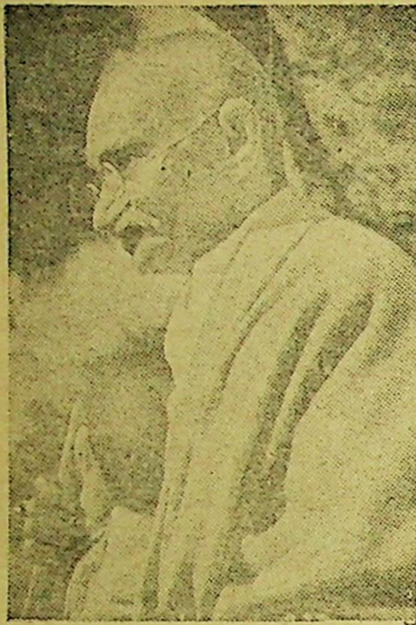
कमीशनने पूर्ण जांचके पश्चात् यह राय दी कि एक गोल-मेज-परिषद होनी चाहिये, जिसमें भारत और दक्षिण अफ्रीकाके प्रतिनिधि शरीक होकर सद्भावसे इस समस्या को हल कर डालें। कमीशनकी रायमें एक मात्र यही सर्वो-



गौरांगोंकी नीतिके विरुद्ध
मारिशस में प्रदर्शन

मानकर अपनी रिपोर्ट तैयार कर दी। उसीके आधारपर स्मट्सने पार्लियामेन्टमें "पेगिङ्ग बिल" पेश कर दिया और इस काममें इतनी उतावली की गयी कि कमीशनके बैठाने से लेकर कानून बनाने तक सारा काम एक मासमें समाप्त हो गया।

युद्धके जमानेमें ऐसा वर्ण-विद्वेष-मूलक कानून एक ऐसी खतरनाक बात थी कि सारे विश्वमें स्मट्सकी नीतिकी निन्दा होने लगी। एक तरफ तो भारतीय सिपाही अफ्रीकाके उत्तरी भागमें अपना खून बहा कर दक्षिणी भागमें उनके ही भाइयोंको अछूतकी भांति अलग बसानेके लिये कानून बन रहा था। यह बात मित्र राष्ट्रोंके हितमें परि उपाय है। भारत सरकार और भारतीय जनताने कमीशनकी रायका स्वागत किया। जनरल स्मट्स भी यही कहते रहे और प्रवासी भारतीयोंको आश्वासन देते रहे कि शीघ्र गोलमेज परिषदकी व्यवस्था कर प्रवासी भारतीयों की समस्या हल कर डालेंगे। पर अचानक गत २१ जनवरी १९४६को उन्होंने गिरगिटकी भांति रंग बदलकर यूनियन पार्लमेण्टमें यह घोषणा कर दी कि "पेगिंग एक्ट"की अवधि समाप्त होनेवाली है। उसके स्थानपर हम स्थायी कानून बनानेका निश्चय कर चुके हैं। कानून बननेमें अभी दो चार मासकी देर लगेगी, पर वह लागू होगा आजकी तिथि से ही। स्मट्सकी चालबाजीसे प्रवासी भारतीय विचलित

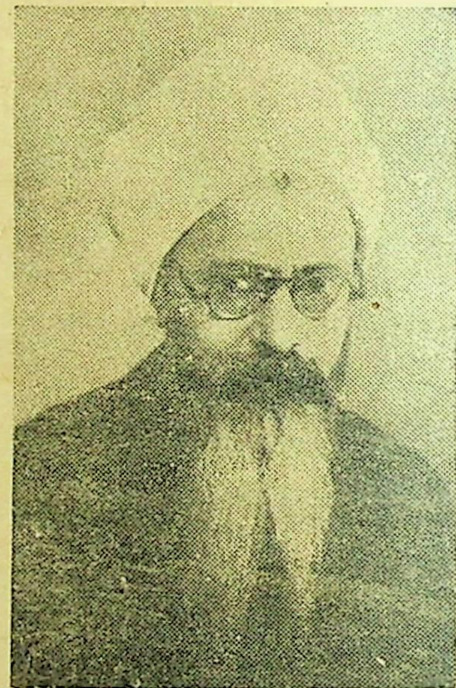


गांधीजीकी प्रेरणा आज भी प्रवासियों को आशा प्रदान करती है।

चिन्तित और आतंकित हो उठे। केपटाउनमें फरवरीके प्रथम सप्ताहमें "साउथ अफ्रिकन इन्डियन कांग्रेस"की बैठक हुई। कांग्रेसकी तरफसे एक डेपुटेशन स्मट्ससे मिला और उनको बहुत समझाया कि वे एशियाके एक विशाल देशसे बैर न ठाने। अपने कमीशनकी सिफारिस मानकर परिषद की आयोजना करें और इस समस्याको हल कर डालें। यह भी उनसे कहा गया कि भारतीय किसी भी हालतमें पृथक्करणका सिद्धान्त स्वीकार न करेंगे और परिणाम होगा बड़ा भयंकर। पर सब व्यर्थ। स्मट्स टससे मस न हुए यही कह कर उन्होंने डेपुटेशनको बिदा किया कि प्रवासी भारतीयोंका प्रश्न हमारा घरेलू प्रश्न है, हम जैसा उचित समझेंगे, इसका निपटारा करेंगे। भारतको हमारे घरेलू मामलेमें दखल देनेका कोई अधिकार नहीं है। भारतीयोंका एक डेपुटेशन भारत आया, दूसरा इंगलैण्ड गया। स्मट्स की अपनी दूषित प्रवृत्तिको रोकनेकी बहुत कोशिशकी गयी, पर कोई फल नहीं हुआ। उन्होंने जुलाईमें एशियाटिक लैण्ड टेन्यूर एण्ड इंडियन रिप्रेजेन्टेशन एक्ट (Asiatic Land Tenure and Indian Representation Act) पास कर ही दम लिया जो "घेटो कानून' (Ghetto Act) के नामसे विख्यात है।

भारत सरकार स्मट्ससे सदा दबती आयी है। स्मट्सके विरुद्ध कार्रवाई करनेमें वह सदा हिचकती रही है सन १९४३ से ही मैं दक्षिण अफ्रीकासे व्यापार सम्बन्ध विच्छेद करनेकी सलाह देता आया हूं। इस विषयपर मैंने अपने सहकर्मी डाक्टर लङ्का सुन्दरम् और श्री अहमदमुहम्मद जादवतके साथ एक पैम्फलेट भी निकाला था, जिसकी हजारों प्रतियां देश-विदेशोंमें बांटी गयी थीं। केन्द्रीय धारा सभामें भी एक प्रस्ताव पास हो गया था जिसमें भारत सरकारको यह आदेश दिया गया था कि दक्षिण अफ्रीका से व्यापार सम्बन्ध विच्छेद कर लेना ही भारतके राष्ट्रीय सम्मानकी दृष्टिसे हितकर और आवश्यक है। पर भारत सरकार उसपर अमल करनेको प्रस्तुत न हुई।

जब भारत सरकार सब प्रकारसे हार गयी और



प्रवासियों के हितैषी
श्री भवानीदयाल सन्यासी

स्मट्सको राहपर लानेका कोई उपाय न रहा तो गत १२ मार्चको जब मैंने दक्षिण अफ्रीकाके डेपुटेशनके सदस्यों तथा भारतके नेता सर आगाखां, श्रीमती सरोजिनी देवी, श्री शरत चन्द्र बोस, सर होमी मोदी और श्री हशम प्रेमजी के साथ वायसराय लार्ड वावेलसे मिला तो उन्होंने हमें यह बतलाया कि दक्षिण अफ्रीकासे व्यापारिक संधि (Trade Agreement) रद्द करनेकी नोटिश देदी गयी है, पर तीन मास बाद ही शर्तके अनुसार व्यापार सम्बन्ध विच्छेद हो

सकेगा। शायद भारत सरकारको आशा थी कि अब भी स्मट्स चेत जायंगे और अपनी हरकतसे वाज आयेंगे। पर स्मट्स तो अपनी धुनमें ऐसे मस्त रहे कि कानून बनाकर ही सांस ले सके। भारत सरकारको लाचार होकर दक्षिण अफ्रीकासे व्यापारका सम्बन्ध तोड़ लेना पड़ा। वहांसे भारतके हाईकमिश्नरको वापस आ जानेसे राजनीतिक सम्बन्ध भी भंग हो गया।

इसीसे भारतने सन्तोष नहीं कर लिया। उसकी तरफसे संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations Organisation) में दक्षिण अफ्रीकाके विरुद्ध मामला भी दायर कर दिया। अभी पिछली जुलाईमें भारत सरकारके अनुरोधसे मैंने और मेरे मित्र डाक्टर लंका सुन्दरम्ने भारतकी तरफ से दक्षिण अफ्रीकाके विरुद्ध एक अर्जीदावा तैयार कर दिया था, जिसकी राइट आनरेबल डाक्टर जयकर और प्रिवीकौन्सिलके वकील श्री हेनरी एल०एल० पोलक जैसे कानूनके पंडितोंने भी मुक्त कंठसे प्रशंसाकी थी। इस अर्जी दावेमें हमने अन्तर्राष्ट्रीय कानूनोंसे यह सिद्ध कर दिया है कि प्रवासी भारतीयोंका प्रश्न दक्षिण अफ्रिकाका घरेलू प्रश्न नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न है, और संयुक्त राष्ट्र संघके दायरेके अन्दर है।

दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासी भाई घेटो कानून पास होते ही सत्याग्रहका संग्राम छेड़ चुके हैं। वहांका प्रसिद्ध नगर डरबन इस संग्रामका कुरुक्षेत्र बन गया है। प्रारम्भ में सरकार ने सत्याग्रहकी उपेक्षा करना ही उचित समझ लिया था, पर गोरे नागरिक जामेसे बाहर हो गये। वे भारतीयोंको विद्रोहका झंडा उठाते देखकर जल मरे और और निकल पड़े कुली-कबाड़ियोंको सबक सिखाने और विद्रोहका मजा चखानेके लिये। वे रातमें दल बांधकर सत्याग्रह छावनीपर हमला करते। सत्याग्रहियोंके तम्बूकी डोरियां काटकर गिरा देते या उसमें आग लगा देते ताकि बागी जीते जल मरें, उनके खटोले और कम्बल लूट ले जाते। सत्याग्रहियोंको पकड़कर खूब मरम्मत करते और यहां तक कि सत्याग्रही महिलाओंपर भी बूटकी ठोकरें लगाकर अपनी गोरांग सभ्यताका परिचय देनेसे बाज न आते। मजा तो यह कि कानून और शान्तिके ठेकेदार पुलिस खड़ी-खड़ी तमाशा ही नहीं देखती, बल्कि गोरे अत्याचारियोंको प्रोत्साहित भी करती थी। यहां तक उनका अत्याचार बढ़ा कि राह चलते हुए कृष्ण स्वामी नामक सिपाही पर गोरे गुण्डोंने हमला कर दिया। कृष्ण स्वामी सरकारी नौकर था, सत्याग्रहसे उसका क्या सम्बन्ध? वह सत्याग्रह-छावनीसे बहुत दूर रास्तेपर जा रहा था। पर चूंकि वह भारतीय था इसी अपराधपर उसपर ऐसी मार पड़ी कि अस्पताल पहुंचकर वह शहीद हो गया। इस दुर्घटनासे सारे संसारने दक्षिण अफ्रीकापर धिक्कारोंकी बौछारें की। इसके बाद ही गोरोंकी गुण्डाशाहीका अन्त आ सका और सरकारका दमनचक्र आरम्भ हुआ।

ट्रांसवाल इण्डियन कांग्रेसके प्रधान डाक्टर दादू, नेटाल इण्डियन कांग्रेसके प्रधान डाक्टर नायकर, साउथ अफ्रीकन इण्डियन कांग्रेसके भूतपूर्व प्रधान श्री सोराबजी रुस्तम जी, डाक्टर कुमारी गुणम्, डाक्टर पटेल प्रभृति अनेक शिक्षित और प्रतिष्ठित भारतीय जेलमें ठूंस दिये गये और उनसे कठोरसे कठोर काम लिया जाने लगा। भारतीय डाक्टरोंसे नेटालके जेलोंमें पत्थरकी गिट्टियां तोड़वायी जाती हैं पर मैं तो कहता हूं कि उनके हथौड़ेकी एक-एक चोटसे ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल और ब्रिटिश साम्राज्यकी एक-एक कड़ी टूटती जा रही है। जेलोंमें उनको ऐसी घोर यातनायें सहनी पड़ती हैं कि जब सत्याग्रही छूटकर आते हैं तो उनके परिवार को भी उनको पहचाननेमें दिक्कत होती है। संकटोंसे सत्याग्रहियोंका साहस बढ़ रहा है, आपत्तियां उनको आगे बढ़ा रही हैं। वे कष्टोंसे तंग आकर पीछे नहीं हटेंगे। वे मर मिटेंगे, पर अपने राष्ट्रीय सम्मान पर दाग न लगने देंगे। अबतक पन्द्रह सौ भारतीय जेलमें जा चुके हैं और अभी मुझे सत्याग्रह-समितिकी चिट्ठी मिली है जिसमें मुझे सूचित किया गया है कि हजारों जेल जानेके लिये तैयार हैं।

यदि इस महा सग्राममें प्रवासी भारतीयोंकी हस्ती भी मिट गयी तो यह उनके लिये गर्व और गौरवकी बात होगी। पर हम संसारको क्या मुंह दिखा सकेंगे? क्या कहकर अपनी सफाई दे सकेंगे? जब हमसे इतिहास पूछेगा कि जिस समयदक्षिण अफ्रीकाके ढाई लाख भारतीय अपने प्यारे भारतकी शानपर मर मिट रहे थे उस समय हम चालीस करोड़ क्या तमाशा देखनेमें तल्लीन थे?

प्रवासी भारतीयोंका प्रश्न ऐसा है, जिसकी उपेक्षा करना भारतके लिये राष्ट्रीय आत्मघात होगा। दक्षिण अफ्रीकामें प्रवासी भाइयोंपर जो अत्याचर हो रहा है, वह इसलिये नहीं कि उन्होंने किसी प्रकारका अपराध किया

है बल्कि इसलिये और सिर्फ इसलिये कि वे इस अभागे देश की सन्तान हैं। अतएव दक्षिण अफ्रीकाका प्रश्न वहांके ढाई लाख प्रवासी भारतीयोंका ही प्रश्न नहींहै, वह भारतके चालीस करोड़ निवासियोंका प्रश्न है। हिटलरने इसी प्रकार यहूदियोंपर अत्याचार किया था, पर यह बहाना बनाकर कि प्रथम महायुद्धमें यहूदियोंके विश्वासघातसे ही जर्मनीकी पराजय हुई थी, लेकिन दक्षिण अफ्रीकाके सर्वेसर्वा जान स्मट्स जो प्रवासी भारतीयोंपर जुल्म ढा रहे हैं, वे डकेकी चोटसे यह कहकर कि चूंकि प्रवासी भारतीय एशियाई हैं, उनके चमड़े भूरे, पीले या काले हैं इसलिये वे नीच हैं। यूरोपीय गोरांगोंके प्रदेशमें रहनेके योग्य नहीं हैं। अतएव उनको अलग रखने और अलग बसानेसे ही गोरांग सभ्यता एवं श्रेष्ठता अक्षुण्ण रह सकती है। दक्षिण अफ्रीकामें योग्यता और विद्वताका कोई मूल्य नहीं, चमड़े के रङ्गका महत्व है। महात्मा गान्धी, जनरल चांगकाई शेक, प्रेसीडेंट सुकर्णो, प्रेसीडेंट होची मिन्ह प्रभृति एशिया के वर्तमान भाग्य विधाता दक्षिण अफ्रीकामें एक महानीच, अवारा, शराबी और बदमाश गोरांगसे भी नीच, अधम और तुच्छ समझे जायेंगे। यदि वे नीचसे नीच गोरांग के पड़ोसमें मकान लेकर रहनेकी गुस्ताखी करेंगे तो वहांके 'घेटो कानून' से दण्डित हुए बिना न रहेंगे।

इसीलिये तो आज प्रवासी भारतीयोंके सामने विकट प्रश्न आ गया है। या तो वे अछूत बनकर रहना मंजूर करें, अपने देशकी इज्जत-आबरू खाकमें मिला दें और पीढ़ीदरपीढ़ीके लिये नीच कहलानेका कलंक लगा लें, अथवा सत्याग्रहकी आगमें पतंगकी भांति जल मरें। उन्होंने लांछित, अपमानित और कलंकित होकर जीनेके बजाय प्रतिष्ठाके साथ मर मिटना ही पसन्द किया है। इसलिये आज वे मानवताके संग्राममें व्यस्त हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम इस दुःखकी घड़ीमें अपने प्रवासी भाइयोंकी सुधि लें, उनको तन-मन-धनसे सहायता पहुंचायें, उनको रणक्षेत्रमें आगे बढ़ते जानेको प्रोत्साहित करें। वे हमारी तरफ आशापूर्ण दृष्टिसे देख रहे हैं, क्या हम उनको निराश और हताश होने देंगे? कदापि नहीं।

मैं स्वयं एक प्रवासी हूं—जन्मजात प्रवासी हूं। मेरा जन्म उसी जोहान्सबर्गमें हुआ है, जो सत्याग्रह की भी जननी है। मेरे जीवनका सर्वोत्तम और अधिकांश भाग दक्षिण अफ्रीकामें ही बीता है। वहांसे रुग्ण-शरीर और भग्न-स्वास्थ्य लेकर लौटा—शेष जीवन मातृभूमिकी गोद में बितानेके लिये। इस समय भी रुग्ण-शैय्यापर पड़ा हूं। यदि मैं बीमार और कमजोर न होता तो आज दक्षिण अफ्रीकामें या तो लड़ाईके मैदानमें अथवा नेटालकी जेलमें दिखायी पड़ता। इस अवस्थामें भी अपनी लेखनीसे यथाशक्ति उनकी सेवा और सहायता कर रहा हूं।

आई मधुर मिलन की वेला !

ग्राम वधू जब नदी तीर पर,
आती है अति धीर चरण धर,
तट पर बैठा सोच रहा है
नाविक जाने कौन अकेला !

लहरें तब उठ-उठ कर कहतीं
'हम हंस कर ही जीतीं, मरतीं
रोना क्या जब जान गया मन
जग केवल दो दिनका मेला !'

गोधूली वह मुझको भाई,
एक वेदना मन में छाई,
भूल नहीं पाती मैं वे दिन
जब मैंने आंसू से खेला !

कैसे अब श्रृङ्गार करूं मैं !
क्यों इस जगको प्यार करूं मैं ?
जीवनके मधुमय दिवसों में
मैंने केवल दुख ही झेला !

—तारापांडे

तीसरे विश्व महायुद्धकी विग्रहभूमि

श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार

संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके व्यवसाय मन्त्री मि० हेनरी वालेसने अपने देशको ब्रिटिश परराष्ट्र नीतिका अनुसरण न करनेकी चेतावनी देते हुए कहा है कि यह मध्यपूर्व आज दो बड़े महान् राष्ट्रों ब्रिटेन और सोवियट रूसकी प्रतिस्पर्द्धा और प्रतियोगिताका क्षेत्र हो रहा है और ये दोनों इस समय लड़ाई न चाहते हुए भी मध्यपूर्वको भावी महायुद्धका रण क्षेत्र बना रहे हैं। संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाको इस लिये इस उलझनमें पड़नेसे बचना चाहिये अन्यथा वह भी युद्धकी ज्वालाओंमें फंस जायेगा। मि० हेनरी वालेसकी यह चेतावनी अर्थपूर्ण है। पिछले डेढ़ सालसे मध्यपूर्वमें घट रही घटनायें इस सत्यका समर्थन करती हैं।

मध्यपूर्वके सामने आज आन्तरिक संघर्षकी समस्या है। केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरणकी शक्तियां आज परस्पर टकरा रही हैं। ईरानमें, विशेषतः उत्तरीय ईरानमें घट रही घटनायें इस बातकी सूचक हैं कि मध्यपूर्वके संकट का आरम्भ हो गया है।

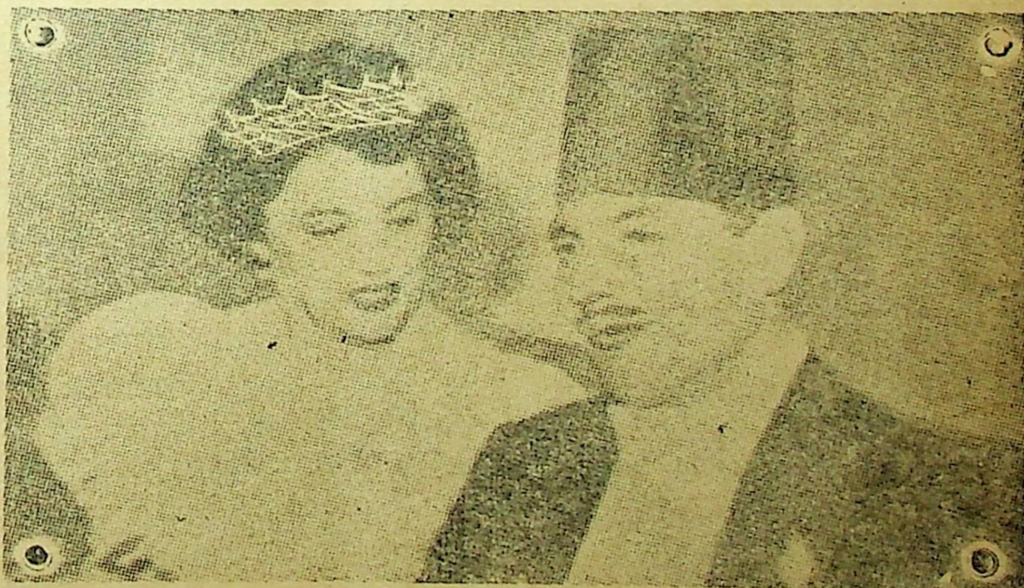
ईरान

उत्तरीय ईरानकी आबादी १२०००००० है। ईरानी गवर्नमेंट १६०००००० है। अजरबैजान आज पूर्णतः सोवियट प्रभावमें है। इसका कारण क्या है? लगभग १ करोड़ सदा भूखे रहते हैं और सर्वथा निरक्षर हैं। ८० लाख सिफलिस से बीमार हैं। चारमें से एक बच्चा एक साल का होनेसे पहले ही मर जाता है।

स्पेन, फ्रांस और जर्मनीके सम्मिलित क्षेत्रफल से यह विस्तार में अधिक है। इसपर तेहरानका शासन था स्थानीय और प्रादेशिक सत्ता किसी किस्मकी नहीं थी। वैधानिक दृष्टिसे ईरानमें वैधानिक राजतन्त्र है। २६ वर्षीय शाह मुहम्मद रीजा, मन्त्रिमण्डल, मजलिस, जिसके प्रति मन्त्रिमण्डल उत्तरदायी है, ये शासन संघके मुख्य अंग हैं। मगर व्यवहारतः २००० धनी परिवार देशका शासन चलाते हैं। वे भू स्वामी हैं, वे स्वतः मन्त्रिमण्डल हैं, वे ही मजलिस और वे सेना और अर्थ व राजस्वका नियन्त्रण करते हैं। यहां तक कि लूडेह डिप्टी भी जमींदार हैं या बहुत धनी व्यक्ति हैं।

अफीम पार्लमेंट

ईरानमें आज भी मुख्यतः दो पार्टियां हैं। लूडेह और लूडेह विरोधी 'नेशनल बिल' आन्दोलन। मजलिसमें एकमात्र लूडेह पार्टी संगठित पार्टी है। वैधानिक स्वार्थका प्रभुत्व है। मजलिसके सामने साल भरसे अधिक समयसे महत्वपूर्ण सुधार और अर्थ सम्बन्धी १०० बिल पड़े हुए हैं, १२७ सदस्योंमें से ६९ का तो आवश्यक कोरम कभी पूरा नहीं होगा। धनी सदस्य गैरहाजिर रहते हैं। अफीमका सेवन अभी तक एक राष्ट्रीय फैशन समझा जाता है। मज-



मध्यपूर्व का आधुनिक रूप



मिश्री प्रतिनिधियोंके आगमनपर सलामी

लिस भी इसका आनन्द उठाती है। लगभग एक तिहाई सदस्य नियमित रूपसे 'वाइन' का सेवन करते हैं और दुपहर बाद जब सदस्य 'हाशहिश' को रोकनेमें असमर्थ होते हैं, मजलिस स्थगित कर दी जाती है।

आर्थिक दृष्टिसे पिछड़े अन्य देशोंके समान ईरानकी आयका ५० प्रतिशत सेना, जेण्डरमेरी और पुलिसपर खर्च होता है। सैनिकका वेतन १०-१० रु० है। और कठिन कार्यसे बचनेके लिये अपने अफसरोंको वह बराबर बखशीश देता रहता है।

मध्यमवर्गका बड़ा अभाव है। सरकारी कर्मचारी कम वेतन पाते हैं, अतः भ्रष्ट हैं। औद्योगिक मजदूरोंकी संख्या सारे देशमें ५० हजार है और एक करोड़ ईरानी सूखी रोटी और चायपर गुजारा करते हैं।

ब्रिटेनकी ओर

... घनी परिवारोंने क्रांतिकारी

रूससे मुख फेर लिया है और ब्रिटेनके आंचलसे अपनेको बांध लिया है। सन् १९४ में सोवियट गवर्नमेंटने निश्चय किया कि ईरानसे ब्रिटिश प्रयत्नका अंत किया जाय और यह सम्भव नहीं है, तो इसको न्यूनतम किया जाय। तूदेह पार्टी बनायी गयी। इस्फहान, तेब्रिज और तेहरान में ट्रेड यूनियनें बनायी गयीं। फलतः मालिकोंको मजदूरोंका वेतन दुगुना कर देना पड़ा और कपड़ा, कोयला और जूतेकी रियायत देनी पड़ी। भूमि सुधारकी बात मगर जबानी जमा खर्च रही।

तूदेह पार्टीने मगर दो भारी गलतियां की। इसने धर्मपर आक्रमण किया और इसने अपने अधिकांश अनुयायी खो दिये। यह एक रूसी पार्टी हो गयी। जनता इसको एक विदेशी राष्ट्र द्वारा बनायी समझती थी। तूदेह पार्टीने भी मास्कोके आदेशों और निर्देशोंका अक्षरशः पालन किया। इससे जनताकी धारणा पुष्ट हो गयी। फिर तूदेह पार्टीके नेता धनियों और जमींदारोंमें से आये थे। वे अपने आपको जनताके साथ समरस न कर सके और न उसके साथ एकात्मता स्थापित कर सके।

संघर्ष

तूदेह पार्टी ब्रिटिश प्रभावका अन्त करनेमें विफल रही। पर यह प्रारम्भ था। १९४४ के अंतमें रूसने देखा कि ईरानके अन्दर ब्रिटिश और रूसी शक्तिकी परीक्षाका अवसर आ गया है। उत्तरी ईरानमें १लाख५० हजार वर्गमीलमें तेलक्षेत्र प्राप्त करनेके लिये रूसने गुप्तरूपसे बातचीत चलाई। समझौतेकी बातचीत समाप्ति पर थी कि मजलिसने कानून बना दिया कि ईरानी भूमिपर जबतक विदेशी सेना है, तबतक न कोई नया तेलकूप डुबोया जाय और न किसी विदेशी राष्ट्रको कोई रियायत दी जाय। रूसके मुंहपर यह तमाचा

था और उसने अपना राजदूत वापस बुला लिया।

इसी समय ईरानमें सैयद जिया फिलस्तीन से लौट आया। यह हरेक मानता है कि ईरानी राजनीतिज्ञोंमें सय्यद जिया एक समृद्ध, योग्य और कल्पनाशील व्यक्ति है। उसने 'नेशनल विल मूवमेंट' का प्रारम्भ किया। धन पानेके लिये पुरखाओं का सहयोग प्राप्त किया। तूडेह पार्टी का विरोध करनेके लिये प्रचलित सुधारोंका भी विरोध किया। ट्रेड यूनियनोंके मुकाबले जागीरदार गिल्ड बनाई। स्वतन्त्र यूनियनें बनाकर ट्रेड यूनियनमें फूट डाल दी। लड़ाई समाप्त हो गयी थी। बाल्कन प्रदेशके समान ईरान से भी ब्रिटिश प्रभावका अन्त करनेको सोवियट रूस उत्सुक था। अंत तकके प्रयत्न विफल हुए थे। अतः नया उपक्रम किया गया।

अजरबेजान युद्ध

रूसने इस बार नयी 'टेकनीक'से काम लिया। अजरबेजानमें स्वाधीनताके आंदोलन का सूत्रपात किया। यह ईरानका सबसे अधिक समृद्ध प्रांत है। बहुतसे प्रभावशाली राजनीतिज्ञों की यहां जागीरें हैं। ईरानका दूसरे नम्बर का शहर त्रेब्रिज इसीमें है। यह तुर्की और इराकसे ईरानको जोड़ता है।

रूसी अजरबेजानी बड़ी तादादमें अजरबेजान में सर्वत्र फैल गये। दोनों एक भाषा बोलते थे। दोनोंमें कोई अंतर नहीं था। अक्तूबरमें डेमाक्रेटिक पार्टीकेनामसे एक नयी पार्टीकी स्थापना की गयी। ईरानके अन्य भागोंके तूडेह पार्टीके लोग इससे अलग रहे। सामूहिक उत्थान नहीं हुआ और न तेहरानपर सामूहिक कूच हुआ। रूसियोंने अजरबेजानके शासकोंसे सैनिकों और पुलिसमैनसे स्पष्ट रूपसे कह दिया कि वे डेमाक्रेटों की कार्यवाहीमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करेंगे। फलतः रातमें कुछ डेमाक्रेट गांव या शहरकी कुछ सरकारी इमारतोंपर कब्जा कर लेते हैं और सुबह वह भारी संख्यामें मार्च करते हुए आते हैं और उस स्थानका शासन अपने हाथमें ले लेते हैं। रूसी पर्देके पीछे रहकर सूत्र हिलाते रहे।

नवम्बरमें ये लोग तेहरानकी पहुंचमें आ गये थे और सफल होना ही चाहते थे कि दुनियाका ध्यान अजरबेजान पर केन्द्रित हो गया। फलतः विद्रोही पीछे लौट गये। रूस ने अपनी सेना वापस बुला ली और मौन युद्धका एक पर्व इस प्रकार समाप्त हो गया।

रूसकी सफलता

रूसको अजरबेजानके आन्दोलनमें भारी सफलता मिली। यह तेहरानके मर्मस्थलपर चोट थी। उधरके जमींदार भयभीत हो गये और ईरानी गवर्नमेंटकी प्रतिरोध करनेकी इच्छाका अन्त हो गया। तेहरानमें उनके अनुकूल



६४ वर्षके प्रभुत्वके पश्चात् कादिराका किला उसके हाराभिश्रको सौंपा जा रहा है



मध्यपूर्वके कुछ शासक स्वर्गीय रूजवेल्टके साथ

वह साहसी न था। रूसका उसपर दबाव पड़ने लगा कि रूस विरोधी अफसरों को, विशेषतः चीफ आफ पुलिस और चीफ आफ दी स्टाफको अलग कर दिया जाय। ये दोनों ब्रिटिश प्रभावमें थे और रूसके विरोधी पाये जाते थे। हकीमको आश्वासन दिया गया था कि इनको हटानेसे मास्को और तेहरानके बीच सीधी बातचीत हो सकेगी और रूसी शर्तें नरम होंगी और सोवियत हकीम गवर्नमेंटका विरोध न करेगी।

फलतः तेहरानका मेयर, और ईरानी मन्त्रिमण्डलमें से गृहमन्त्री हटा दिये गये। दो और मन्त्री बादमें हटाये गये। मार्चके समीप आनेके कारण त्रिराष्ट्र परिषदके सामने ईरानके प्रश्नको रखनेका विचार त्याग दिया गया। रूसका प्रतिरोध करनेवाली कोई शक्ति अजरबेजान और तेहरानमें न रही। अन्तमें हकीमी मन्त्रिमण्डलको भी सल्तानेह मन्त्रीमण्डलके लिए जगह बनानी पड़ी। गवर्नमेंट स्थापित हो गयी; ईरानका एक सबसे धनी और शक्तिशाली राजनीतिज्ञ नवाब सल्तानेह रूसका मित्र हो गया और उसने मजलिसको रूसके अनुकूल नीति अपनाने के लिये प्रेरित किया।

ईरानका प्रधान मन्त्री इस समय ७२ वर्षका बूढ़ा हकीम था, जिसकी ईमानदारी स्फटिकके समान थी मगर

सल्तानेह मन्त्रिमण्डलमें अब तूडेह पार्टीके सदस्य सम्मिलित हो गये हैं। इस प्रकार तेहरानकी गवर्नमेंट पूर्णतः रूसी प्रभावमें आ गयी है।

ब्रिटेनकी कठिनाई में

ईरानमें रूसकी प्रभुताकी चढ़ती कलाको देखकर

ब्रिटेन कठिनाईमें पड़ गया है। ब्रिटेनकी सहायताकी उपेक्षा रखनेवाला समाजका वह वर्ग है जो कमसे कम वांछनीय और प्रतिगामी है। समाजके अन्दर होनेवाले आन्तरिक परिवर्तनोंसे भयभीत होकर अपनी स्थितिकी रक्षाके लिये यह वर्ग ब्रिटेनकी सहायता चाहता है। फिर ब्रिटेनकी दक्षिण ईरानमें एंग्लो-इण्डियन आयल कम्पनी है। ईरानके मजदूरोंमें बढ़े असंतोषका प्रभाव एंग्लो-इण्डियन आयल कम्पनीके ईरानी मजदूरोंपर भी पड़ा है और उन्होंने हड़ताल भी की, जिससे कम्पनीके अधिकारी चकित हो गये हैं। ब्रिटेनने अपने हितोंकी रक्षाके लिये बसरामें सेना जमा कर रखी है। दूसरी ओर वह अजरबेजानके समान दक्षिण ईरानमें अरबिस्तान और खाजलिस्तानके स्वायत्त शासन प्राप्त राज्योंकी स्थापनाके लिये आंदोलन करनेकी प्रेरणा कर रहा है। रूसके प्रभावका अन्त करनेके लिये यह ब्रिटेनकी प्रतियोगिता है।

ईरानके अन्दर तेल प्रचुर मात्रामें है। ब्रिटेनके पास जो तेल क्षेत्र है, उसमें ही अकेले १९४९ को गणनाके अनुसार ८०.०,०००,०००,००० पीपेका सुरक्षित भंडार पड़ा है। मध्यपूर्वके अन्य तेल क्षेत्रोंमें ब्रिटेन और ११२९०००००० पीपोंपर नियंत्रण करता है। अमेरिकाके पास १२६२९ लाख, फ्रांसके पास ११२९०००,००० और हालैण्डके पास १२२९०००,००० पीपे हैं। पर रूसके पास मध्यपूर्वमें कोई ईरानमें १६०००० वर्गमील तेल क्षेत्रोंकी रियायत मिलनेसे पहले कोई तेल क्षेत्र नहीं था।

तेल जरूरी है ?

यहां स्वभावतः प्रश्न उठता है कि क्या ईरानका तेल रूसके लिये आवश्यक है ? १९०१ में एंग्लो-इण्डियन कंपनी ने प्रसिद्ध डार्की रियायत की। मार्च १९१६ अकाकी एम० एम० खो स्टारिया, रूसी नागरिकने ईरानी गवर्नमेंटसे ईरानके पांच उत्तरी प्रान्तोंमें अजरबेजान गिलन, मजनदरान अस्त्राबाद और खोरासान, रियायत प्राप्त की। २६ दिसंबर १९२१ को ईरानी प्रधान मन्त्री होवलेने 'टाइम्स' लन्दनमें लिखा कि जारकालीन गवर्नमेंटके दबावमें मजलिसकी बिना अनुमतिके यह रियायत दी गयी थी, अतः सोवियत गवर्नमेंटने यह रियायत रद्द करनेके लिये कहा और ईरानी गवर्नमेंटने वैसा ही किया। मगर अकाकी एम० एम० खोस्टारियाने वह रियायत 'एंग्लो-इण्डियन' आयल कम्पनीको बेच दिया। उसने वही रियायत स्टैण्डर्ड आयल कम्पनी, न्यूजर्सीको भी दी। रूसने शिकायत की और ईरान गवर्नमेंटने उत्तरके पांच प्रान्तोंकी स्टैण्डर्ड आयल कम्पनीको दी गयी रियायत रद्द कर दी।

उत्तरीय प्रान्तोंके तेल क्षेत्रोंकी रियायत प्राप्तिके लिये विदेशी कम्पनियोंने बादमें भी प्रयत्न किया, मगर सोवियत रूस सदा ब्रिटिश और अमरीकी कम्पनियोंको वह लेनेसे रोकता रहा। क्योंकि २६ फरवरी १९२१ की रूस ईरान सन्धि की एक धारा है कि सोवियत गवर्नमेंटकी रजामंदी के बगैर उन पांच प्रांतोंमें किसी तीसरी शक्तिके नागरिक को ईरान रियायत न देगा। दूसरा कारण यह है कि उत्तरी ईरानी क्षेत्रसे बाहर निकलकर विश्वमें पहुंचनेका मार्ग एकमात्र बाकू होकर है, वहांसे सोवियत काकेशियाके पार बाटूममें फिर डार्डनलकी राह। ईरानी खाड़ी तक सीधी पहाड़ियों और मार्गहीन मरुभूमिके बीच ७०० मील लम्बी पाइप-लाइन बनाने पर भी बुशीर या किसी अन्य ईरानी बन्दरगाहसे यूरोपकी यात्रा कालासागरकी अपेक्षा कई गुणा अधिक लम्बी होगी। यह एकमात्र कारण ही रूसको उत्तरीय ईरानमें किसी तीसरी शक्तिको रियायत देनेसे रोकनेके लिये 'वीटो' का अधिकार देना है। इसलिये ईरानी तेल क्षेत्रोंको रूसने ब्रिटेन और अमेरिकाको उनसे दूर रखनेके लिये प्राप्त किया है, यह सोचना नितान्त भ्रमात्मक है।

१९४१ से पहले तक रूसने उत्तरीय ईरानमें तेलकी रियायत नहीं मांगी। यदि वह मांगता तो उसकी मांगका प्रतिरोध करनेवाला कोई नहीं था मगर मास्कोको विदेशी तेलकी जरूरत ही नहीं थी। सोवियत यूनियनको इस बात का गर्व था कि दुनियामें उसके पास सर्वाधिक सुरक्षित तेल भण्डार है इसलिये रूसको यह तनिक भय नहीं था कि उत्तरीय ईरानका तेल क्षेत्र उसके अभियोगीके पास चला जायगा और उसको भी ईरानी तेलकी जरूरत नहीं थी। फिर प्रश्न होता है, यह सब हलचल उसने क्यों की ? इसका उत्तर ईरान गवर्नमेंटसे रूसको प्राप्त रियायतको देखनेसे स्पष्ट हो जायेगा। यह रियायत समस्त उत्तरीय ईरानमें है और तेहरानके ४६ मील के अन्दर तक है। अब हजारों सोवियत इंजीनियर, मिस्त्री, गुप्तचर इस प्रदेशमें स्वच्छन्दतासे घूमेंगे और सोवियत राजनीतिक प्रभावको दृढ़ करेंगे। यह तेल रियायत ईरानमें सोवियत विस्तारका पहला पत्थर है। तेल ड्रीलरके पीछे-पीछे लाल पताका चलेगी। स्टालिन

इस प्रकार जारके मनोरथों और स्वप्नोंको पूरा करनेके लिये ब्रिटिश साम्राज्यको कुचलकर रूसी साम्राज्यकी स्थापना कर रहा है।

स्प्रिंग बोर्ड है

वस्तुतः उत्तरीय ईरान रूसके लिये मध्यपूर्वमें हस्तक्षेप करनेके लिये कूदनेका स्थान स्प्रिंग बोर्ड है। दूसरे शब्दोंमें उत्तरीय ईरान नीतिका अन्त नहीं बल्कि आरम्भ है। यदि रूसके यहां पैर जम गये तो ईराक और तुर्की उसके प्रभावका प्रतिरोध न कर सकेंगे। ईराक और तुर्की में बसे कुर्दोंकी भावना को वे अपील करना जानते हैं। इसी प्रकार आरमीनियनोंका प्रश्न उठाकर वे सीरिया और लेबनानमें हस्तक्षेप कर सकेंगे और अरब लीग और यहूदियों के विवादका निर्णय करनेकी स्थितिमें वे हो जायेंगे। यह मध्यपूर्वमें ब्रिटेनकी पूर्ण पराजयकी सूचना होगी। मध्यपूर्वका सन्तुलन बदल जायगा और अव्यवस्था मच जायेगी। इसलिये उत्तरीय ईरानमें रूसको मिली रियायतको स्थानीय बात न समझनी चाहिये। उसमें भावी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्र निहित है।

सामरिक दृष्टिसे सोवियत रूस कैस्पियन सागरकी रक्षाके लिये ईरानकी खाड़ी तक अपना अबाध प्रवेश आवश्यक मानता है। क्योंकि दक्षिणी कैस्पियन सागरका तट ईरान बनाता है। इसलिये रूसने अजरबेजानकी विद्युत रेलवेको आठ गुना बढ़ानेकी योजना बनाई है। मध्यपूर्वमें अपने विस्तारकी आंकाक्षा देखते हुए रूस ईरानकी खाड़ी की उपेक्षा नहीं कर सकता।

ईराक

मसलन ईराकके अन्दर ४७ गवर्नमेंट बनी। मगर इसके सब आदमी कुछ वैधानिक राजनीतिज्ञोंमें से आये और वे सब एक सीमित क्षेत्रके थे। पचीस सालोंके अन्दर कोई भी गवर्नमेंट इतने समय तक नहीं रही जो देशको सामाजिक और आर्थिक समस्याओंकी ओर ध्यान दे सके। अनुमान लगाया गया है कि लगभग २० लाखकलाहीन और कुली आबादीका जो दो-तिहाई भाग हैं, प्रतिदिन एक पेनीसे कम पर गुजारा करते हैं। आबादीका अधिक भाग गुप्तरोगों और आंखकी बीमारीसे ग्रस्त है। मध्यपूर्वमें शिशु-मृत्यु सबसे अधिक है। ईराकके तीन बड़े शहरोंमें १९३८-४१ के बीच प्रति एक हजार बच्चोंमें औसतन २२७ मर गये।

कुर्द

कुर्द ईरान, ईराक और तुर्की, इन तीन देशोंके सन्धिस्थलपर रहते हैं। इतिहासके प्रारम्भिक कालसे ये लोग अपने ऊपर शासन करनेवाली बाह्य शक्तिसे लड़ते रहे हैं। इन्होंने अपनी विशिष्ट जातीयताको ३ या ४ हजार सालों तक कायम रखा है और असीरियनों, मंगोलों और आधुनिक विजेताओं सबको ये सदा चुनौती देते रहे हैं। पहाड़ोंमें रहनेवाले और किलन्दर दोनों एक समान अपने बनाये कानूनोंका पालन करते रहे हैं। यद्यपि इनकी संख्या २० लाखसे भी कम है। इनमें से ६५० हजार ईराकमें रहते हैं और ईराककी आबादीके ये पंचांश हैं। यदि रूसी ढंगका स्वायत्त शासन प्राप्त राज्य कुर्द स्थापित करें, जिसमें काकेशस, आईरन ईरानियन, अजरबेजान और सोवियत जनमका आरमीनिया सम्मिलित हों, तो समीपके ब्रिटिश तेल क्षेत्र मोसलमें भी उद्विग्नता और चिन्ता फैल जायगी।

ईरानके कुर्दोंने, जिनकी संख्या दो लाख है, बायव्य ईरानमें 'कुर्दिश लिबरेशन कमेटी' स्थापित की है। ईराकके असंतुष्ट इस कमेटीकी ओर आशा भरी नजरसे देखते हैं। कुर्दोंका ताजा विद्रोह नेताओंको धन देकर शान्त कर दिया गया। पर ईराकमें एक नये तत्त्वका उदय हुआ है। ईरान के बाद रूसकी अगली दृष्टि ईराकपर पड़ेगी। ईरानके समान ईराकके अन्दर भी सामाजिक व अल्पसंख्यकोंकी समस्या विद्यमान है। अजरबेजानके समान ईराक भी मर्मस्थलपर की गयी चोटको सम्हाल न सकेगा। तुर्की आज जो रूसका प्रतिरोध कर रहा है, वह प्रतिरोधक क्षमता ईराकमें नहीं है।

इब्नसूद

यह इब्नसूदके साम्राज्य और उसके प्रदेशके अन्तर्गत रहनेवाले फिलन्दर कबीलोंमें उसके प्रभावशाली और शक्तिशाली व्यक्तित्व द्वारा स्थापित व्यवस्थापर आश्रित है। यह ईराककी ३९ हजार सेनापर आश्रित है, जो कुर्दिश विद्रोहोंको कुचलती है और आक्रान्तकबीलोंको राजधानी नहीं आने देती। सिद्धांतः यह सेना इतनी शक्तिशाली है कि यह हजाजपर हमला करके इब्नसूदके राज्यका अन्त कर सकती है, मगर मध्यपूर्वमें ब्रिटिश नीतिने इब्नसूदके राज्यको स्वीकार कर लिया है, अतः उसके प्रतियोगी हशमाइट राजवंश को अपनी महत्वाकांक्षाओं और आशाओंको इसके आगे

नीचा करना पड़ता है।

ट्रांसजोर्डन

हालमें स्वाधीनता प्राप्त ट्रांसजोर्डनपर भी हशमाइट राजवंशका शासन है। यहांकी सेना ईराकी सेनाकी पूरक है। मध्यपूर्वमें सम्भवतः 'अरब लीजन' सर्वोत्तम स्थानीय सेना है। इसका एक भाग अधिक है। इसके सब अफसर अंग्रेज हैं। इनकी संख्या १६ हजार है और इनको ब्रिटिश खजानेसे वेतन मिलता है। ये दोनों सेनायें इब्नसूदके राज्य की सीमापर तैनात रहकर उसको सदा ब्रिटिश प्रभावकी याद दिलाती है और सचेत करती रहती है कि ब्रिटेन किस सीमा तक उसके विस्तारको सहन कर सकता है।

सोवियत मुस्लिम ब्लाक

अरबकी अपेक्षा मिश्र रूसी खतरेके लिए अधिक खुला है। वहां निरंकुश शासन है, पूंजीपतियों और जमींदारोंका शासन है इब्नसूदने अरब लीगको धमकी दी थी कि यदि यहूदी और अमरीकी मालका बहिष्कार न किया जायगा तो सौदी अरेबिया अरब लीगका परित्याग कर देगा। रूसी भयके साथ यह भय भी काम कर रहा है। अरब देशोंमें सोवियत रूसकी दिलचस्पी बढ़ रही है। कैरोमें उसने शाहफारूखसे सम्पर्क स्थापित कर लिया है। रूसी दूतावासमें एक सेक्रेटरी सुलतानोव मुसलमान है। यह मध्यपूर्वमें रूसका सबसे बड़ा सम्पर्क स्थापित करनेवाला व्यक्ति है। यूगोस्लावियाका कैरो स्थित राजदूत भी मुसलमान है। इससे रूसी-मुस्लिम ब्लाक दृढ़ हो गया है। अरब लीगने रूसियोंको यह विश्वास दिलाया है कि वह मध्यपूर्वकी शक्तियोंकी लड़ाई और प्रतियोगितामें तटस्थ है।

मिश्र में

मगर फिलस्तीनसे अधिक मिश्रके अन्दर अंग्रेजोंके विरुद्ध राष्ट्रीय क्षोभ फैला हुआ है। ट्रेड यूनियनोंका संगठन हो रहा है। समाजवादी विचारधारा फैल रही है। 'मुस्लिम ब्रदर हुड' नामसे भी एक आन्दोलन चल रहा है। इसके साथ कम्युनिस्ट प्रचार भी हो रहा है। मिश्र आज खौल रहा है। सूडानका परित्याग करने और ब्रिटिश सेनाके मिश्र खाली करनेसे ही यह क्षोभ शान्त हो सकता है। यदि अंग्रेजोंने यह न किया तो अरबोंका यूरोपियन भागके प्रति बढ़ता विद्वेष मोरक्को तक फैल जायगा और अफ्रीकाके अन्दर स्थापित यूरोपियन साम्राज्य उस ज्वाला में भस्म हो जायगा।

मध्यपूर्वकी ओर रूस सन्देह भरी दृष्टिसे देखता है। अतः वह चाहता है कि मध्यपूर्वकी डेगची खदबदाती रहे। वह अल्पसंख्यकों और सामाजिक समस्याओंको सदा जागृत रखना चाहता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका मध्यपूर्वका बाजार चाहता है और वह अमरीकी साहसके लिये क्षेत्र तैयार कर रहा है। वह उस दिनकी प्रतीक्षामें है, जबकि रूसके प्रभावसे अंग्रेज मिश्र खाली करेंगे और वह अंग्रेजों द्वारा खालीकी गयी जगहको ग्रहण कर लेगा। मध्यपूर्व महान् सामाजिक, राजनीतिक क्रान्ति के द्वारपर खड़ा है और यहां हुई उथल-पुथलका समस्त विश्व पर व्यापक प्रभाव पड़े बगैर न रहेगा।

अंग्रेजोंकी मोर्चेबन्दी

अंग्रेज मगर आंखें बन्द नहीं किये हुए हैं। वे देख रहे हैं कि पूर्वीय अरब गम्भीर आर्थिक और राजनीतिक अशांतिका केन्द्र हो रहा है। इसलिये मोसल पाइप लाइन के टर्मिनस हैफापर अंग्रेज अपनी मोर्चेबन्दी कर रहे हैं। हैफा प्राकृतिक बन्दरगाह है। यह भूमध्य सागरके ब्रिटिश बेड़ेका स्थायी अड्डा होगा। ९०० मीटर ऊंचो माउण्ट कारमेलचेन पर दृष्टिपात करनेवाली किलेबन्दी इसके साथ-साथ की गयी है। हैफाका रेल द्वारा उत्तरमें दमिश्क और दक्षिण में अदनसे सम्बन्ध है। हेजाज रेलवे अन्न उत्पादक इलाके में से गुजरती है। क्रूसेडर शहर एकेर और समुद्र तटके बीच का मैदान हवाई अड्डेके लिये उपयुक्त स्थान है। यह पर्वतमालाके पीछे निहित एसड्रोलोनके मैदानके समान सुरक्षित है। हैफाकी किलेबन्दी और अड्डोंकी सुरक्षाकी व्यवस्था पर अगले दो तीन सालोंमें अंग्रेज १ करोड़ स्टर्लिंग खर्च करनेका इरादा रखते हैं। हैफा खाड़ीमें सेना, नौसेना और हवाई सेनाकी रक्षा और स्वतन्त्रताके लिये आवश्यक कानून बनाया जा रहा है। मध्यपूर्वमें ब्रिटिश हितोंकी रक्षाकी व्यवस्था ब्रिटेन इस ढंगसे करना चाहता है, जिससे अरबों के मनमें सन्देह उत्पन्न न हो।

ट्रांसजोर्डनसे ब्रिटेनने अभी हालमें जो सन्धिकी है, उसमें अगले पचीस सालोंके वास्ते ब्रिटिश सेनाके यातायात और उसको ठहरानेका अधिकार अपने लिये उसने प्राप्त किया है। अपनी स्थिति मजबूत बनानेके लिये ब्रिटेन वृहत्तर सीरियाकी योजनाको आगे बढ़ा रहा है। इसका

पहला भाग ईराक और ट्रांसजोर्डनका फेडरेशन है। ईराकी प्रधान मन्त्री डा० स्वेफीक सवेदी द्वारा यह घोषणा करने पर भी कि बृहत्तर सीरियाकी योजनाका परित्याग कर दिया गया है, अंग्रेज निराश नहीं हुए हैं और वे अपनी योजना आगे चुपचाप बढ़ा रहे हैं। उन्होंने सीरियाके प्रेजीडेण्ट शुकरी वे कुवाटलीके मुकाबले जामिल मरदादको खड़ा करनेकी कोशिश की है, जो कि सीरियाको हशमाइट राजवंशके नीचे रखनेके पक्षमें है। लेबनानका विरोध दूर करनेके लिये वे लेबनानको दो भागोंमें, मुस्लिम जेबल अदील और 'पेटिट लिबान' जो मुख्यतः ईसाइयोंका होगा, विभक्त कर देना चाहते हैं। जेबल अदील सीरिया या अरब फिलस्तीनमें मिला दिया जायेगा।

लेबनानपर आर्थिक दबाव भी खूब डाला जा रहा है। ब्रिटेन भारी मात्रामें उपभोक्ताओंका सामान भेज रहा है। दस-बीस लाख प्लास्टिक कंघियां, ९०लाख टुथब्रश १०००० रेडियो सेट९००लाख गज कपड़ा। इससे लेबनानका पहलेसे अस्थिर बाजार और अधिक अस्थिर हो गया है। इस प्रकार अंग्रेज बृहत्तर सीरियाकी योजनाके प्रति लेबनानके विरोधको निबल कर देना चाहते हैं। ब्रिटेन भावी महायुद्धकी तैयारीके ख्यालसे अरब राज्योंका एक संघ राज्य स्थापित करना चाहता है, जो रूसके मुकाबले उसकी मदद करे और पहली चोट अपनी छातीपर झेले। हेनरी वालेसके स्पष्ट उद्गारसे ब्रिटेन नाराज है, मगर उसकी कार्यवाही मध्यपूर्वको तीसरे विश्व महायुद्धका रणक्षेत्र बना रही है।

दक्षिण बिहारके ग्राम्य गीत

श्री मोहन प्रसाद सिंह

दक्षिण बिहारके, खासकर संथाल परगनेके, बहुसंख्यक बासिन्दे अपभ्रष्ट मैथिली बोली बोलते हैं। इस बोलीकी कोई स्थिर रूप रेखा नहीं, कोई व्याकरण-बन्धन नहीं और न तो अपना साहित्य ही है। इस नाम-गोत्र हीन बोलीमें हिन्दी, भोजपुरी, मगधी, बंगला और मैथिलीके शब्द काने-कुब्जेके रूपमें हैं। ऐसी हालतमें इस बोलीमें माधुर्यकी खोज करना हास्यास्पद समझा जायगा। किन्तु यहांके अनेक ग्राम्यगीतोंमें प्रचुर मात्रामें रसका पुट मिला रहता है। अज्ञात कविकृत इन ग्राम्यगीतोंमें आपको न अलंकार मिलेगा, न विशेष अनुप्रास मिलेगा और न तो भावों की रहस्यमयी गहराई ही मिलेगी। मिलेगा सिर्फ यहांके निष्कपट हृदयोंका सरल और प्रकृत भाव तथा मधु रसकी हल्की फुहारें। हां, कभी-कभी बक्रोक्ति और सहज उपमाएं देखनेमें आती हों, ऐसी बात नहीं। विद्वानोंको तो इसमें रसास्वादन न मिलेगा, पर वे ही यदि इन गीतोंको गाते समय प्रत्यक्ष देख लें तो वे उन गीतोंसे प्रभावित हुए बिना न रहेंगे। हां, उनका यत्किञ्चित् रसज्ञ होना आवश्यक है।

शादी हो जानेके बाद कन्या जब पितृ-गृहसे पति-गृहको प्रस्थान करने लगती है, उस समय पतिके आगे पत्नी खड़ीकी जाती है और दोनोंके दुकूलोंकी गांठ बांध दी जाती है। बर महाशय बधूके दोनों हाथोंको पकड़े रहते हैं और बधू अपने आंचलको सम्हाले रहती है। छहागिनें कन्याके आंचलमें अरबा चावल, हल्दी, छपारी और यथा शक्ति रौप्य-ताम्र मुद्राएं देती हैं। इसे 'खोंइछा' कहते हैं।

इस क्रियाको सम्पन्न करते समय मां-बहनें तथा अभ्यागता औरतें बिदा-गीत गाती हैं। कन्या रोतीहुई सबसे अंकवारी मिलती है और पिता, पितामह, अग्रज तथा चाचा वगैरह बड़ोंके पैर आंचलसे पकड़ कर रोती है, जिसका मतलब होता है—"मैं अब चली। मेरी भूल-चूक माफ करना और मुझे भूल न जाना।" औरतें रोती जाती हैं, आंसू पोंछती जाती हैं और गीत भी गाये जाती हैं। बड़ा ही मर्म-स्पर्शी दृश्य होता है उस समयका। कौन ऐसा सहृदय होगा, जिसका हृदय उस समय भर न आये!

प्राणोंसे भी प्रिय पुत्रीआज अपने उदार मा-बापकी गोद छोड़, अपने चिर परिचित प्रिय गृहका परित्याग कर एक अनजाने पुरुषकी क्रीतदासी-सी होकरकिसी अपरिचिता

घरको जा रही है।

किसी युगमें मेघ-मल्हार रागसे वर्षा होती हो या न हो, दीपक रागसे बुझे हुए प्रदीप जल उठते हों या न हों पर पता नहीं, किन अज्ञात कवियोंके ये गीत उस करुणापूर्ण बिदा वेलामें उपस्थित जनोंके हृदयोंमें तूफान ला खड़ा करते हैं और धीरे-धीरे वियोगकी काली घटायें उमड़ा कर देखते ही देखते आंसुओंकी झड़ी लगा देते हैं जो थमना ही नहीं चाहती। उस तूफान, घनघोर घटा और झड़ी के बीच लोगोंके हृदयोंमें ये गीत किस वियोग व्यथाका संचार करते होंगे, यह एक निम्नलिखित गीतसे विदित होगा :—

कथी रे बिनू सूने रे भेलय बाग रे बगीचवा ?
कथी रे बिनु सूने रे भेलय बाबा के महलिया ?"
कोयली रे बिनू सुने रे भेलय बाग रे बगीचवा,
धीया रे बिनु सूने रे भेलय बाबा के महला।"
'कियो ओकर खइलयं हो बाबा किये अकर करलयं सिंगार ?"
'पनवां ओकर खइलौं गे बेटी, फुलवा ओकर करलौं सिंगार।"
'पनवां ओकर फेरी देहो बबा फुलवा देहो छिरयाय।
हमरो ऐसन धीया नै पायब हो बाबा, मन तोहर रहत मुरझाय।"
कैसे कैं पनवां फेरौं गे बेटी, कैसे फुलवा दौं छरयाय ?
सभवा बैठले बोलिया हरलें गे बेटी रहब मैं मन समुझाय।"

"किस चीजके अभावमें बाग-बगीचे सूने हो गये ? पिताजीका महल ही भला, किसके अभावमें सूना पड़ गया ?"

"(अपनी मधुर 'कू-कू' ध्वनिसे बाग-बगीचेको हमेशा मुखरित करने वाली) कोयलके अभावमें ये बाग बगीचे सूने हो गये और मा बापकी लाड़ली बेटीके अभाव में पिता जीका (मुखरित) महल सूना पड़ गया।"

"पिता जी, तुमने उस (वर) का क्या खाया ? उसकी किस चीजसे श्रृङ्गार ही किया भला ? (जो आज उसके हाथोंमें सौंप रहे हो।)"

मैंने उसका दिया हुआ पान खाया है और उसके दिये फूलों (की माला) से श्रृङ्गार किया है बेटी !"

"पिताजी, (उसका पान और फूल उसे ही मुबारक रहे !) तुम उसे लौटा दो और उसके फूलोंको बिखेर दो। पिताजी मेरी जैसी लाड़ली बेटी तुम्हें कभी न मिलेगी और (मुझे दूर करके) तुम्हारा मन सदा मुरझाया रहेगा। (सो कहे देती हूं।)

किस तरह उसका पान उसे लौटा दूं बेटी ? उसके फूलोंको ही भला किस तरह बिखेर दूं ? सभाके बीच बैठ कर मैं वचन तो हार चुका हूं ! (अब क्या कर सकता हूं ?) किसी न किसी तरह अपने मनको तो समझा कर रखना ही पड़ेगा। (मेरा अब बश ही क्या रहा ?)"

प्रिय पुत्री अपने पिताके असीम स्नेह-बन्धनको तोड़ कर किसी तरह एक अपरिचित पुरुषके साथ जानेको तैयार नहीं है, पर उसका जन्म दाता पिता ही उसे आज अपने घरमें रखनेसे असमर्थ है। कैसी विडम्बना है ! कितनी बड़ी विवशता है !!

इतना ही नहीं, इन लोक गीतोंकी उस दुल्हनने शादी होनेके पूर्व अपनी मुक्तिका कोई उपाय न देख कर बारात दरवाजा लगते समय भी पिताको भुलावा देना चाहा था :—

'सांकरि है तोरि बाखरि हो बाबा !
सांकरि घरक दुआर।
हथिया आवय छै पियासल हो बाबा !
छौंक लेत नगर तोहार।"

"चाकरि है मोरो बाखरि गे बेटी !
चाकरि घर के दुआर।
हंथिया आवय दहि पियासल गे बेटी !
देवह हमें होद खनाय।"

"पिताजी, आपका मकान तो संकरा है और दरवाजेका भी वही हाल है। बरातके हाथी प्यासे आ रहे हैं। वे आपके नगरको ही घेर लेंगे। (मकानमें प्रवेश पाना तो दूरकी बात रही।) ऐसी हालतमें आप क्या करेंगे ? मैं तो कहती हूं, बारात ही लौटा दीजिये।)

परन्तु पिताजी पुत्री-स्नेहके भुलावेमें नहीं पड़ते। उन्हें अपना कर्त्तव्य पूरा करना है।

"मेरा मकान बहुत बड़ा है बेटी, दरवाजे भी काफी चौड़े हैं। (अगर इनसे भी काम न चलेगा, तो बाहर ही) वे प्यासे हाथी आवें तो हौज खुदवा दूंगा।"

कन्या इस बात पर भी हार नहीं मानती और अपने

स्नेहकी याद दिला कर उन्हें कुण्ठित करना चाहती है; पर वज्र हृदय पिता किसी हालतमें नहीं डिगते ।

कैसे कहा जाय कि लोक गीतोंकी उन स्त्री कवियों ने उन कन्याओंसे पितृ स्नेह जतानेके लिये उपर्युक्त वाक्य कहलाये थे या भावी ससुरालकी उन यातनाओंकी कल्पना करके, जिन यातनाओंमें पिस कर हजारों बिहारी अभागिनियां जीवनके उन दिनोंको (जब कि स्वभावतः उनके हृदय रंगीन अरमानोंसे सराबोर रहते हैं) कूट-कूट कर बिताती हैं ।

मान-अभिमानका अच्छासे अच्छा नमूना हम सवाक् चलचित्रों तथा उपन्यासोंमें पाते हैं, जिनकी नायक और नायिकाएं परस्पर मान-अभिमान करती हुई दुखान्त घटनाओंकी सृष्टि करती रहती हैं । हमारे उच्चशिक्षाभिमानी महाशयोंको पर इस संक्रामक रोगने प्रबल वेगसे आक्रमण किया है, पर हमारे गांवोंके रहनेवाले गंवइयोंका मानाभिमान अभी भी उस अबोध बालकके समान है, जो लड्डू के न पाने पर रूठ जाता है, पर गुड़का छोटा-सा टुकड़ा पाने पर भी उसे लड्डू समझ कर ही अपना मान भंग कर देता है ।

"बेरी-बेरी बरजौं मैं पियवा पतरंगवा !
केसरिया जनू रोपि हैं रे कुछ बोरना !
सोलहो सिगार करी गेलौं कलुहड़िया,
केसरिया झांकी मारले रे कुलबोरना !
सास गेलय हटिया, ननंद गेलय बटिया,
(से) सूने घर अंटाइलयं रे कुलबोरना !
मोहानियां तोड़ा आइलय रे कुलबोरना !
दरूआक लालचों पिया हे पनियां पियवलें !
(से) मनवा मो मुआरलें रे मनमोहना !"

हो सकता है, ऊखकी खेतीकी अन्धाधुन्ध खटौनी (परिश्रम)की याद करके हमारी नायिका घबड़ा उठी हो । हो सकता है, इसीलिये उसने अपने पतिको बहुत पहले ही ऊखकी खेती करनेसे रोका हो, पर उस जिद्दीने बेचाराकी एक न सुनी और खेतमें गन्ने लगा ही दिये ।

बेचारी नायिका क्षुब्ध होकर पतिको खरा-खोटा सुना रही है, पर साथ ही उसकी सुन्दरता और रसिकतापर आखिर हंस भी देती है ।

"ओ छरहरे सलोने सैयां, मैंने तुम्हें बार-बार मना किया कि गन्नेकी खेती मत करो । पर तुमने मेरा कहना न माना । अब भुगतो इसका नतीजा !"

"सोलहो श्रृंगार करके मैं कलुहाड़ी (गन्ना पेरनेकी जगह) गयी (कलेवा देने) पर ओ कुलनाशक ! तुमने मुझे गन्नेका टुकड़ा खींचकर पीटा ।"

हो सकता है, धूपमें ऊख गोड़ते-गोड़ते उसका मन बौखला गया हो, उसपर भी कलेवा लेकर जानेमें देर हो गयी हो और इसीलिये पतिने उसे पीटा हो ।

"सासजी जब हाट चली गयीं और ननंदजी जब रास्ते में ही होंगी कि तुम मोहानी तोड़कर भीतर घुस आये । मुझे सूने घरमें अंटा पाये न इसीसे ।"

नायिकाने जब देखा कि ये महाशय खुद मनाने आये हैं, तो वह और भी जान-बूझकर मान कर बैठी । इसपर नायकने शराबके बहाने पानी पिलाकर उसे मना ही तो लिया । नायिकाने हंसकर अपना मान भंग कर दिया ।

"ओ मनमोहन साजन, तुमने शराबकी लालच दे, मुझे पानी पिलाकर मेरे मनको भुला लिया । (तुम बड़े छलिया हो !)"

हमारी देहाती औरतोंको शहरी धनी महिलाओंकी तरह थोड़ी दूर भी जानेके लिये दरवान या नौकर-नौकरानियोंकी जरूरत नहीं पड़ती । यों दिखानेके लिये फौजी वर्दी पहनकर कलकत्ता- बम्बई जैसे शहरोंके मैदानों और सड़कोंपर परेड करती हुई भले ही सैन्य-संचालनका अभिनय कर लें, पर थोड़ी-सी विपत्ति पड़नेपर ही वे सवाक् चित्रोंकी अभिनेत्रियोंकी कृतिम चीखको भी मातकर देती हैं । गांवकी औरतें सिर्फ अपनी ही नहीं, वक्त पड़नेपर अपने पतिकी रक्षा भी कर सकती हैं । कितनी पढ़ी-लिखी और सभ्य कहानेवाली ऐसी अर्द्धाङ्गिनियां हैं, जो पतिके बीमार पड़नेपर अथवा सब तरहसे लाचार हो जानेपर खुद कमर कसकर कमाती हैं और पतिकी विपत्तिमें साहाय्य करती हैं ? गांवोंमें इसके सैकड़ों उदाहरण आपको मिलेंगे । इसका एक उदाहरण लीजिये:—

"घारे पासे सिपहिया लाल फेंटा बांधे,
कोइरिनिया गे, कारे पेटा बाध हवलदार ।
दिन-दुपहार लागल कचहरिया कोइरिनियां गे !
पियवाक आयल है बोलाहट कोइरिनिया गे !
एके पियवा पातर, दोसरे सुकुमार कोइरिनिया गे !
कैसे रे सहते छूरियाक मार कोइरिनिया गे !
रजवा जे लड़तय ढालें—तरवारें कोइरिनियां गे !

हमहूं लेड़वय सागों—डांटें कोइरिनियां गे !
रजवा जे हे लय ढलें—तलवारें कोइरिनियां गे !
हमहूं जितेवय सागों—डांटें कोइरिनियां गे !
गरवाके हंसुलिया सेहो बनको धरबय कोइरिनियां गे !
तयो (रे) पियवा आनेबय छोड़ाय कोइरिनियां गे !

"काली पगड़ी बांधे हवलदारजीके अगल-बगल लाल पगड़िया बांधे सिपाही लोग भरी-दुपहरीमें लगे हुए राज-दरबारसे आ पहुंचे हैं। पतिकी बुलाहट आयी है।

अरी ओ कोइरिनियां, मेरे पति दुबले-पतले हैं; दूसरे, सुकुमार ठहरे। भला बता तो, वे छुरियोंकी मार कैसे सहेंगे !

(वे कमजोर ही ठहरे, तो क्या हुआ ? मैं जो हूं ! मैं आखिर किस दिनके लिये हूं ?)

राजा साहब ढाल-तलवारसे लड़ेंगे। मैं भी यथाशक्ति जिस चीजसे बन पड़ेगा, सो सागके डंठलसे ही क्यों न हो, लड़ूंगी।

राजा साहब ढाल-तलवारसे लड़कर भी मुझसे पार नहीं पायेंगे और देखना, मैं सागके डंठलसे ही जीत जाऊंगी।

गलेकी हंसली भी बन्धक रखनी पड़े, सो कबूल है ? पर तौभी, जैसे होगा, मैं उन्हें छुड़ा ही लाऊंगी।

यह साहस और धैर्यकी पराकाष्ठा नहीं तो क्या है ? वह सागके डंठलसे तो क्या लड़ेगी, हां, इससे उसके अदम्य उत्साहके साथ-साथ उसकी बेबसी भी मालूम होती है।

इन पंक्तियोंसे उनकी आभूषण—प्रियताकी अक्खड़ता भी झलकती है, जिन्हें वे जी-जानकी तरह संजो रखती हैं।

उपर्युक्त गीत विवाहादिके अवसरपर गाये जाते हैं। इन्हें 'झुमटा' कहते हैं। इन गीतोंको गाते समय युवतियां दो दलोंमें विभक्त हो जाती हैं और परस्पर हाथोंको पकड़ कर कतारोंमें हो जाती हैं। एक कतार प्रश्नकर्त्री बनती और दूसरी उत्तरदातृ। पहले प्रश्न कर्त्रियां बड़े हाव भाव के साथ नाचती हुई आती हैं और फिर उसी तरह अपनी जगह वापस आकर चुप खड़ी हो जाती हैं। इसके बाद उत्तरदातृयोंकी बारी आती है और वे भी अपना नृत्य-गीत उन्हीं लोगोंकी तरह अदा करती है। इस तरह एक-एक गीतकी आवृत्ति चौथाई घण्टेसे लेकर आध घण्टेतक होती रहती है।

इन गीतोंके अतिरिक्त छठपूजा, काली-पूजा, कर्मापर्व और अन्यान्य देवी देवताओंको पूजते समय भी विभिन्न प्रकारके गीत गाये जाते हैं। धान रोपते समय और चक्की चलाते समय भी कभी-कभी रसपूर्ण गीत गाये जाते हैं, जिनसे हमारे गांवोंके लोगोंके सुख-दुख, चाल-चलन, रीति-रिवाज और दैनिक गार्हस्थ्य जीवनका यत्किंचित आभास मिलता है।

हे चिर नवीन !

जागो हे चिर नवीन !

हो विनष्ट पुराचीन
जीर्ण शीर्ण कुशित दीन
जागें नव आशा के
दिशि-दिशि अंकुर नवीन,
हो पुराण-मन्दिरमें नव प्रतिमा समासीन !
जागो हे चिर नवीन !!

मिटे कुहासा मलीन,
तिमिर-जाल हो विदीर्ण
कण-कणमें अणु-अणुमें
हो नव आभा विकीर्ण
विश्व क्षितिज पर विहंसे नवयुग-ऊषा अक्षीण !
जागो हे चिर नवीन !!

हो मनोज्ञ नयी सृष्टि,
हो अबाध सौख्य-वृष्टि
जन-जनके उर-मन को
मिले भव्य-नव्य दृष्टि !
युग-युग तक भू-नभपर बजे तव पुनीत बीन !
जागो हे चिर नवीन !!

—जितेन्द्र कुमार

पत्र

श्रीमती चन्द्रप्रभा द्विवेदी

आकाशमें एकाध तारे झिलमिला रहे थे। इसके माने यह संध्या न थी, बल्कि पावसकी अंधेरी रजनी। जिसके अंतरिक्ष-अंतरालमें आशा-निराशा के पवन-मेघ द्वन्द्व मचा रहे थे जिससे कभी कोई तारिका द्योतित हो उठती थी। पोर्टिकोमें एकाकिनी लेटी हुई अणिमा यही देख रही थी। विश्व नीरव था, सब या मौन, तभी उसे वह चिर-परिचित गान सुनाई पड़ा जो प्रायः व्रतबन्ध या विवाह आदि ऐसे ही शुभ अवसरोंपर गाया जाता है। वह भी पुरानी प्रथ वालोंके यहां। जिसमें न कोई राग है, न लय और न ताल; बिलकुल शान्त बहती, किन्तु वेगवती सरिता की भांति जिसमें न कोई विराम है, न ध्वनि, वह यही था।—

कोयलरि जाती बिरनवां के देस,
तू कूकि सुनाती, नेवत कहिआती री।
कोयलरि भरि गये कुलमा हजार,
तो सूना मोहार, सबै अंधियारी है री।
कोयलरि एक नहिं आये बिरन मोरे,
जिनसे मैं रूठी, सबै सुख रीतीहूं री।

अणिमाको जान पड़ा जैसे सुदूर कहीं पर कोयल वेदना भरे स्वरसे कूक रही है और कोई युवक उसकी ओर अतृप्त-अपलक देख रहा है। पास ही मुस्कराती हुई एक युवती खड़ी है, वह युवकके मनोभावोंको लक्ष्य करती हुई कह रही है।

"क्या किसी बिछुड़ी हुई प्रेयसीकी याद सता रही है?"

वह शान्त, निश्चल खड़ा है आंखोंके जमे हुए जलके कुछ कण दृष्टिगोचर हो उठे। युवती फिर पूछती है, पूछती ही नहीं, धीरेसे झकझोर भी देती है, तब जैसे वह तन्द्रासे जागा हो और अटपटाते स्वरमें उत्तर दिया।

"मेरी बहनको गये, बहुत दिन हो गये हैं—मैंने कोई पत्र नहीं भेजा है, क्या हालत होगी उसकी।"

"ऊंह! तो जाओ, मना लाओ न! मुझसे रूठ कर गयी हैं।"

कोयल प्रसन्नतापूर्वक उड़ चली। सचमुच पोर्टिको की छतसे कोई चिड़िया पंख फड़फड़ाती निकल गयी। क्षणमात्र उठकर बैठ गयी।

रात्रि गहरी बीत रही थी, बच्चे प्रगाढ़ निद्रामें मग्न थे पति अपनी मित्र पार्टीमें उलझे थे। वह स्वतन्त्र थी, एक बार उसके जी में आया—जाकर उस गानेवाली को बुलाकर गलेसे लगा लूं, अपनी शिथिल कलाइयोंमें भर कर कहूं।

"मैं तुम्हारे वीरको एक पत्र लिख दूंगी। यह कोयलके सन्देश अब पुराने पड़ गये।"

वहीं पर उसका संस्कार भी जाग उठा—"वह निम्न जातिकी दीन अशिक्षित और असभ्य नारी। वह तो पावस ऋतु ही अपने सजल श्यामल मेघोंको, काली निठुरा कोयल को अपना वह दूत बनाकर लाती है जिससे अपने वियुक्त आत्मीयोंका वेदनामय आवाहन होता है, दिनके सूखे घाव हरे हो जाते हैं, विशेष रूपसे मुझ महिलाओंके। फिर भी क्या पुरुषोंके लिये कुछ नहीं लाती? लाती है और सभी कुछ लाती है, किन्तु यदि वह इसे स्वीकार करे तब।"

वह गाती ही जा रही थी। सारी प्रकृति निस्तब्ध होकर सुन रही थी। उसका आवाहन न केवल समयके अनुरूप था देश और काल सभीके लिये उपयुक्त था। अणिमाने चारों ओर दृष्टि डाली—"सबके सभी आते हैं और आयेंगे, किन्तु जिनके जो नहीं हैं उनके! उनके भी पास वेदना आयेगी, अपने शान्त नीरव चरणोंसे, और हृदय में हाहाकार मचाती, आकुल क्रन्दन-सी चीत्कार करती, उसके कोने-कोनेको चीरती-फाड़ती तन-मनमें व्याप्त हो जायगी। नारी जीवनमें दो ही तो आवाहन हैं—यदि एक प्रणयपूर्ण प्रियतमका तो दूसरा सौहार्दपूर्ण बन्धुका। क्योंकि उसके जीवनमें तो यही दोनों पहलू हैं, किन्तु विधाताने मेरे लिये इस महान् विश्वमें बंधुत्वकी कोई संकरी-सी भी वीथी नहीं बनाई है, जसमें गृहस्थीकी कोलाहलमयी नगरी से निकलकर कुछ क्षणोंको विराम पाती और अपने शैशवके उस चिर परिचित प्रदेशके दर्शन पाती, जिसकी गली-गली घर-घरमें मेरे कौतूहलने समाधान पाया है। पूज्य पिताकी उस अंगनाईमें एक बार फिर जाती, जिसके कोने-कोनेमें

अक्षय अनंत स्मृतियां भरी पड़ी हैं, फिर उनका आवाहन कैसा ! पुकार कैसी !! यही क्यों रक्षा बंधनका वह लोहित डोरा, क्या आंखोंमें लहू नहीं उतार लाता ? जबकि मुहल्लेकी वृद्धा, युवती और बालिकायें इठलाती हुई पत्रोंको, कलाइयोंको मनुहारभरे शब्दोंमें बांध-बांधकर गर्वभरी आंखों से एक दूसरेको देखा करती हैं उसी प्रकार भैयादूजका महा पर्व घर-घरमें खील-फूलसे प्रांगण सजाकर, बन्धुत्वका पावन पुलक सिन्धु उमड़ देता है बच्चे बूढ़ोंके कुंकुम-अक्षत चर्चित मस्तक गौरवसे तने दिखाई देते हैं, तब मेरे इस आनन्द-मय अंतरालमें—जो निस्तब्ध निशाके सुनील निर्मल नभमें पूर्ण मयंक-सा आलोकित रहता है, सहसा निविड़तम घनसे परिपूर्ण नहीं कर देता ! तो इसमें और किसीका क्या अधिकार है। इससे विश्वके पुरुष वंचित तो नहीं रह जाते और न मातायें पुत्रहीना, किन्तु ऐसी पुत्रवती कोई मां हो सकी हैं, जिसके सुपुत्र अपने बंधुत्वसे ऐसे रीते अन्तरको पूर्ण करनेमें सफल हुए हैं ? इसी पर तो श्रीरामने कहा है 'सौ बार धन्य वह एकलालकी माई।' पर यह बात तो त्रेता युगकी है फिर उसके लिये कैसी आशा ? कैसा ममत्व ? मेरी यह आकांक्षा यदि प्रकट हो गयी, तो कोई बहन - मेरी दृष्टि अपने भाई पर न पड़ने देगी, कहीं मेरी आहकी छाया न पड़ जाय, इस विचार से।"

अणिमा खिड़की पर जा खड़ी हो गयी। इन्द्रबेलेकी मोहक सुगंधि,ने शीतल समीरके मंद झोंकेमें आकर उसके मस्तिष्कको सुवासित कर दिया। सामने छप्परके नीचे किरासन तेलकी धुंधली रोशनीमें वह और उसका साथी बैठा सनकी डोरी बट रहा था। वह थोड़ी देरमें अंगड़ाई लेकर बोली।—

"मुझे कजली नहीं आती तो मैं यही गाती हूं, गाने को जी चाहे, तो न गाऊं क्या ?"

"हां, हां अवश्य गाया करो, किन्तु रोज-रोज वही राग अच्छा नहीं लगता।"

'तो कान बन्द कर लो ?।

उसने थोड़ी सी गीली मिट्टी उसके कान पर चुपड़ दी। दोनों खिलखिला उठे । फिर उसका साथी अपना कान साफ करता हुआ कुछ कहने ही जा रहा था कि बिजली चमक उठी। जिसके साथही दोनोंकी दृष्टि अणिमा पर पड़ गयी। दोनों सतर्क हो गये।

"देखो-बहूजी झांक रही हैं।" वह धीरेसे बुदबुदाया।

गायिका भी अपने आंचलको सिर पर डालती हुई शोखीसेबोली—

"तो क्या मैं कोई पाप कर रही हूं।"

फिर अणिमाकी ओर देखकर उसने मुस्करा दिया। अणिमा खिड़कीसे हटआयी। इसका परिचय अणिमासेऐसा हीरहा हो, यह बात नहीं है। उसके परिवारमें केवल यही दो व्यक्ति नहीं थे, और भी दो-तीन स्त्रियां, तीन चार पुरुष और दर्जनों बच्चे थे। यह तो इधर कई महीनोंसे दिखायी देने लगी थी। इसके घरकी अन्य स्त्रियां इतनी ढीठ नहीं हैं, जितनी कि यह है। इसके आनेके पहले एक स्त्री कभी-कभी आकर दो-चार घड़े पानी अणिमाके आंगनसे भर ले गयी थी। परन्तु जिस दिन यह आयी उसी दिन सिर पर नन्हासा घूंघट बना कर अणिमाके आंगनमें प्रवेश किया, नौकर बाहर गया था, अणिमा ऊपर बरामदेमें लेटी किसी उपन्यासमें उलझी थी, अचानक पति आ गये, अणिमा हड़बड़ा कर उठ बैठी । उन्होंने छूटते ही कहा।—

"कुछ घरका भी ध्यान रखती हो ?"

"क्या हुआ ?"

"हुआ क्या, जब तुमको कुछ होश ही नहीं है, तब चाहे जो हो।"

अणिमाने चारो ओर दृष्टि डाली-कोई चीज गायब तो नहीं है ! उसे कोई त्रुटि नहीं जान पड़ी। उन्होंने नीचे की ओर संकेत करते हुए कहा :—

"स्नान घाट बना हुआ है। न जाने कितने प्रकारके कीटाणु लाकर यहीं घोल रही है और आप निश्चिंत होकर पड़ रही हैं। मुझको यह गन्दगी कभी पसंद नहीं है, तुम्हींको प्यारी है।"

अणिमा झपट कर नीचे गयी; उसे देखते ही मुस्करा दी—"क्षमा कीजिये मेरे घरमें भी बम्बा लगा था, उसीमें नहानेकी मेरी आदत थी, इसीसे... ...।"

"अच्छा... ...।"

वह कपड़े उठा कर हंसती हुई बाहर चली गयी। अणिमा द्वार बन्द कर ऊपर आई। तबसे उसके घरमें किसीकी हिम्मत नहीं रह गयी कि जल लेनेकी बात सोचती।

उसने उसी दिनसे गाना आरम्भ कर दिया था और प्रायः रात्रिके इसी प्रहरमें गाती, जब दुनियां सोने लगती।

वैसे तो इसकी उस दिनकी बातसे अणिमाका उसके प्रति असंतोष ही प्रकट था किन्तु उसके गीतमें न जाने क्यों जो विरहकी अविच्छिन्न धारा प्रवाहित कर अणिमाके अन्तरालको मर्माहत करके छा लेता था, उसका कोई कारण न खोज पाने पर भी सहानुभूति सहित आत्मीयता जाग उठी थी और उसके विषयमें कुछ न कुछ सोचा अवश्य करती थी, शायद उसके स्वरमें अणिमाको जो अब तक न जाने कितने प्रकारके उचित-अनुचित भाव मिले थे इस परिणाम से। यद्यपि अणिमाको इतना भी नहीं ज्ञात हो सका कि वह किसकी पत्नी है और शहर या ग्रामकी लड़की।

आज जैसे ही अणिमा अपने कमरेमें आई, वैसे ही उसे सामने खड़ी पाया उसने सामनेवाले फर्शपर उसे बैठने का संकेत करते हुए पूछा।—

"क्या ?"

जैसे इतनी आत्मीयता और सहानुभूति होनेपर भी प्रत्यक्षमें ऐसे व्यवहार रखना अणिमाकी मानवताके प्रतिकूल था।

उसने आंखोंमें आशा भरकर कहा—"एक प्रार्थना है......।"

"क्या ?" मेरा एक पत्र......।" उसने सादा लिफाफा आगे बढ़ाते हुए कहा—

अणिमा अब इतनी तटस्थ नहीं रह सकी, सभ्यता को चीरकर मानवता फूट पड़ी—

'ओह ? भैयाको बुलायेगी ?"

"भैया को ?" उसने आश्चर्य से अणिमाकी ओर देखा।

'कितने दिन हुए, यहां आये ?"

तीन महीने...।"

"तो इतने ही दिनोंमें ऊब गयी ? हमको तो सालों हो गये यहां आये।"

"पर, आपके नौकर-चाकर हैं, किन्तु वहां मेरा घर तो बिगड़ता है, अब चाहे वह लायक हो या नालायक, घर तो उन्हींका हमारा होगा।"

"कहां रहते हैं वह ?

"कलकत्ते में।"

'यह सब कौन हैं ?"

"मेरी बड़ी बहन और उनका घर, बाल-बच्चे।"

अणिमाकी हंसी रुकी नहीं, वह उस वियोगिनीके पत्रकी ओर बिना कुछ विचार प्रकट किये ही खिलखिला रही थी और वह उसकी ओर निराश होकर भी बड़ी आशासे अपनी दीन आंखोंसे देख रही थी।

गीत

तुम बिन मेरा जीवन अधीर।

तुम थे, जीवन था मधुर गीत,
प्रति पल अरमानोंसे झंकृत,
तुम थे, जगमें थे सहस मीत,
तुम बिन, दुःखसे जीवन विकृत ॥१॥

तुम छोड़ गये दुःख ज्वालामें,
प्रतिपल घुल घुल कर जलनेको,
सुख-स्मृतियोंकी मधुशाला में
आकुल-अन्तरसे गलनेको ॥२॥

जब भाग्य लेखमें पतझर था,
नीरस, सूनापन था झर झर,
सुखमय जीवन था स्वप्नमात्र,
क्यों गया बसन्त सुख-सौरभ भी ! ॥३॥

ओ अमरपुरीके अमर जीव !
पूरा होवे बरदान सुखद,
दुःखसे बोझिल, युग-सा जीवन,
बीते स्मृतियोंमें मधुर समुद ॥४॥

शारदा वेदालंकार एम० ए०

जातिगत श्रेष्ठता झूठी बात है

श्री सन्तराम बी० ए०

जैसे हमारे देशमें सहस्त्रों वर्षसे द्विजकी उच्चता और शूद्रकी नीचताका झूठा विचार फैलाकर लोगोंको भोंदू बताया गया है, उसी प्रकार जर्मनीके नाजियोंने अपनेको श्रेष्ठ रक्तवाले आर्य और यहूदियोंको नीच शूद्र बताकर संसारको भोंदू बना रखा था। नाजी सत्ताके विकाससे संसारके उस सबसे बड़े झूठका पोल खुल गया। अधिक संभव यही है कि अब वह, 'शुद्ध आर्य रक्त' का अभिमानी कोई व्यक्ति कभी संभ्रान्त समाजमें मुंह न दिखा सकेगा।

ऊंचा, लंबा, गोर अतिमानुष नाजी कभी उस पदवी को प्राप्त न कर सकता जिसपर कि वह पहुंच गया था यदि हम सबमें अविद्या और पक्षपातके कारण अपनी जातिको अच्छा और दूसरोंकी जातिको घटिया समझनेका भाव न होता। जो विभिन्नता हम समझते हैं कि हम जातियोंके बीच देखते हैं—और जिसे हम बहुत बढ़ाकर देखते हैं—उसका अधिकतर कारण शिक्षा और सुयोगमें अन्तर है। 'श्रेष्ठ जाति या श्रेष्ठ वंश' नामकी कोई वस्तु नहीं, केवल श्रेष्ठ व्यक्ति हैं और वे सभी जातियोंमें पाये जाते हैं। ब्राह्मणों और अंग्रेजोंमें भी श्रेष्ठ व्यक्ति हैं और शूद्रों और निग्रो में भी हैं। अमेरिकन नृतत्वविद्याके जन्मदाता फ्रेंज बोआसने ठीक कहा है—'यदि हमें समूची मनुष्य जाति में से नम्बर वारपर सबसे अधिक समझदार, कल्पनापूर्ण, बलशाली और आवेगमें न बहजानेवाले व्यक्ति चुनने पड़े, तो उनमें सभी जातियोंके मनुष्य आ जायेंगे।'

चार्ल्स डार्विनने विकासवादके सम्बन्धमें पहले यह विचार किया था कि वह एक सीधी लकीर है जिसके पैंर पर एक बन्दर है और चोटीपर गौरांग मनुष्य। इसलिये एक झूठी बातका प्रचार हो गया है कि लोगोंका एक समूह ऐसा है जो देवोंमें कुछ ही नीचे है।

यदि आप उच्चतर एपोंमें से कुछ की परीक्षा करें, तो आप देखेंगे कि उनकी त्वचा हल्की गुलाबी है, पीली या गटियाली नहीं वरन् गौरांग मनुष्यकी त्वचासे अधिक मिलता है एप बन्दरके शरीरपर लम्बे बाल रहते हैं। गौरांग जातिके शरीरपर भी संसारमें सबसे अधिक बाल होते हैं। एपके होंठ पतले और नाककी बनावट पतली होती है। गोरी जातिके होंठ और नाककी बनावट जितनी पतली होती है उतनी संसारकी किसी भी दूसरी जातिके मनुष्यों की नहीं होता।

एपके कान छोटे होते हैं और गोरी जातिके समान छोटे कान संसारमें किसी भी जातिके लोगोंके नहीं।

इसलिये यदि उस काल्पनिक बातपर ही विश्वास करना हो तो हमें विश्वास करना होगा कि गौरांग मनुष्य ही बहुत-सी बातोंमें एपके अधिक सदृश हैं।

परन्तु आज वैज्ञानिक लोग यह नहीं कहते कि कि मनुष्य एपका वंशज है। वरन् वे कहते हैं कि एप और मनुष्य दोनोंका पूर्वज एक ही था। विज्ञान अब एप जैसी विशेषतायें न कहकर आदिम विशेषताएं कहता है। प्रत्येक मानव प्राणी यथार्थमें आदिम विशेष लक्षणोंका चलता-फिरता अद्भुतालय है क्या आप अपने कानोंको झुला सकते या अपने सिरकी बालों वाली चमड़ीको हिला सकते हैं? लाखों वर्ष पूर्वकी बात है, हम गायकी भांति कानोंको डुलाकर मक्खियां उड़ा सकते थे। तब हमें अपने उन पट्ठों को ऐंड़ लगाकर कानोंको हिलानेका प्रयोजन था। हमारे शरीरका अपेण्डिक्स और टान्सल पीढ़ियोंसे चली आनेवाली दूसरी ऐसी वस्तुएं हैं जो अपनी मौलिक उपयोगिता खो बैठे हैं, जो हमें इस समय कुछ भी काम नहीं देतीं। पर जो अपना मौलिक आकार बनाये रखे हुए हैं। मानव-भ्रूण यही कहानी बताता है। अपने तीसरे सप्ताहमें भी वह गिरगिट पक्षी, या दूसरे किसी स्तनपायी जन्तुके भ्रूणसे भिन्न नहीं होता।

मनुष्य प्राणियोंमें अभी तक भी विकासात्मक परिवर्तन हो रहा है। अब हम अपने पैरोंकी छोटी-छोटी उंगलियां खोते जा रहे हैं। भविष्यके मनुष्यके पैरोंमें चार-चार उंगलियां हुआ करेंगी। उसे पांच उंगलियोंवाले सन् १९४६ के मनुष्यको देखकर बड़ा कौतूहल होगा। हम थोड़ी-सी बातसे ही अपनेको श्रेष्ठ अनुभव करने लगते हैं।

निस्सन्देह जातियोंमें भेद है। त्वचाके रंग, आंखों की तिरछाई, नाकके आकार और दूसरे विशेष लक्षणोंकी दृष्टिसे संसारकी तीन बड़ी जातियां मङ्गोल या पीतवर्ण,

निग्रो या कृष्णवर्ण और काकेशस या गौरांग जाति एक दूसरेसे भिन्न हैं। भेद अवश्य है, पर हम उन्हें गलत रीतिसे देखते है। नर-कंकाल सब कहीं एक जैसा है। ये विशेष लक्षण उसपर ऊपरसे लादे गये हैं।

सभी महत्वपूर्ण शारीरिक लक्षणोंकी दृष्टिसे मनुष्य सब कहीं बिलकुल एक समान है। 'महत्वपूर्ण' का अर्थ है मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े और मज्जातंतु जाल। धर्म और विज्ञान आज दोनों इस बातपर सहमत हैं कि सब मनुष्य एक ही परिवारके हैं, उन सबका रक्त एक ही है। विज्ञान् धर्मकी इस बड़ी शिक्षाकी पुष्टि करता है कि सब मनुष्य भाई हैं।

यह एक सत्य है। इसपर भी, जातियोंके पृथक-पृथक होनेमें लोगोंका विश्वास बड़ा गहरा और विस्तृत है। उदाहरणार्थ, मस्तिष्कके डीलमें अन्तर है। एस्कीमोंके मस्तिष्क, शरीरके डीलके अनुपातकी दृष्टिसे औसतन सबसे बड़े होते हैं। जापानियोंका मस्तिष्क गौरांग जातिके मनुष्यसे औसतन बड़ा होता है। विज्ञानके पास जिस सबसे छोटे मस्तिष्कका रेकार्ड है वह एक बड़े प्रतिभाशाली इटालियन मनुष्य, दांटेका मस्तिष्क था। सबसे बड़े मस्तिष्क बहुधा जड़बुद्धि लोगोंमें देखे जाते हैं।

एक जातिका दूसरी जातिसे भेद करनेके लिये खाल की रंगतपर सबसे कम भरोसा किया जा सकता है। गौरांग जाति उन लोगोंके नामपर काकेशस कहलाती है जो काकेशस पर्वतमालामें रहते थे और जिनको विद्वान् लोग 'गौर' वंशका आदर्श समझते थे। परन्तु हम उन बालोंवाले आयन लोगोंके सम्बन्धमें क्या समझें, जिनमें से १६००० एक उत्तरी जापानी टापूमें संरक्षित हैं। वे गौरवंश के हैं। बहुत अनुन्नत दशामें होनेके कारण वे जापानियोंके लिये एक समस्या बने हुए हैं। उदाहरणार्थ, वे कभी नहीं नहाते, क्योंकि उनका विश्वास है कि वे स्वर्गमें जानेके लिये मैलका सेतु बना सकते हैं! आप कहेंगे, रक्तमें तो भेद है। कमसे कम उस भेदके आधारपर ही हम गर्व कर सकते हैं पर क्या सचमुच हम गर्व कर सकते हैं? रक्तके चार नमूने हैं—ए, बी, ए ब और ओ। ये चारोंके चारों संसार की सभी जातियोंमें पाये जाते हैं। इस दृष्टिसे उनमें कोई अन्तर नहीं।

पर जातिभेदकी काल्पनिक कथामें विश्वास रखने वाला कह देगा कि विभिन्न जातियोंके किये हुए बड़े-बड़े कार्योंमें बड़ा अन्तर है। आइये, तनिक इसकी भी जांच करें।

टी० टी० वाटरमानने इतिहासके प्रारम्भिक कालमें होनेवाले आविष्कारोंकी एक ललकारनेवाली सूची तैयार की है। उसके अनुसार तांबा, कांसा, गेहूँ, हल, लिपि, कांच, ईंटें मिस्त्रियोंने पहले पहल बनाई थीं। पहिये और तौलनेके बाट सुमेरियन लोगोंने निकाले थे। विधिबद्ध धर्मशास्त्र, रुपये-पैसेके सिक्के, तोरण बेबीलोनियावालोंका आविष्कार है।

असिरियन लोगोंने कपास, बैंक और डाक व्यवस्था निकाली थी। चाल्डियन लोगोंने ज्योतिष, सप्ताह, वृत्तके अंश निकाले, ईरानियोंने हमें एकेश्वरवाद, जूते और पायजामे दिये। अरबोंसे संसारको केलकुलस, बीज गणित, अरबी अंक, शून्य मिला, ग्रीकोंसे यूक्लिड-सम्बन्धी ज्यामिति और पेच मिला और चीनी मिट्टी, बन्दूकका बारूद, रेशम, चश्मा, मुद्रण यन्त्र, नाविकका दिग्निर्णय यन्त्र, कागजी सिक्का संसारने चीनियोंसे सीखा।

आधुनिक सभ्य एवं उन्नत जातियां अपनेको इतिहासमें सबसे बड़ी प्रयोजनानुकूल ढालनेवाली समझकर अभिमान कर सकती हैं। परन्तु उन्हें दूसरोंकी सिद्धियों पर भी आंखें बन्द न कर लेनी चाहिए। अनेक इतिहास शास्त्रियोंका विश्वास है कि सभ्यता 'नीग्रोदेश' से नील नदीके साथ-साथ नीचे उतरकर मिस्रमें आई है। घना, मेलस्टाइन और सोंघाई नामके तीन नीग्रो राज्यों ने मध्य-युगोंमें पहले ही एक ऐसी सभ्यताका विकास कर लिया था जो उस समय योरपमें पाई जानेवाली सभ्यताके तुल्य थी। हमें भूलना नहीं चाहिये कि आठ सौ वर्ष पहले टिम्बकटूमें एक विद्यालय था जो शेष जगतकी प्रमुख विद्यापीठोंके साथ उपाध्यायोंका विनिमय किया करता था। अहमद बाबा नामके नीग्रो विद्वानको जिस समय वधस्थल में ले जाया जा रहा था, वह शोक करता हुआ कहता था कि अब मैं उतनी पुस्तकोंका संग्रह न कर सकूंगा जितनी कि मेरे कई मित्रोंके पास हैं। उसके पुस्तकालयमें सोलह सौ पुस्तकें थीं। जिस अफ्रीकाको 'अज्ञानान्धकार में डूबा हुआ' कहा जाता है वहां उस समय इस प्रकारका

"एसेज इन एन्थरोपालोजी" युनिवर्सिटी आफ केलेकोर्निया प्रस १९३६।

बौद्धिक कार्य हो रहा था जबकि योरपकी गोरी जातिके पूर्वज वनोंमें पत्थरकी वेदियोंके सामने पूजा किया करते थे।

पत्थरकी वेदियोंकी बात गप्प नहीं। ऐतिहासिकों का विश्वास है कि कच्ची धातुको गलाकर लोहा निकालनेकी कला नीग्रो लोगोंने ही मालूम की थी और लोहेके उद्योगके विकासमें संसारकी दूसरी सब जातियोंसे अधिक भाग लिया था। सबसे पहले उनके पास ही लोहेके औजार थे, इसलिये लकड़ीकी खुदाईकी कलामें वे बहुत निपुण थे। उस कालखण्डके उनके धर्म-मन्दिर दूसरी जातियोंकी अपेक्षा बहुत उच्च संस्कृतिकी कारीगरीके नमूने हैं।

इतिहासके एक कालमें एक जाति 'श्रेष्ठ' प्रतीत होती है, क्योंकि जिसे हम सभ्यता कहते हैं उसमें वह उस समय अगुआ होती है। किसी दूसरे कालखण्डमें कोई दूसरी जाति अगुआ होती है। केवल अशिक्षित लोग ही इन दशाओंको ईश्वर-प्रदत्त श्रेष्ठताका प्रमाण समझते हैं।

राल्फ लिण्टन एक "सौ प्रति सैकड़ा अमेरिकन" के दिनका सारांश इस प्रकार देता है। उषाकालमें वह पायजामा पहने होता है। यह पायजामा ईस्ट इण्डियन चीज है। वह क्लाकपर दृष्टि डालता है, जो कि मध्यकालीन योरपका आविष्कार है और स्नानागारमें जाता है, जिसकी चीनी मिट्टी चीनका आविष्कार है, दांतोंका ब्रश १८ वीं शताब्दीके योरप की, साबुन प्राचीन गौलकी, शृङ्गार रोपनकी और उत्तरी भारतके लोहे और कार्बनकी खोटकी चीज है।

उसका जलपान दूसरे युगों और दूसरी जातियों द्वारा विकसित वस्तुएं उसके सम्मुख लाता है—कांटा (मध्यकालीन इटालियन आविष्कार), काफी (अरबों द्वारा मालूम किया हुआ एक अबीसीनियाका पेड़), शक्कर (भारतमें आविष्कृत), वाफल (स्कण्डिनेवियन), मक्खन (मूलतः एक पूर्वी अंगलेप), सुअरका मांस (दक्षिण-पूर्वी एशियामें जंगलसे पकड़कर पाले हुए सुअर और उत्तर योरपकी क्रिया द्वारा सुवासित किया हुआ)।

इस प्रकार वह सबके अन्तमें ट्रेन (अंगरेजोंका आविष्कार) को लेता है, और फिर धूम्र [सिग्रेट, मेक्सिकन घराना] में आ बैठता है और अपना प्रबन्ध [प्राचीन सेमाईट लोगों द्वारा आविष्कृत लिपिमें, चीनमें आविष्कृत उपादानपर जर्मनीमें आविष्कृत क्रिया द्वारा मुद्रित] पढ़ता है। बहुत संभव यह है कि जब वह दिनके समाचारोंकी सूक्ष्म परीक्षा करता है, वह ईश्वर (एक इब्रानी देवता) का एक इण्डो योरपियन भाषामें धन्यवाद करता है कि वह एक प्रति सैकड़ा [ग्रीकों द्वारा आविष्कृत दशमलव पद्धति] अमेरिकन [इटालियन भूगोल शास्त्री अमेरिगो वेसपुस्सीके नामपर रखे हुये नाम] है।

आज यह हमारा अत्यावश्यक उत्तरदायित्व है कि हम संसारकी विविध जातियों और राष्ट्रोंके किये हुए बड़े कामोंकी सच्चाई और उदारताके साथ मूल्य निर्धारण करें। बीस बरस लोग उस भूमण्डलपर इकट्ठे रह सकते हैं जो सहसा छोटा हो जाता है यदि हम अपने मानवी सम्बन्धोंके ज्ञानको अपने भौतिक विज्ञान के ज्ञान तक ले आयें। अपनेको झूट-मूट ही किसी दूसरी जातिसे श्रेष्ठ समझ लेनेमें नहीं वरन् जगत्की दूसरी सब जातियों का मित्रोचित ज्ञान प्राप्त करनेमें ही हमें अभिमान करना चाहिए।



विक्षोभ

श्री भगवन्त शरण जौहरी एम० ए०

रात भरकी गहरी अनिद्रा और उससे उत्पन्न शैथिल्यको झटकारती हुई सुशीला उठ बैठी और खिड़की के जंगलेको पकड़कर खड़ी रह गयी। प्रभातवायुके स्पर्श से उसकी लुचलुची साड़ीका आंचल लहराने लगा। दूसरे क्षण ही देखा डाकिया सामने खड़ा था। हाथ बढ़ाकर पत्र लिया कि शोक और शंकासे किंचित विवर्ण हो उठी। अरे ये तो सुधीरके ही अक्षर हैं। फिर कमरेमें पहुंच, चिटकनी लगा, पढ़ने लगी: —

श्रीमती सुशीलादेवी !

जीवनमें, आपको अपना समझनेकी अन्तिम भूल जो कर बैठा था उसका संशोधन करता हूं। आप मुझे नीच एवं विश्वासके अयोग्य कहकर संतोष पा सकती हैं परन्तु मुझे भी इतना कहनेका अधिकार अवश्य दीजिये कि जीवनमें मुझ जैसे व्यक्तिको दया प्रायः सभी दिखलाते हैं पर अपनानेकी क्षमता और त्याग किसीमें नहीं। मेरी सांसें इतनी अकिंचन क्यों बने जिन्हें अनुकम्पाके चार टुकड़े खरीद सकें। इसमें दोष हम किसीका नहीं, उत्तर-दायी है वर्ग-विभिन्नता। आप सम्पन्न व्यक्तियोंसे घिरी हैं और मैं अनाथ व्यक्तित्व जो समेटे हूं। आप लोगोंका हर अवगुण विशिष्टताका सूचक है, जबकि मेरी सर्वोच्च महानता भी है एक छिद्र, अपमान और अभिशाप। फिर भी ईश्वरको धन्यवाद है कि आपसे सब कुछ पाकर भी मैं अपना निजी मूल्य नहीं भूला हूं।

इतना और कि मुझे सबसे घृणा है, केवल घृणा और आज आप भी इसका अपवाद नहीं। दुनिया और उसका प्रेम बहुत महत्वपूर्ण हों पर मैं किसीके योग्य नहीं हूं। इसे अन्तिम पत्र समझिये। अब जितने दिन जीवित भी रहा वहसमय विनाशकी तैयारी हीमें खर्च होगा—सुधीर।

सुशीलाने पत्र फिर-फिर पढ़ा और सन्न रह गयी। जिस वज्रपातकी आशंकासे वह निरन्तर त्रस्त रहती थी वह सहसा उसपर आ पड़ा। आज उसने पहिली बार अनुभव किया। संसारमें सब कुछको थामे रहनेकी क्षमता एक विडम्बना मात्र है। एकके नामपर दूसरा खो ही जाता है। इस क्षण तक जो उसके जीवनका सबसे बड़ा सहारा था उसे मानों कोई छाती चीरकर छीन ले गया और वह कुछ न कर सकी। होश संभालनेके दिनसे आज तककी सुधीरके साहचर्यकी घटनायें उसकी पुतलियोंमें कौंध उठीं। जो स्वप्न, समयकी धूलसे धुंधले और इतस्ततः हो गये थे। वे एक एक शूलसे उभर उसे कसकने लगे।

पत्र रखकर कमरा उसने खोल दिया और देखा स्वामी जाग गये हैं और शौचसे निवृत हो गरम पानीकी राह देख रहे हैं।

सकपकाती हुई उसने तत्काल स्टोव्ह जलाया और पानी लाये-लाये कि उन्होंने ठंडे जलसे मुंह हाथ धो लिया।

सौभाग्य यह कि वह इतवारका दिन था वे सैर-सपाटेको बाहर चल दिये। कहते गये कि दो मित्रोंका भी खाना बनाना है।

उनके जाते ही वह कुछ आश्वस्त हो बैठी। पत्र फिर निकाला और फिर पढ़ा, कई बार पढ़ा और फफक-फफककर रोने लगी। कहीं यह पत्र उनके हाथमें पड़ जाता तो। सुधीर की कैसी हिम्मत हुई यों सीधा पत्र भेजने की पर अब उसे कौन कुछ लिखता है जो वह डरे। आज निर्विवाद रूपसे वह सुधीरको सदाके लिये खो बैठी। किसी प्रकार अब नहीं पा सकती उसे, पाना भले ही सहज हो किसीको पर उसे सुरक्षित रखना तो एकदम कठिन है। उसने उसे संभाल रखनेमें क्या नहीं किया पर सब व्यर्थ।

फिर वह सोचती है सुधीर मेरा है कौन ! किसीको अपना मान लेना ही अपनत्वके हेतु पर्याप्त है क्या ! मैंने उसके लिये आज तक क्या किया ? हवाके वेगको मुट्ठीमें में बांधकर किसने रक्खा है। यों मेरे पास क्या नहीं है पर लगता है यह सब बोझ है। जीवन भरकी खोजके बाद जिसे अपना बना पाया था वही छिन गया। जो कुछ संसारने मुझे दिया है उसी स्वयंको सुखी बनाना सीखना चाहिए और मैं सीखनेकी कलामें निपुण तो हो गयी पर इतनी उद्दीन भी हो गई कि सब कुछ खो जानेके बाद :मुझे उसका ज्ञान हुआ पर अब तो बहुत ही देर हो गयी है न

फिर भी एक हूक रह-रहकर चीख उठती है कि यदि सुधीर के साथ पल-पल रह पाती तो...! और आंसूसे भींग गये उसके गाल और लगी फिर सोचने वह कि इस क्षण मुझे यह सब सोचनेका अधिकार ही क्या रहा है।

चूल्हा जला सबसे पहिले उसने उस पत्रको राख बना दिया। हलुआ, पूरी, शाक व दहीबड़े बनाये और पापड़ तल ही रही थी कि स्वामी तथा मित्रगण आ पहुंचे। खाना-पीना, पान-सिगरेट व ताश कैरमकी चहल-पहल रही।

शाम होते न होते स्वामी अन्दर आये, बोले 'आज शो में चलना है। वह नारंगी जार्जेटवाली साड़ी बदल डालो, जरा और देखो नेक्लेस और ईअररिंग्ज भी न भूलना और एक बार झकझोरकर वह गये, वह गये।

सुशीलाका रोम-रोम कराह उठा। पायल मृगी-सी बिस्तरेपर जा पड़ी। तकिएमें मुंह छिपा जी भर कर रोई। आध घण्टेसे ऊपर हो गया पर उसकी सिसकियां बढ़ती ही गयीं। इतने में पतिके आनेकी आहट पा एकदम चादर ओढ़ ली और दूसरे मिनिट अल्मारीसे साड़ी निकालने लगी, मधुर मुसकान लिये।

सिनेमाकी प्रेम कहानीमें जहां माधुर्य और उद्रेक का सीन आता स्वामी हाथ हिला बैठते और जाने कैसी चेष्टासे मत्त हो उठते और सुशीलाको भी उस अनुरागका प्रत्युत्तर ज्यों त्यों देना ही पड़ता।

खेल खतम होनेपर बोटिंगका प्रोग्राम रहा। स्वामी को प्रसन्न करनेके लिये सुशीलाको दो गीत भी नावपर सुनाना पड़े। 'वे बोले तुम ऐसी उदास क्यों रहती हो सुशी!' खिलखिला कर हंसती हुई बोली "यह भी खूब रही। कोई न बोले तो वह उदास हो गया। अब मैं खूब बोला करुंगा, तुम्हें हर तरहसे प्रसन्न बनाऊंगी पर कुछ देर मैं चुप भी रहूं तो तुम्हें शंका न करनी चाहिये। उस समय तो मैं यह सोचती हूं कि तुम्हें किस प्रकार कितना सुखी बना सकती हूं और पांवों पर झुकती हुई बोली 'तुम्हारे सिवा मेरा है कौन?'

घर पहुंचते ही स्वामीने हाथ पकड़ सामने बिठा लिया और एक बाजी कैरमकी जमी। वह उठीकी झपटकर फिर हाथ पकड़कर बोले—आज तुम बहुत ही सुन्दर लग रही हो। इतना मेरा मन कभी नहीं रीझा। आज तुम यह साड़ी जेवर नहीं बदल सकती।

दूसरे दिन सुबह उसी समय उसे एक और पत्र मिला। लिखा था—

सुधीर न रहा

और वह धड़ामसे गिर पड़ी।

गीत

मुझे अमर आधार तुम्हारा!
अतुल अंध सम्मोह विभा-वट
तम-तटिनी ठहराती!
दूर-दूर से भयद वीचियाँ
आ-आ कर टकरातीं!
झिलमिल मुस्काता दृग-जल-पथ सुन्दर एक सितारा!
श्याम कुहुकिनी ने अन्तर-पट
दीप अनेक जलाये!
प्रलय-अम्बुभृत की आंधी ने
उनको सभी डुबाये!
महाकालके महानाशको लघु जुगुनू ने ललकारा!

फूल एक से एक सुभगतर!
फूले नहीं समाते!
उन्हें चूमने को बुलबुल वे
अपने अधर बढ़ाते!
मैं उन्मुक्त रूप-निधि-तट, पर फूल बने क्यों कारा!
उसी दीप की दिव्य-शिखा ने
ली अभिनव अंगड़ाई!
प्रस्तेजित जगके कण-कणाओं
ज्वाला नई जगाई!
आज उमड़ती उसी हृदयसे स्नेह स्निग्ध शुचि धारा

'शलभ'

———

विधान परिषदमें दल-शक्ति

श्री दीनानाथ व्यास

विधान परिषद्के चुनाव में कांग्रेस का प्रमुख महत्व स्थापित हुआ। विधान निर्मात्रीके ३८९ सदस्योंमेंसे कांग्रेसको २०५ सीटें प्राप्त हुईं। २९६ सीटोंका चुनाव समस्त प्रान्तोंमें जुलाई १९४६ में समाप्त हो गया। ९३ सीटें, रियासतोंके लिये अलग ही नियत हैं जिनका चुनाव बादको होगा।



डा० राजेन्द्र प्रसाद

अंग्रेजी भारतमें दलोंके चुनावकी स्थिति निम्न रही-

कांग्रेस—२०५ सीटें

मुस्लिम लीग—७३ सीटें

स्वतन्त्र (साधारण)—११ सीटें

स्वतन्त्र मुसलमान—— ३ सीटें

सिख————————४ सीटें

कुल जोड़—————२९६ सीटें

२१० साधारण या आम सीटोंमेंसे कांग्रेसकी १९९ सीटोंपर विजय हुई। कांग्रेस स्वतन्त्र ११ सीटोंको प्राप्त नहीं कर सकी। दिल्ली, अजमेर, मेरवाड़ा, कुर्ग और बलूचिस्तानकी ४ सुरक्षित सीटोंमेंसे कांग्रेसने ३ सीटें हासिल कीं। दिल्ली और अजमेर मेरवाड़ाका प्रतिनिधित्व वही सदस्य करेंगे जो उक्त प्रान्तोंसे केन्द्रीय असेम्बलीमें निर्वाचित हुए हैं।

मुसलमानोंके लिये ७८ सीटें सुरक्षित थीं। इनमेंसे ३ सीटोंपर कांग्रेसकी विजय हुई। मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, अब्दुल गफ्फार खां और रफी अहमद किदवई इन तीनों सीटोंपर चुने गये। स्वतन्त्र मुसलमानोंकी ३ सीटोंमेंसे २ स्वतन्त्र मुसलमान, फजलुल हक (बंगाल) और सर मुजफ्फर अली खां काजिल बाश [पंजाबके सम्मिलित दलके सदस्य] चुनावमें जीते। शेष ७३ सीटोंपर मुस्लिम लीगने विजय प्राप्त की।

कम्यूनिस्ट पार्टीकी ओरसे बङ्गालमें सिर्फ एक सदस्य सोमनाथ लाहिड़ीका निर्वाचन हुआ।

विधान निर्मात्री परिषद्के "बी" गुटमें लीगका अत्यन्त बहुमत है। "सी" गुटमें भी काम चलाऊ बहुमत है ही किन्तु 'ए" गुटमें १६४ कांग्रेसी, १९ लीगी व ७ स्वतन्त्र सदस्य हैं। "सी" गुटमें ३५ लीगी और ३२ कांग्रेसी सदस्य है। 'सी" गुटमें डाक्टर अम्बेदकर, फजलुलहक और सोमनाथ लाहिड़ी—ये तीन स्वतन्त्र सदस्थ हैं। इन्हीं तीनों सदस्योंके बलोंपर ही 'सी" गुटका भविष्य अवलम्बित है। चुनावके कुछ समय बाद ही फजलुल हकने मुस्लिम लीगको अपना लिया।

कहनेका तात्पर्य यह है कि देशकी दोनों प्रमुख संस्थाओं कांग्रेस व लीग-के चोटीके नेता विधान निर्मात्रीप रिषद्में विद्यमान हैं। इनके सिवाय देशके कुछ चोटीके विधान शास्त्री व वकील भी परिषद्में मौजूद हैं। देशका विधान देशके सर्वोत्तम महान व्यक्तियों द्वारा ही निर्मित हो, इस उद्देश्यको मद्देनजर रखकर कांग्रेसने अपने दलके बाहरके प्रमुख व्यक्तियोंको भी चुनावमें लिया है।

महात्मा गांधी यद्यपि चुनावसे अलग रहे फिर भी विधान निर्मात्री परिषद्को उनका मूल्यवान परामर्श हमेशा ही उपलब्ध होता रहेगा। सरतेजबहादुरसप्रूको जिनकेचुनाव के लिये कांग्रेस बहुत ही उत्सुक रही, उनकी अस्वस्थता

एवं वृद्धावस्थाके कारण छोड़ देना पड़ा। इसी प्रकार जयकरके इंग्लैण्डमें होनेके कारण उनका भी सदस्यपत्र दाखिल किया जा सका। किन्तु बादमें उनके लिये एक स्थान सुरक्षित कर दिया गया।

"ए" गुट

	कांग्रेस	साधारण	मुस्लिमलीग	स्वतन्त्र मुसलमान
संयुक्त प्रान्त—	४९	३	७	०
मध्य प्रान्त—	१६	१	०	०
मद्रास——	४९	४	०	०
बम्बई ——	१९	२	०	०
बिहार——	२८	३	५	०
उड़ीसा——	८	१	०	०
दिल्ली——	१	०	०	०
कुर्ग——	१	०	०	०
अजमेर मेरवाड़ा	१	०	०	०
जोड़	१६४	७	१९	०

"बी" गुट

	कांग्रेस	आम	मुस्लिमलीग	स्वतंत्र मुसलमान	सिख
पंजाब——	६	२	१९	१	४
सिंध——	१	०	३	०	०
सीमांत प्रदेश-	२	०	१	०	०
बलूचिस्तान--	०	०	०	१	०
जोड़	९	२	१९	२	४

"सी" गुट

	कांग्रेस	आम	मुस्लिम लीग	स्वतन्त्र मुसलमान
बंगाल——	२५	२	३२	१
आसाम——	७	०	३	०
जोड़	३२	२	३५	१

नीचे तीनों गुटोंके समस्त सदस्योंके नामोंकी पूरी सूची दी जा रही है—

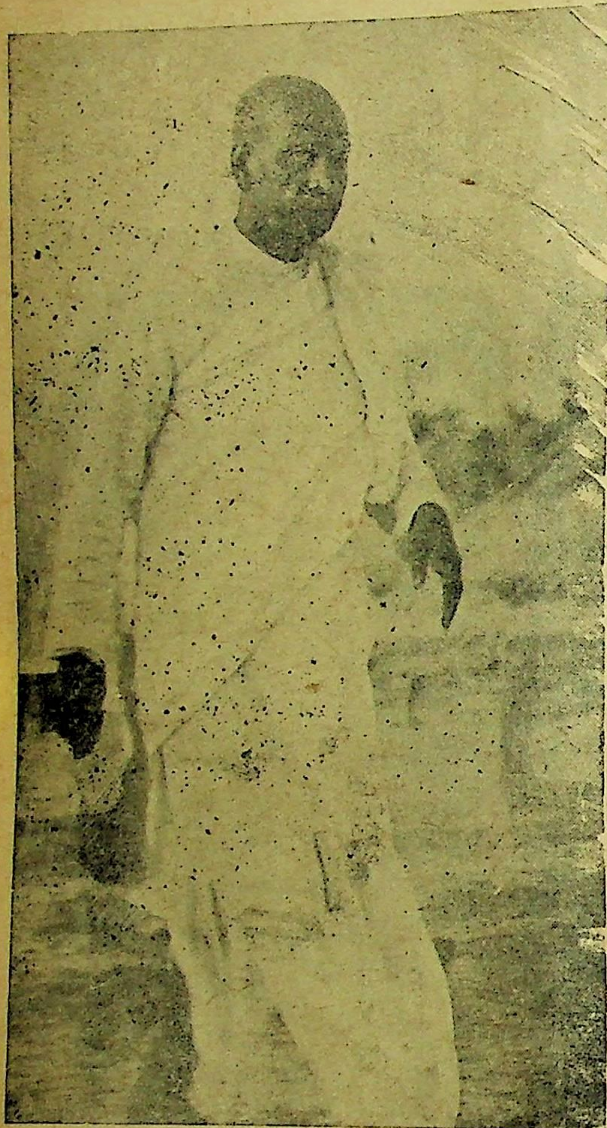
"ए" गुट

संयुक्त प्रान्त—कांग्रेस

१ पंडित जवाहरलाल नेहरू, २ श्री पुरुषोत्तमदास-टण्डन, ३ पण्डित गोविन्दवल्लभ पंत, ४ सर० एस० राधाकृष्णन्, ५ आचार्य जे०बी० कृपलानी, ६ पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, ७ सरदार जोगेन्द्र सिंह, ८ श्री ए० धर्मदास ९ श्रीमती सुचेता कृपलानी, १० श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित, ११ श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी, १२ श्रीमती कमला चौधरी, १३ श्री दयालदास भगत, १४ श्री धर्मप्रकाश, १५ श्री मसूरियादीन, १६ श्री सुन्दरलाल, १७ श्री भगवानदीन, १८ श्री प्रागीलाल, १९ श्री दामोदरस्वरूप सेठ २० श्री गोविन्द मालवीय, २१ श्री श्री प्रकाश, २२ श्री बालकृष्ण



पं० जवाहरलाल नेहरू



सरदार वल्लभ भाई पटेल

शर्मा, २३ श्री मोहन लाल सक्सेना, २४ श्रीरामचन्द्र गुप्त, २५ श्री महेश्वरदयाल सेठ, २६ श्री हरगोविन्द पंत, २७ आचार्य युगल किशोर, २८ श्री हरिहरनाथ शास्त्री, २९ श्री शिब्बनलाल सक्सेना, ३० डाक्टर कैलाशनाथ काटजू, ३१ श्री अजीत प्रसाद जैन, ३२ श्री विश्वम्भरदयाल त्रिपाठी ३३ श्री फिरोज गांधी, ३४ श्री कमलापति तिवारी, ३५ श्री आर.वी. धुलेकर, ३६ श्री अलगूराम शास्त्री, ३७ श्री फूलसिंह, ३८ श्री व्यंकटेश नारायण तिवारी, ३९ श्री गोपीनाथ श्री वास्तव, ४० श्री गोपाल नारायण सक्सेना, ४१ श्री वंशीधर मिश्र, ४२ पंडित हृदयनारायण कुंजरू, ४३ श्री खुरशीद लाल, ४४ श्री जलपतराय कपूर।

स्वतन्त्र (साधारण)

१ राजा जगन्नाथ वक्षसिंह, २ सर ज्वाला प्रसाद श्री वास्तव, ३ श्री पदपत सिंहानिया।

कांग्रेस (मुसलमान)

१ श्री रफीअहमद किदवई,

मुस्लिमलीग—

१ चौधरी खलीकुज्जमा, २ नवाब महम्मद इस्माइल ३ महाराज कुमार अमीर हैदर खां, ४ वेगम ऐजाज रसूल ५ एस० एम० रिजवानुल्लाह, ६ अजीज एहमद खां, मौलाना हसरत मोहानी।

मध्यप्रान्त और बरार

कांग्रेस -१ पण्डित रविशंकर शुक्ल, २ सेठगोविन्दास, सर हरीसिंह गौड़, ४ श्री छेदीलाल, ५, श्री बी० आर० मण्डलोई, ६ श्री कलप्पा, ७ श्री अगमदास, ८ राजकुमारी अमृतकौर, ९ श्री वृजलाल बियाणी, १० श्री पंजाब राव देशमुख, ११ श्री भाटकर, १२ श्री गिबन, १४ श्री एच०के० खाण्डेकर, १५ श्री दादा धर्माधिकारी, १६ एच०बी० काम १७ श्री आर०के० सिधवा।

मुस्लिमलीग

१ श्री के० काजी०

मद्रास प्रान्त

कांग्रेस—१ श्री राजगोपालाचार्य, २ डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया, ३ श्री के. सन्तानम् ४ श्री. बी. शिवराव ५ सर. एन. गोपाल स्वामी एयन्गार, ६ सर अलादि कृष्णा स्वामी.ऐयर, ७ श्रीमती अम्मू स्वामी नाथन्, ८ श्री राम स्वामी रेडियर, ९ श्री. ओ वी. अलगेसन, १० श्री. टी. टी. कृष्णामाचारी, ११ श्री रामनाथ गोयनका, १२ डाक्टर सुब्रामनयाम्, १३ श्री टी. ए. रामलिंगम् चेटियर, १४ श्री के. कामराज नादर, १५ श्री. एन. सी. वीरबाहु पिल्लई, १६ श्री. सी० पेरुमल सामी रेडियर, १७ डाक्टर पी. सुब्रायन १८ श्री एल. कृष्णा स्वामी भारती, १९ श्री सी. सुब्रामनियम, २० श्री नादिमूथू पिल्लई, २१ श्री टी. प्रकाशम्, २२ श्री. एच. सीताराम रेड्डी; २३ श्री एन. संजीवी रेड्डी, २४ श्री बी. गोपाल रेड्डी, २५ श्री के. चन्द्रमौलि, २६ श्री काला वैंकटराव, २७ श्री पी. एल. एन. रजूल, २८ श्री एन. जी. रंगा, २९ श्री अनन्त शयनम् एयन्गार, ३० श्री माधव मेनन ३१ श्री ए. विल्सन, ३२ पादरी जेरोम डी० सौजा, ३३

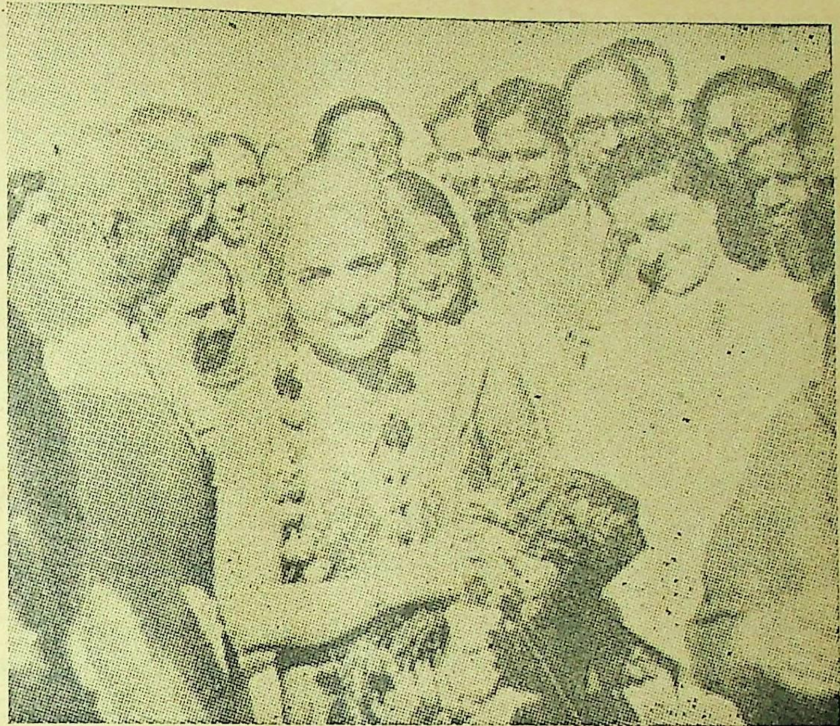
श्रीमती दुर्गाबाई, ३४ श्री प्रेटर, ३५ श्री व्ही. आच. मनी स्वामी पिल्लई, ३६ श्री पी. एम. वेलमुधा-पानी, ३७ श्रीमती डाकशयनी वेला युधन, ३८ श्री व्ही. गोविन्दास, ३९ श्री बी. स केशवराव ४० श्री एस. नागप्पा, ४१ श्री ककुण ४२ कुमार राज सर एम. ए. मुथई चेटियर ४३ राजा गोविन्डी, ४४ श्री कुन्ही रमण ।

मुस्लिमलीग

१ श्री अब्दुल सत्तार २हाजी इसहाक सैयद, ३ एहमद इब्राहीम ४ ए. महबूब अली बेग, श्री बी. पोकर ।

उड़ीसा

कांग्रेस—सर्वश्री हरेकृष्ण मेहताव, सनत कुमारदास, श्रीमती मालती चौधरी, राजकृष्णबोस, भूदानन्द दास विश्वनाथ दास, नन्दकिशोर दास, बोधिराव दुवे ।



अमेरिकासे आनेपर दिल्ली हवाई अड्डे पर श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडि का स्वागत

स्वतन्त्र (साधारण)

श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र ।

बम्बई प्रान्त

कांग्रेस—सर्व श्री सरदार बल्लभ भाई पटेल, शंकरराव देव, बी.जी. खेर, कन्हैयालाल मुंशी, कन्हैयालाल देसाई, आर.आर. दिवाकर, डाक्टर अलवनडी सौजा, एन.बी. गाड़गिल, बी. एम. गुप्ते, के. एम. जादे, एस एन० माने, श्रीमती हंसा मेहता, जी०एम० इलावाड़े, एस०जिदिनि-मगप्पे, ऐम०के. पाटिल, एम० आर० मसानी, एच०बी० पाटासकर १८ खुण्डूभाई देसाई, एम०आर० जयकर ।

मुस्लिमलीग

सर्व श्री आय. आय. इन्द्रीगर, अब्दुल कादिर शेख ।

बिहार प्रान्त

कांग्रेस—सर्वश्री भगवत प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह, डाक्टर रघुनन्दन प्रसाद, जगजीवन राम, फूलन प्रसाद वर्मा महेश प्रसाद सिन्हा, शार्ङ्गधर सिंह, रामेश्वर प्रसाद सिन्हा देवेन्द्रनाथ सामन्त, रघुवंश सहाय, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, अमियकुमार घोष, सत्य नारायण सिन्हा, कमलेश्वरी प्रसा यादव, दीपनारायण सिन्हा, रामनारायण सिंह, गुप्तनाथ सिन्हा, जगत नारायण लाल, श्रीकृष्ण सिन्हा, बोनीफेसला-करा, ब्रह्मेश्वर प्रसाद, चन्द्रिकाराम, राजबहादुर श्रीना-रायण मेहता, देशबन्धु गुप्त, बनारसी प्रसाद, झुझंनूवाला, डाक्टर पी.के. सेन, श्रीमती सरोजनी नायडू, डाक्टर सचि-दानन्द सिन्हा, महाराजाधिराज दरभंगा, श्यामनन्दन सहाय, अयपाल सिंह ।

मुस्लिमलीग

सर्वश्री हुसैनइमाम, लतीफुर्रहमान, ताजाम्मुल हुसैन ।

सैयदजाफर इमाम —श्री मुहम्मद तहीर

संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र—अजमेर मेरवाड़ा

कांग्रेस—१—श्री मुकुट बिहारीलाल भार्गव

दिल्ली

कांग्रेस—१—श्री आसफ अली.

कुर्ग

कांग्रेस—श्री सी० एम० पुनाच्छा

"बी" गुट

पंजाब प्रान्त

कांग्रेस—१—डाक्टर गोपीचन्द भार्गव, २— पण्डित

श्री राम शर्मा ३—श्री सर टेकचन्द ४-सरदार पृथ्वी सिंह आजाद ५—श्री दीवान चिमनलाल ६—श्री मेहर चन्द खन्ना

स्वतन्त्र (साधारण)

१—श्री सूरजमल २ - श्री हरभजराम

मुस्लिम लीग १—श्री मुहम्मद अली जिन्ना २—सरदार अब्दुर्रब निश्तर ३-नवाब ममदोत ४ श्री महम्मद मुमताज दौलताना ५—सर फीरोज खां नून ६—राजा गजनफर अली खां ७—प्रोफेसर अबूबक्र अहमद हलीम, ८—श्री महम्मद इफ्तीखारुद्दीन ९—श्री महम्मद हसन, १०—श्री शेख करामत अली ११—बेगम शाहनवाज १२—श्री गुलाम भीक नैरंग १३— श्री नजीर अहमद खां १४— डाक्टर मलिक उमरहयात १५—श्री अहमद अली ।

स्वतन्त्र (मुसलमान) १—नवाब सर मुजफ्फर अली खां किजिलबाश

सीमान्त प्रदेश

कांग्रेस—१—मौलाना अब्दुल कलाम आजाद २-खान अब्दुल गफ्फार खां ।

मुस्लिम लीग-१—सरदार बहादुर खां,

बलूचिस्तान

स्वतन्त्र मुसलमान १-सरदार महम्मदखां जोगजाल ।

सिंध

कांग्रेस-१—श्री जयराम दास दौलतराय ।

मुस्लिम लीग-१—श्री एम० ए० खुरो २-श्री एम० एच, गजदर ३—श्रीअब्दुर्सत्तार पीरजादा ।

सिख-१—सरदार उज्ज्वल सिंह २ ज्ञानी करतार सिंह ३-सरदार हरनाम सिंह ४-सरदार प्रताप सिंह ।

"सी" गुट

बंगाल

कांग्रेस-१—श्री शरतचन्द्र बोस २ श्री सुरेन्द्रमोहन घोष ३ श्री फ्रैंक एन्थोनी ४-डाक्टर सुरेशचन्द्र बैनर्जी ५-डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र घोष ६-श्री राजकुमार चक्रवर्ती ७-श्री धीरेन्द्रनाथ दत्त ८ श्री अरुणचन्द्र गुहा ९-महाराज उदय चन्द्र महताब १०- श्री आशुतोष मल्लिक, डाक्टर एच. सी मुकर्जी, डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी, श्री हेमचन्द्र नस्कर, श्री किरणशंकर राय, श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन, श्री सत्यरंजन बख्शी, श्री डी. पी. खेतान, श्रीमती लीला राय श्री डम्बर सिंह गुरुंग, श्री ज्ञानचन्द्र मजुमदार; श्री धनंजय राय, श्री पी. आर. ठाकुर, श्री प्रियरंजन सेन. श्री राधानाथ दास, श्री पी. डी. रामकृट ।

स्वतन्त्र 'साधारण' १-डाक्टर बी. डो. अम्बेडकर २-श्री सोमनाथ लाहिड़ी ।

मुस्लिम लीग—सर्व श्री - नवाब जादा लियाकत अली खां, सर महम्मद अजीजुल हक, एच. एस. सुहरावर्दी ख्वाजा सर निजामुद्दीन, एम. ए. एच. इस्फानी, के. शहाबुद्दीन, अबू हाशिम, रगीब एहसन, ए. एम. अब्दुल हमीद, फजलुर्रहमान, मजबुर्रहमान, अब्दुल कासिम खां, इब्राहीम खां, सिराजुल इस्लाम, तमीजुद्दीन खां, डाक्टर महम्मद हुसैन, मजहरुल हक, अब्दुला-अल ममूद, फारमूजल हक, शाहजादा युसुफ मिर्जा महम्मद अब्दुल हलबकी, एम. एस. अली, महम्मद अलताफ एहमद बजलुलकरीम, गयासुद्दीन पठान, हमीदुल हक चौधरी, प्रोफेसर इश्वाक हुसैन कुरैशी, महम्मद हुसैन, महम्मद हुसैन मलिक, के. नूरुद्दीन, मौलाना शबीर, अहमद उस्मानी बेगम शाइस्ता सुहरावर्दी इकरामल्ला ।

स्वतन्त्र 'मुसलमान' ए' के' फजलुलहक

आसाम

कांग्रेस—सर्व श्री गोपीनाथ बारदोलाई, बसन्द कुमार दास, पादरी जे. जे. एम' निकोलस राय, रोहिणी कुमार चौधरी, अमिय कुमार दास, अक्षय कुमार दास, धरणीधर बसुमैत्री ।

मुस्लिम लीग -सर महम्म सादाउल्ला, अब्दुल मतीन चौधरी, मौलवी अब्दुल हमीद ।

राशन

श्रीमती शिवरानी प्रेमचन्द

दुखियाका पति, जब साइमनके आनेपर निहत्थे जन-समूहपर दौड़ाये गये थे मर गया था, तब उसकी उमर पन्द्रह सालकी थी। मजदूर वर्गमें और तो कोई सम्पत्ति होती भी क्या विरासतमें मिली एक सास। दुखिया की सासका नाम रधिया था। रधियाने बहुतेरा दुखियाको कहा, घर कर ले मगर उसने यही जवाब दिया, ओ मां, मेरे तो तुम हो और देशके लिये जिसका पति ऐसे मरा हो उसका नाम ही मेरे लिये बहुत है। वह देशवाले सब मेरे हैं मैं उनकी हूं। मजदूरी ही तो करना है। मजदूरी करूंगी। तुमको खिलाऊंगी, खुद खाऊंगी। ऐसी बहूको रधियाने छाती से लगा लिया और चूमते हुये बोली, तू देवी है। तबसे दोनोंका जीवन मजदूरी करना और देशका काम करनेको था। यही दोनोंके जीवनका ध्येय था। राष्ट्र का काम और मजदूरी करना यही उनका काम था।

रधिया दुखियाके लिये जान देती थी। आज आठ रोजसे साठ सालकी बुढ़िया रधिया भूखके मारे तड़प रही है। दुखियासे बोली देख बेटी, कहीं अन्न मिले तो मेरे मुंह में डाल, अब नहीं रहा जाता।

दुखिया—कहां जाऊं मां? राशनकी दुकानपरसे सब लोग लौट आते हैं मैं भी लौट आती हूं, बाजारमें दाना दिखायी नहीं पड़ता।

दुखिया उसी तैशमें फिर राशनकी दूकान की ओर बढ़ी और बोली जाती हूं। वह घरसे चल दी।

वहां राशनकी दूकानमें क्या देखती है कि सैकड़ों स्त्रियों और पुरुषोंकी भीड़ जमा है और दूकानमें ताला बन्द है। एक दूसरे परिचित स्त्रियां, आपसमें कहने लगीं, आग लग गयी है आग दुकानमें; दोपहर हो जाती है खोलते नहीं। आ दुखिया, तू भी बैठ।

दुखिया आंखोंमें आंसू भरकर बोली—अरे मैं क्या करूं? साठ वर्षकी मेरी बूढ़ी सास बिना दाना तड़प तड़पकर मर रही है।

पचीसों बच्चे भूखसे वहां माताओंकी ओर देखकर बिलबिला रहे हैं। माताएं, क्या करें, कहांसे खाना लायें? कुछ रुआंसी हो गयीं।

किसी तरह राशनकी दुकान खुली। सारी स्त्रियां, अभी तक तुम लोग कहां थे? दया भी नहीं आती! भूखों मार डालोगे सबको। बूढ़े-बच्चे सब भूखसे मर रहे हैं।

राशनके कर्मचारी—क्या करें, घरमें रक्खा थोड़े ही है? गल्ला आये तब तो दें।

यह कहते हुए भीतरसे दुकान बन्दकर ली।

दुकान भीतरसे बन्द होना देखकर स्त्रियोंके क्रोध का पारा और ऊंचे चढ़ गया। एक दूसरेसे कहने लगीं, आखिर, अब यह अभागा दूकान भी बन्द कर गया।

दूसरी बोली, अरी मोटों-मोटोंको देंगे, हमको तुमको थोड़ो ही देंगे। गरीबोंकी तो शायद भगवान भी नहीं सुनता यह क्या सुनेंगे?

कुछ स्त्रियां दुकानके पीछे इस फेरमें दौड़ीं कि आखिर माजरा क्या है, उधर कोई दरवाजा तो नहीं है!

जब उधरकी तरफ देखती है तो तीन मजूर बोरेमें अनाज लिये हुए चले जा रहे हैं, सभी स्त्रियां उधर ही दौड़ पड़ीं और उन्होंने क्रोधसे पूछा, यह गल्ला कहां जायगा? और फिर वह गल्ला छीनकर जमीनपर गिरा दिया। किसी इन्स्पेक्टर साहबका नाम लिया किसीने दरोगा साहबका, इसी तरह नाम मिल गये।

कुछ स्त्रियां दुकानके अन्दर पहुंचीं और उन्होंने दूकानवालोंको मारना शुरु किया। अच्छा यह मोटे लोगों का घर भरोगे और हम भूखों मरें। यहां काफी शोर गुल हुआ जैसे बलवा हो जायगा। मामलेकी गूंजसे दरोगा, इंस्पेक्टर भीपहुंचे, मगर वे दो-चार ही थे।

दारोगा साहबने दुकान वालोंको पिटते देख कर दुखियाको और दूसरी औरतोंको ढकेलते हुए बोले—हरामजादी मार डालेगी। दुखिया बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ी। दुखियाको धक्का देते देख कर अन्य स्त्रियोंको भी क्रोध आ गया। उनमेंसे किसीने दारोगा साहबकी दाढ़ी नोची, किसी ने बाल।

जब दुखियाको होश हुआ तो बलवाई कह कर सारी स्त्रियोंको दारोगाने चालान कर दिया। पुलिस चालान करके ले गयी।

सारे शहरमें चर्चा है कि खाना तो देते नहीं, उल्टे परेशान करते हैं। रमिया दौड़ी हुई रधियाके पास

आई और धीरेसे बोली...बहन, पकड़ ली गयी। बेचारी बेहोश हो गयी थी। हम लोग न होतीं तो शायद ही उसके प्राण बचते। रधिया बहुत धीरेसे बोली—क्या हुआ था, बेटी!

'मां क्या क्या बताऊं! गल्ला लेने गई थी, और क्या? सबलोग कहते हैं कि स्वराज्य हो गया, स्वराज्य।'

रधिया—बेटी, स्वराज कैसा? रोटी और कपड़ा तो मिल ही नहीं रहा है, स्वराज कैसा? मेरालाल इसी स्वराजके पीछे मारा गया था। यों तो मैं भी सुन रही हूं कि स्वराज हो गया।

रमिया बोली—जाने कैसा सुराज सचमुच हो गया है। न रोटी मिले, न धोती। जिनके लिये पहले भी सुराज था, उन्हींके लिये अब भी है। पीछेकी ओरसे बोरेके बोरे अनाज लोग लिये जारहेथे इसीलिये तो जीजीने छीनलिया!

रधिया—छीना था?

रमिया—हां, छीन छान! वही बहनें वहां एकत्र थीं।

इसी बीच रमियाकी लड़की हाथपर नमक और रोटी लेकर आई।

रमिया—इसी रोटीके पीछे आज सब दुर्गति हुई।

रधिया—बेटी, रोटी खानेकी इच्छा नहीं हो रही है। इसी सुराजके पीछे बेटा मरा आज रोटी ही के पीछे बहू जेल गयी। मैं अब रोटी नहीं खाऊंगी।

दुखियाका गुणगान करती हुई बुढ़िया रोने लगी। चार दिनोंसे वह भी भूखी है।

बुढ़ियाका रोना सुनकर रमिया भी रोने लगी। रोते-रोते बुढ़ियाकी हिचकियां बंध गयी थीं। हिचकीके साथ-साथ एक बार हाय करके :बोली—हाय, हम गरीबों को पूछनेवाला कोई नहीं है। थोड़ा पानी पिला दो, बेटी!

रमियाने पानी भरकर मुंहसे लगाया।

रधियाके पेटमें पानीके मारे दर्द होने लगा। वह दर्दके आवेशमें बोली—बेटी, अब सहा नहीं जा रहा है। मेरी देवीको जरा बुला दो, बेटी।

रमिया—वह तो जेलमें पड़ी होगी।

रधिया—हम गरीबोंको दुनियामें जगह नहीं। यहां पेटकी ज्वालासे तो मरो ही।

फिर बुढ़ियाने फुसफुसाकर कहा, जिसकी ध्वनि रमियाके कानमें नहीं पहुंच सकी। किसी तरह वह पेटको दबाकर धीरेसे बोली—ले मैं चली।

रमिया मुंहपर पानीका छींटा देने लगी।

आंखें बंद हो गयी। मुंह खुला रहा। अन्तिम लीला समाप्त हो गयी।

रमिया चीख पड़ी--हाय भगवान, हम गरीबोंको कहीं जगह नहीं है।

रोनेकी आवाज सुनकर पास पड़ोसकी स्त्रियां अंदर चली आयीं। जिन स्त्रियोंने दोपहरमें राशनकी दूकानपर लड़ाईकी थी, उन्हींने आकर लाश उठायी। यह कहती हुई कि आज रोटीके पीछे बुढ़ियाकी मौत हो गयी।

जिन-जिन मुहल्लोंसे लाश गुजरी लोग साथ हो लिये। 'राम नाम सत्त है' की जगह 'हम अभागोंको रोटी नहीं।'

इतनेमें एक पुलिस औफिसर आकर बोला--जुलूस नहीं जा सकता।

सभी स्त्रियां--जुलूस क्यों नहीं जा सकता। क्या एक साथ मरने भी नहीं दोगे?

पुलिस—चुप रहो, नहीं तो गोली चल जायगी।

पुलिस—चुप रहो आगे जुलूस नहीं जा सकता।

स्त्रियां—तुम्हारा पेट तो भरता है!

आगे जानेसे जब पुलिसने रोका तो महिलाओंने उसी जगह लाश रख दी और बोली—जैसे और चीजें चोरी से हजम कर लेते हो वैसे ही यह लाश भी हजम हो जायगी।

पुलिसने डंडे चलानेका हुक्म दिया--बलवाइयोंको मारो।

स्त्रियोंने एक साथ मिलकर कहा—बलवाई होती तो आज भूखों न मरतीं। जिस वक्त मुल्कमें गरीब बलवाई होंगे उस वक्त तुमलोगोंका पता भी न चलेगा। तुमलोग मोटे-मोटे आदमी लम्बी लम्बी तनख्वाह पाकर भी अपना काम नहीं चला पाते।

पुलीसने डंडे चलाये। पचीसों घायल होकर अस्पतालमें पहुंचे। लाशको पुलिसने अपने कब्जेमें किया। अखबारोंमें खबर निकली कि हिन्दू मुसलमानोंका झगड़ा था

दुखिया उसी दिन जेलसे छूट गयी। रधियाकी मौत सुनकर वह पागल हो गयी। पागलकी तरह चिल्लाकर कहने लगी कि 'हाय अम्मा तुम चली गयी! भूखी ही तुम चली गयी मां! न वह कुछ खाती है न पीती।

जिसने यह घटना देखी आंखोंसे आंसू बहा देते हैं। जिन्होंने नहीं देखी वे पागल कहकर मुस्करा उठते थे।

—*—*—*—

सामाजिक उत्थानका आधार नारी जागरण

श्रीमती राधादेवी गोयनका

आजका संसार एक भीषण संक्रान्ति-कालमेंसे गुजर रहा है। चारों ओर अशांति दिखाई दे रही है। युद्धके बादल अभीतक साफ नहीं हो सके हैं। इसका एक-मात्र कारण असमानता है, समाजोंमें असमानता, राष्ट्रोंमें असमानता, मानव अधिकारोंमें असमानता है। अनेकों परिवर्तनोंके कारण संसार आज इतना जागृत हो गया है कि वह इन असमानताओंको बर्दाश्त न करेगा। वैसे देखा जाय तो संसारके अरबों मनुष्योंकी आकृतियां अंगुलियों की रेखाएं तक असमान होती हैं यह प्रकृतिकी चतुराई है,



स्व० कस्तूरबाकी आत्मा हमें नारी जागरणका संदेश देती है

किन्तु प्रकृति यह नहीं कहती कि सूर्यकी रोशनी और उष्णता, चांदकी शीतलता कुछ ही लोगोंको मिले और कुछ को नहीं। प्रकृति यह नहीं कहती कि गंगा-यमुनाका पानी किसीको मिले और किसीको नहीं। जैसा कि हम मानवकृत कुओं और तालाबोंपर बन्धन लगा देते हैं।

समाज और राष्ट्रको ठोस सुन्दर, सुखमय बनानेके लिये स्त्री-पुरुषोंकी मानवकृत असमानताओंको दूर करना होगा। चाहे समाज इस बातको आजसमझले चाहे दसवर्षबाद समझे। बात इतनी ही है कि बिना स्त्रियोंकी प्रगतिके समाज और हमारी पीढ़ियां आगे नहीं बढ़ सकतीं। संसारकी गतिविधिको देखते हुए मारवाड़ी समाज कई वर्षोंके सुधार-प्रयत्नोंके बावजूद भी आज बहुत पिछड़ा हुआ है। और विशेषतः महिला क्षेत्रमें। यदि केवल महिलाओंके लिये विचार करें तो २९ वर्षोंके दीर्घ प्रयत्नोंके बाद भी सन्तोषप्रद स्थिति नहीं हो पाई है। इसका प्रधान कारण परदा और अशिक्षा है। इस अवनतिके मूल कारणको हम जड़से पकड़ लें तो अधिकतर बुराइयां स्वतः सुधर जाती हैं। इस बातको समाजके कर्णधारोंने अनेकों बार दोहराया है, काफी समझाया और लिखा भी गया है। किन्तु आज भी हालत सन्तोषप्रद: नहीं है। लड़कियोंको प्राथमिक शिक्षा से आगे पढ़ाना अभी तक हमें जंच नहीं रहा है। कलकत्ते के बालिकाविद्यालयमें यद्यपि मिडिल क्लासों तक शिक्षा दी जाती है परन्तु मारवाड़ी समाजकी बालिकायें उन श्रेणियों में नहीं के समान हैं। पिछली बार श्री रमाबाई सुरारका द्वारा पता लगा था कि बालिका विद्यालयमें केवल दो तीन बालिकाएं ही मिडिल क्लासमें पढ़ती हैं। प्राइमरीके बाद माता पिता कन्याओंको आगे नहीं पढ़ाते हैंऔर प्राइमरी में भी १० कन्यायें ही पढ़ पाती होंगी।

विगत दिसम्बर मासमें जब मैं कलकत्ता गयी थी तब मेरे सामने यह प्रश्न आया था कि सम्मेलनमें सामाजिक प्रश्नोंको स्थान दिया जाय अथवा नहीं? मारवाड़ी समाज को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि जो समाज अपने अन्तरंगकी ओर उदासीन है और बहिरंगकी उन्नति करना चाहता है वह आरम्भसे ही गलत रास्ते चल पड़ा है। हर एक कौमको, हर एक समाज सेवीको को यह न भूलना चाहिये कि घरकी आत्मा स्त्रीहै समाजका जीवन स्त्री है। जो मनुष्य समाजको सुदृढ़, कलामय, सुखमय, बनाना चाहता है उसे प्रथम नारीको सुदृढ़, कलामयी, सुख शान्ति मयी बनाना होगा। उसमें शारीरिक और बौद्धिक मजबूती की आवश्यकता है तभी वह राजस्थानकी वीर रमणी रत्न बन सकेगी। तभी वह कलामयी तथा सौंदर्यमयी बनकर समाजको स्फूर्ति दे सकेगी। कुछ लोग उन विचारोंका उल्टा अर्थ भी लगा लेते हैं किन्तु यह उनके दिमागकी कमजोरी है। स्वभावतः नारी सुख शान्तिको अधिक पसन्द करती

है। किन्तु आज उसे अत्यधिक दबा दिये जाने से ही उसके जीवनमें, उसके कार्योंमें प्रतिक्रिया दिखाई देती है। चार स्त्रियां जहां एकत्रित रहती हैं वहां झगड़ा बखेड़ा अधिक दिखाई देता है यह स्त्री स्वभाव नहीं जीवनका असन्तोष है। हमें इसे सीधे अर्थमें मनोवैज्ञानिक अर्थमें सोचने और समझनेकी आवश्यकता है। संसारके अधिकतर महायुद्धों और रक्तपातके कारण पुरुष ही हैं। जिस कन्याको हम चौथी कक्षा तक पढ़ाते डरते हैं जिसे हमारा वश चले तो असूर्यपश्य ही रखना चाहते हैं। किसीसे बोलने देनेसे, राष्ट्रीय अथवा सामाजिक कार्योंमें सहयोग देनेसे लड़कियों तथा स्त्रियोंको बंचित रखते हैं। ऐसी हालतमें हम उनसे ऐसी आशा करें कि वे कैप्टेन लक्ष्मी, विजय लक्ष्मी पंडित अरुणा आसफअली जैसी आधुनिक वीर महिलाओंके समान बन सकेंगी तो यह दुराशा मात्र होगी।

आज मारवाड़ी समाज सम्पत्ति-सम्पन्न होकर भी उन्नत नहीं है। समाजकी सर्वांगीण उन्नतिके लिये धन और योग्य कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता होती है उनमेंसे कई वस्तु हमारे पास है। दूसरी तैयारकी जा सकती है।



जानकी देवी बजाज नारी जागरणके लिये सतत प्रयत्न शील हैं।



श्रीमती कमलादेवी

व्यापारिक उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी हम करते रहें अच्छा है किन्तु जब तक हमारे घरोंमें कलामयी नारी, आदर्श गृहणी और माताए न होंगी तबतक हमें किसी प्रकारका छल और सम्मान नहीं मिल सकता। पैसेके लिये हमें कुछ सम्मान मिल जाता है तो असम्मान उससे भी अधिक। और जो सम्मान है वह भी बनावटी है। सच्चा सम्मान गुणोंका होता है माताओंका प्रभाव सन्तानोंपर बहुत गहरा और चिरस्थायी होता है। इसपर दो मत नहीं हो सकते। अपने समाजकी महिलाओंको कुछ सिखाने और और समझानेकी आवश्यकता नहीं है सिर्फ दो ही ऐसी बातें हैं जिनपर हमें अपनी पूरी शक्ति लगाना अत्यन्त आवश्यक है। उसमें प्रथम स्थान है उच्च और उचित शिक्षाका और दूसरा परदा-निवारणका। परदेको प्रमुख स्थान आज हम इसलिये देते हैं कि सारा समाज चाहे तो उसका निवारण एक दिनमें कर सकता है और उसके निवारणसे बहुत-सी बुराइयां अपने आप दूर हो जायेंगी। मेरा बार-बार समाज से यही अनुरोध है यही सन्देश है कि स्त्रियोंको अविद्या और पर्दारूपी अन्धकारसे शीघ्र निकाला जाय। बस फिर हम समाजको प्रकाश और उन्नतिके शिखरपर पायेंगे।

अन्तर्द्वन्द

श्री नरेन्द्रलाल साह 'जगाती'

शरद ऋतुकी निर्मल चांदनी रात्रि थी, किन्तु जन-शून्य, इस अपूर्व शोभाका मूल्य कौन लगाये, वहां कोई पारखी ही न था जो इस स्वर्गीय सौन्दर्यका मूल्य परख सकता।

क्या करती बेचारी चन्द्रिका, एक ही पथ तो उसके लिये अब उन्मुक्त था, वह स्वयं ही अपने सौन्दर्यका रसपान करती और स्वयं ही अपनी अलौकिक छटामें मुग्ध होकर मूर्छित हो जाती।

'ललित लवंगलता परिशीलन कोमल मलय समीरे।
मधुकर निकर करंबित कोकिल कूजित कुंज कुटीरे॥

आ हा हा, क्या ही मधुर स्वर है, कैसा मनोहर अलाप है, आह! इतनी मृदुल सुरीली तान किसने छेड़ दी। इस जनशून्य चंचल रात्रिमें।

किसी युवतीका स्वर प्रतीत होता है, क्या ही मधुर कण्ठ दिया है देनेवाले ने। कंठमें मिश्रीकी मिठास एवं नवनीतकी कोमलता घोल दी।

ध्यानपूर्वक निहारो,
एकाग्र-चित्तसे सुनो,
देखो कहीं आहट न होने पाये,......
कुछ आया देखनेमें?

हां, एक नाव मंथर गतिसे नैनादेवीके मन्दिरकी ओर अग्रसर हो रही है, नावमें दो मानव प्राणी बैठे अपनी निराली दुनियां बसा रहे हैं, चन्द्र-रात्रिमें नौका विहार कर रहे हैं।

कौन हैं वे?

एक युवक दूसरी युवती, दोनों यौवनसे ओत-प्रोत हो रहे हैं, युवक नाव खे रहा है, युवती गा रही है—

ललित लवंगलता परिशीलन कोमल मलय समीरे।

आह! कितनी कोमल, कितनी मधुर, कितनी सुरीली और कैसी हिलोरें लेती हुई युवतीकी तान है।

इस निस्तब्ध राकामय वातावरणमें युवतीके गानने चारों दिशाओंको गुंजित कर दिया। हृदयमें स्वर्गीय आनन्दका रस घोल दिया।

सुनो, सुनते जाओ, अलौकिक रसपान करते जाओ।

आ हा हा......।

यह क्या! गान एकाएक क्यों रुक गया?

ओह, समझा, नाव नैनादेवीके मन्दिरके घाटसे लग गयी।

युवक-युवती नावसे उतरे मन्दिरके अन्दर प्रविष्ट हुए, तदुपरांत घण्टे बजने लगे, आह! घंटोंका स्वर नैनी-तालके पहाड़ोंमें गूंज गया। थोड़ी देर पश्चात वे प्रफुल्लित हो बाहर निकले।

यह क्या! इस समय दोनोंके कंठमें एक-एक पुष्प-हार शोभित हो रहा है?

समीपवर्ती वातावरण सुगन्धित कर दिया इन पुष्प-हारों ने।

तत्पश्चात् नावमें बैठनेके पूर्व दोनोंने नैनादेवीको सर नवाया। प्रथम युवक नावमें उतरा, फिर युवकने युवतीको सहारा दिया और वह भी नावमें उतर आई, दोनों नावमें बैठ गये और युवक नाव खेने लगा।

युवतीका आनन चांदकी ओर था, चन्द्रकिरणें सीधे युवतीके आननको चूम रही थीं।

कितना सुकुमार भोला मुखड़ा बनाया बनानेवालेने, कितनी सुन्दर छवि दी देनेवालेने, क्या ही लुभावने कपोल थे, मद भरी आंखें थीं, प्रतीत होता था कि आमकी फांके हैं, आह! मनमोहक रूपसे लाद दिया था युवती को।

सुन्दर, अति सुन्दर, चन्द्रिका स्वयं ही लज्जा गयी युवतीकी छवि निहार कर, मेघरूपी घूंघट पटमें छिप गयी वह क्षणभरके लिये।

मेघका टुकड़ा हट गया, चन्द्रकिरणें पुनः युवतीके आननको चूमने लगीं।

'देखा? तुम्हारी मनमोहनी मूरतपर क्षण भरके लिये चन्द्र भी मोहित हो गया, किन्तु मेघके लिये एक नन्हें से टुकड़ेने चन्द्रकी कुदृष्टि तुमपर पड़नेके पहले ही उसे छिपाकर तुम्हारी रक्षा की, क्यों? जानती हो, मेघ भी तुमसे प्रेम करता था,' युवकने युवतीसे कहा—

युवती लजा गयी और एक सिहरन उसके अंग-अंगमें व्याप्त हो गयी।

नाव मंथर गतिसे फिसलने लगी हलकी-हलकी हिलोरें बनाती हुई, शान्त जलको उद्वेलित करती हुई।

बहुत हो गया, जाओ तुम भी, दो प्रेमियोंकी प्रेम-क्रीड़ा होने दो, दो मुक्तभोगियोंको भोग करने दो, कबतक देखते रहोगे, जाओ ?

सुनते नहीं हो ? जाओ अपने घर, तुम्हारी अर्द्धांगिनीका हृदय तुम्हारी राह देखते-देखते बैठ रहा होगा।

नहीं सुना किसीकी प्रेमक्रीड़ामें आघात करना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है, काफी देख चुके, चोरी-चोरी छिपे-छिपे।

तुम्हारा हृदय डावांडोल होने लग गया है, तुम युवतीपर आकर्षित होते जा रहे हो, तुम पाप-पंकमें डूबते चले जा रहे हो, जाओ शीघ्र करो, कहीं यह न हो कि तुम पाप-पंकमें फंस जाओ।

अच्छा अच्छा जाता हूं !

पुनः ठिठक गये ?

आह ! क्या करूं, पुनश्च कोकिलकंठीने कूक छेड़ दी—

'ललित लवंगलता परिशीलन कोमल मलय समीरे'

अपनी कूक रागिनीसे मेरे हृदयमें हूक उत्पन्न कर दी।

तुम अपना कर्तव्य भूल रहे हो, तुम्हारी पत्नीके नेत्रोंमें अश्रु प्रवाह होने लग गया, तुम्हारी बाट जोहते-जोहते उसकी आंखें दुखने लग गयी हैं, जाओ, घर जाओ, दूसरोंके हृदयकी पीड़ा भी अनुभव करो, उनकी टीस समझो।

यहां खड़े-खड़े क्या देख रहे हो ? प्रेमियोंको प्रेम करने दो, नहीं सुना, तुम्हारी पत्नी व्याकुल हो......

'मधुकर निकर करंबित कोकिल कूजित कुंज कुटीरे'

नाव 'मजनू' की लम्बी-लम्बी लताओंके झुरमुटोंके बीचसे फिसलती जा रही थी।

गान समाप्त हुआ और पुनः घोर निस्तब्धता वातावरणमें व्याप्त हो गयी।

"मुमताज" निस्तब्धता भंग करते हुए निरंजनने कहा—'तुम इतनी शुद्ध हिन्दी कैसे बोल और समझ लेती हो, हिन्दी ही नहीं संस्कृत भी, मुझे आश्चर्य होता है।"

"तुम्हें आश्चर्य अवश्य होता होगा, क्योंकि मैं एक मुसलमान हूं, इसलिये न।"

"तुम मुसलमान हो इसलिये नहीं, तुम एक मुसलमान परिवारमें बचपनसे पली, खेली बढ़ी और शिक्षा पाई हो, इसलिये।"

'किन्तु इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं, यह तो तुम भलीभांति जानते हो मेरे मां-बाप हिन्दू-मुस्लिम एकताके पक्षपाती हैं, यह भी तुमसे छिपा नहीं है, बहैसियत पड़ोसी होनेके नाते और मेरे घरमें प्रायः रोज ही एक बार मिलने आनेके कारण, कि मेरे पिता संस्कृतके भी विद्वान हैं, यह भी तुमसे छिपा नहीं है कि हमारे घरमें हिन्दी, उर्दू और संस्कृत पुस्तकोंका एक अच्छा-सा छोटा पुस्तकालय भी है, इसी कारण बचपनसे मुझे भी इन भाषाओंपर प्रेम हो गया.........स्मरण है, एक बार मेरी राष्ट्रीय कविता'—' मासिक पत्रिकामें छपी थी जिसकी जनताने बड़ी सराहना की और तुम दौड़े-दौड़े पत्रिका हाथ में लिये मेरे पिताजी को दिखाने आये थे और मुझे मुबारकबाद दिया था," कहते हुए मुमताजने लज्जामिश्रित नैनोंसे मुस्करा दिया।

एक हास्य रेखा निरंजनके अधरोंपर भी दौड़ गयी।

तत्पश्चात पुनः चारों दिशाओंमें स्तब्धता छा गयी।

क्यों, फिर क्या सोचने लग गयीं ?'

'सोच रही हूं, प्रेम हृदयकी तरंग तथा मनकी उमंग है, किन्तु तरंग प्रथम हृदयमें उठती है या मस्तिष्कमें, यह समस्या उलझनमें डाल रही है।'

'यह तो सीधी-सी बात है प्रेमकी तरंग प्रथम हृदयमें उठती है मुमताज।'

'मस्तिष्कमें क्यों नहीं ?'

'क्योंकि मस्तिष्क सोचता है और मनन करता है, जबकि इसके विपरीत हृदय आकर्षित होते ही तत्काल दिल अर्पण कर देता है, न फल सोचता है और न मनन करता है, वह आकर्षित वस्तुकी ओर खिंचता ही चला जाता है, प्रेम भावमें उत्पन्न होताहै और भावहीमें विलीन हो जाता है अच्छा यह बताओ तुम किसीसे प्रेम भी करती हो ?' निरंजनने यह प्रश्न—हां, तुमसे,' उत्तर पानेकी आशामें मुमताजसे पूछा—

'प्रेम ! हां-हां, इन चंचल लहरोंसे, इस शरद-चन्द्रिकासे, वह नील गगनमें उड़ते हुए श्वेत मेघके टुकड़ेसे, ये सामने खड़े पर्वतोंसे, और......और......यह स्त्री मुंहसे नहीं नेत्रोंसे व्यक्त करती है और कार्योंसे पूर्ण करती है।'

अच्छा, मै तुमसे एक भिक्षा मांगता हूं, दान मांगता

हूं, योगी ?'

'प्रेमी भिखारी नहीं होताहै और दान हाथसे दिया जाता है, मेरा अनुमान है तुम प्रेम मांग रहे होगे, प्रेम ऐसी वस्तु नहीं है जो हाथसे दी जा सके, वह तो हृदयसे दी जाती है, उसके लिये आंचल नहीं फैलाया जाता हृदय फैलाया जाता है।'

'यह तो सब कुछ हो गया सुमताज, नैनोंने व्यक्त कर दिया, कार्योंने पूर्ण कर दिया, दान भी मिला एवं हृदयकी झोली भी भर गयी, किन्तु कर्ण इस शुभ्र ज्योत्सना तथा रजतमय वातावरणके मध्य तुम्हारे मुंहसे प्रेमके दो शब्द सुननेके लिये चंचल और व्याकुल हो रहे हैं, आशा है निराश न करोगी।'

'यदि यही तुम्हारी इच्छा है तो सुनो, मैं तुमसे इतना प्रेम करती हूं जितना चांदनी चांदसे, रागिनी राग से, संगीत संगीतज्ञसे और कविता कविसे।'

'सुमताज तुमने कानोंमें अमृत घोल दिया, तुम संगीतज्ञ ही नहीं, एक कवियत्री भी हो।'

'कवियित्री तो मैं न जाने कबसे हूं, किन्तु अब आपकी दासी भी बन चुकी हूं।'

'दासी नहीं, दिलकी मलिका, हृदयकी रानी।'

यह सुनकर सुमताजके कपोलोंपर लाली दौड़ गयी और उसने मुंह झुका लिया।

नाव 'मजनू' की लताओंके झुरमुटोंसे निकलकर अब धीरे-धीरे बोटहाउसकी ओर अग्रसर होने लगी।

'जब कोई प्रेम करता है तो संसारके लोग प्रेमको घृणात्मक दृष्टिसे देखते हैं तथा प्रेमको पाप समझते हैं, ऐसा क्यों ?'

'लोगोंके घृणा करनेसे प्रेमकी पवित्रतामें कलंक नहीं लगता सुमताज, यदि कोई दीपकसे घृणा करे, ज्योतिसे घृणा करे, सूर्यसे घृणा करे, चन्द्रसे घृणा करे, फूलोंसे घृणा करे तो दीपक, ज्योति, सूर्य, चन्द्र और फूलका कोई दोष नहीं है बल्कि घृणा करनेवालेकी समझ तथा बुद्धिका दोष है, देखो भक्त भगवानसे प्रेम करता है, मां अपने बच्चोंसे प्रेम करती है विद्वान विद्यासे प्रेम करता है, प्रेमके ही आधारपर तो संसार टिका है सुमताज।'

नाव मंथर गतिसे बढ़ती जा रही थी।

प्रेम सुन्दर होता है, सुगन्धित होता है और सुकोमल होता है, किन्तु फिर भी प्रेममार्ग कंटकाकीर्ण क्यों होता है ?' सुमताजने पूछा—

'गुलाबका पुष्प देखा, उसकी सुन्दरता निहारी, कभी उसके सुगन्धसे अपने हृदयकी ज्वाला तृप्त की, कभी उसकी कोमल-कोमल पंखुड़ियोंको किसी षोड़शीके सुकोमल कपोलोंमें फेरा, देनेवालेने गुलाबको सब कुछ दिया, सौन्दर्यसे लाद दिया, परन्तु एक वस्तु और भी दी, कटु, अति कटु वह दिया कांटा, उपहार स्वरूप, गुलाबके फूल तक पहुंचनेके लिये कांटोंसे रक्षा करनी पड़ती है, इस कार्य में जरा-सी भी गफलत हुई नहीं कि कांटे चुभकर रक्त निकाल देते हैं। यही प्रेमका भी रूप है, सुन्दर होता है ठीक गुलाबके पुष्प-तुल्य, लेकिन मार्गमें स्थान-स्थानपर कांटे बिछे रहते हैं। समाजरूपी कांटे, ठीक गुलाबके कांटों की भांति प्रेम पुष्प तोड़ने दौड़े। ध्येयसे च्युत हुए नहीं कि समाजरूपी कांटे चुभकर रक्त निकालने लगे। प्रेममार्ग कंटकाकीर्ण ही होता है सुमताज, यह फूलोंकी सेज नहीं कांटोंकी शय्या है।'

'यह फूलोंकी सेज नहीं कांटोंकी शैय्या है।' सुमताजके हृदयपटलमें यही गुंजित हो रहा था।

नाव मंथर गतिसे बोटहाउसके निकट पहुंचती जा रही थी।

'यह फूलोंकी सेज नहीं कांटोंकी शैय्या है।' नाव किनारेसे आ लगी। निरंजन उतरा, बोटमैनको किराया चुकाया पर सुमताज खोई-सी बैठी रही।

'यह फूलोंकी सेज नहीं कांटोंकी शय्या है।'

'उतरोगी नहीं,'

सुमताज चौंकी मानों स्वप्न टूट गया है। निरंजन ने किनारे खड़े हो अपने हाथका सहारा सुमताजको दिया और वह उतर आयी।

तत्पश्चात दोनों चांदनी रातमें धीरे-धीरे अदृश्य हो गये।

कमलनीवल्लभकी आभा प्रस्फुटित हुई, चीनापीक तथा टिफिन टापकी चोटियां बालरविके रंग ही में डूब गयी, चिड़ियां 'जागो हुआ सवेरा' गाती हुई मानव समाज को जगाने लगी।

सुमताज की भी उनींदी आंखोंसे नींद भागी, वह चटपट उठी और नित्यकर्मसे निवृत्त होकर श्रृंगार करने श्रृंगार मेज के पास आयी, मेजपर श्रृंगारिक वस्तुयें करीने से रक्खी हुई थीं।'

मुमताजने अंगड़ाई लेते हुए दर्पणमें अपनी सूरत निहारी, आज वह आनन्द-विभोर हो रही थी।

'क्यों इतनी आनन्द-विभोर हो रही हो ? चार रोजकी चांदनी फिर अंधेरी रात।'

यह क्या ! प्रतिबिम्ब बोल रहा है ? मुमताज भयभीत हो गयी। 'निरंजन' अनायास ही उसके मुंहसे निकल पड़ा।

'निरंजन तेरा नहीं,'

'निरंजन मेरा नहीं ! ....निरंजन मेरे हैं, वह मेरे हो चुके। हमारा विवाह हो गया है कल रात ही तो हुआ था। नैनादेवी साक्षी हैं, निरंजनके फोटोके चारों तरफ लटकी यह कलकी वरमाला भी साक्षी है।' मुमताज ने मेजपर रक्खी फोटोसे वरमाला उठाली और हृदयसे लगा ली।

निस्सन्देह तुम्हारा विवाह हो गया, एक देवीकी प्रतिमा के सम्मुख, न कि समाजके। समाज इस विवाह को कदापि स्वीकार न करेगा।

समाज इस विवाह को कदापि स्वीकार न करेगा ! क्यों ?

क्योंकि तू मुसलमान है और निरंजन हिन्दू।'

मेरे प्राणश्वर हिन्दू हैं, निरंजन हिन्दू है, मैं मुसलमान हूं, मैं उनकी प्राणेश्वरी, ये विचार कल कहां तिरोहित हो गये थे।

कल तुम प्रेमसे अन्धे बन रहे थे, प्रेम क्रीड़ासे पागल हो रहे थे। उसीमें यह विचार कल तिरोहित हो गये थे।

अब क्या होगा ? वे हिन्दू मैं मुसलमान।

वह हिन्दू तू मुसलमान, इसलिये तुम्हारा विवाह समाज-नियम विरुद्ध है यह नहीं हो सकता, विवाहकी बात फैलनेपर हिन्दू-मुसलमान आपसमें कट मरेंगे, खूनकी नदियां बह जायेंगी परिणाम भयंकर होगा।

यह मैं क्या सुन रही हूं, खूनकी नदियां बह जायेंगी परिणाम भयंकर होगा।

यह फूलोंकी सेज नहीं कांटोंकी शय्या है।

निरंजन निरंजन यह तुम कह रहे हो मुझे बचाओ निरंजन।

'लड़की सावधान, वह क्या बचायेगा तू खुद बच, निरंजनसे मिलना-जुलना आज ही से छोड़ दे, उसका विचार भी मनमें न ला'

"नहीं नहीं, यह नहीं हो सकता, हमारा विवाह हो गया है; नैनादेवी इसकी साक्षी हैं, हम दोनोंका रक्त एकमें समा गया"

'तुम्हारा रक्त एक नहीं हो सकता, यह समाज-नियम-विरुद्ध कार्य है, प्रथम तेरा निरंजनसे प्रेम करना ही गुनाह था, फिर विवाह कर लेना घोर गुनाह तू गुनहगार है, तुझे इसका प्रायश्चितकरना पड़ेगा, निरंजनको भूल जा, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा बिगड़ीको सुधारना ही सबसे उत्तम कार्य है, इसलिये निरंजनको हृदयसे निकाल दे, वह काफिर है'।

"वे काफिर हैं ? क्योंकि वे हिन्दू हैं,"

हां, इसीलिये, तू एक मुसलमान है, इसे मत भूल और याद रख, त्याग दे उसे,

"त्याग दूं" ?

प्रेम मार्ग कंटकाकीर्ण ही होता है,

जो ध्येयसे च्युत हुआ नहीं कि समाज रूपी कांटेचुभ कर रक्त निकाल देते हैं,...यह फूलोंकी सेज नहीं कांटोंकी शैय्या है,

"आह ! मैं उन्हें नहीं त्याग सकती, मैं उन्हें नहीं भुला सकती, चाहे मुझे अपनी नन्हीं तुच्छ जान ही क्यों न कुर्बान करनी पड़े, मैं नहीं छोड़ सकती, वे हिन्दू मैं मुसलमान फिर भी नहीं त्याग सकती, मैं उनकी हूं, वे मेरे हैं, निरंजन मेरे हो गये, मैंने उन्हें पा लिया, वे मेरे मनमन्दिर की मूर्ति बन चुके, मैंने उन्हें अपने हृदयमें स्थापित कर लिया, नैनादेवी साक्षी हैं, निरंजन अब मेरे हैं. संसारकी कोई शक्ति निरंजनको अब मुझसे नहीं छीन सकती, वे मेरे हो चुके मैं उनकी हो गयी। हां मैं उनकी हो गयी, मैंने कोई गुनाह नहीं किया, मैं गुनहगार नहीं, मैंने कोई गुनाह नहीं किया, प्रेम करना गुनाह नहीं, निरंजन मेरे हैं, हां वे मेरे होचुके, मैं उनकी हो चुकी निरंजन..." मुमताजने वहींमेजपर रखी पौण्ड क्रीमकी शीशी उठाई और भरपूर शक्तिसे दर्पणपर पटक दी।

झनझनाहटकी एक ध्वनि उत्पन्न हुई और दर्पनके टुकड़े जमीन और मेजपर बिखर गये,

मुमताज किंकर्तव्यविमूढ़ रह गयी, यह उसने सवेरे सवेरे क्या कर डाला, आयी थी आनन्द विभोर हो श्रृंगार करने, अपना रूप सवांरने, अपनी छवि निहारने और फोड़ दिया दर्पण, तोड़ दी रूपकी प्रतिछाया,

'अब खड़ी गुमसुम क्या देख रही है? बटोर टुकड़ोंको',

मुमताजने एक टुकड़ा उठाया तो उसमें चेहरेका प्रतिबिम्ब पड़ा, बोल उठा वह "प्रेम करना गुनाह नहीं, प्रेमी गुनहगार नहीं प्रेमको गुनाह समझनेवाले गुनहगार हैं'।

मुमताजने दूसरा टुकड़ा उठाया उसमें भी प्रतिबिम्ब पड़ा और बोल उठा वह भी 'वह हिन्दू तू मुसलमान, निकाल दे यह विचार हृदय तथा मस्तिष्कसे, इस झूठे और असत्य भ्रममें मत फस"।

मुमताजने तीसरा टुकड़ा उठाया और उसमेंका प्रतिबिम्ब भी बोल उठा, "हिन्दू-मुसलमान एक ही जल पीते हैं, एक ही पथमें चलते हैं, एक ही भूमिमें उगा अन्न ग्रहण करते हैं तब कहां गर्क हो जाता है यह हिन्दू-मुसलमानोंका भेद-भाव"

अब तो जिधर मुमताजकी दृष्टि पड़ती उधर ही से टुकड़े बोल उठते, "तुम आपसमें भाई २ हो",

'तुम दोनों हिन्दुस्तानी हो",

"हिन्दुस्तान तुम्हारा देश है।"

"मेरी भी सुनले बहिन" एक अणु भी बोल उठा, 'हूं तो मैं बहुत ही सूक्ष्म किन्तु तू इतना याद रख इसे गांठ पाड़ ले सब समान हैं सबमें एक ही प्राण है और मानव मानव बराबर हैं'

मानव मानव बराबर हैं मुमताजका मुर्झाया आनन उसी भांति खिल गया जैसे चन्द्र और सूर्यके आगमनसे कुमुद एवं कमल खिल जाते हैं इसपर मुमताज निरंजनको छायाकी भांति प्रेम करती थी, मुमताजके नेत्र ज्योतिर्मय हो गये।

अब यदि सिर्फ दुख था तो इस बातका कि दर्पण टूट कर चकनाचूर हो गया था।

आश्चर्य होता था सिर्फ इस बातपर कि अनायास ही मिनटोंमें यह घटना कैसे घटित हो गयी।

कोई चिन्ता न कर दर्पण टूट गया है टूट जाने दे, जिसका आदि है उसका अंत निश्चय है और दर्पण तो एक तुच्छ मामूली सी साधारण व तु है संसारकी अमूल्य वस्तुएं तक नष्ट हो जाती हैं एक दैवी कोपमें सहस्त्रों-लाखों व्यक्ति मृत्युके शिकार बन जाते हैं सहस्त्रों परिवार तबाह और मटियामेट हो जाते हैं। तू बहला अपना दिल, लेखनी उठा और लिख ऐसी कविता कि नींदमें मस्त हमारा परतन्त्र देश जाग जाये, भूल जाये धर्मान्धता; फैल जाये एकता नव जीवनके नवरक्तका संचार कर दे, हृदयमें आजादीकी पुकार बनकर तड़पती हुई बिजली भर दे आरामसे म्यानमें सोई हुई वीरोंकी तलवारोंमें; देशप्रेमकी ज्वाला फूंक दे बच्चे २ के दिलमें लिख लिख कोई ऐसी कविता।'

कोई नौ बजेका समय होगा हलकी हलकी गुलाबी धूप पड़ रही थी निरंजन नौका विहारका आनन्द लूट रहा था। झीलमें अकेले न कोई संगी न कोई साथी निर्मल जल शांत था वायु गम्भीर थी, जल स्थिर था पहाड़ोंकी प्रतिछाया जलमें ऐसी पड़ रही थी मानो सुन्दर झीलके अन्दर भी एक दूसरा लोक है भव्य विशाल तथा सुन्दर नैनादेवी मन्दिरका प्रतिबिम्ब नील-स्वच्छ जल में इस भांति पड़ रहा था प्रतीत होता था मानो विश्वकर्माकी कलाकी एक कारीगरी है।

निरंजनने पतवार जलसे उठाकर नावमें रख दिये और नाव वैसे ही छोड़ दी निराधार वह निहारने लगा 'विश्वकर्म'की कला किन्तु स्मरण होने लगीं कल रात्रिकी बातें वही नैनादेवीका मन्दिर था। वही पर्वत थे वही नील गगन था और वही झील थी फर्क इतना ही था कल रात्रि थी और आज दिवस। कल चांदनी छिटक रही थी आज धूप कल उसके साथ मुमताज थी आज वह अकेले था किन्तु था बाकी सब कुछ वही हां, इस समय सड़कें जनशून्य नहीं थी वही देवीकी मूर्ति थी जिसको साक्षी बनाकर उसके सम्मुख कल रात दोनोंने फूलोंका एक एक हार एक दूसरे के गलेमें डालकर विवाह किया था और शपथ ली थी "हम आजन्म जबतक हमारी देहमें रक्त रहेगा एवं नश्वर शरीरमें प्राण रहेंगे," एक दूसरेके जीवन-मरणके साथी रहेंगे," निरञ्जनके नेत्रपटलमें यह दृश्य खिंच गया।

आह! कैसा विशुद्ध प्रेम था कैसे सात्विक भाव थे और कैसा साधारण विवाह आह! दो भावोंका एकीकरण था।

निरंजनका हृदय उत्फुल्लित हो गया।

"जरा जलमें अपना रूपतो निहार लूं, कैसा हो रहा है आज, अपनी प्राणेश्वरीसे शीघ्र ही मिलना है।" निरंजनके हृदयमें यह भाव उठा और वह झुककर रूप निहारने लगा।

झुकनेमें जरासी नाव डगमगाई, जलमें हिलोर उत्पन्न हुई और निरञ्जनका रूप तरंगोंमें बलखाने लगा, बलखाती हुई छाया कहने लगी, "रूप क्या निहार रहे हो, रूपमें तो कालिमा पुती हुई है।'

निरंजन विस्मयमें पड़ गया, उसीकी परछांई बोल रही है? "रूपमें कालिमा पुती हुई है, क्यों? ऐसा तो

नहीं होना था ।"

'भूल गये, कल रात क्या किया था ?

"कल रात! कल रात एक मुसलमान लड़कीसे बिवाह किया था ।"

'यही तो अनुचित कार्य किया ।'

'अनुचित कार्य !'

'हां महापाप भी ।'

'महापाप !'

'यही नहीं, बल्कि तुमने एक खिलती लड़कीका जीवन भी वर्बाद किया ।'

'मैंने एक खिलती लड़कीका जीवन वर्बाद किया ! क्या यह सच है ?'

'तुमने हिन्दू समाजको कलंकित किया । अपने कुल को भ्रष्ट किया, एक हिन्दू होकर मुसलमान लड़कीसे बिवाह किया, इहलोक और परलोक दोनों खोये ।'

'तो मैं कहींका न रहा ?'

'हां, तुम दोनोंने आवेशमें आकर विवाह तो कर लिया किन्तु परिणामपर भी विचार किया कि फल क्या होगा ?'

'अब क्या हो सकता है ?'

'सब कुछ हो सकता है, अभी समय है, समय मत गवां, शीघ्र कर, बिगड़ीको सुधार ले, मुमताजसे आज ही मिलना-जुलना बंद कर दे ।'

'यह कैसे होगा ?'

'नैनीताल छोड़ दे ।'

'नहीं नहीं यह मेरी दुर्वल मानसिक भावनायें हैं । यह मैं नहीं कर सकता, मैं मुमताजको नहीं त्याग सकता । वह नारी है, फिर मैंने उससे विवाह कर उसे अपना जीवन -साथी चुन लिया, नैनादेवी साक्षी हैं ।'

'लानत है तुझपर, जब तू एक तुच्छ नारीका मोह नहीं छोड़ सकता ।'

'कैसे छोड़ सकता हूं, मैं कर्तव्यसे विमुख नहीं हो सकता ।

'कर्तव्य पालनका परिणाम यह होगा कि एक नारी के लिये सैकड़ों नारियोंका सुख सौभाग्य मिट्टीमें मिल जायेगा, एक जीवन बचानेके लिये सैकड़ों जीवन नष्ट होंगे ।

'चाहे जो कुछ हो, एक दफा ग्रहणकर त्यागना, अपनाकर ठुकराना कायरता होगी, कर्तव्यपरायणता और वचनका भी मूल्य होता है अब वह मेरी धर्मपत्नी बन चुकी हम दोनों एक सूत्रमें बंध गये ।'

'किन्तु अभी समाज के सम्मुख नहीं' 'परन्तु नैना देवीके सम्मुख, समाजको दिखानेके लिये हमने बिवाह नहीं किया । विवाह निजी वस्तु होता है, नैनादेवी हमारे बिवाहकी साक्षी है ।

'हठ नहीं छोड़ेगा, एक दफा फिर कान खोलकर सुन ले, तूने बिवाह कर अनुचित कार्य किया है, तूने महापाप किया है । तूने एक लड़कीका जीवन बर्बाद किया हिन्दू समाजको कलंकित किया, अपना कुल भ्रष्ट किया हिन्दुत्व खोया, मुसलमान लड़कीसे बिवाह कर इहलोक परलोक दोनोंसे वंचित हुआ, दोनों दीनोंसे गया । फिर भी कहता है, मैं उसे नहीं छोड़ सकता ? उसका त्याग नहीं कर सकता ? मोहको कर्तव्यमें भुलाता है ? कौनसे मुंहसे कह रहा है, कहते हुए लज्जा नहीं आ रही है ? लानत है तुझपर, डूब मर चुल्लू भर पानीमें, नहीं तो इस झीलमें ही डूब जा ।

'गलत बिलकुल गलत' मैंने जो भी किया ठीक किया सोच समझ कर किया और उचित किया, मुमताजसे बिवाह कर उचित कार्य किया । पुण्य किया, मैंने एक खिलती लड़की का जीवन आबाद किया, तुम कहते हो, मैंने हिन्दू समाजको कलंकित किया अपना कुल भ्रष्ट किया, हिन्दुत्व खोया; मुमताजसे भी समाज कहेगा, उसने मुस्लिम समाज को कलंकित किया, अपने खानदानको दाग लगाया, बदमाश निकली, समाजकी जबान कोई नहीं पकड़ सकता जितने मुंह उतनी बातें । लेकिन यह मैं दाबेसे कहता हूं कि हमने आपसका भेदभाव छोड़कर, हिन्दू-मुस्लिमकी दीवार तोड़कर, आपसमें बिवाह कर समाजको एक पग आगे बढ़ाया, मानव-मानवकी कड़ी मजबूत की, एकताकी भावनायें पैदा की और मानवकी मानवताका यथार्थ चित्रण निदर्शित किया । इहलोक भी पाया, और परलोक के द्वार भी उन्मुक्त कर दिये । कर्तव्य भी निभाया, वचनका मूल्य भी दर्शाया । मुमताज मेरी है, मेरी रहेगी, हमारा बिवाह हो चुका हम एकमें समा गये, दो दिलोंका एकीकरण होना ही सच्चा व्याह है, अब संसारकी कोई शक्ति हमें बिलग नहीं कर सकती, हम जीवन-मरणके साथी बन चुके । नैनादेवी साक्षी हैं ।"

'अच्छी बात है समाजके सम्मुख उपस्थित हो

लोहेके चने चबाने हैं ।'

'हम तरुण हैं हमारे विचार तरुण हैं, तरुण बाधाओं के सम्मुख जानेसे विचलित नहीं होते हैं, मैं ही नहीं 'हम' समाजके सामने कंधेसे कंधा मिलाकर उपस्थित होंगे, सामना करने, समझे ?'

निरंजनने पतवार उठाई एक छप की ध्वनी उत्पन्न हुई और नाव छपाछप छपाछप करती हुई जलको उद्वेलित करती हुई, तरंगित करती हुई बोट हाउसकी ओर अग्रसर होने लगी ।

नौकाविहारके समय जो एक अंतर्द्वन्द निरंजनके हृदयमें आलोकित हुआ था उसने निरंजनकी गतिविधि ही उलट-पुलट दी ।

वह तत्काल हांफते-हांफते मुमताजके यहां पहुंचा, और प्रवेश द्वारमें पहुंचते ही, 'मुमताज मुमताज' कहते हुए शयनागार में प्रविष्ट हो गया ।

मुमताज पलंग पर लेटी थी प्रातःकालसे ही उसके हृदय-सरोवरमें एक भीषण अंतर्द्वन्द हिलोरें ले रहा था ।

मुमताजने निरंजनकी आवाज सुनी तो वह झटपट पलंगसे उठी और 'निरंजन निरञ्जन' कहती हुई निरञ्जनके वक्षस्थलसे चिपट कर रोने लगी । निरञ्जनने देखा मुमताज अस्त-व्यस्त हो रही है न केश संवारे हुई है और न कपड़े सलीकेसे पहने हैं, फिर इसपर आते ही उसने करबद्ध कर रोना आरम्भ कर दिया ।

अस्तव्यस्त तो निरंजन भी हो रहा था, बाल उसके भी बिखरे थे, कुछ खोया खोया सा भी प्रतीत होता था, माथेमें स्वेदकी बूंदे भी चमक रही थीं जिसे वह अभी तक पोछ भी न सका । किन्तु यह सब मुमताज न देखसकी ।

तभी एकाएक निरंजनकी दृष्टि शृंगार कक्षके शृंगार मेज (ड्रेसिंग टेबुल) पर पड़ी, दर्पण टुकड़े टुकड़े हो रहा था ।

'मुमताज तुम रो रही हो, आखिर हुआ क्या ? निरंजनने प्रेमसे मुमताजके केशोंको सहलाते हुए कहा और अपनी जेबसे रुमाल निकालकर मुमताजके आंसू पोछने लगा ।

मुमताज मूक रही,

निरंजनने पुनः प्रश्न किया—"आज यह दर्पण कैसे टूट गया ।"

"दर्पण मैंने ही अपने हाथोंसे तोड़ दिया ।"

"क्यों ? इस बेचारेपर क्यों क्रोध आया !"

"इसमें मुझे अपना विकृत रूप दिखाई पड़ा, समाज का नग्न चित्र, वह हमें—

निरंजन यह सुनकर पास ही रखी एक कुर्सीपर धम से बैठ गया, वह और उदास हो गया, चेहरेमें विषादकी और दीर्घ रेखायें खिंच गयीं ।

'मुमताज, मेरी प्यारी मुमताज, क्या इसी भांति दर्पणके समान समाज हमारी भी खुशी नहीं तोड़ सकता ?'

'नहीं कदापि नहीं' दोनोंके मुंहसे अनायास ही एक साथ निकल पड़ा ।

दोनोंके आनन तथा नेत्र हर्षसे ज्योतिर्मय हो गये और दोनों प्रगाढ़ आलिंगनमें बंध गये ।



मानसिक दुर्घटनाओंका रक्षा-स्थान

श्री प्रो० एस० पी० कनल बी० ए० आनर्स (लन्दन)

गर्मियोंके दिन थे। हम लोग बाहर सोये हुए थे, कि मेरी पत्नीने मुझे आ जगाया कि वर्षा होनेवाली है। हमने चारपाइयां अन्दर कर लीं, सुबह-सुबह थी इसलिये मैं बरामदेमें आराम कुर्सीपर बैठकर आकाश और खुले बगीचे का दृश्य देखने लगा। घने काले बादल इकट्ठे हो रहे थे जैसे कि इन्द्रदेव प्रचण्ड गर्मीसे तड़प कर आपेसे बाहर हो गये हों। बिजली कड़क रही थी, वायु खूब तेजीसे चल रही थी और बिखरे हुए बादलोंका एक स्थानपर जमघट कर रही थी। पेड़ों और भूमिपरके सूखे पत्ते लाचार होकर हवाके हवाले हो रहे थे। आकाशका दृश्य ऐसा भयानक था जैसे कि काली देवीकी आंखोंसे क्रोधके अंगारे निकल रहे हों और ऐसा प्रतीत होता था कि आज प्रकृति प्राण नाशपर तुली हुई है। मैं प्रकृतिके इस भयंकर रूपकी दुर्बलतापर मुस्कराया। मनुष्यने घर जैसे रक्षा स्थान बनाकर स्वयंको शारीरिक हानि और दुःखसे कितना सुरक्षित कर लिया है। प्रकृतिकी शक्तियोंके हानिकारक कार्यसे स्वयं को कितना स्वतन्त्र कर लिया है। प्रकृतिकी इस प्रचण्डता के होते हुए भी हम सब घरवाले अपना-अपना काम कर रहे थे। कोई कपड़े बदल रहा था, कोई चाय पी रहा था, कोई कमरा ठीक कर रहा था और यह सब चिन्ता रहित वृत्ति इसलिये कि मनुष्यने वातावरणकी हानिके विरुद्ध रक्षा स्थान बना लिये हैं। मनुष्यका ऐतिहासिक संग्राम यह रहा है कि वह प्राकृतिक दुर्घटनाओंकी हानिसे बचने के लिये रक्षा-यन्त्र बनाये। सर्दी, गर्मी, आंधी, बाढ़ आदि पर जय पानेके लिये मनुष्य कई सदियोंसे लगा हुआ है और बड़ी सीमा तक उसे सफलता भी प्राप्त हुई है! केवल प्रकृति की दुष्ट शक्तियोंके विरुद्ध ही नहीं, बल्कि मनुष्यने मनुष्य की दुष्टतासे रक्षाके लिये किलों जैसे रक्षा-स्थान बनाये हैं। इसलिये आजकल हवाई आक्रमणसे बचावके लिये रक्षा स्थानका बनाया जाना कोई नयी बात नहीं। यह गति तो मनुष्यके जन्मसे ही चली आ रही है। केवल अन्तर यह है कि रक्षा स्थानोंको स्थितिके अनुसार दे दिया गया है और विज्ञानकी सहायतासे दिनोंदिन हमारे रक्षा-स्थान बेहतरसे बेहतर बन रहे हैं।

परन्तु हमने निजी और सामाजिक दुर्घटनाओंसे मानसिक हानि और दुःखसे बचावके लिये कोई मानसिक रक्षा-स्थान नहीं बनाये। यदि हम प्राणघातक रोगसे ग्रस्त हो जायें तो क्या हम अपना मानसिक सन्तुलन रख सकते हैं? हमारे लिये प्रलयका आगमन हो जाता है, हमारा खाना-पीना हराम हो जाता है, निराशाके भंवरमें फंसकर हम गोते खाने लगते हैं। विश्व के सब सुख स्वप्नोंपर निराशाका काला रंग फिर जाता है। बाकी जीवनके दिन जिनका हम उपभोग कर सकते थे, ऐसे गुजरते हैं जैसे कब्रिस्तानमें जीवित गाड़ दिये गये हों। ऐसी दुर्घटनाएं जीवनके लिये अनिवार्य हैं। यह जीवनके खेलका आवश्यक मार्ग है। परन्तु हमने ऐसी दुर्घटनाओंके दुःखसे बचावके लिये क्या रक्षा स्थान बनाये हैं? ताकि हम आखिरी घड़ी तक निर्भय जीवनका भोग कर सकें? इसी प्रकार किसी प्रिय सम्बन्धीकी मृत्युकी दुर्घटनाके विरुद्ध हमने क्या मानसिक रक्षा-स्थान बनाये हैं, जिनमें आश्रय लेकर हम अपनी मानसिक शान्ति रख सकें? होता तो यह है कि कुछ समय के लिये तो भूमि पैरों तलेसे जैसे खिसक जाती है, दुनिया अन्धेरी हो जाती है, मानसिक जीवन खतरेमें पड़ जाता है और आंधीसे घिरे हुए व्यक्तिकी तरह जीवन पथ रहित हो जाता है। समयके साथ दुर्घटनाकी आंधीके गुजर जानेके बाद होश-हवास वापिस लौटते हैं परन्तु फिर ऐसी दुर्घटना के होनेपर वही बुरा हाल होता है क्योंकि ऐसी दुर्घटनाओं के लिये हमने कोई आश्रय-स्थान नहीं बनाया।

सामाजिक सम्बन्धकी दुर्घटनाओंको भी लीजिये - सामाजिक सम्बन्धमें गलतफहमी, ईर्ष्या, घृणा, दुश्चिन्ता के वातावरणके मुकाबलेके लिये हमने कुछ मानसिक स्थान नहीं बनाये जिनकी बरकतसे हम ऐसे वातावरणपर जय पा सकें। इसलिये दूसरेकी ईर्ष्या या घृणासे हम अपने मनकी शान्ति खो बैठते हैं, अपने कामका सुख नष्ट कर लेते हैं। घायल होकर हम निराश और असन्तुष्ट जीवन व्यतीत करते हैं। इस सामाजिक आंधी पर विजय लाभ करनेके स्थानपर हम इस आंधीके ही भाग बन जाते हैं। दूसरोंसे घृणा करनेपर हम स्वयं उससे घृणा करके दुःख भोगते हैं

हम भवंरमें तैरनेके बजाय उसीमें बह जाते हैं। हमारे शत्रु की घृणासे जब हममें भी घृणा उत्पन्न हो जाती है तो हम भी उसके सम्बन्धमें गलतफहमीके शिकार हो जाते हैं और यह गलतफहमी उसके सम्बन्धमें हमारी घृणाको और भी भड़काती है। यही कारण है कि सामाजिक आकाश गलत-फहमियोंके काले बादलोंसे घिरा हुआ है और घृणाकी चिनगारियां बिखेर रहा है और हमारे आधुनिक गृहदाहक बम हमारी गृहदाहक परस्पर घृणाके बहिष्करण हैं। हमारी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंकी सिद्धिमें परस्पर घृणा, ईर्ष्या और गलतफहमी बाधक बन रही है और विश्वयुद्ध हमारे परस्पर क्रोधों और विरोधोंके बाह्य चिन्ह हैं। जब अन्त-र्राष्ट्रीय आकाश घृणा और गलतफहमीसे घिरा हुआ हो तो कोई जाति भी मानसिक सन्तुलन नहीं रख सकती। और इस घृणाकी आंधीमें आंधीके भाग बनकर राष्ट्र एक दूसरेका नाश करते हैं।

मानसिक रक्षा-स्थान उन मानसिक वृत्तियोंका नाम है जिनके होनेपर हम निजी और सामाजिक दुर्घट-नाओं और वातावरण पर जय पा सकें। यदि हम ऐसी रक्षाकारी वृतियोंको विकसित कर लें तो निजी और सामाजिक दुःख और हानिकी रोक थाम हो जावे। कल्पना कीजिये यदि हम ऐसी रक्षाकारी वृति विकसित कर लें कि हम किसी दूसरेकी अपने विरुद्ध झूठी बातोंसे प्रभावित न हो सकें तो निजी जीवनका कितना क्लेश कट जाये। इसी प्रकार यदि हम किसी दूसरेके क्रोध या घृणा पर प्रगाढ़ बालकोंकी भांति मुस्करा सकें तो जीवन कितना शान्तिमय हो जाये। यूनानी तत्व-ज्ञानियोंने अपने ईश्वर को सदा ही प्रसन्न ईश्वर कहा है। प्रसन्नता स्थितियोंपर विजय पानेका चिन्ह है। हम बालकोंके लड़ाई-झगड़ेपर हंसते हैं, यह इसलिये कि हमने उस आयुके वातावरणपर विजय पा ली है। वैरागी लोग दुनियां परस्तोंकी चिन्ता, दुख और क्रोध पर हंसते हैं क्योंकि उन्होंने दुनिया परस्ती के वातावरणसे वैराग विकसित कर लिया है। हंसना स्वतन्त्रताका चिन्ह है और ईश्वर पूर्ण स्वतन्त्र है, इसलिये वह पूर्ण हंसनेवाला, हंसीकी आत्मा समझा जाता है।

मानसिक रक्षा-स्थानोंका अभाव वैसा ही है जैसा कि किसीके पास रहने और पहननेके मकान या वस्त्रका अभाव। जैसे बिना घरका व्यक्ति वातावरणकी दयापर है वैसे ही मानसिक रक्षा-स्थानसे विहीन व्यक्ति वातावरण की दया पर। मनुष्यने मानसिक रक्षा-स्थानोंके अभाव को अनुभव किया है परन्तु कोई सन्तोषजनक उपाय नहीं मिला। हमारे ऋषियोंने निजी और सामाजिक, मानसिक दुर्घटनाओंसे रक्षाके लिये दो उपायोंका प्रयोग किया है। एक तो यह कि उन्होंने निजी जीवन और सामाजिक सम्बन्धोंको मिथ्या बताकर इनके दुखको मिथ्या समझकर उनसे ऊपर होनेकी चेष्टाकी है। उन्होंने इसलिये सब सामाजिक सम्बन्ध काटनेकी शिक्षा दी है ताकि उसके दुःखसे बचे रहें और अपने जीवनको माया बताकर उसकी मृत्युके दुखसे रक्षा करें। गृहस्थोंके लिये ईश्वरको रक्षा स्थान बनाकर दुख-रक्षाकी शिक्षा दी है। अर्थात् जो दुर्घ-टनाएं जीवनमें होती हैं वह ईश्वरकी इच्छासे होती हैं और हमारे भलेके लिये ही होती हैं। परन्तु ऐसी काल्पनिक विधियोंसे निजी और सामाजिक हानि और दुखसे निस्तार नहीं हो जाता। समाजसे सम्बन्ध काटना उसी प्रकार है जिस प्रकार किसी नदीसे पानीकी बून्दका अलग होना। समाजसे कटना जीवनसे कटना है। दूसरी विधि भी असफल रही है। प्रकृतिकी शक्तियोंकी अज्ञानतापर मनुष्यने इनकी दुष्टतासे रोक-थामके लिये ईश्वरको रक्षा-स्थान बनाया था परन्तु इस असफल रक्षा-यन्त्रसे लगातार ठोकरें खाकर मनुष्यने प्रकृतिकी शक्तियोंके ज्ञानपर नये रक्षा स्थान बनाये हैं, अर्थात् सर्दी-गर्मीसे बचनेके लिये मकान बनाये हैं जिसमें गर्म पानीकी नालियों और बिजली के पंखे लगाकर सर्दी गर्मीसे रक्षाकी है इसी प्रकार मकान के ऊपर विद्युत स्तम्भ (इलेक्ट्रिक पोल) लगाकर बिजलीसे रक्षा की है।

परन्तु अभी तक मानसिक शक्तियोंके प्रति अज्ञा-नताके कारण हम मानसिक दुर्घटनाओंके सम्बन्धमें उसी विधिका प्रयोग कर रहे हैं जिसका प्रारम्भिक समयमें हमने प्राकृतिक दुष्ट शक्तियोंसे रक्षाके लिये प्रयोग किया था। भला जो विधि हमें शारीरिक शक्तियोंकी हानिसे बचाने में असमर्थ है वह मानसिक दुर्घटनाओंकी हानिसे बचानेमें सफल हो सकती है? आज हम समझते हैं कि मानसिक रक्षा-स्थान ही हमारे निजी और सामाजिक दुखोंका निवारण कर सकते हैं। परन्तु हमारी हालत उस व्यक्ति की तरह है जो यह जानता है कि यदि उसे दियासलाई मिल जाये तो वह लैम्प जलाकर बिना ठोकर खाये चल फिर सकता है लेकिन अंधेरेके कारण उसे दियासलाई ही नहीं मिल रही। आधुनिक मनोवैज्ञानिक और शिक्षक आज जानते हैं कि मानसिक रक्षा-स्थान अर्थात् मानसिक रक्षा-

वृत्तियोंमें ही हमारी निजी और सामाजिक यात्रा ईश्वरीय रूप धारण कर सकती है परन्तु यह कैसे हो ? इसका पता नहीं।

मैंने अभी यही फिकरा लिखा था कि बादल फट कर बरसने लगे गर्मीयोंमें वर्षा स्वर्गीय उपहार है और मैंने कलम मेजपर रखकर अपनी चायकी प्याली हाथमें उठाकर जो अभी-अभी नौकर मेजपर रख गया था पीना शुरू कर दिया। भला अब मैं और कैसे लिख सकता था ? गर्मियोंमें वर्षाका दृश्य और चाय पीनेके लुत्फसे अधिक किसी मनुष्य को क्या चाहिये ?

—*—*—*—

दीपदान

(१)

लौ भरे कुमुद-से अंगोंमें जग उठे ज्योतिके प्राण
तुम गूंथ रही हो दीप-दीपमें नव प्रभातका गान
क्यों अर्धनग्न बाहोंसे झलती हो प्रकाशका चीर ?
क्यों तुम्हें घेरकर फिरता हैं अलसाया शरद समीर ?
फिर तुम्हें देखनेको शैशवकी परियां आज अधीर
लग गयी तुम्हारे साथ सुरभि-रस-रूप-गन्धकी भीर
तुम जगा रहीं बाती-बातीमें यौवनका सन्धान
क्या सोच आज चल पडी विश्वको फिर देने वरदान

(२)

लग रही आज आलोक और तममें यह कैसी हो
जैसे हंसती सावनकी विजली बादलसे मुंह मोड
चमचमा रहे वेपरके मोती-से तारे दो चार
दोनों स्कंधोंपर बिखरा जाता है वेणी-संभार
शर्माई संध्याकी वेला रूप सिन्धुमें डूब
एक थिरकती सिरहनसे मदभरी बनानी खूब !
लौ भरे सीपसे अंगोंमें जग उठी विभाकी तान
लहरोंके उत्कंठित जीवन-सा ले चञ्चल आह्वान

(३)

भर गया प्रकृतिकी क्यारीमें विधुका मोमी परिस्रोत
वह उठा सन्धियोंसे दिशि-दिशि फिर चन्दनका श्रोत
उठ रही बादलोंमें सोमी रजनीकी आत्मा मौन
नभकी विराट कोमलतामें भर गया कमा यह कौन ?
निर्जन सरिता तटपर जल देवी-सी शुचि अवदात
तुम जला रही हो दीप—मुग्धतामें डूबा है गात
लौ भरे हंस-से अगोंमें जागे प्रकाश के प्राण
हिल उठा कगारोंका संयम—अलकाओंका अभिमान

—'अञ्चल'

अनमोल घड़ी

श्री विनायक नानेकर

आप सिगरेट क्यों पीते हैं?

'भाई टाइम 'पास' नहीं होता। सिगरेट 'टाइम पास' करनेका एक साधन है।'

किसीने बर्नार्डशासे सवाल किया 'आप दाढ़ी क्यों नहीं बनाते?' जवाब दिया, यह एक फजूल काम है। जितनी देर मैं दाढ़ी बनानेमें खर्च करूंगा उतनी ही देरमें मैं एक किताब लिख सकता हूं।'

किस तरह विरोधी विचार है? एकको समय बिताने के लिये दूसरेका आश्रय लेना पड़ता है और दूसरेको समय की कमीके कारण अपने ही कामके लिये फुरसत नहीं मिलती। एक वक्तका बादशाह है, जो उसे मनमानी खर्च कर रहा है और एक वक्तका मारवाड़ी है जो छोटे-छोटे कार्यमें भी उसका महत्व समझता है।

आप किसके पक्षमें हैं, पहलेके या दूसरे के?

बेंजामिन फ्रेंकलीनने समय और सम्पत्तिकी तुलना की थी। उसने कहा था समय सम्पत्ति है। आज यह छोटा सा तीन शब्दका वाक्य एक कहावत हो बैठा है। जैसा समय बीतता गया लोगोंने और शब्दोंकी तरह उसका भी उल्टा अर्थ लगाना शुरु किया। आज लोगोंने यह समझ रखा है कि समय सम्पत्तिके बराबर है। नहीं, फ्रेंकलीन की इस तुलनाका अर्थ है समय सम्पत्तिकी तरह मूल्यवान है। जिस तरह एक कंजूस अपनी सम्पत्तिको बहुत सोच-विचार कर व्यय करता है और एक-एक पाईका हिसाब रखता है उसी तरह हर इन्सानको अपने समयरूपी रत्नराशि के व्यय करनेके समय सोचना चाहिये। वक्त मनुष्यके साथ उसके जन्मसे पृथ्वीपर अवतरित होता है। जिस तरह मिली आमदनीमें मनुष्य अपना निर्वाह कर सुखी होता है उसी तरह मिली आयु या मिले समयको भी उसे योग्य कार्योंमें लगाकर अपना कल्याण करना चाहिये। कुछ लोग कहेंगे कि हमें क्या खबर कि हमें कितना समय दिया गया है? मगर मैं पूछता हूं, 'आप यह क्यों सोच बैठते हैं कि आप १०० वर्ष जियेंगे हो सकता है कि आप आज रात सोये और सर्वदाके लिये सोते ही रह गये। आपको चाहिये कि आप हमेशा अपनी मृत्युको करीब देखें तो आपको निश्चय ही हर पल कीमती और थोड़ा महसूस होगा। अजमाकर देख लें।

समयके ही महत्वके कारण कबीर सरीखे अनपढ़ जीव भी महात्मा हो गये और उल्टा लोगोंको सिखा गये कि हर सांस मूल्यवान् है जो गवांयेगा वह पछतायेगा।

लोग कहते हैं, 'अभी बहुत देर है पीछे कर लेंगे।' ठीक है आपके पास समय बहुत है। आप समयके बादशाह हैं। आपको कोई दंड भुगतनेका डर है नहीं क्योंकि हिसाब मांगनेवाला कोई नहीं है। किये जाओ खर्च जितना दिलमें आवे, जैसा मनमें भावे। न किसीको नौकर रखनेकी जरूरत है न कोई विभाग खोलनेकी। आप ही का समय है, किसीके बापकी कमाई तो है नहीं आप चाहे जिस तरह खर्च कर सकते हैं कोई आपसे द्वेष राग नहीं करेगा न आपके रास्तेमें रुकावट डालेगा।

मगर याद रहे कि इस छूटका नतीजा क्या होगा इसका उत्तर भी समय ही देगा।

खोई विद्या अभ्याससे हस्तगत की जा सकती है, खोया धन उद्योगसे वापस किया जा सकता है, खोयी तन्दुरुस्ती दवा और व्यायामसे पुनः प्राप्तकी जा सकती है, परन्तु खोया समय?—खोया समय जो गया तो गया ही। 'गया वक्त फिर हाथ आता नहीं' बेकन कह गये हैं। "There is surely no greater wisdom than well to time यह सब बड़ोंकी सीखें याद रखकर वक्तका मूल्य समझना चाहिये। समय कीमती है और इसीलिये समयके बचावके लिये हवाई जहाज, टेलीफोन, रेडियो सरीखे यंत्रोंका आविष्कार किया गया है।

हमारे देशका यही तो दुर्भाग्य है कि यहांके लोग समयका मूल्य नहीं समझते। यही कारण है कि वे और देशोंसे पिछड़े हुए हैं और बदनाममें हैं। Indian punctuality Indian Time और Indian promise' यहसब तीरकेसे चुभनेवाले शब्द ऐसे ही लोगोंके व्यवहारसे उत्पन्न हुए हैं। समयकी पाबन्दी न होनेके कारण यहांके लोग सुस्त हैं और हमेशा अपने भाग्यको कोसते नजर आते हैं न उनके जीवन में संतोषहै औरन सुखकी झलक। साधारण मनुष्योंकी बातें तो दूर रहीं इक्के-दुक्के अगुओंको छोड़कर बाकीके सब लीडर निश्चित समयसे घंटा आध घंटा देरसे आनेमें अपनी

शान समझते हैं। इसी वजहसे उनके कार्यो और वचनोंका लोगोंपर असर नहीं पड़ता। इतिहासपर एक नजर डालिये आपको मालूम होगा कि जितने महान् पुरुष हो गये हैं वे समयके पाबन्द रहे। चैन या विश्राम किस वस्तुको कहते हैं उन्होंने मरने दम तक न जाना। 'मुझे बहुत काम है, मेरे पास समय नहीं है कहना एक बहाना है। नेलसनके पास समय था,नेपोलिनको समय था, लुई चौदहवें के पास समय था, शेरशाह शिवाजीके पास समय था, आपके पास नहीं है? जब आप इतने परिश्रमी हैं तो इस कदर मुर्दा जिन्दगी क्यों व्यतीत कर रहे हैं? नेपोलियन सिर्फ तीन घंटे ऊंघता था। नेलसनने कहा है—'मेरी बिजयका श्रेय मेरा एक घण्टे पहिले बिस्तरा छोड़नेको है। लुईने कहा—'समयकी पाबन्दी राजाओं की विनम्रता है। समयके पाबन्द उद्योगी और परिश्रमी होते हैं! उद्योग और परिश्रममें ईश्वरने यह भी बरकत प्रदान की है कि मनुष्यके विचारोंमें सदा भलाई और गंभीरता की वृद्धि होती है। वह संतोषी उदार, न्याय परायण, धार्मिक, कृतज्ञ और विनीत होता है। न अपना समय बरबाद करता है न दूसरेके काममें हस्तक्षेप डाल उसका समय नष्ट करता है। समयके पाबंद चुस्त और अक्लके मंद होते हैं और वक्तको बन्धन समझने वाले सुस्त और अबक्त मंद होते हैं। "An idle brain is devils workshop and alazyman the devils bolster"

इन दीर्घ सूत्री और 'कोढ़ी' मनुष्योंकी क्या तारीफ की जाय? यह तो हमेशासे कहते चले आये हैं 'क्या जल्दी है जी पीछे देखा जायगा और इसी कारण ये हमेशा पिछड़े रहते हैं। गाड़ी प्लेटफार्म छोड़ चुकेगी तब ये स्टेशन पहुंचेंगे पोस्टसे डाक निकल चुकेगी तब ये चिट्ठी छोड़ेंगे जब कोई मर चुकेगा तब ये दवा लेकर पहुंचेंगे—ये जो कुछ करेंगे वह थोड़ा ही है। एक किस्सा मुझे याद है कि एक 'असाध्य' रास्तेसे जा रहा था। उसे मैंने कहा, मेहरबान ये रास्ता है. घर नहीं जरा सम्हल कर चलिये, वरना मोटर या गाड़ीके नीचे दब जाओगे। मेहरबान तुनककर बोले, "यदि मेरे ऊपरसे मोटर चली जायगी तो ड्राइवरको फांसी पर लटकवा दूंगा। आप मुझे समझते क्या हैं?"

अब मैं क्या कहता? मुझे इसकी नादानी पर हंसी आ रही थी, जरा आप ही सोचिये कि जब मोटरके नीचे इनका कचूमर हो जायगा तो ड्राइवरको फांसी देने क्या इनका भूत अदालतमें जायगा? मनमें तो आया कि कह दूं, मैं आपको पहले नजरका बेवकूफ समझता हूं मगर बेकार हुज्जत छोड़ मैं चुप रह गया।

जार्ज वाशिंगटन को देर करनेवालोंसे बेहद चीढ़ थी मगर उसके सेक्रेटरीको देर करनेकी आदत थी। यदि वह किसी बातमें पक्का रहा तो विलम्ब करनेमें। एक दिन जार्ज वाशिंगटनने देरी करनेका कारण पूछा तो उसने घड़ी नादुरुस्त होनेका बहाना किया। इसपर जार्जने कहा,"या तो आपको अपनी घड़ी बदलनी चाहिये या मुझे अपना सेक्रेटरी।"

समयके दुरुपयोग और अकर्मण्यतासे जो हानि होती है वह यह है कि पुरुषार्थ हीन :और निरीह पुरुषके विचार अपवित्र और दूषित हो जाते हैं। लोभ, तृष्णा, अत्याचार, अन्याय और आज्ञोलंघन अक्सर वे ही मनुष्य करते हैं जो आलसी और निकम्मे हैं। लार्ड चेस्टरफील्डने एक ड्यूकके विषयमें, जो हमेशा देरसे सोकर उठा करता था कहा His grace looses an hour in the morning and is looking for it all thh rest of the day.

"दिन भर मेहनत करनेके पश्चात् शरीर थक जाता है चेहरा उदास और मलीन हो जाता है और आप कहते हैं कि कुछ न कुछ करते रहिये। क्या खाक काम करेगा इन्सान इतने परिश्रमके बाद?" लोग इस तरह शिकायत करते हैं। इन्हें आरामकी जरूरत महसूस होती है। मगर मैं दावे के साथ कहता हूं कि इन्सानको आरामकी जरूरत नहीं उसे परिवर्तनकी जरूरत है। इन्हीं 'परिश्रमी' मनुष्योंको यदि इतने परिश्रमके पश्चात् भी अपनी प्रेमिकाके साथ सिनेमा जाना हो तो येही जीव डबल पुर्तिके साथ और दौड़धूप करनेको राजी हो जाते हैं। इनकी थकावट रफूचक्कर हो जाती है और इनका चेहरा प्रफुल्लित नजर आता है। सिर्फ इसीलिये कि इनके कार्यक्रममें परिवर्तन हो गया है और उसमें उनका दिल है, उसकी परवाह है। उसी तरह यदि आपको ज्यादा वेतनकी आशा दी जावे तो आप जरूर पहिलेसे अधिक परिश्रम करनेको राजी हो जावेंगे। यह तो मनको मनाने और दिलको संतुष्ट करनेसे हो सकता है। खुशीका वक्त कितना जल्द कट जाता है कि एक घंटा एक मिनट प्रतीत होता है। आप ही कहते हैं कि इतनी जल्दी समय कैसे व्यतीत हो गया? वक्त तो उतना

ही है जितनाकि हर रोज रहता है। वही ६० सेकंडका मिनट और ६० मिनटका घंटा और २४ घंटेका पूरा दिन। मगर यह आक्षेर मनकी बनावट है जो खुशीके समयको छोटा समझती है और दुःखके समयको लम्बा।

थोड़ा-थोड़ा समयको आप व्यर्थकी बातोंमें, दूसरों की निंदा में या सिनेमा अभिनेत्रियोंके ऊपर बहस करनेमें खर्च करते हैं वही यदि जमा किया जाय तो उम्र भरमें मिलकर कई वर्ष हो जाते हैं। वही किसीसे आप रोज मांग करें कि अपनी आयुमेंसे १० वर्ष हमें देदो। तो उसके दिलपर बड़ा आघात होगा। आपको विदित हो कि बड़ोंके काम भी बड़े होते रहे हैं। बड़े होनेका तरीका भी यही है कि समयको व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये। समय कुछ न कुछ करनेके लिये बनाया गया है। कई महा-पुरुषोंने घोड़ेपर चढ़े चढ़े कई पुस्तकें पढ़ डालीं। एकने कचहरी जाने वक्त तांगेमें बैठे बैठे पुस्तक लिख डाली। हमारे देशके कई लीडरोंने जेलमें रहते-रहते कई रचनाएं रच डाली। विद्या चाहे किसी भी वस्तु या विषयकी हो कभी बेकार नहीं जाती। इससे प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि समयको बेकार न जाने दे। जिस वस्तुमें रुचि हो उस वस्तु या विषयका अध्ययन करे। एक पत्रकारने रेल गाड़ीकी यात्रामें २७ भाषाओंका ज्ञान प्राप्त किया और वह एक उंचे ओहदेपर विराजमान है। सन्तोंने भी समयकी काफी प्रशंसा की है। समयका उचित उपयोग कर ये हमारे तुम्हारे सरीखे मनुष्य ही सन्त गतिको प्राप्त हुए, जिन्हें आज सारा विश्व राजा-रङ्क सभी पूजते हैं। शरीरसे सुस्ती भगाकर आजका काम कल पर न छोड़ो। बचे समयको किसी योग्य कर्ममें व्यतीत करो,

काल करेते आज कर आज करेते अब्ब।
पलमें परलै होत है, बहुरि करोगे कब्ब।

अतएव आलस्यका त्याग करो कहीं ऐसा न हो कि पीछे पछताना पड़े और फिर लोग कहें, "अब पछुताए होत क्या, चिड़िया चुग गई खेत।"

—गीत—

आज इच्छा हो रही है,
काश, खो सकता कहीं मैं!
अन्धगति, यति-हीन जीवन
पंथ औ नभ साथ में बस,
यन्त्र सा मैं चल रहा हूं
दीप छोटा हाथ में बस!
आज सम्बल हीन पंथी
भीत मैं, झंझा प्रबल से,
सोचता हूं एक क्षण रुक
वेदना के क्षार जल से--
भाल पर अंकित नियति के
लेख धो सकता कहीं मैं!

२

था जिसे आधार समझा
आज वह निधि खो गयी है,
गीत एकाकी हृदय का
दिव्य, कविता सो गयी है!
क्यों मुझे स्मृति वेदना--
अनुभूति से है प्यार इतना
धूम सा अव्यक्त धुंधला
भर गया उद्गार इतना---
कंठ मेरा मुक्त होता---
चीख रो सकता कहीं मैं!
दूर जग की दृष्टि से,
कोई विजन एकान्त होता
नील पट पर चन्द्र ज्योतित
प्रकृति कण-कण शान्त होता!
द्रवित चंचल स्वर्ण जैसा
बह रहा हो मूक निर्झर!
ताकता अपलक क्षितिज को
ऊर्मियों में पग चपल कर
बिखर जो सुखके गये हैं,
क्षण संजो सकता कहीं मैं!
आज इच्छा हो रही है
काश खो सकता कहीं मैं!

—राजेन्द्र यादव



पूर्वी अफ्रीका

अफ्रीकाका वह भाग, जो पूर्वी अफ्रीकाके नामसे प्रसिद्ध है, वास्तवमें केनिया, टांगानिका, यूगेंडा और जंजीबारके द्वीपको मिलाकर बना है ।

पूर्वी अफ्रीकाको भारत सरकार द्वारा भेजे गये शिष्ट मंडल की रिपोर्टमें बताया गया है कि पूर्वी अफ्रीका भारतके कुल क्षेत्रफलके एक-तिहाई और ब्रिटिश भारतके आधेके बराबर है । पूर्वी अफ्रीकाके प्रदेशोंका क्षेत्रफल इस प्रकार है ।

केनिया	...	२,२४,९६०	वर्ग	मील
यूगेंडा	...	३,६०,०००	,,	,,
टांगानीका	...	९३,९८१	,,	,,
जंजीबार	...	१,०२०	,,	,,
कुल जोड़		६,७९,९६१	,,	,,

केनिया, किनारेके एक भागको छोड़कर शाही उपनिवेश है । यह भाग टांगनिका की सीमासे :किपिनी तक चला गया है और भीतर की तरफ वह १० मील तक चला गया है । इस भागको मोम्बासा, लामू तथा कुछ छोटे द्वीपोंके साथ जंजीबारके सुल्तानसे पट्टे पर लिया गया है । इन सबोंको मिलाकर केनियाका संरक्षित भाग कहा जाता है; जबकि शेष भाग केनियाका शाही उपनिवेश कहलाता है । परन्तु व्यावहारिक दृष्टिसे यह भेद केवल कहने भरको ही है ।

टांगनिका, जो पहले जर्मन पूर्वी अफ्रीकाका एक भाग था, १९२० में ब्रिटिश सरकार की अधीनतामें शासनादिष्ट प्रदेशके रूपमें आया । प्रदेशका शासन ब्रिटिश सरकारकी देखरेखमें राष्ट्रसंघ द्वारा स्वीकृत शासनादेशके अनुसार होता है । शासनादेशके अनुसार यह नियम बना दिया गया है कि प्रदेशमें राष्ट्रसंघके सभी सदस्य राष्ट्रोंके नागरिकोंको बसनेकी सुविधा समान रूपसे दी जायगी ।

यूगेंडाके संरक्षित प्रदेशका शासन भी शाही उपनिवेशके ढंगपर होता है । यूगेंडा प्रान्त, जो यूगेंडाके तीन प्रान्तोंमेंसे एक है, कबाका (शाह) की अधीनतामें एक देशी राज्य है । कबाकाको "हिज हाईनेस" की पदवी प्राप्त है । उसे शासन कार्यमें प्रधान मन्त्री, जिसे काथीकीरो कहा जाता है, तथा अन्य मन्त्रियोंकी सहायता प्राप्त है । उसकी सहायता एक अफ्रीकी पार्लमेंट भी करती है, जिसे ल्यूकीको कहा जाता है । इसी प्रकारका प्रबन्ध बुनयोरो, अंकोले और टोरे रियासतोंमें भी है और जिन प्रदेशोंमें सुनिश्चित रियासतोंका अभाव है वहां भी, जहां तक सम्भव हो सका है, शासन प्रबन्ध देशी सरदारों की ही अधीनतामें किया गया है ।

जंजीबारके द्वीप और अफ्रीकाकी मुख्य भूमिके मध्य एक तंग समुद्र है, जिसके सबसे संकुचित भागकी चौराई लगभग २२॥ मील है । द्वीप ९० मील लम्बा और २४ मील चौड़ा है । द्वीप दो हैं (१) जंजीबारका मुख्य द्वीप और (२) पेम्बाका द्वीप । शासक सुल्तान है, किन्तु वह ब्रिटिश सरकारके संरक्षणमें है और यह संरक्षण उसे अंग्रेजी रेजीडेंटके द्वारा प्राप्त होता है ।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और सममूल्य

प्रारम्भिक सममूल्योंके सम्बन्धमें अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोषके सभी सदस्य-राष्ट्रोंने निम्न संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया है ।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष १ मार्च १९४७ से विनिमय सम्बन्धी कारोबार शुरू कर देगा । कोष द्वारा किया जानेवाला यह कारोबार उन प्रारम्भिक सममूल्योंके आधारपर किया जायगा जिनका निर्णय कोषके इकरारनामेमें निर्धारित प्रणालीके अनुसार किया गया है । प्रत्येक देशका सममूल्य नीचे लिखी तालिकामें दिया गया है । कोषके २९ सदस्योंमेंसे ८ ने अर्थात् ब्राजील, चीन डोमीनिकन प्रजातन्त्र, यूनान,, पोलैंड, यूगोस्लाविया और फ्रांसीसी हिन्द चीन की तरफसे फ्रांसने और डच द्वीप समूहों की तरफसे हालैंडने इकरारनामेके नियम २० की धारा ४ के अन्तर्गत अपने-अपने प्रारम्भिक सममूल्योंके निर्धारणके लिये और अधिक समयकी मांग की है और कोषने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली है । यूरुग्वेमें कुछ कानूनी कार्रवाइयोंके पूर्ण होने तक उसकी मुद्राका प्रारम्भिक सममूल्य भी निश्चित रूपसे नहीं निर्धारित किया जा सकता ।

यह पहला ही अवसर है कि विभिन्न राष्ट्रोंने इतनी बड़ी संख्यामें अपनी विनिमय दरको एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनके विचारार्थ उपस्थित किया है और इससे हम देखते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा सहयोगका एक नया युग प्रारम्भ हुआ है। इस मौजूदा कदमका महत्व इस बातमें नहीं है कि विनिमय की विशिष्ट दरें घोषित कर दी गई हैं, बल्कि इस बातमें है कि इस अन्तर्राष्ट्रीय संगठनमें सम्मिलित होनेवाले राष्ट्रोंने अब पूरी तरहसे एक ऐसी व्यवस्था कायम कर ली है जिसके अन्तर्गत वे विनिमय की स्थिरताको बनाये रखने, कोषके इकरारनामे की शर्तोंके अलावा अपनी मुद्राओंके सममूल्योंमें कोई परिवर्तन न करने और कोषके साधारण उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए एक दूसरेको सहयोग प्रदान करनेके लिये वचनबद्ध हैं।

प्रारम्भिक सममूल्य—सभी मुद्राओंके प्रारम्भिक सममूल्य वे ही हैं, जिनका प्रस्ताव सम्बद्ध सदस्य-राष्ट्रों द्वारा किया गया है और वे विनिमयकी मौजूदा दरों पर आधारित हैं। लेकिन इन दरोंकी स्वीकृतिका अर्थ यह कदापि नहीं है कि यह कोषकी ओरसे इस बातका कोई आश्वासन हैं कि सभी दरें अपरिवर्तित रहेंगी। जैसा कि कोषके प्रबंध-व्यवस्थापकोंने सितम्बरमें प्रकाशित अपनी वार्षिक रिपोर्ट में कहा था, "हम यह बात मानते हैं कि शायद बादमें कुछ देशोंके निर्धारित सममूल्य घरेलू आर्थिक गतिविधिके ऊंचे स्तरको देखते हुए संतुलित अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानोंकी स्थितिको कायम रखनेके अनुकूल न साबित हों और जब ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जायेगी तो कोषको उन नयी परिस्थितियों का सामना करना पड़ जायगा जिनके अन्तर्गत प्रारम्भिक सममूल्य निर्धारित किये गये थे। ऐसी ही हालतोंमें यह कोष अत्यधिक उपयोगी साबित हो सकता है। उस समय कोषका यह काम होगा कि वह इस बातका प्रयत्न करे कि ये आवश्यक परिवर्तन व्यवस्थित ढंगसे हों और प्रतियोगिता पर आधारित विनिमय मूल्य ह्रासकी रोकथाम की जाय।

कोष यह अनुभव करता है कि विनिमयकी वर्तमान दर पर बहुतसे सदस्य राष्ट्रोंके यहां इस समय प्रचलित कीमतों और वेतनोंमें काफी विषमता पाई जाती है। लेकिन मौजूदा परिस्थितियोंमें ये विषमताएं इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं जितनी कि साधारण समय में। इसका कारण यह है कि प्रायः सभी देशोंका निर्यात मुख्यतः उत्पादन अथवा यातायात सम्बन्धी कठिनाइयोंके कारण सीमित हो गया है और कुछ देशोंमें आवश्यक आयातकी लागत तथा निर्यात के लाभके बीच जो अन्तर पाया जाता है वह उनकी मुद्राओं सम्बन्धी समताओंमें परिवर्तन करके काफी कम नहीं किया जा सकेगा। इसके अलावा कितने ही देशोंमें युद्धकी उथल-पुथल के बाद अभी साधारण परिस्थितयां प्रारम्भ ही हुई हैं और आशा की जाती है कि उनके द्वारा अपना उत्पादन बढ़ानेकी जो कोशिशें की जा रही हैं उनके फलस्वरूप धीरे-धीरे उनकी कीमतें भी दूसरे देशोंके समकक्ष हो जायेंगी। इसके अतिरिक्त क्योंकि बहुत से देश इस समय मुद्रा बाहुल्यको दूर करनेमें व्यस्त हैं, इसलिये अगर उनकी विनिमय दरमें कोई परिवर्तन किया गया तो डर है कि उससे देशके भीतर पाई जाने वाली प्रवृत्तियोंके कारण मुद्रा बाहुल्यको प्रोत्साहन मिलेगा।

इन सभी बातोंको ध्यानमें रखते हुए कोष इस परिणाम पर पहुंचा है कि इस दिशामें उचित कदम यह होगा कि विनिमयकी मौजूदा दरों को ही प्रारम्भिक सममूल्य स्वीकार कर लिया जाय।

विनिमयके सममूल्योंकी तालिका—अमरीकाके एक डालरके रूपमें विभिन्न देशोंकी मुद्राके सममूल्यकी तालिका नीचे दी जाती है:—

१ अमरीकी डालर	=	४ शिलिंग ११.९९३
,,	=	१.००००० कैनेडियन डालर
,,	=	३.३०८९२ भारतीय रुपया
,	=	०.२४१९९९ मिस्री पौंड
,,	=	११९.१०७ फ्रांसीसी फ्रैंक
,,	=	४३.८२६९ बेल्जियन फ्रैंक
,,	=	२.६९२८९ हालैंडका गिल्डर

भारतमें फ्रांसीसी उपनिवेशोंके लिये स्थानीय रुपयेको २६ फ्रांसीसी फ्रैंकके बराबर मान लिया गया है और भारतीय रुपयेको भी २६ फ्रांसीसी फ्रैंकके बराबर माना गया है।

देशी चिकित्सा प्रणालियोंको प्रोत्साहन

हालही में दिल्लीमें हुए स्वास्थ्य-मन्त्रि-सम्मेलन के निश्चयानुसार, भारत सरकारने, देशी चिकित्सा प्रणालियों की छानबीन तथा शिक्षणकी सुविधाएं सुधारने और सर्वसाधारणके लिए उन्हें अधिक उपयोगी बनानेके आवश्यक

उपाय सुझानेके लिये, एक समिति नियुक्त करनेका निर्णय किया है और इसकी घोषणा भारत सरकारके स्वास्थ्य विभागने गत १९ दिसम्बर को कर दिया है।

स्वास्थ्य-मन्त्रि सम्मेलनने निश्चयकिया था कि देशी चिकित्सा-प्रणालियोंके शिक्षण और अनुसन्धान तथा उनकी छानबीनमें वैज्ञानिकोंकी विधियोंसे काम लेनेके लिये, केन्द्र और प्रान्तोंमें पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिये।

जो समिति अब नियुक्त की जाने वाली है, उसमें देशी प्रणालियोंके चिकित्सक और डाक्टरी चिकित्सा-पद्धतिके प्रतिनिधि, दोनों ही होंगे। आशाकी जाती है कि समिति जो सिफारिशें करेगी, उनसे, उक्त सम्मेलन द्वारा निश्चित नीतिके पालनमें, प्रान्तीय सरकारोंको काफी सहायता प्राप्त होगी।

समितिका कार्य, निम्नलिखित बातोंके सम्बन्धमें सिफारिशें देना होगा।

(१) स्वास्थ्य-रक्षा और रोगके निरोध वा उपचारकी दृष्टिसे, आयुर्वेदीय तथा यूनानी तिब्बती जैसी देशी चिकित्सा प्रणालियोंके अनुसन्धानके लिये और उसकी छानबीन में वैज्ञानिक विधियोंसे काम लिये, जानेके लिये व्यावस्था की जानी चाहिये। (२) देशी चिकित्सा प्रणालियोंके शिक्षणकी सुविधाएं सुधारनेके लिये उपाय किये जाने चाहिये। (३) इन चिकित्सा प्रणालियों द्वारा चिकित्सा व्यवस्था पर सरकारी नियंत्रण रखना कहां तक उचित है, और (४) एक व्यापक योजनाके रूपमें, सर्व साधारणके लिये इन देशी चिकित्सा प्रणालियोंको अधिक उपयोगी बनानेके लिये, अन्य क्या उपाय किये जाने चाहिये।

ऐतिहासिकसामग्री और कागजातका संरक्षण

"हमारी संस्कृति और साहित्य इतना महान है कि हम उसपर गर्वकर सकते हैं किन्तु हमें साथ ही यह भी स्वीकार करना चाहिये कि हमने इतिहास लेखन अथवा ऐतिहासिक सामग्रीके संकलनमें निन्दनीय उपेक्षा दिखलायी है।" भारत सरकारके शिक्षा सदस्य श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्यके यह शब्द उनके उस भाषणके हैं जिसे उन्होंने भारतीय ऐतिहासिक रेकर्ड कमिशनके २३ वें अधिवेशनका इन्दौरमें उद्घाटन करते हुए दिया। उन्होंने यह भी कहा कि किसी भी देशमें ऐतिहासिक महत्वके इतने आन्दोलन और इतनी घटनाएं नहीं हुईं जितनी इस देशमें सभ्यता और राज्य प्रबन्धकी स्थितिकी—जिस स्थितिमें अंगरेजोंने इस देश पर अधिकार प्राप्त किया—स्थापनासे पहले हो चुकी हैं। किन्तु इतने पर भी हमारा साहित्य इतिहासकी दृष्टिसे बहुत ही अपूर्ण है और ऐतिहासिक सामग्री जुटानेकी दिशा में हमारी चिन्ता और यत्न बहुत ही त्रुटिपूर्ण है। यह तो अभी हाल की ही बात है कि हम इस दिशामें वास्तविक प्रयत्न करने लगे हैं।

स्वयं सेवा भाव से कार्य करनेसे बहुत कुछ हो सकता है किन्तु अब ऐसा समय आ पहुंचा है जब सरकार का, चाहे वह प्रांतोंमें हो और चाहे देशी राज्योंमें, नियमित रूपसे प्रयत्न करना चाहिये और इसके साथ ही भारत भरमें ऐतिहासक कागज-पत्रोंका अन्वेषण करने और उन्हें संरक्षित करनेके लिये सुसंगठित और समान नीतिका अवलम्बन करनेकी आवश्यकता है।

कागज-पत्र संरक्षक का कार्य अब कौशलहीन नहीं समझा जाता। यह तो एक विशिष्ट कार्य है जिसको पूरी तरहसे निभानेके लिये दक्षता, शिक्षण और स्वाभाविक रुचिकी आवश्यकता होती है। लोगोंको मालूम होना चाहिये कि इस कार्यके सम्बन्धमें एक नये विज्ञानको उन्नत किया गया है। इस दिशामें इम्पीरियल रेकार्ड विभाग मूल्यवान् कार्य कर रहा है किन्तु फिर भी इस कमीशनके तत्वावधानमें अब भी बहुत कुछ करनेकी आवश्यकता है। है। मुझे आशा है कि दिल्लीमें जो कार्य हो रहा है वह भारतके अन्य महत्वपूर्ण केन्द्रों और एशियाके अन्य देशोंके आदर्श बन सकेगा।

क्षय चिकित्सा--साध्य है

भारत सरकारके स्वास्थ्य विभागके क्षय रोग संबंधी सलाहकार कर्नल आर० विश्वनाथ ने क्षय रोगके सम्बन्धमें कई ज्ञातव्य बातोंपर प्रकाश डालते हुए कहा कि भारतमें क्षय रोगके सम्बन्धमें चार प्रकारकी भ्रान्त धारणाएं फैली हुई हैं। पहली बात यह है कि भारतमें अधिकांश लोग क्षय तपेदिक को पैतृक रोग समझते हैं और यह भ्रममूलक धारणा केवल इसी देशके लोगों तक सीमित नहीं है बल्कि बहुतसे पाश्चात्य देशोंमें भी फैली हुई है लेकिन क्षय पैतृक रोग कदापि नहीं है। इस रोगसे ग्रसित मातापिताकी सन्तान बचपनसे ही इस रोगके सम्पर्कमें रहनेके कारण ही क्षय ग्रस्त हो जाती है। यदि बच्चोंको उनके मां बापसे अलग करके दूसरों द्वारा उसका पालन कराया जाय तो उन्हें क्षय रोग नहीं हो सकता।

दूसरी गलतफहमी यह है कि क्षय रोग असाध्य है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रति वर्ष पांच लाख आदमी इस रोग से मरते हैं किन्तु इसका कारण यही है कि बहुतोंको रोगके प्रारम्भमें ही निदान और चिकित्साकी सुविधा नहीं मिल पाती। क्षय चिकित्सालयोंके रेकार्ड देखनेसे पता चलता है कि जिन रोगियोंकी चिकित्सा प्रारम्भिक आक्रमणके समय से ही आरम्भ हो जाती है उनमेंसे ८०से ९० फीसदी आदमी अच्छे हो जाते हैं। कहा तो यहां तक जाता है कि क्षय रोग ही सबसे अधिक चिकित्सासाध्य रोग है।

तीसरी भ्रांति जलवायुके सम्बन्धमें है। लोगोंका अब भी यही ख्याल है और यह खयाल औसत आदमीका नहीं बल्कि डाक्टरों तकका है कि क्षय-चिकित्साके लिये पहाड़ोंकी हवा और चीड़के जंगल बहुत जरूरी हैं। किन्तु कर्नल विश्वनाथन्की धारणा यह है कि जो रोगी उसी जलवायुमें आरोग्य लाभ करता है जिसमें वह रहता आ रहा है और बादमें भी रहता है। उसमें उसे आरोग्य लाभ करनेके लिये विशेष रूपसे अनुकूल वातावरण मिलता है और पहाड़ोंसे स्वस्थ होकर मैदानोंमें आनेवालेकी अपेक्षा वह मजेमें रहता है।

चौथी भ्रान्ति इस रोगके संक्रामक होनेके सम्बन्धमें है। उनका कहना है कि संक्रमण कफ और थूकसे अधिक फैलता है। जबतक रोगी आपके मुंहपर ही न खांस दे और जबतक वह इधर थूकाथाकी न करके उगालदानमें ही थूका करे तबतक वह पास रह कर भी किसीमें क्षयकी छूत नहीं लगा सकता।

प्रायः सभी जगह लोग क्षय-चिकित्साके अस्पताल या क्लिनिकको बस्तीके समीप बनानेका विरोध करते हैं। किन्तु यदि क्षय अस्पताल घनी बस्तियोंके बीचोबीचमें हो तो इससे कोई हानि नहीं। क्योंकि यदि रोगी अस्पताल के अन्दर रहेंगे तो वे बाहर न थूक सकेंगे और अस्पतालमें उनके थूकको वैज्ञानिक विधिसे नष्ट किया जायगा। क्षय रोग तो उन्हीं रोगियोंसे फैलता है जो अस्पतालसे बाहर रह कर जहां तहां थूका करते हैं। मद्रास शहरमें एक बहुत बड़ा क्षय अस्पताल शहरके बिलकुल बीचोबीचमें है और यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि इस अस्पतालके बस्तीके अन्दर होनेसे क्षयके प्रकोपको काफी कम किया जा सका है। इसके लिये काफी संख्यामें क्लिनिक स्थापित होनेकी आवश्यकता है। पाश्चात्य देशोंके मान दण्डके अनुसार प्रति १०,००० व्यक्तियोंके पीछे एक क्लिनिक होना चाहिये।

फोटो-ग्राफी और संरक्षण

भारत सरकारके व्यापार विभाग द्वारा २१ दिसम्बर १९४६ को प्रकाशित एक विज्ञप्तिके अनुसार फोटो-ग्राफीमें प्रयुक्त रसायनिक सामग्रियोंपर सरकारने संरक्षण स्वीकार कर लिया है। विज्ञप्तिमें कहा गया है कि फोटो-रसायनिक उद्योगके दावेपर विचार करके 'टैरिफ बोर्ड'ने सिफारिशकी है कि ब्रिटेनसे आनेवाले सोडियम-थियासल्फेट पर तीन वर्षके लिये ९ रुपया प्रति हन्डरवेटके हिसाबसे परिमाणानुसार संरक्षण कर लगा दिया जाय और ब्रिटेनसे आनेवाले सोडियम-सल्फाइट तथा सोडियम बाइसल्फाइट पर मूल्यानुसार २४ प्रतिशतका वर्तमान राजस्व कर तथा इन्हीं वस्तुओंके अन्य देशोंके आयात पर मूल्यानुसार ३६ प्रतिशतका वर्तमान राजस्व कर, उन्हीं दरोंसे परिमाणानु-सार करोंमें परिवर्तित कर दिया जाय, जो ३ साल तक लागू रहे। टैरिफ बोर्डने यह भी सिफारिश की है कि भार-तीय रासायनिक उद्योग, फोटोग्राफी तथा फिल्म उद्योगके काम आनेवाले अन्य रासायनिक, द्रव्य भी तैयार करे।

भारत सरकारने बोर्डकी सिफारिशें स्वीकार कर ली है और सोडियम थियोसल्फेट पर वर्तमान मान-करकी जगह, ७॥ रुपया प्रति हंडरवेट परिमाणानुसार कर लगाने का निश्चय किया है, साथ ही ब्रिटेन तथा बर्माके आयात मालपरके तरजीही राजस्व करोंकी जगह, क्रमशः ९ रु० तथा २॥ रु० प्रति हंडरवेटके परिमाणानुसार संरक्षण कर लगानेका निश्चय किया है। सोडियम सल्फाइट तथा सोडियम बाइ-सल्फाइटके आयातपर लगे वर्तमान राजस्व करोंकी जगह, ८ रु० तथा ४ रु० प्रति हन्डरवेट परिमाणा-नुसार संरक्षण कर लगानेका निश्चय किया गया है।

किन्तु साथ ही, सरकार चाहती है कि फोटोग्राफी के काम आनेवाले जो रासायनिक द्रव्य देशमें तैयार हों, वे ब्रिटेन तथा अमेरिकामें तैयार हुई उन्हीं चीजोंकी कोटि के होने चाहियें।

—*—*—*—



हिन्दी साहित्य सम्मेलन

कराचीमें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके ३४ वें अधिवेशनके अध्यक्ष पदसे भाषण करते हुए श्री श्री वियोगी हरिने भाषाके स्वरूप, वर्तमान साहित्यिक प्रवृत्तियों एवं साहित्यक सम्भावनाओंका गम्भीर विश्लेषण करते हुए अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये। उन्होंने कहा कि यदि समन्वयके विचारसे राष्ट्र-भाषाको बिल्कुल नये सांचेमें ढाला जा रहा हो, तो मुझे इतना ही कहना है कि समन्वयीकरणमें भाषाकी मूल प्रकृतिका हमें पूरा ध्यान रखना होगा। यह व्याख्या कोई खास मानी नहीं रखती कि हमें ऐसी जबानमें लिखना चाहिये, जिसमें न संस्कृतके कठिन शब्दोंकी अधिकता हो और न अरबी-फारसीके मुश्किल लफ्ज इस्तेमाल किये जायें, और जिसे सर्वसाधारण समझ लें। विषयको देखते हुए हम जान-मानकर कठिन शब्द नहीं रखेंगे, पर संभव नहीं कि हमारी भाषामें यथा स्थान संस्कृतके तत्सम तथा तद्भव शब्द प्रचुरतासे उपयोग में न लाये जायें। विदेशी भाषाओंके जो शब्द हमारे नित्य के व्यवहारमें आते हैं और घुल-मिल गये हैं वे हिन्दीमें हमेशा आदरका स्थान पायेंगे। आवश्यकतानुसार निर्बाध रूपसे हम नये शब्दोंको भी खपाते रहेंगे। इतना ही नहीं राष्ट्र-भाषाको अधिक समृद्ध बनानेके विचारसे भिन्न भिन्न जनपदों और प्रांतोंके बहु-अर्थगर्भित समर्थ और सुन्दर शब्दोंका भी हम उसमें समावेश करेंगे। समन्वयका मैं भी विरोधी नहीं, प्रेमी हूं। किन्तु समन्वय वैसा, जैसा रागमें भिन्न-भिन्न स्वरोंका। प्रत्येक रागका, उसकी अपनी प्रकृतिके अनुसार, बंधा हुआ सरगम होता है। इस स्वरको यहां इतना स्थान मिला है, तो उस या उन स्वरों को भी उतना ही मिलना चाहिये, अथवा यह स्वर मध्यम लगाया गया है, तो वह भी मध्यम ही लगाना चाहिये—यदि इस न्याय नीतिको लेकर आप सरगमकी पुनर्रचना करने बैठेंगे तो उससे कौन-सा राग बनेगा? इस नीतिसे भला कभी सामंजस्य सिद्ध हुआ है? यही बात भाषाके सम्बन्धमें भी है। जिस प्रयत्न द्वारा हमारी भाषाकी प्रकृति का अंग-भंग होता हो, उसे असुन्दर और विरूप बनाया जाता हो, उस प्रयत्नका चाहे जो नाम दिया जाये, पर उसे समन्वय या सामंजस्यका प्रयत्न नहीं कहा जा सकता असली सिर काट कर उसकी जगह बकरेका सिर चिपका देनेसे दक्ष प्रजापतिकी जो शकल बनी थी उसे देखकर तो भगवान रुद्र भी खिलखिलाकर हंस पड़े थे! उस विचित्र आकृतिको नर और अजाका समन्वय कहनेके लिये क्या आप तैयार हैं? इस प्रकारके असामंजस्य पूर्ण कृत्रिम प्रयत्नों से न कभी समन्वय हुआ है और न होगा।

अच्छा तो यह होगा कि हिन्दी और उर्दूको अपने अपने रास्ते बढ़ने और फैलने दिया जाये। बिना किसी बाहरी जबनके, पहलेकी तरह, आपसमें अपने-आप दोनों अनजताये आदान-प्रदान क्यों न करती रहें? राष्ट्रके विचारों और भावोंको व्यक्त करनेकी जिसमें इतनी अधिक सामर्थ्य होगी वह उतने ही बड़े जन-समूहको स्वयं अपनी ओर खींच लेगी। उद्यानमें आप सभी फूलोंको अपने-अपने रसमें महकने दें। एक पेड़का फूल तोड़कर दूसरे पेड़की डाली पर न खोंसते फिरें। भ्रमर किन फूलोंपर जाकर बैठते हैं और किनपर नहीं इस व्यर्थकी चिंतामें न पड़ें—यह पसंदगी तो आप कृपाकर रस-ग्राही भ्रमरोंपर ही छोड़ दें। प्रकृत रसिकोंके आगे गिने-चुने फूलोंके गुलदस्ते सजा-सजा कर न रखें।

कहानी, उपन्यास और नाटक

कहानी, उपन्यास, नाटक—इन अंगों पर मुझे अधिक नहीं कहना। कविताकी आलोचनाके अन्तर्गत कला-पक्षके इन अंगोंका भी लगभग समावेश हो जाता है। केवल इतना ही निवेदन करूंगा कि हमारे कलाकार योरप-अमेरिकाके साथ इन क्षेत्रोंमें फिलहाल प्रतिस्पर्धा न करें। प्रतिभा और लेखनीको अब अन्य दिशाओंमें मोड़ना चाहिये। साहित्य शरीरके ये अंग कुछ फूल-से गये हैं, वैसे स्वस्थ नहीं बन पाये। समाजकी सुरुचि और शील रक्षाका ध्यान न रखनेका स्वाभाविक परिणाम यही होगा। चौराहों और स्टेशनों पर बिकने वाली भड़कीली पत्रिकाओंमें ऐसी-ऐसी कहानियां आ रही हैं, जिनसे भ्रष्टताका खुले-आम प्रचार होता है। इधर नरंकुश चित्रपट हमारे नाट्य-साहित्यका गला घोंट रहे हैं। रेडियो पर जो फिल्मी गाने आते हैं वे कितने भद्दे और वीभत्स होते हैं। समाजके शील और पौरुषको नष्ट-भ्रष्ट करने वाले सिनेमा-चित्रों पर कड़ी नजर रखनेके लिये हमें अपनी राष्ट्रीय सरकार पर जोर डालना चाहिये। हमारे पत्रकार भी इसके विरोधमें आन्दोलन कर। रद्दी कहानियों, कविताओं और विज्ञापनों को छापनेसे साफ इन्कार कर दें।

वैज्ञानिक साहित्यका निर्माण

वैज्ञानिक साहित्यमें सन्तोषजनक प्रगति न कर पानेके दोष-भागी थोड़े बहुत अंशोंमें हम सभी हैं। इस अभावकी पूर्ति आवश्यक होनी चाहिये। सन्तोषकी बात है, कि हिन्दी-भाषी प्रान्तोंके विश्वविद्यालयोंका ध्यान हिन्दी माध्यमके द्वारा उच्च शिक्षा देनेकी ओर जाने लगा है। दूसरे भी कुछ विश्व-विद्यालयोंने हिन्दीको एक वैकल्पिक विषय मान लिया है। हिन्दीके विद्वान लेखकों पर इससे एक भारी दायित्व आ गया है। प्रान्तीय शिक्षा-विभाग, स्वतन्त्र शिक्षण-संस्थाएं और ऊंचे दर्जेके प्रकाशक सभी इस उपयोगी साहित्य-निर्माणके कार्यमें हाथ बटायें। विश्व-विद्यालयोंमें विज्ञान तथा अन्य शास्त्रोंके कई अच्छे प्रकांड विद्वान अध्यापक हैं, जो हिन्दीके प्रेमी ही नहीं, उसके अच्छे लेखक हैं। वे अंगरेजीमें न लिखकर कृपापूर्वक क्यों न इन आवश्यक विषयों पर हिन्दीमें ही उच्चकोटि की पुस्तकें तैयार करें? उनके ऊंचे पांडित्य और गम्भीर विद्वताका लाभ उनकी अपनी देश-भाषाको मिलना ही चाहिये। सम्मेलन इन सबको समय-समय पर प्रेरणा भर देता रहे। दृढ़ता और तेजीसे काम लिया जाये, तो तीन या चार वर्षके भीतर ही विविध विषयोंके सैकड़ों अच्छे ग्रंथ तैयार हो सकते हैं।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

सम्मेलनने जिन परिस्थितियोंमें कार्य किया उनको बहुत अनुकूल नहीं कहा जा सकता। राज्यसेउसे प्रोत्साहन मिल भी नहीं सकता था। उसने सम्मेलनको सन्देह की ही दृष्टिसे देखा। श्रीमन्तोंने भी प्रायः उपेक्षा की, हिन्दीके कामको उन्होंने शीघ्र फलदायक नहीं समझा। हमारे विद्वानोंने राजभाषा अंग्रेजीमें लिखना शायद अधिक गौरव-पूर्ण माना। सम्मेलनको बड़ी विषम परिस्थितियोंमें से गुजरना पड़ा। समिति साधनोंको लेकर वह अपनी जीवन यात्रा तय कर रहा है। विरोध और अप्रिय असहकारका सामना उसने विनम्रतापूर्वक किया है। उसने अपने अस्तित्वको विनाशके पथसे बचाया है। उसने कभी भी साहित्यिकताका तथा राष्ट्रीयताका अहित नहीं किया। निश्चय ही सम्मेलनने राष्ट्र भाषा हिन्दीकी पताकाको ऊंचा किया है।

सम्मेलनका मार्ग लोक-सेवाका मार्ग है। भारत-राष्ट्रकी सेवा उसने बिना किसी भेदभावके की है। जाति-गत, धर्मगत और सम्प्रदायगत भेद-भावको उसने सदा दूर रखा है। जैसे राष्ट्र सबका है, वैसे भाषा भी सबकी है। मैं फिर दोहराऊंगा कि सम्मेलन जिस राष्ट्र भाषा हिन्दी का प्रचार कर रहा है, उसका किसी भी भाषासे वैर या विरोध नहीं है। भाषायें तो सभी ज्ञान-विज्ञानका प्रकाश देनेवाली है। यों तो भाषाके रूपमें अंग्रेजीसे भी हमारा कोई विरोध नहीं है। पर जिस दुष्टतासे उसने हमारे मानसको मोहित या आक्रान्त कर रखा है, उससे निस्संदेह अंग्रेजीके साथ हमारा विरोध है, वैर है। निश्चय ही उन सब स्थानोंसे हम अंग्रेजीको निकाल बाहर कर देना चाहते हैं, जहां उसे पैर नहीं रखना चाहिये था। इस अंग्रेजी ने ही हमें अंग्रेजोंका क्रीतदास या 'मानसपुत्र' बनाया है। हमारे राज-काजमें, हमारे आपसके व्यवहार में, हमारी सार्वजनिक संस्थाओंमें अंग्रेजी भाषा क्यों दखल दे? अंग्रेजीके साथ ही अंग्रेजोंको भी हमें पद-च्युत करना है, यह हमारी प्रतिज्ञा है।

पुस्तक परिचय

अगस्त क्रांतिकी लहरोंमें पाटलिपुत्र लेखक- डा० अयोध्या प्रसाद प्रकाशकः राजनीति सदन कच्ची घाट, पटना सिटी, मूल्य सवा रुपया

अगस्त क्रान्ति भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राममें अपना विशेष स्थान रखती है। बिहार अगस्त क्रांति का मजबूत मोर्चा था और पटना उसका मजबूत किला। पटना सेक्रेटेरियटपर धावा और कई छात्रों-युवकोंका बलिदान क्रांतिके ऐसे दृश्य हैं जो संसारकी क्रांतियोंमें अन्यत्र कम देखे गये हैं। लेखकने क्रांतिमें सक्रिय भाग लिया था उसने अपनी आंखों शहीदोंको हंसते हंसते बलिवेदीपर चढ़ते देखा और उसने गोरोंके वे अमानुषिक जुल्म देखें जिन्हें देख पशुता भी शर्मा गयी थी। इस पुस्तकमें केवल पटनाका इतिहास अंकित किया गया है। अन्य स्थानोंका भी इतिहास इसी प्रकार लिखा जाना चाहिये। पुस्तक उपादेय और संग्रहणीय है।

किसोरावस्थाकी नागरिकता लेखक—कालिदास कपूर एम० ए० एल०टी०, प्रकाशक टी० सी० ई० जर्नल्स एण्ड पब्लिकेशन्स लिमिटेड, लखनऊ, मूल्य—बारह आने।

प्रस्तुत पुस्तक किशोरोंको नागरिकताका ज्ञान करानेके उद्देश्यसे लिखी गयी है। हिन्दीमें इस विषयपर बहुत ही कम पुस्तकें हैं। लेखकने कई वर्ष किशोरोंके शिक्षण में ही बिताये हैं अतः उनको इस विषयकी अच्छी जानकारी और किशोर मनकी बातोंका ज्ञान है। यह पुस्तक उसी दृष्टिसे लिखी गयी है। उस पुस्तकको हमारे विद्यालयोंके पाठ्यक्रममें शामिल किया जाना चाहिये।

कृष्ण काव्य—पंडित राधाकृष्ण त्रिपाठी 'कृष्ण', प्रकाशक पं० सत्यदेव उपाध्याय, सरस्वती प्रेस मुरादाबाद मूल्य सवा रुपया।

प्रस्तुत पुस्तक छन्दोबद्ध ईश्वर स्तुति-प्रार्थनाका संग्रह है। कविने अपने उद्गार बड़ी सरल भाषामें व्यक्त किये हैं। भक्त हृदयों, वृद्ध-वृद्धाओंको पुस्तककी प्रार्थनाएं पढ़कर बड़ा आनन्द मिलेगा। लेखकने भक्त जनों और धार्मिक संस्थाओंको पुस्तककी कुछ प्रतियां बिना मूल्य भेंट करनेकी घोषणा की है।

आधुनिक संसार—लेखक कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार प्रकाशक हिन्दी भवन लाहौर। मूल्य चार रुपये।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखकने आधुनिक संसारके सम्बन्ध में बहुत सी तथ्यपूर्ण बातें संग्रहीत की है। और उसे अपने इस कार्यमें सफलता भी काफी मिली है। विद्यार्थी समाज का इस पुस्तकसे बड़ा उपकार होगा साथ ही राजनीतिक बातोंसे दिलचस्पी रखनेवालोंके लिये बड़ी उपयोगी है। लेखकने यह पुस्तक लिख कर एक अभावकी पूर्तिकी है। ऐसी पुस्तकोंका प्रचार प्रसार वांछनीय है।

—शिवनारायण शर्मा।

'प्रवासी'

दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंके अनन्य सेवक श्री भवानी दयाल सन्यासीने लिखा है कि:—मैंने 'प्रवासी' नामक एक मासिक पत्र हिन्दी और अंग्रेजीमें निकलनेका संकल्प कर लिया है। यह पत्र सत्याग्रह संग्रामका भारतमें सदेश-वाहक होगा। भारत सरकारने मुझे केवल १०० पृष्ठ का मासिक पत्र निकालनेकी आज्ञा दे रही है और १००० प्रतियोंसे अधिक छापनेकी नहीं। इस काममें मैं अपने देशवासियोंसे अपील करता हूं कि 'प्रवासी' के ग्राहक बनकर 'प्रवासी' में विज्ञापन देकर और 'प्रवासी' के संचालनमें आर्थिक सहायता देकर प्रवासी भारतीयोंके प्रति क्रियात्मक सहानुभूति प्रकट करें। इसकी अधिकांश प्रतियां सरकारी अधिकारियों, देशके प्रसिद्ध नेताओं और पत्रकारोंके पास मुफ्त ही जायेगी। इस स्थितिमें भारतीय जनताकी आर्थिक सहायताके बिना 'प्रवासी' का प्रकाशन और संचालन सर्वथा असम्भव है। कमसे कम प्रथम वर्षके लिये मुझे पन्द्रह-बीस हजार रुपयेकी आवश्यकता है। क्या हमारे देशवासी दक्षिण अफ्रीकाके अपने वीर भाइयोंके हितके लिये इतनी छोटी रकम देनेमें भी देर करेंगे। हमारे देशके एक ही व्यक्ति इस रकमको देकर मुझे चिन्तासे मुक्त कर सकता है। इस विपदकी घड़ीमें दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासी भाई आपसे बहुत कुछ आशा रखते हैं। मुझे पक्का विश्वास है कि जिनके हृदयमें प्रवासी भाइयोंके संग्रामसे कुछ भी सहानुभूति है वे इस अवसरको हाथसे न जाने देंगे और 'प्रवासी' के प्रकाशनमें अपनी उदारता और दानशीलताका परिचय देकर मेरा भार हलका कर देंगे। सब प्रकारकी सहायता इस पते से—

भवानी दयाल सन्यासी,
'प्रवासी' कार्यालय,
प्रवासी-भवन, आदर्शनगर, अजमेर,

नवलकिशोर सिंह द्वारा विश्वमित्र प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तामें मुद्रित और प्रकाशित।

Regd. No. C. 2230



सचित्र मासिक

विश्वमित्र



वार्षिक
मूल्य
६)

विश्वमित्र कार्यालय
क ल क त्ता

विषय-सूची

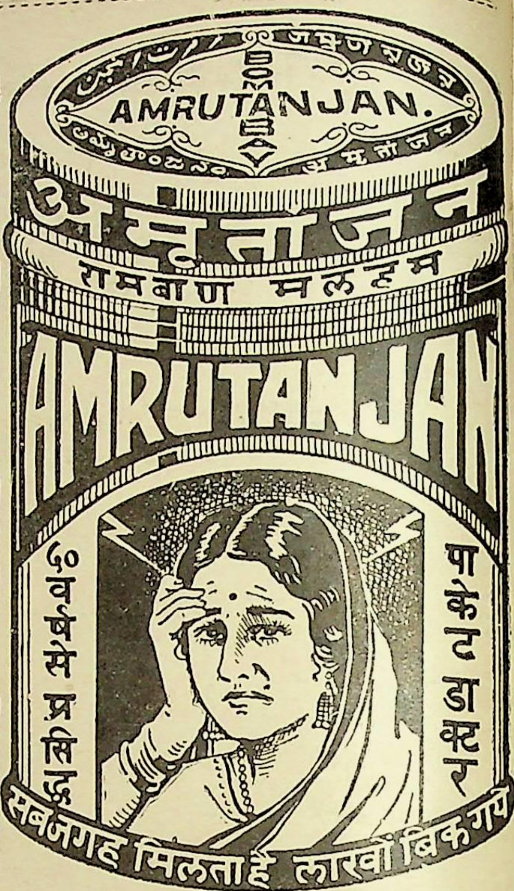


ताकत के लिए
बच्चों को

डोंगरे का

बालामृत देना चाहिए

विश्वमित्र



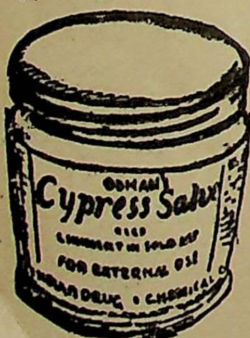
फौरन दर्द दूर करता है !

ओडमेन्स

साइप्रेस साल्वे (रजिस्टर्ड)

(पेन बाम)

इससे आपको आश्चर्यजनक लाभ होगा। बाहरी दर्द पर इस आश्चर्यजनक बामको शीघ्र एक बार लगा देने से तुरन्त आराम होगा। मूल्य १।) रु० प्रति डिब्बा। वी० पी० अलग। हर जगह मिलता है। दो आनेका स्टाम्प भेजनेसे नमूना भेजा जाता है।



सोल एजेण्ट—

एंग्लो इण्डियन ड्रग एण्ड केमिकल कंपनी

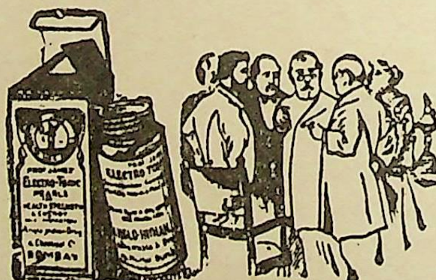
बम्बई।

पढ़िये और मुफ्त परीक्षा कीजिये

प्रोफेसर जेम्स एलेक्ट्रो टानिक पर्ल्स

(रजिस्टर्ड)

मुफ्त परीक्षा



यदि आपको किसी भी प्रकारकी स्नायविक रोग, हृदयकी धड़कन, सुस्ती, धुंधलापन, कलेजेमें बेहोशी का दर्द, धातु दुर्बलता, पतला रक्त, पीठमें दर्द, भूख की कमी आदि रोगके लक्षण मालूम होते हों तो प्रोफेसर जेम्स एलिकट्रिक पर्ल्स (रजिस्टर्ड) के लिये ।) पोस्टेज भेजकर दो दिनकी दवा मंगाइये और परीक्षा कीजिये और इसका आश्चर्यजनक लाभ देखिये। ४० पर्लकी शीशीका दाम २) रु० डाक व्यय अलग।

एंग्लो इण्डियन ड्रग एण्ड केमिकल कं०, बम्बई (२)

मासिक

विश्वमित्र

सम्पादक—

शिवदेव उपाध्याय 'सतीश' बी० ए०, बी० एल०

फरवरी १९४७ वर्ष १५, संख्या---२ फाल्गुन २००३

मिलन यामिनी

प्राण, केवल प्यार तुमको दे सकूंगा !

कोकिला अपनी व्यथा जिससे जताए,
सुन पपीहा पीर अपनी भूल जाए,
वह करुण उद्‌गार तुमको दे सकूंगा !
प्राण, केवल प्यार तुमको दे सकूंगा !

प्राप्त मणि-कंचन नहीं मैंने किया है,
ध्यान तुमने कब वहां जाने दिया है,
आंसुओं का हार तुमको दे सकूंगा !
प्राण केवल प्यार तुमको दे सकूंगा !

सत्यने छूने भला मुझको दिया कब,
किंतु उसने तुष्ट ही किसको किया कब,
स्वप्नका संसार तुमको दे सकूंगा !
प्राण, केवल प्यार तुमको दे सकूंगा !

फूलने खिल मौन मालीको दिया जो,
वीणने स्वरकार को अर्पित किया जो,
मैं वही उपहार तुमको दे सकूंगा !
प्राण, केवल प्यार तुमको दे सकूंगा ।

१९४६ के चिता-भस्मों पर

श्री शिवदेव उपाध्याय बी० ए० बी० एल०

एक आशा और एक आशंका है जिसे १९४६ अपनी विरासतमें १९४७ के लिये छोड़ कर गया है। १९४६ में द्वितीय महायुद्धकी समाप्तिके पश्चात् सभी अब कभी युद्ध न होगा की आशाएं करते थे और १९४६ में 'युद्ध छिड़नेमें अभी कितनी देर है' के आशंकापूर्ण प्रश्न करते रहे हैं। और १९४७ इन दोनों ही—आशाओं एवं आशंकाओंका उत्तर देगा। प्रथम विश्वसमर (१९१४-१९१८) के पहले लार्ड ग्रेने कहा था कि चिराग गुल हो रहा है और हम अब पुनः प्रकाशके दर्शन न कर सकेंगे और द्वितीय महासमरके पहले १९३६ में लार्ड बाल्डविनने कहा था कि, "मुझे ऐसा लगता है, मानो हमलोग एक पागलखानेमें रह रहे हों" और वस्तुतः सितम्बर १९३९ से १९४५ तक संसार एक भयंकर एवं कुत्सित पागलखाना बना रहा है।

और संसार आज भी अस्थिर एवं अव्यवस्थित है। १९४६ का तलपट आशाएं एवं आशंकाएं—दोनोंकी सम्भावनाएं समान रूपसे उपस्थित करता है। समान रूपसे प्रगतिशील एवं प्रतिगामी शक्तियां अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिये प्रयत्नशील हैं और इन दोनों विभिन्न पथगामिनी शक्तियोंका संघर्ष अस्वाभाविक नहीं है, अतः दोनों परस्पर संघर्षशील हैं और एक नहीं अनेक अंचलोंमें यह संघर्ष प्रत्यक्ष हो रहा है। संसारके दो दो महासमर युद्धके अन्त एवं गणतन्त्रकी प्रतिष्ठाके लिये हुए हैं—बल्कि अधिक सच यह कहना होगा कि गणतन्त्रकी प्रतिष्ठाके लिये हुए बताये जाते हैं। १९४६ में विश्वके विभिन्न अंचलोंमें होनेवाली घटनाओंका स्वरूप और उनकी सम्भावनाओंने इस आशाके लिये यथेष्ठ कारण उत्पन्न किये है कि गणतंत्रकी प्रतिष्ठाके लिये युद्धघोष करनेवाले राष्ट्रोंने विजेताके रूपमें अपनी घोषणाओंके प्रति निर्लज्ज उपेक्षा दिखायी है और संकटमुक्त होकर अपनी संकटकालीन घोषणाओंको स्वतः पराहत करनेकी उनकी मनोवृत्ति अत्यन्त विघातक रूपोंमें अभिव्यक्त हुई है। यह अभिव्यक्ति विश्व शांतिके लिये विपरीत कारणों की सृष्टि करती है और यह स्पष्ट करती है कि आजके विजेता राष्ट्रोंने अटलांटिक अधिकार-पत्रमें जो घोषणाएं की थीं, उनका उद्देश्य फैसिज्म और नात्सीवादके विरुद्ध नैतिक समर्थन प्राप्त करना अथवा प्रवंचनापूर्ण साधनोंका अवलम्बन कर, आदर्शकी दुहाई देकर अपेक्षाकृत अवनत राष्ट्रोंकी सहायता प्राप्त करना था और सम्भव है, इन दोनों ही उद्देश्योंकी प्रेरणा विजेताओंकी संकटकालीन घोषणाओंके पीछे रही हो। युद्धोत्तरकालीन तथ्य इस सन्देहको भी स्पष्ट करते हैं कि अपने अधीनस्थ देशों, उपनिवेशों एवं मैण्डेट प्रणालीके अन्तर्गत देशोंमें स्वाधीनताके होनेवाले संघर्षोंको प्रतिहत करना भी एक उद्देश्य रहा हो। राजनीतिक साम्राज्यवाद एवं तज्जनित शोषण एवं आर्थिक साम्राज्यवादसे त्रस्त अपेक्षाकृत अवनत एवं परतन्त्र देशोंमें युद्धकालीन स्थितिसे लाभ उठानेकी प्रवृत्ति न आये और इसके कारण युद्धरत प्रबल राष्ट्रोंके युद्धप्रयासोंमें बाधाएं उपस्थित न हो जायें, इस भावनासे भी शासक राष्ट्रोंने शासित देशोंके लिये अपनी घोषणाओं द्वारा आशाका सन्देश दिया और उनमें इस विश्वासके लिये आदर्शकी दुहाई दी कि युद्धोत्तरकालमें सभीको स्वाधीनता और समानताका पद प्राप्त होगा।

तत्कालीन युद्धरत और आजके विजेता राष्ट्रोंके इन आदर्शमय आश्वासनों एवं घोषणाओंका परिणाम भी आशाके अनुकूल ही हुआ। प्रायः सभी उपनिवेशों एवं अधीनस्थ देशोंने स्वेच्छा एवं अनिच्छासे—जैसे भी युद्धमें योगदान दिया, फासिज्मकी पराजय हुई नात्सीवाद नतमस्तक हुआ और बहुत बड़े मूल्यपर उन्होंने समानता एवं स्वाधीनताके लिये प्राणोंकी बाजी लगायी। ऐसा प्रचार किया गया था और यह प्रचार अत्यन्त प्रभावोत्पादक प्रमाणित हुआ कि एक बार मित्रराष्ट्रोंकी विजय हुई नहीं कि संसारमें सदाके लिये सभीकी दासताकी श्रृंखलाएं सर्वथा टूट जायंगी।

किन्तु युद्धोत्तर कालमें विजेता राष्ट्रोंकी उन घोषणाओं का क्या हुआ ? उपनिवेशों एवं अधीनस्थ देशोंकी समानता और स्वाधीनताका क्या हुआ ? पराधीन देशों ने एक बार नात्सीवाद और फैसिज्मके विरुद्ध युद्ध करके

उन्हें पदानत किया और आज दूसरी बार उन्हें पुनः उसी फैसिज्म और उसी फैसिज्मके आधारपर अवस्थित साम्राज्यवादके विरुद्ध अपनी स्वाधीनताके लिये युद्धरत होना पड़ रहा है।

संगठित षडयंत्र

बाहरी प्रबल शत्रुओंसे निपटकर साम्राज्यवादियों ने अपने आन्तरिक शत्रुओंसे निपटने की तैयारी की है। विगत वर्षमें उनकी इस तैयारीके तथ्य स्पष्ट हुए और उन्होंने अब अपनी सारी संगठित शक्तियों द्वारा अपने साम्राज्यके अन्तर्गत युद्ध जारी कर दिया है। समस्त एशियामें साम्राज्यवादियोंका यह षड्यन्त्र और उनका यह संगठित षड्यन्त्र कूटनीतिक ही नहीं सामरिक कार्यक्रमके अनुसार चल रहा है। इण्डोनेशियामें डच साम्राज्यवाद और इण्डोचीनमें फ्रांसीसी साम्राज्यवादको अक्षुण्ण रखनेके लिये जो कूटनीतिक एवं ध्वंसात्मक युद्ध चल रहा है, ब्रिटिश साम्राज्यवाद उसके उत्तरदायित्वसे अपनेको मुक्त नहीं कर सकता। ब्रिटिश मजदूर सरकारके प्रधान मंत्री मि० एटलीने स्पष्ट घोषणा की थी कि डच साम्राज्यके प्रयत्नोंका समर्थन ब्रिटेनका उत्तरदायित्व है। इण्डोचीन में आज जो भयंकर युद्ध चल रहा है, उसके सम्बन्धमें भी ब्रिटेनका संभवतः यही उत्तरदायित्व होगा। अर्थ स्पष्ट है कि सभी साम्राज्यवादी देश एक दूसरेके साम्राज्यवादी हितोंके संरक्षणके लिये एक हैं। सुदूरपूर्वमें ब्रिटिश साम्राज्य की प्रतिष्ठा अव्यवस्थित हो चुकी है, अतः ब्रिटेन दक्षिण पूर्व एशियाई देशोंकी स्वाधीनताके प्रति अपने हितोंके आधारपर भी सहानुभूति पूर्ण विचार रखनेमें असमर्थ है। विगत वर्षकी विचार-धारामें सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यही है कि साम्राज्यवादी देशोंने पुनः अपनी युद्धकाल के पूर्वकी स्थितिको प्राप्त करनेका प्रयत्न युद्धोत्तरकालमें किया है और उनके इस प्रयत्नका उनके अधीनस्थ देशोंने प्रतिकार किया है।

यूरोप किधर ?

युद्धोत्तरकालमें यूरोप किधर जायगा, इसकी कुछ सम्भावनाएं आलोच्य वर्षमें स्पष्ट हुई हैं। यूरोपके कितने ही देश रूसके प्रभाव-क्षेत्रमें आ चुके हैं। किन्तु उनके सम्बन्धमें केवल इतना ही कहना काफी है कि वे रूसके प्रभाव क्षेत्रमें आ चुके हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि उक्त देशोंकी विचारधारा ब्रिटेनके विरुद्ध है। ब्रिटेनके अनुदार दलियोंने यूरोपकी इस स्थितिको ब्रिटेन और ब्रिटिश साम्राज्यवादके लिये भयावह मानकर नये रूपमें यूरोपके संगठनकी आवाज उठायी है और पिछले दिनों उन्होंने तद्विषयक विश्व-विचारधाराको समझनेका प्रयत्न किया है। बेविन द्वारा संचालित ब्रिटिश वैदेशिक नीतिको भी इस विचारसे प्रेरणा मिली है और सुदूरपूर्व सम्बन्धी दूसरे साम्राज्योंकी नीतिका ब्रिटेनने जो उत्तरदायित्व लिया है, उसका आधार यह भावना भी है। किन्तु ब्रिटेनके अनुदार दलियोंकी भावनाओंके विरुद्ध युगकी विचारधारा है और इसीलिये ब्रिटेनकी वैदेशिक नीति १०४६ में प्रायः असफल हो रही है। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें ब्रिटेन की भारी कूटनीतिक पराजय हुई है और उसे यूरोपीय मामले में अमेरिकाको प्रत्यक्ष रूपमें घसीटनेमें भी सफलता नहीं मिल सकी है। अमेरिकामें रिपब्लिकन दलके सीनेट और कांग्रेसमें बहुमत होनेके नाते ब्रिटिश मजदूर सरकारकी वैदेशिक नीतिके और भी विफल होनेकी आशंका है और उसकी आर्थिक नीतिको तो अमेरिकामें कितने ही विषयों के नियंत्रणोंके उठ जानेके कारण आघात लग चुका है।

अमेरिका किस ओर ?

अमेरिका किस ओरसे अनुमान लगाया जा सकता है, मानो अमेरिका निश्चित रूपसे किसी ओर हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि अमेरिका स्वतः किसी ओर नहीं, उसके आर्थिक हितोंके संरक्षणकी प्रेरणा उसकी भावी प्रगति एवं नीतिकी निर्णायक है। युद्धोत्तरकालमें अमेरिका एक सर्वाधिक प्रबल राष्ट्रके रूपमें उदित हुआ है और उसके बाद रूस है जिसकी विचारधारा विश्वके भावी स्वरूपका निर्माण करनेकी सम्भावनाएं रखती है। अमेरिकाकी सर्वशक्ति सम्पन्नता एवं रूसकी राजनीतिक प्रगतिशीलता, इन दोनोंका ही प्रभाव अन्य किसी भी राष्ट्रकी अपेक्षा संसारके अधिकाधिक व्यापक क्षेत्रोंपर है। ब्रिटेन युद्धोत्तरकालमें तृतीय श्रेणीका राष्ट्र हो चुका है और इसके कितने ही कारण हैं। सुदूरपूर्वमें ब्रिटिश सत्ताका प्रायः विलोप हो चला है। उसके साम्राज्यवादी हितोंपर कठोर आघात लगा है। उसका प्रभाव एवं प्रभुत्व अब भी है, किंतु ब्रिटिश साम्राज्यवाद हस्तगत हो चला है। उधर यूरोपीय देशोंमें ब्रिटिश प्रभाव विलुप्त प्राय है अतः विश्वकी भावी प्रगतिपर अमेरिका एवं रूसका जितना प्रभाव सम्भा-

ना है, उतना ब्रिटेनका नहीं। इसलिये अमेरिकामें पिछले दिनों जैसे परिवर्तन हुये हैं और जिनमें उनसे अधिक महत्वपूर्ण वहांके रिपब्लिकन दलकी विजय है, उनका व्यापक प्रभाव वहांकी आन्तरिक स्थितिपर ही नहीं, अन्यत्र भी पड़ेगा। ब्रिटेनके प्रति भी अमेरिकाके विचारोंमें परिवर्तन निश्चित सम्भावना प्रतीत होती है। उसकी आर्थिक नीतिका प्रभाव तो ब्रिटेनमें पिछले दिनोंसे ही स्पष्ट होने लगा है।

अमेरिकाकी रिपब्लिकन पार्टी अपेक्षाकृत अनुदार पार्टी है और अमेरिकन हितोंकी प्रधानता उसकी आन्तरिक एवं वैदेशिक नीतिका मूलाधार है। यूरोपके मामलेमें अमेरिकन हस्तक्षेपको लेकर यह पार्टी अधिकांशतः निरपेक्ष रहना चाहती है, लेकिन द्वितीय महासमरमें अमेरिकाने जिस प्रकार भाग लिया है, उसके कारण अमेरिका युद्धोत्तर कालमें भी यूरोपीय समस्याओंपर तटस्थ नहीं रह सकता। ब्रिटेन और अमेरिका दोनों देशोंसे एक प्रबल विचारधाराका प्रवाह रूसके पक्षमें और समान रूपसे एक दूसरी प्रबल विचारधाराका प्रवाह उसके विपक्षमें है। ब्रिटेन अधिकाधिक अमेरिकाकी ओर आकर्षित, बल्कि कहना चाहिये अमेरिकापर निर्भर होनेकी स्थितिमें आ पहुंचा। रहा रूस, तो रूसका विचार प्रवाह, चाहे जिस कारणसे भी हो, प्रगतिशील है और अपेक्षाकृत अवनत एवं दुर्बल राष्ट्रोंका आकर्षण रूसकी ओर है। रूसकी वैदेशिक नीति सर्वथा आलोचनाके परे नहीं है। किन्तु इतना स्पष्ट है कि ब्रिटेनके विगत इतिहासके अवांछनीय तथ्योंके कारण ब्रिटेनके प्रति जो आशंका एवं अविश्वास है, वह रूसके प्रति नहीं है। और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें उसके प्रति विभिन्न राष्ट्रोंका यह भाव उसके लिये अत्यधिक महत्वका है।

संयुक्त राष्ट्रमण्डल

प्रथम महायुद्धके पश्चात् राष्ट्र संघकी तरह द्वितीय महायुद्धके पश्चात् गठित संयुक्त राष्ट्रमण्डलपर भावी विश्वकी शान्तिकी आशा अथवा युद्धकी आशंका अवलम्बित है। १९४६ में राष्ट्रमण्डलने कुछ महत्वके निर्णय किये हैं, कुछ मौलिक समस्याओंके समाधानके लिये विवेकपूर्ण कदम उठाया है और कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नोंपर उसने आदर्शके सामने कूटनीतियोंको पराजित किया है। संयुक्त राष्ट्रमण्डलकी यह प्रगति भावी आशाओंके कारणों का निर्माण करती है और वर्तमान वर्ष यह प्रमाणित करेगा कि यह आशाएं कहांतक फलीभूत होती हैं। अणु शक्तिपर अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण, एवं निरस्त्रीकरणकी योजना यह दो महत्वके अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं हैं जिनके समाधानके लिये संयुक्त राष्ट्रमण्डलने कदम उठाया है और यदि वस्तुतः उसके तद्विषयक प्रयत्न फलीभूत हो गये तो निश्चय ही १९४७ का वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावनाकी प्रतिष्ठाके लिये सराहनीय होगा, किन्तु पिछले वर्ष लंदन, मास्को, न्यूयार्क एवं पेरिसके वैदेशिक सचिव सम्मेलनोंमें जिस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय हितोंकी तुलनामें राष्ट्रीय हितोंकी प्रतिष्ठाके प्रयत्न होते रहे हैं, और आज भी जिस प्रकार राष्ट्रोंकी वैदेशिक नीतियोंका संचालन हो रहा है, उसके आधारपर उनमें पारस्परिक सद्भावना एवं भविष्यको लेकर अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंपर उनकी नीतियोंका सामंजस्य किसी बहुत बड़ी आशाके लिये आधार नहीं प्रदान करती। पिछले वर्षोंकी यह भावना निश्चय ही सराहनीय रही है कि अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंका समाधान सामरिक साधनों द्वारा नहीं, विचार विनिमय द्वारा हो, किन्तु इस कोरी भावनाओंकी कोई सार्थकता नहीं है, यदि इन्हें कार्य रूपमें भी प्रमाणित न किया जा सके। इसलिये आवश्यकता केवल ऊंचे आदर्शोंकी, कोरी सुखद कल्पनाओंकी और मात्र मधुर स्वप्नोंकी नहीं है, सर्वाधिक आवश्यकता है, दृढ़ निश्चयके साथ विवेकपूर्ण नीतियों एवं राष्ट्रमण्डलके निर्णयोंको साहसके साथ कार्यान्वित करनेकी। अन्यथा राष्ट्र संघसे किसी भिन्न भाग्यकी कल्पना राष्ट्रमण्डलके लिये नहीं की जा सकती।

मध्यपूर्व

मध्यपूर्वके विभिन्न देशोंमें नयी विचारधाराका संघर्ष प्राचीन शोषण एवं प्रभुत्वके विरुद्ध स्पष्ट रहा है। अरब देशोंमें स्वाधीनताकी नयी लहर आयी है और फिलस्तीन, फारस, ईराक, ट्रान्सजोर्डन सर्वत्र एक ओर प्रबल राष्ट्रोंने अपने प्रभाव क्षेत्रको अक्षुण्ण रखनेका प्रयत्न किया है तो दूसरी ओर उन प्रयत्नोंके प्रबल प्रतिकार भी हुए हैं। आलोच्य वर्षकी एक विशेषता उक्त अंचलोंको लेकर रही है कि रूसके उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रभावको इसने अपने निकटवर्ती यूरोपीय अचलोंमें जिस प्रकार अपना प्रभावविस्तार किया है, उसी प्रकार मध्यपूर्वमें भी उसकी यही नीति रही है और मध्यपूर्वी देशोंके आर्थिक क्षेत्रोंमें ब्रिटेन

अमेरिका और रूसका प्रबल प्रभाव विस्तारके लिये होगा और उनके यह प्रयत्न स्वभावतः संघर्षशील हैं।

मौतकी आजादी

अटलांटिक घोषणा पत्रके अनुसार युद्धोत्तरकालमें सभीके लिये चार स्वाधीनताओंका नारा लगाया गया था। निस्सन्देह विपन्न व्यक्तियोंको मौतकी आजादी मिली है। आर्थिक दुरवस्थाएं इतनी भीषण रही हैं कि मनुष्यके लिये जीना कठिन लेकिन मरना आसान रहा है। वस्त्र खाद्याभावके कारण सर्वत्र अर्द्धनग्न नर कंकालोंकी पल्टन दिखायी पड़ी है और नात्सी मुक्त अंचलोंमें नहीं, उपनिवेशों एवं अधीनस्थ देशोंमें यह स्थिति अत्यन्त विकराल रही है। यह दैन्य और विपन्नता सभी देशोंमें रही है और इस विशेषताके साथ रही है कि सभी देशोंमें सम्पन्न व्यक्तियोंके सुखके साधनोंका अभाव नहीं रहा है लेकिन सवत्र सर्वहाराको जीनेके लिये दो मुट्ठी अन्न और मरनेपर कफनके लिये दो गज वस्त्रका अभाव रहा है। युद्धने १९४६ में पूंजीवादी व्यवस्थाके अमानुषिक अभिशापोंको सर्वथा स्पष्ट किया है और यही कारण है कि चुपचाप मृत्युका वरण न करनेवालोंने सर्वत्र हड़तालोंका सहारा लिया है। अमेरिका जैसे सर्व सम्पन्न देशसे लेकर भारत जैसे विपन्न देश तकमें यही आर्थिक वैषम्य एवं वही तज्जनित अशांति रही है। दैनिक आवश्यकताओंकी वृद्धि, उनकी पूर्तिके के सतत असफल प्रयत्न एवं तद्विषयक सभीकी नव चेतना इन सभी कारणोंने स्पष्ट किया है कि कोरा राजनीतिक गणतन्त्र भी नये युगकी समस्याओंका समाधान करनेमें असमर्थ है, जब तक कि आर्थिक गणतन्त्रकी भी प्रतिष्ठा न हो जाय। शान्ति अविभाज्य है। भुखमरी, आर्थिक विषमता और तज्जनित मानव यंत्रणाएं अशान्तिके मूल में हैं और यही अशांतियां उत्तरोत्तर युद्धके कारणोंकी सृष्टि करती हैं। मानवता एवं नैतिकताकी दृष्टिसे आलोच्य वर्ष अनेक मर्मान्तक कहानियां, अनेक दारुण व्यथाएं एवं अनेक जटिल समस्याएं छोड़कर गया है। पूंजीवादी व्यवस्थाएं उनके समाधानके लिये अबतक असमर्थ प्रमाणित हुई हैं और सर्वहारा स्वयं अपनी नवचेतनाका अवलम्बन कर उनके समाधानके लिये अग्रसर हुआ है और सारे संसार में आज जो श्रमिकवर्ग निरन्तर उग्रतर होता जा रहा है, उसका यही कारण है।

भारत

भारतके लिये १९४६ एक ऐतिहासिक वर्ष रहा है। उसी प्रकारका ऐतिहासिक जैसा १७८३ अमेरिकाके लिये और १७८९ फ्रांसके लिये था। भारतीय राजनीतिक इतिहासका एक नया अध्याय १९४६ में प्रारंभ होता है। ९ जनवरीको ब्रिटिश पार्लमेंटरी शिष्ट मण्डल भारत आया और तबसे राजनीतिक क्षेत्रमें उत्तरोत्तर सरगर्मी आती गयी जिसकी चरम सीमा भारतके नये विधान निर्माणके लिये भारतीय विधान परिषदके अधिवेशनमें दिखायी पड़ी। ब्रिटिश मंत्रिदल मिशन इसके बाद आया। किन्तु इसके प्रस्थानके पूर्व ब्रिटिश प्रधानमन्त्रीने १५ मार्चको एक महत्वपूर्ण घोषणा की, जिसमें उन्होंने कहा कि भारतको पूर्ण स्वाधीनताका अधिकार है। उसे अधिकार है कि वह स्वेच्छापूर्वक ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलके अन्तर्गत रहे, अथवा उससे पृथक रहे। १९४५ से होनेवाले शिमला सम्मेलनकी विफलताओंको दृष्टिगत रखते हुए एटलीने यह भी कहा कि किसी अल्पसंख्यक समुदायको बहुसंख्यक समुदायकी राजनीतिक प्रगतिको अवरुद्ध करनेका अधिकार नहीं है। इसके बाद मन्त्रिदल मिशनमें भारत सचिव लार्ड पेथिक लारेंस, मि० ए० बी० अलेक्जेंडर और सर स्टैफर्ड क्रिप्स आये और भारतके विभिन्न विचारोंके लोगोंसे, विभिन्न दलोंके प्रतिनिधियोंसे विचार विनिमय किया। मुसलिम लीग अपनी पाकिस्तानकी मांगसे अडिग नहीं हो सकी और कांग्रेस भारतके अंग-विच्छेदपर सहमत नहीं हो सकती, इसलिये दोनों प्रधानदलोंके अनैक्यके कारण मंत्रिदल मिशनने १७ मईको अपनी योजना प्रकाशित की। इस योजनाको अपूर्ण एवं दोषयुक्त बताते हुए भी गांधीजीने इसे ऐतिहासिक महत्वका बताया। केन्द्रमें अन्तःकालीन सरकारकी प्रतिष्ठा इसी आधारपर पंडित जवाहरलाल नेहरूके नेतृत्वमें हुई जिसमें बादको मुसलिम लीगके प्रतिनिधियोंने भी अपने निजी अधिकारोंके आधारपर, मुसलिम सम्प्रदायके हितोंकी सुरक्षाके लिये घोषणा करते हुए प्रवेश किया। गत ९ दिसम्बरसे विधान परिषद्का प्रथम अधिवेशन—भारतके राजनीतिक इतिहासमें एक स्मरणीय घटना—प्रारम्भ हुआ।

इन्हीं नवीन परिवर्तनोंके आधारपर स्वाधीनताकी प्राप्तिके पहले ही, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें भारतकी प्रतिष्ठा वृद्धि हुई और संयुक्त राष्ट्रमण्डलके न्यूयार्क अधिवेशनमें

भारतने अपनी नवीन एवं स्वाधीन वैदेशिक नीतिका प्रमाण परिचय दिया। राष्ट्र संघमें भी भारतकी स्थिति एक स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें थी, किन्तु यह कोरा प्रदर्शनमात्र था। भारतका वोट सदा ही ब्रिटेनका वोट समझा जाता था और वस्तुतः वह था भी वैसा ही। किन्तु नेहरूजीने स्वाधीन दिशाकी ओर संकेत किया और संयुक्त राष्ट्र-मण्डलमें दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंके प्रश्नपर फील्ड मार्शल जान स्मट्सकी पराजय हुई और विजयश्री श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडितके सिर आयी। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें भारतकी यह एक महान विजय थी और इसका महत्व इससे स्पष्ट होगा कि स्मट्स, ब्रिटिश प्रतिनिधि लार्ड शाक्रासकी गुटबन्दीके साथ दो-दो बार पराजित हुए।

१९४७ की सम्भावनाएं

इस प्रकार १९४६ की विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएं हैं और युद्धसे अत्यधिक प्रभावित १९४६ की ऐसी अनेक विचारधाराएं हैं, जिनका स्वरूप इस १९४७ में अधिक स्पष्ट होगा और जिनकी सम्भावनाएं अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। द्वितीय महायुद्धने पूंजीवादी व्यवस्था एवं मानव समाज एवं शान्ति की समस्याओंके समाधानमें उस व्यवस्थाकी विफलताओंको इतना अधिक स्पष्ट किया है कि नये आधारोंपर समाज निर्माणकी आवश्यकताका सभी अनुभव करने लगे हैं और एशियामें आज जो जाग्रति है, यूरोपके कितने ही अञ्चलोंमें आज जो चेतना है और समस्त विश्वके सर्वहारामें नये आधारोंके लिये जो उत्कट आकांक्षा है, उसकी अभिव्यक्ति आगे आनेवाले दिनोंमें उत्तरोत्तर और उग्रतर होगी, इसके लक्षण असावधान एवं साधारण समीक्षकोंके लिये भी अस्पष्ट नहीं रह गये हैं। जो पुरानी समस्याएं हैं, उन्होंने भी नया स्वरूप ग्रहण किया है और नयी समस्याएं पुरानी परम्परागत व्यवस्थाओंको चुनौती दे रही हैं। फासिज्म एवं नात्सीवादकी पराजयके पश्चात् राजनीतिक एवं आर्थिक साम्राज्यवादके विरुद्ध सर्वत्र जनान्दोलनोंका सूत्रपात हुआ है। इस दौरानमें कितने ही देशोंमें कितनी ही अप्रिय, अवांछनीय एवं आपत्तिमूलक घटनाएं भी हुई हैं, किन्तु परिवर्तनकालीन यह घटनाएं सर्वथा अस्वाभाविक नहीं कही जा सकतीं। १९४६ के विनाशस्मोंपर एक नये वर्ष ही नहीं, नये युगका आविर्भाव दृष्टिगोचर हो रहा है।

गीत

भग्न - उर के सुप्त जगमें
वीण क्या है, तार क्या है?
मैं चला जिसको सुनाने,
कल्पना के मधुर गाने,
दूरसे उसने किया, इंगित —
मुझे, पर लौट जाने।
दृष्टि से वंचित दृगों में,
प्यार क्या, अभिसार क्या है?
बन गयी लघु-धार सागर,
व्यथित-उरका अश्रु पाकर,
थी बतायी राह जिसकी,
वह छिपा आगे बढ़ाकर।
बिन खेवैया को तरणि में
धार क्या, मंझधार क्या है?

अश्रु बनते, नीर अपने,
याद बनती, मूक सपने,
मैं जिसे पूजा - चिरन्तन,
मूर्ति वह छीनी जगत ने।
रिक्त, आहत, शिथिल तनमें,
साज क्या, शृंगार क्या है?
सोचता था, हम मिलेंगे,
दो हृदय खुल कर हंसेंगे,
चांदसे रजनी मिलेगी
भावके तारे खिलेंगे।
भग्न - आशा - झोपड़ीमें
सार क्या, संसार क्या है?
भग्न - उरके सुप्त जगमें,
वीण क्या है, तार क्या है?

- रणधीर, साहित्यालङ्कार

ब्रिटेनके गृहयुद्ध

डा० धुरन्धर शर्मा, एम० ए०, पी० एच० डी०

यार्कशायरमें एक स्तम्भ है जिसे क्रामवेल एसोसिएशन तथा यार्कशायर आर्केलाजिकल एसोशियेसनने खड़ा किया है। यह स्तम्भ तो अभी कुछ दिन पहले बना है किन्तु इसके पीछेका इतिहास अनेक मर्मान्तक कहानियोंसे भरा पड़ा है। पिछले दिनों हमें इस स्मृति स्तम्भकी याद बार-बार आयी और इसलिये आयी कि आज भारतमें जैसे गृहयुद्धकी आशंका कितने ही लोग ईमानदारी और कितने ही लोग प्रचारकी प्रेरणा से करते हैं, वैसे गृहयुद्धका ही वह स्तम्भ एक स्मारक है। इस स्मारकके पास खड़े होकर इंग्लैण्डके गृहयुद्धोंकी याद तो अपने आप आती, किन्तु जब चर्चिल भारतमें इसकी भयावनी कल्पनाओं द्वारा भारतीय जनताके हितार्थ नहीं, ब्रिटिश साम्राज्यके हितार्थ अपने देशकी मजदूर सरकारको सावधान करते हैं, तब उनके ही देशके गृहयुद्धोंका स्मरण अस्वाभाविक नहीं और उस दशामें यह स्मरण और भी स्वाभाविक हो जाता है जबकि यार्कशायरमें उसका स्मारक हमें बार-बार उसकी याद दिलाता है।

ब्रिटेनकी शासन पद्धतिकी आज बड़ी प्रशंसा है और ऊपरसे उसके शासनाधिकारका विभाजन जैसे विरोधाभास व्यक्त करता है, वास्तवमें अन्तरमें ऐसी कोई बात नहीं है। 'राजा कभी गलती नहीं करता', जल थल गगन सेनाओंका स्वामी राजा है, राजाके नाममें ही उसकी सरकारका गठन है, मन्त्रिमण्डल उसके द्वारा मनोनीत एवं उसके द्वारा ही संचालित होता है, जहां इस प्रकारकी कितनी ही बातें हैं, कहीं यह भी कहावत है कि "नरको नारी और नारीको नर बनानेके अलावा संसारमें ऐसा कोई भी काम नहीं है, जिसे पार्लमेंट नहीं कर सकती।" अतः पार्लमेंट आज वहांकी सर्वक्षमता सम्पन्न है और उसकी उपेक्षा करनेवाले राजाओंकी जैसी दुर्गति हुई है, उसका इतिहास अत्यन्त कारुणिक, भयावना एवं कुत्सित भी है। अंग्रेज जनताको आज जो अधिकार प्राप्त हुए हैं, उसका भी इतिहास यही है और किसी भी राष्ट्रके युग परिवर्तनमें ऐसी घटनाएं सर्वथा अस्वाभाविक नहीं कही जा सकतीं।

इंग्लैण्ड के सम्बन्धमें सिडोनियाने कनिंग्सबीसे कहा था कि "इस देशके इतिहासमें एक अनोखी बात आपको मिलेगी। जिसके हाथमें शक्ति हुई, वही बदनाम हुआ। सभी उसके विरोधी होते गये और उसका निश्चय ही पतन हुआ। पादरियोंने राजाको हथियार बनाकर बैरनोंको कुचला उस समय पादरियोंके हाथमें शक्ति थी। राजाने पार्लमेंटको रिश्वत देकर चर्चको लूटा। शक्ति राजाके हाथमें आयी। और तब पार्लमेंटने जनताको आधार बनाकर राजाका सिर कतरा डाला, राजाको निर्वासित किया, राजाको परिवर्तित कर दिया और राजाके स्थानपर एक दूसरा शासन नियुक्त किया। १५० वर्षोंतक पार्लमेंटके हाथमें शक्ति रही। और पिछले पचास-साठ वर्षसे पार्लमेंट उत्तरोत्तर बदनाम होती गयी है। ...और जैसा कि हमने देखा है, क्रमशः बैरनोंने, पादरियोंने और राजाओंने एक दूसरेको ध्वस्त किया और अन्तमें सबको निगल जानेवाली पार्लमेंट बची हुई है, इसलिये यह निष्कर्ष अनिवार्य प्रतीत होता है कि इसका भी अन्तिम ध्वंस निश्चित है! और वह राजनीतिज्ञ निश्चय ही बहुत दूरदर्शी होगा, जो यह समझ सके कि पार्लमेंटको निगल जानेवाली शक्ति कहां और किस रूपमें छिपी है।"

आजसे १०० वर्षसे भी ऊपर हुए जबकि मई, १८४४ में पार्लमेंटके सदस्य मि० बेञ्जामिन डिजरेलीने अपने नये उपन्यास 'कनिंग्सबी' अथवा न्यू जेनेरेशन (नयी पीढ़ी) में कहा था। पार्लमेंटको निगल जानेवाली शक्तिकी खोज निकालनेके उद्देश्यसे यह पंक्तियां नहीं उद्धृत की जा रही हैं। कनिंग्सबीने इंगलैण्डके इतिहासकी जिस विचित्रताका उल्लेख किया है और एक दूसरेके विध्वस्त होनेका जो क्रम चला है, उसके पीछे इंग्लैण्डके गृहयुद्धका एक रक्तरंजित इतिहास है।

इंग्लैण्डके प्रारम्भिक इतिहासमें अनेक गृहयुद्धोंकी

लोमहर्षक कहानियां भरी पड़ी हैं और इन 'गृहयुद्धोंका आधार सदा राजनीति ही नहीं रही है। धर्मोन्मादके कारण भी कितनी ही बार यह युद्ध हुए हैं। अनेक बार धार्मिक मतभेदके कारण ही कितने ही धर्म प्रचारकों, मनीषियों

निर्दोष समझकर उसे जलाना नहीं चाहा। बहुत प्रारम्भमें 'गुलाबोंके युद्ध' के नामसे इंग्लैण्डमें गृहयुद्ध हुए और वे भयानक ही नहीं बीभत्स भी हुए थे। चार्ल्स प्रथमके शासन कालमें इंग्लैण्डका सबसे भयंकर गृहयुद्ध हुआ था



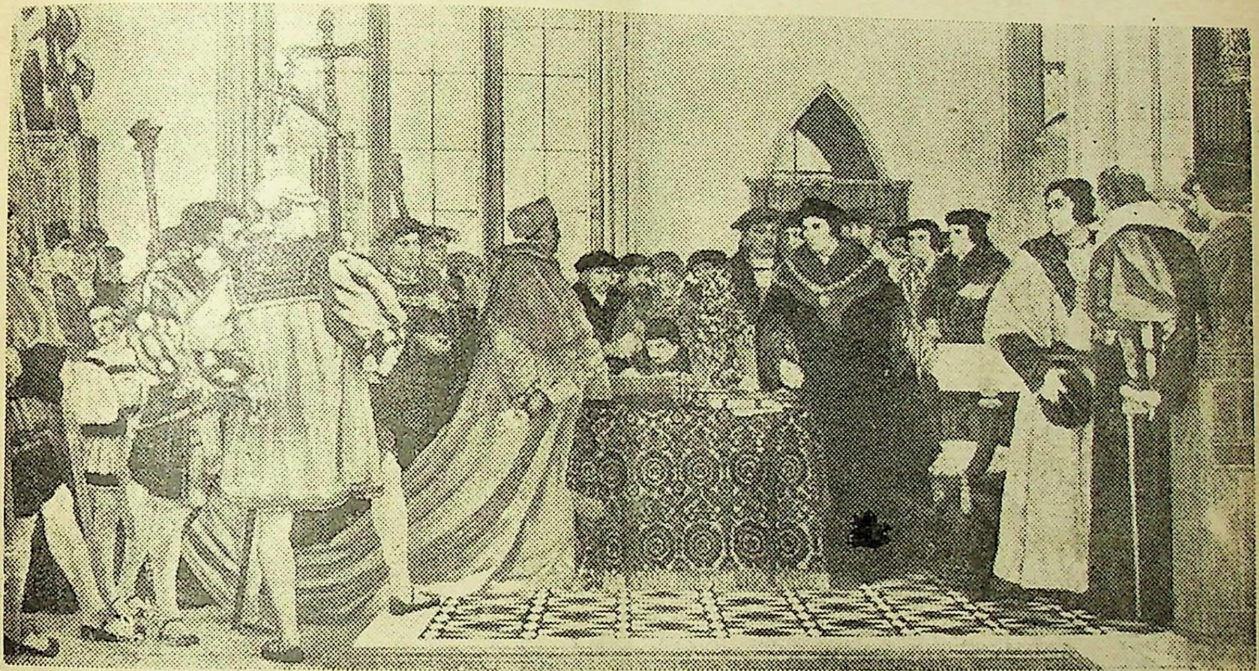
किंग जानने १२१९ ई० में रनीमीडमें 'मैगनाकार्टा' अधिकार घोषणापत्रपर हस्ताक्षर करके बैरनोंको इस बातका आश्वासन दे दिया कि कानूनकी उपेक्षा न की जायगी और न निरंकुशताकी शरण ली जायगी। यह घोषणापत्र इंग्लैण्डके लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

एवं महापुरुषोंको जीतेजी आगमें जला दिया गया। उस व्यक्ति 'सिमसन'ने कहा था कि, 'मास्टर रिडले! मेरे हाथ की लेखनीने तो विद्रोह किया था, इसलिये हाथ मेरा भले ही जला दिया जाय, किन्तु बेचारी मेरी दाढ़ीने क्या कसूर किया है? यह दोनों व्यक्ति जीते जी जलाये जा रहे थे, इसलिये उस दाढ़ीवाले सिम्सनने मरते-मरते भी अपनी विनोद-प्रियता नहीं तोड़ी और उसने अपनी दाढ़ीको

और हजारों व्यक्तियोंका खून हुआ। राजनीतिक आधारों पर यह युद्ध हुए थे, किन्तु धर्मका सहारा दोनों दलोंने लिया और दोनोंने धर्मकी आड़में भयंकर विनाश लीलाओं के दृश्य उपस्थित किये।

ब्रिटिश पार्लमेंटमें भारतीय स्वाधीनताको लेकर भारत विषयक विवादके सिलसिलेमें भारतमें गृहयुद्धोंकी आशंका पर बहुत बादविबाद हुए थे। मि० विन्स्टन चर्चिलके

नेतृत्वमें वहांके अनुदार दल वक्ताओंकी दृष्टिमें भारतमें गृहयुद्ध अवश्यम्भावी है। इस देशके कुछ अंचलोंमें पिछले दिनों जो साम्प्रदायिक उपद्रव हुए, उनके आधारपर ब्रिटेनके अनुदार दलने गृहयुद्धकी आशंका की है। सम्भव है कि उनकी आशंका उनके सच्चे विश्वासोंके आधारपर हो और सम्भव है कि भारतीय स्वाधीनताके विरोधकी प्रेरणासे ही उनको आशंकाएं बनी हों। किन्तु उसके उसके लिये पिछले इतिहासके आधारपर अधिक सही दूसरी सम्भावना ही प्रतीत होती है। किन्तु भारतके



राजा हेनरी अष्टम पादरियों एवं नेताओंको पथभ्रष्टकर पार्लमेंट द्वारा स्वेच्छाचारिताका परिचय देता था और अन्तमें वे भी उसके कोपभाजन हुए। चित्रमें हाउस आव कामन्सके अध्यक्ष सर टामस मोर उल्जीके उस प्रस्तावका विरोध कर रहे हैं, जिसके द्वारा कामंस की स्वीकृतिके बिना राजाके सहायतार्थ रकम स्वीकृत की गयी थी।

पिछले साम्प्रदायिक उपद्रवोंको गृहयुद्ध नहीं कहा जा सकता। किसी भी अंचलमें ऐसे उपद्रव नहीं हुए हैं उन्हें गृहयुद्ध कहा जा सके। इन साम्प्रदायिक उपद्रवों द्वारा भारतकी स्वाधीनताकी प्रगति अवश्य अवरुद्ध होती है, और यह निश्चय ही सर्वथा अवांछनीय हैं, किन्तु ब्रिटिश राजनीतिज्ञों द्वारा इन्हें गृहयुद्ध बताना उनकी अपनी कुत्सित प्रचारपूर्ण मनोवृत्तिका ही परिचायक है। इंग्लैण्ड के गृहयुद्धोंका एक संक्षिप्त विवरण स्पष्ट करेगा कि भारतीय धार्मिक मतभेदोंके कटु आलोचकोंके देशमें किस प्रकार वर्षोंतक उत्पन्न वीभत्स गृहयुद्ध चले हैं और धर्मोन्मादने किस प्रकार असंख्य निरीह प्राणियोंका खून बहाया है।

चार्ल्स प्रथमके शासनकालीन गृहयुद्धोंके लेखक रेवरेण्ड रिचर्ड कैटरमोलने अपनी तद्विषयक १८५२ ई० में प्रकाशित ग्रन्थमें गृहयुद्धोंकी मूल भित्तिका बखान करते हुए प्रारम्भमें लिखा है कि, "चार्ल्स प्रथमने 'अधिकारपत्र' में प्रदत्त अधिकारोंको, जो अंग्रेजोंके जन्मसिद्ध अधिकार रहे हैं, सच्ची भावनासे दिया होता और जिन बहादुर व्यक्तियों द्वारा वे अधिकार प्राप्त किये गये, उन्होंने सच्ची भावनासे उन्हें ग्रहण किया होता तो अगले २० वर्षोंमें इंगलैण्डपर वे विपत्तियां न आतीं जो बादको आयीं। किन्तु एक ओर चार्ल्सने अपने प्रदत्त अधिकारोंको पुनः ले लेना चाहा और दूसरी ओर बहादुरोंने अपने विजयोल्लासमें राजाके अधिकारोंपर भी प्रत्यक्ष आक्रमण प्रारंभ कर दिया। कहानी यों है कि कुछ शास्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित व्यक्तियोंने राजाको घेर लिया और अपने पहलेसे तैयार 'अधिकारका आवेदनपत्र' (पेटिशन आव राइट्स) तलवारकी धारपर राजाको विवश करके हस्ताक्षर करा

लिया। बादकी दुखान्त घटनाएं इसी प्रकार प्रारम्भ हुईं। राजाने अपनी विवश स्थितिमें प्राणरक्षार्थ अधिकारपत्रपर हस्ताक्षरकर दिये, किन्तु अवसर मिलते ही प्रतिशोधकी भावनाके साथ। उधर जिन लोगोंको अधिकारपत्र पर राजाके हस्ताक्षर प्राप्त करनेमें सफलता मिल गयी थी, उन्हें जनताने नेता कहकर पुकारा और वास्तवमें उन्होंने सर्व साधारण जनताके लाभार्थ नेतृत्व किया था, और वे अपने विजयोल्लासमें ऐसे कार्य करने लगे कि राजाको सर्व शक्तिहीन बना दिया जाय।

का कारण बना हुआ है...मैंने लिख दिया है और मैंने घोषणा कर दी है कि मैं सबदा प्रोटेस्टेण्ट धर्म मानूंगा... और अब मैं तलवार द्वारा अपने बचनोंकी सच्चाई प्रमाणित करूंगा—तलवारका जवाब तलवारसे दूंगा।' उधर चार्ल्स के विरोधियोंकी भावना कितनी उग्र हो चली थी, इसे प्रकट करनेके लिये असंख्य घटनाएं हुईं। यहां तक कि चार्ल्सके प्रति मामूली सी भावना प्रदर्शित करनेवाले वेन्टवर्थको यह शब्द कहने पड़े थे कि, तुमको यह बताने की आवश्यकता नहीं कि तुम हम लोगोंको छोड़ रहे हो।



निरंकुश हेनरी अष्टम अपने अन्याय अत्याचारोंके लिये भी पार्लमेंटका सहारा लिया करता था। अपने मनोनुकूल वह घोषणा करने बैठा है।

प्रसंग तो था यह केवल राजनीतिक किन्तु उस समय की स्थितिमें केवल राजनीतिक आधारोंपर राजाके लिये प्रतिशोध लेना सम्भव नहीं था। अतः धर्मका राजनीतिक उपयोग किया गया। राजाने अपने पक्षको गृहयुद्धमें भाग लेनेको प्रोत्साहन देते हुए जो भाषण दिया था उसके कुछ अंशोंमें धर्म विशेष बल्कि कहना चाहिये कि धर्मके अन्तर्गत पंथ विशेषके प्रति आस्था बनाये रखनेकी राजाने प्रतिज्ञा भी की थी। उपस्थित व्यक्तियोंको सम्बोधित करते हुए चार्ल्सने कहा था—'आपका राजा आपके युद्ध

सुनो, मैं कहता हूं और मैं जो कुछ कहता हूँ उसे याद रखो कि तुम भले ही हम लोगोंको छोड़ दो, लेकिन मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ सकता। जबतक कि तुम्हारी गर्दनपर तुम्हारा सिर बना हुआ है।'

आधुनिक युद्धोंकी भांति इंग्लैण्डके तत्कालीन गृहयुद्धमें बहुतसे मारात्मक शस्त्रास्त्रोंका उपयोग असम्भव था अतः दोनों दलोंने हथौड़े, लोहेके छड़ तथा इस प्रकार के कितने ही तत्कालीन शस्त्रास्त्रोंसे अपनेको सुसज्जित कर रखा था। दोनों दलोंने खुलकर युद्ध किया और पहली

ही लड़ाईमें करीब पांच-छः हजार व्यक्ति मरे। युद्धका दावानल किसी एक क्षेत्रमें ही सीमित नहीं रह गया था। देशके भीतर गांवों-गांवोंमें विरोधी दलोंमें लड़ाई हुई। किन्तु सबसे भीषण युद्ध एंजलिसमें हुआ। इतिहासकारने जाकर किसी तरह जिलानेका भी प्रयत्न किया। ऊंचे खान्दानके एक युवककी स्थिति अत्यन्त दयनीय थी, जिसे कई दिनोंकी खोजके बाद अपने बापकी खबर मिली और बापकी स्थिति क्या थी कि मृत, नग्न, शरीरसे क्षत-विक्षत और खूनसे लथपथ।



पार्लमेंटने जनताका सहारा लेकर राजाका सिर काट लिया। व्यंग्यात्मक चित्रमें क्रामवेलने तलवारकी नोकपर चर्च और स्वाधीनताको लटका रखा है। इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड और आयर्लैण्डके राज्य सो रहे हैं। क्रामवेलका रथ शैतान हांक रहा है। रथ चार्ल्स प्रथमके ऊपरसे, जिसका सिर अलग कटा पड़ा है चल रहा है।

इन गृहयुद्धों में युद्ध कौशलकी कुछ बारीकियां नहीं थीं। स्काटलैण्ड गुरिल्ला युद्धके लिये विख्यात है और इन युद्धोंमें उसके कितने ही सैनिकोंने इस कौशलका परिचय दिया था। किन्तु इंगलैण्डका युद्धकौशल राजनीतिक प्रणालीके आधारपर ही अवलम्बित था और यह बात दोनों ही:दलोंके सम्बन्ध में थी। चार्ल्सके दलमेंशासक होनेके नाते सामरिक शक्ति अधिक थी और बाहरी सहायता भी उसके लिये सम्भव थी किन्तु पार्लमेंटके दलके पास उसके सदस्योंकी अपील सुननेवालों की .ारे नहीं थी और :चार्ल इसकी लगाये गये कितने किन्तु छनीय करोंके क इंग्लैण्ड जनतामें उसके ीतकता, प्रचारके कारण ीपिकासे दलके पीछे जनताकी ंहिये। थी। स्त-

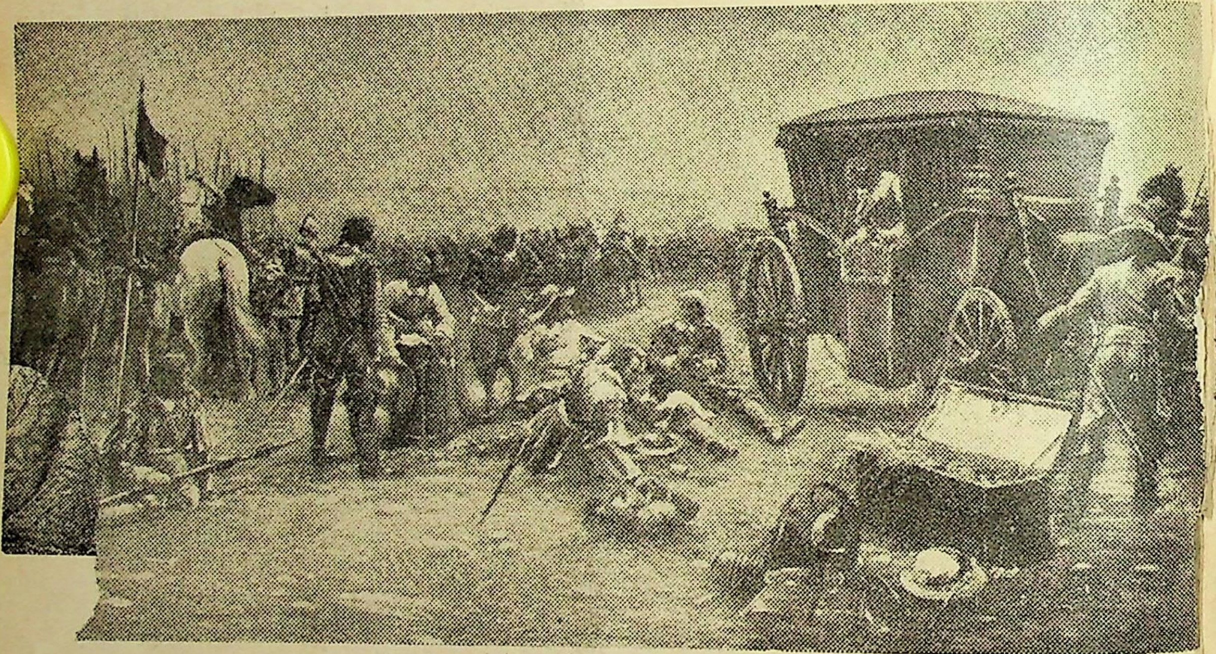
प्रथम गृहयुद्ध (१९४२-४ में एक प्रसिद्ध रण-

इसका वर्णन करते हुए अत्यन्त गर्म शब्दोंमें लिखा है कि ज्यों ही दोनों दलोंमें लड़ाई समाप्त होनेपर राजा-क्षेत्र खाली किया त्योंही आसपासके गांवोंके लोग एकत्र हो गये और मृतकों एवं अर्द्ध मृतकोंपर भी प्रहार करनेसे नहीं चूके। बापने बेटेकी, बेटेने बापकी, भाईने भाईकी खबर ली और जिन्होंने दम नहीं तोड़ दिया था, उन्हें उठाकर घरोंमें ले

कुशल व्यक्ति चार्ल्स रूपट था। अगस्त १९४२ में जब यह युवक राइनमाउथमें चार्ल्सके सहायतार्थ उतरा, उस समय इसकी अवस्था केवल २२ वर्ष की थी। किन्तु उसका समकालीन और विरोधी टामस्फेयर फाक्स भी कम युद्ध विशारद नहीं था। फेयरफाक्स पार्लमेण्टरी दलका था और उसने स्वयं रण-स्थलमें उतरकर कौशल दिखलाये।

यह दोनों ही यार्कशायरमें भिड़े थे। यह युद्ध कितना महत्वपूर्ण था और दोनों पक्षोंमें इसके परिणामको लेकर कितनी चिन्ता थी, यह इस बातसे स्पष्ट हो जायगा कि चार्ल्सने स्वयं कहा था कि 'अगर यार्क हमने खो दिया तो मैं समझूंगा कि जैसे सिंहासनसे कुछ ही कम हमने खोया है।'

इंग्लैण्डके गृहयुद्धोंके सिलसिलेमें क्रामवेलका उल्लेख करना एक दुःखान्त नाटकके प्रमुख अभिनेताकी उपेक्षा करना है, किन्तु इस लेखका उद्देश्य चार्ल्स प्रथम अथवा क्रामवेलके तद्विषयक कार्योंका उल्लेख करना नहीं है। यहां हम केवल गृहयुद्धोंकी ही कुछ बातोंपर प्रकाश डालेंगे। इतिहासकार कैटमोरने लिखा है कि, गृहयुद्धोंमें जैसी बीभत्स खूंरेजी हुई वैसी सम्पत्तिका विध्वंस भी हुआ। लोगोंके लिये जीवन-निर्वाहकी समस्या जटिल होने लगी। बच्चोंका अपहरण और वह भी विक्रयार्थ, इतना जोर पकड़ गया था कि पार्लमेंटको इसे रोकनेके लिये आर्डिनेन्स-विशेष कानूनकी शरण लेनी पड़ी। एक तत्कालीन लेखकने लिखा है कि "अफसोस! हमलोगोंका इन युद्धोंमें ऐसा भीषण पतन हो चला कि अपने ही पड़ोसियों और अपने ही परिवारवालोंका खून करनेमें हमें लज्जा नहीं आयी और आंखोंके सामने खूनसे लथपथ लाशोंको देखते हुए भी लोग सहायता देनेकी बात तो दूर, एक आह नहीं भरते थे। इतना ही नहीं, कितनोंका अधःपतन तो इस सीमातक पहुंच चुका था कि वे अपने बाप और भाईको पकड़कर जबर्दस्ती ले जाते और बीसों मीलकी दूरीपर ले जाकर पैसे लेकर उन्हें छोड़नेकी शर्त करते और पैसे नहीं मिलनेपर



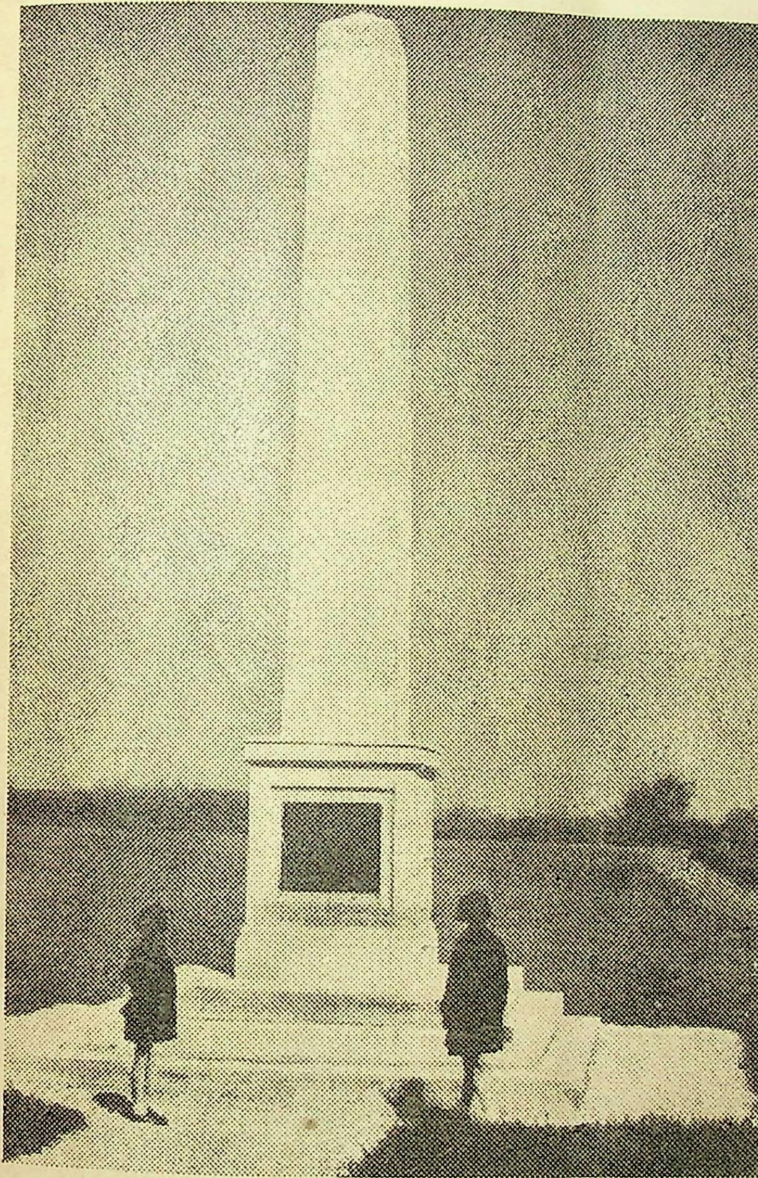
गृह युद्धका एक दृश्य।

उन्हें वहीं छोड़ देते और घरपर लौटकर उनके पशुओं और उनकी दूसरी सम्पत्तियोंको नष्ट कर देते।"

किन्तु सबसे अधिक व्यापक परिणाम दैनिक जीवनकी अनैतिकताके रूपमें दिखायी पड़ा। राष्ट्रका यह भीषण नैतिक पतन था। असंख्यक महत्वपूर्ण वस्तुएं भ्रष्ट की गयीं और ध्वस्त की गयीं। लाखोंके मूल्यकी ऐतिहासिक सामग्रियोंका विनाश किया गया। गिरजाघरोंकी खुलकर लूट हुई और जो सामग्री लूटी नहीं जा सकती थीं उसे विनष्ट कर दिया गया। वाणिज्य व्यवसाय लम्बे अर्सेतक स्थगित रहा और परिणाम स्वरूप उपद्रवोंसे बचे हुए

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इंग्लैण्डके गृहयुद्धोंमें घोर अमानुषिकता और बर्बरताके असंख्य काण्ड हुए। जब बाप बेटे, और भाई एक दूसरेकी जानके ग्राहक हो रहे हों, जब मासूम बच्चोंका खून हो रहा हो और जब बाप बेटेको बेच दे तब असंख्य बालकोंका अपहरण और उनकी बिक्री अगर इतने जोरपर हो कि पार्लमेंटको कानून बनाकर उसपर

रोक लगानी पड़ी, तब आततायीपनकी हद हो गयी। इंग्लैण्डमें कई वर्षोंतक इस प्रकारके युद्ध एवं तत्सम्बन्धी इस प्रकारकी नारकीय घटनाएं होती रहीं। राजाने अपने को सर्वशक्तिमान मान लिया था अतः उसे अपने मिथ्या दम्भ एवं हठवादिताके लिये प्राणोंका मूल्य चुकाना पड़ा।



गृह युद्धका स्मारक।

स्थिति इतनी दयनीय थी और जैसा कि इतिहासकारोंके लिये सारे राष्ट्रका मस्तिष्क दूषित हो चला था। एक दूसरेकी जानके ग्राहक हो रहे थे और बिना किसी विचार के भयंकर हत्याकाण्डोंका हो जाना मखौल-सा हो गया था।

इंग्लैण्डके इन गृहयुद्धोंके बाद एक अरसे तक नागरिकोंकी मानसिक भावनाएं अशान्त रहे तो यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं। किन्तु वहांके भावी परिवर्तनों का सूत्रपात भी वहीं से हुआ। इंग्लैण्डमें एक युग परिवर्तन हो रहा था और उस परिवर्तनमें विभिन्न शक्तियां जिस रूपमें संघर्षशील हो रही थीं, उनमें वहांके शासक एवं शासितोंने अपना मानसिक संतुलन खो दिया था। इसके परिणाम स्वरूप असंख्य बीभत्स घटनाएं इंग्लैण्ड में घटीं। गृहयुद्धोंकी विभीषिका इस दृष्टिसे और भी घातक होती है कि अपने लोगों द्वारा अपने ही लोगोंका विनाश और अपने ही हाथों द्वारा अपने ही राष्ट्र की सम्पत्ति का संहार होता है। इसलिये परिवर्तनकालमें इस प्रकारकी घटनाओंके नियंत्रणके लिये अत्यधिक सतर्कता, विवेक एवं मानवताकी आवश्यकता हुआ करती है।

भारतके कितने ही अहित चिन्तकों द्वारा गृहयुद्धकी धमकियां समय-समयपर दी गयी हैं। हमारे ब्रिटिश महाप्रभुओं द्वारा भी इसकी कल्पना की जाती है, किन्तु विवेकशील भारतीयके लिये इंग्लैण्ड के उक्त गृहयुद्धोंकी घातकता, अवांछनीयता एवं विभीषिकासे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। सभीका धर्म है कि मातृभूमि रक्तरंजित न हो। आपसी वैमनस्य एवं तज्जनित विनाश लीलासे लाभ किसी को नहीं हो सकता। इंग्लैण्डके विगत गृहयुद्धोंकी शिक्षा हमें सावधान करती है इस प्रकारके किसी धर्मोन्मादके लिये, वह हमें सतर्क करती है। धर्मके राजनीतिक उपयोगके विरुद्ध और वह संकेत करती है मानवता, विवेक एवं सद्भावनाकी ओर।

———

भारतीय विधान परिषद



परिषद्के लिये रखे गये रजिस्टरमें युक्त प्रान्तके प्रतिनिधियोंके हस्ताक्षरोंका एक पृष्ठ यह इस पृष्ठ अवधके नवाबों, प्राचीन सम्यताकी साक्षी गंगा और काशी धामका प्रतीक है। रजिस्टरमें सबसे ऊपर राष्ट्रपति आचार्य कृपलानीका हस्ताक्षर है।

बहादुर सेनापति

श्री विष्णु

दूर दूर तक चौड़ी सपाट भूमि, कहीं कोई साया नहीं, पीछे एकमात्र जल विहीन सूखा तालाब! उसीमें खंदक खोद कर पड़े थे। सोच रहे थे कब चार्जका आर्डर मिले, कब वे अपने दिलकी निकाले। लेकिन दुश्मन खामोश था। कोई भी कहीं नजर नहीं आता था, और वे उतावले हो रहे थे। उन्होंने सुना था-दुश्मनका तोपखाना सिर्फ चार मील है।

रफीक बोला—चार मील भी कोई रास्ता है।

जीतसिंहने कहा—और फिर टैंक, मशीनगन, कार सभी कुछ तो है उनके पास! फिर भी जान निकलती है।

कहकर वह मुस्काया—माथा गर्वसे ऊंचा उठ गया। रामचन्द्र तीसरा सैनिक उसी तरह छाती फुला कर बोला—हथियारसे क्या होता है। बात दिलकी है। उनके पास दिल है कहां? साले भाड़ेके टट्टू......।

एक जोरका कह-कहा लगा। कई आवाज एक साथ गूंजी—भाड़ेके टट्टू। वे लड़ना क्या जाने और लड़ें किस लिये? पेटके लिये भी कहीं लड़ा जाता है।

एक सैनिक पूछ बैठा—तो किसके लिये?

जीत सिंहने राइफल तोल कर जबाब दिया—देशके लिये।

एक बार फिर गर्वसे सबके मस्तक ऊंचे उठे—हां! हम देशके लिये लड़ते हैं। उस देशके लिये लड़ते हैं जिसकी मिट्टीसे हम बने हैं।

—और तब तक लड़ते रहेंगे जब तक वह आजाद नहीं हो जाता।

—हां हमने दिल्ली पहुंचनेकी प्रतीज्ञा की है!

—हमें लालकिले पर अपना प्यारा झण्डा फहराना है।

—बेशक हम लाल किले पर अपने प्यारे तिरंगे झण्डेको फहरायेंगे। हमारे नेताजीने बहादुरशाहकी कब्र पर कसम खाई थी कि......।

—हम उसे झूठी न होने देंगे।

—कभी न होने देंगे।

जैसे उत्साह साकार होकर हर एक सिपाहीके रूप में वहां आ गया था। वे संख्यामें बहुत थोड़े थे। उनके वस्त्र फट गये थे। उनके पास हथियारके नाम केवल राईफलें थी। उनके पास पेट भर भोजन भी नहीं था। लेकिन वे कह रहे थे—हम घास खायेंगे पर जीते जी पीछे नहीं हटेंगे।

रफीकने मुस्करा कर कहा—खुदाकी कसम! हाथ बार बार कांप उठते हैं। जी करता है राईफल तोल कर भागा चला जाऊं और दुश्मनके तोपखाने में आग लगादूं।

जीत सिंह हंसा—जी तो मेरा भी ऐसा ही करता है पर लपटान साबका हुक्म! फिर जैसे क्षण भरका वहां सन्नाटा छा गया! पर दूसरे ही क्षण रफीक यकायक धीरे से बोल उठा—क्यों जीत घर पर तेरी बीबी है।

—है, क्यों??

—पूछता था, क्या सोचती होगी?

—सोचती क्या होगी गर्वसे उसकी छाती फूलती होगी।—सरकार कुछ भी कहे परन्तु लोग तो हमारे ही साथ होंगे।

—बेशक वे हमारे साथ होंगे।

तो बस हमें यही चाहिये। जब मैं भरती हुआ था तो गोपाल जो मेरा दोस्त है बहुत गुस्सा हुआ था। कांग्रेसी है न। लेकिन उसे क्या पता आज मैं भी उसी राहका राही हूं। लौट सका तो.........

कि तभी उसके कमांडर लैफ्टीनैंट ज्ञानसिंह वहां आ गये। जीत सिंहके आखिरी शब्द उन्होंने सुने मुस्कराकर कहा कहा—लौटनेकी चिंता है तुम्हें। जीत सिंहका मुंह फक हो गया। वह खिसिया गया परन्तु दूसरे ही क्षण दृढ़तासे मुड़ कर उसने कहा—नहीं नहीं लपटान साब! मैं लौटना नहीं चाहता। मैं अपने दोस्तकी बात कह रहा था जो मुझसे नफरत करता था.........

कमांडर बीचमें बोल उठा—हां मेरा भी एक दोस्त है वह भी मुझसे नफरत करता है। कहता था मैं पेटके लिये लड़ने वाला हूं। मैं गुलाम देशके लिये क्यों नहीं लड़ता।

रफीक बोला—जी लपटान साव यही बात थी। जीत यही कहता था। अगर लौट सका तो कहेगा......

नहीं नहीं—जीत बोल उठा—मैं नहीं लौटना चाहता हूं। मैं यहीं मरना चाहता हूं।

रफीक बोला—और मैं भी......

कमांडरका मुख चमक उठा उसने जीत सिंहके कंधे पर हाथ रख कर कहा—घवराओ नहीं। मैं जानता हूं तुम यहीं मरना चाहते हो। हम सब यही चाहते हैं और विश्वास रक्खो मैं भी तुम लोगोंके साथ यहीं इसी मिट्टीमें अपने देशके लिये लड़ते लड़ते सो जाना चाहता हूं। दोनों सैनिक गदगद हो उठे। उनके नेत्रोंमें गर्वकी लाली और स्नेहका जल साथ उमड़ा और अपनी सुगंधसे सबके दिलों को महकाता हुआ दूर दूर फैल गया।

रफीक बोला—पर लपटान साव दुश्मन क्या अफीम घोल कर सो गया है?

जीत सिंह—हां आप हुक्म कीजिये! हम उसे ढूंढ़ लेंगे।

कमांडरने कहा—ढूढ़नेके लिये हमारी पतरोल गयी हुई है। उसके आने पर कुछ किया जायेगा।

और फिर मुड़ कर कमांडर साहब बाहरको देखते हुए आगे बढ़ गये। परन्तु जहां वे जाते यही एक प्रश्न उठता—आप आडर क्यों नहीं करते? उनका कहना भी ठीक था दूसरा दिन बीत चला था पर दुश्मनका कहीं पता नहीं था।

इसी तरह तीसरा दिन आया। उपाय ऊगकाईलां, मैदानमें प्रकाश चमक उठा, पक्षी बोले। लेकिन सब ओरसे सैनिकोंने कहा—दुश्मन कहां है, हम उससे पूछेंगे वह अब तक क्यों नहीं आया?

कमांडरने कहा—डरो नहीं वह आने वाला है। तुम तैयार हो जाओ।

—वे चिल्लाये हम तैयार हैं।

अचरज तभी देखते-देखते आस्मान कांप उठा। घर, घर, गहर, गहर, घूं, घूं, की तेज आवाज करते हुए बममार जहाज कहर बरसाने लगे। खन्दकमें सन्नाटा छा गया। सब सांस रोककर लेट गये जैसे वहां कोई है ही नहीं।

पर बाहर जैसे भूकम्प आ गया। धम, धम, धड़क, धनननन का अनवरत शब्द कानोंको फोड़े डाल रहा था। जमीन उछल-उछल पड़ती थी। लगा खन्दक टूटकर जमीनमें समा जायेगा और वे सब वहीं जमींदोज हो जावेंगे। लेकिन किसीको कुछ चिन्ता नहीं थी। बम कहां पड़ा कोई मरा या क्या हुआ......

वे तभी उठे जब शान्त हो गया और उठकर उन्होंने देखा वे सब उसी तरह थे जैसे हमलेसे पहिले......

एक सैनिकने कहा—तो उन्होंने व्यर्थ ही इतना कष्ट किया।

वेशक...।

लेकिन कमांडर बोला—साथियो। समाचार मिला है तुम्हारी इच्छा पूरी होनेवाली है। दुश्मन चल पड़ा है।

सैनिक प्रसन्न हो उठे। उन्होंने हथियार सम्भाल लिये। कमांडरने फिर कहा—परन्तु उसके पास टैंक है।

एक सैनिकने कहा—हमारा एक-एक सिपाही जीवित टैंक है।

उनके पास बख्तर बन्द गाड़ियां हैं।

हमारी चोटके सामने वे व्यर्थ हैं।

उनके पास ट्रक्स भी हैं।

यहां उनकी कोई कीमत नहीं है।

वे संख्यामें बहुत हैं।

परन्तु मुरदे हैं।

कमांडर मुस्कराया—तब साथियो! विश्वास रक्खो वह तुम्हें नहीं जीत सकता।

वेशक नहीं जीत सकता। हम जान हथेलीपर रख कर लड़ते हैं।

छातीमें छिपाकर नहीं।

कमांडर खुशीसे भर उठा—शाबास दोस्तो। आओ हम सब मिलकर उसे भगा दें!

सब मिलकर।

तभी तोपोंकी पहली बाढ़ छूटी और उसी बाढ़के पीछे दुश्मन आगे बढ़ा। उनके पास तेरह टैंक थे, ग्यारह बख्तरबन्द गाड़ियां थी और सत्तर ट्रक। वे दो हिस्सोंमें बंट गये थे। एक भाग सीधा उनकी ओर बढ़ रहा था। टैंक और गाड़ियां आग बरसा रही थीं। गोले धमाकेके साथ गिरते जमीनपर धड़ाका उठता और तब मिट्टी बहुत ऊंचेतक उछल कर फैल जाती। पर सैनिक सांस रोके चुपचाप राह देखते रहे कि कब दुश्मन उतरे और वे दो-दो हाथ करें लेकिन वे किलेमें बन्द थे। धीरे-धीरे टैंक और बख्तरबन्द कारें खंदकके इतने समीप आ गये कि सीधे मार पड़ने लगी। दुश्मनके

सैनिक चुन-चुन अपना निशाना बनाने लगे।

कमांडरने देखा—गोले सीधे खन्दकमें जा रहे हैं और वे दोनों सुरंगें जो रास्तेमें फेंक दी गयी थीं नहीं फटी हैं। फिर भी गतिपर ब्रेक लग गया है।

पर वे बराबर आग उगल रहे हैं। वह आग जो जीव-मात्रको झुलसनेको तैयार है।

उसने फिर अपने सैनिकोंको देखा—उनका उत्साह मन्द नहीं पड़ा था पर वे बहुत कम थे बहुत कम......पीछेसे मदद आनी चाहिये......

लेकिन कोई रास्ता नहीं था। कोई भी रास्ता.....आगेसे आग बराबर उसी तेजीसे बढ़ी आ रही थी। कानसे कोई शब्द नहीं सुनाई पड़ रहा था। युद्धका भीषण शब्द रौख चारों ओर छा गया था।

सैनिकोंकी राइफलकी आग उनके सामने चिनगारीकी तरह थी।

सूखे काठको एक चिनगारी भस्म कर सकती है परन्तु महादावानलमें उसकी क्या बिसात? वह देख रहा था उसके सैनिक यंत्रकी तरह राइफल चला रहे थे। उनके मुखोंपर पसीना बहने लगा था लेकिन उनकी आंखें लक्ष्यपर लगी थी; उनके हाथ लक्ष्यकी ओर निशाना साध रहे थे; वे फुर्तीसे पेटी खोलते चढ़ाते और फिर दागते दन:दन दनादन दनन दनदन...और इधर टैंक, कार, मशीनगन आग फेंकती, सैनिक हथगोले फेंकते और वह देखता......

नहीं, नहीं ऐसे नहीं होगा। नहीं होगा। इसी प्रकार वे सब भुन सकते हैं। खन्दकमें रहना आत्महत्याके समान है; वे मर जायेंगे या कैद हो जायेंगे और दुश्मनका कुछ नहीं होगा।

आह! वह किट-किटाया दुश्मनका कुछ नहीं होगा।

तो वह क्या करे, आखिर क्या करे......?

दिमाग बड़ी तेजीके साथ घूमा। वह एक सुरक्षित स्थान पर खड़ा था। वह सब कुछ देख रहा था। देख रहा था अपने मुट्ठीभर सैनिकोंका उत्साह। और दुश्मनके किलेसे उमड़ती हुई आग जो कुछ ही क्षणमें सबको फूंक सकती थी। नहीं, यह नहीं होगा। वह कायरकी मौत है और आजाद हिन्दका सैनिक कायरकी मौत नहीं मर सकता। नहीं, कभी नहीं......।

बस इस क्षणमें विचारोंका एक समूह, घटनाओंकी एक लम्बी तालिका उसके मस्तिष्कमें आई और गयी और वह चिल्ला उठा—चार्ज।

जैसे बिजली कौंधगयी। तूफान फूट पड़ा। सैनिक मौत-की तेजीसे खन्दकसे बाहर निकल आये और बेयोनेट लेकर ही दुश्मनपर धावा बोल दिया—सबसे आगे वह था। वह उनका कमांडर जो था और चिल्ला रहा था।

नेताजीकी जय! इन्कलाब जिन्दाबाद! आजाद हिंदुस्तान जिन्दाबाद! चलो दिल्ली! जयहिन्द!

सैनिक उन नारोंको दूने उत्साहसे दोहराते और परवानोंकी तरह आगे बढ़ जाते। और इन नारोंकी उठती हुई आवाज तोपों टैंकोंकी गड़गड़ाहटसे ऊपर होकर दुश्मन-की छातीमें भर उठी जैसे उन्होंने मौतको सजग देखा। वे ट्रकोंसे उतर पड़े और फिर आमने-सामने युद्ध छिड़ गया।

दुश्मनके सैनिक बहुत थे परन्तु आजाद हिन्दके सैनिकोंका उत्साह संख्याकी परवाह नहीं करता था। उनके कदम बढ़ना जानते थे उनकी आंखें दुश्मनपर थी उनके हाथोंमें बैयोनेट थी। वे नारा लगाते—नेताजीकी जय और दुश्मनपर टूट पड़ते। उनका बहादुर कमांडर बराबर उनके साथ था। वह लड़ रहा था पर उसकी आंखें मैदानकी स्थितिको जांच रही था। उसने जान लिया था वे कम हैं पर वे पीछे नहीं हटेंगे।

और वे नहीं हट वह चिल्लाया—शाबाश वीरो! बढ़े चलो नेताजीके नामपर धब्बा न लगने पावे।

शाबाश! आजाद हिन्द तुम्हारा स्वागत कर रहा है।

शाबाश......

उसने खुशीसे भरकर देखा—इस धावेसे दुश्मन घबरा गया है। इतने टैंक तोपों मशीनगनोंके बावजूद वह पीछे हट रहा है...।

दुश्मन पीछे हट रहा है......।

और उसके सैनिक! उसने देखा—वे धीरे-धीरे धरती-पर लेट रहे हैं परन्तु फिर भी उनका प्रत्येक कदम आगे ही बढ़ रहा है। वे मृत्युका आलिंगन कर रहे हैं पर आगे बढ़-कर। उनका यही अदम्य-उत्साह दुश्मनके दिलमें धड़कन पैदा कर रहा है......।

यह क्या...क्या वे फिर ट्रकों और कारोंमें बैठ रहे हैं...लो!

उन्होंने घायलोंको उठाया...।

वह हर्षसे भर उठा। उसने चिल्लाकर कहा—शाबाश! मेरे बहादुर साथियो! जीत तुम्हारी है...।

वह जानता था वे सब मर सकते हैं वह भी मर सकता है परन्तु उसे अब मरने जीनेकी कोई चिन्ता नहीं थी।

उसने दुश्मनको पीछे धकेल दिया था और हुआ क्या...वे उनको पहाड़ीके पीछे दूर उस जगहतक खदेड़ देना चाहते थे। वह फिर चिल्लाया—नेताजीकी जय !—आजाद हिन्द जिन्दाबाद—शाबाश ! बहादुरो जीत तुम्हारी हैं...।

सैनिक तेजीसे आगे बढ़े। उसके आधे साथी धरतीपर लेट गये थे पर वे आंखें मूंदे कमांडरके शब्दोंपर आगे बढ़ रहे थे...।

तभी सहसा वह शब्द बन्द हो गया। एक गोली उड़ी और कमांडरके मस्तिष्कमें घुसती चली गई। वह कांपा, लड़खड़ाया और फिर गिर पड़ा। वह सैनिकोंके बीचमें, दुश्मनके सिपाहियोंकी लाशोंपर गिरा था। उसका हाथ राइफलपर था उसके होंठ खुले थे मानो मुस्कराते हों—आजाद हिन्द—जिन्दाबाद।

सैनिकोंमें क्षणभरके लिये खलबली मची। दूसरे क्षण तो दूसरा कमांडर आगे बढ़ आया। उसने पुकारा—शाबाश। मेरे बहादुर साथियो ! जीत तुम्हारी है। दुश्मन भाग रहा है ! नेताजीकी जय ! आजाद हिन्द जिन्दाबाद इन्कलाब जिन्दाबाद...।

और वे आगे बढ़ गये...।

लेकिन वह सो गया था। सदा सदाके लिये सो गया था...।

और दुश्मन पीछे हट रहा था.....

—गीत—

फूल मैं, क्योंकर मिटे ! वासना मेरी !
प्रतु पलक-पट जो समाई
रूप-सी साकार !
स्निग्ध अंतर- गंध ही तो
अर्चना-आधार !
धूप-दीपक ज्योति भी तो धूम्रकी चेरी !
विरह-बड़वा से सुलगता
हृदय-सागर, धूम्र !—
उठता शून्य लोचन में—
सजल, शुचि मेघ-पलकें चूम !
प्यासकी पीड़ा, प्रभा-पथ बरसती ए री !
रूप शिख अवलोक
चंचल पंख खुल जाते !
प्यास ले पीढ़ित पतंगे
चूमते आते !
अंकुरित करती उन्हें फिर राखकी ढेरी !
प्यास-प्राणोंमें जगी
जब 'पी' सिहर गाया !
जो तुम्हींने दी तुम्हारी
वासना छाया !
बरसदो दो बूंद सजल नीरदे ! मेरी !

—'शलभ' साहित्य रत्न

कौड़ाणा विजय

श्री गणेश दत्त "इन्द्र" आगर

पात्र—

शिवाजी—इतिहास प्रसिद्ध महाराष्ट्र केसरी छत्रपति शिवाजी।

समर्थ स्वामी रामदास—शिवाजी महाराजके गुरु (सन्यासी)

जीजाबाई—शिवाजीकी माता।

तानाजी मालसरे--शिवाजीके बालसखा सेनापति।

सूर्याजी—तानाजी मालसरेका छोटा भाई।

रायबास—तानाजी मालसरेका तरुण-पुत्र।

उदयभान—कौडाणा दुर्गका संरक्षक, राजपूत।

दूत—शिवाजीका विश्वस्त सेवक।

मावले सरदार—शिवाजी पक्षके सरदार योद्धा।

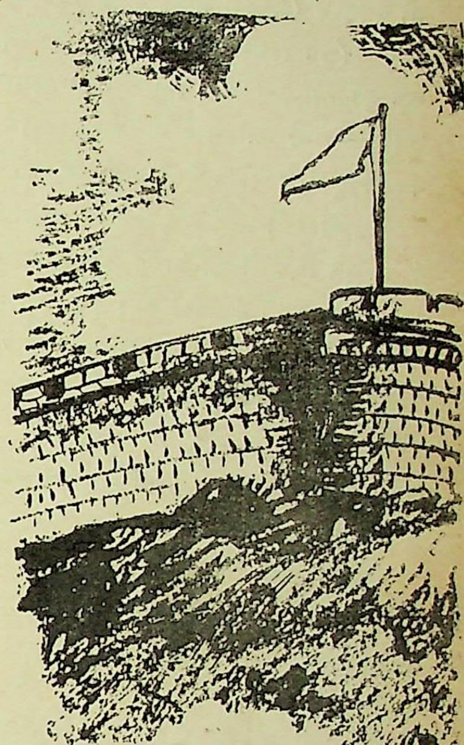
सैनिक—सिपाही

दृश्य प्रथम

स्थान—छत्रपति शिवाजीकी माता जीजाबाईका महल।

समय अपराह्न।

दृश्य—महलमें जीजाबाई अकेली, शिवाजीके आने की प्रतीक्षामें।





शिवाजी—(प्रवेश करके और माताके चरणोंको छू कर) क्यों याद किया मां?

जीजाबाई— यों ही बेटा! जी नहीं लगता था,

इसीलिये बुला लिया था। आ थोड़ी देर शतरंज खेलकर जी बहलावें (शतरंज खेलने लगना)

(कुछ देरबाद) क्यों शिवा! यह बता कि तू आज कल चुप क्यों है? शत्रुओंपर तेरे आक्रमण बन्द क्यों हैं? समर्थ स्वामी श्रीरामदास जी महाराजकी आज्ञापालन करनेमें तू आज आनाकानी क्यों कर रहा है?

शिवाजी—मां यदि मैं तेरी आज्ञाका पालन करता हूं तो मुझे पिताजी का जीवन खतरेमें पड़ जानेकी आशंका है। शत्रु उन्हें जेलमें कष्ट पहुंचा कर मार डालेंगे। अब तू ही बता, ऐसी दशामें मेरा क्या कर्तव्य है?

जीजाबाई—(रोषपूर्ण भावमें) शिवा! तुझे तेरे पिताकी चिन्ता है—देश और धर्मकी नहीं। याद रख, मेरा सौभाग्य सिन्दूर यदि देश धर्म और जातिके काम आता तो तू इसे अपने हाथोंसे पोंछ डाल। तूने राष्ट्रोद्धारके लिये मेरी कोखसे जन्म लिया है। माता पिताके स्नेहमें पड़कर अपने कर्तव्यको मत भूल बेटा! मैं ऐसे वैधव्यको अपना सुहाग समझूंगी जो देशकी भलाईके लिये मुझे मिले। तेरी माताकी यही आज्ञा है।

शिवाजी—जो आज्ञा मां! [दोनों शतरंज खेलते हैं। जीजाबाई शिवाजीको मात देती है]

मां तू जीत गयी। बोल क्या चाहती है तू मुझसे?

जीजाबाई—तू दे सकता है?

शिवाजी—अपना सिर भी तेरे चरणोंपर भेंट कर सकता हूं।

जीजाबाई—तो मेरी इच्छा है कि कोडाणा दुर्गपर शीघ्रही भगवां झण्डा लहराये। देखता नहीं, आज कोडाणा और पुरन्दर जैसे विकट अभेद दुर्ग पराधीन हो चुके हैं। उनपर शत्रुका झण्डा फहराता देख तुझे लज्जा नहीं आती?

शिवाजी—[कुछ क्षण चुप रहकर] मां! औरंगजेब ने कोडाणाकी रक्षाका समुचित प्रबन्ध कर रखा है नयी सेनाएं और रसद एकत्र करके उसे अधिकाधिक दृढ़ बना दिया है। उसका संरक्षक राजपूत उदयमान है—जो बड़ा योद्धा और शक्तिशाली है। उसका सामना करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है।

जीजाबाई—देखा! औरंगजेब कितना धूर्त्त है? भेद-नीतिमें वह कितना दक्ष है। वह इसी नीतिके सहारे अपना अस्तित्व बनाए हुए है। उसने राजपूत उदयभानको कौडाणा दुर्गका रक्षक बनाया है। लोहेसे लोहा भिड़ा देना चाहा है। और राजपूतोंने तो मानो अपने शौर्य महाराणा प्रतापकी तलवारको कलङ्कित करनेका ठेका ही ले लिया है। उसकी चालाकी को नहीं समझ पाये हैं। वे यवनोंके हाथ बिक-से गये हैं। तू ऐसे कुछ कलङ्कियोंसे डरता है? [क्रोध से] तू मेरी कोखसे व्यर्थ पैदा हुआ। अच्छा तो यह होता कि मैं बांझ रही होती। प्रतिज्ञा तो करली सिर देनेकी और अब मुंह छिपाता है? चला जा मेरे सामनेसे—मुंह मत दिखाना। कायर कहीं का?

शिवाजी—मैं कायर नहीं हूं मां! आज तेरा शिवा प्रतिज्ञा करता है कि 'मैं जबतक कौड़ाणा विजय नहीं कर लूंगा तबतक भोजन नहीं करूंगा, अपना सैनिक वेष नहीं बदलूंगा और तुझे मुंह नहीं दिखाऊंगा।"

जीजाबाई (मुस्कराते हुए प्रेमसे शिवाजीका सिर सूंघ कर) तेरे मुंहसे जीजाबाई यही सुनना चाहती थी बेटा! मेरी आज्ञा पाकर तू यमराजसे भी लोहा ले सकता है—यह मुझे भरोसा है। जाओ, विजयश्री उत्सुकता पूर्ण दृष्टिसे तेरा मुंह देख रही है। कुलदेवी तेरी रक्षा करे—यही मेरा आशीर्वाद है। कौड़ाणा तेरा और तेरे पूर्वजोंका है। जा, उसपर अपनी विजय वैजयन्ती फहरा। समर्थ स्वामीकी इच्छा पूर्ण कर। मेरे हृदयकी कसकको मिटा। तुझ जैसा बेटा पाकर मैं धन्य हूं शिवा! तू अमर हो और यदि मरे तो देश धर्मकी रक्षापर। ले, यह तेरी भवानी [तलवार देती है और शिवाजी दोनों घुटने टेक कर दोनों हाथोंसे तलवार लेकर मस्तक झुकाते हैं] विजयी हो!

दृश्य द्वितीय

स्थान—तानाजीमालसरेके घरके आगेका चौक।

समय—सूर्यास्तके बाद।

दृश्य—तानाजीके पुत्र रायबासकी बारात जानेकी तैयारी। बहुतसे घोड़े कसे खड़े हैं। छकड़ोंपर सामान लादा जा रहा है। कुछ लोग चल भी दिये हैं। इसी समय शिवाजी का भेजा दूत पहुंचता है।

दूत—(तानाजीसे, प्रणाम करके) आपको श्री शिवाजी महाराजने इसी समय जरूरीमें याद किया है।

तानाजी—क्यों? ऐसा क्या काम आ गया?

दूत—महाराजने कहा है कि वे अपनी माताके चरणोंकी शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि मैं जबतक कोडाण-दुर्ग हस्तगत न कर लूंगा तबतक भोजन नहीं करूंगा सैनिक वेष नहीं उतारूंगा और माताको अपना

मुंह नहीं दिखाऊंगा। उन्होंने समस्त सरदारोंको युद्धके लिये तैयार होकर आनेका हुक्म भेज दिया है।

सूर्याजी—[तानाजीसे] पहले रायबासका बिबाह कर लाओ। फिर निश्चिन्त होकर कौडाणा गढ़ पर चढ़ाई करना। बारात तैयार हो चुकी है अब इसे रोकना ठीक नहीं। इतना हम करेंगे कि लग्न होते ही हम लौट आवेंगे। वहां व्यर्थ एक क्षण भी नहीं ठहरेंगे लग्न वेला तो टला नहीं करती।

तानाजी—सूर्या! तुम चले जाओ, रायबासको ले जाओ, और विवाह कर लाओ। मैं अभी कौंडाणा विजय करने जाता हूं। शिवाजी महाराजकी कठिन प्रतिज्ञाओंको सुनकर मैं अब कोई दूसरा काम नहीं कर सकता। पहले उनका कार्य होगा।

रायबास—(अपनी वैवाहिक वेषभूषा उतारकर) शिवाजी महाराजका काम पहले होगा। विवाह उतना आवश्यक नहीं है। विवाह न भी हो तो कोई चिन्ता नहीं। यह विवाहके लिये जानेवाला पहले रणभूमिमें जायेगा। मेरा विवाह-कङ्कण अब रण-कङ्कण बन चुका है। किसी कन्याका पाणिग्रहण करनेके पूर्व मैं संग्राम-भूमिमें विजय-वधूको बरण करूंगा। (सैनिक वेष पहनता है। यह देखकर तानाजी, सूर्याजी और समस्त बाराती सैनिक वेषमें आक्रमणको तैयार हो जाते हैं। स्त्रियां वैवाहिक गीत बन्द करके रण-गीत गाने लगती हैं)।

तानाजी—(दूत से) जाओ तुम महाराजसे निवेदन करो कि ताना अपने पुत्र रायबासकी बारात लेकर कौडाणाकी ओर चला गया। वह अपने पुत्रका विवाह कौंडाणा दुर्गमें विजय-वधूके साथ करेगा। विवाह कार्य सूर्योदयके पूर्व ही सम्पन्न हो जायेगा। महाराज इस बारातमें पधारनेका कष्ट न करें। विवाह पूर्ण होनेकी सूचना तोप द्वारा महाराजको दी जायेगी और प्रातः देखेंगे कि अंशुमालीकी स्वर्ण रश्मियोंसे आलोकित भगवा झण्डा कौडाणा दुर्गके उच्च शिखरपर स्वतन्त्र वायुके झकोरोंसे लहरा रहा है।

(सबका प्रस्थान)

दृश्य तृतीय

स्थान—कौंडाणा दुर्गके अन्दरका मैदान।

समय—रात्रिका तृतीय प्रहर।

दृश्य—मावले सरदार तानाजी मालसरेके नेतृत्वमें मुगल सैनिकोंसे युद्ध कर रहे हैं। सहसा रुईके ढेरमें आग लगी और दुर्ग प्राङ्गणमें प्रकाश हो गया।

तानाजी—(अपने सैनिकोंसे) बहादुरो! रास्ता साफ है। बढ़ो, बढ़ो, आगे बढ़ो। शत्रुका झण्डा अब बहुत पास है।

उदयभान—[तानाजी के सामने आकर] झंडे तक पहुंचना बड़ी टेढ़ी खीर है। आप जरा मुझसे तो निपट लो। [तलवार का वार करता है]।

तानाजी—[उदयभानके वारको ढालपर व्यर्थ करके] ले संभल! (वार करते हैं दोनोंमें संभलकर तलवारें चलती हैं) तानाजी मुगल झण्डे तक पहुंचकर उसे नीचे गिरा देते हैं। इसी समय उदयभानके असि प्रहारसे तानाजी वीर गति पाते हैं। उदयभान सगर्व अट्टहास करता है।

सूर्याजी—कुलकलंकी राजपूत! तानाजी को वीरगतिमें देखकर तू यह समझता होगा कि अब कोई महाराष्ट्र वीर नहीं रहा। अभी तानाजी का यह छोटा भाई सूर्याजी तेरी छातीको चीरकर रक्त-पान करनेको तेरे सामने मौजूद है। आ इसके दो हाथ देख [तलवार लेकर उदयभानपर झपटता है। दोनोंमें युद्ध होता है। अन्तमें उदयभान मारा जाता है] वीरो! मुगलोंके लिये आज मराठों का बच्चा-बच्चा तानाजी बन जाओ। देखना, एक भी मुगल सैनिक आज नहीं बचने पावे। तानाजी की आत्माको इसी में शान्ति मिलेगी (भयंकर मारकाट। एक भी शत्रु सैनिक नहीं बचता। 'छत्रपति शिवाजी महाराजकी जय' महाराष्ट्र केसरी शिवाजी की जय' 'वीर तानाजी मालसरे अमर हों' के बारम्बार घोषसे दुर्ग निनादित हो उठता है।)

रायबास—बहादुरो! भगवती जगदम्बाकी अनुकम्पासे हम इस अजेय दुर्गपर अपना आधिपत्य स्थापित कर सके हैं। पिताजीकी बलि देकर हमने कौडाणा हस्तगत किया है। सौदा बड़ा ही महंगा पड़ा है। आओ अब मुगल पताकाके स्थानपर आजके ब्रह्ममुहूर्त्तमें आर्य गौरववर्द्धक अपने भगवांध्वजको फहरावें। अंशुमाली अपनी प्रथम स्वर्ण रश्मिसे उसका स्वागत करनेको आतुर हो चले आ रहे हैं। उषादेवी अमृत कलश लिये अभिषेकके लिये समयकी प्रतीक्षामें आ पहुंची हैं। हिमांशु हमारे शौर्य और बलिदानकी साक्षी रहेंगे। ['भगवती जगदम्बा भवानी की जय' के साथ सूर्याजी ने भगवां झण्डा फहरा दिया।

इसी समय आनन्दसूचक तुरही ढोल आदि बजने लगते हैं और तोपें चलती हैं। सब लोग एक स्वरमें ध्वज-गीत गाते हैं।

[ध्वजगीत]

मुक्त नभो मण्डलमें भगवां, फहरायेजा लहराये जा।
तू अतीत की गाथा गा, सोतोंको नित्य जगाये जा॥
त्याग तपस्याके प्रतीक तू, आर्य-जातिके जीवन-धन।
अरिदलके हिय-शूल! गगनमें फहराये जा लहराये जा॥
देश धर्मकी रक्षापर हम, अपना सर्वस्व गवावेंगे।
तू स्वच्छन्द वायु-मण्डलमें, फहराये जा लहराये जा।

शिवाजी—[सहसा आकर ध्वजको प्रणाम करते हुए]

तू स्वच्छन्द वायु मण्डलमें, फहराये जा लहराये जा।

(सब पहले ध्वजको प्रणाम करके बादमें शिवाजीको प्रणाम करते हैं।)

शिवाजी - मैं आप लोगोंको बधाई देने यहीं आ पहुंचा।

सूर्याजी– बड़ी ही महंगी है वधाई महाराज!

शिवाजी—निस्सन्देह आप लोगोंको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। चि० रायबासकी बारात यहां आ पहुंची। विवाह कङ्कण, रणकङ्कणमें परिणत हो गया। मैं आप लोगोंका अत्यन्त आभारी हूं। तानाजी कहां हैं। बुलाइये उन्हें छाती से लगा लूं।

सूर्याजी—[साश्रु] महाराज! तानाजी इस लोक में नहीं हैं।

शिवाजी - [आश्चर्य और शोक से] क्या तानाजी ने वीरगति प्राप्त की ?

रायबास—हां, पिताजीने, उदयभानसे युद्ध करते वीर गति पायी।

शिवाजी—और उदयभान ?

रायबास—उसे पितृव्य सूर्याजी ने, उसी समय यमलोक पहुंचाया।

शिवाजी—मैं कितना अभागा हूं [साश्रु] आज मैं पंखहीन पक्षी-सा हो गया। चलो मुझे वहां ले चलो जहां मेरे तानाजी वीर शय्यापर गर्वसे लेटे हुए हैं। [सब लोग उधर जाते हैं। शिवाजी रायबासके कंधेपर हाथ रखे चलते हैं। तानाजीके मृत शरीरको देखते ही दौड़कर उससे लिपटकर रोने लगते हैं] ताना! मेरे ताना! मुझे धोखा देकर चले गये ताना। मुझसे आगे निकल गये। इसीलिये मुझे आनेसे मना किया था कि कहीं मैं तुमसे आगे न हो जाऊं इस गौरवपूर्ण बलिदानपर तुम दूसरेका अधिकार नहीं होने देना चाहते थे क्यों ?

समर्थ स्वामी रामदास [एकदम आकर] शिवा! सावधान!

शिवाजी—चौंककर समर्थको प्रणामकरके] सावधान हूं गुरुदेव!

समर्थ—कायरोंकी भांति विलाप करता है—'सावधान हूं।' गुरुदेव!

समर्थ कायरोंकी भांति विलाप करता है और कहता है "सावधान हूं।" देश और धर्मकी रक्षाके लिये तुझे न जाने अपने प्रिय जनोंके ऐसे कितने वलिदान देखने पड़ेंगे। तानाने अपने कर्तव्य पालनमें वीर गति पाई है। उसके लिये शोक व्यर्थ है। सांसारिक मोहमें पड़कर रोनेके लिये तू इस दुनियांमें नहीं आया है बल्कि तेरा जन्म धर्म और मातृभूमिके उद्धारके लिये है। शोक न कर। अपने कर्तव्यकी की ओर देख।

शिवाजी—गुरुदेव! मैं अपने कर्तव्य पर अवस्थित हूं। तानाजी जैसे सच्चे साथीको खोकर यह कौंडाणा हाथ आया है। गढ़ आया परन्तु सिंह गया।

समर्थ—शिवा! तेरे सिंहतानाकी स्मृतिमें आजसे मैं इस गढ़का "सिंहगढ़" नाम रखता हूं।

[शिवाजी मस्तक झुकाते हैं। जय घोष होता है]।

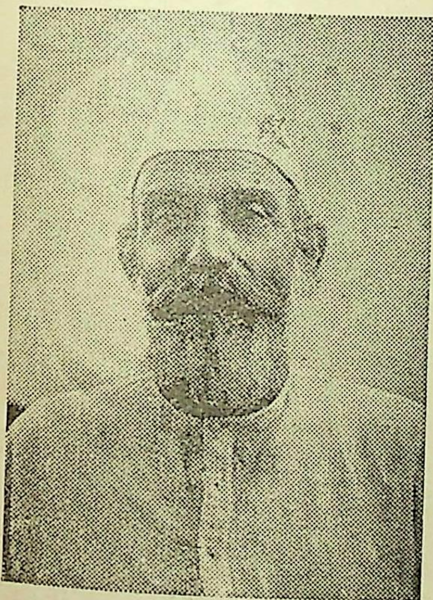


प्रगतिवादका विरोध क्यों ?

श्री अभिक्षु

जबसे हिन्दी साहित्यमें प्रगतिवादका आन्दोलन शुरू हुआ, तबसे इस विषयमें एक नया वाद-विवाद चल पड़ा है। वाद-विवाद अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। एक ही बात कब अच्छी और कब बुरी हो सकती है, इसका निर्णय उसके उद्देश्यसे हो सकता है। यदि यह वाद-विवाद क्रियात्मक विरोधका स्वरूप न ले लेता, तो संभव था कि इस विषयपर गम्भीर विचार करना भी इतना आवश्यक न रह जाता। परन्तु स्थिति कुछ भिन्न दिखायी दे रही है। अतः यही अच्छा होगा कि डरकर दूर रहनेकी अपेक्षा इस समस्याका आगे बढ़कर स्वागत करें। हमारे विचारसे इस वाद-विवाद और विरोधके मूल कारण इस प्रकार हैं—

यह कि प्रगतिवादको वास्तविक रूपमें उपस्थित



सर्वत्र विशुद्ध हिन्दीकी पताका फहरानेवाले श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन।

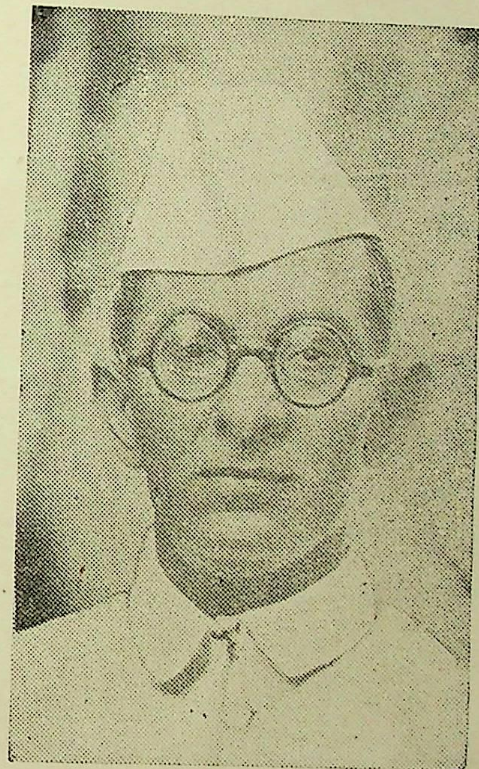
कर सकना।

बिना समझे बूझे ही प्रगतिवादके विरुद्ध धारणा बना लेना।

समझ बूझकर भी प्रगतिवादके साथ चल सकने में असमर्थ होना।

समाज और साहित्यको व्यक्तिवादी ढंगसे देखना, तथा वर्तमान समाज व्यवस्था और विधि-विधान के आधार पर ही प्रगतिवादका मूल्यांकन करना।

—समाजमें होनेवाले पतनोत्थान और उलट-फेर



प्रगतिशील गुजराती साहित्यके ख्याति प्राप्त लेखक श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी।

के कारण नयी परिस्थिति, नये विचार, नये आंदोलन और नयी समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी स्थितिमें प्रगतिशील साहित्यकार संघर्षसे जी चुराकर नहीं अपितु उसके बीचोबीच कूदकर उनपर विचार करता है, और समाजको आगे बढ़नेकी दृष्टि प्रदान करता है। परन्तु संघर्षोंसे भागकर अथवा आंखें मूंदकर समस्याओंको सुलझानेवाले पला-



विश्व विख्यात साहित्य शिल्पी कवीन्द्र रवीन्द्र।

यनवादी साहित्यिक, प्रगतिशील दृष्टिसे इतने भयभीत हो उठते हैं कि वे सब काम छोड़कर प्रगतिवादके ही विरोधमें लग जाते हैं।

प्रगतिशीलको समाजवादी रूस और भारतीय साम्यवादियोंका आन्दोलन या आन्दोलनका साधन मान-कर हौआ खड़ा कर लेना। इत्यादि।

अब जरा इन कारणोंकी छानबीन भी कर ली जाये। ऐसा करनेसे हम वास्तविकताके साथ सीधे निर्णयपर पहुंच सकेंगे। यहां इनको क्रमवार लिया जा रहा है।

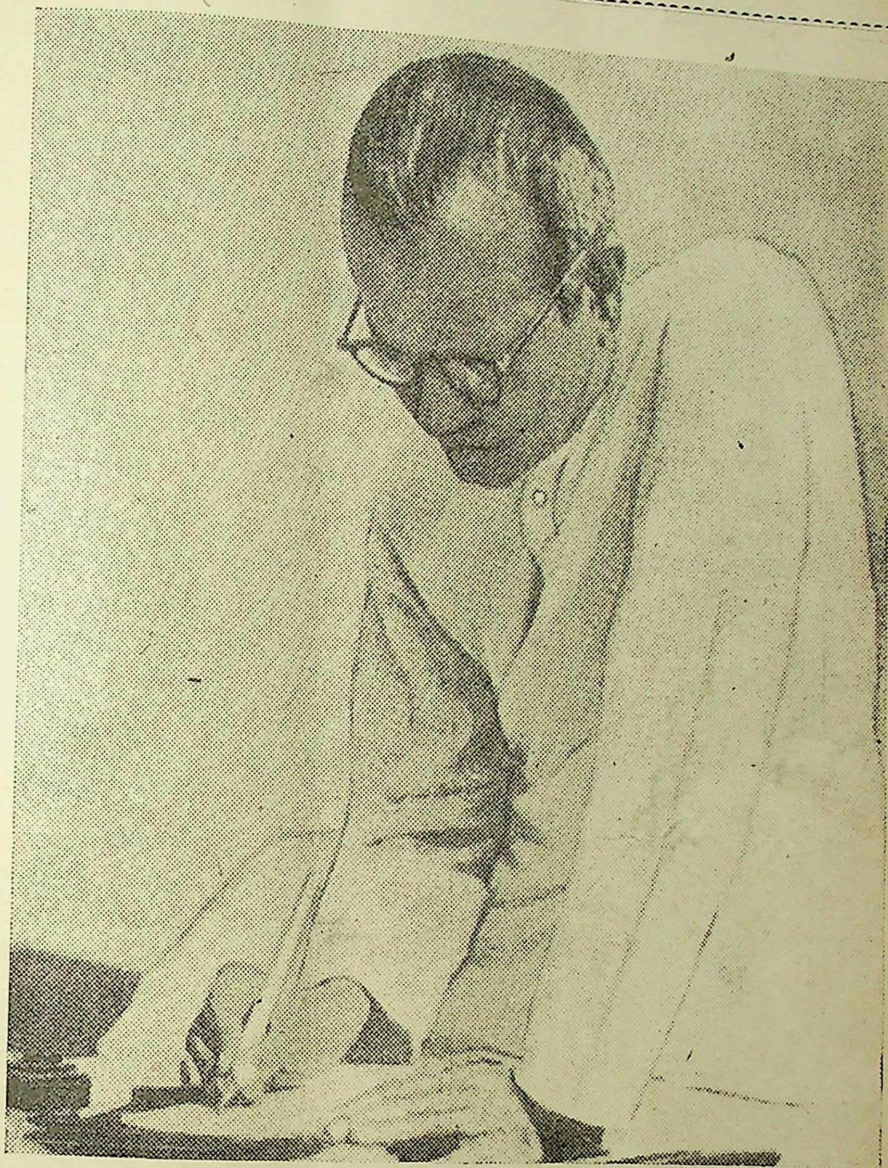
प्रगतिवादको ठीक-ठीक सामने रखनेमें कठिनाइयां इसलिये आती हैं कि यह कोई गढ़ी-गढ़ाई या आसमानसे उतरी हुई वस्तु नहीं। जिस प्रकार धर्म और धर्मके सिद्धान्त किसी महापुरुष, अवतार या पैगम्बर द्वारा निर्धा-रित किये जाते हैं, उस प्रकारकी कोई भी बात प्रगतिवादमें नहीं सकती। बल्कि इसके विपरीत यह समाजके जाग्रत अंगके अनेक मनस्वी और विचारकों द्वारा निर्धारित होती रहनेवाली विचार धारा है। इसमें समय और परिस्थित्यानुसार निरन्तर परि-वर्तन होता रहता है और यही इसकी विशेषता भी है। यदि प्रगतिवाद भी धर्मकी तरह गढ़े-गढ़ाये सूत्रोंमें बंधा हुआ होता तो यह कभी भी प्रगतिवाद नहीं हो सकता था। ऐसा होनेसे इसको भी किसी न किसी व्यक्ति विशेषपर अवलम्बित रहना पड़ता और आप्त वचन की तरह यह भी एक प्रकारसे जड़ताका स्रोत बन जाता। किसी समयमें स्थिर किये हुए सिद्धांत उसी समय के लिये उपयोगी हो सकते हैं, पर भविष्यके लिये वे सिवा बन्धनके और कुछ भी नहीं रह जाते। धार्मिक सिद्धान्त और विधि-विधान इस प्रकारके बन्धनका सबसे अच्छा उदाहरण है।

ऐसी स्थितिमें यह अनिवार्य हो जाता है कि परि-स्थितिवश सर्वदा परिवर्तनशील प्रगतिवादको सामने रखने में कठिनाइयां उत्पन्न हों। लेकिन इन कठिनाइयोंके होते हुए भी प्रगतिवादके कुछ ऐसे चिन्ह हैं कि जिनके आधार

पर :इनको दूर किया जा सकता है।

दूसरे ऐसे लोगोंकी कमी नहीं जो न तो प्रगतिवादको समझना ही चाहते हैं और न समझनेकी क्षमता ही रखते हैं इनका बौद्धिक धरातल बहुत नीचा होनेके साथ साथ अनेक प्रकारके कल्पित आवरणोंसे ढका रहता है। परिणाम स्वरूप जब भी इनके सामने प्रगतिवादका नाम या प्रश्न आया नहीं कि ये भड़के। अपनी धारणा और विश्वास को जरा-सा चैलेन्ज मिलने या:आघात लगने पर ये तिल-मिला उठते हैं, और विरोध करने लग जाते हैं।

साहित्य क्षेत्रमें वे लोग भी कम नहीं हैं जो प्रगति-वादको न सिर्फ समझते ही हैं बल्कि पसन्द भी करते हैं। पर कठिनाई यह होती है कि ये प्रगतिवादके साथ नहीं चल सकते। इनकी अपनी समस्यायें इतनी जटिल होती हैं



हिंदी साहित्य सम्मेलनके वर्तमान अध्यक्ष श्री वियोगी हरि।

कि इनके चाहनेपर भी प्रगतिशील साहित्य देना असंभव हो जाता है। इनमें परिस्थितियोंसे संघर्ष करने की शक्ति नहीं होती। परिणाम यह होता है कि ये दिनपर दिन पिछड़ते जाते हैं और प्रगतिशील साहित्यकार इनसे बाजी मार ले जाते हैं। तब यह स्वाभाविक है कि अपने स्थान और अस्तित्वको बनाये रखनेके लिये अपनेसे आगे जानेवालोंको कोसें, बुरे भले कहें और बस चले तो पैर पकड़कर रोक दें। राजनीतिक क्षेत्रमें जो रोल नरम-दली सुधारकोंका है वही रोल इनका साहित्यिक क्षेत्रमें होता है।

:लेकिन :प्रगतिवादके विरोधियोंमें अधिक दय-नीय दशा तो उनकीहै, जो समाज और साहित्यको व्यक्ति-वादी ढंगसे देखते तथा वर्तमान समाज व्यवस्था और विधि-विधानके आधार पर ही प्रगतिवादका मूल्यांकन करनेका आग्रह रखते हैं। एक उच्च कोटिके साहित्यिक को समाजके विषयमें जो आवश्यक ज्ञान होना चाहिये वह इनको नहीं होता। मानव समाजके जन्मकालसे अब तक कितने परिवर्तन हुए, क्यों और किस दिशामें हुये हैं। इस दृष्टिसे विचार करनेका इनमें सर्वथा अभाव होता है। इसके विपरीत-इनकी धारणा यह होती है कि मानव समाज आज जिस स्थितिमें है वह ईश्वर कृत है, अनादि कालसे चली आ रही है और इसमें मनुष्य कहलानेवाली



भारत कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू

शक्ति कुछ भी परिवर्तन नहीं ला सकती। इतना ही नहीं, ये और भी आगे जाते हैं। इनका यह पक्का विश्वास होता है कि मानव समाजका दिनों दिन पतन ही होता रहेगा। इस प्रकारकी दृष्टि सतयुग और कलियुगके काल्पनिक चश्मेका आधार लिये रहती है। इसलिये जो कुछ भी हो रहा है वह व्यक्ति के अनेक जन्मोंके पुण्य-पाप का परिणाम है और इसमें अब कौन परिवर्तन ला सकता है? इसके साथ ही सामूहिक भावनासे अछूते होनेके कारण इतने व्यक्तिवादी बने रहते हैं कि इनके दुःख सुखके सामने समाजके दुःख-सुख कुछ भी मूल्य नहीं रखते। काव्य हो या कहानी, उपन्यास हो या निबन्ध, इनकी हर कृतिमें अपना ही चित्र अपना ही वर्णन और अपना ही व्यक्तिगत दुख-सुख होगा। जिस समाजके कारण व्यक्तिका बनना बिगड़ना होता है वह इनकी दृष्टिमें ही नहीं आ सकता और जब प्रगतिशील साहित्यकार व्यक्ति तथा समाजपर वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करता है तो बौखलाकर प्रतिवाद को ही बुरा समझने लगते हैं।

—मानव समाजमें कोई भी व्यवस्था ऐसी नहीं बनी जिसमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता न हुई हो। और जबतक समाज व्यवस्था गलत बुनियादपर रहेगी तबतक परिवर्तनकी ही नहीं अपितु अमूल परिवर्तनकी आवश्यकता रहेगी ही। वर्तमान समाज व्यवस्थामें होनेवाले पतनोत्थान और उलट-फेर, नयी परिस्थिति और नये विचार तथा नये-नये आन्दोलन और समस्याओंका उत्पन्न होना चलता ही रहेगा। यह स्थिति इस बातका प्रमाण है कि समाज-व्यवस्थामें भयङ्कर विषमता आ गयी है, और इसमें इतना आन्तरिक विरोध पैदा हो गया है कि मानव प्रगतिके सभी रास्ते बन्द हो चुके हैं।

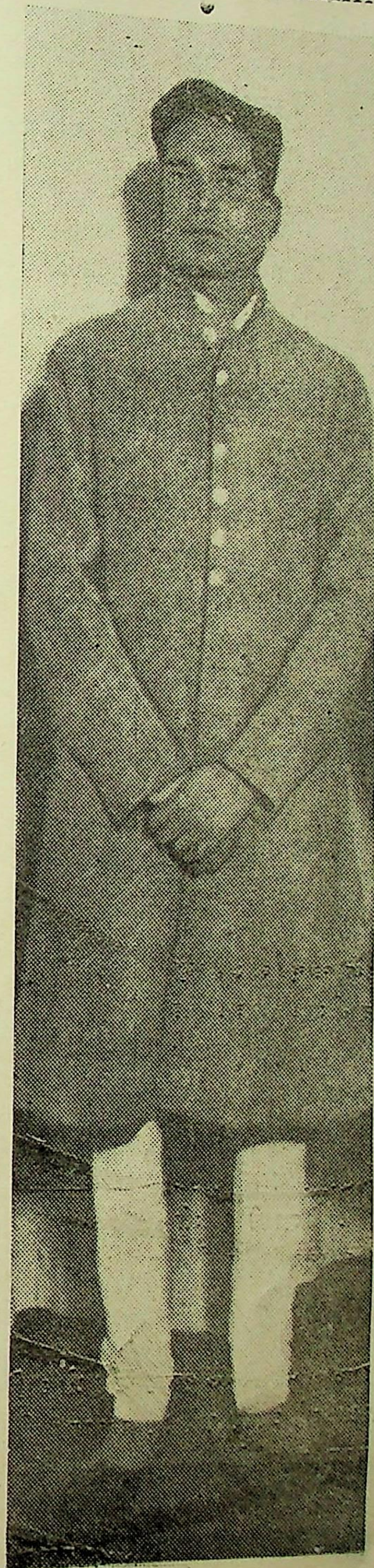
अपने अतीत और वर्तमानको ऐतिहासिक प्रकाशमें देखकर प्रगतिशील साहित्यकार इसपर विचार किये बिना नहीं रह सकते। उनकी विचार-पद्धति वैज्ञानिक होनेसे वे जीवनसे सीधा सम्बन्ध स्थापित करनेमें सफल होते हैं। वे जीवन रहस्यको समझनेके लिये समाजका आधार लेते हैं, और अन्तमें उस सत्यको प्राप्त करते हैं जो मानव समाजको कुचलनेवाले स्वार्थ-साधक-वर्गके पैरों नीचे दबा रहता है। पर वे इतना ही करके नहीं ठहर जाते। उनके कदम और भी आगे बढ़ते हैं और वे बुनियादी संघर्षके बीचो-बीच पहुंच जाते हैं। इस तरह वे संघर्षमें गिरकर समाजको आगे बढ़नेकी न सिर्फ दृष्टि ही प्रदान करते हैं, बल्कि क्रांतिकी मशाल जलाकर उसका पथ निर्माण भी करते हैं। वे न तो कभी संघर्षसे जी चुराकर ही भागते, और न तमाशाबीनकी तरह अलग रहकर अज्ञात सुअवसरकी प्रतिक्षा ही करते हैं।

परन्तु पांचवे सवारकी तरह कुछ ऐसे भी साहित्यिक होते हैं जो उपरोक्त परिस्थितियोंमें विचित्र कलाबाजी दिखलाते हैं। ये वे लोग हैं जो संघर्षसे भागकर अथवा दूर

रहकर समस्याओंको सुलझानेका विफल प्रयत्न करते हैं। पर जब परिस्थितियोंमें विशेष उलझन और तनाव पैदा होने जाता है तब ये कबूतरकी तरह स्वयं भी अपनी आंखें मूंद लेते हैं, और समाजकी भी आंखें बन्द कर लेनेका रामबाण उपाय बतलाते हैं यह एक ऐसा धोखा है कि आत्मवंचक साहित्यकार प्रगतिवादके नामसे ही, रुष्ठ, भयभीत और क्रुद्ध हो जाते हैं। इनका उद्देश्य भी प्रगतिवादका विरोध करना ही रहता है।

अन्तिम प्रकारके प्रगतिवादके विरोधी साहित्यकार वे हैं जो प्रगतिवादको समाजवादी रूस (यू० एस० एस० आर०) और भारतीय साम्यवादियोंका आन्दोलन या प्रचार-साधन मानकर कल्पित भयका हौआ खड़ा करते हैं। इस श्रेणीमें कुछ खास तरहके लोग हैं। कुछ तो पूंजीवादके प्राण स्वयं पूंजीपति लोग, कुछ पूंजीवादके अनन्योपासक पूंजीवादी मनोवृत्तिवाले साहित्यकार, तथा कुछ पूंजीवादके ऐजण्ट जो पूंजीवादी शोषणमें ही अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकते हैं, दूसरे, फासिस्ट, साम्प्रदायिक, धार्मिक, आदर्शवादी तथा राज-दरबारी मनोवृत्तिवाले भी इसी श्रेणीमें आ जाते हैं।

साम्यवादमें विश्वास रखनेवाले समाजवादी सोवियत सघने जिस राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारधाराको जीवनमें स्थान दिया है, वह विचार-धारा मानव समाजमें होनेवाले ऐतिहासिक परिवर्तनका ही प्राकृतिक स्वरूप है। विकासोन्मुख मानवसमाज जब प्रगति-पथपर आगे बढ़ता है तो उसकी पुरानी दृष्टि और व्यवस्था अनुपयोगी होकर केवल अतीतकी स्मृति भर रह जाती है। मूर्खता-वश सामाजिक-विकासको न समझनेवाले अथवा समझकर भी स्वार्थमें गर्क रहनेवाले लोग प्रतिक्रियावादी रुख अपनाकर मानव-समाजकी प्रगतिका भयङ्कर विरोध करने लगते हैं। लेकिन इस विरोधको कुचलकर भी मानव-समाज आगे बढ़ जाता है। इतिहासका एक-एक अक्षर इसका साक्षी है कि जंगल युगसे लेकर अबतक मानव-समाजकी प्रगतिका प्रतिगामी शक्तियोंने विरोध किया और फिर भी वह समाजवादी युगके उषाकालमें आ पहुंचा है। सोवियत संघकी समाजवादी व्यवस्था मानव-समाजकी इसी प्रगतिका कदम है। अतः यह स्वाभाविक है कि सोवियत संघकी समाजवादी व्यवस्था मानव समाजकी इसी प्रगतिका कदम है। अतः यह स्वाभाविक है कि सोवियत संघ प्रगतिवादका आधार ग्रहण करे। पर समाजवादी



राजनीतिक प्रगतिशीलताके अग्रणी श्रीजयप्रकाश नारायण।

सोवियत संघ के प्रगतिवादको अपनानेसे वह किसी दूसरे राष्ट्रके लिए त्याज्य नहीं हो सकता, और न प्रगतिवाद किसी राष्ट्रके लिए विदेशी और हानिकर ही। इसलिये प्रगतिशील साहित्यकारोंको यह कहना कि चूंकि प्रगतिवादका नारा सोवियत संघने लगाया था और आज भी लगा रहा है। अतः तुम यह नारा मत लगाओ, मूर्खता है।

इस प्रगतिवादके आन्दोलनसे भारतवर्ष भी अछूता नहीं रह सकता, और न इसको भारतीय कम्युनिस्ट पार्टीका आन्दोलन ही कहा जा सकता है। साम्यवाद स्वयं एक युग-प्रगतिका निश्चित परिणाम है। इसलिए साम्यवादी दल भी उतना प्रगतिशील अवश्य हो सकता है जितना साम्यवादका प्रगतिवादसे सम्बन्ध होगा। उसके लिए यह अनिवार्य हो जाता है। लेकिन प्रगतिशील विचारक या साहित्यकारोंके लिए साम्यवादी होना अनिवार्य नहीं होता। क्या रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरद बाबू और प्रेमचन्दजी साम्यवादी थे? इन्होंने तो न सिर्फ प्रगतिवादका क्रियात्मक समर्थन ही किया, बल्कि उसको शक्तिशाली भी बनाया है। वास्तवमें प्रगतिवाद न साम्यवाद ही है और न कोई हौआ ही। यह केवल एक दृष्टि है जो व्यक्ति और राष्ट्र दोनोंके जीवनमें आवश्यक है। ईमानदार साहित्यकार इसको अपनाकर समाजको प्रगतिकी ओर बढ़नेकी प्रेरणा करते हैं। वे सत्य-असत्य, शिव-अशिव, सुन्दर-असुन्दर, धर्म-अधर्म, नैतिक-अनैतिक, न्याय-अन्याय, सदाचार-दुराचार, प्राचीन-अर्वाचीन, सुख-दुख, इत्यादि समस्त विषयों-



साहित्य वाचस्पति सम्पादकाचार्य पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी। आप इन दिनों अस्वस्थ हैं। भगवान आपको चिरजीवी करे।

पर वैज्ञानिक और सामूहिक दृष्टिसे विचार करते हैं, और निर्भय होकर अपनी कलम चलाते हैं। न वे किसी वादके बन्धनोंमें बंधे होते हैं न किसी वादकी अच्छाइयोंका तिरस्कार ही करते हैं। इन सब कारणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि प्रगतिवादका विरोध क्यों और किस प्रकारके लोग करतेहैं।

शेष स्मृति

श्री भिक्षु

यौवनके कुछ ही उष्णाक्षणोंका अनुभव उसकी मृदु अंगुलतिकाने किया था। कली खिला ही चाहती थी। वधू मुख अभी अनवगुण्ठित ही था। चितवनमें सरलता लक्षित होती थी। लम्बा, पतला भरा हुआ शरीर, सुगठित अव--यव एवं मांसल पेशियां। गौरवर्ण तथा रक्तिम कपोल। सुन्दर नासिका और दीप्त नेत्र। बिम्बाधरोंपर दन्तप्रभा विकीर्ण रहती। मुक्त केस-गुच्छ नितम्बोत्सेधपर मुग्ध रहते। मतवली काली घुंघराली भौंहें निरभ्र प्राचीमें उदीयमान बालरवि-सी प्रतीत होती। कनक कुण्डल किञ्चिद थिरकनेपर ही उसके कनक वर्णसे भिन्न भासित होते। स्वर्ण खचित कौशेय वक्षपर बंधा था। काशीका अनर्घ्य दुकूल सौम्य स्कन्धोंपर असावधानीके साथ झूलता रहता। मानो तथाकथित अप्रतिम रूपराशिने दिग्विजयके लिये प्रस्थान किया था।

वह उच्चकोटिकी नर्तकी भी थी। रूप और कलाका अभूतपूर्व सद्भाव था। नृत्य गुणोपेत अंग लतिका मूर्त्त कलाका अविधान प्राप्त कर चुकी थी। भावी युवक भी उसके परितः मंडराते। विपुल स्वर्ण राशि चरणोंमें लोटती। राजसभाओंमें सम्मान होता। देशभक्तोंमें कला-प्रदर्शन करती। इसके इंगितपर ऐश्वर्य लुटता, इच्छाके आगे शौर्य झुकता। पर वह स्वयं परास्त होना न जानती थी। बड़े-बड़े प्रलोभन उस उस अपराजितापर विजयी न हो सके। मनोबल ही उसकी शक्ति था।

वह काश्मीरसे वाराणसी तक आयी। सर्वत्र उसके रूपके प्रशंसक और ग्राहक थे। किन्तु मनोबल में ही न ठहरनेके कारण निर्णीत संतुलन कहीं हो ही नहीं सका। ऋद्धि सम्प्रदान तो केवल उसकी एक कहानीका पुरस्कार ठहरता। उसका हास सर्वथा असाधारण होता। तिरस्कारकी कठोरतम व्यञ्जना वह किञ्चित मुसकुरा कर ही कर डालती थी।

परिचारिका निवेदन करती—देवि, नगर सेठ अलभ्य उपहारोंके सहित देवीके दर्शनोंकी इच्छासे प्रतीक्षामें हैं।

पुष्पोंसे क्रीड़ा करती हुई वह कह देती—कह दो अवकाश नहीं!

'देवि! सेनापतिका निमन्त्रण आया है!

'असमर्थता प्रगट कर दो!

राजसभा, कल आपके स्वागतमें कोई विशेष आयोजन करना चाहती हैं देवि!'

'सूचित कर दो फिर कभी!'

'देवि!......

'बस स्थगित करो। अब मैं कुछ कालके लिये एकान्तवास करूंगी।'

'देवि! उस दिनके कुछ प्रश्न शेष हैं? एक सामन्त प्रश्न करते हैं कि क्या देवी कृपाकर बतलानेकी चेष्टा करेंगी कि पुरुषवर्गके प्रति वे इतनी अनुदार क्यों हैं?'

'लिख भेजो कि पुरुष ही नारीके प्रति कब उदार रहा। रूपके ग्राहक भी वणिक बुद्धिसे शून्य नहीं होते!'

'देवि! एक और जटिल प्रश्न है।'

'कहो!'

'महास्थविर सम्यक् विनयके अनन्तर करुणाके आदेश से पूंछते हैं कि देवी, क्या अपने मार्गके अन्तसे परिचित हैं? आदि तो निस्सन्देह आकर्षक है।'

नर्तकी विचार मग्न हो गयी। मुखपर नाना भाव-विकार बन-बिगड़ रहे थे। सहसा आवेगमें आ बोल उठी--जान पड़ता है कि महास्थविर पुरुष होकर भी उसकी प्रवञ्चनाओंसे या तो परिचित ही नहीं अथवा अनजान बने रहना चाहते हैं। पुरुषके नारीपर किये अत्याचारोंका कोई अन्त नहीं। फिर नारीका ही प्रतिरोध अन्तपर क्यों विचार करे। उसे तो सदा बना रहना है। मैं अभी अपने विगत जीवनको नहीं भूली नंदिनी!

नंदिनीने सविनय कहा—तो क्या यही निवेदन कर दिया जाये महास्थविर से भी!

वह बोली—हां लिख भेजो कि......पर नहीं, ठहरो नन्दिनी। महास्थविरका आशय सूक्ष्म है। अच्छा मैं महास्थविरसे मिलूंगी। शीघ्र ही इसकी व्यवस्था हो।

'तो क्या देवी बिहारके लिये प्रस्थान करेंगी।'

'हां, हां।'

काशीके नागरिकोंके लिये कुतूहल और जिज्ञासाका

विषयथा कि नर्तकीने भिक्खु-व्रत ग्रहण कर लिया। नंदिनी कुतूहलार्थियोंका परितोष करती-करती थक गयी तो उसने इस समाचारकी सार्वजनिक रूपसे विज्ञप्ति कर दी। उसी दिन नर्त्तकीने अपने संदेहोंका निदान कर चुकनेके अनन्तर 'संघ' शरणं गच्छामि।' बुद्ध' शरणं गच्छामि।' 'धर्म' शरणं गच्छामि।' के पूत संकल्पोंके द्वारा करुणाके चरणोंपर आत्मार्पण कर दिया था। भौतिक दुःखोंकी आत्मान्तिक निवृत्तिके लिये वह उपासनामें प्रवृत्त हुई। पर अभी तक हृदयकी अशान्ति और लोभका उन्मूलन न हुआ था।

एक दा रात्रिकी उपासनाके उपरान्त जब वह उटज के कपाट अवरुद्धकर दीप-शिखाके निर्वात निर्वाणके अनन्तर शयनार्थ प्रस्तुत हो रही थी तो सहसा महास्थविरको उपस्थित देख चकित हो उठी। उसने उद्विग्न स्वरसे पूछा—आज्ञा देव!

महास्थविरने चंचल होकर कहा—मैं विश्राम करने आया हूं नर्त्तकी!

वह अशान्त होकर बोली—महास्थविर विनयच्युत हो रहे हैं। मैं नर्त्तकी नहीं, भिक्खुनीका शील-ग्रहणकर चुकी। आप विश्राम करें। मैं नदी तटपर जाती हूं।

महास्थविर कंपित स्वरमें बोले—पर नर्त्तकी अभी तुम्हारा विभ्रम नष्ट नहीं हुआ। शील अपूर्ण है। तुम्हारे ही कारण विहारकी बिजय बाधित हुई। मैं तुम्हारे साथ ही रात्रि-निवासकी इच्छासे आया हूं।

नर्त्तकी सोच रही थी—तो क्या मैं सचमुच ही सम्यकूशील का आर्जन नहीं कर सकी? क्या पुरुष किसी भी अवस्थामें प्रवञ्चनासे रहित नहीं? फिर नर्त्तकीके मार्ग के अन्तका ही प्रश्न क्यों?

सहसा विगत जीवनकी शेष स्मृतियां प्रबल हो उठीं। उसने तीव्र स्वरमें कहा—स्थविर, नर्त्तकीके मार्ग का यह अन्त नहीं!

उटजके कपाट खुले और नर्त्तकी शेष स्मृतियोंके लिये अन्तहीन पथपर अग्रसर थी।

समाप्तिके समीप

जली मशाल—खेत गांव घर जले!
जली सुरंग—जातिके कुंवर जले!
जली शमा—पतंग रात भर जले!
प्रकाशमय विनाश ज्वाल जल रही!
मचल रहा समुद्र, ज्वार हो गया!
मचल रहा गगन, तुषार हो गया!
मचल रहा हृदय, कि हार हो गयी!
धुरी धरी अधर धरा मचल रही!
विनाश विश्वके विशाल घर हुए!
विनाश नित्य नामवर नगर हुए!
विनाश हास, हर्ष, सुख, सञर हुए!
समाप्तिके समीप सृष्टि चल रही!

—गिरीशदत्त पांडेय

हमारा विलायती व्यापार

श्री प्रो० महेशचन्द्र, प्रयाग विश्वविद्यालय

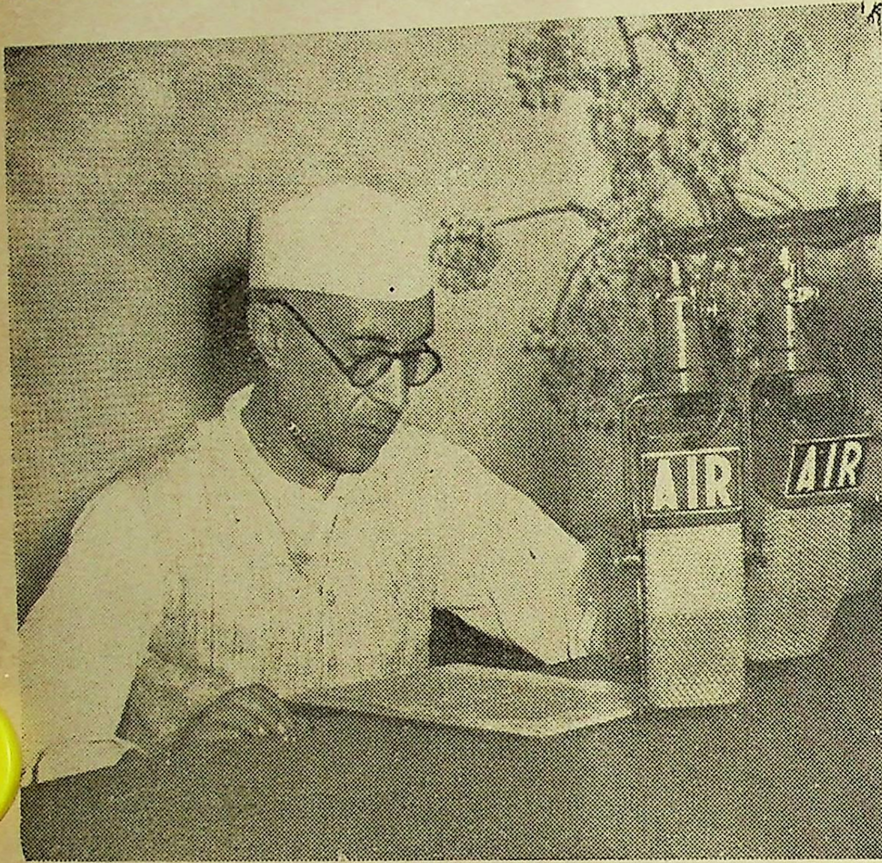
भविष्यमें भारत व इंग्लैंडके मध्य होनेवाले व्यापार-की प्रगति क्या रहेगी ? इस प्रश्नका उत्तर दो प्रकारसे दिया जा सकता है प्रथम आंकड़ोंकी बुनियादपर । द्वितीय प्रस्तुत तथा भविष्यकी सोची जा सकनेवाली परिस्थितिके आधारपर । आंकड़ोंकी बुनियादपर यह कहा जा सकता है कि आयात और निर्यात दोनों क्षेत्रोंमें अबतक साम्राज्यगत देशोंका स्थान मुख्य रहा है और इंग्लैण्डका प्रथम । युद्ध-कालमें भी भारतीय निर्यातके सम्बन्धमें यही हाल रहा है। सन् १९४५ में भी इंग्लैण्डको सबसे अधिक माल (६३-८६ करोड़ रु०) भेजा गया था । आयात क्षेत्रमें अवश्य मुख्य स्थान संयुक्त राष्ट्र अमरीकाका है । सन् १९४५ में अमरीकासे ७१.२ करोड़ रुपयाका सामान आया था और इंग्लैण्डसे केवल ५०.४४ करोड़ रुपये का । परन्तु यदि हम यह पता लगायें कि विदेशी व्यापारमें इंग्लैण्डका प्रतिशत भाग क्या रहा है तो हमको ह्रास ही मिलता है। सन् १९०९-१४ में यह ४० प्रतिशत था । सन् १९१९ २४ में ३९.९ प्रतिशत । सन् १९३८-३९ में ३२.९ और सन् १९४५ २९ । यह प्रगति आयात और निर्यात व्यापारमें अलग अलग भी पायी जाती है ।

आंकड़ोंके आधारपर अङ्क शास्त्री शायद कह देगा कि भारत-इंग्लैण्ड व्यापारका भविष्य गिरता हुआ है । परन्तु द्वितीय महायुद्धने युद्धसे पूर्वकी परिस्थितियोंको काफी बदल दिया है । यह नहीं कहा जा सकता कि पूर्व युद्ध-कालीन शक्तियां पुनः अपना महत्वशाली स्थान प्राप्त कर-लेंगी।

सर्वप्रथम, भारत अब काफी स्वतन्त्र हो गया है । भले ही पूर्ण स्वराज्यमें देर हो परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि भारतीय सरकार अब भारतीयोंके हितमें कार्यवाई करेगी। भारतमें सब प्रकारके कच्चे माल तथा खाद्यपदार्थकी प्राप्ति और वृद्धि हो सकती है । हमारा प्राकृतिक-धन श्रोत बहुत बलशाली है । भारतीयोंके रहन-सहनमें उन्नति करनेके लिये यह आवश्यक है कि इस श्रोतका शीघ्र उपयोग किया जाय, और भारतके अन्दर भारतीयों द्वारा उपयोग किया जाय। पहलेकी भांति इन्हें विदेशोंमें नहीं भेजा जा सकता। अन्तर-राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी कान्फ्रेंसों और समझौतों-में भारतीय सरकार अवश्य उपर्युक्त दृष्टिकोण अपने और अन्य पिछड़े राष्ट्रोंकी ओरसे प्रकट करेगी और उसको माननेके लिये सफल दबाव डाल सकेगी।

अभी हालमें अमरीकाकी ओरसे एक विश्व-व्यापार कान्फ्रेंसकी योजना हुई है जो अगले मार्चमें होगी। इस कान्फ्रेंसके प्रस्तावोंका कच्चा रूप अभीसे उसके सामने आ चुका है । गत पच्चीस वर्षोंमें विभिन्न देशोंने अपनी आर्थिक उन्नति करने, दूसरोंका आर्थिक शोषण करने तथा दूसरोंसे मिलकर तीसरोंका शोषण करनेके हेतु विभिन्न प्रकारके आयात निर्यात कर लगाए, व्यापारिक समझौते किये और कोटा (Quota) पद्धतिपर व्यापार किया। कान्फ्रेंसका प्रस्ताव है कि भविष्यमें व्यापार पूर्ण स्वतन्त्रताके साथ हो तथा कोई दो देश कोटा तय करके आपसमें व्यापार न करें । दूसरा प्रस्ताव यह है कि प्रत्येक देशको स्वतन्त्रता दी जाय कि वह पैसे देकर जहां चाहे वहांसे कच्चा माल प्राप्त करे । तीसरा प्रस्ताव यह है कि प्राइवेट उत्पादकों और व्यापारियोंकी गुटबन्दी जो उपभोक्ताओंके शोषणके लिये होती हैं तोड़ दी जाय।

इन प्रस्तावोंका ध्येय संसारके मानव प्राणियोंके दुखों-को दूर करना होना चाहिये । इसके द्वारा हमारे रहन-सहनका दर्जा ऊंचा होना चाहिये । यदि ऐसा ही है, तो मुझे इन प्रस्तावों द्वारा इस ध्येयकी पूर्तिमें शक है । संसार-के शक्तिशाली राष्ट्रोंके कर्म भविष्यमें भले ही इस शकको निर्मूल साबित करें, परन्तु मेरा शक उसी प्रकार दृढ़ है जिस प्रकार रूसका यह सन्देह कि अमरीका युद्धकी तैयारी कर रहा है । क्यों ? इंग्लैण्ड और स्वयं अमरीकाने भी अपनी आर्थिक उन्नति व्यापारपर रोक लगा कर की थी। आयात निर्यातकर तथा विभिन्न प्रकारके समझौतोंके कारण ही वे उतना बढ़ पाये हैं । अब उनकी आगेकी उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि अबाध्य व्यापार हो तथा कच्चा माल प्राप्त करनेकी स्वच्छन्दता । द्वितीय महायुद्धमें ही अमरीकाने इतना अधिक पेट्रोल खर्च किया है जितना वे



भारतकी अन्तःकालीन सरकारके उपाध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल नेहरू।

जायेगी। हम दूसरों द्वारा दिये रोजी, रोजगार और सामग्रीपर निर्भर (आश्रित) हो जायंगे सो अलग। यह सर्वथा अवांछनीय है। और यदि अमरीकाका यह उद्देश्य नहीं है, यदि आजके शक्तिशाली देश सुदूर भविष्यमें अन्य देशोंपर आर्थिक अथवा राजनैतिक कंट्रोल नहीं स्थापित करने चाहते तो यह आवश्यक होगा कि कान्फ्रेंसके प्रस्तावोंमें यह परिवर्तन किया जाय कि जो देश अपनेको आत्म-निर्भर बनानेकी दृष्टिसे आयात निर्यात कर अथवा कच्चे व पक्के मालके व्यापारपर नियंत्रण लगाना चाहते हैं वे ऐसा कर सकते हैं। हमको यह अधिकार है कि हम अपने लिये अपने ही देशके कच्चे माल का उपयोग करके तैयार माल बनायें, बशर्ते हम यह आत्म-निर्भरता अन्तमें दूसरों पर अत्याचार करनेकी नियतसे नहीं चाहते हों

युद्ध पूर्व स्थितिमें लगभग पचास सालतक काममें ला सकते थे। अतः यह स्वाभाविक है कि वे ऐसी परिस्थितियां तैयार करना चाहे जिससे वे दूसरे देशोंके कच्चे मालको अपने यहां ला सकें अथवा दूसरे देशोंमें ही वहांके कच्चे माल का उपयोग करनेकी व्यवस्था कर सकें तथा अपना तैयार माल दूसरे देशोंतक पहुंचा कर वहां उसे खपा सकें। अन्य शब्दोंमें वे चाहेंगे कि चीन और भारतका कच्चा माल उनके पास पहुंचे या वे यहां अपने उद्योग धन्धे खोल सकें अथवा वे यहां अपने अच्छे और (इन देशोंके पिछड़े होनेके कारण) अपने अपेक्षाकृत सस्ते मालको यहां खपा सकें।

परन्तु यह तो चीन और भारतको कृषि प्रधान तथा गरीब बनाये रखनेके समान साबित हो सकता है। यदि केन्द्रित मुनाफेवाली पूंजीवादी व्यवस्था ही रही तो भले ही भारतीयोंको कुछ काम और मजदूरी मिल जाय परन्तु उनके देशके धनरूपी दूधकी क्रीम विदेशियोंके पेटमें पहुंच

हम शक्तिशाली राष्ट्रोंकी नीयतपर शक करते हैं। उन्हें इस शकको दूर करनेके लिये अबाध्य व्यापार नीतिमें कुछ संशोधन करना ही पड़ेगा। इस सम्बन्धमें अमरीकाके विचारोंका पता कुछ अंश तक अमरीकाके किसानोंके लिये बनाई युद्धोत्तर कालीन कृषि नीतियां' शीर्षक पुस्तिकासे चलता है। इसे कृषक समितियों और समूहोंमें विवादारम्भके लिये युद्धोत्तर प्रोग्राम सम्बन्धी इण्टरब्यूरो व रीजनल कमेटी समूहने तैयार किया था। इसमें एक स्थानपर लिखा है कि 'हम अधिक आर्थिक सुरक्षाके प्रजातंत्रात्मक जीवनको नहीं विक्रय करेंगे।' अतः आगामी विश्वव्यापार कानफरेन्समें अनुचित दबावकी शंका नहीं की जा सकती।

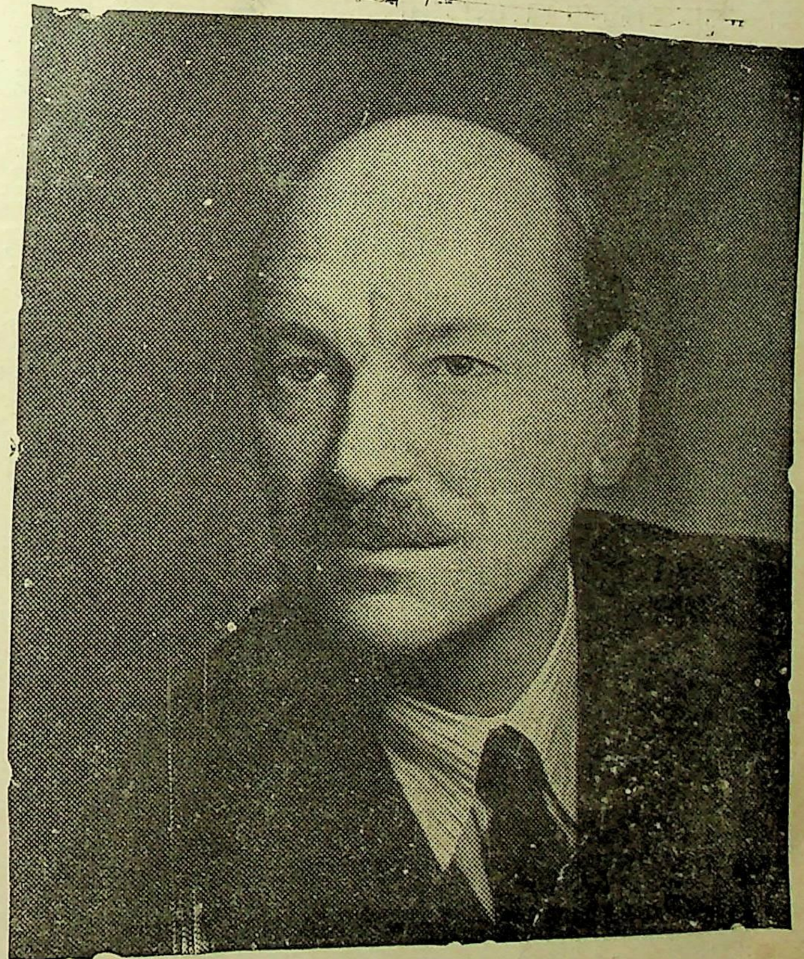
उक्त पुस्तिकामें यह भी लिखा है कि हमारे प्रोग्राम ऐसे होने चाहिये कि हम उन कृषि पदार्थों का उत्पादन

कम कर दें जिन्हें हम बिना आयात निर्यात कर अथवा राज्य-सहायताके बिना अन्तर-राष्ट्रीय बाजारमें ऐसे दाम-पर नहीं बेच सकते जिनसे अमरीकी रहन सहनका तल बना रहे। हम ऐसी वस्तुओंका आयात करेंगे और इसके फल-स्वरूप विदेशोंको जो विदेशी करेन्सी प्राप्त होगी उससे वे अवश्य हमारे तैयार माल खरीदेंगे।' यहां न तो यही कहा गया है कि जो पदार्थ अमरीकामें महगे पड़ते हैं उनको सस्ते ढंगसे पैदा करनेका उपाय नहीं किया जायगा, और न यह कि सस्ते होते हुए भी यदि किसी देशका माल अन्तर्राष्ट्रीय बाजारमें न आयेगा तो उसको जबरन वहां तक घसीटा जायेगा। अतः प्रत्येक देशको यह स्वतन्त्रता होगी कि वह अपने सस्ते कच्चे मालको अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में जानेसे रोक दे और महंगे देशीमालको सस्ते ढंगपर तैयार करनेका प्रयत्न करे। परन्तु वह आयात निर्यात कर पक्षीय व्यापार अथवा राज्य सहायताके बूतेपर अपने माल को दूसरे देशोंके बाजारपर न लादे।

इंग्लैण्डवाले भी भारतीय आर्थिक विशेषतः औद्योगिक उन्नतिकी प्रगतिको समझते हैं। परन्तु ऐसा तो किसीने नहीं कहा कि भारतकी औद्योगिक उन्नति रोक देनी चाहिये। अपने देशकी आर्थिक परिस्थितियोंको देखकर तथा युद्धसे पहलेका महत्वपूर्ण स्थान पुनः प्राप्त करनेकी आकांक्षाके कारण इंग्लैण्डवालोंने यह अवश्य सोच रक्खा है कि वे अपने निर्यात व्यापारको युद्ध पूर्वसे भी ५० प्रति सैकड़ा अधिक अर्थात ड्योढ़ा बनायेंगे। खेद यह है कि वे इस प्रश्नपर विचार नहीं करते कि वे निर्यातके बदलेमें क्या लेंगे और न यही स्पष्ट कहा जाता है कि भारतके खातेमें जो करोड़ों पौण्डकी निधि संचित हो गयी उसकी अदाई कब व किस प्रकार होगी।

जहां तक पौण्ड [या स्टर्लिंग] निधिका प्रश्न है, यह निःसन्देह कहा जा सकता कि हमारे हाथ-पांव बहुत कुछ कटे हुए हैं। इसलिये कहा जाता था कि अब जो पौंड पावना भारत जमा करता है वह स्टर्लिंग निधिमें न जाय। अभी हालहीमें इंग्लैण्डने अमरीकासे ३७५ करोड़ डालर का कर्ज लेने व पाने का अधिकार प्राप्त किया है। इस ऋण की एक शर्त यह है कि साल भरके अन्दर चालू पौण्ड पावना किसी भी देशकी करेंसीमें बदली जा सकेगी। इसके मतलब यह हुए कि अगर भारतके पास पौण्ड है और अगर हम उसके बदले अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, ईरान या किसी भी देशसे कोई माल खरीदना चाहें तो हम ऐसा कर सकते हैं। अतः पिछली स्टर्लिंग निधिसे भले ही कोई लाभ न हो, परन्तु आगे इकट्ठी होनेवाली निधिको हम जैसे चाहें वैसे इस्तेमाल कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त ऋणकी एक शर्त यह भी है कि एक



समाजवादी ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० एटली।



अमेरिकाके राष्ट्रपति टरुमैन।

वर्षके अन्दर डालर-मूलका खात्मा कर दिया जाय। अब तक ब्रिटिश साम्राज्यके जिस देशको डालर पावना मिलता था वह एक कोषमें जिसे [डालर पूल] कहते हैं। इकट्ठा होता रहा है।

इस कोषके डालरको व्यय करनेका अधिकार इंगलैंडको था। उदाहरणार्थ, यदि भारत अमरीकाको माल भेजे और बदलेमें पचास हजार डालर पानेका हक प्राप्त हो, तो वह हक तो डालर पूलमें चला जायगा और उसके बराबर पौंड [स्टर्लिंग] पानेका हक मिल जायेगा। डालर न रहने से हम अमरीकासे माल नहीं खरीद सकते थे।

ऋणकी उपर्युक्त दोनो शर्तों ने हमारे लिये अमरीका से सामान खरीदना आसान कर दियाहै। अब तो राष्ट्रीय सरकार बन जानेके कारण भारतीय सरकारको अमरीकासे ऋण मिलना भी सरल हो गया है। अस्तु, हम अमरीका से भी सामान खरीदेंगे।

इंग्लैण्डवाले इस बातको भूलते नहीं हैं। भारत-अमरीका व्यापार और भारतीय उद्योग-धन्धोंके विकास और उन्नतिने ही इंगलैंडके पूंजीपतियोंको प्रेरित किया है कि वे आंकड़ों और परिस्थितियोंका विश्लेषण करके भविष्यके भारत व्यापारका रूप निश्चित करें। लगभग सात महीने पहले ल्याड्स बैंकने 'भारतमें युद्धोत्तरकालीन बाजार' शीर्षक महत्वपूर्ण पुस्तिका में इस प्रश्नके ऊपर प्रकाश डाला है। इसके अलावा इंग्लैंडके निर्यात व्यापार की उन्नतिके लिये मई १९४९ में ब्रिटिश निर्यात व्यापार संघ [बेट्रो] की स्थापना की गयी थी जिसका मुख्य कर्त्तव्य विदेशोंमें निर्यातकी सम्भावनाके सम्बन्धमें सूचना और राय देना है। तात्पर्य यह है कि इंग्लैण्डवाले यहांसे व्यापार करनेके लिये पूरी तैयारी कर रहे हैं।

परन्तु यह कहना गलत होगा कि वे हमको उपभोग-पदार्थ ही देना चाहते हैं। वे हमको यथाशक्ति उत्पादन पदार्थ [मशीन, औजार और दक्ष व्यक्ति] भी देनेको सोच रहे हैं। कुछ कम्पनियां तो भारतीय पूंजीपतियोंसे मिलकर भारतीय ट्रेड मार्क और स्वदेशीके नामसे मदद करने लगी हैं संभवहै कि हमारे भारतीय पूंजीपति लालचमें पड़कर ब्रिटिश पूंजीपतियोंसे गुटबन्दी करके भारतको लूटना आरम्भ कर दें। परन्तु यह भी सम्भव है कि वे देशके हितको ध्यानमें रखकर इस (देशवासियों) को विदेशी उत्पादन विधियां सिखावें और अन्तमें धन्यवाद सहित विदेशी साझेदारीका अन्त कर दें। अगर वे ऐसी नीति न अपनायेंगे तो एक दिन हमको यह कहना पड़ेगा कि सरकार पूंजीपतियोंकी इस गुटबन्दीको तोड़ दे।

अस्तु। ल्याऊन बैंककी जिस पुस्तिकाका ऊपर उल्लेख आया है उसमें इंग्लैण्डसे भारत भेजे (और बेचे) जाने योग्य पदार्थोंमें उत्पादन और उपभोग दोनों प्रकारके माल हैं। उत्पादन-सम्बन्धी मालमें विद्युत-शक्ति पैदा और वितरण करनेके यन्त्र तथा विभिन्न मिलों (यथा जूट, रूई, सीमेंट, चीनी, मिट्टी, लोहेकी ढलाई, रसायनिक पदार्थों व लकड़ीकी मिलों और फैक्टरियों) की मशीनों और औजारों की गणना कराई गयी है। विविध प्रकारके इंजीनियरिंगके यन्त्रों और कृषिके औजारोंका भी उल्लेख है।

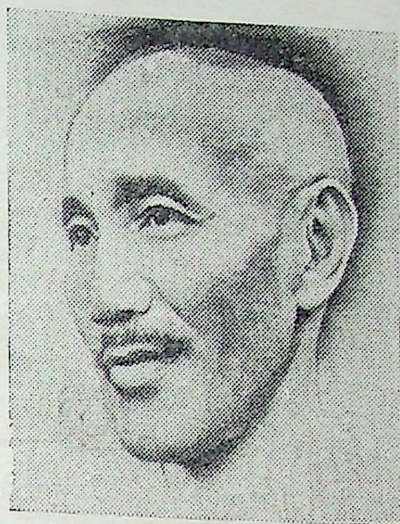
उपभोग मालमें बिजलीके सामान (जिनकी उत्पत्ति भारतमें अभी बहुत कम है), मोटर, बैटरी, स्विचबोर्ड, रेडियो, वायरलेस सेटवरेफ्रीजेरेटर (ठण्ढा करनेकी मशीन) की गिनती की जाती है। यह भी बताया गया है कि तार और केबिल-तारकी भारतमें एक पुरानी और एक नयी कम्पनी है। ये बीस प्रतिशतसे अधिक जरूरत नहीं पूरी कर सकतीं। अतः अस्सी प्रतिशत तार व केबिलकी मांगकी पूर्ति विदेशी मालसे होगी। इसी प्रकार कुछ दिनोंतक टेलीफोन व टेलीग्राफ सम्बन्धी यन्त्रोंके कुछ भागोंको छोड़कर शेष विदेशसे आयेंगे। चमड़ेके बेल्ट (पट्टे) अमरीकासे

अधिक आयेंगे, ऐसी सम्भावना है, परन्तु बिलायती पूंजी-पतियोंको लोहा लेना चाहिए।

मशीनोंके औजार, पेच, ढिबरियां, बोल्टू, इमारती सामान धातु, बढ़िया कपड़े, विशेष प्रकारका कागज और रंगके निर्यात व्यापारकी सम्भावना सिद्धकी गयी है। युद्धसे पूर्व भारतमें रंग मुख्यतः जर्मनीसे आता था। लगभग तेरह प्रतिशत स्विटजरलैण्डसे और बारह प्रतिशत इंग्लैण्डसे कुछ रंग अमरीका, फ्रांस व जापानसे आता था। जर्मनीकेगिर जानेसे रंगका व्यापार पकड़नेकी कोशिश व्यर्थ नहीं होगी।

जापान कुछ दिनके लिये व्यापार क्षेत्रमें अकर्मण्य हो गया है। अतः इंग्लैण्डवाले सस्ता माल तैयार करके भी यहां बेचनेकी सोच रहे हैं। इस सम्बन्धमें दो बातें ज्ञातव्य हैं। प्रथम, जापानकी वृद्धि अमरीकाके हितमें है। सुदूर-पूर्वमें वह 'घड़े' का काम करता है। अतः जापानके पुनः और शीघ्र औद्योगिक उन्नति करनेकी सम्भावना है। द्वितीय भारतकी सस्ती मजदूरीको ध्यानमें रखकर यह कहा जा सकता है कि यदि हमारी केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंने उद्योगधन्धों [विशेषतः छोटी मात्राके उद्योगधन्धों,] की ओने ध्यान दिया तो भारत जापानके पिछले ग्राहकोंको प्राप्त कर सकता है।

इंग्लैण्डवाले जानते हैं कि अबतक जिस प्रकारका निर्यात भारतको होता रहा है उसका रूप बदलना पड़ेगा। वे इस हेतु उपर्युक्त ढंगसे तैयार हो रहे हैं। परन्तु भारत बिदेनको क्या माल भेजेगा। अबतक भारतसे मुख्यतः चाय, जूट व जूट पदार्थ, कुछ रुई, चमड़ा और तेलहन इंग्लैंड जाते थे। युद्धोत्तरकालमें तेलहन व रुईका निर्यात सम्भव नहीं दिखाई पड़ता। तेलहनसे भारतमें तेल निकालनेके उद्योगधन्धोंकी उन्नति होगी और खली खेतों और ढोरोंके काम लाई जायगी। रुईकी खेती घट गयी है, और रुई और सूती कारखानोंकी यहां अधिक उन्नति होगी। इसी प्रकार चमड़ेके कारखानोंकी संख्या घट जानेके कारण चमड़ेकी पूर्ति भी घट सकती है। तब भी चमड़ेके निर्यातमें अधिक कमी नहीं आयेगी। चाय और जूट-विशेषतः जूट पदार्थका निर्यात होता रहेगा। हमारा निर्यात व्यापार इंग्लैंडसे आनेवाले आयात व्यापारका मूल्य चुकानेके लिये काफी नहीं होगा। कमीकी पूर्ति दो प्रकारसे होगी। एक तो स्टर्लिंग विधिसे। दूसरे, दूसरे, हम अन्य देशोंको सामान भेजेंगे। हम निकट पूर्वी और मध्य पूर्वी देशोंको अपना



चीनके जेनरल लस्सिमो चियांग-काई-शेक

तैयार माल भेज सकते हैं। द्वितीय महायुद्धमें हमने इन बाजारोंमें धाक जमा ली है। यदि भारतमें भी 'बेट्रो' [ब्रिटिश निर्यात व्यापार संघ] सदृश प्रबन्ध हो और हमारे ग्राहक देशोंमें हमारे मालका प्रचार हो, तो ये बाजार हमारे हाथमें रहें। हमारे स्थानपर ये सीधे या हमारी भांति अन्य देशोंसे व्यापार करके इंग्लैंडका पावना चुका देंगे।

संक्षेपमें, इस समय भारतीय और विदेशी परिस्थितियां बहुत बदली हुई हैं। परन्तु दो सौ सालके राज्यको हाथसे निकलते और औद्योगिक उन्नति पथपर बढ़ते देखकर व्यापारी इंग्लैंड हताश नहीं हुआ है। जिस प्रकार अमरीका स्वतन्त्रताके युद्धके पश्चात् अमरीका-इंग्लैंड-व्यापार तिगुना हो गया उसी प्रकारकी आशा भारत-इंग्लैण्ड व्यापारके सम्बन्धमें की जाती है। इंग्लैण्डवाले परिस्थितिको समझकर अपने भारतीय व्यापारका रूप बदलने तथा उसकी वृद्धिके लिए विदेशियोंसे लोहा लेनेके लिए विभिन्न प्रकारके अनुसंधान, विश्लेषणका सहयोगकी नीति अपना रहे हैं। वे भारतीय औद्योगिक उन्नतिके बाधक नहीं साबित होंगे—ऐसी आशा की जा सकती है। उनका प्रयत्न और दृष्टिकोण भारतके लिए एक शिक्षा देती है कि भारत सरकार और पूंजीपतियोंको विदेशी व्यापारकी वृद्धि और उसमें प्रतियोगिता करने तथा अपनी धाक जमानेके लिए आंकड़ों और परिस्थितियोंका विश्लेषण और अध्ययन करनेके लिये एवं, संस्था या दफ्तर खोलना चाहिये।

जीवन

श्रीमती होमवती देवी

"जिसके पैसा नहीं पास, उसको मेला लगे उदास।"

लेकिन पांच सालका नन्हा, यह क्या जाने ? मैंने घरमें पैर रक्खा ही था कि वह नुमायश देखनेके लिए सिर हो गया। लेकिन खाली हाथ बच्चेको मेलेमें ले जाना भी उतना ही दुखद था—जितना कि न ले जाना। माना कि तीन मीलका वह लम्बा रास्ता पैदल ही तय कर लिया जाता—जहां कि नुमायश लग रही थी, किन्तु आगेकी परेशानी कुछ कम थोड़े थी ? बच्चेके जीमें—अपना जी तो नहीं डाला जा सकता। वहां चाट-पकौड़ी बिकती देखेगा, खेल खिलौनोंपर जी ललचायेगा, चर्खी और झूलेके स्थानोंपर भीड़ लगी होगी, लोग 'बारह मनकी धोबन—और सोलह मनका लड़का' देखनेके लिए, ढबर-ढबर करती दूरबीनोंपर टूटे पड़ते होंगे, कहीं सिटी और गुब्बारेवालोंकी आवाजोंपर बच्चे मचल रहे होंगे .., फिर इसे मैं कैसे समझाऊंगा ?

चारपाईपर बैठकर मैं यही सब सोचने लगा—कि दिनेश मेरा छाता और जूता उठा लाया "लो पहनो जल्दीसे..., चलो बाबूजी! देर हो रही है।" कहता हुआ वह अपनी मांके पास जाकर कपड़े बदल देनेके लिए हठ करने लगा।

शोभा पहिले हीसे जलीभुनी बैठी थी—उसीकी जान पहचानकी सभी पड़ोसिनें कई-कई बार मेला घूम आयी थीं। पर मैं उसे तो क्या बच्चे तकको भी एकबार नहीं ले जा सका।

करता भी क्या ? शोभाको ले जानेमें पूरे २) रु० तांगेमें ही लग जाते। और यहां हाथमें चवन्नी भी नहीं। क्लर्की करते करते आधी उम्र बीत चली, न कभी मनका सा खाया न पहना। तनख्वाह मिलती है सिर्फ पचास रुपया, जो मकानका भाड़ा दे दिवाकर, ४०) ही रह जाता है। इतनेमें तो इस महंगीके जमानेमें सूखी रोटियोंका काम भी नहीं चल पाता। मेला-ठेला किसे सूझे ? महीनेकी पन्द्रह तारीखसे पहिले ही हाथ काड़ कर खड़े रह जाते हैं।

शोभाने बच्चेको झिड़ककर कहा—"मेरा माथा तो खाओ मत, सारा धन्धा समेटनेको पड़ा है अभी मेला तमाशा देखते हैं, बड़े आदमियोंके बच्चे..., जा...वह झाड़ू उठा ला, चौका धो डालूं जल्दीसे...।"

पर दिनेशकी बुद्धिमें बड़े-छोटे आदमियोंकी बात न बैठ सकी, और वह रसोई घरके कोनेमें मुंह गड़ाकर खड़ा-खड़ा सिसकने लगा।

मेरा मन भी विचलित हो उठा—और मैंने निश्चय किया कि 'आज इसे मेला जरूर दिखाऊंगा—चाहे जो हो।" और मैंने खुद उठकर उसका हाथ मुंह धोकर कपड़े बदल दिए—आखिर रोज-रोजका यह रोना-धोना कबतक देखा जाता ? सोचा—"लाओ यह बला भी टाल आऊं।"

शोभाने पतीलीकी तलीको ईंटसे रगड़ते हुए कहा—"रहने भी दो, मेला देखनेसे पेट थोड़े ही भरता है, रोधोकर अपने आप चुप बैठ रहेगा...कितने दिनसे मेला देखनेके लिए रिरिया रहा है, तब आज ले जानेकी सूझी है। मेरी समझमें तो यह नहीं आता कि आखिर दुनियाके और लोग भी तो अपनी गृहस्थी चलाते ही हैं। एक बालक है—सो भी सदा निमासा सा...।"

'अच्छा अब यह लैक्चर बन्द करो, अगर इसे भेजना है तो...इसका जूता ढूंढ़ कर ला दो, मुझे नहीं मिला...।"

शोभाने उसकी टूटी-फूटी सी चप्पलें लाकर मेरे सामने डाल दीं, गाड़ेकी ऊंचीऊंची कमीज और वैसी ही छतनिया—मुझे पहिले ही बुरी लग रही थी—तिसपर यह पुरानी चप्पलें ? लोग अपने अपने बच्चोंको न जाने कैसा पहनाते हैं—पर क्या किया जाय, अपना अपना भाग्य ही तो है।

शोभाने एकबार कनखियोंसे मेरी और बच्चेकी ओर देखकर कहा—"क्या यों ही पैदल घसीटते ले जाओगे, इतनी दूर...?"

मैंने कहा—"नहीं, जहां थक जाएगा—गोदमें उठा लूंगा...।" और उसकी उंगली पकड़े मैं घरसे बाहर निकल पड़ा।

सड़कपर मोटर, गाड़ी और तांगों तथा साइकिलोंकी वह भीड़, कि रास्ता चलना दूभर था। रईसी सवारियोंसे उड़ती हुई धूल, पैदल चलनेवालोंकी आंखोंमें भरी जा रही थी।

मैंने सोचा—"जरा फेर तो पड़ेगा—लेकिन खेतोंमें को निकल लिया जाय तो अच्छा है। वैसे भी इधरसे न जाने कितने परिचितोंसे भेंट होती रहेगी, और अनावश्यक 'जैराम जीकी' होती चलेगी। मैंने नन्हेंको गोदमें उठा लिया, और खेतोंको पार करता हुआ नौचन्दीकी ओर बढ़ चला। जैसे तैसे आधी दूर पहुंचा था कि दम उखड़ने लगा—एक तरफ बचकर खड़ा हो गया। यहांसे मेलेमें बजनेवाले बीसियों बाजोंकी आवाज साफ सुनाई देती थी,और हजारों बत्तियों-का प्रकाश आंखोंमें चकाचौंध पैदा कर रहा था। दिनेशमें नयी स्फूर्ति आ गयी—वह तालियां बजाकर उछलता हुआ बोला—बाबूजी ! चलो जल्दी...।" मैं उसे उतारता चढ़ाता बीस मिनटके अन्दर मेलेमें पहुंच गया। नन्हेंकी उंगली पकड़े मैं उसे बाजार घुमाने चला—अगर जन समुदाय असख्य विपत्तियोंके समान मुंह फैलाए दीख रहा था। बच्चेकी भी अक्ल हैरान थी-क्या क्या देखे—और क्या-क्या खरीदे। कहीं खिलौनेवालोंकी दूकानोंपर बच्चे अपनी अपनी पसन्दके खिलौने खरीदनेमें परेशान थे—तो कहीं बजाजोंकी दूकानोंपर 'जार्जट' की रंग बिरंगी साड़ियां देखनेमें कुलांगनाएं व्यस्त थीं। "टायलेट' वालोंकी दूकानपर 'लक्स' 'लिपिस्टिक और रोजी चीककी बड़ी मांग थी। उधर जौहरी लोग मीनेके नये डिजाइनदार सैट बीबीजीको पसन्द करा कर, भइयाजीसे खरीद देनेका आग्रह कर रहे थे।

मुझे किसी दूकानपर रुकनेकी आवश्यकता न थी,चलता ही गया—आखिर बराबर दो तीन किताबोंकी दूकानें दिखाई दीं,मैं उन्हींपर खड़ा खड़ा किताबें देखने लगा। यहां भीड़ न थी। मैं लाइनोंमें बिछी हुई किताबों और उनके लेखकोंके नाम पढ़ने लगा। अधिकांश साहित्य—'हृदयकी प्यास' और 'यौवनकी आंधी' में पककर गिरा पड़ा था। दो चार पुस्तकें अच्छे गम्भीर विषयपर भी दीख पड़ीं—और उन्हींमें मैंने देखा कि मेरी पुस्तकपर भी धूल जमी पड़ी है।

मन हुआ दो एक अच्छी पुस्तक खरीद ली जातीं, किंतु तुरन्त ही मेरा निश्चय पानीकी लकीर बनकर खो गया। जेब टटोलकर देखा—तो उसमें केवल बहुत ढूंढ़नेपर एक इकन्नी मिली, यहां खड़े रहना अब व्यर्थ था। इधर नन्हें बेचैन हो रहा था—उसने एक भड़कीले रंगके गुब्बारेकी ओर इशारा करते हुए कहा—'गुब्बारा लेंगे बाबूजी !"

मैं तो उसे गुब्बारेवालेके पास लेजाकर उससे बोला—"लो कौन सा लोगे ?"

फिर गुब्बारेवालेसे कहा—"देना भाई वह नीले रंगका इसे...।"

गुब्बारेवालेने बेंतकी मूंठसे एक गुब्बारेका तागा अलग करके, बच्चेके हाथमें थमा दिया।

और मैंने झट इकन्नी उसके हाथपर रखते हुए कहा—"लाओ तीन पैसे।"

"दो मिलेंगे।" उसने जवाब दिया।

"नहीं...," मैंने कहा।

"तो रहने दीजिए—आपको पता है कि नाज किस भाव बिक रहा है, और जगह एक आनेमें मिलेगा...जाओ गुब्बारा वापस दो ..।" कहकर उसने इकन्नी मेरी ओर बढ़ा दी।

मैंने गुब्बारा नन्हेंके हाथसे छीनकर उसे देनेकी कोशिश की—तो वह रोने लगा। और इसी खींचातानीमें तागा टूट गया, और गुब्बारा मेरे सरपर हवामें एक बांस ऊंचा उठ गया। यह सब क्षण भरमें न जाने कैसे हो गया, और मेरे मनकी जो दशा हुई वह अकथनीय होते हुए भी बड़ी दुखद है। गुब्बारेवालेसे दोपैसे वापस लेकर मैं नन्हेंको घसीटता हुआ घरकी ओर चला—"चलो बस देख चुके मेला...।' बच्चा हक्का-बक्का सा रह गया

आगे चलकर देखा—एक बूढ़ा कुंजड़ा निहायत सुर्ख छोटी विलायती गाजरें छीपेमें भरे बेच रहा था—"मिश्रीकी डली हैं—केवड़ेके मजेकी हैं...।" आदि आकर्षक विशेषणोंके साथ।

नन्हें बाबू न जाने इन्हें क्या समझ कर वहीं ठिठक गये, मैंने भी सोचा—"चलो सौदा सस्ता ही रहेगा—" और वह दोनों पैसे उसके टोकरेमें डालकर कहा—"जरा मुलायम सी देना भाई !'

"यह तो सारी ही ताजी हैं हुजूर !" कहते हुए उसने तीन छटांक गाजरें तोलकर मेरे रूमालमें डाल दीं। और नन्हेंने बेसब्रीसे तुरन्त एक गाजर उठाकर अपने मुंहमें रख ली।

मैंने कहा—'ठहरो, ऐसे नहीं खाते। मैं धोकर दूंगा—तब खाना, मिट्टी लगी होगी...?"

और फिर मैंने वह टुकड़ा उसके हाथसे लेकर नीचे डाल दिया।

मैं दो ही कदम बढ़ा कि पीछेसे एक भिखमंगेने सहसा वह गाजरका टुकड़ा उठाकर चबा लिया।

मैंने देखा—और मेरा सर्वाङ्ग कांप उठा, उसके बदनपर मांसका नाम भी न था, हड्डियोंके ऊपर जैसे खालकी पतली झिल्ली मढ़ दी गयी हो, सिर और दाढ़ीके रूखे बालों में धूल भरी थी, और लाज थामनेके लिए केवल मैली सी लंगोटी लटका रक्खी थी। मैंने एक बार फिर उसे देखा—और फिर अपनी ओर। मन पहिलेसे कुछ और भी अधिक भारी था, मैं भीड़ चीरता हुआ आगे बढ़ा। सोचता चला जा रहा था—"यह भी कोई जीवन है ?'

मृत्युसे भी भयानक, उससे भी कहीं अधिक दुखद..., और एक तरफ मनुष्य-मनुष्यके मुंहका ग्रास छीनकर अपना पेट बड़ा कर रहा है।

गीत

खींच दो, जग की चितेरे !
आज की तसवीर !
आज अवनी पर अवश
हो मानवी रोती !
—क्रूर पशुतासे प्रपीड़ित
क्षुब्ध मन होती !
ढ़क न पाया देह नङ्गी,
सभ्यता का चीर !
बैठ, मन्दिर-मस्जिदोंमें
आज का इन्सान !
सोचता—'अपने जिगर के—
खूनका'—अवसान !
धर्म औ ईमान को
क्यों रे ! बना जंजीर !
दे रहे ये विविध जन पद
आज युग-सन्देश !
भ्रान्त तर्कों से विनिर्मित
उफनते आवेश !
अखिल मानवके हृदय की
पर अथक दुःख पीर !
स्नेह भींजी तूलिका !—कर
आज का आलेख !
शान्त हो पशु की बुभुक्षा
चित्र अपना देख !
उफनता यह क्षार-निधि हो
मधुर 'अमृत-क्षीर' !

—'शलभ' साहित्यरत्न



भारतके विभिन्न दलः लक्ष्य और प्रणाली

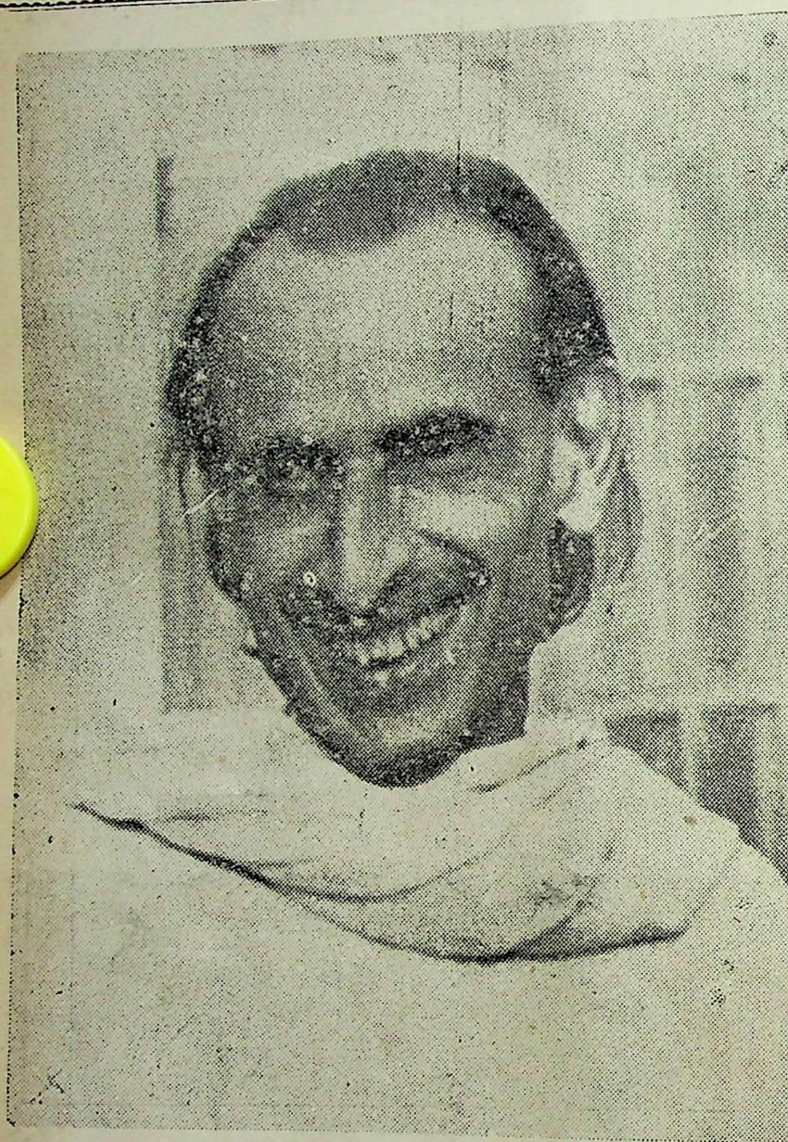
प्रो० चन्द्रशेखर एम० ए० डी० लिट०

किसी भी देशमें विभिन्न प्रश्नोंपर सभीका मतैक्य सम्भव नहीं, इसलिये देशमें विभिन्न दलोंकी स्थापना अस्वाभाविक नहीं है। भारतमें भी स्थिति यही है। भारत में इस समय यों तो अनेक दल हैं, किन्तु प्रमुख दलोंमें दलकीगतिविधि जैसी संशयपूर्ण है, उसी प्रकार उसका भाग्य भी। विभिन्न दलोंके लक्ष्य, उनकी प्रणालियों एवं भारत की प्रगतिमें उनके योगदानके सम्बन्धमें इन पृष्ठोंमें विचार किया गया है।

कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, लिबरल शिरोमणि अकाली, पंथिक बोर्ड, समाजवादी, साम्यवादी, शिया सम्मेलन एवं खाकसार हैं। शिरोमणि अकाली एवं पंथिक बोर्ड सिख सम्प्रदाय के हैं और उनका गठन सिख सम्प्रदायके आधार पर और हिन्दू महासभा हिन्दू सम्प्रदायके आधारपर है। शेष सभी दल राष्ट्रीय आधार पर हैं। उनके लक्ष्य एवं प्रणाली में आपसी मतभेद है। यद्यपि लक्ष्यको लेकर उनमें अब बहुत अनैक्य नहीं है, किन्तु प्रणाली को लेकर मतभेद है। कांग्रेस इन सभी दलों में प्रधान है, मुस्लिम लीगने पिछले दिनों काफी शक्ति संचय किया है और हिन्दू महासभा अत्यधिक नीचो गयी है समाजवादी दल प्रगतिशील है और साम्यवादी



सर्व प्रथम कांग्रेस प्रेसीडेंट उमेशचन्द्र बनर्जी।



वर्तमान कांग्रेस प्रेसीडेंट आचार्य कृपलानी

कांग्रेस

कांग्रेस भारतकी सर्व प्रधान संस्था है। १८८५ ई० में मि० ह्यूमके प्रयत्नोंसे इसकी स्थापना हुई और श्री उमेशचन्द्र बनर्जी कांग्रेसके प्रथम अधिवेशनके अध्यक्ष हुए थे। कांग्रेसकी स्थापनाका उद्देश्य यद्यपि राजनीतिक सुधारोंके लिये हुआ था, किन्तु कांग्रेस आंदोलनोंने देशके विभिन्न क्षेत्रोंको प्रभावित किया है और सभी क्षेत्रोंकी वर्तमान उन्नतिका श्रेय कांग्रेस को है। निवेदन आवेदन और प्रतिवाद (प्रेयर, पेटिशन और प्रोटेस्ट) इन तीन शब्दोंमें कांग्रेसकी प्राथमिक क्रियाशीलताका परिचय बहुधा दिया जाता है। ब्रिटिश सरकार की भारत सम्बन्धी नीतिकी कटु आलोचना और उसके द्वारा प्रेरित भारत सरकारकी नीतिका तीव्र प्रतिवाद लिबरल नेताओंके नेतृत्वमें कांग्रेस करती रही। किन्तु देशके बौद्धिक धरातलको उन्नत करने एवं देशकी राजनीतिक चेतनाको जागृत करनेमें लिबरल नेताओंका बहुत बड़ा योगदान रहा है, इससे कोई भी विवेकशील व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता। १९२० से गांधी जी के नेतृत्वमें कांग्रेसमें जबसे क्रान्तिकारी भावना आयी और कांग्रेस ने सक्रिय कार्यक्रमोंको अपनाया, तबसे कांग्रेस निरन्तर शक्तिशाली होती गयी है और आज देशके विशाल भागपर और देशके हृदय पर उसका शासन है और आज जब यह स्थिति हो, तब भी १९२० के पहलेकी स्थिति, समय एवं नेतृत्वको देखते हुए कांग्रेसके कार्यकलाप नगण्य नहीं रहे हैं। अनेक दृष्टियोंसे उसने सराहनीय कार्य किया है।

कांग्रेसका लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता एवं सभी वैध एवं शान्तिपूर्ण उपाय उसकी प्रणाली है। सत्य उसका साधन एवं अहिंसा उसकी प्रणाली है। इनमें तनिक भी चूक हो जाने और गांधी जी को उसका ज्ञान हो जानेपर गांधीजी ने इसके लिये पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त तक किया है। वर्तमान कांग्रेस गांधी जी द्वारा निर्मित हुई है और यद्यपि वे इसके चवन्नियां सदस्य भी वर्षोंसे नहीं हैं, उसके वास्तविक सूत्रधार वही हैं। कांग्रेसकी सदस्य संख्या लाखोंकी है और उससे सहानुभूति रखनेवालोंकी संख्या करोड़ोंकी। विदेशोंमें भी कांग्रेसके कारण भारतकी प्रतिष्ठामें वृद्धि हुई है। अपने त्याग, तप, बलिदान और सेवा द्वारा कांग्रेस

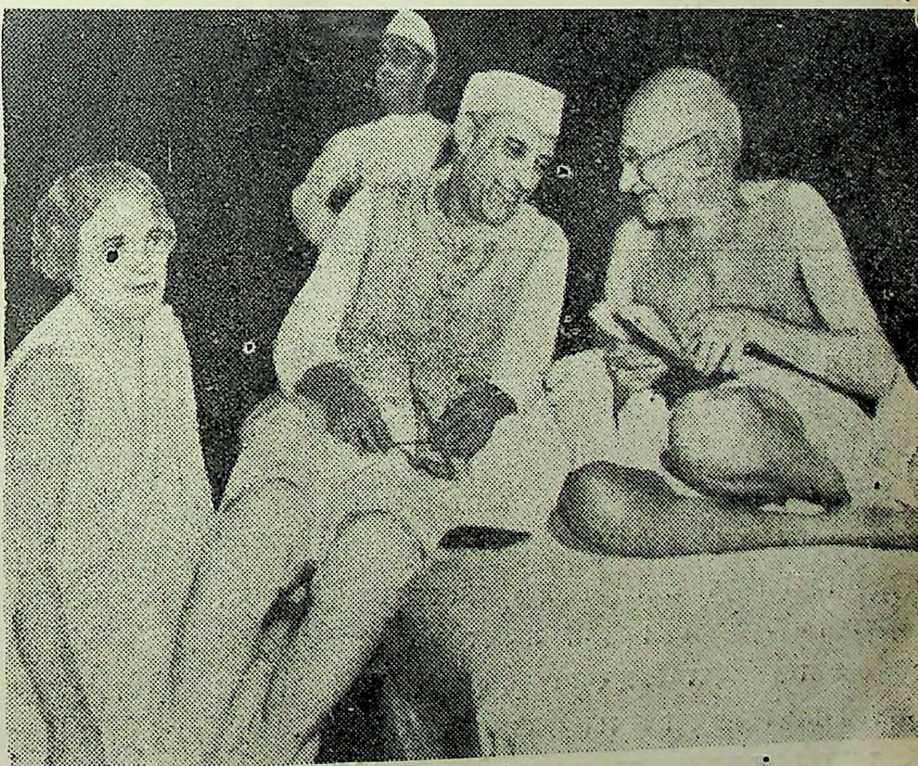
ने देश और विदेशमें यह प्रतिष्ठा पायी है। देशकी स्वाधीनता के लिये कांग्रेसने युद्ध किया है और कोई कुछ भी कहे, देशका भाग्य एकमात्र कांग्रेसके हाथोंमें सुरक्षित है।

समाजवादी दल

समाजवादी दल कांग्रेसके अन्तर्गत है। कांग्रेसकी नीतिके प्रति समाजवादी दलकी प्रकृति आलोचनात्मक है। अनेक प्रश्नोंपर कांग्रेसके दृष्टिकोणसे इसका दृष्टिकोण भी भिन्न है। कांग्रेसके अन्तर्गत उसकी प्रगतिशील विचारधाराका यह समाजवादी दल प्रतिनिधित्व करनेका दावा करता है। किन्तु अभी इसके पक्षमें इतना अल्पमत है कि कांग्रेसके निश्चयोंको प्रभावित करनेकी शक्ति इसमें नहीं आ सकी है। लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये कांग्रेसकी वर्तमान प्रणालीसे भी इसका मतैक्य नहीं है और यद्यपि अनुशासनके नामपर समाजवादी दल कांग्रेसके निर्णयोंके विरुद्ध नहीं जाता, किन्तु उसके नेताओं, खासकर सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्द्धन और राम मनोहर लोहिया और श्रीमती अरुणा आसफअलीने पिछले दिनों जैसा विचार बराबर व्यक्त किया है, उससे आशंका की जाती है कि समाजवादी दलके लिये कांग्रेसके अन्तर्गत बने रहनेका प्रश्न गम्भीर रूप धारण करता चला जा रहा है। बौद्धिक विवेचनात्मक विश्लेषणके लिये समाजवादी दलका नेतृत्व आकर्षक हो रहा है और इस दलने गत अगस्त आंदोलन (१९४२) के दिनों में जैसा बलिदान किया है और जैसी यातनाएं सही हैं, उनके कारण इसके प्रति युवक समुदायका आकर्षण अत्यधिक हो गया है। किन्तु किसी दूरदर्शितापूर्ण नेतृत्व को लेकर अभी इस दलकी परीक्षा नहीं हुई है और इसकी संगठनशक्तिकी व्यापकता अथवा किसी व्यापक कार्यक्रम सम्बन्धी इसकी सफलताके प्रति जन साधारणमें अभी पूर्ण विश्वास स्थापित नहीं हो सका है। फिर भी समाजवादी दलके नेतृत्व, इसकी ईमानदारी, इसकी देशभक्ति एवं जनसेवाके प्रति आशंका नहीं है। किसी समय यदि कांग्रेससे बहिर्गत होकर यह दल अपनी स्वतन्त्र सत्ता एवं स्वतन्त्र नेतृत्व स्थापित करनेका प्रयत्न करे, तभी इसके प्रति जन साधारणकी आस्थाकी परीक्षाके लिये अवसर, उपस्थित होगा। तभी इसके नेतृत्व की भी शक्तिकी परीक्षा होगी और इसके समर्थकोंकी परीक्षाका भी वही अवसर उपस्थित होगा।

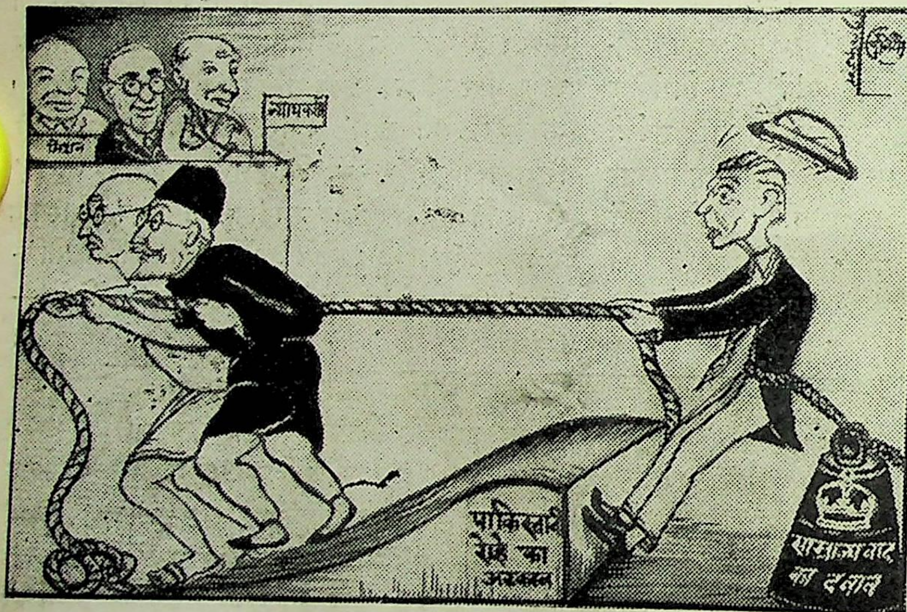
साम्यवादी दल

भारतीय समाजवादी दल अपने अनेक कुकृत्योंके कारण अविश्वास एवं आशंकाका विषय बन चुका है। साम्यवादी विचारधाराके विभिन्न दल आपसी मतभेदके कारण भी स्वयं पारस्परिक शक्ति-ह्रासके कारण बन रहे हैं। भारतमें एकमात्र रूसी विचारोंके अनुसार, साम्यवादी विचारधारा की विभिन्न दिशाओंमें प्रवहमान धाराएं परस्पर विरोधिनी हैं और भारतीय प्रतिभा एवं परिस्थिति के अनुकूल नहीं पड़तीं। इस देशमें रूसकी भांति 'लेनिनाइट', 'ट्राटस्काइट', 'स्टैलिनाइट' अथवा 'रायिस्ट'—



गांधी और नेहरूका विनोदमय मिलन।

अनेक रूपोंमें साम्यवादी विचारोंका प्रवाह परिलक्षित हो रहा है, और भारतमें साम्यवादके लिये बहुत अच्छी संभावनाएं नहीं उत्पन्न करता। हमारा ख्याल है कि पारस्परिक मतभेदोंको भुलाकर, बालकी खाल खींचनेकी प्रवृत्ति छोड़कर, यदि समस्त साम्यवादियोंने एक ही मोर्चेका गठन करनेका प्रयत्न किया होता, तो सम्भवतः आजकी अपेक्षा वे अधिक शक्तिशाली हुए होते। इसके अतिरिक्त भारतमें साम्यवादके लिये सबसे बड़ा खतरा भारतीय साम्यवादी दलने स्वयं अपने कार्यों द्वारा उपस्थित किया है। अपने अनेक कार्यों द्वारा वे जनताके विश्वास भाजन नहीं रह सके। उन्होंने अपनी शक्तिका अत्यधिक ह्रास कांग्रेसकी आलोचना एवं गांधीवादकी भर्त्सनामें किया है। देशके संकटकालमें उनकी नीति शंका एवं आशंका पूर्ण रही है और सही या गलत जनताने उनकी नीतिको विश्वासघाती समझा है। हड़ताल, जन आन्दोलन, अशान्ति आदिके विषयमें साम्यवादियोंकी नीतिमें साधारणतः लोगोंको दुर्वृत्ति दिखायी पड़ती है और उनके प्रति जनसाधारणकी आस्था भी नहीं रह गयी है। यह भी आशंका उनके प्रति है कि वे भारतके कल्याणकी प्रेरणासे नहीं, अपनी नीति के लिये मास्कोकी प्रेरणा पर अवलम्बित रहते हैं। द्वितीय महासमरको जन युद्ध बता कर, जन आन्दोलनपर पीछेसे वार करके साम्यवादी दल देशकी अत्यधिक घृणाका पात्र बना है। इन सब कारणोंसे उसके भविष्यके लिये किसी को शुभकामना नहीं रह गयी है। साम्यवादी दलकी संगठन शक्ति अद्भुत है, उसमें अपने विचारके लिये त्याग करनेवाले व्यक्तियोंका भी सर्वथा अभाव नहीं है किन्तु जब तक उसका नेतृत्व अपनी वर्तमान घातक नीतिका परित्याग नहीं करता, तबतक उसका भविष्य अन्धकारपूर्ण है।



रस्सा-कशी

हिन्दू महासभा

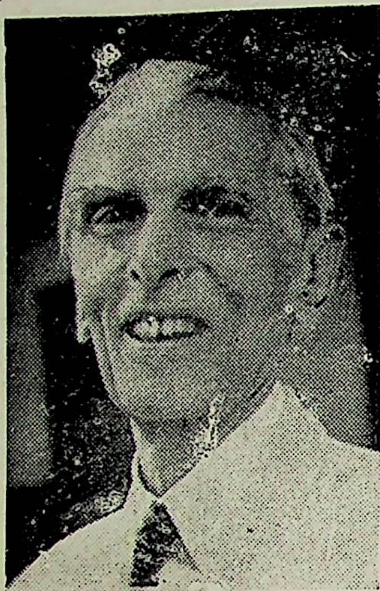
हिन्दू महासभाकी स्थापना सामाजिक क्षेत्रोंमें कार्य करनेके लिये हुई थी, किन्तु बादको इसने राजनीतिक क्षेत्रमें भी प्रवेश किया और यही इसकी अधोगतिका खास कारण है। राजनीतिक क्षेत्रमें आकर हिन्दू महासभाने कांग्रेसका विरोध करना शुरू किया और इसके कुछ नेताओंने कांग्रेस नेताओं की जिस प्रकारकी आलोचना शुरू की और कांग्रेस के प्रतिनिधित्वको जिस प्रकार अस्वीकार करना शुरू किया, उसकी प्रतिक्रिया हिन्दू महासभाके लिये घातक हुई हिन्दूसभाका दृष्टिकोण साम्प्रदायिक नहीं राष्ट्रीय है अतः साम्प्रदायिक आधारपर उसके गठित करनेका कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। डा० सावरकर और भाई परमानन्दकी अराष्ट्रीय एवं कांग्रेस विरोधी नीतिपर हिन्दू महासभाकी वर्तमान अधोगतिकी बहुत अधिक जिम्मेदारी है। भाईजीने सभी प्रकारकी प्रगतिशीलता विरोध करना शुरू किया और उन्होंने मुसलिम सरकार परस्तोंकी श्रेणीमें हिन्दू सरकार परस्तोंको भी संगठित करनेका काम जारी कर दिया और सरकारी नौकरियों एवं सरकारी कृपाके लिये हिन्दू महासभा एवं मुसलिम लीगमें होड़सी लग गयी। उधर डा० सावरकरने

कांग्रेसके सभी कार्योंकी भर्त्सना शुरू की, यहांतककी कस्तूरबा मेमोरियल फण्डके लिये चन्दा एकत्र करनेसे भी हिन्दू संस्थाओंको रोक दिया। डा० सावरकरकी मनोवृत्तिका पता इसीसे लग जाता है कि उन्होंने कस्तूरबा फण्डके लिये चन्दा न करनेका जो कारण बताया था, उसमें उन्होंने कहा था कि इस चन्दाका उपयोग कांग्रेसको संगठित करनेमें लगाया जायगा। इस प्रकार डा० सावरकरके नेतृत्वमें हिन्दू महासभाने अपना मुख्य कार्य कांग्रेसकी भर्त्सना करना बनाया और उधर देशके लिये उसमें त्याग और बलिदान करनेका भी जीवट नहीं, ऐसी दशामें राष्ट्रीय भावना वाले हिन्दू समाज में महासभाके प्रति साधारण जनतामें कोई श्रद्धा नहीं रह गयी। बल्कि सत्य कहनेके बाध्य करता है कि उसके प्रति अधिकांश लोगोंको विराग और अनेक लोगोंको घृणा उत्पन्न हो गयी। यहां हिन्दू महासभा के जिन दो नेताओंका हमने जिक्र किया है, उनके व्यक्तिगत जीवनके सम्बन्ध में हम कुछ नहीं कह रहे हैं। भाई परमानन्द किसी समयके क्रान्तिकारी नेता रहे हैं और फांसीके तख्तेसे वापस लौटे हैं। डा० सावरकरके सम्बन्धमें भी यही बात है। अपने छात्र-जीवनमें इन पंक्तियोंके लेखकके लिये वीर सावरकरका नाम एक तिलस्मसा लगता था, इसलिये आज यह देखकर आश्चर्य एवं परिताप होता है कि ऐसे त्यागी राष्ट्र कर्मी आज अपनी प्रतिभा, शक्ति एवं संगठनका उपयोग संकीर्ण साम्प्रदायिकता एवं अराष्ट्रीयताके कार्यों में कर रहे हैं। डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जीकी अध्यक्षतामें यह आशा की गयी थी कि वे हिन्दू महासभाको सजीवता प्रदान करेंगे, किन्तु उनका नेतृत्व भी केवल ओजस्वी भाषणों तक ही सीमित रह गया।



हिन्दू महासभाके दो नेता श्री सावरकर और डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी।

अभी दिसम्बरके अन्तिम सप्ताहमें गोरखपुरमें हिन्दू महासभाका अधिवेशन डा० भोपतकरकी अध्यक्षतामें हुआ है और देशकी वर्तमान साम्प्रदायिक स्थितिका उपयोग उनके नेतृत्वमें हिन्दू महासभा करना चाहती है। किन्तु जैसा कि हमने ऊपर कहा हैं, साम्प्रदायिक आधार पर हिन्दू महासभाका संगठन कभी भी सफल नहीं हो सकता। महासभा प्रयत्नशील हो और केवल सामाजिक सुधारोंकी सीमाके अन्तर्गत वह कार्य करनेकी नीतिका आवलम्बन करे, तो उसे बहुत कुछ सफलता मिल सकती है, किन्तु यदि वह राजनीतिक क्षेत्रमें भी कांग्रेसकी प्रतिद्वन्द्विता करना चाहेगी, तो वह सर्वथा विफल होगी। हिंदू महासभा जिस हिंदू राज्यकी स्थापनाका स्वप्न देखती है, यह भी उसका कोरा भ्रम है। यदि इस देशमें केवल हिंदू ही होते, और केवल उन्हींका शासन होता, तोभी हिन्दू राज्य जैसी कोई बात न होती। भारतका गठन साम्प्रदायिक नहीं राष्ट्रीय आधारपर ही सम्भव है और इसीके लिये सभी राजनीतिक विचारधाराका प्रवाह चल रहा है।



मुसलिम लीगके अध्यक्ष मि० मोहम्मद अली जिन्ना

मुसलिम लीग

हिन्दू महासभाकी भांति ही मुसलिम लीग साम्प्रदायिक संस्था हैं और लीगका दावा है कि वह भारतके समस्त मुसलिम सम्प्रदायका प्रतिनिधित्व करती है। किन्तु उसका दावा सर्वथा निराधार है। शिया सम्मेलन उससे भिन्न शिया मुसलमानोंकी एकमात्र संस्था है और कितनी बार उसने अपने प्रस्तावों द्वारा ही नहीं, अपने कार्यों द्वारा भी उसने लीगके दावेको चुनौती दी है। शियोंकी संख्या सारे भारतमें सुन्नियोंकी अपेक्षा अत्यधिक कम है। इसलिये शिया सम्मेलन लीगकी अपेक्षा कम शक्ति संगठित है किन्तु उसका दृष्टिकोण लीगकी अपेक्षा अधिक राष्ट्रीय है। बल्कि सच तो यह है कि लीगका दृष्टिकोण जहां सर्वथा साम्प्रदायिक है, वहां शिया सम्मेलनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय है। दोनोंमें कोई मतैक्य नहीं है और यद्यपि लीगने सर्वत्र हिन्दुओंसे अल्पसंख्यकोंके लिये संरक्षणकी मांग की है, फिर भी वह स्वयं शियोंके लिये उनके संरक्षण की मांगको कभी भी स्वीकार नहीं किया है।

मुसलिम लीगकी स्थापना जिस समय हुई थी, उस समय साम्प्रदायिकताका इतना जोर नहीं था और मि० मोहम्मद अली जिन्ना हिन्दू मुसलिम एकताके इतने प्रबल समर्थक थे कि श्रीमती सरोजिनी नायडू उन्हें 'एकताका देव दूत' कहने लगी थीं। ऐसा भी एक समय था जब गांधी जी किसी प्रस्तावको उपस्थित करते तो मि० जिन्ना उसका समर्थन करते थे। किन्तु वह समय आज स्वप्नवत हो गया है। गांधी और जिन्ना, कांग्रेस और मुसलिम लीग आज एक दूसरेसे कितनी दूर हैं!

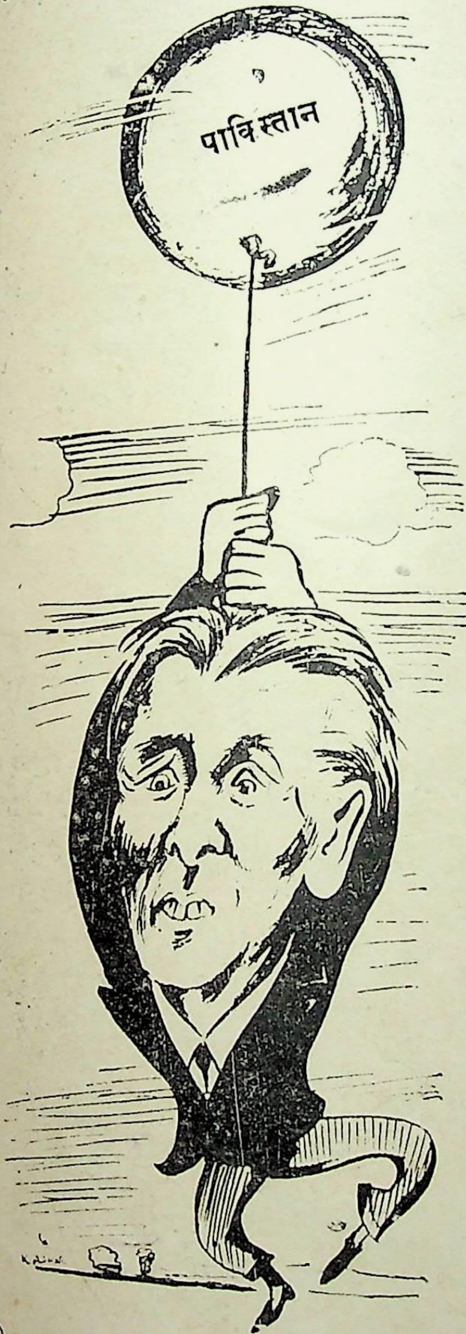
१९१६ में लखनऊ पैक्टके बादसे मुसलिम लीगके नेतृत्वमें मुसलिम सम्प्रदाय निरन्तर पृथक होता गया है। मि० जिन्नाकी १४ शर्तें आज कहां हैं? १९४० में मुसलिम लीगके लाहौर अधिवेशनमें पाकिस्तानकी मांग की गयी और तबसे यही लीगका नारा रहा है और आज तो लीग पाकिस्तानके लिये आबादी विनिमय तककी बात सोचती है। 'एकताके देवदूत' की सारी राजनीतिक पटुता और उनका सारा नेतृत्व एकमात्र अनैक्यके प्रचार और इसीके प्रतिपादनमें खर्च होरहा है।

भारतीय राजनीतिमें मुसलिम लीगका एक शक्ति संगठित दलके रूपमें उदय बहुतोंके लिये आश्चर्यजनक है। किन्तु पिछले अनेक वर्षोंकी घटनाओंका विश्लेषण इस तथ्य को स्पष्ट करेगा कि लीगको ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकारने बहुत अधिक सहारा दिया है। कांग्रेसकी शक्ति ज्यों-ज्यों बढ़ती चली है, त्यों त्यों मुसलिम लीगको सरकारने सहारा देकर उसके मुकाबले खड़ा करनेकी प्रेरणासे,



शिया सम्प्रदायके नेता हुसेन भाई लालजी

उठाया है और ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंके लिये यह कोई अस्वाभाविक कार्य नहीं रहा है। भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यवादकी सुरक्षाके लिये जब एक संस्था द्वारा खतरेकी सम्भावनाएं उत्पन्न हुईं तब साम्राज्यवादियोंके लिये आवश्यक था कि वे किसी और संस्थाका सहारा पकड़ें



और इसी भावनासे उस संस्थाको शक्तिशाली बनाना भी आवश्यक था। साधारण जनतामें इस भावना की जब सृष्टि की गयी और जब इसका प्रचार किया गया कि मुसलमानोंके लिये सरकारी पदों, नौकरियों एवं आर्थिक, व्यवसायिक सुविधाओंका मार्ग लीगमें सम्मिलित होनेसे ही प्रशस्त होगा, तब उसकी ओर उसका आकर्षण अनिवार्य था। सुविधा प्राप्त ब्रिटिश सरकार सुविधा प्रदान करनेकी स्थितिमें जब हो, तब लीगा प्रचार तथ्यपूर्ण भी प्रमाणित होता है, अतः उसकी शक्ति संगठित होनेके लिये स्मरण भी उत्पन्न हो जाते हैं। लीगके वर्तमान गठनकी रूप रेखा भी इसे स्पष्ट करेगी। नवाबों, खां बहादुरों और खां साहबोंका ही उसमें प्राधान्य है और उन्हींके हितोंका संरक्षण उसके द्वारा अबतक हुआ है। क्योंकि लीगके पास जन साधारणके आर्थिक विकासके लिये कोई कार्यक्रम नहीं है। साम्प्रदायिक एवं धार्मिक उन्मादकी भित्तीपर ही उसे जन साधारणका सहयोग प्राप्त है।

किन्तु मुसलिम लीग जन साधारणके इस सहयोगका सदुपयोग किसी मंगलमय उद्देश्यकी पूर्तिके लिये नहीं कर रही है। मुसलिम सम्प्रदायके हितोंके संरक्षणके लिये लीग ऊपर कहती बहुत कुछ है किन्तु आज उसकी जैसी गतिविधि है वह अन्ततोगत्वा राष्ट्रीयताके लिये ही नहीं, मुसलिम सम्प्रदायके लिये भी घातक होगी। भारतमें हिन्दू मुसलिम सम्प्रदायके लोग केवल नगरोंमें ही नहीं, देहातोंमें भी रहते हैं और अबतक दोनों ही समुदायके लोग पारस्परिक सद्भावनाके आधारपर न केवल रहते रहे हैं, बल्कि वे एक दूसरेके त्योहारों, पर्वों, उत्सवों एवं समारोहोंपर सम्मिलित होते रहे हैं और धार्मिक कट्टरपंथोंको उन्होंने कभी



उसम... त साम्यवाद श्री रजनीपामदत्त

प्रश्रय नहीं दिया। किन्तु लीगी प्रचारने उन्हें साम्प्रदायिकता के आधारपर गठित करने एवं उनमें धर्मोन्मादकी सृष्टि करनेका प्रयत्न किया है और उसकी प्रतिक्रियायें बहुत सुखद नहीं हुई हैं। लीगका यह नेतृत्व अत्यन्त भयावनी सम्भावनाओंसे भरा हुआ है। राष्ट्रीयताका पथ इस नीति द्वारा अवरुद्ध हो रहा है और स्वाधीनताका पथ इसके द्वारा कण्टकाकीर्ण हो रहा है। खेद है कि किसी समय के 'एकताके देवदूत' मि० जिन्ना आज अपनेको भारतीय न होने तक की घोषणा कर रहे हैं। हमारा ख्याल है कि मुस्लिम लीगकी वर्तमान नीति आज उसके लिये चाहे जितनी फलवती दिखलायी पड़े, उसका अन्तिम परिणाम उसके लिये ही सुखद नहीं होगा। समाज राष्ट्रीयताके पथपर अग्रसर होगा और दूसरी राष्ट्रीय विचारोंवाली मुसलिम संस्थाओंके लिये अच्छा अवसर मिलेगा। अतः यदि मुसलिम लीगको एक शक्ति संगठित संस्थाके रूपमें बना रहना है तो उसे अपनी वर्तमान नीतिका परित्याग करना होगा। मुसलमानोंकी दूसरी संस्थायें और भी हैं और उनमें जमायतुल उल्मा, अहरार, मोमिन, खाकसार संस्थाएं हैं। इनका सम्मिलित मोर्चा किसी भी दिन राष्ट्रीयताके आधारपर हो जाय तो मुसलिम लीगको या तो अपनी नीति परिवर्तित करनी पड़ेगी, अथवा अशक्त संस्थाके रूपमें उसे बना रहना पड़ेगा।



किंकर्तव्याविमूढ़ श्री मानवेन्द्रनाथ राय

राखो या हथकड़ी

श्री विजयकुमार मुंशी, बी० ए० एल० एल० बी० 'साहित्यरत्न'

नगरसे दूर, अमराइयोंकी सघन छायामें जोगिन मां की धुनी तपती थी। शहरके गरीब-अमीर इस एकान्त शान्त प्रांतमें अपनी-अपनी अभिलाषाएं लेकर आते और जोगिन मां सबकी सुनकर प्रायः मुस्करा देती। किसीको उठाकर एक चुटकी राख दे देती तो वह अपनेको धन्य समझने लगता! जोगिन मां अकेली है और कोई एक मास पहले ही इस नगरमें आई है। गेरुए वस्त्र हैं और गेरुए रंग के ही लम्बे-लम्बे लहराते बाल। मुख आकर्षक, रंग गेहुंआं और बनावट खुशनुमा है। किसीकी ओर आंख उठा कर देखती है तो वह दो क्षण जोगिन मां के रूपसे सिहर उठता है। आंखोंमें ऐसा तेज भरा है कि किसी महात्माके नयनोंमें यदाकदा दृष्टिगोचर होता है। फलके सिवा वह कुछ भी नहीं ग्रहण करती। सेठ साहूकार फलोंके टोकरे भेजते हैं। वहसब बच्चोंको कभी-कभी बांट दिया करती है। लोग रात-रात भर उसके पास बैठे रहते हैं पर जोगिन मां के पलक लगते उन लोगोंने नहीं देखा!

एक दिन एक साहूकार आया और पुत्रकी याचना करने लगा। जोगिन मां हंसते हंसते बोली, 'धन है?'

'धन की तो कमी नहीं है मां, पुत्र नहीं है तो धन किस काम का?'

जोगिन मां ठहका मारकर हंसी, फिर बोली 'यह लो एक चुटकी राख है!' धनिककी हथेली पर उसे रखते उसने फिर प्रश्न किया 'यह क्या है?

धनिकने नम्रतासे प्रत्युत्तर दिया 'मां का आशीर्वाद!' 'नहीं-नहीं, यह धन है!' और फिर वह बड़ी देरतक हंसती रही। धन, राख, मनुष्य—जीवन—जैसे वह यही सब कुछ सोच रही थी। सब लोग उसे मूर्तिवत देख रहे थे।

यों जोगिन मां को इस अमराईमें रहते-रहते चार मास व्यतीत हो गये। सेठने कई सौ रुपया लेकर मां के चरणोंपर रखे जो जोगिन मांने उसी समय बनारसकी किसी धार्मिक संस्थाके नाम भिजवा दिये। जोगिन मां के जीवन के इस विवरणको देखकर सब दंग रह जाते थे।

*   *   *

रेलगाड़ीके सेकेण्ड क्लासमें एक पंजाबी नौजवान सूट-बूटधारी हाथमें 'टाइम्स आफ इण्डिया' ले उसे पढ़ रहा है। सरदार जी के ठीक सामने एक बच्चेको लिये एक बंगाली महिला बैठी निरन्तर दौड़ते वृक्षोंकी ओर निहार रही है। उसकी आंखोंमें यौवनकी तड़पन नहीं, फिर भी यौवनका कराहता आग्रह है!

कहां जायेंगे सरदार जी? पास बैठे हुए एक बूढ़ेने पूछा। मैं इलाहाबाद जा रहा हूं। अभी कुछ दिनोंसे इलाहाबाद ही रहने लगा हूं। वैसे मैं पंजाबका निवासी हूं।

गाड़ी एक छोटे स्टेशन पर रुकी। एक हिन्दुस्तानी पुलिस आफिसर तेजीसे कदम बढ़ाता दूसरे दर्जेकी ओर आया, सरदार जी ने जेबसे पिस्तौल निकाल उस हिन्दुस्तानीको मार दिया और दूसरे दरवाजेसे सरदार जी बेतहाश भाग गये। रेलगाड़ी खड़ी थी हजारों आदमी मुंह ताक रहे थे किन्तु किसीकी हिम्मत नहीं होती थी कि उसका पीछा करे। आंखोंसे ओझल होते होते उसने बगल से एक पिस्तौल निकाल इस जोरसे रेलगाड़ीकी ओर दागी कि सब कांप उठे। गाड़ी देर तक ठहरी रही। पुलिस आफिसरने प्राण दिये। रेलगाड़ीके मुसाफिरोंने सहानुभूति के तराने गा दिये और रेलगाड़ीको जाना था वह चली गयी।

*   *   *

कई दिनोंसे एक सन्यासी जमुनाके किनारे आकर रहने लगा है। लोग कहते हैं कि गांजा नहीं पीता लेकिन बातें ज्ञानकी करता है। आसपासके लोग उसके पास इकट्ठा होते हैं तो वह गीता और भागवतका बड़ा ही सुन्दर पाठ करता है। लोग तन्मय हो उसकी डफलीके साथ गाते और ताली बजाते हैं।

एक दिन भक्तोंके बीच सन्यासी बाबा बोले अब मैं जा रहा हूं। तुम सदा सर्वदा इसी प्रकार गीताका पाठ करना। गीता हमारा मां है। वह ज्ञानकी अमर निर्झरिणी है। उसमें विवेकका अथाह सागर लहराता है।

आज मैं तुम सबसे प्रेमसे विलग हो रहा हूं। धीरजके साथ काम करो। सन्यासीको अधिक समय एक स्थानपर नहीं रहना चाहिये। मोहका त्याग करो, जीवनसे संघर्ष करो, अपने परायेको पहिचानो। यह देश हमारा है। हम इसके स्वामी हैं। बोलो! तुम इसके स्वामी हो। नहीं-नहीं तुम स्वामी होकर भी दास हो अरे मेरे पराधीन देश के गुलाम दोस्तो! एक लड़ीमें बंधो और सामूहिक रूपसे स्वामी बनो, स्वामी बनो!

लोग रो रहे थे, सन्यासी चले गये!

० ० ०

वह राखीकी सांझ थी। प्रोफेसर धीरेन ध्यानमग्न अपने कमरेमें बैठा एक मासिक पत्र पढ़ रहा था। अंधियारा अभी नहीं छाया था। अस्तावलगामी सूरजकी किरणें वृक्षों पर खेल रही थी। पुलिसने आकर धीरेनके हाथोंमें हथकड़ियां डाल दीं। राखी और हथकड़ी? कैसा साम्य था, कैसी अजीब पहेली थी!

० ० ०

यह जो मेरे सामने बैठे अपनी जीवन पुस्तिकाका एक-एक पृष्ठ खोल रहे हैं यह डा० माथुर 'जोगिन मां,' 'सरदारजी' 'सन्यासी' और 'प्रो० धीरेन' रह चुके हैं। कांग्रेस सरकारके समय जेलसे ४२ आन्दोलनके राजनैतिक नजरबन्दियोंके साथ छूटकर आये हैं और मेरे यहां ठहरे हैं। अखबारोंमें सचित्र उनके परिचय छप रहे हैं और डा० सो० कहते हैं 'भैया नरेन! वह जीवनकी अपनी महत्ता रखता था...' किन्तु मेरे सारे ख्याल राखी और हथकड़ीपर केन्द्रीभूत होकर घूम रहे हैं।

गीत

किसका यह प्यार मधुर?
नीलम नभ पर अतंद्र
उगा कौन शरच्चन्द्र
हुई ध्वनित रश्मि-वीन
किसकी रस-स्निग्ध मंद्र
फैलीं किसकी ज्योत्स्ना-रागिनी अपार मधुर?
किसका यह प्यार मधुर?
अंग-अंग विह्वल है
रोम-रोम चंचल है
देखो अन्तरतर में
कैसी यह हलचल है
किसकी यह प्राणों में गूंजती पुकार मधुर?
किसका यह प्यार मधुर?
दूर कहींसे आकर
अद्‌भुत आकर्षण भर
किरणों सी कोमल
मृदु अंगुलियों से छूकर
उर वीणाके किसने बजा दिये तार मधुर?
किसका यह प्यार मधुर?
सौरभमय दिग्-दिगन्त
छाया गुंजन अनन्त
किसने इस पतझड़ को
कर दिया सरस बसन्त
आई किन स्वासों की दक्षिणी बयार मधुर?
किसका यह प्यार मधुर?
मन ही मन गुनता हूं
स्वप्न-जाल बुनता हूं
बाहर भीतर मैं मृदु
एक राग सुनता हूं
किसके स्वर-कम्पन की है यह झंकार मधुर?
किसका यह प्यार मधुर?

— जितेन्द्र कुमार

समाजकी बलिवेदी पर:—

नारीके सौन्दर्य और श्री का संहार

श्री अनिलकुमार

अभी कुछ दिन पहले एक अखबारमें पढ़ा था —

"ब्रिटेनमें बीस वर्षसे कम आयुकी जितनी लड़कियोंकी शादी होती हैं उनमेंसे ४० प्रतिशत विवाहसे पूर्व ही गर्भिणी हो जाती हैं। विवाह पथ प्रदर्शिनी सभाके आकड़ोंसे ज्ञात हुआ है कि ब्रिटेनमें २० वर्षीया बालिकाओंकी शादीके बाद पैदा होनेवाले प्रति चार बच्चोंमें से एक बच्चा ऐसा होता है जो उस दम्पतिका नहीं होता — वह माताके गर्भमें शादीके पूर्व ही आ बैठता है।"

यह सत्य नहीं कि प्रत्येक आगे आनेवाली पीढ़ी पीछे गई हुई पीढ़ीसे ज्ञानमें कहीं बढ़ी-चढ़ी है किन्तु उसके साथ यह भी सत्य है कि मानव समूहकी पीछे गयी हुई पीढ़ी उसकी आजकी पीढ़ीसे नैतिक दृष्टिसे कहीं अधिक बलवान थी। यही कारण है कि संसारके जिस-जिस कोनेमें नारीने पुरुषकी पाशविक लिप्सासे भ्रष्ट अथवा अत्याचारियोंके स्पर्शसे कलुषित होनेकी अपेक्षा चिता पर जलना, प्रज्वलित अग्निका आलिंगन करना स्वीकार कर लिया, वहांका मानव समूह उनके बलपर सिर उठाकर जीवित है किन्तु भूमि भागके जिस हिस्सेमें यह नहीं हो सका अथवा इसके विपरीत हुआ वहां आज भी वासनाकी बर्बरताका साम्राज्य फैला हुआ है। प्रलयकी इस आगमें वे देश स्वयम् भस्म होंगे यह तो निश्चित ही है किन्तु इस आगकी तपन और उसकी लपटोंका विष आसपासके देशोंमें भी फैल रहा है। सड़े फलोंमें रखे हुए अच्छे फलोंकी तरह विशाल सांस्कृतिक पृष्ठभूमिवाले संयमशील देशोंकी नीतिमत्ता भी बिगड़ गयी। कई विद्वानों और नीतिज्ञों द्वारा यह दुहराया जा चुका है कि बालिकाएं भूखकी समस्याका हल निकालनेके लिये चकलों और कोठियोंमें आ बैठती हैं किन्तु अब इतना ही कहकर इस समस्याकी जड़का पता पाना सम्भव नहीं। भूखकी ज्वाला पुरुषोंको चोर और स्त्रियोंको वेश्या बनाती है यह जितना प्रकट सत्य है उससे भी अधिक सचाई मानव मनकी अन्तर्गत-अभाव-जनित कुप्रवृतिमें है। असफल-इच्छा (अतृप्त) इसका मूल है। चीनी महात्मा कनफ्यूशियस्के स्वर्ण उपदेशोंके अनुसार हमने संसारकी सभी स्त्रियोंको यदि मां-बहन-बेटी मान लिया तो मनमें कुभावना उठेगी ही नहीं व्यभिचार, बलात्कार कुप्रवृत्ति आदि भावनाएं मनुष्यके मनसे उठ जायेगी और अनैतिकताका प्रश्न दब जायेगा—इस सम्बन्धकी समस्याएं मिट जायेंगी यह कहना कोरी कल्पना है। कनफ्यूशियस्के कालमें मानवीय मनके पतनकी सीमा इतनी विकसित विस्तृत नहीं थी। सिर्फ उपदेश ही तब बहुत-सा काम कर जाते थे। लेकिन आज वह समय नहीं। मनुष्यकी आत्माका दिवाला पिट गया है। बुद्धकी वाणीका प्रभाव जब तक लोगोंके मनपर कायम था देवदासियां पवित्र और पूजनीय थी। नारी देवदासीके आसनपर वास्तवमें 'बोधिसत्व' थी। किन्तु जब बौद्धकालीन उपदेशोंमें निरी हृदयहीन ध्वनि रह गयी तब देवदासियां मठाधीशोंकी रखेलियां और धर्म द्वारा प्रस्तुत वेश्याएं बन गयीं चूंकि इतने भारी उपदेश हजम करनेका बल अवनतकालीन बौद्धोंमें नहीं रहा। उपदेश सबके लिये दवाका काम नहीं कर सकते। मर्यादित सीमा तक मनकी स्वस्थता होनेपर ही उपदेशका लाभ पहुंच सकता है।

इच्छाओं का दमन

वासनाका स्रोत मनसे कर्मकी ओर प्रवहमान है। उसका मूल मनमें है। किन्तु उसकी शक्ति अथवा गति इच्छागत आंतरिक अभावमें है। यही अभाव मनकी वासनाको सींचता रहता है। वह मनमें सर्वप्रथम प्रकट होकर कर्म द्वारा विकसित होती है। क्योंकि अभाव दमनसे उत्पन्न होता है और सभ्यताका विकास होनेपर समाज काम भावनाके स्वाभाविक और नैसर्गिक प्रकाशनपर रोक डालता है, जिसका परिणाम यह होता है कि उस समाज के व्यक्तिउस भावनाका निर्दय दमन करना प्रारम्भ कर देते हैं, जिसके फलस्वरूप अनेक

उत्पत्ति होती है जो अस्वाभाविक और वासनामूलक मार्ग की ओर प्रेरित करती हैं। वासनाका सर्वथा दमन असंभव है। इस तरहके अप्राकृतिक दमनसे मानसिक संतुलन नष्ट हो जाता है और इसी तरहकी अस्वाभाविक प्रवृत्तियोंकी उत्पत्ति होती है। यह प्रवृत्ति कभी-कभी विक्षिप्तताकी सीमा तक पहुंच जाती है। सभ्यताकी जिस तह पर समाज होता है उसीके अनुसार उसकी इस स्थिति—दमन जनित पतन—का चित्र होता है। इसी सामाजिक सतहकी भिन्नताके कारण जो बात ब्रिटेनकी सभ्यताकेलिये साधारण है वही भारतीयोंके लिये भयंकर। ब्रिटेनकी यह अखबारी खबर और इसी तरह की कई विदेशी रिपोर्टें, कन्याओंके प्रति उदासीन रहनेवाली चीनी मनोवृत्ति, जुलाई सन् १९४२ से दिसम्बर सन् १९४५ तक ब्रिटिश सैनिकोंके दिये हुए तलाकके ४८५००० प्रार्थना पत्रोंके सम्बन्धकी लार्ड चांसलरकी ब्रिटिश लोकसभामें की हुई घोषणा और नारीकी ओर देखनेवाली निकटवर्ती राष्ट्रों के पुरुषोंकी वासनासिक्त दृष्टिका परिणाम आज भारतकी पवित्रतापर चोट कर रहा है। ऐसी हालतमें उक्त समस्या के सम्बन्धमें मौन साध लेना हमारे लेखकोंके लिये उचित नहीं। अपनी कलमके द्वारा 'यामा' नगरमें बिकनेवाली रूसी महिलाओंको जैसे 'क्यूप्रिन' ने मुक्त किया, चकलोंको आबाद करनेके लिये महिलाओंको बेंचनेकी जापानकी प्रचलित कुरीति जनरल मेकआर्थरने अपनी कलमकी एक फटकारसे सरकारी कानून द्वारा नष्ट कर दी और वहांके लेखकों ने 'गैशा' (जापानी वेश्याएं) के रूपमें संसार भर में फैले हुए जापानकी कलुषको अपनी कलमके प्रबल प्रवाहसे जैसे धो दिया, हमारे लेखकोंको भी उसी तरह राष्ट्रकी बिगड़ती हुई नैतिकताको रोककर भारतके कोने-कोनेमें फैले हुए चकलोंकी समस्याका हल निकालना होगा।

वेश्याओंकी समस्या भी आज साधारण नहींहै यह सच है कि हम अन्य देशोंकी तुलनामें अधिक ख्यातनामा पतित नहीं हुए हैं तथापि हमारे देशोंकी सुरूप महिलाएं इंग्लैंड और अमेरिकाके बाजारोंमें दलालोंकी आर्थिक प्राप्तिके लिये बिकी जानेके पहले हमको यह समस्या सलझानी पड़ेगी। वह समाज जो अपनी तरुणाईमें यौन भ्रष्टता फैलने देता है, सतीत्व, सत्यता और पारिवारिक विश्वासपर जोर नहीं देता, मौत और नरकके प्रतिगामी पथपर दौड़ रहा है।

एक दिशामें समाजकी बुद्धि बहुत आगे बढ़ गयी, दूसरी दिशामें पीछे रह गयी इसलिये समाज बेडौल हो गया। समाजका बाहरी रंगरूप उसके हृदयहीन शुष्क शिष्टाचार बढ़ने लगे, उसके ऊपरी आवरणपर विदेशी सभ्यताकी रंगीन तह चढ़ने लगी। किन्तु उसकी आत्मा का स्वास्थ्य ढलने लगा—हृदय खोखला हो गया।

नर-नारी समन्वय

पश्चिमी सभ्यताने स्त्री-पुरुष समन्वयकी नयी दृष्टि दी। हमने उसकी चकाचौंधमें पड़कर बिना अपनी स्थिति का अवलोकन किये ही उसको विकृत तरीकेसे अपनाया। नारी जो लम्बे अर्सेसे अन्तःपुरकी कोठरीमें संसारकी गति से बेखबर बन्दिनीकी तरह जिन्दगीकी सजा काट रही थी एकाएक बाहर लाई गयी। उसकी आंखें नयी चमकमें चौंधिया गयी। बिना अपनी शक्तिका ठीक अनुमान लगा अस्थिर स्थितिको लेकर सार्वजनिक जीवनमें उसने प्रवेश किया। पुरुषने उसका नये रूपसे स्वागत किया। भारतकी नारीने सोचा मेरी प्रगति हो रही है। पुरुषने समझा नारी जागरणकी हिलोर आ रही है—सार्वजनिक जीवनमें नया आकर्षण होगा। भारतकी आधी शक्ति जिसे बंदी बना दिया गयाथा मुक्त हो गयी। इस मुक्तिने जो वास्तव में 'मुक्ति' नहीं थी, हमारे असंख्य घरोंको नष्टकर दिया! सार्वजनिक जीवनमें उन्मुक्त नारीके संयमका बांध टूट गया। वह गिर गयी, पुरुषके सान्निध्यमें। तब भी कुछ बिगड़ा नहीं—सार्वजनिक संस्थाओंका मूल्य कम नहीं हुआ। लेकिन उनकी पवित्रता उस क्षण एकदम नष्ट हो गयी जब यह पतन और असंयमकी कहानी छिपाकर व्यक्तित्वको अकलंकित साबित करनेकी कोशिश की गयी। मेरे मतसे सार्वजनिक जीवनमें हिस्सा लेनेवाली नारीके नैतिक आधार सुदृढ़ और उसके आदर्श सुगठित होने चाहिये तभी वह पुरुषके बहकावेसे बच सकती है। स्वच्छन्द, फूहड़ और नटखट कुमारियां अपने अन्तर्गत आदर्शों का ढ़कोसला खड़ा रखकर उसकी आड़में छिपा व्यभिचार चलाती रहेगी तबतक इस तरहका उनका सार्वजनिक जीवन कलंकित होता रहेगा। राष्ट्रका व्यक्तित्व और स्वास्थ्य बिगड़ता रहेगा। लोक जीवनमें प्रविष्ट होते हुए हर एक को स्मरण रखना चाहिये कि उनका अस्तित्व राष्ट्रसे पृथक् नहीं। उनमें देशका भी अंश विद्यमान है और उनके पीछे राष्ट्रकी कीर्ति अथवा बदनामीका मान छिपाहुआहै।

अमेरिका और यूरोप

अमेरिका और यूरोपमें सार्वजनिक महिला कार्यकर्ताओंके केन्द्र संसारके बड़े-बड़े चकले हैं। यौवनका प्रारंभिक उन्माद बुद्धिकी आंखोंसे देखने नहीं देता। बाहरसे इन देशोंमें भ्रमण अथवा शिक्षाके लिये जानेवाले रईस युवक पहले उनकी तड़क-भड़कमें आकर धीरे-धीरे गन्दगीमें फंस जाते हैं तथा अपना स्वास्थ्य यौवन व आदर्श खो बैठते हैं। यूरोपीय रंगढंग उनकी नजरोंमें भर जाता है एशियाई देशोंके आसपास इन पापवृत्तिमें लगी हुई कुटिनियों, दलालों और व्यापारियोंके कुछ अड्डोंका अभी पता चल गया है। उनमें खतोकिताब बराबर चलती रहती है। सिंगापुर के एक ऐसे ही केन्द्रसे एक आदमीने मद्रासकी एक मैडम को ता० १० जनवरी सन् १९३० को जो पत्र लिखा था, वह सिंगापुरकी पुलिस द्वारा पकड़ लिया गया और भारत सरकारके पास भेज दिया गया। मद्रासकी तरह रंगूनमें भी विदेशी चकलोंका जबरदस्त अड्डा था। वहां अब चकलों का चलाना नाजायज करार दे दिया गया है।

तीन आधारोंपर इस समस्याकी मंजिल खड़ी है। पहलेसे सामाजिक व्यभिचारकी जड़ सींची जाती है, दूसरे में वह अधिक पुष्ट होती है और तीसरे द्वारा समाजमें अनैतिकताका बेहद प्रचार होता है। तीसरी अवस्थामें पहुंचकर समाज अथवा राष्ट्र अवनतिकी गहरी खाईमें में पहुंच जाता है जिसका विश्लेषण कुछ इस तरह है।

सामाजिक कुरीतियां

काश्मीरकी किष्टकर जातिमें एक कुरीति है जिससे अविवाहित कुमारीके अनेक सन्तानें हो सकती हैं। उस जातिमें इसमें कोई बुराई नहीं समझी जाती। ऐसी संतानों को पिता चाहे तो ले सकता है अन्यथा माता अपने पास ही रखती है। यदि इस तरहकी कुमारी माताएं विवाह न करना चाहें तो वह आजीवन अविवाहित रहकर किसी भी अनिश्चित पुरुष से व्यभिचार कर सकती हैं। ऐसी हालतमें स्त्री के मनसे सन्तानका मोह हटकर वह व्यभिचारकी ओर उन्मुख होती है। कांकड़ेकी पहाड़ी जाति गद्दियोंमें भी रूढ़िगत धारणाके अनुसार यदि विधवा गद्दिन को पतिकी मृत्युके बाद चारवर्ष तक सन्तान हुई तो वह उसके मृत पतिकी ही मानी जाती है। ऐसी रूढ़ियोंके सम्बन्धमें यदि यह कहा जाय तो अनुचित न होगा कि पतिके मरनेपर विधवा गद्दिनको किसी भी अज्ञात पुरुषके साथ चारवर्ष व्यभिचार करनेका समाजकी ओरसे अधिकार मिल जाता है। इन तरीकोंसे विधवा गद्दिन द्वारा उसके संसर्गमें आनेवाले निकटवर्ती समाज या जातियोंके पुरुषोंमें अनैतिकताकी लहर फैलने लगती है। चकलोंकी समस्या की जड़में ऐसी ही रीतियां रससिंचन कर रही हैं। चीनमें बालिकाका जन्म अपशकुन या दुर्भाग्य माना जाता है। दूसरे वहां मितसुई प्रथा प्रचलित है। इसके सहारे गरीब मां-बाप अपनी कन्याओंको धनाढ्य चीनियोंके हाथ बेच देते हैं। इस प्रथासे बुराइयां भी पैदा होती हैं। लड़कीके युवती होनेपर उसके पीछे कुटुम्बके युवक पड़ जाते हैं और उनका सतीत्व नष्ट कर देते हैं। यदि कन्या बहुत रूपवती हुई तो रखेली की तरह भी रख ली जाती है। चीनके कई भू भागोंकी अवस्था इतनी शोचनीय है कि वहां लड़कियां तीन रुपयेसे लेकर तेरह रुपए तकमें बेची जाती हैं। लेडी साइमनने इंग्लैंडमें व्याख्यान देते हुए यहां तक कहा था कि एक रुपये तेरह आनेमें कुछ लड़कियां बिकी हैं। चीनके भुखमरे मां-बाप मुर्गे-मुर्गियोंकी तरह औलाद पैदा करते हैं और बहुतेरे तो उसे अपना व्यवसाय बना बैठे हैं। बर्मामें करीब डेढ़ दो लाख चीनी हैं। इनमें स्त्रियां अधिकसे अधिक तीस-चालीस हजार होंगी। औसतन दो पुरुषोंके बीच एक स्त्री पड़ती है, अतः वहां चीनी युवतियोंमें बेहद व्यभिचार फैला हुआ है। क्योंकि रंगूनमें चकलें रखना मना है। होटलोंमें उसके काफिले मिलते हैं। वे ही उनके चकले हैं।

आर्थिक स्थिति

आर्थिक आवश्यकताके लिये शिक्षित कुमारियां दफ्तरोंमें नौकरी करती हैं और अशिक्षित युवतियां उच्च तथा मध्यमवर्गके घरोंमें दासीकृत्य। ये युवतियां आर्थिक संकटोंपर पुरुषों द्वारा बचाई जाती हैं। ऊपरी टीम टाम और बनाव श्रृंगारके लिये शिक्षित युवतियां मनमाना खर्च करती हैं। यह ऊपरी खर्च जो आमदनीसे अधिक होता है सहकारी क्लर्कोंकी प्यासी हमदर्दी पूरा करती है। लोगों की आंखोंमें अथवा समाजमें अधिक चमकदार दिखनेकी लालसा ही इसके मूलमें है। विवाहित युवतियोंको श्रृंगार अपने पतिके लिये घरकी सीमामें करना चाहिये न कि राह चलते लोगोंकी आंखोंमें बिजली की तरह चमक भर देनेके लिये। जो अविवाहित हैं उन्हें भी अपने सौन्दर्यको अवश्य सजाना चाहिये किन्तु उसे अधिकसे अधिक भड़कीला

बनाकर समाजमें उत्तेजना फैलाना न उनकी अवस्थाकी दृष्टिसे उचित है और न इस देशकी सभ्यताके अनुसार। उनका इस तरहका व्यवहार वासना प्रेरक है—अनैतिकताको वे अनजाने पालती रहती हैं। यह अनैतिकता सीमा पर पहुंचकर विस्फोट द्वारा परिणाम तक पहुंचती है तब देशका पतन होता है और चकलोंकी सभ्यताको शिक्षितवर्ग में पुष्ट करती है। बालिका और युवतियोंको बनाव श्रृंगार अवश्य करना चाहिये अपने लिये, अपने पतिके लिये अथवा स्वास्थ्य और दृष्टियोंसे सुदृढ़ तथा प्रफुल्ल बने रहनेके लिये परन्तु जिस सजावटसे कुमारी युवतियां बहकाई जाती हैं, विवाहित स्त्रियां तिकड़ममें फंसाकर भ्रष्ट की जाती हैं वह शरीर सजावट ढंग केवल उनके ही शील सौन्दौर्य और आरोग्यपर आघात नहीं करता वरन् समाज में भी अराजकताके बीज बो देता है।

इसका मतलब किसीको यह नहीं लगाना चाहिये कि स्त्रियोंको सार्वजनिक जीवन तथा घरके घेरेके बाहर आना ही नहीं चाहिये। इस विषयमें उन्हें तब अग्रसर होना चाहिये जब सामाजिक जीवनमें नयी शक्ति भर सकनेका आत्मबल तथा फैली हुई वासनाकी जहरीली गैस को शुद्ध करनेका बल वे प्रदान कर सकती हों। अन्यथा लोक जीवनमें वही बदबू फैलती रहेगी। अतएव स्त्री और पुरुष दोनोंको अपनी जबाबदारी परखकर ही समाज जीवन में कदम रखना चाहिये।

यह अराजकता स्वच्छन्दता और सामाजिक बंधन के अभावमें खूब पनपती है। विशाल बरगदकी तरह इसकी शाखा प्रशाखाएं फैलकर महावृक्षका आकार धारण कर लेती हैं तब वैवाहिक बन्धन नष्ट हो जाते हैं। स्त्री ... जाई और पुरुष बहुपत्नीगामी हो जाता है। सन्तान रक्षाका छत्र [माता-पिता] नष्ट हो जाता है। मां-बाप बच्चोंके प्रति उदासीनता और लापरवाहीका रुख अख्तियार कर लेते हैं। समाज-विकासके बीच वासनाके कीचमें सड़ जाते हैं, विकास मर जाता है। नारी और पुरुष की व्यक्तिगत अपूर्णताको उनका परस्पर मिलन पूर्ण नहीं कर सकता। जीवनका एकमात्र आधार वासनाजनित अतृप्ति रह जाता है तब चकलोंकी समस्या इतना विकराल रूप धारण कर लेती है कि किसी भी बड़े राष्ट्रके विराट अस्तित्वको आसानीसे निगल लेती है।

—:याचना:—

जब हो जीवन शुष्क हृदय पर,
भारी हो जीवन का भार।
तब तुम आ जाना बरसाते,
मुझपर अपनी करुणा-धार ॥१॥
जीवन का माधर्य सभी जब,
जीवन का कर जाये त्याग।
तब तुम आकर भर देना फिर,
से निज वीणा-झंकृत राग ॥२॥
ऊब उठे जगके कामों के,
कोलाहल से मेरा माथ।
आकर बस जाना चुपके से,
हृदय मध्य हे नीरव नाथ ॥३॥

निरुत्साह मन कोने में जब,
जा सोये कंगाल समान।
भीतर द्वार तोड़ आ जाना,
लेकर राज-साज की शान ॥४॥
अंधा करे वासनायें जब,
होती होवे बुद्धि विनाश।
तब गर्जन के साथ-साथ तुम,
लेकर आना दिव्य प्रकाश ॥५॥

—जगन्नाथप्रसाद वर्मा बी० ए०, एल० एल बी०

*स्वर्गीय विश्वकवि टागौरकी अंग्रेजी गीतान्जली के २३ वें गीत का अनुवाद।

रैक्व

श्री प्रो० प्रभाकर माचवे एम० ए० 'साहित्यरत्न'

आज दर्शनी शास्त्र, आराम कुर्सियोंपर लेटे-लेटे कालयोंमें सिर गड़ाये बालकी खाल निकालनेवाले गोंकी बौद्धिक अजीविकाका साधन बन गया है। चलिये ढाई तीन हजार बरस पहिले आपको ले चलें और उनके एक दार्शनिककी कहानी सुनायें।

यह कहानी छांन्दोग्योपनिषद् (४।१) से ली गयी अतः इसके सच-झूठपनकी जिम्मेवारी उपनिषदकारपर।

मगर रैक्वकी बात सुनानेसे पहिले मैं आपको यूनान घोर घनचक्कर दार्शनिक डायोजीनसको बात बता री दुनियासे ऊबकर वह मनुष्य-द्वेषी एक बड़ेसे पीपे-मुंह किये बैठा रहता। जगद्विजेता सिकन्दर जय ऊने गये और उनसे पूछा कि मैं आपकी क्या सेवा ता हूं? उसने शांतितापूर्वक उत्तर दिया—तू मेरे और णोंके बीचमें खड़ा है, सो हट जा। बस! उसीका से बादमें वह संवाद भी प्रसिद्ध है, जो जब वह विजयकर, पूर्वकी ओर साम्राज्य विस्तारकी लालसा हा था तब डायोजीनस—सांईके आशीर्वचनोंमें रोसा रखकर वह उनके पास आया था तब घटित। सिकन्दरसे डायोजीनसने पूंछा—तुम पूर्वमें क्यों हो?

सिकन्दर—बिजय करने?

डा०—क्या?

सि०—मिश्र देश।

डा०—मिश्र विजयके बाद क्या करोगे?

सि०—बाबिलोन जीतूंगा?

डा०—उसके बादमें?

सि०—असीरिया।

डा०—उसके बादमें?

सि०—भारत?

डा०—फिर उसके बाद?

सि०—चीन।

डा०—और उसके बाद?

सि०—सारा विश्व-विजय करनेके बाद मैं मैसीडोनामें एक सुन्दर प्रासाद बनाऊंगा जिसके चारों ओर अभूत-पूर्व उद्यान निर्मित करूंगा।

डा०—तो फिर भलेमानस, बागीचाही बनाना हो तो उसके लिये इतना सब परिश्रम और रक्तपात और नाश-वाश क्यों? पहिले उस प्रासाद और बगीचेसे ही शुरुआत करो न?

यही फक्कडराज डायोजीनस ऐसा अपरिग्रही था कि जिस दिन वह यह सीख गया कि हाथको प्यालेकी तरह मोडकर उससे पानी पीया जा सकता है, एक नरियलकी नरोठी जो उसने पानी पीनेके लिये रख छोड़ी थी। वह भी अति-आनन्दसे छोड़ दी।

इस डायोजीनसका ही समधर्मी था रैक्व। और आज भी सेवाग्रामके भन्साली जैसे उनके समदर्शी मिल जाते हैं, इक्के-दुक्के।

रैक्वकी कहानी यों है:

एक बार राजा जानश्रुति कहीं रातको जा रहे थे। इस राजाकी बड़ी ख्याति थी। बड़ा दानी और परोपकारी जीव था। उसने कई तो धर्मशालाएं बनवायीं थीं, और कई अन्नछत्र खोले थे। रातको जाते-जाते उसने कुछ आवाज सुनी। राजा पक्षियोंकी बोली समझता था। उसने सुना आकाशमार्गसे जानेवाले दो हंस—नाम जिनके थे—भल्लाक्ष और कम्बर एक दूसरेसे कह रहे हैं—

क०—देखो भाई भल्लाक्ष। रात है तो भी संभलके उड़ना। जानते हो यह किसका देश है।

भ०—होगा किसीका, हमस क्या?

क०—नहीं-नहीं यहां जानश्रुति पौत्रायणका राजहै। उसकी कीर्तिकी ज्वाला यहां ऐसी फैली है कि रात भी दिनकी तरह जान पड़ती है। उस ज्योतिकी ज्वालामें अपने पंख न जला लेना।

भ०—होगा-होगा, तू तो इस राजाकी ऐसी तारीफ कर रहा है जैसे वह रैक्व हो।

क०—नहीं वही गाड़ी चलानेवाला, सयुग्वा रैक्व।

भ० उसमें कौनसी विशेषता है?

ति

क०—वह बड़ा पहुंचा हुआ ज्ञानी-पुरुष है ।

भ०—और ?

क०—जैसे कोई छोटे-मोटे राजे बिजेताके पास स्वयम् खिंच जाते हैं, उसी प्रकार प्रजाएं जो कुछ भी अच्छा कर्म करती हैं वह सब उसी गाड़ीवाले रैक्वके पास जाते हैं ।

राजा नीचेसे जा रहा था । उसने भल्लाक्षि-कम्बर इन दो हंसोंका यह संवाद सुन लिया । और किसी तरह इस रैक्वको खोज निकालने और उससे परिचय प्राप्त करने-की प्रबल इच्छा उसे हुई । उसने सवेरे उठते ही अपने 'क्षत्ता' यानी मन्त्रीको बुलाया और भेजा कि रैक्वको किसी तरह ढूंढ़ लाओ क्षत्ता बेचारा सब गाड़ीवालेको देख आया उनमें रैक्व नामका कोई गाड़ीवाला नहीं था । आखिर थककर वह लौट आया । राजा पौत्रायणने कहा—नहीं, नहीं, तुम फिर ज ओ, वहां ढूंढ़ो जहां ब्राह्मण होते हैं ।

एक गाड़ीके नीचे एक गन्दासा आदमी, दाद खुज-लाते बैठा था । मन्त्रीने पूछा—'महाराज, आपही हैं रैक्व ?'

उत्तर मिला—हूं'

मन्त्री खुशीसे लौटकर यह समाचार राजासे कह आया ।

विद्वानोंको पैसेकी लालचमें मोहित करने और उस जालमें फसानेका धन्धा आज हीका नहीं, काफी पुराना है, विक्रम पूर्वकालीन है । राजा पौत्रायण ६०० गौयें, सोने-की मुद्राएं और रथ लेकर खुद गया और रैक्वसे कहा—'रैक्व ! ले लो ये सब उपहार । और मुझे अपने इष्ट आराध्य देवताका साक्षात्कार कराओ ।'

रैक्वने सिर्फ हाथसे इशारा करते हुए उत्तर दिया—'हट, जा, जा । ले जा अपनी गौयें और खजाने । तुम्हें ही वे सुहाते हैं ।'

राजा अपना सा मुंह लेकर लौट आया । अब इस बार उसने रिश्वतकी मात्रा बढ़ाकर एक सहस्त्र गौयें, मुहरें, और अपनी कन्याको भी लेता गया । फिर जा गिड़गिड़ाने लगा—

रैक्वने राजकन्याका मुंह ठोडी छूकर ऊपर उठा हुआ—हट रे नीच ! तू इसी मुखके भरोसे मुझसे यह कहलायेगा कि सब चीजोंका मूल है हवा । हवासे ही ऊपर जाती है, आग आखिर हवामें ही मिलती है । सूर्य-च पानीमें सब आखिर वायुमें ही विलीन होते हैं, यही मुझसे कहलवाना चाहता है न, मूर्ख ! शरीरमें प्राण क्या है वायु । सो जानेपर वाणी इसी प्राणरूप वा सिमिट जाती है वैसी ही और-और इन्द्रिय-संवेदन भी । यही मुझसे कहलवायेगा ।'

यों कहने-कहनेमें रैक्वने अपनी प्राणवायुकी फि सफी राजाको सुना ही दी ।

रैक्वको बसना पसन्द न था । न गांव, न जम न घर, न गौओं, न इतने बड़े बड़े खच्चरोंके रथ और द्रव्य । उसे अपनी गाड़ी पसन्द थी और उसके नीचे बैठ दाद खुजलाना । उसकी आवश्यकताएं बहुत ही थोड़ी और वह जगत्के मूलतत्वको इसी तरहसे जान पाया ।+

+ राहुलजीके 'दर्शन दिग्दर्शन'से कथाका संविधान लिया



हिन्दी कविता में पत्नी

डा० कमलकुलश्रेष्ठ एम० ए० डि० फिल०

हिन्दी कवितामें पत्नीके व्यक्तित्वके दो पहलू चित्रित किये गये हैं—१. वैयक्तिक, २. सामाजिक।

वैयक्तिक रूपमें वह पतिकी कामिनी है और सामाजिक रूपमें जीवन संगिनी। इन दो पहलुओंमें कामिनी-वाला रूप तो हिन्दी साहित्य क्या संसारके सभी साहित्यमें खूब दिखाया गया है परन्तु दूसरा रूप कवितामें कम आया है।

कबीरने नारीकी निन्दा की है। परन्तु कहा जाता है कि वे स्वयं विवाहित थे। उसकी पत्नीका नाम लोई था और पुत्र और पुत्रीका कमाल और कमाली। वे स्वयं कहते हैं—

नारी तो हम भी करी पाया नहीं विचार।
जब जाती तब परिहरी नारी बड़ा विकार॥

वे स्त्रीके प्रणयमें विश्वास नहीं करते थे। संसारकी अन्य क्षणभंगुर वस्तुओंके साथ वे नारीके प्रणयको भी नश्वर मानते थे। इतना ही नहीं अन्य सम्बन्धोंमें वे प्रणयको ही सबसे कमजोर समझते थे—

फूला फूला फिरै जगतमें कैसा नाता रे!
माता कहै यह पुत्र हमारा, बहिन कहै बिर मेरा।
भाई कहै यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा॥

और मृत्युके समय :—

पेट पकरि कै माता रोवै बांह पकरि कै भाई।
लपटि झपटि कै तिरिया रोवै हंस अकेला जायी॥

परन्तु मृत्युके पश्चात् तो कहानी ही दूसरी हो जाती है—

जब लगि जीवै माता रोवै बहिन रोवै दस मासा।
तेरह दिनतक तिरिया रोवै फेर करै घर बासा॥

वे प्रणयकी इस क्षणभंगुरताको समझते हुए नारीको पतिव्रता रहनेका उपदेश देते थे।

पतिबरता मैली भली काली कुचिल कुरूप।
पतिबरता के रूप पर वारौं कोटि सरूप॥

और व्यभिचारीकी निन्दा भी खले स्वरसे करते थे—

कहै कबीर पतिव्रत बिन क्यों रीझै करतार॥

भक्तिके क्षेत्रमें भी कबीर 'उपपति या परकीया रसको स्वीकार न करके स्वकीयात्वको ही मानते थे। वे अपने 'राम' से अपना विवाह स्वीकार करते थे—

दुलहिनी गावहु मंगलचार।
हम घरि आये हो राजा राम भतार॥
तन रत करि मैं मन रत करिहूं पंच तत्त बराती।
रामदेव मोरे पांहुनै आये मैं जौबन मदमाती॥
सरीर सरोवर वेदि करिहौं ब्रह्मा वेद उचार।
रामदेव संग भांवरि लैहौं धनि धनि भाग हमार॥
सुर तेतीसूं कौतिग आये मुनिवर सहस अठासी।
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं पुरिष एक अविनासी॥

इस प्रकार कबीरने नारीके प्रणयको भक्तिमें भी ममत्व देते हुए कहींपर भी मनुष्यको अपनी पत्नीसे प्रेम करनेका उपदेश नहीं दिया। वे पुरुषका ध्यान बराबर संसारकी नश्वरताका चित्र खींचकर आध्यात्मिकताकी ओर लाना चाहते थे। परन्तु फिर भी 'परनारी' से बचनेका बराबर उपदेश दिया करते थे :—

पर नारी पैनी छुरी मति कोई लावौ अंग।
रावन के दस सिर गये पर नारीके संग॥

हिन्दी प्रेमोपाख्यान काव्यकार विवाहकी मर्यादामें पूर्ण विश्वास रखते थे। जायसीकी पद्मावती, उसमानकी चित्रावली, नूरमुहम्मदकी गंगावती, सूरदासकी दमावती सभी आरंभमें भले ही अविवाहित रही हों परन्तु कालांतरमें विवाहित हो गयी थीं। वे मनका सम्बन्ध तो विवाहके पहले अवश्य स्थापित कर लेती थीं परन्तु तनका सम्बन्ध विवाहके पश्चात् ही स्थापित करती थीं। मंधनकी मधुमालती मनोहरसे कितने स्पष्ट शब्दोंमें कहती है—

एक निमिख छख कारन
(आपहु) सरबस कौन नसाउ।
तिरिया थोरेहि अंकरन

हंस जवाहिरमें जवाहिरका विवाह एक दूसरे पुरुषके साथ हुआ जा रहा था। परन्तु कविने अपनी चातुरीसे विवाहकी मर्यादाकी रक्षा परियों द्वारा विवाहकी वेदी परसे उस मनुष्यको गायब करवाकर हंसको बैठाकर कर ली।

पति-पत्नी प्रेमके विषयमें जायसी रत्नसेनके मुखसे अपने विचार बहुत ही स्पष्ट कहवाते हैं—

एक बार जो पिय मन बूझा,
सो दुसरे सों काहेक जूझा।
अस गियान मन आव न कोई,
कबहूं रात कबहुं दिन होई।
धूप छांह दोउ पिय के रंगा,
दूनो मिली रहहिं एक संगा।

पत्नीके सामाजिक पहलू या जीवनसंगिनी पक्षपर जायसीने जोर नहीं दिया है। वैसे विवाहकी मर्यादामें कविका इतना गहरा विश्वास है कि वह मृत्युके पश्चात् भी इस सम्बन्धकी सत्ताको मानता । पद्मावती एवं नागमती रत्नसेनकी चितापर अपने सुन्दर, सुकोमल एवं सुपोषित शरीरको भस्म करती हुई कहती हैं —

जियत कंत तुम्ह हम्ह गर लाई।
मुए कंठ नहिं छांड़ब साईं॥
औ जो गांठि कंत तुम्ह जोरी।
आदि अंत लहि जाइ न छोरी॥
यह जग काह जो अहहि न आथी।
हम तुम नाह! दुहूँ जग साथी॥

और प्रेममार्गी कविजी अपने ललित कण्ठसे चिताकी गरम लपटोंके समान जलाने किंतु ज्वलनमें भी एकशीलता देनेवाले स्वरमें कहता है—

रातीं पिउके नेह गयी सरग भयेउ रतनार।
जोरे उवासो अथवा रहा न कोई संसार॥

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यमें पति एवं पत्नी दोनों समानरूपसे ही एक दूसरेको प्यार करते हैं। यदि पद्मावती समुद्रमें बिछुड़कर कहती हैं :

को मोहि देइ आगि रचि होरी।
जियत न बिछुरै सारस जोरी॥

तो रत्नसेन भी कहता है—

झूरत तपत बहुत दुख भरऊं।
कल यौं माथ बेगि निस्तरऊं॥

यदि रत्नसेनकी पहली पत्नी नागमती कहती है—

ओहिके गुन सवरत मइ माला।
अबहुं न बहुरा उड़िभा छाला॥

तो रत्नसेन भी पंछीसे कहता है—

पंखिआंख तेहि मारग लागी सदा रहाहिं।
कोई न संदेसी आवहिं तेहि क संदेश कहाहिं॥

और चित्तौड़ लौटनेपर नागमतीसे कहता है—

नागमती तू पहिल बिआही।
कठिन बिछोह परै जनु दाही॥

इस प्रकार हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यमें पति पत्नी प्रेम मानवता एवं नीतिके एक ऐसे धरातलपर रखा गया है जो मध्ययुगके समाजमें, जिसमें पत्नी उपभोग मात्रकी वस्तु थी, किसी प्रकार अन्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता। साथ ही साथ बाणने पत्नीका वह रूप भी हमारे सामने पद्मावतीमें रखा है जो कि उस समय प्रचलित था वह अपनी पत्नीसे कहता है—

तिरिया भूमि खड्गकी चेरी।

परन्तु हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यमें पत्नीका जो आदर्श रूप माना गया है वह यह नहीं है। वह वही है जो रत्नसेन एवं पद्मावतीमें दिखाया गया है।

सूरदास कृष्णभक्त कवि हैं। उन्होंने कृष्ण एवं राधामें प्रेम दिखाया है। परन्तु वे विवाहकी मर्यादामें विश्वास रखते हैं। रासलीलाके अन्तर्गत कविने राधा-कृष्णके विवाहका भी वर्णन किया है। राधा-कृष्णका विवाह कुंज-मंडपमें होता है। विवाहकी ग्रंथि प्रीतिकी ग्रंथि ही है। मोर-मुकुटको रचरचकर मौर बनाया जाता है। गोपी जब मुरलीध्वनि द्वारा नेवतेमें बुलायी जाती हैं. राधा सूर-सागरमें स्वकीयाकी भांति भी आचरण करती है। उसके मनमें वही आत्मविश्वास है जो कि स्वकीयामें होता है।

परन्तु कहना न होगा कि सूरको विवाहसे कोई विशेष लगाव न था। राधा एवं अन्य गोपियां उनके साथमें सर्वत्र कामिनी बनकर आई हैं, पत्नी नहीं। दास आदि भी इस गार्हस्थ्य जीवनको नहीं मानते। मीरा अपनेको कृष्णकी पत्नी नहीं मानती। वह बावली करे भी तो क्या? उसकी प्रीति तो बचपनकी है—

म्हारी प्रीति पुरबली माई।

विद्यापतिकी राधा कृष्णकी विवाहिता पत्नी नहीं हैं परन्तु शिव-पार्वतीके बीच गार्हस्थ्य जीवनके जो चित्र

विद्यापतिने दिये हैं वे हिन्दी साहित्यमें अनुपम हैं। पार्वती शिवको खोज रही हैं—

मोर बौरा देखल कै ओ जात
बसहा चढ़ल विष भांग ख त ?
आंखि निड़ड़ मुह वुयइ लार,
पथके चलत वौरा विशंभार।

एक दूसरी घटनाका वर्णन कवि करता है—

टूटले-फूटले मड़इया अधिक सुहावन हे,
ताहि तर वैसल गौरी मनहिं मन झांखति हे।
मांगि-मांगि लयलाह महादेव तामा दुइधान हे,
बघछाल देलन्ह सुखाय वसहा फूजि खायल हे॥

इस प्रकारके मीठे चित्र हिन्दी साहित्यमें अन्यत्र दुर्लभ हैं। शिव पार्वतीका जीवन हिन्दीके अन्य कवियोंने चित्रित ही नहीं किया।

तुलसीदास जीने अवश्य शिव पार्वतीका विवाह दिखलाया है। परन्तु विवाह दिखलाकर ही वे रह गये। शिवको एक उपदेशकके रूपमें तुलसीदासने पार्वतीके साथ चित्रित किया है।

तुलसीने पत्नीका आदर्श अपने अन्य पात्रोंमें दिखलाया है। सीता उसकी विवेचना करती हुई कहती है—

मातु-पिता भगिनी प्रिय भाई।
प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
सास-ससुर गुरु सुजन सुहाई।
सुत सुन्दर सुशील सुखदाई॥
जहं लगि नाथ नेह अरु नाते।
पिय बिनु तियहिं तरनि ते ताते॥

वे इसे और अधिक स्पष्ट कर देती हैं—

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी।
तैसेअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥

रामचन्द्र जी सीता को समझाते हैं—

भूमि सयन बलकल बसन, असन कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं समय समय अनुकूल॥

परन्तु सीता अपना कर्त्तव्य खूब जानती हैं—

बन देवी बन देव उदारा।
करिहहिं सासु-ससुर सम सारा॥
कुस किसलय साथरी सुहाई।
प्रभु-संग मंजु मनोज तुराई॥
कंद मूल फल अमिय अहारू।
अवध सौध सत सरिस पहारू॥

छिनु-छिनु प्रभुपद कमल विलोकी,
रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी॥

ये हिन्दू नारीके लिये एक आदर्श पत्नी हैं। बनमें भी वे रामकी छायाकी ही भांति रामके साथ हैं। पत्नीका पतिकी सलाहकारका रूप रावण और मंदोदरीमें दिखलाई पड़ता है। रावणके सीता हरणपर मंदोदरी समझाती है—

नाथ बर कीजे ताही सों।
बुद्धि बल सकिअ जीत जाही सों॥
रामहिं सौंपहुं जानकी, नाइ कमल-पद माथ।
सुत कहुं राज समर्पि बन, जाइ भजिऊ रघुनाथ॥

तुलसीदास जो प्रणयका अर्थ विवाह समझते थे। इसी कारण राक्षसी शूर्पणखा भी उच्छृंखलता न चाहकर राम-लक्ष्मणसे विवाह ही चाहती है वह रामसे कहती है—

तुमसम पुरुष न मो सम नारी।
यह संयोग विधि रचा बिचारी॥
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं।
देखिउ खोजि लोक तिहुं नाहीं॥
तातें अब लगि रहेउं कुमारी।
मनु माना कछु तुम्हहिं निहारी॥

सीता और रामका मिलन पुष्पवाटिका में भले ही हो गया हो परन्तु तुलसी विवाहही करवाकर प्रणयका विकास दिखलाते हैं।

विवाह और पत्नीका यह ऊंचा और भव्य आदर्श रीतिकालमें अपने सिंहासन पर स्थित न रह सका। राजदरबारोंका सामंती वातावरण हिंदू कालके पराभवके समय राजपूतयुगके रूपमें हुआ था। उस समयतक विवाहकी मर्यादा एवं उच्चतामें सामंतोंका विश्वास था। परंतु मुसलमानोंके आनेके बाद जब मुसलमानोंसे हिंदुओंके विवाह होने लगे तो परिस्थितिने एक करवट बदली। विवाहके पीछे छिपी कामवासना अपने खुले रूपमें हमारे सामने आ गयी। नारी का एकमात्र उपयोग भोग-विलास रह गया। विवाहकी सामाजिकता नष्ट हो गयी। और नायिका-भेदके ग्रंथ लिखे जाने लगे। नायिकाभेदमें स्वकीया नायिकाको भी स्थान मिला। पद्माकर कहते हैं—

सोभित स्वकीया गुन गन-गनती में तहां,
तेरे नाम ही की एक रेखा रेखियतु है।
कहै पदमाकर पगीमों पति प्रेम ही में,
पदुमिनी तोसी तिया तुही पेखियतु है।

छवसव्र जैसो तैसो सील सौरभ है,
याही तें तिहारो तनु धन्य लेखियतु है।
सोने में सुगंध न सुगंध में सुन्यो री सोनो,
सोनो और सुगंध तो में दोनों देखियतु है!

और

खान पान पीछू करत, सोवत पिछले छोर।
प्रान पियारे तें प्रथम, जगति भावती भोर॥

मतिरामने कहा—

नैंक मंद मधुर कपोल मुसक्यान लागे
नैंक मंद गमन गयंदन की चाल भौ।
रंचक न ऊंचो लगो अंचल उरोजन के
अंकुरनि थंक दीठि नेक सो बिसाल भौ।
मतिराम सुकवि रसीले कछु हैन भये
बदन सिंगार रस बेलि आलबाल भौ।
बाल तनु जोबन रसाल उलहत सब
सौतिन कैं साल भौ निहाल नंदलाल भौ।

और

अभिनव जौवन जोति सौं, जगमग होत बिलास।
तिय के तनु पानिय बढ़ै, पिय के नैननि प्यास॥

देव भी मौन नहीं हैं—

कविदेव हरे बिछिया नु बजाइ
लजाइ रहे पग डोलनि पै।
गुरु दीठि बचाइ लचाइ कै लोचन
सोचति सो मुख खोलनि पै।
हंसि हौंसभरे अनुकूल बिलोकनि
लाल के लोंल कपोलनि पै।
बलि हौं बलिहारी हो बार हजारन
बाल की कोमल बोलनि पै।

परंतु इन कवियोंको विवाहमें कोई विशेष विश्वास न था। इनके लिए स्वकीया जैसी थी वैसी ही परकीया और वैसी ही गणिका! स्वकीयाके भी ये कवि मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा तीन भेद करते थे। इन तीन भेदोंमें ये फिर उपभेद करते थे। परंतु किसी वातावरणके दर्शन उसमें दुर्लभ हैं।

सामंती दरबारोंके टूटनेपर आधुनिक काल आया। शासक ईसाई थे। वे विवाहमें विश्वास करते थे। कुछ सामाजिक चेतना हममें भी आई और पत्नीके दोनों व्यक्तित्वोंको निखारा गया।

श्री मैथिलीशरण गुप्तके साकेतमें निम्न पत्नी-पात्र प्रमुख हैं।

१. उर्मिला
२. सीता
३. माण्डवी
४. कैकेयी

उर्मिला लक्ष्मणके बीच कविने एक सुखी परिवारकी झांकी दिखलायी है। पति-पत्नीका हास परिहास, विदग्ध वार्तालाप, संयत बिलास, असीम हर्षातिरेक—सभी चित्र कविने हमें दिखलाए हैं।

लक्ष्मण उर्मिलासे कहते हैं—

नाकका मोती अधरकी कांतिसे,
बीज दड़िमका समझकर भ्रांतिसे,
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है छत्र शुक यह कौन है?

वे उर्मिलाकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

धन्य जो इस योग्यताके पास हूं,
किंतु मैं भी तो तुम्हारा दास हूं!

हिंदू पत्नी उर्मिला इस प्रकारकी बातें नहीं सुन सकती। परंतु वाक्-चतुरा इस बातको स्पष्ट रूपसे कह भी तो नहीं सकती है। इसी कारण परिहासमय स्वरमें कहती है—

दास बननेका बहाना किसलिये?
क्या मुझे दासी कहाना इसलिये?

उर्मिला पत्नीका आदर्श बतलाती है—

खोजती हैं किंतु आश्रम मात्र हम,
चाहती हैं एक तुम-सा पात्र हम।
आंतरिक सुख दुख हम जिसमें धरें,
और निज भव-भार यों हलका करें।

और इस कथोपकथनको मैथलीशरण गुप्त इस प्रकार समाप्त करते हैं—

प्रेमियों का प्रेम गीतातीत है,
हारमें जिसमें परस्पर जीत है।

इसी उर्मिलामें कविने पत्नीकी मर्यादा भी दिखलायी है। बनगमनके समय वह अपने हृदयसे कहती है—

हे मन प्रिय पथ का विघ्न न बन।

और सीताको साथ जाते देखकर भी वह मुंह नहीं खोलती। केवल

उधर उर्मिला मुधा निरी,
कहकर 'हाय' धड़ाम गिरी।

और लक्ष्मणके बन चले जानेपर विरहमें इतनी कृश हो जाती है कि लक्ष्मणको भी चित्रकूटमें उसे देखकर आश्चर्य होता है—

यह काया है या शेष उसी की छाया,
क्षण भर उनकी कुछ नहीं समझ में आया।

परंतु फिरभी पत्नी उर्मिला कितने शांत स्वरमें कहती है--

'मेरे उपबन के हरिण आज बनवारी,
मैं बांध न लूंगी तुम्हें तजो भय भारी।'

और

हाय नाथ कहना था क्या क्या
कह न सकी कर्मों :का दोष,
पर जिसमें संतोष तुम्हें हो
मुझे उसीमें है संतोष

परंतु वह लक्ष्मणको अपने कारण हीन नहीं बनने देना चाहती। स्वप्नमें परिवारकी मर्यादा भंग करके लौटते देख वह लक्ष्मणसे कहती है—

प्रिय, फिरो, फिरो, हा फिरो, फिरो,
न इस मोह की धूम से घिरो।
विकल मैं यहां, किन्तु गर्विणी,
न कर दो मुझे नष्ट पर्विणी।
घर फिरें तुम्हीं मोह से कहीं,
तब हुए तपोभ्रष्ट क्या नहीं?
च्युत हुए अहो नाथ जो यथा,
धिक्! वृथा हुई उर्मिला व्यथा।

कर्त्तव्यकी इस कठिन भूमिपर खड़ी हुई उर्मिला।

अवधि शिलाका उरपर था गुरुभार।
तिल-तिल काट रही थी दृग जल धार॥

सीता बराबर रामके साथ हैं। बनमें राम कहते हैं—

जल निष्फल था यदि तृषा न हममें होती,
है वही उगाता अन्न चुगाता मोती,
निज हेतु बरसता नहीं व्योमसे पानी,
हम हों समष्टिके लिये व्यष्टि बलिदानी।

तो सीता भी उनके स्वरमें स्वर मिलाकर कहती हैं—

तुम इसी भावसे भरे यहां आये, हो
यह घनश्याम तन हरेभरे छाये हो,
तो बरसो सरसे, रहे न भूमि जली-सी
मैं पाप-पुंजपर टूट पड़ूं बिजली-सी।

माण्डवी भरतके साथ है। वह उनकी सहचरीके समान ही रहना चाहती है। भरत राम गमनसे व्याकुल होकर कहते हैं—

एक न मैं होता तो भव की
क्या अनित्यता घट जाती,
छाती अगर नहीं फटती तो
धरती ही यह फट जाती।

तो माण्डवी भी कहती है—

हाय, नाथ, धरती फट जाती
हम तुम वहीं समा जाते,
तो हम दोनों विजन वासमें
रहकर कितना सुख पाते।

कैकेयीमें गुप्त जी ने पत्नी हठको दिखलाकर पत्नीके एक दूसरे पहलूको हमारे सामने रखा है।

मैथिलीशरण गुप्तकी यशोधरा पत्नीके एक और पहलूको हमारे सामने रखती है। गौतमके चले जानेका उसे दुःख नहीं है। उसे तो उनके चुपके-चुपके जानेका दुःख है—

सिद्धि हेतु स्वामी गये यह गौरवकी बात।
पर चुपके-चुपके गये यही बड़ा व्याघात॥

वह अपनी सखीसे भी कहती है—

सखि वे मुझसे कहकर जाते।
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?

वह इसकी विवेचना भी करती है—

स्वयं सुसज्जित करके रणमें,
प्रियतम को प्राणोंके पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में,
छात्र धर्म के नाते।
सखि वे मुझसे कहकरजाते॥

जाओ नाथ, अमृत लाओ तुम मुझमें मेरा पानी,
चेरी ही मैं रहूं तुम्हारी, मुक्ति तुम्हारी रानी,
प्रिय तुम तपो सहूं मैं भरसक देखूं बस हे दानी,
कहां तुम्हारी गुणगाथा में मेरी करुण कहानी।
तुम्हें अप्सरा व्याधि न व्याधे यशोधरा करधारी
आर्य पुत्र दे चुके परीक्षा अब है मेरी बारी।

और विरहकी एक धूम्र शिखाके समान यशोधरा अपने विरहके दिन काटती है। परन्तु उस धूम्र शिखासे प्रकाशका निर्झर-सा बह रहा है। यशोधरा कामिनी नहीं बरन् पतिकी जीवन संगिनी है। गौतमके लौटनेपर वह क्या कहेगी?

क्या देकर मैं तुमको लूंगी ?
देते हो तुम मुक्ति जगत को
प्रभो, तुम्हें मैं बंधन दूंगी !

गौतम उत्तर देते हैं—

दीन न हो गोपे, सुनो हीन नहीं नारी कभी
भूत-दया-मूर्ति वह मन से शरीर से।

और वह यह कहकर अपनेको समर्पण कर देती है—

मेरे दुःखर्म भरा विश्व सुख
क्यों न भरूं फिर मैं हामी।
बुद्धं शरणं धर्मं शरणं संघं शरणं गच्छामि॥

उर्मिलामें कर्त्तव्य भावनाके बीज मात्र थे। यशोधरामें उस बीजसे वृक्ष निकल आया है और उसकी शीतल छायामें विरहमें झुलसी हुई यशोधरा नहीं, संसारके समस्त परोपकारी पुरुषोंकी पत्नियां तपन मिटा सकती हैं। पत्नीत्व का इतना विखरा हुआ उन्नत रूप हिन्दी काव्यमें अन्यत्र दुर्लभ है।

पत्नीके इस आदर्श स्वरूपको गुप्तजी इन काव्योंमें नहीं रख सके। नहुषमें तो क्षत्री कर्तव्याकर्तव्यको भूलकर नहुष को अपना शरीरविलास करनेके लिये दे देनेको तैयार हो जाती है।

पत्नी पदको कलंकित कर रही है।

हरिऔध अपने रसकलशमें सैद्धान्तिक रूपमें नायिका भेद करते हुए लिखा है कि विनयशीला, सरलस्वभावा, गृहकर्मपरायणा और पतिरता स्त्रीको स्वकीया कहते हैं। वे उसका उदाहरण देते हैं—

पावन पुनीत गूढ़ गुन मन भावनके
वाचन सहित एरी रसना उचारि लै।
दान सनमान मैं तिलोक मैं न ऐसो आन
मेरी ऽही मान यहै मन निरधारि लै।
सकल अलौकिकता एक हरिऔध ही मैं
तू हू उर बार बार विलखि विचारि लै।
प्यारे प्यारे मुख पै संवारे कोर केसनकौ
ऐरे मेरे नेह बारे नैनन निहारि लै॥

और

कामिनीके कंत बैन सुने नहीं कानन हूं करी कोटि कला है।
प्रीतम प्रीति प्रतीतिमें बाल स्नेहवती सिय लौं सबला है।
ही हरिऔंधमयी अंखियान विराजत एक ही नंद लला है।
भाग भरी त्यों सुहाग भरी अनुराग भरी नवला अबला है।

इन उदाहरणोंमें गृहकर्म परायणताके दर्शन तो दुर्लभ है।

कुछ आधुनिक हिन्दी कवियोंने अपनी भावी पत्नियोंके भी चित्र कल्पना द्वारा खींचे हैं। सुमित्रानन्दन पंत लिखते हैं:—

प्रिय प्राणों की प्राण !
न जाने किस गृहमें अनजान,
छिपी हो तुम स्वर्गीय विधान !
नवल कलिकाओंकी सी बाण,
बाल रवि-सी अनुपम असमान,
न जाने, कौन, कहां अनजान,
प्रिये प्राणोंकी प्राण।

कवि पत्नीके कामिनी रूपका चित्र खींचते हैं।

आधुनिक प्रगतिवादी काव्य पत्नीको लेकर विशेष नहीं लिखा गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पत्नीको व्यक्तित्वका सामाजिक पहलू समुचित रीतिसे हिन्दी साहित्यमें नहीं आ सका है। इसके कई कारण थे। भारतवर्ष वर्णव्यवस्था को मानता है। वर्ण व्यवस्था प्रत्येक व्यक्तिके कार्योंकी सीमा निर्धारित कर देती है। जो सीमा उसने बनायी है वह पुरुषोंके लिये ही है। इस वर्णव्यवस्थामें स्त्रियोंके हिस्सेमें कोई भी कार्य नहीं रखा गया। स्त्रियां पर्देके ऊपर रखी जाती थीं। फलतः उनमें सामाजिकताकी अपेक्षाकृत कमी रह गयी है। वे शिक्षित भी नहीं होती हैं। इस कारण घर गृहस्थीको छोड़कर दुनियाको देख परख भी नहीं सकती हैं। भारतीय परिवार प्रणाली भी पत्नीकी कार्य परिधि सीमित कर देती हैं। पत्नी एक छोटेसे दायरेमें ही बन्द रहती है। भारतीय विचारधारा जो पत्नीको इतनी अधिक मर्यादामें बांध देती है कि वह घरके अन्दर पतिसे सबके सामने बोल भी नहीं सकती पत्नीके व्यक्तित्वके विकासमें बड़ी बाधक है।

इन कारणोंसे हिन्दी काव्यमें पत्नीका व्यक्तित्व एक बड़े ही सीमित रूपमें आ सका है। जो सामाजिक चेतना अब हममें हो रही है वह अत्याधुनिक है, और कवितामें प्रवेश नहीं पा सकी है।



चय

संदेश लेखक 'इप्सोफोन'

वर्षोंके परिश्रमके बाद स्विजरलैण्डके इंजीनियरोंको ऐसे टेलीफोनोंका आविष्कार करनेमें सफलता मिली है जो सन्देश लेनेवालेकी अनुपस्थितिमें स्वतः सन्देश लिख देते हैं। ऐसे टेलीफोन भविष्यमें चालू होंगे और 'इप्सोफोन'के नामसे विख्यात होंगे। लन्दनके 'स्कोप' नामक पत्रने इस आविष्कारपर हालमें प्रकाश डाला है।

'इप्सोफोन' की विशेषता क्या है ? मान लीजिये आप अपने घरपर नहीं हैं। किसीने आपको टेलीफोन किया और आपके न रहनेपर अपनी जरूरी बात कहनेसे वह वंचित रह गया। वर्तमान टेलीफोन आपकी अनुपस्थितमें आपके किसी आदमीने उठाया, लेकिन यह केवल उसका नाम या नम्बर ही नोट करके आपके वापस आनेपर ही बता देगा, लेकिन मान लीजिये आपका कमरा बन्द है। किसीने फोन किया। घंटी बजी, दो चार घण्टी बजकर बन्द रह गयी और जब आप लौटे तो आप अनुमान भी नहीं कर सकते कि आपकी अनुपस्थितिमें किसीने आपको फोन किया था। इप्सोफोन आपकी इस असुविधाका अन्त कर देगा। किसीके फोन करनेपर घण्टी बजते ही टेलीफोन करनेवालेको उत्तर मिलेगा, "जी, यह अमुकका मकान है, अमुक साहबका नम्बर है, आप बोलिये, आपका सन्देश लिख लिया जा रहा है।" और तब सन्देश लिख लिया जायगा। इप्सोफोन आपकी अनुपस्थितिमें पूरा सन्देश लिख देगा। एक सिरेपर एक आदमी बात कर रहा है और दूसरे सिरेपर उसकी बात स्वतः रेकर्ड होती जा रही है—बोलते बोलते इप्सोफोनमें लगा हुआ यन्त्र उसे लिखता जा रहा है। अब आप घर लौटे तो, केवल यही नहीं कि किसने आपकी अनुपस्थितिमें आपको फोन किया था। बल्कि आप फोन करनेवालेकी सारी बातोंसे भी अवगत हो जायेंगे !

इप्सोफोनकी एक बुराई भी आप करेंगे कि इस प्रकार सन्देश लिखनेपर तो किसीको भी उसका पता लग जायगा। मान लीजिये आपको किसीने कोई भेदकी बात

...ीके लिये देशको ब्रिटिश सरकारकी घोष-
...ंके आधारपर नहीं, अपने त्याग, बलिदान और
...मपर निर्भर होना पड़ा है। इसीलिये १९२७ में
...ने एक स्वरसे साइमन कमीशनका बहिष्कार किया।
कमेटीने स्वयं एक विधान निर्माण किया और
...र कांग्रेसमें पंडित जवाहरलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें
...वाधीनताका ध्येय घोषित किया। इसके बाद १९३०
...लमेज परिषदोंका क्रम चलता है और उसका सबसे
...क परिणाम तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रायजे
...ोनाल्डके साम्प्रदायिक निर्णयके रूपमें प्रकट हुआ।
...के परिणाम स्वरूप १९३५ का शासन विधान भी
और प्रान्तोंकी शासन व्यवस्था इसी विधानके
...पार आज भी चल रही है।

ब्रिटिश सरकार अपनी घोषणाओंको कार्यान्वित
...नेकी प्रवृत्ति नहीं दिखाती, यह तो एक तथ्य है ही,
...का कारण क्या है, और इसकी मान्यता स्वयं उसके
...ये कितनी है, इसका स्पष्टीकरण कितनी ही बार सर-
...री क्षेत्रों द्वारा किया गया है। स्वयं मि० रायजे मैक-
...ाल्डने अपने प्रधानमन्त्रित्व कालमें पार्लमेंटकी कामन
...में कहा था कि ऐसी घोषणाओंको कार्यान्वित करनेके
...। ब्रिटिश सरकार बाध्य नहीं है। उन्हें कार्यान्वित
...ना या न करना उसी सरकारकी इच्छापर है। ऐसी
...णाओंका मूल्य प्रतिज्ञाके रूपमें नहीं है। क्योंकि ऐसी
...णाएं केवल ब्रिटिश सरकारकी इच्छाओंको व्यक्त
...रती हैं अतः अपनी इच्छाओंके लिये उसकी कोई बाध्यता
...ीं है। और भी कितने ही अंग्रेजोंने ऐसा मत प्रकट
...या है। इसलिये ब्रिटिश सरकारके गत १६ मईके प्रस्ताव
...प्रति भारतीय जनताको आशंका होती है, तो ब्रिटिश
...कारके पिछले इतिहासको देखते हुए सर्वथा स्वा-
...विक है।

साम्राज्ञी और नेहरू

पिछले दिनों जब पंडित जवाहरलाल नेहरू लन्दन
... तब राज प्रासाद बकिंघम पैलेसमें भोजके अवसरपर
...ाता है कि साम्राज्ञीने नेहरू जी की रचनाओंमें बड़ी
...पी जाहिर की। इसके पहले उन्होंने नेहरू जी की
...था पढ़ी थी और उनकी दिलचस्पी देखकर नेहरूजी
...े तीन पुस्तकें—मेरी कहानी, विश्व इतिहासकी

क्या देकर मैं तुमको लूंगी ?
देते हो तुम मुक्ति जगत को
प्रभो, तुम्हें मैं बंधन दूंगी !

गौतम उत्तर देते हैं—

दीन न हो गोपे, सुनो हीन नहीं नारी कभी
भूत-दया-मूर्ति वह मन से शरीर से।

और वह यह कहकर अपनेको समर्पण कर देती है—

मेरे दुःखमें भरा विश्व सुख
क्यों न भरूं फिर मैं हामी।

बुद्धं शरणं धर्मं शरणं संघं शरणं गच्छामि ॥

उर्मिलामें कर्त्तव्य भावनाके बीज मात्र थे। यशोधरामें उस बीजसे वृक्ष निकल आया है और उसकी शीतल छायामें विरहमें झुलसी हुई यशोधरा नहीं, संसारके समस्त परोपकारी पुरुषोंकी पत्नियां तपन मिटा सकती हैं। पत्नीत्व का इतना विशद हुआ उन्नत रूप हिन्दी काव्यमें अन्यत्र दुर्लभ है।

पत्नीके इस आदर्श स्वरूपको गुप्तजी इन काव्योंमें नहीं रख सके। नहुषमें तो क्षत्री कर्तव्याकर्तव्यको भूलकर नहुष को अपना शरीरविलास करनेके लिये दे देनेको तैयार हो जाती है।

पत्नी पदको कलंकित कर रही है।

हरिऔध अपने रसकलशमें सैद्धान्तिक रूपमें नायिका भेद करते हुए लिखा है कि विनयशीला, सरलस्वभावा, गृहकर्मपरायणा और पतिरता स्त्रीको स्वकीया कहते हैं। वे उसका उदाहरण देते हैं—

पावन पुनीत गूढ़ गुन मन भावनके
चावन सहित एरी रसना उचारि लै।
दान सनमान मैं तिलोक मैं न ऐसो आन
मेरी रही मान यहै मन निरधारि लै।
सकल अलौकिकता एक हरिऔध ही मैं
तू हू उर बार बार बिलखि बिचारि लै।
प्यारे प्यारे मुख पैं संवारे कोर केसनकौ
ऐरे मेरे नेह बारे नैनन निहारि लै ॥

और

कामिनीके कंत बैन सुने नहीं कानन हू करी कोटि कला है।
प्रीतम प्रीति प्रतीतिमैं बाल स्नेहवती सिय लौं सबला है।
ही हरिऔधमयी अंखियान विराजत एक ही नंद लला है।

प्रतिभा प्रदर्शित करनेवाले नवयुवकोंके भरे हुए हैं। इसलिये जो लोग यह कहते हैं कि अभी क्या, अभी उम्र ही कितनी है, फिर कर लेंगे। वे वास्तवमें भ्रमात्मक विचार फैलाते हैं। प्रतिभा अपनी विशेषता अल्पवयमें ही प्रदर्शित करने लगती है। इसलिये कहावत है कि 'होनहार बिरवानके, होत चीकने पात।'

भारतकी ३०० वर्षोंकी वैधानिक प्रगति

विधान परिषद् द्वारा स्वतंत्र भारतके नये विधानका निर्माण कार्य प्रारम्भ हो चला है। इसके बाद ब्रिटिश सरकारने १५ मार्चके वक्तव्य एवं १६ मई १९४६ की प्रस्तावित योजनाके अनुसार भारतको न केवल अपने नये विधानके निर्माणका अधिकार है, बल्कि भारतको स्वेच्छा पूर्वक ब्रिटिश कामन वेल्थ [राष्ट्र मण्डल] के अन्तर्गत अथवा उससे बहिर्गत होनेका भी अधिकार है। ब्रिटिश सरकारकी घोषणा यही है, किन्तु ब्रिटिश सरकार अपनी इस घोषणा को कहां तक कार्यान्वित करेगी, इसके सम्बन्धमें उसकी सद्भावनाके प्रति गत ६ दिसम्बर १९४६ के उसके वक्तव्य के आधारपर आशंकाकी जाने लगी है। इस स्थलपर ब्रिटिश सरकारकी पिछली कुछ घोषणाओंका उल्लेख किया जाता है इससे स्पष्ट होगा कि ब्रिटिश सरकार किस प्रकार एक लम्बे अरसेसे भारतको स्वायत्त शासन प्रदान करनेकी इच्छा प्रकट करती रही है किन्तु किस प्रकार उसकी यह इच्छा कोरी इच्छाही बनी रही है और उसे कार्यान्वित करनेकी नीयत सदा ही शंकापूर्ण रही है।

हैं भारतका शासन इस समय १९३५ के शासन विधानके अनुसार हो रहा है। वायसरायको शासन परिषदका गठन १९१९ के विधानके अनुसार हुआ है, यद्यपि ब्रिटिश सरकारकी घोषणाके अनुसार इसकी रूपरेखा राष्ट्रीय अन्तःकालीन सरकारके अनुसार है। वायसरायके विशेषाधिकार यद्यपि विधानतः वर्तमान हैं, किन्तु दैनिक शासन कार्यमें उनके उपयोग न करनेका आश्वासन सरकार द्वारा दिया जा चुका है। शासन परिषदने वस्तुतः मंत्रिमण्डलके रूपमें कार्य करना भी शुरू किया है।

१६०० ई० के एलिजाबेथ चार्टरसे भारतके आन्तरिक मामलोंमें ब्रिटिश हस्तक्षेपका श्री गणेश होता है। यह चार्टर तत्कालीन ईस्ट इण्डिया कम्पनीको दिया गया था। इसके अनुसार कम्पनीको विधान व्यवस्था, नियमोपनि-

१७६५ से १७८५ के भीतर कम्पनीने अपना राजनीतिक स्वरूप अपनाया। १७६५ में शाहआलमके समयमें बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी कायम हुई और १७७३ में ईस्ट इण्डिया कम्पनीके अधिकृत क्षेत्रोंकी व्यवस्थाके लिये रेगुलेटिंग ऐक्ट पार्लमेण्ट द्वारा पास किया गया। १७८५ में पिटके इण्डिया ऐक्ट द्वारा भारतमें ब्रिटिश सरकार तथा कम्पनीकी द्वैध शासन प्रणाली स्थापित हुई। इसके बाद १८८३ से १८९५ के अन्तर्गत धीरे धीरे ब्रिटिश सरकार कम्पनीके अधिकारोंको हस्तगत करती गयी लेकिन १८५७ के भारतीय स्वाधीनता युद्ध अथवा सिपाही विद्रोहके पश्चात १८५८ में ब्रिटिश सरकारने भारतके शासनका पूर्ण भार एवं उत्तरदायित्व ग्रहण किया। १५ सलाहकारोंके साथ भारतसचिवकी नियुक्ति हुई और कम्पनीके डाइरेक्टरोंके सभी अधिकार कुछ नये अधिकारोंके साथ भारत सचिवको सौंपे गये। बंगाल, मद्रास और बम्बईमें व्यवस्थापिका सभाओंकी स्थापना हुई, गवर्नर जेनरल और वायसरायकी शासन परिषद्‌में ९ साधारण एवं ६ से १२ तक मनोनीतसदस्योंकी व्यवस्था की गयी।

इसके बाद मार्ले-मिण्टो सुधारका युग १९०९ में प्रारम्भ होता है। इसके अनुसार भारतके राजनीतिक रूप एवं वैधानिक स्वरूपमें काफी परिवर्तन हुए और इसके अनुसार १९०९ के विधानके अन्तर्गत भारतीयों एवं भारतीय प्रतिनिधियोंको जो अधिकार मिले उनका उद्देश्य शनैः शनैः भारतमें स्वायत्त शासन प्रणाली किस रूपमें और किस अंशमें स्थापित हुई, इसका ज्ञान साधारण भारतीयों तकको है। सर तेजबहादुर सप्रूने अपनी भारतीय शासन विधान नामक पुस्तकमें स्पष्ट कहा है कि भारतके सम्बन्धमें जो नीति निर्धारित होती है, वह दिल्ली या शिमलामें नहीं, ह्वाइट हालमें! और यह सर तेजबहादुर सप्रूने अपने कानूनी सदस्यके नाते कई वर्षोंके अनुभवके आधारपर कहा था और यही वास्तविक स्थिति रही है।

२० अगस्त १९१७ को मि० माण्टेग्यूने एक घोषणा की थी जिसमें उन्होंने कहा था कि भारतमें ब्रिटिश शासन का एकमात्र यही उद्देश्य है कि ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत भारतमें "शनैः शनैः" पूर्ण स्वायत्त शासन प्रणाली स्थापित हो जाय। लेकिन ब्रिटिश सरकारका यह शनैः शनैः कभी चरितार्थ नहीं हुआ। अब भी शनैः शनैः चल रहा है और पूर्ण स्वा... शासन प्रणालीके लिये देशको ब्रिटिश सरकारकी घोषणाओंके आधारपर नहीं, अपने त्याग, बलिदान और पराक्रमपर निर्भर होना पड़ा है। इसीलिये १९२७ में भारतने एक स्वरसे साइमन कमीशनका बहिष्कार किया। नेहरू कमेटीने स्वयं एक विधान निर्माण किया और लाहौर कांग्रेसमें पंडित जवाहरलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें पूर्ण स्वाधीनताका ध्येय घोषित किया। इसके बाद १९३० से गोलमेज परिषदोंका क्रम चलता है और उसका सबसे घातक परिणाम तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रामजे मैकडोनाल्डके साम्प्रदायिक निर्णयके रूपमें प्रकट हुआ। इसीके परिणाम स्वरूप १९३५ का शासन विधान भी बना और प्रान्तोंकी शासन व्यवस्था इसी विधानके अनुसार आज भी चल रही है।

ब्रिटिश सरकार अपनी घोषणाओंको कार्यान्वित करनेकी प्रवृत्ति नहीं दिखाती, यह तो एक तथ्य है ही, इसका कारण क्या है, और इसकी मान्यता स्वयं उसके लिये कितनी है, इसका स्पष्टीकरण कितनी ही बार सरकारी क्षेत्रों द्वारा किया गया है। स्वयं मि० रामजे मैकडोनाल्डने अपने प्रधानमन्त्रित्व कालमें पार्लमेंटकी कामन सभामें कहा था कि ऐसी घोषणाओंको कार्यान्वित करनेके लिये ब्रिटिश सरकार बाध्य नहीं है। उन्हें कार्यान्वित करना या न करना उसी सरकारकी इच्छापर है। ऐसी घोषणाओंका मूल्य प्रतिज्ञाके रूपमें नहीं है। क्योंकि ऐसी घोषणाएं केवल ब्रिटिश सरकारकी इच्छाओंको व्यक्त करती हैं अतः अपनी इच्छाओंके लिये उसकी कोई बाध्यता नहीं है। और भी कितने ही अंग्रेजोंने ऐसा मत प्रकट किया है। इसलिये ब्रिटिश सरकारके गत १६ मईके प्रस्ताव के प्रति भारतीय जनताको आशंका होती है, तो ब्रिटिश सरकारके पिछले इतिहासको देखते हुए सर्वथा स्वाभाविक है।

साम्राज्ञी और नेहरू

पिछले दिनों जब पंडित जवाहरलाल नेहरू लन्दन गये थे, तब राज प्रासाद बकिंघम पैलेसमें भोजके अवसरपर कहा जाता है कि साम्राज्ञीने नेहरू जी की रचनाओंमें बड़ी दिलचस्पी जाहिर की। इसके पहले उन्होंने नेहरू जी की आत्मकथा पढ़ी थी और उनकी दिलचस्पी देखकर नेहरूजी ने अपनी तीन पुस्तकें—मेरी कहानी, विश्व इतिहासकी



राजकुमारी एलिजबेथ मारगरेट 'साम्राज्ञी' नेहरू।

झलक और भारतकी खोज भेंट की। साम्राज्ञीके इस प्रश्न पर कि 'क्या भारत ब्रिटिश कामनवेल्थसे अलग हो जायगा ?' नेहरू जी ने उत्तर दिया कि, हम लोग स्वाधीन होने जा रहे हैं।"

कुष्ठका प्रचार और उपचार

कुष्ट रोग असाध्य माना जाता है किन्तु वास्तवमें वह असाध्य नहीं केवल दुसाध्य है। यदि आरम्भ ही से उसके उपचार की समुचित व्यवस्था की जाय तो इस रोग को समूल नष्ट किया जा सकता है। यह रोग सांघातिक होनेके साथ ही संक्रामक है जो इसके चंगुलमें एक बार आ जाता है उसका जीवन तो निकम्मा बन ही जाता है साथ ही उस परिवारको या रोगीके संपर्कमें रहनेवालोंकी पुश्त दरपुश्त तक इस भीषण रोगके चंगुलमें फंसा रहना पड़ता है। परीक्षा द्वारा पता लगाया गया है कि संसारके कुष्ट रोगियोंमें अधिकांश ऐसे हैं जिन्हें रोगीके सम्पर्कमें आनेसे ही इस रोगका शिकार होना पड़ा है।

इसकी वृद्धिको रोकनेके लिये कुष्ट रोगीको समाज या परिवारसे पृथककर एकान्तमें रखना कई देशोंमें बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। इस तरह रोगीको पृथक रखनेसे उसे कारावासका सा जीवन बिताना पड़ता है। १८५६ में नारवेके कुष्ट रोगियोंको एक कानून द्वारा अलग रखनेकी व्यवस्था :की गयी और ७० वर्षोंके अन्दर ही वहांकुष्ट रोगियोंकी संख्या बहुत कम हो गयी किन्तु दक्षिण अफ्रीका जैसे निर्धन और अवनत देशो पृथक्करण की इस प्रणाली से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। केपकोलोनी रोबिन आइलैण्ड स्थित जेलके समान कुष्ट-गृहमें १८४९ से १८९२ के बीच कुष्ट रोगियोंकी संख्या २ थी किन्तु १८९४ से १९ तक वहांकी संख्या १००७ हो गयी।

दक्षिण अफ्रीकामें इस प्रणालीकी जो विफलता हुई उसका उदाहरण अन्यत्र ढूंढ़नेपर भी नहीं मिलता। वहां इस रोग को इतना अधिक बढ़नेका कारण यह था कि वहांके कुष्ट रोगियोंको साढ़े छः वर्षोंका बन्दी जीवन 'लेपर एसेलम' में बिताना पड़ता था और इसीलिये वे रोगको अधिकाधिक दिनों तक छिपानेकी चेष्टा करते थे। इस बीच यह रोग उनके परिवारवालों और संबन्धियोंपर अपना आधिपत्य जमा लेता था और उसका क्रम निरन्तर फैलता हो जाता था। इस तरह कुष्ट कारागार बन्दी जीवनके भय से लोगोंमें रोगको छिपाये रखनेकी जो परिपाटी चल पड़ी उससे बहुत बड़ी हानि हुई। कुष्ट-रोगियोंकी मोटी मोटी संख्याका अनुमान करना भी राजसत्ताके लिये मुश्किल हो गया। सन् १९४६ तक ब्रिटिश साम्राज्यमें कुष्ट रोगियोंकी संख्या इस प्रकार रही है—

भारत—१,२०००००, अफ्रीका—७५०००० और अन्य उपनिवेशोंमें—५००००।

कुष्ट रोगियोंकी वृद्धिको रोकनेकी समस्याका हल भूतकालमें पृथक्करणकी नीतिसे की गयी चेष्टा द्वारा असंभव है। अतएव इस रोगकी वृद्धिको रोकनेके लिये एक नयी चिकित्साकी विधिकी शरण ली गयी है। जिसके

अनुसार रोगियोंको इस रोगके समस्त लक्षणोंको मिटाकर आराम किया जाता है। मेजर जनरल सर रिवोनाल्ड रोजर्स ने अपने अनुभव एवं कुष्ट शास्त्रके घोर अध्ययन द्वारा ७०० कुष्ट रोगियोंकी एक तालिका इकट्ठी की थी जो निम्न प्रकार है—१४० मनुष्य ऐसे थे जो पूर्ण स्वास्थ्य होने पर रोगीके सम्पर्कमें आनेके कारण इसके शिकार बने। २८० ऐसे थे जिन्हें वर्षों उसी घरमें रहने एवं उसमें भी ९ प्रतिशतको कुष्ट रोगीके साथ एक ही बिछावनपर सोनेके फलस्वरूप यह रोग लग गया था। तीसरे १४० आदमी कुष्ट रोगीकी सेवा सुश्रुषा करनेके फलस्वरूप कुष्ट रोगके पंजेमें फंस गये थे और अन्तिम १४० को रोगीके साथ सम्पर्क बनाये रखनेके कारण ही इस रोगसे ग्रसित होना पड़ा था।

१९२५में दक्षिण अफ्रीका सरकारके मेडिकल सेक्रेटरीने एक कुष्ट-कारागृहके २५०१ रोगियोंकी कीटाणु सम्बन्धी परीक्षाके उपरान्त यह स्थिर किया कि उनमें एक तिहाईसे अधिक रोगी ऐसे थे जिनकी बीमारी प्रारम्भिक अवस्थाकी और बिलकुल साध्य थी। वे वहां बेकार ही रख लिये गये थे। फलतः उन सबोंको रिहा कर दिया गया और वे कृषि कार्यमें लग गये। २५ वर्ष बाद दक्षिणी अफ्रीकाकी वार्षिक रिपोर्ट द्वारा पता चला कि प्रारम्भिक अवस्थावाले कुष्ट रोगियोंकी अनावश्यक भर्तीके फलस्वरूप वहांके कुष्ट कारागारमें रोगियोंकी संख्या २५०१ से बढ़कर ६७६९ हो गयी।

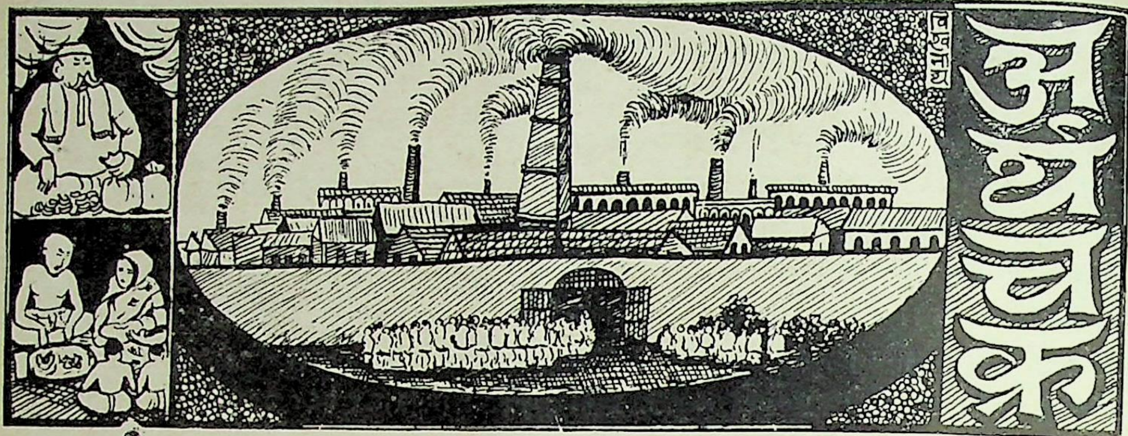
यदि असाध्य रोगियोंको दस वर्षोंतक अलग रखा जाय तो इस रोगकी समस्याका निदान बहुत ही सम्भव है। दुसाध्य रोगी समाज या परिवारसे पृथककर दूर उपनिवेशोंमें रखे जायेंगे और इस तरह इस रोगका फैलना बन्द हो जायगा। इस बीच प्रारम्भिक अवस्थावाले रोगियोंको ढूंढ़ निकाला जायगा और उनमें ९० प्रतिशतके रोगको दुसाध्य होनेके पूर्वही आमूल मिटा दिया जायगा।

नयी प्रणालीसे इस रोगकी जांचके लिये १९२३ में "ब्रिटिश इम्पायर लिपरासी रिलीफ एसोसियेशन" की स्थापना हुई और उसकी कतिपय परीक्षाओंके परिणाम निम्नांकित है—

जर्मन शासनान्तर्गत नारू द्वीपमें १९१२ में एक कुष्ट रोगसे ग्रसित औरत लायी गयी और १९२० तक उसने तीन आदमियोंको इस रोगका शिकार दुसाध्य रूपसे बना दिया। १९२५ तक ३६८ आदमी इस रोगसे ग्रसित हो गये। बादमें वहां इस नयी चिकित्सा प्रणालीके प्रयोग द्वारा इस रोगकी वृद्धिको रोका गया। इस रोगका प्रसार सर्वत्र ही बहुत तेजीसे हो रहा है किन्तु इस नयी चिकित्सा प्रणाली द्वारा इसकी वृद्धिको रोकनेकी बहुत कुछ सफलता मिल चुकी है। यदि इस प्रणालीका व्यवहार अभीसे किया जाय तो आनेवाले २०-२५ वर्षोंके अन्दर ही इस रोगके रोगियोंकी संख्या कम होती देखी जायगी। जगह जगह इस नयी प्रणालीको काममें लाया जा रहा है और सफलताकी आशा दीख रही है।

ब्रिटिश साम्राज्यमें इस रोगके रोगियोंकी संख्या सबसे अधिक भारतवर्षमें बतायी जाती है और अबतक यहां इस रोगकी वृद्धिको रोकनेकी दिशामें बहुत ही कम कदम बढ़ाया गया है। आज इस समय जबकि भारत स्वतन्त्रताके सिंह द्वारपर आ पहुंचा है उसके लिये इस नारकीय रोगकी उपेक्षा सर्वथा अनुपयुक्त है।





कपड़ेकी समस्या

गत १० जनवरी १९४७ को अन्तःकालीन सरकारके उद्योग तथा रसद विभागके सदस्य माननीय डा० जान मथाई की अध्यक्षतामें प्रान्तीय तथा रियासती मन्त्रियोंका एक सम्मेलन देशमें कपड़ेकी कमीको दूर करनेके उपायोंपर विचार करनेके लिये नयी दिल्लीमें हुआ।

सम्मेलनमें विचार प्रकट किया गया कि जहां भी सम्भव हो कपड़ेकी मिलोंमें तीन पाली चलनी चाहिये। साथ ही स्वीकार किया गया कि ऐसा केवल कुछ विशेष केन्द्रों तथा सूतके उत्पादनमें ही हो सकता है। कहा गया है कि कमसे कम ७० करोड़ गज कपड़े की कमी उत्पादनमें कामके घण्टे कम होनेके कारण हुई है। स्वीकार किया गया कि कामके घण्टे बढ़ानेका प्रस्ताव भारतीय श्रम सम्मेलन तथा उसकी स्थायी समितिके सिपुर्द विचारके लिये कर दिया जाय। सम्मेलनमें यह भी सूचित किया गया कि केन्द्रीय सरकार कपड़ा तथा सूतका उचित मूल्य निर्धारित करनेके सम्बन्धमें एक समिति नियुक्त करनेके प्रश्नपर विचार कर रही है। सम्मेलनने मत प्रकट किया कि इस समितिकी रिपोर्ट प्राप्त होने तक कपासके मूल्यमें कोई परिवर्तन न किये जांय। यह भी स्वीकार किया गया कि केन्द्रीय सरकारको कपड़ेके उत्पादन, मूल्यों तथा वितरणके सम्बन्धमें निश्चय विभिन्न प्रान्तीय तथा रियासती सरकारोंसे परामर्श लेनेके बाद ही करने चाहिए और प्रत्येक तिमाहीमें मन्त्रियोंका ऐसा एक सम्मेलन होना चाहिये। विचार प्रकट किया गया कि कपड़ा नियंत्रण बोर्ड का पुनसंगठन करके उसमें उपभोक्ताओंके प्रतिनिधित्व की भी व्यवस्था की जाय।

सम्मेलनने सर्व सम्मतिसे विचार प्रकट किया कि कपड़ेकी कमीको ध्यानमें रखते हुए उसके मौजूदा नियंत्रण अभी जारी रखने चाहिये। १९४७ के लिये प्रति व्यक्ति पीछे कपड़ेकी निर्धारित मात्राके सम्बन्धमें भी विचार हुआ और स्वीकार किया गया कि उत्पादनमें वृद्धि न होने तक मात्रामें और कमी होना अनिवार्य है। कोटा निर्धारित करने तथा वितरणके अन्य वैकल्पिक उपायोंपर भी विचार हुआ। औद्योगिक आंकड़ा कानूनके अन्तर्गत आंकड़ोंके संकलनका जो संगठन है उसमें सुधारके उपायों-पर भी विचार हुआ और निश्चय हुआ कि केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारोंके विचारार्थ एक योजना भेजे।

भारत सरकार कपड़ेकी तैयारी और वितरणके लिये चिन्तित है और इसके लिये योजनाएं बना रही है, किन्तु स्थिति यह है कि इसके लिये इतना आवश्यक नहीं है। कपड़े का चोर बाजार अब भी अपनी पुरानी भयावनी स्थितिमें है। स्थिति इतनी जटिल है कि अधिकांश नर-नारियोंको अल्पतम आवश्यकताओंके लिये भी कपड़ा अलभ्य है और चोर बाजारमें भी वह साधारण वित्तके व्यक्तियोंके लिये दुर्लभ है। इसलिये वितरणको लेकर केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारोंको अत्यधिक सतर्कतापूर्वक कठोर नियंत्रण और भ्रष्टाचारके विरुद्ध कठोर कार्यवाही करनेकी आवश्यकता है। वर्तमान स्थितिमें कितने ही लोग निरुपाय और असहाय बने हुए हैं। कितने ही लोगोंको इस बात का अनुभव होगा कि कोटावाले कपड़े भी चोर बाजारमें निकल आते हैं और निर्धारित मूल्यसे अधिकमें बिकते हैं।

लेकिन कठिनाई यह है कि म्याऊं का ठौर कौन पकड़े ?

कपासके सम्बन्धमें अन्वेषण

भारतकी केन्द्रीय कपास-समिति (बम्बई) ने हालही में १९४६ की वार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित की है जिसमें कहा गया है कि बम्बईकी टेकनालोजिकल प्रयोगशालाकी अनुसंधान और परीक्षण सम्बन्धी कार्रवाई पहलेकी तरह इस वर्ष भी जारी रही। कपासकी खेती करनेवालोंको प्रयोगशालाकी ओरसे कपासकी ऐसी किस्में चुननेमें सहायता दी गयी जिनसे कृषकोंको अधिक रुपया मिले और साथ ही वे व्यापारियों और उद्योगपतियोंको अधिक पसन्द भी हों।

आलोच्य वर्षमें कई मिलोंकी कार्य प्रणालीपर सोच विचार करके बहुसे ऐसे सुझाव उपस्थित किये गये जिनसे मिलें अपनी कपासका अच्छेसे अच्छा उपयोग कर सकें। इस वर्ष परीक्षणके लिये कपासके कुल १,२४९ नमूने प्राप्त हुए और उनपर २६९ रिपोर्ट प्रकाशित की गयीं।

प्रयोगशालामें जो परीक्षण किये गये उनमें वारंगल चलका और रेगड़ भूमिमें पैदा हुई कपास, मध्य गुजरातके विविध केन्द्रोंमें पैदा होनेवाले विजय कपास, विविध किस्मोंके ६ नम्बरकी जावरानी कपास, मीरपुर खासपर बोयी गयी लंबे रेशेवाली कपास आदिके नमूने मुख्य थे भारतकी विभिन्न किस्मोंकी रुईके कताई सम्बन्धी परीक्षण भी किये गये और इनसे जो परिणाम प्राप्त हुए उन्हें उद्योगपतियोंकी जानकारी के लिये प्रकाशित किया गया। प्रयोगशालाके परीक्षणभवनमें व्यापारियों और मिलोंके लिये लिन्ट, सूत कपड़ेके ३६८ नमूनोंका भी परीक्षण किया गया। इनमें ६२ परीक्षण कताई सम्बन्धी, १६६ परीक्षण रेशे सम्बन्धी, ७२ परीक्षण सूत सम्बन्धी और ५९ परीक्षण कपड़ा सम्बन्धी थे।

भारतीय कपासके पूर्व संशोधन और उससे बिनौले अलग करनेकी प्रणालियोंमें सुधार करनेके उद्देश्यसे कई परीक्षण किये गये और कपास भी बगैर, जरीला, उमरी बानी, मालिसती, सिन्ध एन०आर०आदि किस्मोंके सम्बन्धमें कई प्रसिद्ध पुस्तिकाएं प्रकाशित की गयीं। टेकनालोजिकल अनुसन्धानमें इस वर्ष अच्छी प्रगति हुई। जो अनुसंधान किये गये उनमेंसे कई कपास व्यापारके लिये लाभदायक सिद्ध हुए हैं। एक अनुसंधानसे यह सिद्ध हुआ कि भारतीय रुईको १६-१८ तक उठानेसे वह पूर्वी अफ्रीकाकी रुईकी जगह काममें लाने लायक हो जाती है। कुछ ऐसे फारमूले निकाले गये हैं जिनकी सहायतासे रुईके रेशेकी जांच पड़ताल करके यह बताया जा सकता है कि यह रुई कताईमें कैसी रहेगी। लम्बे रेशेवाली कुछ किस्मोंकी भारतीय रुई कताईमें बहुत अच्छी रहती है। इसका क्या कारण है, इस सम्बन्धमें भी छानबीन की गयी है। भारतीय रुईसे कते हुए सूतपर कास्टिक सोडाका क्या असर पड़ता है, इस विषयपर आलोच्य वर्षमें एक पुस्तिका प्रकाशित की गयी। चीनी भरनेके लिये सूती, थैलोंके उपयोगपर भी एक पुस्तिका प्रकाशित हुई है।

खनिज उद्योगका विकास

१० जनवरी, १९४७ को राष्ट्रीय खनिज नीति सम्मेलनकी प्रथम शाखाके अध्यक्षपदसे भाषण करते हुए निर्माण, खान तथा बिजली विभागके सदस्य श्री सी० एच० भाभा ने एक तरफ तो उद्योगके नियंत्रण तथा नियमनकी और दूसरी तरफ खनीज स्रोतोंके उपभोगमें मार्ग-प्रदर्शन तथा निरीक्षणकी आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि हमारी नीतिका सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि अभी इस नीतिका निर्माण ही हो रहा है। देशके खनिजोंके आयोजित विकासकी आवश्यकताकी तरफ ध्यान आकर्षित करते हुए श्री भाभाने कहा कि खनिज विकासके सलाहकार डा० डी० एन० वाडियाने खनिज नीतिकी जो रूपरेखा अपने विचारपत्रमें बतायी है उससे मैं निजी रूपसे सहमत हूं। खनिज विकासके सलाहकारकी सिफारिशें यों हैं—१ खनिजों तथा धातुओंके सम्बन्धमें देश यथासम्भव आत्मभरित बन सके। २ सैनिक तथा राष्ट्रीय रक्षा सम्बन्धी महत्वके खनिजोंपर केन्द्रीय नियंत्रण रहे। ३ कुछ मुख्य खनिजों, जैसे मैंगेनीज, क्रोमाइट, इल्मेनाइट, सिल्सेनाइटरेरियल इत्यादिके निर्यातका कड़ा नियंत्रण जो निर्यातकी रोक तक हो सकता है, उस अवस्थाको छोड़कर जब कि बदलेमें कोई ऐसा खनिज प्राप्त होता है, जिसकी देशमें कमी है। धातुओं, विशेषकर लोहहीन और ऐसे धातुओंके उत्पादनको प्रोत्साहन जो अभी विदेशसे आते हैं, जैसे अलुमीनियम, लोहयुक्त धातु, मिश्रित इसपात, भारी रासायनिक पदार्थ, अबरक, टिटेनियमयुक्त रंग, रोगन आदि। ५ आयात तथा निर्यात-करों और निश्चित अनुपातोंमें अपेक्षाकृत उत्तम संशोधन। ६ खनिज करों, मालकाना और पट्टे सम्बन्धी कानूनोंका संशोधन, और ७

कोयला, पेट्रोलियम तथा आधारभूत खनिजोंकी खानोंपर राज्यका उत्तरोत्तर अधिकार होना।

श्री भाभाने आगे कहा कि आप सभी नियंत्रण तथा आयोजनके भेदसे भली भांति परिचित हैं। आयोजनके अंतर्गत नियंत्रण आता है, किन्तु नियंत्रण हमें निश्चय ही आयोजनकी तरफ नहीं ले जाता। खनिज साधनोंके विकासके क्षेत्रमें हमें मुख्यतः योजना निर्माणकी आवश्यकता है। दूसरे शब्दमें इसका तात्पर्य यह होगा कि हमें कुछ विशिष्ट आर्थिक उद्देश्योंकी प्राप्तिके लिये देशके खनिज साधनोंका संगठन करना चाहिये। हम उद्योगोंके आयोजनकी बात स्वीकार कर चुके हैं और खनिजोंके आयोजनकी जो भी योजना हम स्वीकार करेंगे उसमें इस बातका ध्यान अवश्य रखा जायगा कि वह हमारे औद्योगिक आयोजनके ढांचेका ही एक अंग होगी।

नियंत्रणका आधार अटलांटिक अधिकारपत्र

चूंकि संसारके विभिन्न इलाकोंमें खनिजोंका वितरण असमान रूपसे हुआ है, इसलिये उनके व्यापारकी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याका जिक्र करते हुए श्री भाभाने कहा कि, "इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रकृति द्वारा खनिजोंके असमान वितरणके कारण विभिन्न राष्ट्रोंके बीच विशिष्टीकरण पारस्परिकताके सिद्धान्तपर आदान-प्रदान और बड़े पैमानेपर यातायातका होना सर्वथा स्वाभाविक है। इसलिये उनकी उपलब्धिके बड़े-बड़े, किन्तु सीमित स्रोतोंको देखते हुए कुछ हदतक उनका एकीकृत व्यापारिक नियंत्रण और सम्भवतः अन्तर्राष्ट्रीय आधारपर—सर्वथा तर्कसंगत प्रतीत होता है। हमारे देशमें चूंकि कुछ महत्वपूर्ण खनिजोंकी कमी है, इसलिये प्रत्यक्ष है कि हम इस समस्याके अन्तर्राष्ट्रीय पहलूकी उपेक्षा नहीं कर सकते और उसे ध्यानमें रखते हुए ही इस सम्बन्धमें हमें अपनी नीति निर्धारित करनी होगी।"

अटलांटिक अधिकारपत्रकी उस धाराका स्पष्टीकरण करते हुए जिसमें यह कहा गया है कि सभी राष्ट्रोंको संसारके व्यापारमें भाग लेने और कच्चा माल प्राप्त करनेका समान रूपसे अधिकार रहेगा, आपने कहा, "इस घोषणामें मुझे तो ऐसी कोई बात नहीं दिखायी देती जो हमारी ऐसी किसी भी नीतिसे विरोध रखती हो, जिसे हम अपनाना चाहते हों। अपने उद्योगोंके प्रति अपनी मौजूदा जिम्मेदारियोंको पूरा करनेकी हमें पूरी आजादी है। इस अधिकारपत्रकी कच्चे मालसे सम्बन्ध रखनेवाली धाराके कारण हम प्राप्त किये हुए खनिजोंसे ऐसा माल तैयार करनेके अधिकारसे वंचित हो जाते हैं, जिसे तैयार माल कहा जा सकता है। भूतमें भारत निर्बाध रूपसे अपने खनिजोंका इतना अधिक निर्यात करता रहा है कि कई दिशाओंमें तो उसके स्रोत लगभग ही समाप्त हो गये। इसलिये अपने पिछले इतिहासको देखते हुए भविष्यमें भारत अपनी नयी खनिज नीति स्थिर करते समय संसारके राष्ट्र-समूहके एक प्रमुख सदस्यके रूपमें अपनी जिम्मेदारियोंका पूरा-पूरा खयाल रखेगा और यह कोशिश करेगा कि उसकी यह नीति उसकी भावी आयोजित आर्थिक व्यवस्थाके अनुकूल ही हो।

गैर सरकारी अधिकारपर नियन्त्रण

निरीक्षण और निर्देशनके अपने कामके लिये सरकारको जिस शासन प्रणालीपर अमल करना होगा वह एक बड़ा महत्वपूर्ण विषय है और इस बारेमें, मैं आपके सलाह-मशविरेका विशेष रूपसे स्वागत करूंगा। सरकार देशकी खनिज उन्नतिमें उत्तरोत्तर गहरी दिलचस्पी ले रही है, किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि वह तुरन्त ही प्रत्यक्ष रूपसे खानोंसे माल निकालने और उसके शोधनके काममें भाग लेगी अथवा ले सकती है। हमें अपनी खनिज व्यवस्थाके बड़े क्षेत्रोंमें संचालन कार्य गैर सरकारी हाथोंमें ही रखना पड़ेगा, किन्तु उसपर नियन्त्रण सरकारका रहेगा। इस देशमें आम तौरपर यह शिकायत की जाती है कि सरकारने खनिज उन्नतिके काममें गैर सरकारी सूत्रोंको अबतक कोई सहायता नहीं दी, लेकिन मेरा यकीन है कि अगर खानोंका एक विभाग स्थापित करनेका हमारा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया और उसे शीघ्र ही कार्यान्वित कर दिया गया तो उससे खनिज उन्नतिके काममें हमारे देशवासियोंको बड़ी मदद मिल सकेगी। शासन-प्रबन्धकी दृष्टिसे यह विशेषज्ञोंका एक संगठन होगा। हमें अपने संगठनमें बड़े-बड़े अधिकारी रखनेकी प्रवृत्तिसे बचना चाहिये। और न हमारा संगठन ही ऐसा होना चाहिये कि वह हमारी वर्तमान नीतिकी व्यावहारिक आवश्यकताओंसे कतई मेल न खाता हो। इसके साथ ही इस विभागको दीर्घकालीन व्यावहारिक अनुसंधान और खानोंसे माल निकालने तथा उनके शोधनकी प्रणालीका काम भी अपने हाथमें लेना चाहिये।

———



चढ़ती धूप

आधुनिक युगके सफल कवि तथा त्रस्त और शोषित मानवताके प्रतिनिधिके रूपमें तथा अपनी पुस्तक 'समाज और साहित्य' के कारण एक कलामर्मज्ञ समालोचक के रूपमें श्री अंचल हिंदी जगतमें प्रख्यात् हो चुके हैं। उनकी विशेषता यह है कि वे जिस चीजको अपनी अनुभूतिसे जान लेते हैं, उसको कहकर तभी दम लेते हैं। बहुत दिनों तक उनकी लेखनी कविता तथा समालोचनाके क्षेत्रमें ही अपनी प्रतिभाके जौहर दिखाती रही, पर 'चढ़ती धूप' को लेकर उन्होंने उपन्यास क्षेत्रमें प्रवेश किया है।

श्री अंचल एक आधुनिक हैं। आधुनिकता उनकी नस नसमें समायी हुई है। उनमें यह आधुनिकता केवल एक फैशनेबल वस्तु न रहकर समाजवादके गम्भीर अध्ययन के कारण इधर निखरकर एक सामाजिक शक्ति और क्रांति की वाणीका वाहन हो गयी है। पहले वे कविताके उपासक थे, इस कारण 'चढ़ती धूप' के विषयमें सबसे पहली बात जो किसी भी व्यक्तिकी दृष्टि आकृष्ट करेगी, वह यह है कि उसकी भाषापर कवित्वका पुट बहुत जबर्दस्त है।

किसी उपन्यासकी सबसे बड़ी बात उसका कथानक है। कथानकको रोचकता, समाजकी शक्तियोंके साथ उसका सम्बन्ध अर्थात उसकी प्रगतिशीलता अथवा प्रतिक्रियावादिता, कहां तक लेखक कथानकको निभा पाया है अर्थात कहां तक एक-एक करके पात्रोंको देखनेसे और सामूहिक रूपसे उन्हें देखनेसे चाहे आर्थिक, सामाजिक दृष्टिसे देखा जाय चाहे मनो वैज्ञानिक दृष्टिसे देखा जाय, कथानक सही उतरता है, इन्हीं आधारोंपर लेखक

की सफलता अथवा विफलता निर्भर है। यदि उपन्यासकार इन कर्त्तव्योंको निभा न सका तो उसकी भाषा की सारी छटा व्यर्थ है। इसी कारण हृदयेशमें भाषाका कारुकार्य होनेपर भी वे उपन्यासकारोंमें स्थान न पा सके।

'चढ़ती धूप' एक अजीब उपन्यास है। मामूली उपन्यासोंकी परिपाटी तोड़कर उसके लेखक एक नयी दिशामें प्रभावित हुये हैं। 'चढ़ती धूप' एक राजनैतिक उपन्यास है। अवश्य राजनैतिक उपन्यास न तो भारतीय साहित्यमें और न हिन्दी सहित्यमें ही कोई नया genre या किस्म है। वंकिमचन्द्रके विषवृक्ष आदि दो चार उपन्यासोंको छोड़कर उनके सभी उपन्यास राजनैतिक हैं। अभी कल तक भारतीय क्रान्तिकारियोंने 'आनन्दमठ' का इस्तेमाल गुप्त समिति के प्रचारार्थ किया था। फिर रमेशचन्द्रदत्त की राजपूत जीवन-संध्या' और 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' राजनैतिक रचनाओंके अतिरिक्त क्या है? द्विजेन्द्रलालके सभी नाटक राजनैतिक ऐतिहासिक हैं।

पर इन उपन्यासों तथा नाटकों की राजनीति बहुत कुछ मुर्दा राजनीति है। उनमें कोई सजीव सन्देश नहीं है! उनकी नाड़ीका सम्बन्ध भूतकालसे है, वर्तमानमें उनकी जड़ें स्पष्ट नहीं है। पर नहीं हमें दूर जानेकी जरूरत नहीं। हिन्दी साहित्यमें प्रेमचन्दने सजीव वर्तमानको लेकर साहित्य रचनाकी है। इधर वंगलामें ताराशंकर आदि कुछ उपन्यासकार पैदा हुए हैं जो प्रेमचन्द की तरह राजनैतिक उपन्यासकार कहे जा सकते हैं, पर १९३६ तक यानी प्रेमचन्दकी मृत्यु तक प्रेमचन्द इस क्षेत्रमें अपराजेय थे इसमें सन्देह नहीं।

अंचलकी पुस्तकमें जो यह चित्रित है ...

युगसे आगेका है। इसमें मजदूर आंदोलन दिन बदिन जोर पकड़ता जा रहा है। अब लोग समझने लगे हैं कि स्वतन्त्रताका अर्थ केवल अंग्रेजोंको हटाकर उनकी जगह भारतीयोंको बैठा देना नहीं है, बल्कि पद्धतिका आमूल परिवर्तनकर शोषणका अन्त करना है। इसी कारण अंचलकी चढ़ती धूप मजदूर आन्दोलनके इर्द-गिर्द फैलती है, पर यह भी साफ है कि अभी मजदूर आन्दोलन अपनी आत्माको पहचान न सका है। वह अभी अपने शैशवमें है। मार्क्स, लेनिनका नाम लेनेपर चढ़ती धूपका नायक मोहन एक Amateur मात्र है, उसे किसी भी प्रकार एक professional revolutionary कहना गलत होगा। उदात्त विचारोंकी रट लगाये रहनेपर भी, वह ममतासे जिस प्रकारका व्यवहार करता है, वह न तो उदात्त है न क्रान्तिकारी।

अंचलजीने क्या समझकर 'चढ़ती धूप' लिखा है मालूम नहीं, (यह स्मरण रहे कि कलाकार जिस बातको अपनी कलामें मूर्त करना चाहता है, उसमें उससे कहीं ज्यादा भी हो सकता है, और कम भी) पर 'चढ़ती धूप' के पात्रोंमें एक भी सही मानोंमें क्रान्तिकारी नहीं है। सबके सब पेटिबुर्जुआ परोपकारी हैं, इससे अधिक नहीं।

मोहनको लिया जाय। यह पढ़ने-लिखनेमें तेज है, पर पिताकी सामर्थ्य एफ० ए० से आगे पढ़ानेकी न होनेके कारण उसके सामने विकट समस्या आती है। यहांपर लेखकने मध्यवित्त समाजकी एक समस्याका अच्छा चित्रण किया है। पढ़नेमें ही नौकरी है, इस कारण पढ़ाई है। जब मोहनकी पढ़ाई आगे रुक जानेको होती है तो उसके पिता उसका एक ऐसा ब्याह करना चाहते हैं जिससे पढ़ाईका खर्च मिलता रहे। यह इस समस्याका पेटिबुर्जुआ समाधान है। मोहन इसपर राजी नहीं होता। मोहनको गांवकी एक लड़की ममतासे प्रेम है। सभी सोचते हैं इनका विवाह होगा। पर मोहनका बाप राजी नहीं होता। जब यहां होना तो यह चाहिये था कि मोहन ममतासे विवाह करता। पर नहीं, मोहन अपने पितासे कह देता है कि वह विवाह न करेगा। ममताके एक दूसरे विवाहकी तैयारी होती है, ममता मोहनको बुला भेजती है, और कहती है कि जरा उसका इशारा हो जाय तो वह लो लगाये विवाहसे हाथ खींच ले। पर मोहन उसे ब्याह कर लेनेके लिये कहता है। वह कर भी लेती है। मोहनका यह कौनसा क्रान्तिकारित्व है समझमें नहीं आता। 'कैपीटल' को पढ़ना, बड़ी तात्विक बातें कहना, और एक शिक्षित अच्छी विचारोंकी स्त्रीसे यह कहना कि वह अपनी इच्छाके विरुद्ध एक अपरिचित और करीब करीब अनपढ़ पुरुषसे विवाह कर ले, और जब वह विवाह कर लेती है तो उसपर अपने मोहक प्रभावका इस्तेमालकर उससे कहना कि अपने इस प्रकार पतिको शरीर दान दे इसमें मैं तो Petty Bourgeois Philistinism अर्थात् मध्यवृत्ति वर्गीय पंडित मूर्खता के अतिरिक्त कुछ नहीं पाता। मोहनके चरित्रका यह अंश घृणा उत्पादन करता है। उसने इस प्रकारसे ममता के साथ जो व्यवहार किया, वैसा करनेके लिये उसपर कोई मजबूरी थी ऐसा तो ज्ञात नहीं होता, इसलिये उसपर और भी अधिक घृणा उत्पन्न होती है। फिर इसपर बड़ी-बड़ी बातें, बहुत ही क्रोध आता है। जो व्यक्ति नारीकी विशेषकर जबकि वह प्रेम करनेवाली, तद्गतप्राणा स्त्री है, उसकी कद्र नहीं कर सकता, वह क्या खाक क्रान्तिकारी होगा? इसीलिये मैंने कहा कि 'चढ़ती धूप' एक अजीब उपन्यास है, बात यह है कि मोहन एक अजीब पात्र है।

ममताके साथ उसके व्यवहारको देखकर कोई उसे क्रांतिकारी नहीं कह सकता। आखिर उसने ममताके जीवन का जो सर्वनाश किया, उसको भ्रष्ट होनेके लिये (जिससे प्रेम नहीं है, ऐसे किसी भी पुरुषको शरीर दे देना भ्रष्ट हो जाना है) मजबूरी किया, इसमें कौन-सा ऊंचा उद्देश्य था? ममताके बलिदानसे किसको लाभ हुआ जब हम इस बातको सोचते हैं तो यह पाते कि किसीका नहीं। यदि किसी कारण मोहन उससे ब्याह नहीं करना चाहता था, तो ममता घर छोड़कर कुंवारी तो रह सकती थी। घर उसे छोड़ना ही पड़ता ऐसी कोई बात नहीं।

यह कहा जा सकता है कि ममताके त्यागकी पृष्ठ-भूमिके रूपमें मोहनको ऐसा बनना जरूरी था, तभी ममता का त्याग निखरता, पर इसके उत्तरमें पूछा जा सकता है कि आखिर इस त्यागसे क्या लाभ हुआ। ऐसी हालतमें मोहनने इस सिलसिलेमें जो आचरण किया। उसने ममता की प्रेममयी प्रतिमाको जिस प्रकार आगमें झोंक दिया, वह निन्दनीय ही कहला सकता है। इसलिये मोहनकी इस सम्बन्धी बातें फीकी पड़ जाती है और सच तो यह है इस पृष्ठभूमिके कारण उसका चरित्रही फीका पड़ जाता है।

मोहनकी बातें सुनिये। वह कहता है: 'मेरे सामने

ममता अममताका प्रश्न नहीं। मैं आजीवन विवाह ही नहीं करना चाहता। ममता मेरे लिये जो है सदैव रहेगी। विवाहपर ही पुरुष और नारीका पारस्परिक सम्बन्ध कायम हो सके ऐसी मेरी मान्यता नहीं। वह मेरे लिये विवाहसे बड़ी है। अपनेसे अलग करके मैंने उसे कभी नहीं देखा। मैं उसकी पूजा करता हूं; परन्तु उसके उस रूपकी नहीं जो बाहरसे सबको दिखाई पड़ता है। उसके अन्दर आत्माका एक तीव्र रुक्ष रूप है जो सबको दिखाई देता, पर जिसे वह दिख गया, वह उस ओरसे आंखें हटा नहीं पाता।' मोहन की कही हुई इन बातोंसे प्रत्येक बात झूठी और बेमतलब है। जिसे कभी अलग करके नहीं देखा, जिसकी पूजा की जाती है, जिसकी आत्माकी सुन्दरता प्रत्यक्षकी जाती है, उससे इस प्रकार जिससे तिससे विवाहकर, जिसको तिसको शरीर दान करनेके लिये नहीं कहा जाता। इसीलिये मोहन की बातें झूठी तथा आत्म प्रवंचना मात्र है।

पर इससे मोहनका चरित्र नहीं बिगड़ा। लेखकने उसे जो कुछ बनाया है, वह अच्छा ही बनाया है। यह इससे पता लगता है कि मोहनका यही चरित्र बराबर कायम रहता है। ताराकेसाथ उसका व्यवहार भी Convention के अन्दर नहीं आता। उसके उद्घाटनके पहले यह बता दिया जाय कि तारा मजदूरोंमें काम करती है। उसका भाई भी सार्वजनिक कार्यकर्त्ता है, और मजदूरोंमें अच्छा प्रभाव रखता है। मोहन उसके यहां आकर रहता है। तारा को धीरे-धीरे ममता और मोहन सम्बन्धी सारी बातें ज्ञात हो जाती हैं। ताराने एक दिन मोहनसे कहा—यह क्या आवश्यक है कि केवल माता-पिताके कहनेपर अपनी मर्जी के विरुद्ध वह जिससे चाहे विवाह करले। आप क्रांतिकारी बनते हैं। अपनी शिष्याको सलाह देते आपको हिचक नहीं लगती? मैंने आपकी यह बात समझनेकी चेष्टा की, पर समझमें नहीं आई। वह संघर्ष करना चाहती है। आपको बुलाती है कि प्राणोंके बल उतारे, ऊंचा मस्तक लेकर वह विद्रोह कर सके।...आप असलमें उसके लिये नहीं अपने लिये चिन्तित हैं।...नारी क्या कोई कामोडिटी है जो उसकी मर्जीके विरुद्ध उसका क्रयविक्रय किया जा सके।...वह झूठी लोकलज्जा और प्रपंचभीरुता का भार कब तक ढोती रहे।...मुझे इसमें शुरुसे आखिर तक आपकी स्वार्थपरता और भावुकता जान पड़ती है। आप जानते हैं, मानते हैं वह आपकी संगिनी होने योग्य है। आपने इसके लिये उसे हर प्रकारसे तैयार किया, पढ़ाया, लिखाया। जीवनमें विरोधोंसे लड़ना सिखाया। अब सिर्फ इसलिये कि आपके साथ उसे कष्ट होगा, आपके अनिश्चित जीवनमें वह दुःख भोगेगी, आप उसे अपनाना नहीं चाहते।'

यह तारा है। वह ममताके लिये ही इस प्रकारके उद्गार कर रही है ऐसा पूर्ण सत्य नहीं। वह ममताके साथ किये गये व्यवहारके लिये मोहन पर क्रुद्ध है, पर साथ ही वह अपने लिये भी क्रुद्ध है क्योंकि वह भी धीरे-धीरे मोहनके प्रेममें पड़ गयी है। शायद इसी प्रेमसे बचनेके कररण मोहन ताराका घर छोड़कर एक दिन चल देता है। तारा नहीं समझ पाती क्यों वह जा रहा है, क्योंकि वह गया, पर जब तारा जाकर मोहनके चले जानेकी इस कहानीको ममताको सुनाता है तो वह समझ जाती है कि असली बात यों हैं। वह जानती है कि मोहन स्वभावसे पलायनवादी। कमसे कम स्त्री के प्रेमसे तो वह भागता है।

अंचल जीने नये युगके उपन्यासकी टेकनीकको बखूबी हृदयंगम कर लिया है, उनसे हमें बड़ी आशा है। पर हम पहले ही बता चुके हैं कि 'चढ़ती धूप' का एक भी पात्र या पात्री क्रान्तिकारी या बालशेबिक नहीं है। मजदूर आंदोलनके एजिटेशन युगमें मोहन, तारा, देवदत्त ऐसे लोग ही उसमें काम करते हैं। इनका उद्देश्य अच्छा है; ये त्यागी हैं (मोहन तो मर ही गया) पर इनको बालशेविक कहना गलत होगा। अंचल जी बताते हैं कि वे काम्युनिस्ट पार्टी के हैं, हों पर जिस पार्टीके भी वे हों वे मध्यवित्तवर्गीय amateur के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, और इस युगमें वे इसके अलावा कुछ हो नहीं सकते थे। पता नहीं अंचल जी ने सज्ञान रूपसे अपने पात्रोंको ऐसा बनाया कि नहीं, पर इसमें सन्देह नहीं उनकी कलाने वस्तु स्थिति को सुन्दर रूपसे प्रतिफलित किया है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि वे एक आत्मज्ञान प्राप्त सज्ञान कलाकार हैं। वे गोर्की और प्रेमचन्दके चरणचिन्हपर चल रहे हैं। हम अंचल जी को 'चढ़ती धूप' पर अभिनन्दित करते हैं। यह उपन्यास उन्हें वर्तमान युगके प्रथम श्रेणीके लेखकों में रख देता है।

—मन्मथनाथ गुप्त

पुस्तक परिचय

योग-प्रवाह—हिन्दीके लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान, अन्वेषक स्व० डा० पीताम्बरदत्तजी बड़थ्वाल एम० ए० डि० लिट् के चुने हुए लेखोंका संग्रह है। उसका सम्पादन माननीय बा० सम्पूर्णानन्दजीने किया है। प्रकाशक—श्री काशी विद्यापीठ, बनारस। मूल्य ३॥)।

इस संग्रहमें १९ लेखोंका संग्रह है। पांचवां निबन्ध है—"हिन्दी कवितामें योग-प्रवाह। संभव है, उसीके आधारपर पुस्तकका नाम "योग-प्रवाह" रखा गया हो! इस संग्रहके अधिकांश प्रबन्ध पत्रिकाओंमें प्रकाश ला चुके हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जो प्रकाशित नहीं हुए थे। इस पुस्तकके सभी संकलित लेख सन्त-साहित्यपर एक नये दृष्टकोणसे प्रकाश डालते हैं। साहित्यमें गहराईतक उतरनेवाले साहित्यिकोंके उपयोग और उपभोगकी इसमें नयी सामग्री प्राप्त होगी, जो चिन्तनकी दिशामें एक भावोद्रेक कर सकती है तथा अनुशीलनकी ओर नयी उद्भावनाओंकी प्रेरणा दे सकती है। भारतीय संस्कृतिका प्रकाश, जिन आध्यात्मिक तत्वोंपर व्यापक हुआ, डाक्टर साहबने उसका अध्ययन बहुत बड़े व्यापक पैमानेपर आरम्भ किया था। अपने अल्पकाल जीवनमें उन्होंने खासी उत्तम कोटिकी सामग्री हिन्दीको दी। बहुत थोड़ी अवस्थामें देहके बन्धनसे मुक्त हो जानेके कारण हिन्दीकी बहुत ही हानि हुई, क्योंकि वे एक विशेष क्षेत्रके बहुत बड़े विशेषज्ञ थे। हिन्दी भाषा-भाषियोंको उनसे बड़ी-बड़ी आशाएं थीं। साहित्य क्षेत्रमें उनका कार्य अत्यन्त ठोस था। उनके निबन्ध ऐतिहासिक विवेचनकी पृष्ठभूमिसे तर्क और चिन्तनके अवलम्बनपर विकसित हुए हैं। साहित्यका विशेष रूपसे अनुशीलन करनेवाले अध्ययनार्थियोंके बड़े लाभकी वस्तु है। यों तो साहित्यमें कार्य करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको उन्हें अवश्य अध्ययन करना चाहिये। क्योंकि उसकी विचार-प्रणाली नयी उद्भावनाओं तथा गहरे अनुशीलनसे ओतप्रोत है।

पराधीन युगमें भारतीय साहित्यके अन्दर हिन्दीकी ओरसे सन्त युगकी बहुत बड़ी देन है। सन्त युगने भारतीयता तथा भारतीय संस्कृतकी रक्षा बड़ी बारीकीसे की है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता है, निम्नस्तरके व्यक्तियोंके व्यापक उत्थानको, जिनके एकमात्र बलपर मध्ययुगसे अब तक उच्च कहे जानेवालोंने नग्न-नृत्य किया है। और उन्हींकी सेवाओंपर भारत, भारत बना रहा। वह युग कभी उपेक्षित नहीं हो सकता। उसका भण्डार अक्षुण्ण है। उसीके भीतर प्रवेश कर डाक्टर साहबने कुछ मोती निकालकर इन निबन्धोंके रूपमें आधुनिक भारतीय जनताके सम्मुख उपस्थित किये हैं। और, भारतीके गलेका शृंगार सजाया है। आधुनिक नवयुवक साहित्यसेवी उससे प्रकाश प्राप्तकर एक नया दृष्टिकोण उपलब्ध कर सकते हैं। हिन्दीकी व्यापक रूपमें बिखरी हुई सामग्रीकी खोजमें इन निबन्धोंसे प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं, हिन्दीकी सेवामें एक नया अध्याय जोड़ सकते हैं।

डाक्टर बड़थ्वालजी नये युगके इने-गिने विद्वान नवयुवकोंमेंसे एक थे। उन्होंने अपनी प्रतिभासे हिन्दीमें चमक दी, वह एक विलक्षण शक्तिकी परिचायिका है। इसलिये मैं कह सकता हूं कि "योग-प्रवाह" का पुस्तक रूपमें प्रकाशन एक महत्वकी वस्तु है। क्योंकि, इससे सन्त-युगके साहित्यके अध्ययनमें बहुत बड़ी सहायता प्राप्त हो सकती है। इस पुस्तकमें उन्होंने अपने जो विचार दिये हैं, उनकी प्रतिभा और अध्ययनका परिणाम है। इससे प्रेरित होकर यदि कुछ अध्ययनार्थी हिन्दी साहित्यके अन्वेषणकी दिशामें प्रयत्नशील होंगे, तो बहुतसी पुरानी साहित्यिक सामग्रियोंके उद्धारकी आशा की जा सकती है। इनके लेखोंसे गम्भीर युवकोंको अत्यधिक प्रोत्साहन मिलनेकी आशा है।

इसमें तीन लेख कबीरपर हैं। कबीरके जीवनवृत्तपर जो उन्होंने अपने विचार दिये हैं, वे विचार आखिरी नहीं माने जा सकते फिर उधर अनुशीलनकर्त्ताओंका दृष्टिकोण जाना चाहिये। यह चिन्तन और विवेचनाकी बात है। अन्वेषणकर्त्ता जितनी ही गहराईतक जायेंगे, वे कुछ अधिक ही रस निकाल लानेका सफल प्रयत्न करेंगे। कबीरके सम्बन्धमें डाक्टर साहबने जो लिखा है, उसे अपनी युक्तियोंसे यद्यपि प्रमाणित करनेकी पूरी चेष्टा की है। स्वामी राघवानन्द और उनकी रचना सिद्धान्त पञ्चमात्रा खोजकी वस्तु है। उससे लेखककी विद्वता और उसके अनुशील कार्यका अनुमान पाठक मजेमें लगा सकते हैं। "सुरति-निरति" शब्द पर बड़ा विशद विवेचन लेखकने किया है। 'मीराबाई और बल्लभाचार्य' शीर्षक लेखमें डाक्टर साहबने दोनोंके सम्बन्धमें बहुत ही विवेचनापूर्ण समर्थन किया है। उन्होंने बतलाया है कि राजस्थान

मीराबाईको मीरांबाई उच्चरित किया जाता है, लेकिन हिन्दीमें अतिकालसे मीराबाई ही चल रहा है। अतएव, डाक्टरकी भी राय है कि उसे सानुनासिक करनेकी कोई अब आवश्यकता नहीं है। जायसी पद्मावतकी उन्होंने आलोचनात्मक विवेचना की है, जो परीक्षार्थियोंके कामकी वस्तु है। सूर गोसाईं चरितपर भी उन्होंने पर्याप्त विचार किया है। नानकदेव, नागार्जुन, कणेरी, गंगाबाईपर भी उन्होंने अच्छा प्रकाश डाला है। इन निबन्धोंके अतिरिक्त भी कुछ साहित्यिक निबंध हैं, वे भी परीक्षार्थियोंके लिये बहुत ही उपादेय हैं। अथवा हिन्दीकी नयी पौधके लिये वे अत्यन्त पठनीय या माननीय है। —परमानन्द पण्डित

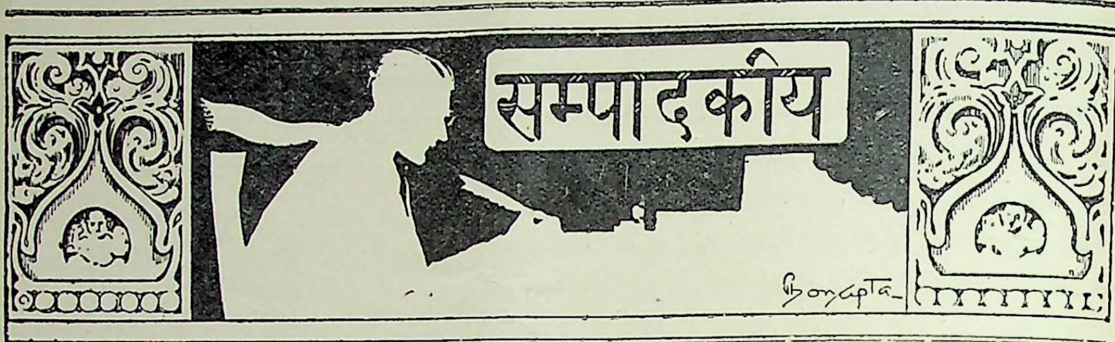
ईश्वर : ऐतिहासिक विकास—लेखक नरसिंहचन्द्र शी प्रकाशक सरस्वती-सदन, जोधपुर, मूल्य एक था। छपाई-सफाई, कागज सब मामूली।

यह पुस्तिका कहानियोंका संग्रह है। इसमें ईश्वर : ऐतिहासिक विकास, क्रमिक विकास, विवाह प्रथा, तीन गे एक जनेऊ, अपूर्ण, न जाउंगी, यह पांच कहानियां गृहीत हैं। कहानियां साधारण अच्छी हैं। अनुमानसे सा ज्ञात होता है कि लेखककी पहली रचना है। क्योंकि, कहानियांकी भाषामें काफी भूलें हैं। ऐसी भूलें जिन्हें ककी भूल नहीं कह सकते। और न तो अनजानकी भूलें ऐसी अवस्थामें लेखकके लिये और अधिक मार्जनाकी आवश्यकता है। यदि भाषा सम्बन्धी भूलें दूर हो जांय लेखकका इस दिशामें अच्छा विकास हो सकता है। कहानियोंमें लम्बे-लम्बे व्याख्यान आ गये हैं, जो आजकी दृष्टिसे अच्छे नहीं कहे जायेंगे। क्योंकि उतने लम्बे व्याख्यानोंसे पाठक ऊबने लगते हैं। सामग्री कैसी भी हो उसमें वर्णनका आकर्षण वांछनीय है। हिन्दीमें आजकल कहानियोंका बड़ा प्रचलन है। और, उस दिशामें तरक्की भी हुई है। लेखकने सामाजिक दृष्टिकोणसे कहानियां लिखी हैं लेकिन उसे वर्तमान जीवनकी साधारण समस्याओंपर अधिक प्रकाश डालना चाहिये था। कहानी उपादेयता की दृष्टिसे मानव जीवनके अत्यन्त निकटकी वस्तु है। अतः कहानी द्वारा मनोरंजनके साथ-साथ पाठकोंको बहुत बड़ा लाभ यह होता है कि जीवन जटिलताओंको आसानीसे रफा करनेका उसे हल मिल जाता है। इस पुस्तककी पहली और अन्तिम कहानी बहुत लम्बी हो गयी है। बीचकी कहानियां छोटी-छोटी हैं। कहानियोंमें वातावरण बहुत दूर-दूरका जुटाया गया है। कहानीका वर्णन चाहे जिस ढंग का हो उसमें एक स्पर्श होना चाहिये, चित्रण बहुत साफ होना चाहिये, खींचतान नहीं होनी चाहिये। इस कहानी संग्रहमें कहानीकार कसरतसे निखरा है। उसे कहानीमें पूरे व्यक्तित्वके साथ आना चाहिये।

जो हो, ये कहानियां जिन पाठकोंके लिये लिखी गयी हैं, उन्हें अवश्य लाभ पहुंचायेंगी और उनका इनके द्वारा मनोरंजन भी होगा। तथा कहानीकारसे यह आशा की जाती है कि वह अपने विकासमें परिश्रम पूर्वक परिमार्जनका पूरा हाथ रखेगा, जिससे उसकी लेखनी सफल होगी। नवयुबक साहित्यिकोंको हिन्दी सेवामें आनेके पहले खूब मजेमें अपनी भाषा मांज लेनी चाहिये नहीं तो पाठकोंपर बहुत उलटा असर पड़ता है। कहानीकारकी दिनोंदिन इस क्षेत्रमें उन्नति हो यही हमारी कामना है।

—शिवनारायण शर्मा





आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी——

आल इण्डिया कांग्रेस कमेटीने ब्रिटिश सरकारके ६ दिसम्बरके वक्तव्यपर जो प्रस्ताव बहुमतसे स्वीकृत किया है, वह अनेक दृष्टियोंसे अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वक्तव्यमें कहा गया है कि—"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी गत नवम्बर महीनेमें मेरठ कांग्रेस अधिवेशनके बाद देशकी घटनाओं, ६ दिसम्बरको प्रकाशित ब्रिटिश वक्तव्य तथा कार्यसमितिके गत २२ दिसम्बरके वक्तव्यपर गम्भीर विचार-विमर्शके उपरांत कांग्रेसकर्मियोंको निम्नाशयका परामर्श देती है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी २२ दिसम्बरवाले कार्य समितिके वक्तव्यकी पुष्टि और उल्लिखित विचारोंके प्रति सहमति प्रगट करती है। कांग्रेसने प्रस्तावकी व्याख्या सम्बन्धी विवादग्रस्त पहलूको सर्वदा संघ अदालतके समक्ष विचारार्थ उपस्थित करनेका समर्थन किया है। किंतु अभी हालकी ब्रिटिश सरकारकी घोषणाके अनुसार यह प्रस्ताव निरर्थक और अवांछनीय बन गया है। अब केवल स्वीकृत आधारपर यह विचार सम्भव हो सकता है कि सम्बन्धित दल निर्णय स्वीकार करनेके लिये सहमत हैं। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका यह दृढ़ विचार है कि भारतीय जनताको सम्भवतः सर्वाधिक समर्थित समझौतेके आधारपर स्वतन्त्र भारतके विधान निर्माणका अधिकार होना चाहिये। इसमें किसी वाह्य सत्ताका हस्तक्षेप तथा एक प्रांत द्वारा दूसरे प्रांत अथवा उसके किसी एक भागपर कोई दबाव बिलकुल नहीं होना चाहिये। कमेटी कुछ प्रांतोंके मार्गमें उपस्थित कठिनाइयों को महसूस करती है। कमेटी उत्सुक है कि विधान परिषदको स्वतन्त्र विधान निर्माणमें सभी सम्बन्धित दलोंको विभिन्न तरहके वक्तव्यों और व्याख्याओंसे उत्पन्न कठिनाइयां दूर करने तथा श्रेणियोंकी कार्य प्रणालीके सम्बन्धमें ब्रिटिश व्याख्याके अनुरूप कार्यवाहीमें आवश्यक सहयोग अवश्य प्रदान करना चाहिये। यह स्पष्ट तौरपर अवश्य समझ लेना चाहिये कि किसी प्रांतपर कोई दबाव कदापि नहीं पड़ना चाहिये और पंजाबमें सिखोंके अधिकारोंको आघात नहीं पहुंचना चाहिये। ऐसी स्थितिमें किसी प्रांत या उसके किसी भागकी जनताकी इच्छाके अनुसार निर्णय लिये किसी भी आवश्यक कार्यवाहीका अधिकार है। भावी कार्यक्रम सम्भावित प्रगतिपर निर्भर करता है। अतः अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी कांग्रेस कार्यसमितिको प्रांतीय स्वाधीनताके बुनियादी सिद्धान्तोको दृष्टिगत र समय और आवश्यकतानुसार परामर्श देनेका आदेश देती है।" इस प्रकार कांग्रेसने यद्यपि ६ दिसम्बरके वक्तव्यको स्वीकार किया है, किन्तु प्रान्तोंके स्वभाग निर्णयके मौलिक अधिकारपर उसने आघात नहीं किया है।

प्रस्तावपर मतगणना——

वर्किंग कमेटी द्वारा आल इण्डिया कांग्रेस कमेटीमें उपस्थित एवं उसके द्वारा स्वीकृत प्रस्तावपर होनेवाले भाषणों एवं मतगणनासे जो बात सर्वाधिक स्पष्ट होती है, वह यह है कि देशका एक विशाल विचारणीय भागका विश्वास भारतके प्रति ब्रिटिश नीतिमें और उसकी सद्भा वनामें नहीं रह गया है। इसीलिये ब्रिटिश सरकारके दिसम्बरके वक्तव्यको यह भाग आपत्तिजनक, अवांछनीय एवं अग्रहणीय मानता है और स्वाधीनता संघर्षके लि देशका आह्वान करना चाहता है। श्री शरच्चन्द्र बोस इसीलिये कांग्रेस कार्यसमितिसे त्यागपत्र दे दिया है और कांग्रेसकी तद्विषयक नीतिका समाजवादी दल कटु आलो-

वक्त हो रहा है। ब्रिटिश सरकारके उक्त वक्तव्यको हमने सदा ही आपत्तिजनक माना है और ब्रिटिश सरकारकी सद्भावना एवं उसकी भारत सम्बन्धी नीति भी सर्वथा शंकाके परे नहीं है, फिर भी इन घटनाओंपर हमारा भिन्न दृष्टिकोण है। हमारा ख्याल है कि येनकेनप्रकारेण विधान परिषद्को फलीभूत बनाना चाहिये और इसके लिये सिद्धान्तोंका परित्याग किये बिना, सतत प्रयत्नशील होना चाहिये। कांग्रेसने जिस रूपमें ६ दिसम्बरके वक्तव्य को स्वीकार किया है, उसमें न तो कोई सिद्धान्तहीनता है, न कायरता। अन्तःकालीन सरकारमें प्रविष्ट होनेके साथ कांग्रेसने १६ मईकी प्रस्तावित योजनाको पूर्णतः स्वीकार करनेकी घोषणा की थी, अतः आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी द्वारा प्रस्ताव उसके पहले मन्तव्यसे भिन्न भी नहीं है। और तब इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप श्री बोसका त्यागपत्र सर्वथा अनावश्यक है, बल्कि कुछ दृष्टियोंसे आपत्तिजनक ही नहीं, अवांछनीय भी है।

प्रस्तावकी प्रतिक्रिया—

आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी द्वारा स्वीकृत प्रस्तावकी प्रतिक्रिया देशके विभिन्न अंचलोंमें विभिन्न विचारधारा वालोंमें विभिन्न रूपोंमें हुई है। आसामके प्रधानमन्त्री श्री गोपीनाथ बारदोलाईने स्पष्ट घोषणा करते हुए कहा है कि आसाम उक्त प्रस्तावको अमान्य करेगा। उधर मुसलिम लीगी अंचलों द्वारा यह प्रश्न उठाया गया है कि आसामके कांग्रेसी प्रांत होनेके नाते, कांग्रेस उसे अपने प्रस्तावको स्वीकार करनेके लिये विवश करे, जैसा कि ख्वाजा नजीमुद्दीनके एक वक्तव्यमें स्पष्ट हुआ है। हमारा ख्याल है कि यह दोनों ही विचार प्रस्ताव सम्बन्धी कुछ भ्रांतियोंके आधारपर हैं। प्रस्तावमें प्रान्तोंके स्वभाग्य-निर्णयके अधिकारपर आघात नहीं किया गया है और उसकी शब्दावली स्पष्ट है। गुटोंमें जानेके पहले ही उसकी काल्पनिक अथवा आनुमानिक आशंकाओंके आधारपर ही उसे परित्याग करनेके पक्षमें कांग्रेस नहीं है। कांग्रेसका स्पष्ट मत है कि बहुमत द्वारा वस्तुतः अपीड़ित होनेपर किसी भी गुटके किसी भी प्रांतको अपने प्रांतीय निर्णयके अनुसार कार्य करनेकी स्वाधीनता है। ऐसी आनुमानिक आशंकाके निराकरणका उत्तरदायित्व बहुमतपर है। अतः जबतक बहुमत अल्पमतपर अनुचित दबाव न डाले, तबतक कोरी काल्पनिक आशंकाओंके आधारपर ही उससे विरत होना अनावश्यक है क्योंकि कांग्रेसने सिद्धान्तकी अनुप्रेरणासे ही ऐसा निश्चय किया है और दीर्घकालीन विचार-विनिमयके सिलसिलेमें भी उसने प्रान्तोंका पूर्ण स्वाधीनताका ही पक्ष लिया था और आज भी उसका यह विचार अक्षुण्ण है। रहा प्रश्न यह कि आल इण्डिया कांग्रेस कमेटीके स्पष्ट प्रस्तावकी अवहेलना करनेपर आसाम के प्रति कांग्रेसका अनुशासन सम्बन्धी क्या मन्तव्य होगा, यह कांग्रेस संस्थाका अपना आन्तरिक प्रश्न है।

विज्ञान और मानव समाज—

भारतीय विज्ञान परिषद्का ३४ वां अधिवेशन पं० जवाहरलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें जनवरीके प्रारम्भिक दिनोंमें हुआ जिसमें देश-विदेशके अनेक वैज्ञानिकोंने भाग लिया। नेहरू जी ने विज्ञानकी रचनात्मक एवं ध्वंसात्मक शक्तियोंका उल्लेख करते हुए कहा है कि 'हिरोशिमा अणुकी ध्वंसात्मक शक्तिका प्रतीक है और इस सम्बन्धमें लोगोंको अब भी सन्देह बना ही हुआ है।' इसीलिये नेहरू जी ने वैज्ञानिकोंको चेतावनी देते हुए स्पष्ट शब्दोंमें घोषणा की कि, 'देशकी समस्त वैज्ञानिक प्रतिभाका उपयोग हमें सामाजिक कल्याणके लिये करना चाहिये और मैं इस विज्ञान सम्मेलन तथा विदेशोंसे आये हुए अपने मित्रोंको इस बातका आश्वासन दे देना चाहता हूँ कि हम लोग विज्ञानकी उन्नतिके लिये सभी प्रकारका सहयोग देनेको तैयार हैं जिससे विश्व कल्याणकी समस्या सुलझ सके और मानव जातिका कल्याण-साधन हो सके। किन्तु ऐसा आश्वासन एवं वचन देते हुए मैं यह भी भलीभांति स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हम लोग किसी भी युद्ध प्रणालीसे कभी भी सहयोग नहीं करेंगे।' नेहरू जी के उक्त शब्द इसके इस आधारपर अवस्थित हैं कि 'वैज्ञानिक अथवा किसी भी प्रकारकी उन्नति तबतक भलीभांति सम्भव नहीं है, जब तक कि सामाजिक गठनमें कुछ मौलिक परिवर्तन नहीं हो जाते।' खेदका विषय है कि संसार ने अबतक विज्ञानकी रचनात्मक शक्तियोंकी अपेक्षा उसकी ध्वंसात्मक शक्तियोंका ही उपयोग अधिक किया है। और इसका भी कारण हमारे सामाजिक गठनकी दुर्बलताएं एवं हमारी राजनीतिक कुत्सित लालसायें हैं। अणुबम, मृत्यु-किरण एवं मृत्यु-रज जैसे ध्वसात्मक शस्त्रास्त्रोंकी चर्चा आज भी चल रही है और आज भी विश्वकी अलौकिक वैज्ञानिक प्रतिभाका उपयोग मानव कल्याणकी दिशामें

उतना नहीं हो रहा है, जितना विध्वंसकी दिशामें। यह घातक प्रवृत्ति है और इसके रहते विश्व शान्तिकी आशा सुदृढ़ नहीं हो सकती। भारत सदासे शान्तिवादी देश रहा है, भारतकी प्रतिभा सदासे मानव जातिके कल्याण के लिये रचनात्मक रही है और भारतने राष्ट्रीय महत्व-कांक्षाओंके समक्ष अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकताको ही अधिक प्रश्रय दिया है, इसलिये भारतकी वैज्ञानिक प्रतिभाका उपयोग भी इसी दिशामें सम्भव है, जैसा कि नेहरूजीने अपने उपरोक्त शब्दोंमें व्यक्त किया है। हमारा ख्याल है कि इस प्रकारके विचारोंके आधारपर गठित मानव-समाज ही विश्व कल्याणके मार्गपर अग्रसर हो सकेगा।

कांग्रेसका शक्ति-सङ्गठन—

"कांग्रेसकी यह हार्दिक इच्छा है कि साम्राज्यवादी इंगलैंड स्वतन्त्र भारतकी सुगमता और भावी संग्रामके बिना सत्ता हस्तान्तरित कर दे। किन्तु यदि राष्ट्रको पुनः संग्राम आरम्भ करनेके लिये विवश होना पड़ा तो कांग्रेस पिछले अवसरकी भांति कदापि विचलित नहीं होगी। देशको इस बातका दृढ़ विश्वास है कि विश्वकी कोई भी शक्ति भारतको स्वाधीन बननेसे नहीं रोक सकती।" इस आशयकी एक गश्ती चिट्ठी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके जेनरल सेक्रेटरी श्री शंकरराव देव और आचार्य युगलकिशोरने प्रांतीय कांग्रेस कमेटियोंके मंत्रियोंके पास भेजी है। गश्ती चिट्ठीमें आगे बताया गया है कि मेरठ कांग्रेस अधिवेशनने देशके समक्ष अहिंसात्मक सामाजिक क्रांतिके लक्ष्यकी पूर्ति सम्बन्धी महान कार्य उपस्थित किया है। किन्तु क्या वर्तमान समयमें कांग्रेसका संगठन हमारे समक्ष उपस्थित यशस्वी और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यमें सफलता प्राप्त करनेके लिये उपयुक्त है? यद्यपि पिछले वर्षोंमें कांग्रेसकी शक्ति और लोकप्रियतामें महान् वृद्धि हुई है तथापि हमें अवश्य स्वीकार करना होगा कि संगठनकी दृष्टिसे कांग्रेस कमजोर पड़ गयी है। हमारे हाथमें कांग्रेस जनताकी संगठित इच्छा शक्ति और अनुशासनपूर्ण कार्यवाहीका प्रतीक होनी चाहिये। अतः हम प्रत्येक गांवमें रचनात्मक कार्यक्रमके विस्तारके उद्देश्यसे एक कांग्रेस कमेटी गठित करनेका प्रयत्न करें। प्रत्येक गांवमें कमसे कम एक कांग्रेसकर्मी हो, जो ग्रामीणोंका सच्चा पथप्रदर्शक और मित्र प्रमाणित हो सके।" हम सहमत हैं और हम सभी कांग्रेसजनोंसे इस आदेशका पालन करनेका अनुरोध करेंगे।

हरिजन-समस्या—

हरिजन हिन्दू समाजके ही एक अंग हैं, अस्पृश्यता अवांछनीय है और यदि अस्पृश्यता नहीं मिटी तो हिन्दू धर्म ही मिट जायगा, ऐसा मत गांधीजीने कितनी ही बार प्रकट किया है। इसके लिये गांधीजीकी अनुप्रेरणा पर पिछले कुछ वर्षोंमें कार्य भी बहुत हुआ है और अभी भी चल रहा है। फिर भी कुछ हरिजन नेताओंने अपने अनुयायियोंको हिन्दू धर्म छोड़कर इतर धर्मोंमें प्रवेश करनेकी बातें कही हैं और आये दिन वे इसकी धमकियां दिया करते हैं। उनकी ऐसी धमकियोंके उत्तर भारत सरकारके श्रम-सदस्य श्री जगजीवनरामने इन शब्दोंमें दिया है कि धर्म परिवर्तन अवांछनीय है और इसकी चर्चा चलानेवाला व्यक्ति कायर है। कायरोंका कोई धर्म नहीं हुआ करता और जो लोग स्वधर्म छोड़कर विधर्मी होनेकी बात करते हैं, उनके अपने धर्ममें रहने या न रहनेका कोई महत्व नहीं है। श्री जगजीवनरामने धर्म परिवर्तनकी नीतिकी घोर भर्त्सना की है और इसमें सन्देह नहीं कि धर्म जैसी हार्दिक अवस्थाका राजनीतिक उपयोग करनेकी भावना सर्वथा निन्दनीय है। हरिजनोंको कभी भी इस प्रकारकी भावनासे विपथगामी नहीं होना चाहिये। हम समाजमें हरिजनोंकी सभी सुविधाओं एवं अधिकारोंके प्रदान करनेके समर्थक हैं और अबतक जिस अंशमें हमने उन्हें उनके जन्मसिद्ध अधिकारोंसे वंचित रखा है, उसी अंशमें हमने उसका ही नहीं समस्त समाजका अहित किया है। हम कांग्रेसी मंत्रिमण्डलोंसे यथासम्भव प्रबलतम शब्दोंमें अनुरोध करेंगे कि वे अस्पृश्यताको अवैध घोषित करें और इसीलिये हम युक्तप्रांतीय सरकारकी उस प्रस्तावित विधानका स्वागत करते हैं जिसके अनुसार हरिजनोंको मन्दिर प्रवेशमें बाधा देनेवाले कार्योंको दण्डनीय ठहरानेकी व्यवस्था की गयी है। किन्तु हम उनसे यह भी अनुरोध करेंगे कि केवल देव मन्दिरोंके फाटक खुलने, अस्पृश्यताको अवैध घोषित करने अथवा इस प्रकारके कुछ छोटे-मोटे सुधारोंकी व्यवस्था कर देनेसे ही इस समस्याका समाधान नहीं हो सकता। सर्वाधिक आवश्यकता इस बातकी है कि हरिजनोंकी आर्थिक स्थितिमें सुधार करनेवाली व्यवस्थाएं की जायें। सर्वत्र हरिजनोंकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय है अतः भूमि सम्बन्धी ऐसी व्यवस्थाओंकी

आवश्यकता है जिससे उनके भरण पोषणकी समस्या सुलझे। गृहशिल्पों द्वारा भी उनकी इन कठिनाइयोंका निराकरण किया जा सकता है। सच तो यह है कि हरिजन समस्याके केवल धार्मिक एवं अंशतः सामाजिक अंग पर ही अभी तक हमने ध्यान दिया है किन्तु सबसे अधिक उनकी आर्थिक स्थितिके सुधारका प्रश्न महत्वपूर्ण है।

विधान परिषद और मुस्लिम लीग—

९ दिसम्बरसे प्रारम्भ होकर विधान परिषदका प्रथम अधिवेशन गत २० जनवरी तकके लिये स्थगित हो गया था। कितने ही सदस्योंने मुसलिम लीगके सहयोगको सम्भव बनानेके लिये परिषदके स्थगित करनेका अनुरोध किया था। परिषद स्थगित हुई भी और इस बीचमें आल इण्डिया कांग्रेस कमेटीका अधिवेशन भी हुआ जिसने १६ मई की प्रस्तावित विधान योजना सम्बन्धी ब्रिटिश सरकारके ६ दिसम्बरके वक्तव्यको भी स्वीकार कर लिया। इसी विषयकी कठिनाईके आधारपर मुसलिम लीगने परिषद्में भाग लेनेसे इन्कार किया था। बहुतोंकी यह आशा विफल हुई कि ऐसा कर देनेसे लीग कौन्सिल अपने तद्विषयक निर्णयको बदलकर दीर्घकालीन योजना स्वीकार कर विधान परिषदमें सम्मिलित होगी, क्योंकि यथेष्ट समय रहते हुए भी लीगने अपनी कौन्सिल २० जनवरीके पहले न बुलाकर जनवरीके एकदम अन्तिम दिनोंमें बुलाई। स्पष्टतः वह २० जनवरीके एवं उसके बादकी बैठकमें शामिल होना नहीं चाहती थी। कांग्रेसने विचारणीय विरोधी भागके रहते हुए और आसाम, सीमा प्रान्त एवं सिख सम्प्रदायके असन्तोषको देखते हुए भी ६ दिसम्बरके वक्तव्यको स्वीकार करके लीगके प्रति अपनी अत्यधिक सद्भावनाका परिचय दिया और मैत्रीका हाथ बढ़ाया, अतः यदि लीग अब भी विधान परिषदमें भाग नहीं लेना चाहती, तो निश्चय ही इसके लिये कांग्रेसपर कोई आरोप नहीं लगाया जा सकता। किन्तु सम्भव है कि लीगने जिस प्रकार कांग्रेसकी आलोचना करते हुए अन्तःकालीन सरकारमें भाग लिया, उसी प्रकार आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के प्रस्तावको असन्तोषजनक बताते हुए वह परिषदमें भी भाग लेनेका निश्चय करे। क्योंकि ऐसा करनेके अतिरिक्त उसके लिये और कोई रास्ता नहीं रह गया। प्रस्तावित विधान योजनाकी दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन व्यवस्थाएं परस्पर निर्भर हैं और कितनी ही बार ऐसी प्रामाणिक घोषणाएं की जा चुकी हैं कि कोई भी दल एकको अकेले स्वीकार या अस्वीकार नहीं कर सकता। अतः यदि मुसलिम लीग विधान परिषद्में भाग नहीं लेती, तो अन्तःकालीन सरकारसे भी पृथक हो जाना होगा। किन्तु लीग उससे प्रत्येक दशामें चिपटी रहना चाहती है और फिर अपनेको सक्रिय एवं सजीव बनाये रखनेके लिये उसके पास कोई कार्यक्रम भी नहीं है अतः उसके अपने अस्तित्व के लिये आवश्यक, बल्कि अनिवार्य हो चला है कि वह विधान परिषदमें सम्मिलित हो जाय। लेकिन क्या इससे समस्याका वास्तविक समाधान हो जायगा? सम्भवतः नहीं। मुसलिम लीग भारतके नये विधानके प्रति उतनी दिलचस्पी नहीं लेती और भारतीय स्वाधीनताके प्रति तो उसकी कोई दिलचस्पी है ही नहीं, ऐसा निष्कर्ष उसकी अब तक की गतिविधिके आधारपर सर्वथा तथ्यहीन नहीं कहा जा सकता। इसलिये लीगके सम्बन्धमें यह आशंका भी सर्वथा निराधार नहीं होगी कि वह परिषद्में पग-पग पर वितंडावाद शुरू करेगी और प्रगतिका पथ सर्वथा सुगम नहीं रह जायगा। अतः विधान परिषद्में लीगके सम्मिलित होते ही जहां कुछ कठिनाइयोंका अन्त हो जायगा, वहीं कुछ नयी कठिनाइयोंका प्रारम्भ भी होगा। किन्तु रास्ता और कुछ है ही नहीं। १६ मईकी प्रस्ताबित योजना स्वतः इतनी अपूर्ण एवं इतनी दूषित है—किन्तु उसे स्वीकार करनेके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं था,—कि विधान परिषदकी कार्य-प्रणाली सर्वथा निरापद स्वतः नहीं रह गयी है।

संयुक्त राष्ट्रमण्डल और दक्षिण अफ्रीका—

जेनरल जान स्मट्सने दक्षिण अफ्रीकाकी व्यवस्थापिका सभामें घोषणा की है कि वे प्रवासी भारतीय संबंधी संयुक्तराष्ट्र मण्डलके निर्णयको अमान्य कर देंगे। विरोधी दलके नेता डा० मलानने इसके पहले ही संयुक्त राष्ट्र मण्डलको खतरनाक बताया है और स्मट्स भी स्वयं अब कहते हैं कि मण्डलने काले, गोरेका पचड़ा छोड़कर संसारमें एक नया खतरा पैदा कर दिया है। स्मट्सकी यह नीति घातक है और संयुक्त राष्ट्रमण्डलके लिये इसमें खतरा स्पष्ट है। राष्ट्र संघ या अन्य ऐसी ही नीतियोंके कारण हो गया और यदि स्मट्सकी सरकार मण्डलके प्रस्तावको ठुकरा देती है और मण्डल इसके विरुद्ध कार्यवाही नहीं करता, तो उसके निर्णयोंके प्रति किसीकी

कुछ भी आस्था नहीं रह जायगी। इसके परिणाम स्वरूप मण्डल प्रतिष्ठाहीन एवं आगे चलकर अस्तित्वहीन भी हो सकता है। रहा काले गोरेका पवड़ा, तो स्मट्स जैसे साम्राज्यवादी राजनीतिज्ञोंका ऐसी घातक विचारधारा तृतीय विश्वयुद्धकी भूमिका तयार कर रही है।

अछूत और राष्ट्रमण्डल—

डा० भीमराव अम्बेदकरके शेड्यूल्डकास्ट फेडरेशन दलितवर्ग संघने बम्बईके अपने पिछले अधिवेशनमें एक प्रस्ताव स्वीकारकर अछूतोंकी समस्याको संयुक्त राष्ट्र मण्डलमें उपस्थित करनेका निश्चय किया है और इसका उत्तरदायित्व डा० अम्बेदकरपर डाला है। अछूतोंके समानाधिकारके हम समर्थक हैं और बार-बार, तथा इस बार भी इन स्तम्भोंमें हमने विचार अन्यत्र व्यक्त किया है, किन्तु दलितवर्ग संघके उक्त निर्णयको हम नितान्त अनावश्यक, आपत्तिजनक एवं अवांछनीय मानते हैं। अछूतों का प्रश्न हिन्दू समाजका ही प्रश्न है और संयुक्त राष्ट्र मण्डलकी विधान व्यवस्थाके अन्तर्गत उसे मण्डलमें उपस्थित ही नहीं किया जा सकता। यह प्रश्न एक देशके अन्तर्गत ही नहीं, एक समाजका ही भीतरी प्रश्न है और निश्चय ही मण्डल द्वारा इसके स्वीकृत होनेकी कुछ भी आशा नहीं की जा सकती, यह प्रश्न इसके अधिकार सीमाके बाहर, अतः अवैध है। दलितवर्ग संघ इसे उपस्थित करनेका हास्यास्पद प्रयत्न करेगा, किन्तु इसका परिणाम हास्यास्पद ही नहीं, भयावह भी होगा और भारत विरोधियोंके लिये यह एक कुत्सित अस्त्रके रूपमें होगा, जिसका उपयोग वे हमारी स्वाधीनता, सभ्यता एवं संस्कृतिपर प्रहार करनेके लिये करेंगे। इस दृष्टिसे दलितवर्ग संघका यह प्रयत्न सर्वथा निन्दनीय होगा। क्या हम आशा करें कि डा० अम्बेदकर अपने अनुयायियोंका उचित पथ प्रदर्शन करके अपनी दूरदर्शिताका परिचय देंगे ?

'निराला'-स्वर्ण-जयन्ती---

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हिन्दीके युग प्रवर्तक कलाकार हैं और अपनी रचनाओंसे उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्यको गौरवान्वित किया है। निरालाजीने न केवल हिन्दी साहित्यकी गौरव वृद्धि की है, बल्कि साहित्यिकोंकी भी। वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्थाको उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा ही नहीं, अपने व्यक्तित्व द्वारा भी चुनौती दी और विषम परिस्थियां भी इस स्वाधीन चेतापर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ न हो सकीं। आजकी भौतिकवादी सभ्यतामें हम निरालाजीकी इस स्वाधीन प्रवृत्तिको चाहे जिस संज्ञासे अभिहित करें, किन्तु तथ्य स्पष्ट है कि इस कलाकारने सदा ही अपनी लेखनी, बाणी अपने व्यक्तित्वको स्वाधीन एवं गौरवान्वित रखा है। अतएव मां भारतीके इस तपस्वी उपासककी जयन्ती हमारे लिये एक पवित्र साहित्यिक पर्वके समान है। इस अवसर पर हम निरालाजीका अभिनन्दन करते हैं और जयन्ती समारोहके आयोजकोंको हार्दिक बधाई देते हैं।

स्वतन्त्र भारतीय प्रजातन्त्र---

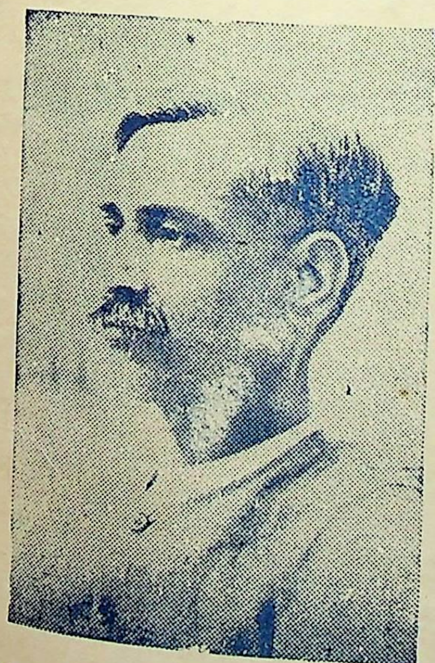
भारतीय विधान परिषद्के गत अधिवेशनमें जिन दो महत्वपूर्ण विषयोंको रूपरेखा मिली है, उनमें उसकी कार्य प्रणाली सम्बन्धी नियमोपनियम तथा राष्ट्रके लक्ष्य के रूपमें स्वतंत्र भारतीय प्रजातन्त्रकी घोषणा सम्बन्धी प्रस्ताव हैं। पहले में विधान परिषद्की पूर्ण क्षमताको स्वीकार करते हुए उसके विभिन्न अंगोंकी स्वाधीनताको भी उनके सीमित क्षेत्रोंकी कार्य प्रणालीके लिये स्वीकार किया गया है और दूसरेमें भारतके भावी स्वरूपके सम्बन्धमें विधान परिषद्ने अपना निर्णय किया है। भारत स्वतंत्र होगा, स्वतन्त्र भारत प्रजातन्त्र होगा और इस स्वतन्त्र भारतीय प्रजातन्त्र की शक्तिका स्रोत जनता होगी। आज का युग निरंकुश शासन-प्रणालीको असह्य समझता है और आजकी विचारधारामें जनताकी सद्भावना ही उनके लिये सबसे बड़ा संरक्षण है। हमारा ख्याल है कि यदि राजतंत्र किसी रूपमें जनता स्वीकार भी कर सकेगी तो उसका स्वरूप एकमात्र वैधानिक होगा और नरेशोंको जनताकी इच्छानुसार शासन करना होगा। अन्यथा संभावनाएं बहुत सुखद नहीं हो सकतीं।

———

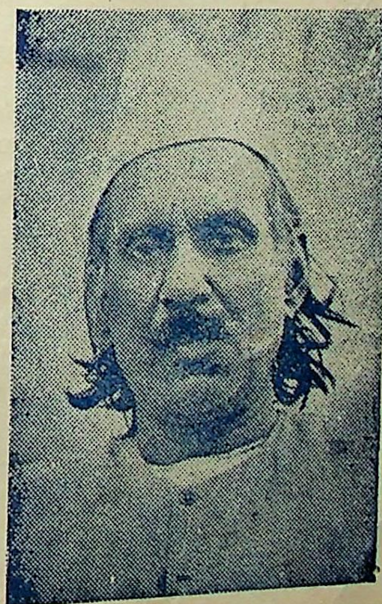
नवलकिशोर सिंह द्वारा विश्वमित्र प्रेस, १४।१५, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तामें मुद्रित और प्रकाशित।



विगत बसन्त पंचमीको युग प्रवर्तक कलाकार निराला जी की
स्वर्ण- जयन्ती काशीमें मनायी गयी।

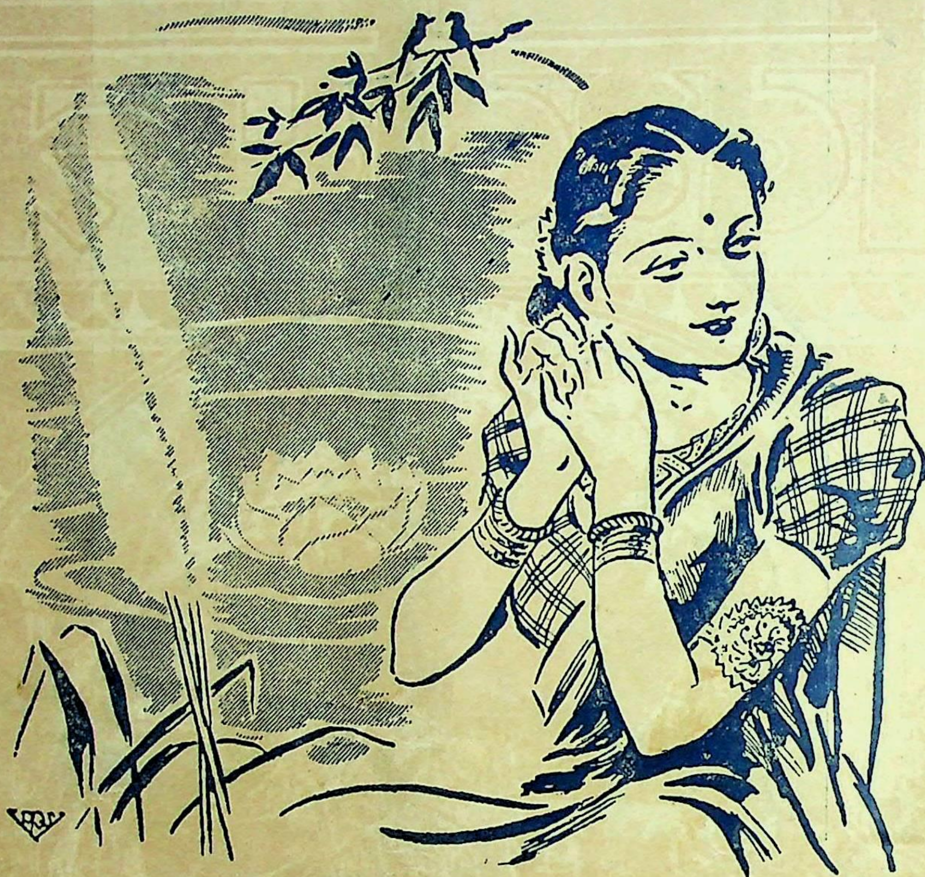


जयन्तीके अवसर होनेवाली साहित्य परिषदका [illegible]
आचार्य नरेन्द्रदेवने किया।



साहित्य परिषदके अध्यक्ष माननीय श्री सम्पूर्णानन्दजी

Regd. No. C. 2230



सचित्र मासिक

विश्वमि



वार्षिक
मूल्य
६)

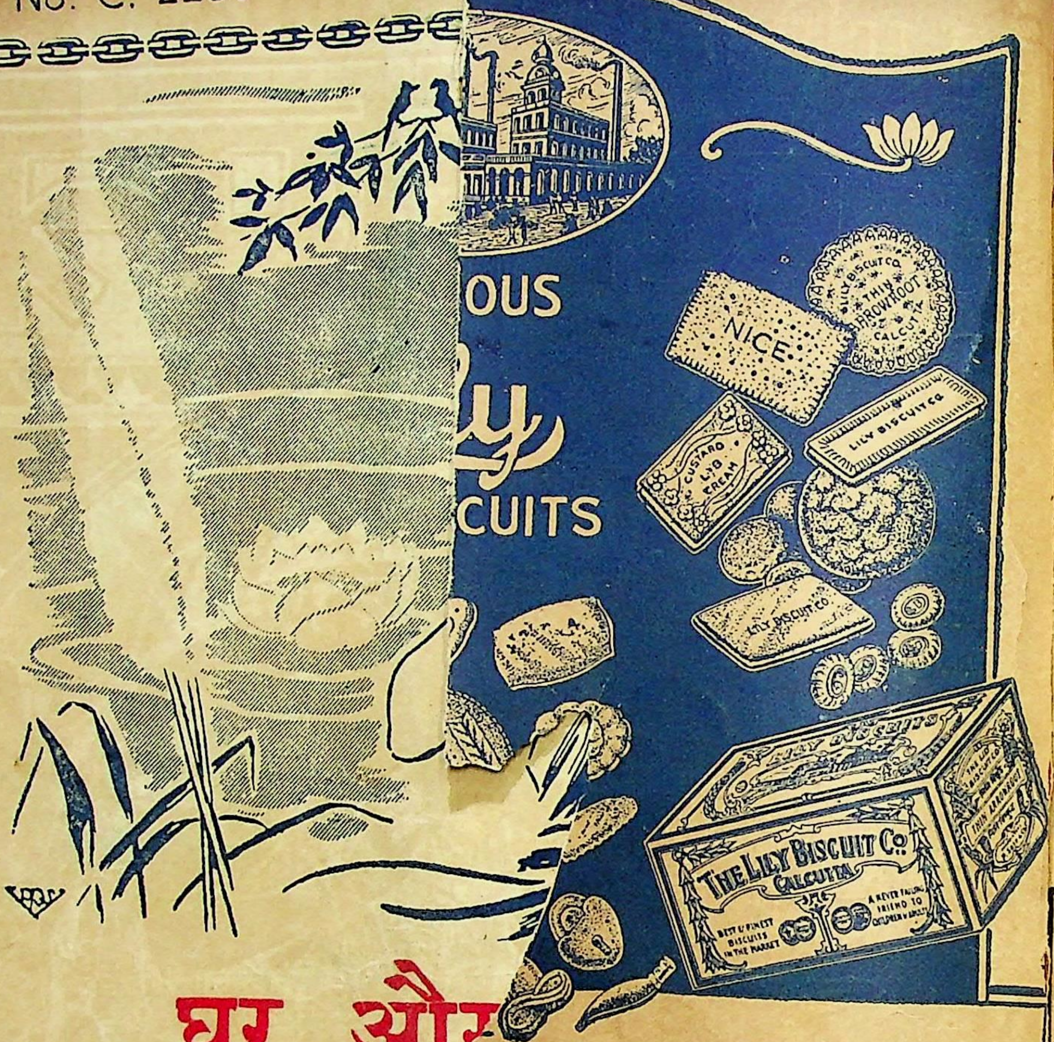
विश्ववि
क

विश्वमित्र

ल, १६४७

य-सूची

Regd. No. C. 2230



मासिक विश्वमित्र

अप्रैल, १९४७

विषय-सूची

विषय-सूची

मासिक

विश्वामित्र

सम्पादक—

शिवदेव उपाध्याय 'सतीश' बी० ए०, बी० एल०

अप्रैल १९४७ वर्ष १५, संख्या---४ बैसाख २००४

मिलन यामिनीसे

डालें पलाशकी फूट पड़ीं
प्रिय, छूट गया धीरज मेरा !

मैंने तो यह गुन कर रक्खा था
जब सांसें बसंती आयेंगी,
तब अपने सौ बरदानों में
वह साथ तुम्हें भी लायेंगी,
पत्ते-पत्ते ने टूट यही
मेरे कानों में बात कही,
कब समझा था, मेरी आशा
यों अपने मुंह की खायेगी,
यह सोच-बहार नहीं आई
धोखेमें अपनेको रक्खा—
डालें पलाशकी फूट पड़ीं
प्रिय, छूट गया धीरज मेरा !

मैंने तो यह गुन रक्खा था
जब भृंगोंकी धुन गूंजेगी,
तब नीरव घड़ियोंमें सेई
मेरी साधें भी पूजेंगी,
        हर गूंगे क्षणके अन्दरसे
        आवाज यही मैं सुनता था—
‘रुन-झुन’ करती वह आती है
जो पीर तुम्हारी बूझेगी !
        कितना कानोंको रूंधूं मैं,
        बौरें आमों पर बौराए
        भौरोंकी पातें टूट पड़ीं
        प्रिय छूट गया धीरज मेरा !
        डालें पलाशकी फूट पड़ीं !
        प्रिय छूट गया धीरज मेरा !
शाखोंने कल्ले फोड़े पर
देरी उनके हरियाने में,
कुछ काल अभी तक बाकी है
सचमुच मधुऋतुके आने में
        अलि आतुर गंध-पराग रहित
        कलियों पर भी रम जाते हैं,
मन मान विलम्ब अभी कुछ है
विहगोंके खुलकर गाने में।
        अपनेको बहला रखने की
        आखिर कुछ हद भी होती है,
        कोकिल ‘कुहु-कुहु’ कर कूक पड़ी
        प्रिय, छूट गया धीरज मेरा !

एशियाकी सांस्कृतिक एकता

श्री केशवचन्द्र मिश्र एम० ए० बी० टी०

मध्य और प्रशान्त महासागरोंके बीच फैली हुई विस्तीर्ण एशियाका ऐक्य इतना सहज है कि हिमाच्छादित-गगन चुम्बी हिमवान की विशाल काया भी किसी प्रकार इस इकाईको भंग न कर सकी। भौगोलिक रचनाओंने केवल इतना ही किया कि दो प्रशस्त सभ्यताओंके केन्द्र-भारत और चीनको विलग रखकर अबाध रूपसे उनके सांस्कृतिक प्रयोगोंके लिये अवसर उपस्थित किया। लेकिन प्रयोगोंका पुटपाक जब-जब तैयार हुआ उसके आदान-प्रदानमें भूगोलने कभी भी बाधा नहीं उपस्थित की। मनुष्यकी बलवती अभिलाषाओं और भगीरथ श्रमके समक्ष प्रकृति कब तक टिक सकती। यही कारण है कि एशिया निवासियोंने अपने सांस्कृतिक प्रयोगोंके लिये भारतको प्रयोगशाला बनाया और सम्पूर्ण विस्तृत भूखण्डको प्रयोग का उर्वर-क्षेत्र।

संस्कृतिका स्वरूप और उसकी विवेचना यहां थोड़ा आवश्यक है। संस्कृतिका सम्बन्ध मनुष्य, या किसी जाति विशेषकी रचनात्मक वृत्तिसे है। इसकी गति क्रियात्मक होती है। इसीलिये इसकी स्थिति स्थायी होती है, जहां सभ्यताकी स्थिति परिवर्तनशील और सामयिक होती है। सभ्यताका मूल्य उसके वर्तमान जीवनमें भी आंका जा सकता है किन्तु संस्कृतिका स्वरूप-निर्धारण उसके उपादानों के संचित कोषके आधारपर ही हो सकता है। यह वर्षों के उपरान्त ही होता है। इसलिये संस्कृतिकी अभिव्यक्तिका साधन-साहित्य, कला—वास्तु, चित्र, शिल्प, मूर्ति संगीत और नैतिक उच्चता है। किन्तु सभ्यताके उपादान वेश-भूषा, आचार और रीति हैं। यदि सभ्यता शरीर है तो संस्कृति उसकी आत्मा। यह वह मिश्रित भावना है जिसकी स्थिति मनुष्यके दैनिक क्रिया-कलाप और आध्यात्मिक परिचर्याके बीचमें है। इसकी अभिव्यक्ति साहित्यमें शब्दचित्रों द्वारा, कलामें प्रतीकों द्वारा और संगीतमें लय द्वारा होती है।

यदि संस्कृतिके इन अवयवोंको लेकर देखा जाय तो सारी एशिया एक अविछिन्न निकेतनके समान प्रतीत होगा। निस्सन्देह राजनीतिक स्पर्धाके कारण मध्ययुगमें अंतरेशियाका संघर्ष चलता रहा किन्तु वह स्थायी और एक देशीय ही रहा। और यदि सूक्ष्म विवेचनको लेकर देखा जाय तो प्रतीत होगा कि इन सब वाह्य विभिन्नताओं के भीतर एशियाके सब छोटे-बड़े भू-भागोंको जोड़नेवाली अक्षुण्ण भावना है जो सब देशोंके निवासियोंमें सर्वदा पाई जाती है, वह है आध्यात्मिकतामें अटूट अनुराग। यही भावना एशियाकी संस्कृतिकी अपनी विशेषता है जो एशिया से इतर देशोंमें नहीं पाई जाती। एशियाके सब देशोंके निवासियोंका परोक्ष-शक्ति की सर्वशक्तिमत्तामें विश्वास समान रूपसे पाया जाता है। इसके विपरीत बाल्टिक और रूम सागरके तटपर पनपनेवाली सभ्यताओंमें पार्थिव शक्तिमें विश्वास पाया जाता है। अर्थात् एशियाने पार्थिव को साधन बनाया और उन्होंने इसे ही साध्य।

यही नहीं एशियाई, संस्कृतिका निर्माण धर्मके सहारे और आध्यात्मके द्वारा हुआ। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि एक स्थानसे दूसरे स्थान तक इसका विनिमय भी धर्मोंके द्वारा ही हुआ। इसीलिये इस महाद्वीपमें एक सार्वभौमिक संस्कृतिका किस प्रकार निर्माण हुआ यह जानने के लिये यहां उदित होनेवाले धर्मोंका भौगोलिक परिचय जान लेना आवश्यक है।

एशियाकी अटूट आध्यात्मिकताके धर्म भावनासे ओत-प्रोत होनेका परिणाम हुआ कि इसका जीवन कर्म धर्मसे परिवेष्ठित रहा। इसके प्रत्येक कर्मकी अभिव्यंजना ही धर्मों के माध्यमसे हुई। इसी लिये जगतके प्रमुख चार धर्मोंकी जननी होनेका श्रेय एशिया ही को प्राप्त हुआ।

विश्वमें प्राचीनतम धर्म आर्य्य धर्मका विकास पामीरकी उपत्यकामें हुआ। वहांसे इसकी एक देशवाहिनी शाखा पूरवके यूनान, रोम, जर्मनी,, स्कैन्डनेविया और ब्रिटिश द्वीपमें गयी। इसाई मतके प्रचारके पश्चात् भी उस प्राचीन आर्य्य भावनाका दर्शन प्राप्त कर लेना दुष्कर नहीं

है। न्यायाधीश मेनने अपनी पुस्तकमें दिखलाया है कि आयरलैण्डका प्राचीन विधान "वीहान" का घनिष्ट संबन्ध वैदिक विधानसे है। आर्य्य संस्कृतिका प्रभाव वहांके निवासियोंके रुधिरमें इस प्रकार मिश्रित हो गया है कि ईसाई मत के सदियोंके प्रभावके उपरान्त भी जब बीसवींसदीमें अनुकूल प्रेरणा मिली है तो महाकारवे और इट्सके द्वारा भारतीय शैलीमें आर्य्य भावना फूट पड़ी है। वहांकी प्राचीन जनगाथाओं और पौराणिक कथानकोंमें उस अध्यात्म भावनाकी झलक मिलती है। और आज आयरलैण्डके साहित्यिक नव-जागरणमें आध्यात्मिकताका ही प्राबल्य लक्षित होता है, जो ईसाइयतकी नहीं, अपनी संस्कृतिकी देन है। ईरानके पठार पर आर्य्य धर्म व पारसी धर्म और भारतमें वैदिक धर्म था। इसी वैदिक धर्मका एक स्वरूप आगे चलकर बौद्ध धर्म भी हुआ। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्य्य धर्मके दो प्रशस्त और एकमात्र स्तम्भ वैदिक और बौद्ध धर्म हैं। आर्य्य धर्म का पड़ोसी धर्म जिसकी स्वतन्त्र स्थिति उतनी महत्वशाली है जितनी आर्य धर्मकी, इसकी तीन मुख्य शाखायें हुईं—

अरब, हिब्रू और एथिओपियन (अफ्रिकन)। इसमें एशियाकी भूमि पर उदित होने वाले अरब और हिब्रू के द्वारा आर्य्य धर्मकी आत्मा-अध्यात्म-इस्लाम और ईसाई मतमें प्रविष्ट हुई। जैसा कि प्रो० जेम्स एच० कार्जन महाशयकी उक्ति है। पार्थिव प्रधान इसाई मतमें आध्यात्मकी व्यंजना अनिवार्य रूपसे एशियाकी विशेषता है जो आर्य्य संस्कृतिकी अपनी छाप है।

उधर सुदूरपूर्वमें मंगोलियाकी पुरातन धर्म भावनाको तोओ और कनफ्यूसनकी दार्शनिकताने चीनमें और शियेने जापानमें जब अपदस्थ किया तब आर्य्य संस्कृतिके लिये वहां भी उर्वर क्षेत्र तैयार होने लगा। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वेदोंका व्यक्तिवाद तोओ और कनफ्यूसनका साम्यभाव और शिराटोंका पितर-पूजा सब व्यापक आर्य्य धर्मकी आंशिक प्रतिकृति है।

इस प्रकार भौगोलिक आधार पर विवेचना करने पर निष्कर्ष निकला कि विश्वके एकमात्र चारों धर्मों—वैदिक, बौद्ध, ईसाई और इस्लामका जन्म एशियामें ही हुआ और इतर धर्मोंमें भी आर्य्य संस्कृतिका पुरातन प्रभाव अमिट रूपसे पड़ा, जिसका क्षेत्र निर्विवाद रूपसे यूरोप भी था। और कालान्तरमें भूमंडल ही उसकी आर्य्यव्यक्तिका क्षेत्र बन गया।

लेकिन एशियाके भव्य सांस्कृतिक भवनके निर्माणकी प्रक्रियाका समुचित प्रारम्भ बौद्ध धर्मके प्रचारके साथ होता है। वैदिक संस्कृतिने तो केवल क्षेत्र बनाया था। अतः उस क्रमशः निर्माणका एक सूक्ष्म विवरण उपस्थित करना अत्यंत आवश्यक है। जिससे कि यह प्रकट हो जाता कि एशियाकी मौलिक सांस्कृतिक एकताका विकास किस प्रकार समान हो सका।

आर्य्य धर्म		सेमटिक धर्म	मंगोल दर्शन
पाश्चात्य	प्राचीन	हिब्रू-इसाई	होओ
पेलास्टिक	वैदिक	(यूरोप अमेरिका)	कनफ्यूसन
(यूनान रोम)	हिन्दू	अरब-धर्म-इस्लाम	(चीन)
केल्टीक	बौद्ध	(एशिया अफ्रीका)	शिराटों
(फ्रांस ब्रिटेन)	(भारत एशिया)	एथिओयिन	(जापान)
आयरलैण्ड			
दार्शनिक	पारसी धर्म	(अफ्रिकन)	
(जर्मनी)	(फारस)		
नासिर			
(स्कैन्डनेविया)			

अपर्युक्त बातोंसे स्पष्ट हो गया कि सेमेटिक और मंगोल दर्शनकी स्वतन्त्र स्थिति होते हुए भी आर्य्य धर्मका प्रभाव उन पर पड़ा और उनमें मिल कर ऐसा उर्वर संस्कार प्रतिष्ठित किया कि एशियाई संस्कृतिका वृक्ष सघन छायाके साथ उत्पन्न हुआ।

भारतसे चीन और कोरिया

सांस्कृतिक विनिमय धर्म द्वारा ही हुआ। इस लिये धर्मके साथ संस्कृति साहित्य, कला, आचारका भी विनिमय होता गया। इस सांस्कृतिक विपुल प्रवाहका जिसने सम्पूर्ण एशिया और अन्य निकटस्थ देशोंको प्लावित किया उद्गम-स्थान भारतवर्ष बना। आर्य्यावर्तसे आचारका मधुमय सौरभ जब विकीर्ण हुआ तब दिक् दिक्से जिज्ञा-

शुओंकी मन्डली इधर लुब्ध हो दौड़ने लगी। पुरातन चीनने उस सौरभकी परखका प्रमाण सबसे पहले प्राप्त किया। पूर्व भारतमें कर्मकांडके साथ-साथ यौगिक प्रक्रियाका पूर्ण प्रचार था। अराकानके पार्वत्य प्रदेशमें घर घर योगकी शिक्षा थी। यहांसे चीनियोंने ली। जिसका प्रभाव होओ दर्शन पर पड़ा। ई० पू० १२६ में जब चीनमें हांगकांगका शासक किंग डी शासन कर रहा था, व्यापारी पश्चिमी एशियामें वक्षु के तट तक पहुंचने लगे। व्यापारियोंने ही सम्राटको भारतमें विकसित होने वाले नूतन धर्म बौद्ध धर्मकी सूचना दी और बौद्ध धर्मको पहले पहल राजधर्मके रूपमें घोषित किया। फिर क्या था, इन दो विशाल और दीर्घ देशोंमें सांस्कृतिक आदान प्रदानके लिये भी मार्ग खुलो। सम्राटने एक प्रतिनिधि मंडल भारतमें भेजा जो वहांसे दो बौद्ध भिक्षु तथा, धार्मिक ग्रंथ फिर चीनमें लाये। राज प्रसादमें ही भारतीय बौद्ध कलाके आचार पर एक मन्दिरका निर्माण कराया गया। दीवारों पर भारतीय चित्र कला अंकित हुई। यहां से बौद्ध कलाके चीनी कला पर प्रभावका श्री गणेश हुआ। यहीं से एशियाकी संस्कृतिका निर्माण भी।

अशोकने धर्म प्रचारका जो व्यापक संकल्प किया। उसके फलस्वरूप बौद्ध धर्म एशियाके पश्चिमी भागोंमें फैल गया। जूरो थूस्टके अनुयायी इस मानव धर्मके सम्मोह से न बच सके। जब पाथियामें यूनानी साम्राज्यका ह्रास होने लगा तब चीन जानेका अतिकालसे अवरुद्ध मार्ग खुल गया और ईरान और तुर्किस्तानके बौद्ध भिक्षु चीनमें समूहोंमें प्रविष्ठ हुए। इस प्रमाणके आधार पर दो बातें स्पष्ट होती हैं। पहली यह कि पूर्वी एशियामें बौद्ध संस्कृति ले जानेमें तीन शक्तियां कार्य कर रही थी। स्वयं चीन द्वारा भारत और एशियाके पश्चिमी देशों द्वारा। दूसरी यह कि पार्थिया साम्राज्यके विनष्ट होनेके पूर्व ही सारी पश्चिमी एशियामें बौद्ध संस्कृति फैल चुकी थी। इसकी पुष्टि तुरकिस्तानमें वक्षु तट पर प्राप्त भग्नावशेषो, मूर्तियों और सिक्कोंसे होती है।

ई० स०की तीसरी शताब्दीमें चीनमें तातारियोंका साम्राज्य स्थापित हुआ। तातारोंने बौद्ध संस्कृतिको और आस्तिक रूपमें अंगीकार किया। और उनके श्रम-सीकरोंसे अभिसिंचित होकर इसने रूसमें पनपनेका अवसर प्राप्त किया। चीनमें तातारोंका प्रभाव छठी सदी तक रहा। तातार शासकने ही फाहियानकी भारतीय यात्राकी व्यवस्थाकी थी। भारत और पूर्व एशियाके सम्बन्धके उस अंगकी पूर्ति फाहियानने की जो अभी तक अछूता था। धार्मिक ग्रन्थों का अनुदन कर चीन ले गया, जिसके फलस्वरूप भारतीय साहित्यका प्रभाव वहांकी साहित्यिक प्रवृत्ति पर पड़ा और यह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

चीनमें सन् ६१८-९०७ के बीच टांग वंशका साम्राज्य स्थापित था। इस समय केवल चीनकी राजधानी लोयांग में तीन हजार भारतीय भिक्षु और दस हजार परिव्राजक परिवार निवास कर रहा था। इसी समय चीनी कला में—कालान्तरमें जापानी कलामें अजंता और इलौराकी कलाओंका समावेश हुआ। चीनी लिपिका भारतीय ढंगपर संस्कार हुआ और वही आगे चलकर जापानकी राष्ट्रीय लिपि बनी।

दार्शनिक विनिमय जो चीनी जिज्ञासुओंने ई० पू० चौथी सदीसे प्रारम्भ किया था, योगके रूपमें इस कोटि तक पहुंचा कि कनफ्यूशन, तोओ और योग दर्शन का सम्पुट बना, जिसका स्फुरण चीनियोंके जीवनमें मानव धर्मके रूपमें हुआ। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उनके राजनीतिक जीवन पर भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। १९१२ में जब चीनमें एकाएक प्रजातन्त्रकी स्थापना हुई तब यूरोप वालोंको और विश्वके कई देशोंको उनकी सफलता काफी संदिग्ध ज्ञात हुई। किन्तु लोगोंका यह भ्रम-मात्र था। इस आश्चर्यजनक सफलताका रहस्योद्घाटन करते हुए जापानके क्यूगीजुकू विश्वविद्यालयके प्रो० जेम्स एच० कार्जनने कहा है कि चीनने यह क्षमता भारतीय संस्कृतिसे प्राप्त की। भारतने शताब्दियों तक प्रजातन्त्र का प्रयोग किया था। यही नहीं, चीनने ज्ञान क्षेत्रकी महत्ता इतनी मानी कि उसके समक्ष पार्थिव समृद्धिका अर्जन वहांके निवासियोंके लिये नगण्य बन गया। प्रसिद्ध विचारक बर्टेण्ड रसेलकी उक्ति कि चीन एक ऐसा देश है जहां विद्या अर्जनके समक्ष धन-संग्रह कोई स्थान नहीं रखता—बहुत ही उपयुक्त है।

कोरियामें इस सांस्कृतिक विनियोगका निर्माण सन्

३६९ से प्रारम्भ हुआ जब चीनके राजाने भिक्षु भेज कर बौद्धको समाविष्ट कराया। तदुपरांत वहां भी बौद्ध कला, शिक्षा, आदिका प्रवेश हुआ। पाक्चके राजाने कितने कलाविदोंको अपने देशमें मगाया और एशियायी ऐक्य-निर्माणको पूरा किया। किन्तु पन्द्रहवीं शताब्दीके अन्त तक जब ईसाई मतका प्रचार कोरियामें हो गया तब बौद्ध धर्म पर कठिन प्रतिबन्ध लगा दिया गया। लेकिन एशियाकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति पर ईसाईयतःका पार्थिव प्रभाव स्थायी नहीं हो सका और आज जब कोरियामें नव जागरण प्रारम्भ हुआ है, लोग बौद्ध संस्कृतिको पुनर्जीवित करनेके लिए भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं।

जापानका सांस्कृतिक संवरण

छठीं शताब्दीके मध्यमें शिंटो धर्म मतावलम्बी जिज्ञासुओंने पितृ-पूजाकी अति पुरातन विधिके साथ बौद्ध धर्मका समन्वय प्रारम्भ किया। जापानने स्वेच्छा और श्रद्धा से बौद्ध संस्कृतिकी वेगवती धाराका स्वागत किया। जापानके पास अपनी भावात्मक वृत्ति थी। उसने चीनकी बौद्धिक आकांक्षा ली और भारतसे आध्यात्मिक आस्था और एक ऐसी अमोघ शक्तिका मिश्रण तैयार किया जिसने जापानको एशियायी राष्ट्रोंके शिखर पर बैठा दिया। एक नूतन कला-साहित्य-संगीतको प्रश्रय मिला। जापानने जितनी तत्परतासे अजंताकी चित्रकारीका अनुकरण किया और जितनी शीघ्रतासे सफलता प्राप्तको उतनी एशियाके अन्य किसी देशने नहीं की।

संगीतके क्षेत्रमें वाद्य-यन्त्रों तक प्रभाव पड़ा। जापानका 'वीबा' हमारे यहांका वीणा ही है। क्रमशः जापानमें भारतीय साहित्यिक प्रवृत्तियोंका भी प्रभाव पड़ गया। काव्य के कथनक पर तो बहुत क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा ही, जापानमें एक नई दार्शनिकता प्रतिष्ठित हुई। इसमें शंकर के अद्वैतका ही मौलिक आधार था। गुप्तकालीन कर्मकांड का अवशेष जापानमें तो आज भी वर्तमान है। मुण्डमाल सहित महेश्वर, वीणा सहित सरस्वती, सौंदर्य और ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री लक्ष्मी, आज भी जापानमें पूजित है। जापानके ग्रामोंमें गणेशकी अर्चना प्रचलित है। ईसाई धर्मके शीघ्र प्रसारके उपरान्त भी राष्ट्रीय धर्म शिंटो और बौद्धका मिश्रण ही है।

जापानके इतिहासमें फ्यूजीवारा शासनकालके समाप्त होते ही उसके सांस्कृतिक जीवनमें बड़ी शीघ्रतासे परिवर्तन प्रारम्भ हो गया जैसा कि इतिहासकार ओकाकुराने लिखा है, लोगोंकी चिंतन-प्रणाली, कला, धर्म विधि, सबमें मनोवैज्ञानिक परिवर्तन प्रारम्भ हो गये। लेकिन इस परिवर्तन का प्रभाव अधिकतर वाह्य ही रहा। समूरियाकी मौलिक भित्ति महात्मा बुद्धके ही दार्शनिक विचार थे।

जापानकी बीसवीं सदीकी साम्राज्यवादी लिप्साको देखकर जगतके विचारकोंको उसके एशियायी चरित्रपर सन्देह होने लगा है। लेकिन समुचित परिशीलनके पश्चात् ज्ञात होता है कि १९ वीं सदीके यूरोपीय प्रभावका ही यह परिणाम है। निस्सन्देह जापानके जीवनपर यह प्रभाव अस्थायी और वाह्य ही है। जापान किसी भी प्रकार दीर्घकालीन एशियायी संस्कृतिके प्रभावसे उन्मुख नहीं हो सकता। क्योंकि यह उसके अभ्यंतरिक जीवनमें प्रविष्ट होकर इस प्रकार बन गया है जैसे उसका सहज रूप। जापानकी वही कला सर्वोत्तम उतर सकी है जो बौद्ध प्रणालीपर है। अर्थात् जापानकी नैसर्गिक प्रतिभाका अभिव्यंजन एशियायी संस्कृतिके भीतर होता है। अतः यह यह निश्चित बात है कि जापानकी भीषण रक्त-पिपासा शीघ्र ही लुप्त होगी। एशिया व्यापी संस्कृति का ऐसा नवजागरण होगा कि जापान पाश्चात्यके कितने गतिशील देशोंके पूर्व ही प्रजातन्त्रकी स्थापना कर लेगा।

ब्रह्मा और तिब्बत

धर्म आत्माका व्यापार है। इसीलिये धर्म प्रचारमें बल प्रयोग सर्वदा असफल रहा है। एशियाके सांस्कृतिक भवनका निर्माण श्रद्धा और समर्पणके ही आधारपर हुआ। इसलिये वह शाश्वत बन सका। ब्रह्मा और तिब्बत निवासियोंका जातीय सम्बन्ध यद्यपि मंगोलोंसे था किन्तु उनका अध्यात्मिक सम्पर्क भारतवर्षसे बहुत पहले ही स्थापित हो गया। ब्रह्माको तो इस दृष्टिसे भारतका अविछिन्न अङ्ग ही मानना चाहिये। ११ वीं १२ वीं सदी

के ब्रह्माकी राजधानी पेगान मानो अशोकका पाटलि पुत्र था। और ब्रह्मा भारतके आन्तरिक सांस्कृतिक मण्डलका एक अनिवार्य अङ्ग। आज भी ब्रह्माके ९० प्रतिशत निवासी बौद्ध हैं।

तिब्बत निवासियोंकी जातीय विशेषता उनका रूढ़िपर अटूक श्रद्धा और विश्वास है। भारतीय संस्कृतिसे उनका सम्पर्क आर्य कालीन है। किन्तु ई० पू० दूसरी सदीमें तिब्बतकी उपत्यकाओंको भेदकर भिक्षुओंने वहां इसका बीजारोपण किया। बौद्ध संस्कृतिका जो विकारहीन रूप वहां रक्षित रह सका वह अन्यत्र नहीं। तिब्बतकी कला की भूमिका भारतकी बौद्ध कलासे पड़ी। किन्तु मंगोलिया से जब मुगल साम्राज्यका प्रसार बढ़ा तब तिब्बतकी कला पर मुगल सजावटका भरपूर प्रभाव पड़ा। इसके पूर्व ही चीनकी शैलीका प्रभाव तिब्बतकी कलापर पड़ रहा था। इस प्रकार आजकी तिब्बतकी राष्ट्रीय कलाका स्रोत-मूलतः बौद्ध और अंशतः मंगोल और चीनी है।

तुर्किस्तान

पहले चर्चा हो चुकी है कि चीनको बौद्ध संस्कृतिका सन्देश वक्षु-तटसे प्राप्त हुआ। लेकिन मध्य एशियासे सांस्कृतिक सम्बन्ध और भी पुराना है। अत्यन्त प्राचीन कालसे ही खोतान व्यापारियोंके गमनागमन का केन्द्र था। इसीलिये यह भाग मध्यकाल तक समुन्नत सभ्यता का भी केन्द्र रहा। पुरातत्व सम्बन्धी वहांकी बहुमूल्य खोज, वहांके सांस्कृतिक प्रभुत्वको प्रमाणित करते । वहां कला सम्बन्धी अनेक अवशेषोंके अलावा गुप्त कालीन लिपि में महायान शाखाके धर्म ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। खोतान निवासी अब भी अपनेको कुवेरका परिवर्ती मानते हैं। प्रो० जेकोबी इस संस्कृतिकी अवधि और पीछे ले गये हैं। खोतानके वरुण और इन्द्रकी उपस्थिति उन्होंने ऋग्वेदके समयसे मानी है। डा० स्टेन कानवने ई० पू० १४०० की एक घटनाका उल्लेख करते हुये कई महत्वपूर्ण बातोंकी ओर संकेत किया है। मेसोपोटामिया और बुखाराके हिताइतों ये यहूदियोंके भेड़ोंके व्यापार सम्बन्धी एक सन्धिका प्रसंग है। इस अवसरपर वरुणकी प्रार्थनाकी गयी है। कहनेका प्रयोजन यह कि मध्य एशिया और पश्चिमी एशियाका सांस्कृतिक निर्माण भी आर्य और बौद्ध संस्कृतिके मिश्रणसे ठीक उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार भारत भूमिपर।

बृहद्तर भारत

हिन्द महासागरके अंकमें विकीर्ण द्वीपोंके सांस्कृतिक ऐक्यकी चर्चाकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं। क्योंकि यदि संस्कृतिके आधारपर देखा जाय तो जावा और लंका भारतके सबसे स्वाभाविक अंग हैं। लंकामें तो उन सब व्यवस्थाओंका प्रभाव अमिट रूपसे अवशिष्ट है जो दक्षिण भारतको प्रभावित कर सकीं। यह सम्बन्ध अशोकके समयसे और अनुप्राणित हो गया।

जावामें जिस समय चीनी यात्री फाहियान पहुंचा तो ब्राह्मण धर्मका प्रचार हो चुका था। उस समय वहां वैष्णव और शैवधर्मको माननेवाले ब्राह्मण और बौद्ध श्रमण ही निवास कर रहे थे। जावा एशियाका वह भाग है जहां न केवल बौद्ध धर्म वरन् ब्राह्मण धर्मकी भी पूर्ण अभिव्यक्ति हुई। ठीक भारतीय शैलीपर ब्राह्मण कला की क्रियात्मक शक्तियोंका जैसा मनोहर विकास जावामें हुआ वैसा अन्यत्र नहीं। आज भी सैकड़ों अवशेष उस प्रशस्त संस्कृतिकी मेधावी शक्तिके साक्षी रूप वर्तमान हैं। सीलोन, स्याम अन्नाम, कम्बोडिया, चम्पा, जावा-सुमात्रा, बोर्नियो-बाली भारतीयोंके राजनीतिक उपनिवेशोंसे अधिक सांस्कृतिक उपनिवेश थे। इनके एक कोनेसे दूसरे कोने तक भारतीय कला, भारतीय शिक्षा, भारतीय धर्म तथा शास्त्र फैलकर एशिया-व्यापी संस्कृतिकी रचना युगों तक करते रहे। इन उपनिवेशोंमें पहले तो हिन्दू धर्मका प्रचार था, फिर बौद्ध धर्म फैला। बौद्धोंके महायान धर्मके प्रवेशसे हिन्दू धर्मकी प्रधानता कुछ घटी, फिर भी दोनों साथ-साथ चलते रहे।

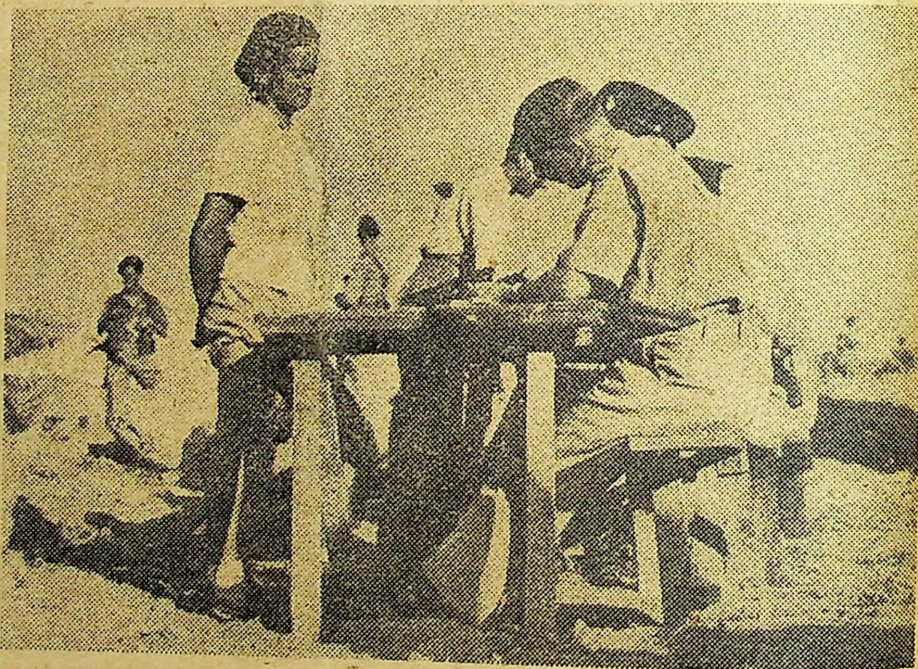
इस प्रकार एशियाई देशोंका सांस्कृतिक सामंजस्य एक तथ्यके रूपमें प्रमाणित हो चुका है और भारतका इस सामंजस्यकी स्थापनामें महत्वपूर्ण योगदान रहा है। गत २३-२५ मार्चको दिल्लीके पुराने किलेमें अखिल एशिया सम्मेलन हुआ है, वह भी इसी दिशाकी ओर संकेत करता है।

फिलस्तीनकी समस्या

श्री विश्वनाथ सेठी बी० एस० सी०

फिलस्तीनमें उपद्रवोंकी पुनः बाढ़ सी आ गयी है। यहूदियोंने आतंकवादका सहारा इस हद तक लिया है कि अभी पिछले दिनों उन्होंने बकिंघम राज-प्रासादको उड़ा देनेकी धमकी दी थी। हैफामें पिछले दिनों भयंकर उपद्रव हुए हैं, तलअवीव अशान्त है और यरूशलममें बारूद राखके नीचे दबी पड़ी है। फिलस्तीनकी समस्याके समाधानके लिये जितने प्रयत्न अब तक हुए हैं, सभी विफल हुए हैं और समस्या उत्तरोत्तर जटिलतर होती जा रही है। कुछ दिन पहले अमेरिका और ब्रिटेन प्रतिनिधियोंकी एक संयुक्त कमेटीने फिलस्तीनकी समस्याके समाधानके लिये कुछ सिफारिशेंकी थीं और आशा की गयी थी कि उनके कार्यान्वित होने पर सवाल हल हो जायगा। किन्तु अरब इसीलिये भड़क गये कि प्रतिवर्ष एक निश्चित संख्यामें यहूदी फिलस्तीनमें बसाये जायेंगे। अमेरिकाने बराबर इस बात पर जोर दिया कि उक्त कमेटीकी सिफारिशों पर अमल किया जाय लेकिन ब्रिटेनने उत्तरदायित्व लेनेसे इन्कार किया। ब्रिटेनने उत्तरदायित्व लेनेसे इन्कार क्यों किया? कारण स्पष्ट है। अरबोंने सिफारिशोंका तीव्र प्रतिरोध किया। अरब राज्योंमें एक अरसेसे ब्रिटेनके विरुद्ध भावनाएं बनी हुई हैं और फिलस्तीनको लेकर दिलोंमें भरी हुई आग भड़क न जाय और रूस उसकी चिनगारियोंको हवा देकर सर्वत्र फैला न दे, इसलिये ब्रिटेन राजी नहीं हुआ। अमेरिकाने अनुरोध किया, यहूदी असन्तुष्ट हुए, भयंकर काण्डोंकी पुनरावृत्ति हुई, पर ब्रिटेन राजी नहीं हुआ।

फिलस्तीनमें आज जो कुछ हो रहा है, उसकी पृष्ठ भूमि समझ लेनी चाहिये। यहूदी युगोंसे सतायी हुई जाति है। क्यों सतायी गयी यहूदी जाति, इस पर भी मतभेद है—सदासे यह विवादग्रस्त विषय रहा है। घेट्टो प्रणाली यहूदियोंको ही आक्रान्त करनेके लिये निकाली गयी, और इस युगमें हिटलर सबसे बड़ा यहूदी-विरोधी था कभी उसने

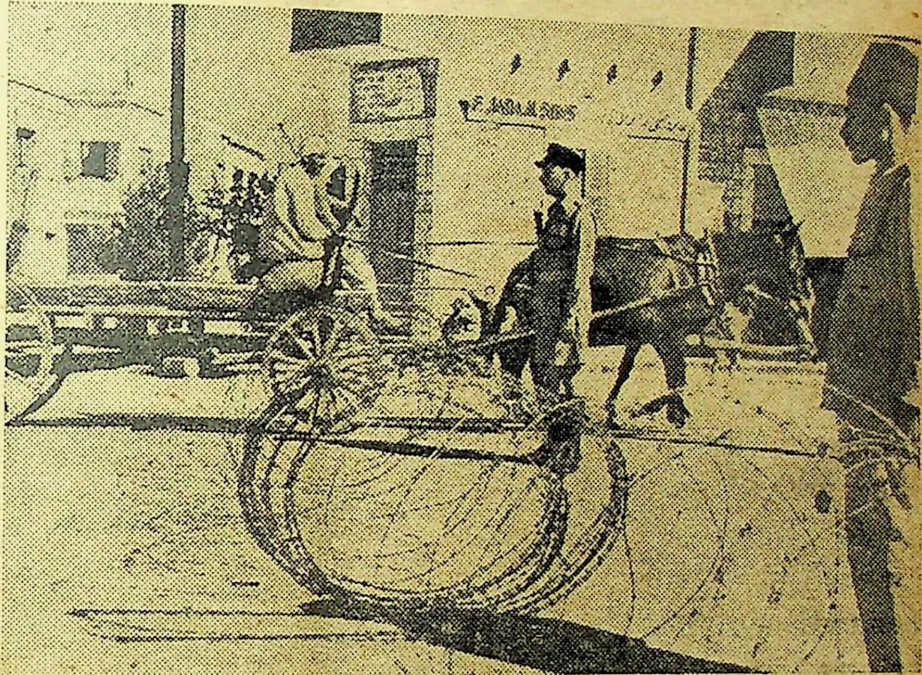


यहूदियोंकी गैर कानूनी संस्था हेगनामें यहूदी नारियां विद्रोहके लिये नाम लिखा रही हैं।

जर्मन जनताके नाम सन्देश नहीं दिया, जब कि उसने यहूदियोंके विरुद्ध कुछ न कहा हो। 'बर्लिनसे म्यूनिख तक बिजलीके खम्भों पर प्रमुख यहूदियोंके कटे हुए सिर' देखने की लालसा उसकी सदासे रही। अपनी पुस्तकमें उसने यहूदियोंको सब दुर्गुणोंका घर बताया है। प्राचीनकालमें राजनीतिक सीमा तक ही यहूदियोंकी विपत्ति सीमित नहीं रही। शेक्सपियरने एक काल्पनिक यहूदी 'शाइलौक' को

लिप्साकी प्रतिमूर्ति बनाकर संसारमें अमर कर दिया तो शाइलौक आज लिप्साका प्रतीक बन गया है। यह तो हुई यहूदियोंके प्रति प्राचीन और नवीन विचार-धारा। इसकी प्रतिक्रिया यदि यहूदियोंके विक्षोभ एवं क्रोधमें दिखायी पड़े, तो इसे आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता। यूरोपमें उनके लिये कहीं शरण नहीं। यहूदी अपने पक्षका समर्थन करते हुए कहता है कि वह अन्तर्राष्ट्रीयता एवं विश्व-वाणिज्य व्यवसाय के सिद्धान्तका उपासक है, अतः उग्र राष्ट्रीयताके उपासक राष्ट्र उसके विरुद्ध हैं। यह भी एक विवादग्रस्त विषय है। किन्तु इतना तो निर्विवाद है कि यहूदी संसार की सभी जातियोंकी अपेक्षा सबसे अधिक आक्रान्त हुए हैं, उनका कोई अपना घर नहीं रह गया है, उनकी अपनी कोईराष्ट्रीयता नहीं रह गयी है। वे फिलस्तीन को अपना राष्ट्रीय प्रदेश बनाना चाहते हैं, किन्तु इसमें उन्हें कठोर प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है।

यहूदी फिलस्तीनको अपना राष्ट्रीय घर क्यों मानते हैं, इसकी जानकारीके लिये इतिहासमें जाना पड़ेगा। यरूशलममें एक वेलिंगवाल Wailing wall रुदनशील दीवार है, जिसे यहूदी पूजते हैं। दूसरोंकी दृष्टिमें पत्थरके वे कुछ टुकड़े, केवल पत्थर ही हैं, किन्तु यहूदी उन्हें अपने भगवान् का अवशेष अतः अपने लिये पूजनीय मानते हैं। यहूदी एक भावना प्रधान जाति है अतः फिलस्तीनके प्रति उसकी जो भावना है, उससे उसे निरुत्साहित कर देना कुछ आसान नहीं है। साथ ही लार्ड बालफोरकी १९१७ की घोषणाके कारण उसके दावेका समर्थन भी हो चुका है। उक्त घोषणा में ब्रिटिश सरकारने स्पष्ट रूपमें स्वीकार किया है कि फिलस्तीन यहूदियोंका नेशनल होम—राष्ट्रीय प्रदेश है। यहूदी आज भी इस घोषणाकी दुहाई देते हैं। किन्तु अरबोंने प्रारम्भ से ही इसका विरोध किया है। उसका कथन है कि बालफोरकी उक्त घोषणा जितना फिलस्तीनमें ब्रिटिश साम्राज्यवादके हितों के संरक्षणकी प्रेरणासे हुई थी, उतनी यहूदियोंके कल्याणके लिये नहीं। वे कहते हैं कि ब्रिटेन फिलस्तीनमें शान्ति नहीं चाहता। वह चाहता है कि



यरूशलमकी सड़कोंपर रातोंरात तार बिछाकर यातायात रोकनेका प्रयत्न।

यहूदी-अरब संघर्ष को जागृत रखकर ब्रिटेन अपना स्वार्थ-साधन करता चले। वे आज भी अमीर फैसलके उक्त शब्दों को दुहराते हैं, जिनमें १९१९ के पेरिस शान्ति-सम्मेलनमें अमीर फैसलने अरबोंके प्रतिनिधि की हैसियतसे कहा था कि अरब यहूदी महत्वाकांक्षाके विरुद्ध नहीं हैं—वे उनकी उग्र महत्वाकांक्षाओंके भी विरुद्ध नहीं हैं, किन्तु ब्रिटेन इस प्रपंचमें क्यों पड़ता है? घटनाओंने यह भी स्पष्ट किया है कि फिलस्तीनमें यहूदियों एवं अरबोंका जो भी प्रतिरोध हुआ है, वह ब्रिटेन के ही विरुद्ध। अरब यहूदी संघर्ष होनेकी जगह, दोनोंने ब्रिटेनका ही विरोध किया है। दोनोंके पारस्परिक मतभेदों

का परिणाम भी दिखायी पड़ा है, अवश्य, किन्तु दोनों ब्रिटेनके ही सर्वाधिक विरोधी हैं।

फिलस्तीनकी यहूदी समस्याका एक अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप है, जिस पर ब्रिटेन बराबर धूल डालनेकी कोशिश करता है, किन्तु यह स्वरूप उत्तरोत्तर अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है। प्रथम महायुद्धके पश्चात् स्थापित राष्ट्र संघने कितने ही अंचलोंको मैण्डेट प्रणालीके अन्तर्गत लेकर उन्हें राष्ट्रोंके हवाले कर दिया। फिलस्तीन ब्रिटिश मैण्डेटके अन्दर आया। तबसे ब्रिटेनने निरन्तर इस बातकी चेष्टा की है कि मध्य पूर्वमें उसका प्रभुत्व यदि न भी रहे, तो वह उसके प्रभाव क्षेत्रके अंतर्गत अवश्य रहे। एशियामें अपने साम्राज्यवादी प्रभुत्वके संरक्षणके लिये यह आवश्यक था कि ब्रिटेनका प्रभाव मध्यपूर्व में रहे। मध्य सागर और उससे निकली हुई स्वेज नहरका महत्व एक लम्बी अवधि तक ब्रिटेनके लिये कितना रहा है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं और आज भी भूमध्य सागरपर जिसका प्रभुत्व रहेगा, मध्यपूर्वमें भी उसके प्रभुत्वको कोई हटा नहीं सकता, यद्यपि अनेक वैज्ञानिक आविष्कारोंने नौसेनाके महत्वको अपेक्षाकृत घटा दिया है।



यह सभी शस्त्रास्त्र आतंकवादियों से बरामद किये गये हैं।

तो भूमध्य सागर, मध्यपूर्व और फिलस्तीनमें ब्रिटेनकी इस दिलचस्पीका रहस्य समझ लेना चाहिये। फिलस्तीनके विभाजनके लिये प्रस्तावित ब्रिटिश योजना ही इस पर यथेष्ट प्रकाश डालती है। ब्रिटेन फिलस्तीनको तीन भागों में विभाजित करना चाहता है। इसके अनुसार ब्रिटेन यरूशलममें केन्द्रीय सरकारकी स्थापना कर, उसे अपने प्रभु[त्व] के अन्दर रख कर तटवर्ती प्रदेश यहूदियोंको और ... फीसदी भूमि तथा जैफा अरबोंको देना चाहता है। यरू[शलम]... शलममें अपना शासन केन्द्र बना कर दक्षिणी स्थलों त[था] मिश्र और स्वेज नहरके सैनिक अड्डोंको अपने प्रभुत्वमें रख[ना] चाहता है। लेकिन यहूदी और अरब दोनों ही इस योज[ना] के विरोधी हैं और अमेरिकाने भी इसे उत्साह पूर्वक ग्रहण नहीं किया है। फिलस्तीनके विभाजनके लिये यहूदी योजना इस प्रकार की है कि फिलस्तीनको पूर्णतः पृथक एवं स्वाधीन राज्योंमें बांट दिया जाय। यहूदियोंको ६५ फीसदी भूमि मिले और जैफा अरबोंको दे दिया जाय। ब्रिटेनका प्रभुत्व केवल मिश्र एवं स्वेजके सैनिक अड्डों पर रहे और समूचे फिलस्तीनसे ब्रिटेन अपना हाथ खींच ले। अमेरिका उक्त दोनों योजनाओंके बीचके मार्गका समर्थक है। ब्रिटि[श]



जब्त पोशाकोंका अजायबघर। पुलिस अधिकारी शिनाख्तके लिये हैरान हैं।

योजनासे स्पष्ट है कि ब्रिटेन इस बातके लिये प्रयत्नशील है कि फिलस्तीनको लेकर यहूदी और अरब दोनों ही सन्तुष्ट हों, और दोनों ही सन्तुष्ट हों ब्रिटिश नियन्त्रण में। और इसीलिये यहूदी और अरब दोनों ही ब्रिटेनसे असन्तुष्ट हैं। जुलाई १९३७ में पीलकमिशनने फिलस्तीन समस्याकी समीक्षाके पश्चात् उक्त योजना उपस्थित की थी किन्तु इसका इतना तीव्र प्रतिवाद किया गया कि १९३८ में योजना स्थगित कर दी गयी। इसके अनुसार हैफा बन्दरगाह पर भी ब्रिटिश नियंत्रण स्थापित करनेकी सिफारिश की गयी थी और इसका कारण यह है कि ईराकी तेलका पाइप उसके समीप तक पहुंचता है और ब्रिटिश हवाई अड्डा भी हैफामें है।

पीलकमिशनकी सिफारिशें तो विरोधके कारण दफना दी गयीं। किन्तु यहूदियों एवं अरबोंके असन्तोषका निराकरण केवल इतनेसे नहीं हो सकता था। यहूदियोंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी, अतः अरबोंको शान्त रखना आवश्यक था। उधर अरब भी ब्रिटिश सरकारको १९१५ के मैकमेहन पत्र-व्यवहारकी याद दिला रहे थे, जिसके अनुसार ब्रिटेनने वादा किया था कि फिलस्तीन अरब राज्यमें मिला दिया जायगा। युद्धकालमें यपि अरबोंको सन्तुष्ट करनेकी नीतिसे ही ब्रिटेनने उक्त आशयका आश्वासन दे दिया था, फिर भी वह वचन बद्ध था और उससे निकलनेकी कोई सूरत न देखकर ब्रिटेनने १७ मई १९३९ को पार्लमेंटकी स्वीकृत से यह घोषणा कर दी कि, "फिलस्तीनको यहूदी राज्य बनानेका ब्रिटेनका बिल्कुल इरादा नहीं है, इसकी सरकार स्पष्ट घोषणा कर रही है।" उधर यहूदी भी असन्तुष्ट न हों, इसलिये ब्रिटिश घोषणामें पुनः कहा गया कि, "फिलस्तीन एक ऐसा स्वतन्त्र देश होगा जिसमें यहूदियों और अरबों—दोनोंके हित सुरक्षित रहेंगे। दस साल बाद उसे पूर्ण स्वाधीनता मिलेगी और उसके साथ ब्रिटेन पृथक संधि द्वारा सम्बद्ध होगा।"

लेकिन फिलस्तीनकी समस्या ऐसी नहीं रह गयी है कि ब्रिटिश सरकार स्वेच्छापूर्वक जो चाहे कर ले। फिलस्तीन पर ब्रिटिश प्रभुत्वका सबसे बड़ा विरोधी इसलामका धर्माचार्य हज अमीन एफन्दी अल हुसेनी है जो आम तौर पर मुफ्ती आजमके नामसे विश्व-विख्यात हैं। मुफ्तीका दल सभी अरब दलोंमें प्रमुख और शक्तिशाली है। किसी समय वह ब्रिटेनका मित्र था किन्तु जबसे ब्रिटेनने फिलस्तीनमें यहूदियोंको बसानेकी योजना बनायी तबसे वह

ब्रिटेनका कट्टर शत्रु हो गया। १९३७ में मुफ्तीने लन्दन में फिलस्तीन सम्मेलनमें भाग भी लिया था। अप्रैल १९४१ में जब ईराकमें रशीद अलीने ब्रिटेनके विरुद्ध झगड़ा उठाया तब मुफ्तीने रशीद अलीका साथ दिया, लेकिन ईराक पर ब्रिटिश प्रभाव स्थापित होते ही वह इटली भागा और वहां से जर्मनी पहुंचा और हिटलरसे मिला। मध्यपूर्व में ब्रिटिश कूटनीतिका सबसे बड़ा विरोधी मुफ्ती आजम है। अभी कुछ दिन पहले जब मुफ्तीके पलायनका समाचार यूरोपीय अखबारोंमें छपा तो सभी राजधानियोंमें हलचल मच गयी। यह बड़ा ही रहस्यमय प्राणी है। लोग अभी हैरान थे कि क्या कुचक्र लेकर मुफ्ती किधर गायब हुआ है, कि खबर मिली कि वह काहिरामें है और मिश्रके राजा फारुखका मेहमान है। मुफ्ती क्या करेगा, यह कहना कठिन है किन्तु मध्यपूर्वमें केवल पहुंच जाना ही काफी है। वह समझौतेमें विश्वास नहीं करता, उसकी प्रगतिमें ही एक जादू है वह अरबोंकी पूर्ण स्वाधीनताका समर्थक है। समस्त अरब भूमि विदेशियोंके प्रभुत्वसे मुक्त हो, वह विदेशी प्रभुत्व चाहे ब्रिटिश हो, फ्रांसीसी हो, राष्ट्रमण्डलका हो या रूसी हो। वह सभीका विरोधी है। अभी फिलहाल उसे ब्रिटेन का विरोध करना है और आज उसका नारा है—"अंगरेजोंसे होशियार।" ग्रीसमें रहते हुए उसने युद्धकालमें रोमेलके अभियानकी जो सराहनाकी थी उसका उद्देश्य हिटलरकी अभ्यर्थना नहीं थी, वह था सिर्फ ब्रिटेनका विरोध। मुफ्ती यद्यपि धर्माचार्य है, लेकिन उसने राजनीति को ही अपना मजहब बना लिया है। अरब संघका वह प्रभाव शाली नेता है और अरबके किसी भी क्षेत्रमें विदेशी प्रभुत्वके विरुद्ध कोई आन्दोलन छिड़ता है तो उसके प्रति मुफ्तीकी सहानुभूति अवश्यम्भावी है।

स्थिति आज यह है कि दोनों दल अपनी-अपनी मांगों पर अड़े हैं। बीचमें ब्रिटिश सरकार है, उसकी भी स्थिति जटिल है। इस सम्बन्धमें ब्रिटिश-अमेरिकन कमीशनके सदस्य क्रासमैनने लिखा है कि 'कोई भी विवेकशील व्यक्ति नहीं कह सकता कि दोनों दलोंकी विभिन्न मांगें स्वीकार करने योग्य हैं। फिलस्तीन अरब राज्यका अंग है, अतः उसे यहूदी राज्य नहीं बनाया जा सकता। किन्तु हमारी घोषणाओंके अनुसार और हमारे संरक्षणमें जो ६००,०००



मुफ्ती आजम

यहूदी आज फिलस्तीनमें हैं, उन्हें अरबोंकी मर्जीपर भी नहीं छोड़ा जा सकता। राष्ट्रीय प्रदेशको बना रहने दिया जाय और उसे विकसित किया जाय किन्तु साथ ही अरबोंको भी यहूदियोंके साथ-साथ शिक्षा और सुधारकी सुविधाएं मिलनी चाहिये।' अब इस पहेलीको कैसे सुलझाया जाय, इसपर भी क्रासमैनने प्रकाश डाला है। उसने कहा है कि, 'वस्तुतः पैलेस्टाइन—फिलस्तीनकी समस्याका निराकरण फिलस्तीनमें ही नहीं हो सकता। अगर संयुक्त राष्ट्रमंडल को किसी समस्याका समाधान करना है तो फिलस्तीनकी ही वह समस्या है। मेरी दृष्टिमें यह बात भी सर्वथा स्पष्ट है कि किसी भी एक राष्ट्रको फिलस्तीनकी जिम्मेदारी नहीं लेनी चाहिये। अगर फिलस्तीनकी समस्या विश्व की समस्या है तो विश्वके राष्ट्रोंको इसके समाधानका उत्तरदायित्व लेना चाहिये।' और वस्तुतः संयुक्त राष्ट्र मण्डलमें यह समस्या विचाराधीन है। समस्या जटिल है और सभी दलोंको संतुष्ट कर देनेवाला समाधान कल्पनातीत हो रहा है, किन्तु समाधान है अनिवार्य, अन्यथा इसकी जटिलताएं अन्तर्राष्ट्रीय उलझनें उत्पन्न करनेकी सम्भावनाएं रखती हैं।

जीवनका छल

श्री विजयकुमार मुन्शी 'साहित्यरत्न' बी० ए० एल० एल० बी०

उसका फूल-सा सौंदर्य मुझे मुरझाया-सा लगा। लगता था जैसे वह जीवनसे उदासीन हो चुकी है। जीवनके उफनते आवेशके अंगारों पर किसीने पानी नहीं राख डाल दी है और अंगारोंको दृष्टिगत तपन जैसे बुझ चुकी है। मैंने ज्यों ही सामान-असबाब लेकर घरमें कदम रखा वह सहज स्नेहिल तरीके-से मेरा स्वागत करने नहीं आई। जब कभी मैं इस घरमें आया हूं सुषमाकी बांछे खिल जाया करती थीं; किन्तु इस बार उसके व्यवहारमें मुझे कुछ परिवर्त्तन लगा। थोड़ी देर बाद जब नौकरने आकर मेरा सामान आदि कमरेमें व्यवस्थित कर दिया, वह धीमेसे दरवाजे पर, अपने कन्धोंका कोमल भार झुका, खड़ी हो गयी।

'उदासीन हो सुषमा ?' मैंने उसके नमस्तेका प्रत्युत्तर दिया।

'नहीं तो।'

'हो तो जरूर !' मैंने कहा।

'हां कुछ अच्छा नहीं लगता !'

'अपनी ससुरालसे होकर आई हो और कहती हो कि अच्छा नहीं लगता ?'

मेरे इस कथन पर समूचीकी समूची कांप उठी; फिर जरा धीमेसे बोली 'अधिक दिन जीवित नहीं रहना चाहिये !'

'सुषमा ! यह क्या कहती हो ?'

'कुछ नहीं !'

'अपने भैय्यासे तुम कुछ छिपा रही हो !'

'हां भैय्या, कुछ बातें तो जीवनमें छिपानी ही पड़ती हैं।'

मैं उसके चेहरे पर बनती अवसादमयी रेखाओंको देख कर कांप उठा। मुझे लगा जैसे वह कह रही हो कि दुनियां इतनी जिन्दा दिल नहीं है कि जीवनके जिन रहस्योंको हम स्मृतिके कोमल अवगुण्ठनमें छिपा कर रखना चाहते हैं उन्हें यदि हम खोल दें तो जगजीवी उनका सच्चा मूल्याङ्कन कर सकें। यों मैं नारी-जीवनकी विषमताओंको पढ़ रहा था। उसने मेरी विचारधाराको भंग करते हुए पूछा 'कितने दिनों की छुट्टी है ?'

'दो दिन !' मैंने कहा।

'अच्छी बात है। जानेवाले जाते हैं। किसीको रोकनेका क्या हक है ?' उसने जवाब दिया।

'यह तुम कैसी बातें कर रही हो सुषमा !'

'जीवनमें साम्य ही साम्य तो नहीं होना चाहिये ! कहीं असाम्यकी धड़कन भी तो हो जो साम्यके समको पलट दे।'

—सुषमाको शायद आप नहीं जानते। मैं उसे, जब वह अबोध बच्ची थी, तबसे जानता हूं। वह प्यार और दुलारमें पल कर बड़ी हुई है। वह केवल अबतक मुस्कानों से खेली थी। मेरे दोस्त जिनकी वह सबसे छोटी बहिन है, धनवान वकील हैं। सुषमाको ससुराल भी धनवान मिला है, किन्तु उसका जीवनके प्रति कलात्मक दृष्टिकोण, उसके पति जगदीशके दुनियादार दृष्टिकोणसे मेल नहीं खाता। जगदीश रंगीन शरबतोंका व्यापार करता है। शहर और छावनीमें शरबतकी उसकी दो बड़ी दुकानें हैं। जेली और सुरक्षित फलोंका भी उसका अच्छा खासा व्यापार है। वह जीवनको सीमाओंकी बोतलोंमें बन्द एक रंगीन शरबत समझता है। कमसे कम नारीके सम्बन्धमें उसका यही सही या गलत दृष्टिकोण है। उसे लगता है कि सुषमासे ब्याह कर उसने सुषमाके लिये सुख और वैभवका द्वार खोल दिया हैं। दास-दासी हैं, क्लब, सिनेमा और पार्टी है, जहां वह मन बहला सकती है। यह सुषमा है कि क्लब सिनेमादिसे विरक्त है और शरबत जेली और बेमौसमके फलों पर आस्था नहीं रखती। उसे जीवनमें एक नूतनता, एक गहराई और साहित्यिक वातावरण चाहिये। उसे मीठे शरबतसे अधिक 'शरत्' प्रिय है। उसे जेलीसे अधिक जलन प्रिय है। उसे सिनेमासे अधिक मासिक पत्रोंकी कहानियां प्रिय हैं। वह खेल-कूद कर, खा-पी कर जीना नहीं चाहती किन्तु जीवनकी बीनपर अवसादमय कलात्मक स्वर बजाना चाहती है। वह शरीरके पींजरेसे अधिक उसमें आबद्ध हृदयके पंछी की फड़फड़ाहटसे विचलित हो जाती है। वह चुप रह कर

विजय स्वीकृत करनेके बजाय, तर्क कर पराजित होनेमें जीवनका गौरव अनुभव करती है। वह तश्तरी या खुशनुमा कांचके आधारों पर सजी तश्तरियोंमें सजे फूल-फलोंसे अधिक वृक्षों पर झूमते फल-फूलोंसे आकर्षित होती है। जीवनमें अपनी मान्यताओं और अपने संतोषकी वह पुरुषसे कद्र कराना चाहती है और इसी तरह पुरुष जीवनकी मान्यताओं और संतोषकी कद्र करना चाहती है।

—अब सुषमाको शायद आप जान गये होंगे। वह जगदीशसे अधिक आकर्षित नहीं है। वैसे वह पति है और समाजके इस कथनको मान कर जीवनके पथ पर इस प्रकार सजग होकर चल रही है कि किसीको अंगुली उठाने का मौका न मिले।

सुषमाकी ससुराल भी यहीं है और इसी नगरमें ननिहाल भी। जगदीश इन दिनों किसी व्यापारी कामसे लाहौर गये हैं। इसी कारण वह यहां अपने भाईके यहां आ गयी है।

शामको जब मैं खाना खाने बैठा, वह मेरे सामने बैठी थी। सुषमाके व्यवहारमें केवल एक व्यवहारका तारतम्य था किन्तु हृदय नहीं। मैं अपनेमें कुछ खिन्नताका अनुभव करने लगा। खाना खा लेनेके पश्चात् मैं देर तक बैठकमें बैठा पानका इन्तजार करता रहा, किन्तु कोई पान लेकर नहीं आया। पर्याप्त देरीके बाद पड़ोसकी एक बालिका आकर तश्तरीमें पान रख गयी। टेबिलपर धरे पानोंको मैं देख रहा था, इतनेमें मेरे कमरेमें सुषमा आ गयी। मैंने देखा उसके नयनोंमें आंसू छलछला आये हैं। वह कुछ अव्यवस्थित, कुछ विचारोंके भारसे दबी-सी मुझे दिखायी दी।

'हेमन्त भैय्या! व्याह एक परतन्त्रता है न!'

'हां सुषमा! इस परतन्त्रतामें भी एक माधुर्य है!'

'हो सकता है।'—उसने नीची नजर किये कहा।

'हेमन्त भैय्या! सच कहूं तो मुझे इस व्याहने दबोच दिया है। मेरे मनकी स्वाभाविक मनोवृत्तियोंको, जैसे इस व्याहने सदाके लिये खत्म कर दिया है। मैं पुरुषके विचारों की कद्र करती हूं, किन्तु यदि ये विचार कमलकी पखुंड़ियों में भी कीचके दर्शन करें तो मैं इस बातको कैसे मान और विश्वास कर सकती हूं?'—सहसा चुप हो उसने एक बार इधर-उधर दृष्टिपात किया और फिर बोली, 'हेमन्त भैय्या! आपको लेकर 'वे' न जाने क्या-क्या शंकाएं किया करते हैं। आपके सम्बन्धमें कुविचार। मेरे व्यवहारने इसकी सूचना आपको अवश्य दे दी होगी···वह रो पड़ी। मैं उसी दिन वापिस चला आया।

'सुषमा!' मैंने जवाब दिया; 'किसीके दिलको हम कैसे साफ कर सकते हैं? केवल अपनी आत्माको दर्पणकी नाईं स्वच्छ करनेके सिवा हमारे पास कोई मार्ग नहीं है।'—इसके बाद मैंने वह स्थान छोड़ दिया। केवल सुषमाकी छलछलाती आंखें आज भी मुझे स्मृतिके स्वच्छ सागरमें तैरती दिखायी दे जाती हैं।

—कल एक पत्र मिला है

मुरादाबाद

प्रिय हेमन्तकुमार! ५।६।

बन्दे।

सुषमा मर चुकी है। उसकी हर सांसमें तुम्हारी याद थी। काश मुझे व्याहके पहले मालूम होता? आपका,

जगदीश

—जीवनका यह कैसा छल है?

नवीन समस्याओंका प्राचीन हल

श्री विजयसिंह पथिक

भारतके प्राचीन साहित्यके अनुशीलनसे पता लगता है कि भारतमें समय-समय पर अनेक प्रकारके संघ बनते रहे हैं। परन्तु उनमें एक खास बात साधारण रूपसे थी वह यह कि समान व्यवस्थावाले राष्ट्रोंके ही संघ बनाये जाते थे। भिन्न-भिन्न व्यवस्थावाले राष्ट्रोंको मिलाकर खिचड़ी-संघ नहीं बनाये जाते थे। इसका परिणाम यह होता था कि संघोंमें अभ्यान्तरिक कठिनाइयां बहुत कम होती थीं। इनमें भी वैराज्य व्यवस्था और ऐसी व्यवस्था वाले गणोंकी बहुत प्रशंसाकी गयी है। यहां तक कहा गया है कि "अक्षरं वैराज्यम्" अर्थात् और सब व्यवस्थाएं अस्थायी या नाशशील हैं, किन्तु वैराज्य व्यवस्था कभी नष्ट नहीं होती। अतः हम देखें कि वैराज्य व्यवस्था क्या थी? इसका प्रारम्भिक रूप तो ऐसा है कि शायद आजके लोग उसकी कल्पना भी न कर सकें। कहा है कि—

न वैराज्यं न राज्यं च न च दण्डो न च दाण्डिकः
धर्मेणैवहि प्रजा सर्वं रक्षन्ति स्व परस्परम्

पीछेकी स्थितियोंमें इसीका विकसित रूप गण था। 'गण' स्वयं भी एक प्रकारका संघ-शासन ही होता था। 'कुलानां हि समूहस्तु गणः सम्परिकीर्तितः'—के अनुसार अनेक कुल या वंश मिल कर एक गण बनाया करते थे। इसमें अपने अन्तः शासनमें प्रत्येक कुल या वंश स्वतंत्र होता था और सबके समान हितके प्रश्न गणके आधीन रहते थे। किन्तु इसमें कुछ मर्यादाएं होती थीं। पहली तो यह है कि उनकी व्यवस्था सबकी एक-सी होती थी। दूसरे सबको समान योग्य बनानेका सबके लिये अनिवार्य समान शिक्षाका प्रबन्ध किया जाता था। तीसरे आजकी तरह बिल्कुल कानूनी बोलशेविज्म तो नहीं था, किन्तु आर्थिक साम्य रखनेके लिये काफी सतर्कता बरती जाती थी। कई गणोंमें भूमि प्रतिवर्ष गृहस्थोंमें समान बांटी जाती थी। उत्तराधिकारके नाम पर किसीको स्थावर सम्पति नहीं दी जाती थी। खान-पान रहन-सहनमें भी समानता रक्खी जाती थी; चौथे उनमें ऊंच-नीचके भेदको बिलकुल स्थान न होता था और न किसी धन्धेको हेय माना जाता था। पांचवें उनका लक्ष्य केवल अपने गणकी स्वतंत्रता, सामूहिक समृद्धि और अपने गणको हर प्रकारसे आत्मरक्षाके योग्य बनना होता था। इसीलिये महाभारत (शान्ति अ० १०८)में भीष्मपितामहने कहा है कि "गणों में जातिकी दृष्टिसे भी, कुलोंकी दृष्टिसे भी सब लोग समान होते हैं। उन लोगोंमें उद्योग बुद्धि, रूप और द्रव्य के प्रश्नपर भेद उत्पन्न नहीं किया जा सकता। अच्छे गण एक दूसरेकी सेवा करते हैं, परस्पर शिष्ट व्यवहार करते हैं और सबको समानरूपसे सुखी बनानेका यत्न करते हैं। उनमें सब सम्पन्न, शास्त्रज्ञ और शस्त्रास्त्र कलामें पारंगत होते हैं।' अर्थात् उनके उद्योग राष्ट्रीय होते थे। सैनिक और अन्य शिक्षाएं पूरी प्राप्त करना सबके लिये अनिवार्य होता था। आगे कहा है कि—'वे असहायोंकी सहायता करते हैं एवं परस्पर पूरा विश्वास रखते हैं। उनमें जब कभी गुणोंकी कमी होती है, तब ही वे पराधीन होते हैं।' ऐसे ही अनेक गणोंको मिलाकर 'संघ' बनाये जाते थे। इस प्रकारके संघोंके विधानका प्रतिनिधित्व हमारे प्राचीन साहित्यमें किसी हद तक 'शुक्र नीति' करती है। किसी हद तक इसलिये कि उसका सबसे अधिक भाग नष्ट कर दिया गया है और जो शेष है, उसमें भी काफी मिश्रण है।

मिश्रण करनेवालोंकी कला

महाभारतके अनुसार 'शुक्रनीति' में एक हजार अध्याय थे। इस समय कुल चार हैं। वर्त्तमान 'शुक्र नीति' में उसका ध्येय 'चार विद्याएं' मानी गयी हैं, किन्तु कौटिल्य ने लिखा है कि वह एक (दण्ड) ही को राजनीतिका ध्येय मानता है। इससे स्पष्ट है कि यह परिवर्तन कौटिल्य के बाद (सम्भवतः पुष्यमित्र कालमें) किया गया है। 'सोमदेव सूरिने शुक्राचार्यके जो वाक्य नीतिवाक्यामृतमें उद्धृत किये हैं, वे भी उपलब्ध शुक्रनीतिमें नहीं मिलते। इसके अतिरिक्त उसके वर्तमान संस्करणोंके चौथे अध्यायके १२४१ वें श्लोकमें ही कुल ग्रन्थके श्लोकोंकी संख्या २२००

बतायी है, जब कि इस समय वास्तविक संख्या २४५४ है। इन सब बातोंसे साफ है कि मनुस्मृतिकी तरह इसे भी काफी भ्रष्ट किया गया है फिर भी उसमें जो बचे बचाए सूत्र मिलते हैं, उनसे कुछ बातोंपर प्रकाश पड़ता है। उदाहरणके लिये कुछ चुनी हुई बातें नीचे दी जाती हैं। शुक्राचार्य कहते हैं किः—

१—राजाका पद गौण है। अगर वह लोकमतके विरुद्ध चले, तो उसे पदच्युत कर दिया जाय।

(२) राजा मन्त्रिमण्डलकी सहानुभूतिसे ही प्रत्येक कार्य करे। मन्त्रिमण्डलमें ११ संघके सदस्य-समूहों या राष्ट्रोंके चुने हुए प्रतिनिधि, ८ भिन्न-भिन्न विभागोंके निर्वाचित (नियुक्त नहीं) मन्त्री और १ प्रधान मन्त्री हो।

(३) अपराध करनेपर ब्राह्मणको भी वही दण्ड दिया जाय, जो और प्रजाजनोंको दिया जाता है।

(४) सब जातियों (समूहों राष्ट्रों) के संघों व नगर सभाओंको अपनी-अपनी न्याय व शासन सभा बनाने व उनके संचालनका अधिकार है। वे व्यापारिक सन्धियां भी स्वतन्त्र रूपसे कर सकते हैं। सब अपने सिक्के ढालने को स्वतन्त्र हैं। उनकी अदालतोंके मुकदमों की अपीलें उन ही की श्रेणियों (हाईकोर्टों) में हों। केवल श्रेणियों के फैसलोंके विरुद्ध अपीलें संघकी राजसभामें आवें। उनका भी फैसला, सम्बन्धित व्यक्तियोंके समूहों या राष्ट्रोंके रीति-रिवाजों एवं विधानके अनुसार किया जाय। हां, डाका, खून जैसे संगीन मामलोंका फैसला संघके विधानके अनुसार हो।

(५) व्यापारके लिये किसानों व कारीगरोंके अपने सामूहिक संघ हों।

(६) कारखाने, संघ-राज्य केवल युद्धके यन्त्रों व युद्ध सामग्रीके निर्माणके लिये स्वयं चलावे।

(७) प्रजाके लिये नगर, सड़कें, नालियां, स्नानागार आदि केन्द्रीय संघ अपने व्ययसे बनवाये।

(८) विवाह, यज्ञ, रोग व अन्य जरूरी काममें फंसे हुये किसान, ग्वाल, शिल्पी, नाबालिग या युद्धमें गये हुए व्यक्तिके लिये कोई अदालत वारंट न निकाले। उन्हें अपनी सुविधा अनुसार उपस्थित होनेका अवसर दिया जाय।

(९) संघके प्रत्येक सदस्य (राष्ट्र एवं जाति) अपनी स्वतन्त्र सेना संगठित करें व रखेंगे।

(१०) जो छोटे समूह या राष्ट्र ऐसी पूर्ण व्यवस्था करनेमें असमर्थ हों उन्हें सैनिक शिक्षा देनेवाले सेनापति दिये जांय।

(११) संघके जो सदस्य बढ़िया शस्त्रास्त्र और यन्त्रादि न बना सकें, उन्हें ये चीजें संघके कारखानोंसे दी जांय।

(१२) प्रत्येक समूह और राष्ट्रकी सेनामें सेनापति उसी समूहके हों।

हमने लेखका कलेवर बढ़ जानेके भयसे मूल-श्लोक तथा अधिक बातें नहीं दी हैं। किन्तु इतने संकेतोंसे ही स्पष्ट हो जाता है कि इस संघमें प्रत्येक राष्ट्रको कितनी स्वतन्त्रता थी। आज कल Sovereignity 'स्वतन्त्र राज्योंके जो अधिकार मुख्य होते हैं, वह प्रत्येक छोटे बड़े समूह और राष्ट्र को प्राप्त थे। इतना ही नहीं, प्रत्येक राष्ट्र को सब प्रकारसे सहायता व सहयोग देकर अपनी रक्षा योग्य और समर्थ बनाया जाता था। उनकी अपीलें भी उन्हींके कानूनोंके अनुसार तय की जाती थीं। संघका कानून सिर्फ भयानक अपराधोंके लिये था। संघकी नीति का ध्येय केवल दण्ड (शासन व्यवस्थित रखना) था न कि राज्यवृद्धि या साथी राष्ट्रोंको निर्बल रखना। संघकी रक्षार्थ प्रत्येक सदस्यकी सेना अपने सेनापतियोंके आधीन संघके पक्षमें लड़नेको बाध्य थी। स्थायित्वकी दृष्टिसे ये संघ सैकड़ों नहीं, हजारों वर्षों तक चले। शुक्राचार्यके संघ में ही आन्ध्र, शबर आदि थे, जिन्हें हम बौद्ध काल तक भी गण शासनमें पाते हैं और जो कृष्णके वृष्णि संघमें भी रहे।

बृहस्पाती युग

'बृहस्पति' के युगके नीति शास्त्रमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शुरू हो गया था। अतः बृहस्पतिने अपने नीति शास्त्र का ध्येय दण्ड (व्यवस्था) और अर्थ या वार्ता (व्यापार) दोनोंको माना था। इनके संघोंमें भी राजा केवल सभापतिकी तरह होत था। (वीर मित्रोदय पृ० १२०)। इनके संघोंके सदस्य राष्ट्र और ग्राम तक संघके नियमों के अनुकूल व्यापारिक और आर्थिक संधियां दूसरे देशों

और संघोंसे करनेको स्वतन्त्र थे। कहा है कि—

'ग्रामो देशः च यत्कुर्यात् सत्यलेखं परस्परम्।
राज्याऽविरोधी धर्मार्थं संवित्पत्रं वदन्ति तत्।'

अर्थात् एक गांव भी स्वतन्त्र प्रजातन्त्रकी हैसियतसे रहना चाहता तो रह सकता था। इन संघोंमें भी व्यापार सामूहिक होता था, न कि व्यक्तिगत। इसी प्रकार नगर भी एक स्वतन्त्र प्रजातन्त्र ही होते थे। संघ उनपर भी उतना ही नियंत्रण रखना था, जितना कि सदस्य प्रजातंत्रों पर। (वीर मित्रोदय ४२४-४२७ और बशिष्ठ धर्मसूत्र १६-१६-२०)।

वैशाली संघ

वैशालीका संघ बौद्ध कालमें बहुत उन्नत दशामें था। उस जमानेमें कौटिल्यकी कुटिलताके कारण और कुछ उसके पूर्वज द्रविड़ आचार्योंके प्रयत्नसे ब्राह्मणी और वैष्णव आदि धर्म राज्यवादके प्रचारक बन गये थे। इसीलिये जनतंत्रों की जनतामें किसीको किसी धर्मका उपदेश देनेकी आज्ञा देनेके पहले संघकी कौन्सिल उसका भाषण सुनती थी और यदि उसे जनतन्त्र व्यवस्थाके अनुकूल पाती, तो उसके प्रचारकी स्वतन्त्रता दे देती थी। स्वयं बुद्ध भगवान्के साथ भी ऐसा ही किया गया था। इनकी पार्लियामेंटका विधान तो आधुनिक पार्लियामेंटों से भी बढ़ा हुआ था। इस शैलीमें एक खूबी यह है कि उसके द्वारा बड़ेसे बड़े देश भी शासित हो सकते हैं और छोटेसे छोटे भी। हम बता चुके हैं कि वृष्टि संघका विस्तार प्रायः आधे एशियामें था। इससे स्पष्ट है कि कुछ यूरोपीय लेखक जो यह लिख देते हैं कि 'ऐसा पूर्ण प्रजातन्त्र छोटे-छोटे स्विटजरलेंड जैसे देशों में हो सफल हो सकता है—वह केवल वास्तविक लोकतन्त्र की स्थापनासे बचनेका एक बहाना है। आज रूस तो प्रत्यक्ष ही इस धारणाको झूठी प्रमाणित कर रहा है।

यूनानके जनतंत्रोंका संघ

प्राचीन कालके संघों और गणोंमें एक विशेषता और पायी जाती है। प्रायः उन सब ही में साधारणतः १० राष्ट्र या समूह शामिल होते थे। विशेष अवसरोंपर तो ऐसे छोटे १००-१०० संघ मिलकर एक संघमें संगठित हो जाते थे। विक्रमादित्यके प्रयत्नसे शकोंको निकालनेके लिये मालव गणमें १०० गण मिल गये थे। किन्तु साधारणतः दस-दस राष्ट्रोंके ही संघोंका उल्लेख पाया जाता है। हां वैशालीके संघमें ९ गण थे।

इन संघोका सबसे पिछला और इसलिये गिरती दशाका चित्र यूनानके संघका है। इस संघमें भी १० छोटे-छोटे राष्ट्र या समुदाय शामिल थे। इनमेंसे प्रत्येक प्रायः पूर्ण स्वतंत्र था प्रत्येककी थल सेना, जल सेना और जहाजी बेड़ा अलग-अलग होते थे।

इस संघकी परिषदके ६००० सदस्य होते थे, जो प्रति-वर्ष चुने जाते थे। किन्तु इस परिषदके अधिवेशनमें ३ सदस्य नागरिक भी भागले सकते थे। इस परिषदको विधान आदि बनानेमें सहायता देनेको एक व्यवस्थापिका चुनी जाती थी। इसके लिये प्रत्येक सदस्य राष्ट्र ५० सदस्य चुनता था। इस प्रकार इसके ५०० सदस्य होते थे। इसका सदस्य ३० वर्षसे कम उम्रका व्यक्ति नहीं हो सकता था। ३५ दिनका महीना और १० महीनेका वर्ष गिना जाता था और व्यवस्थापिका का कार्यालय भी क्रमसे एक-एक महीना एक राष्ट्रके ५० प्रतिनिधियोंके हाथमें रहता था। कोई व्यक्ति व्यवस्थापिकाका सदस्य दो बार से अधिक नहीं चुना जाता था। यह व्यवस्थापिका वैधानिक प्रस्ताव, कार्यक्रम आदि तैयार और स्वीकार करके भेजती थी। वे कानून परिषदके स्वीकार करने पर ही बनते थे। व्यवस्था-पिका भी प्रति वर्ष चुनी जाती थी। किन्तु सभापति २४ घण्टेके लिये ही चुना जाता था।

महासभा

इसके अतिरिक्त वर्षमें एक बार संघकी महासभा होती थी। इसमें संघका प्रत्येक बालिग व्यक्ति भाग ले सकता था।

विशेष प्रश्नोंके लिये इस परिषदका 'कोरम' ६००० सदस्योंका माना जाता था। इसके अधिवेशन प्रत्येक महीने की ९ तारीखको होते थे। इसके अधिवेशनमें जनता में से कोई भी व्यक्ति सदस्य न होते हुए भी, भागले सकता था और अपने प्रस्ताव तथा सुझाव रख सकता था। सदस्यों को अधिवेशनकी सूचनाके टिकट भेजे जाते थे। पीछे इन टिकटोंके पेश करने पर ही उन्हें भत्ता मिलता था। किन्तु इस प्रकार प्रायः प्रत्येक व्यक्तिको आने और बोलनेकी आजादी होते हुए भी परिषदमें हुल्लड़ कदाचितही होता था।

इसके कारण कुछ नियम थे। उदाहरणके लिये कोई भी नागरिक किसी भी व्यक्ति पर कानूनके विरुद्ध कार्य करने या परिषदको धोका देनेके लिये बिना विशेष व्ययके मुकदमा चला सकता था। इसी तरह नियम-विरुद्ध भाषण आदि देने परभी मुकद्दमा चलाया जा सकता था। इसलिये वे ही प्रजाजन परिषद्में जाते और बोलते थे, जो जनताके हितके लिये ऐसा करना आवश्यक समझते थे और नियमादिके जानकार होते थे।

सैन्य-संगठन

सैनिक शिक्षा अनिवार्य थी। प्रत्येक युवक सैनिक बनने और संघकी रक्षार्थ लड़नेको वाध्य था। स्थायी सेना बहुत कम रक्खी जाती थी। सेनापतियोंकी भी एक समिति होती थी, जो सैनिक शिक्षाकी व्यवस्था भी करती थी। यही युद्ध के अवसर पर एक प्रधान सेनापति चुनती थी और यही अन्तर्राष्ट्रीय, वैदेशिक और सैनिक प्रश्नोंपर प्रस्ताव एवं योजनाएं परिषदको स्वीकृतके लिये भेजती थी।

मन्त्रिमण्डल

मन्त्रिमण्डलके लिये प्रत्येक सदस्य राष्ट्र एक प्रतिनिधि चुनता था। फिर ये मिल कर अपनेमेंसे एक सभापति चुन लेते। इस प्रकार दस सदस्योंका मन्त्रिमण्डल बनता। यही परिषदका सारा कार्यक्रम तैयार करता। परिषदके अधिवेशनों और उनमें शान्ति-व्यवस्थाका प्रबन्ध करता एवं न्यायाधीशों और न्याय समितियोंके कामोंकी देख-रेख रखता।

न्यायाधीश

न्यायके लिये प्रत्येक मुहल्ला और गांव अपनी पंचायत व न्यायाधीश चुनता था। इन न्यायाधीशोंकी एक सभा बन जाती। न्यायाधीशोंकी संख्या भी ६००० तक पहुंच जाया करती थी। यही सभा भिन्न-भिन्न स्थानों और भिन्न-भिन्न प्रकारके मामलोंके लिये न्याय-समितियां बनाती। प्रत्येक ऐसी समितिमें ६ दीक्षित (सदस्य) और एक सभापति होते थे। फैसले बहुमतसे होते। वकील नहीं थे। हां, मित्र या रिश्तेदार वकीलके तौर पर सहायता दे सकते थे, वह भी निःशुल्क।

टैक्स

भूमि पर बहुत कम कर लगाया जाता था और धनवानोंपर बहुत अधिक। इस प्रकार आर्थिक साम्य रखनेकी चेष्टा की जाती थी।

बुराइयां और भलाइयां

हम बता चुके हैं और ऊपरके संक्षिप्त उदाहरणोंसे भी स्पष्ट है कि यूनानी जनतन्त्र यूरोपकी स्वतन्त्र पैदाइश नहीं बल्कि भारतीय संघ प्रणालीका ही अन्तिम संस्करण था। उसके आधार और उसकी प्रेरक भावनाएं वे ही थीं, जो भारतीय संघोंकी। वही दस जातियोंका संगठन और वही संगठन-प्रणाली। वे स्वयं भी भारतीय ऐल (इला-हेलनकी सन्तान चन्द्रवंशी) थे। इसलिये उनकी भाषा और पदाधिकारियोंके नाम आदि भी भारतीय भाषा और नामोंके अपभ्रंश थे। हां, वे श की जगह क और इसी तरह कुछ अन्य वर्णों'को बदल कर बोलते थे। अतः उनकी भाषा भिन्न दिखायी देती है। उदाहरणके लिये मन्त्रिमण्डलके सदस्य आर्कन्स कहलाते थे, जिसका शुद्धरूप 'आर्यन' बनता है। न्याय समितियोंके सदस्य 'दीकस्त कहलाते थे, जिसका शुद्ध रूप 'दीक्षित' है? इसी तरह श्वानको क्वान, शुनःका कुनोस, श्रुतःका क्रुटस्, दशको डक, अश्मन (पर्वत) का अक्मन ददर्शका डर्क और शिरःका करोस् बोला जाता था। अतः यह स्पष्ट है कि वास्तवमें यूनानी भारतीय 'यवन' थे।

यह भी हम बता चुके हैं कि यह संघ जनतन्त्रोंकी गिरी हुई दशामें बना था। इसलिये उसमें जहां बहुत-सी प्राचीन अच्छी बातें और प्रणालियां थीं, वहां कुछ बुराइयां भी थीं, जिन्होंने अन्तमें इन सुन्दर संगठनोंका अन्त ही कर दिया। और चूंकि हमारे लिये इस समय ये दोनों ही पहलू शिक्षाप्रद हैं, अतः हम संक्षेपसे यहां उनपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा करते हैं।

यूनानी लोगोंमें समानताकी प्रचीन भावना बहुत प्रबल थी। आजकलके यूरोपीय प्रजातन्त्रवादी उनकी प्रथाओंको बड़े क्षेत्रमें अव्यावहारिक बतलाते हैं। परन्तु उन्हें अपने वे दोष दिखायी नहीं देते, जिनके कारण उनके लिये ये प्रथाएं अव्यावहारिक हो पड़ी हैं। प्राचीन जनतन्त्रोंमें समानताको

सबसे ऊंचा स्थान दिया जाता था। सबको समान योग्य बनानेकी ओर भी उनका विशेष लक्ष्य था। और सबमें समान योग्यता तब ही हो सकती है, जब सबको व्यावहारिक रूपसे शिक्षाके साथ-साथ सब प्रकारका काम भी करने को मिले। वे लोग सब संस्थाओंके चुनाव वार्षिक इसलिये करते थे और इसीलिये प्रत्येक व्यक्तिके किसी स्थान या पद के लिये बार-बार खड़े होनेके विरोधी थे, कि इससे प्रत्येक नये-नये आदमियोंको चुनावमें आने और काम करनेका अवसर मिल जाता था। साथ ही इस पद्धतिकी बदौलत कोई दल स्थायी हानि लाभ उठा नहीं सकता था। आजकल व्यवस्थापिकाओंके चुनाव ५ वर्षके लिये होते हैं। साथ ही उनके ही बनानेसे कोई भी विधान या नियम कानून बन जाता है। सम्बन्धित जनता या जनताका भाग उसके विरुद्ध हो, तो भी वह कुछ कर नहीं सकता। इसीलिये सम्पन्न वर्गोंमें उनसे लाभ उठानेका लालच पैदा होता है और वे चुनावोंमें खूब खर्च करके अपने-अपने घोड़े दौड़ाते हैं। इससे स्पष्ट है कि इन दोषोंने चुनावोंको इतना मंहगा बना दिया है कि उनका प्रतिवर्ष करना अव्यावहारिक हो गया है। यदि व्यवस्थापिकाओंके बनाये कानून ५ वर्ष तक स्थायी न हों और उनको कानूनका रूप किसी रूपमें लोकमत मिलने पर ही प्राप्त हो, तो यह खरचा देखते-देखते अदृश्य हो जायगा। न कोई दल व्यवस्थापिकाओंमें रिश्वत बांटकर कानून बनवानेको उत्सुक होगा और न चुनावोंमें अपने घोड़े दोड़ानेको।

इसी प्रकार प्राचीन संघों और जनतन्त्रोंका ध्येय सत्ता के विकेन्द्रीकरणका होता था। वे ज्यादासे ज्यादा अधिकार और शासन व्यवस्थाका बोझ ग्राम पंचायतों और मुहल्ला कमेटियों पर डालते थे और केवल विशेष महत्व और सब राष्ट्रोंके समान हितकी बातें संघके अधीन रखते थे। इस व्यवस्थासे प्रत्येक गांव और मुहल्लेके लोग शासन यन्त्रको चलानेमें शिक्षित और योग्य हो जाते थे। साथ ही हर गांव और मुहल्ला शासनको अपना समझ कर उसकी रक्षाके लिये सब कुछ करनेको तैयार रहता था। राष्ट्रमें किसी कामके लिये योग्य आदमियोंकी कमी अनुभव न होती थी। एक और बात थी। सारी व्यवस्था स्थानीय आदमियोंके हाथोंमें होनेसे शासनका खर्च बहुत मामूली रह जाता था।

संक्षेपसे कहें तो जहां इसी संघमें पहले दलबन्दियों का अभाव था और प्रायः सब काम एक मतसे होते थे, वहां अन्तिम दिनोंमें वह दलबन्दियोंका अखाड़ा बन गया। धर्माचार्य, धनिक और विद्वान —ये तीन दल ही सब कुछ बन बैठे। इनमें भी प्रधानताके लिये युद्ध और षड्यन्त्र चलते रहते। इन्हीं षड्यन्त्रोंकी बलि सुकरात जैसे महात्मा हुए। ऐसी दशामें स्वभावतः यह जनतन्त्र अधिक दिन स्वतन्त्र नहीं रह सका। उसमें विद्रोही शुरू हो गये और अन्तमें फिलिप द्वारा पोषित मैसिडोनियाकी सेनाने और फिर सिकन्दरके आक्रमणने सन् ई०से ३२०वर्ष पूर्व इस संघ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

भारतके सामने एक महान अवसर उपस्थित है। न केवल स्वतन्त्र होनेका प्रत्युत स्वतन्त्र होकर एशियाका पथ प्रदर्शक और नेता बननेका भी। किन्तु यह नेतृत्व और स्वातन्त्र्य इतना सस्ता और सरलतासे प्राप्त होने योग्य नहीं है। उसके लिये भारतको भारी प्रयत्न और बलिदान करके स्वयं योग्य बनना पड़ेगा। इसी लिये इस की जरूरत है कि हम स्वयं प्राचीन और वर्तमान संघोंका गम्भीरता पूर्वक, निष्पक्षता पूर्वक और साम्प्रदायिक एवं वर्गीय भावनाओंको एक ओर रख कर अध्ययन करें एवं साधारण जनताको अध्ययन करनेका अवसर दें।

———

अपराधियोंकी खोजमें विज्ञानके करिश्मे

डा० धुरन्धर शर्मा पी० एच० डी०

समाज शास्त्रियोंका कथन है कि युद्धने अपराधोंकी संख्या बढ़ायी है, अपराधियोंने नये हथकण्डे निकाले हैं और युद्धोत्तर कालकी अभाव-जनित परिस्थितिमें अपराधियोंकी संख्या और अपराधोंकी प्रणालियोंमें भी वृद्धि हुई है और आगे अभी और होगी। उधर वैज्ञानिक हैं जिनका दावा है कि युद्धने यदि अपराधों और अपराधियोंकी संख्या बढ़ायी है तो उसने ऐसे अविष्कारोंको भी जन्म दिया है जिनके द्वारा अपराधोंका पता लगाने और अपराधियोंको ढूंढ़ निकालनेमें भी अभूतपूर्व सफलता मिलेगी। इंगलैण्डके विश्व विख्यात जासूसी पुलिस विभागमें ऐसे आविष्कारोंके अनुसार काम होने लगा है। नवीन आविष्कारों के अनुसार काम करनेके लिये वहां नये विभागोंकी स्थापना की गयी है।



हत्याकी जांच करनेवाली प्रयोगशालामें घटनास्थल पर गिरे एक बालकी परीक्षा

उपन्यासों एवं कहानियोंमें जासूसोंके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया है वह बहुत ही दिलचस्प है और इसमें सन्देह नहीं कि जासूसी पेशेमें एक प्रकारका नाटकीय आनन्द है। किसी संगीन अद्भुत मामलेमें जासूसोंको कल्पना शक्ति एवं प्रतिभापूर्ण चक्रोंसे काम लेना पड़ता है। अपराधियोंकी खोजमें खतरे आते हैं और कभी कभी जासूसोंको भी अपराधियोंसे कम दुस्साहसिक काम नहीं करने पड़ते। जासूसी विभागके प्रधानके पास एक ही मामलेकी विभिन्न सूत्रोंसे प्राप्त रिपोर्ट रहती है और वस्तुतः वही किसी मामलेसे सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातोंकी जानकारी रखता है। किसी भी रहस्य अथवा गुप्त बात जाननेकी जिज्ञासा या कौतूहल मानव स्वभावका अंग है और हममेंसे अधिकांश ऐसे हैं, जिनमें यह कौतूहल होता है। तब भला जासूसोंको संगीन मामलोंमें जानकारीकी इच्छा क्यों न हो, जब इसके लिये उन्हें सुविधाएं मिलती हैं, पारिश्रमिक भी और पुरस्कार भी। जासूसी पेशेमें सफलता भी उन्हें ही अधिक मिलती है, जिन्हें इस प्रकारके कामोंसे दिलचस्पी, इसके लिये योग्यता; कल्पना और प्रतिभा होती है।

आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारोंने जासूसीके कामको कुछ हल्का कर दिया है और यद्यपि उसकी कार्य-प्रणाली अपेक्षाकृत जटिल हो गयी, पर उनकी सफलताके लिये साधन भी अधिकाधिक उपलब्ध हो गये हैं। अपराधकी

खबर मिलते ही सभी सम्बद्ध विभागोंमें खबर कर दी जायगी। अपराधकी गुरुता और जटिलता देखते हुए उसके योग्य छान-बीन करनेवाले जासूसोंकी नियुक्ति कर दी जायगी। वे सन्दिग्ध व्यक्तियों, मकानों, होटलों, रेलवे स्टेशनों, मुसाफिरों और न जाने कितने तरहके व्यक्तियों एवं स्थानोंकी जांच करेंगे, बयान लेंगे, नक्शे तैयार करेंगे, सन्दिग्ध और सुराग देनेवाली चीजोंका संग्रह करेंगे और तब सभी उपलब्ध तथ्यों एवं पदार्थोंका विश्लेषण कियाजायगा। सम्भव है इस बीचमें कुछ लोगोंको पूछ-ताछ करनेके लिये पकड़ कर लाया भी जाय। और तब यदि मामलेपर रोशनी डालनेवाली बातें मिलीं तो थानोंको, इलाकोंको और उनके अधिकारियोंको खबर दी जायगी और सन्दिग्ध अपराधी गिरफ्तार किये जायेंगे। जासूसी पेशेवालोंमें सुप्रसिद्ध डा० हसग्रासने एक बार कहा था कि जासूसीके कामके लिये अत्यन्त परिश्रमशील, अक्लान्त, साहसी और कभी न ऊबनेवाले कल्पनाशील व्यक्तिकी आवश्यकता होती है। भीषण अन्धकारसे अपनी मन चाही चीजको ढूंढ़ निकालने की शक्ति, धैर्य और कल्पना उसमें होनी चाहिये। लेकिन इन गुणोंके रहनेसे ही कोई सफल जासूस नहीं हो सकता। इनके विकासके लिये समुचित शिक्षा और अनुभवकी आवश्यकता होती है। इंगलैण्डके यार्कशायर और वरमिंघममें इसके लिये शिक्षालय चल रहे हैं और लन्दनमें भी इसकी व्यवस्था की जा रही है।



प्रयोगशालामें दो संदिग्धाबलोंका तुलनात्मक विश्लेषण

शिक्षालयोंके अतिरिक्त प्रयोग शालाएं हैं, जिनमें विज्ञान अपने करिश्मे दिखाता है। वैज्ञानिक आविष्कारोंके पहले अदालतोंमें वकीलोंसे भारी माथापची करनी पड़ती थी कि अपराधीके बयान या गवाहोंकी जिरहमें कोई ऐसा तथ्य मिल जाय जिससे अपराधका पता लगाया जाय। उस समय अपराधियोंकी मुखाकृति और भावभंगीका सहारा अदालतें लिया करती थीं, किन्तु ऐसे जटिल अपराधियोंका क्या हो, जो चेहरे पर कोई भाव ही नहीं आने देते और जो अपनेको निर्दोष बतानेके अतिरिक्त और कुछ कहें ही नहीं ? उस समय अपराधका पता लगाना सहज साध्य नहीं था। किन्तु विज्ञानने ऐसे आविष्कार किये हैं कि अपराधीके अपराधसे संयुक्त पदार्थों, उंगलीकी छाप, जूतेके निशान, गोलियोंके दाग और कपड़ोंकी शिनाख्त द्वारा सही परिणाम निकाला जा सके। प्रकारान्तर गवाहीके जो तथ्य प्राप्त होते हैं, वे प्रायः अकाट्य होते हैं और यदि अभियुक्त निर्दोष नहीं है, तो उससे इन्कार करनेका साहस ही उसमें नहीं हो सकता। एक समय था जब पशुओं और मनुष्योंके रक्तका अन्तर भी किसीको ज्ञान नहीं था। लेकिन आज विज्ञान यह बतानेकी भी क्षमता रखता है कि मनुष्यों और पशुओंके रक्तके भेद की तो बात क्या, मनुष्य मनुष्यके रक्तमें भेद है। हत्याके कितने ही रहस्यमय काण्डोंपर इस वैज्ञानिक जानकारीने अद्भुत प्रकाश डाला है।

जिस प्रकार कहा जाता कि दीवारें बोलती हैं, उसी प्रकार खूनके धब्बे और पैरोंके नीचेके धूलि-कण बोलते हैं। इन जड़ पदार्थोंको विज्ञानने वाणी दी है। हत्यारेने दबे पांव प्रवेश करके खून किया, गोली सीना पार करके मृत्य व्यक्तिको सदाके लिये समाप्त करके गयी। कोई प्रत्यक्षदर्शीभी नहीं कि गवाही दे सके, लेकिन शत्र-परीक्षाने गोलीका पता बताया, खूनके धब्बेने आनुमानिक समय बताया हत्यारेने जहां पांव रखा था उसकी जमीनकी मिट्टीने बहुत सी दूसरी बातें बतायीं। सभीने मिलती-जुलती खूनकी



पावोंकी छाप परीक्षार्थ उठायी जा सके इसलिये उसपर द्रव लाख गिरा दी जाती है।



पांवोंकी छाप जब कड़ी हो जाती है, तब परीक्षार्थ प्रयोगशालामें भेजी जाती है।

...द्घाटन किया तो देखा कि हत्यारा वास्तवमें पुलिसके चंगुलमें है और अदालतने पाया कि हत्यारा कटघरे में खड़ा है।

यह है विज्ञानका चमत्कार जो आज जालसाजी, सूखी हुई स्याही, अक्षरोंके उतार चढ़ाव और लेखनशैली, खूनकेधब्बे और जमीनकी मिट्टी पर पांवोंके चिन्होंको पकड़ कर, उनकी परीक्षा और समीक्षा करके आधी रातके नीरव एकान्तमें की गयी भयावनी रहस्यमयी घटनाओंका रहस्य बताता है। वैज्ञानिकउन्नतिके साथ-साथ संसारको उसके और हैरतामें डालनेवाले करिश्मे दिखायी पड़ेंगे।

प्रतियोगिता

श्री नरेन्द्रलाल साह 'जगाती'

'नाथ मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती।'

'यह कसे हो सकता है विद्युत, तुम घरमें रहो मै शीघ्र ही वापस लौट आऊंगा," मेघराजने कहा—

'शीघ्र लौटोगे ? कितने दिनमें ?'

'नब्बे दिनमें !'

'नब्बे दिन ! इसे तुम शीघ्र कहते हो ? नहीं नाथ तब तक तो मैं विरहकी पीड़ासे तड़प-तड़पकर मर जाऊंगी !'

'प्यारी, तुम मेरे साथ कैसे आओगी, मुझे तत्काल अपने कार्यपर पहुंचना है,' मेघराजने विद्युतसे कहा—

'कैसे आऊंगी, बताऊं।'

'हां, हां,'

'तुम्हारे अङ्कमें बैठकर। ले चलोगे ?' विद्युतने लजाते हुए कहा—

'आज यह कैसी बातें कर रही हो, पगली, तुम यहीं आरामपूर्वक रहो।'

'यहां ? अकेली ? न संगी न साथी, तुम्हीं कहो किसके साथ समय बिताऊंगी।'

'सागर कितना विशाल गृह है मेरा, तुम्हारे खेलनेके लिये ही मैंने भांति-भांतिके जीव पाल रखे हैं, इनसे ऊब जाओगी तो मूंगे-मुक्ताओंके हार गूंथना...... ।

नहीं नाथ, मुझे तो सिर्फ तुम चाहिये, तुम्हारे जीवन के साथ ही मेरा जीवन है, यदि तुम मुझे ठुकरा कर चले जाओगे तो देख लेना मै तड़प-तड़पकर मर जाऊंगी, लौटने पर तुम्हें मेरी निर्जीव-देह ही मिलेगी, मुझे भी अंकमें उठा लो प्यारे !'

'नहीं रानी, यह असम्भव है, मेरा कर्त्तव्य प्राणियोंको सुख पहुंचाना है, मुख्यतः ग्रामीण टकटकी बांधे मेरी राह देख रहे होंगे, अबतक तो प्रचण्ड मार्तण्डने अग्निवर्षासे भून डाला होगा, यदि मैं उचित कालपर न उपस्थित हुआ तो सत्यानाश हो जायेगा, तब मुझे कितना असह्य दुःख होगा ! मुझे अपना कर्तव्य निभाने दो विद्युत।'

'अच्छा, किन्तु तीस दिन तो और रुक जाओ सिर्फ अपनी प्राणप्यारीके लिये।'

'तुम बड़ी हठी हो, साथ ही चंचल और चपल भी।'

विद्युत गलबाहियां डालती हुई, 'तभी तुम प्यारसे मुझे चंचला और चपला कहते हो ?'

'शैतान, अच्छा तुम्हारी खातिर मैं १५-२० दिन और ठहर जाऊंगा, अब तो प्रसन्न हो।'

विद्युत शर्मा गयी और प्रेमविह्वल हो उसने मेघराजका आलिंगन कर लिया।

❀ ❀ ❀

मार्तण्डके ताण्डव नृत्यने सम्पूर्ण भारतमें हाहाकार मचा दिया, पेड़, पौधे नदी-नाले, जीव-जन्तु झुलस-झुलसकर कालके ग्रास बनने लगे, चारों दिशायें करुणाकी पुकारसे गूंज गयीं, वर्षा न होनेसे महंगाई बढ़ने लगी। निर्धन भूख से मरने लगे, ग्रामीणोंकी दशा शोचनीय हो गयी, मानव सोचने लगे कि इस वर्ष अवश्य अनावृष्टिसे दुर्भिक्ष पड़ेगा, मेघराज हम लोगोंसे रुष्ट हो गये !

इसलिये मेघराजको प्रसन्न करनेके हेतु क्षुद्र मानव जगह-जगह प्रार्थना करने लगे, स्थान-स्थानपर यज्ञ होने लगे, किन्तु मानवको क्या मालूम था कि मेघराज तो संसार में रनिवासमें अपनी रानीसे प्रेमालाप तथा प्रेम-क्रीड़ा कर रहे हैं, लेकिन, दुखियोंकी पुकार···।

❀ ❀ ❀

'सुनो, सुन रही हो पुकार, करोड़ों दुर्बल मानवोंका चीत्कार, सम्पूर्ण देशमें त्राहि-त्राहि का हा-हाकार मच रहा है। क्या अब भी तुम्हारा प्रेमी-हृदय द्रवित नहीं हुआ ?' मेघराजने कहा—

'एक बार मुझे भी यह दृश्य दिखा दो, मेरी आत्मा मुझे धिक्कार रही है, किन्तु विश्वास भी तो नहीं हो रहा है।"

'विश्वास नहीं हो रहा है ? चलो तुम्हें दिखा लाऊं, विश्वास आ जायेगा।'

❀ ❀ ❀

मेघराज विद्युतको लेकर उड़ गये, जब गगनमें पहुंचे तो करोड़ों मानवोंकी आंखें उन्हें निहारने लगीं। 'बप्पा मेघराज, मेघराज,' ग्रामीण बालक प्रसन्नतासे चिल्लाते, 'वह देखो, वह' बालक संकेत करते, यह सुनकर और लोग भी माथेमें हाथ रखकर उस ओर निहारने लगते। ग्राम्यवालाएं तथा युवतियां गाने लग जातीं, बूढ़ोंकी आनन्दसे आंखें छलछला आती थीं, जहां-जहां मेघराज पहुंचते वहां हर्षका राज्य छा जाता, जब मानवोंका प्रसन्नतासे निकला जय-घोष चीरता-फाड़ता मेघराजके पास पहुंचता तो वह विद्युत से पूछता, देख लिया, आ गया विश्वास ?'

'हां, बड़ा ही हृदयविदारक दृश्य है।'

'और देखना चाहती हो ?'

'और क्या दिखलाओगे ?'

'अभी देखा ही क्या है, अभी तो एक भाग ही देखा है।'

'क्या अभी कुछ और भी इससे हृदय-विदारक है ?'

'यह क्या हुआ उसके सम्मुख,चलो तुम्हें दिखलाऊं।'

मेघराज रानीको लेकर घूमने लगे, विद्युतने देखा जुते-जुताये खेतोंमें अनावृष्टिसे दरारें पड़ गयीं; घास-पात, पेड़-पौधे, नदी नाले, ताल-तलैया सब सूख गये, जानवर— गाय-बैल, भैंस-बकरे इत्यादि जमीनमें लोट रहे हैं तथा अपनी अन्तिम सांस गिन रहे हैं, यही दशा मानवोंकी भी हो रही है। ग्रामीण घर-द्वार त्याग नौकरीके लालचमें शहरकी ओर दौड़ रहे हैं। नन्हें-नन्हें बालक प्याससे दम तोड़ रहे हैं। कोई लू लगते ही अचेत होता जा रहा है। जहां कहीं मेघराज विद्युतको लेकर गये वहीं उसने यह दारुण दृश्य देखा। चारों तरफ हाहाकार, कराल कालका भैरवी नृत्य, जैसे ही मेघराज विद्युतको लेकर कहीं पहुंचते सहस्त्रों व्यक्तियों की दीन आंखें उनकी ओर उठ जातीं, प्रार्थनाके लिये हाथ स्वतः ही बढ़ जाते।

अब विद्युतसे न देखा गया, उसका व्याकुल हृदय द्रवित हो गया, नेत्रोंसे झरझरकी बूंदें धरतीपर गिरतीं और और सहस्त्रों कण्ठोंसे जयध्वनि निकल कर गगन मण्डलको गूंजित कर देतीं।

'लौट चलो नाथ, मैंने तुम्हें रोक कर बहुत बुरा किया। अपने व्यक्तिगत आनन्द तथा स्वार्थ साधनकी खातिर समष्टिका नुकसान किया। करोड़ों मानवोंका सुख छीना। सैकड़ों माताओंको निःसंतान कर दिया, आह !...नाथ, मुझे क्षमा कर दो, आजसे मैं भी तुम्हारे साथ घूम-घूम कर पीड़ित मानवों की भलाई करूंगी, यही मेरा प्रायश्चित होगा, तभी मेरे हृदयको शान्ति मिलेगी।'

मेघराज अपनी रानीको लेकर पुनः सागरमें लौट आये।

❀ ❀ ❀

'प्यारी विद्युत अब चलनेकी तैयारी करो।'

'मैं तो बिलकुल तैयार बैठी हूँ, चलिये ?'

हां विद्युत, अब हमें तीन मास तक सागरको कतई त्याग देना होगा। हमें अपना डेरा गगनको बनाना पड़ेगा, थकने पर पहाड़की चोटियों पर पड़ाव डालना होगा, मालूम है पहाड़ोंमें कितनी अधिक ठण्ड पड़ती है ? इसलिये पहाड़ों पर बसे मनुष्योंके घरोंमें ठण्डसे बचनेके लिये हमें जबर्दस्ती घुसना पड़ेगा, साथ ही साथ मार्तण्डके राज्यमें हमला कर उसे भी हराना होगा, इसलिये हमें कम-से-कम तीन महीनेका सामान रख कर जन्मभूमिका त्याग करना चाहिये।'

'तो अब देर-दार क्या हो रही है ? मैं तो उनके दुखमें घुली जा रही हूँ।'

'उतावलापन न करो, जरा देर लगेगी ही, सेना सुसज्जित हो रही है, प्यादोंकी स्त्रियां भी तुम्हें आते देख हठ कर रही थीं, मैंने उन्हें भी चलनेकी आज्ञा तुरंत दे दी, पवनको भी रथ लाने भेजा है, बस वह आया नहीं, हम कूच कर देंगे।'

न मालूम कितनी देर पवन लगाये, इससे अच्छा तो यही है तबतक धीरे-धीरे चलें, रास्तेमें भेंट हो ही जायेगी।

'स्त्रियोंका हृदय भी कितना कोमल होता है, जरा सी ठेस लगने पर पिघल जाता है, अच्छा, चलो फिर।'

मेघराज जन्मभूमि सागरको नतमस्तक कर दलबल सहित चले गये, पवन भी रास्तेमें मिल गया। अब गगनमें जगह-जगह वितान तनने लगे, मेघराजकी समस्त सेना गगनमें घूम-घूम कर अपने सुरक्षार्थ सुरक्षित स्थान खोजने लग गयी, जिसे जो स्थान मिलता था वह उसे ही संभालने लग जाता।

कभी कभी पृथ्वीके अगणित, मार्तण्डसे झुलसित, मानवोंकी दुआ पहुंच जाती तो उनकी करुण पुकार गगन मण्डलमें व्याप्त हो जाती, यह पुकार सुनकर मेघोंकी स्त्रियां तड़प जातीं और दुर्बल मानवोंकी बेवसी देखकर उनके आंसू गिरने लग जाते, मानव प्रसन्न हो जाते, वे समझते बूंदे गिर रही हैं, ।

अब मेघराजकी दल-बादल सेना सुसज्जित हो हो कर आने लगी, पवन भी द्रुतगामी रथ लेकर उपस्थित हो गया, बस क्या था, गगनमें स्थान-स्थान पर वितान तन गये, मार्तण्डके राज्यमें हमला बोल दिया, घोर संग्राम होने लगा, बादल गरज-गरज कर नगाड़े बजाने लगे, विद्युत चमक चमक कर रास्ता दिखाने लगीं, मार्तण्ड मुंहकी खाता और विद्युत कड़क कर अट्टहास कर उठती, मेघराजकी सेना विजय करती चली गयी,........अन्तमें मार्तण्ड परास्त हो गया, मेघराजकी सेनाने उसे बंदी बना लिया और मेघराजके पास उपस्थि किया,...संधि पत्रमें हस्ताक्षर हुए, 'मेघराज राज्य करने नहीं आया है, वह सिर्फ मार्तण्डके अत्याचारोंसे पीड़ित जनताकी रक्षा करने, उनका न्याय करने आया है। तीन मास तक मेघराज गगनमें राज्य करेगा, तत्पश्चात् वह मार्तण्डको उनका राज्य वापस कर लौट जायेगा" सन्धिकी शर्तें स्वीकृत हो गयीं, गगनमें मेघराजका अधिकार छा गया।

मेघराजकी विजय दुन्दभी सुनकर ग्रामोंमें जगह जगह नाच-गान होने लगे, कृषकगण आनन्द विभोर हो गये, कृषक युवतियां नृत्य करने लगीं, मानव तो मानव ही रहे जीव-जन्तु, पशु-पक्षी भी आनन्द विह्वल हो गये, मयूर तो जैसे ही मेघोंको देखता मारे प्रसन्नताके वह नाचने लगता और नाचते नाचते आनन्दाश्रु भी निकल आते, मेघराजने भी अपना कर्तव्य निभाया, ।

"पथ प्रदर्शित करो विद्युत।" मेघराजने कहा—

"पथ प्रदर्शित करो," मेघराजकी समस्त सेनाने भी अपनी अपनी स्त्रियोंसे कहा—

विद्युत चमक चमक कर पथ प्रदर्शित करने लगी, मेघराज घनन-घनन कर दल-बादल सहित आगे बढ़ने लगे, रिमझिम रिमझिम बर्षाकी फुहार बरसने लगी, नदी-नाले, ताल-तलैया पुनः जलसे लबालब भर गये, चारों दिशाओंमें हरियालीका साम्राज्य छा गया, खेत लहलहा उठे, गाय-भैसोंमें फिरसे स्फूर्ति छा गयी, दूध-दही-घी मट्ठे की नदियां बहने लगीं, पुनः मुरझाये सूखे चेहरों पर लालिमा दौड़ने लग गयी।

इस आनन्दमें दादुर उछल उछल कर कुदक-कुदक कर जगह जगह मेघराजके गुणगानका बखान करने लगे, यदि कोई उदास थी तो विरहाकी सतायी कोयल, विरहाग्निसे जल कर वह स्वयं ही श्याम हो गयी, यदि कभी कोई भूली-भटकी दिखायी पड़ जाती और उससे पूछा जाता तो वह उत्तर देती' "अब दादुर वक्ता भये, हम कह पूछत कौन।"

× × ×

एक दिन अचानक गगनमें स्त्री-पुरुषोंके मध्य संघर्ष ठन गया, स्त्रियां कहतीं, "हम बलवती हैं।"

पुरुष उत्तर देते, "झूठ, तुम नाजुक हो, हम बलवान्।"

विद्युत बड़बड़ाती और चमक चमक कर कहती, "यदि हम तुम्हारी पथ प्रदर्शिका नहीं बनतीं तो तुमलोग अथाह गगनमें भटक जाते, सो भी दूसरेके राज्यमें, हमहीने तो तुम्हें बचाया, इसलिये कौन बलवान हुआ हम या तुम?"

इस पर मेघराज तथा उनकी समस्त सेना गरजती हुई कहती, "यदि हम तुम्हें सागर ही में छोड़ आते और अंकशायिनी बना कर नहीं लाते, तो?"

विद्युत पुनः चमक कर प्रत्युत्तर देती, "लाते कैसे नहीं, फिर तुम्हें राह कौन दिखाता, पथ-प्रदर्शक तो साथमें होना चाहिये, किसे बनाते? अपनी गरजसे तुमको हमें लाना पड़ा।"

मेघ गरजकर कहते, "अपने ही पतियों पर तो पत्नियां गुमान करतीं हैं।, उन्हींसे शक्ति लेती हैं तथा उन्हीं पर निर्भर रहतीं हैं।"

विद्युत फिर चमक उठतीं, "हां तुम्हींपर हम निर्भर रहती हैं, क्यों न कहोगे, पुरुषका तो जीवन ही अधूरा है जबतक उसकी वामांगिनी न हो, हम ही तुम्हारी अपूर्ण जिन्दगीपूर्ण करती हैं, समझे।"

अन्तमें उत्तेजक वादविवादके पश्चात् यह निश्चय हुआ-अपनी अपनी शक्तिकी परीक्षा कर ली जाय, कौन परीक्षा में सफल होता है मालूम हो जायगा।

× × ×

प्रतियोगिता प्रारम्भ हो गयी, मेघ तथा विद्युत दोनों

ने एक दूसरे को पराजित करनेके लिये कमर कस ली थी, विद्युत चमक कर चकाचौंध उत्पन्न कर देती और कड़क कर अट्टहास करती, मेघ गरज कर विद्युतकी हंसी उड़ाते और मूसलाधार बरसते।

सात दिन-सात रात बीत गये किन्तु मेघराजका क्रोध कम न हुआ, उन्हें तो अपनी पत्नी एवं स्त्री जातिकी दुर्बलता तथा दर्प चूर्ण कर संसारके सम्मुख दर्शित करना था, पानी ही नहीं अब ओले भी बरसने लगे।

परिणाम यह हुआ कि छोटे-मोटे झोपड़े, कच्चे मकान एक-एक कर ढहने लगे, अच्छे-अच्छे उम्दा हवेलियां-महल-भवन तक चूने लगे, तमाम सड़कों पर दो दो फुट, जल भर गया, पहाड़ खिसकने लगे, सरितायें जल-प्लावित हो गयीं, गांवके गांव बह गये, गाय-बैल, भेंड़-बकरियां, भैंसे-सुअर आदि पालतू जानवर सहस्त्रोंकी संख्यामें जलकी तीव्र धारामें बह गये, हजारों मनुष्य भी नदीकी ही शरणमें हो गये, कई परिवारोंका एक नामलेवा भी न बचा, कहीं पति नदारद है तो कहीं, पत्नी, कहीं मां अपने लालोंके लिये तड़प रही है तो कहीं बालक 'मां, मां' का करुण-क्रन्दन कर रहे हैं, लोग वृक्षों पर चढ़कर अपनी जान बचाने लगे तो नदियां अपनी धाराके साथ ही वृक्ष उखाड़ कर बहा ले गयीं, ओलोंसे आधी खेती ही नष्ट-भ्रष्ट हो गयी, आमद-रफ्त बन्द होने लगा, त्राहि-त्राहि मचने लगी, चारों तरफ जलमही जलमही हो गयी।

इधर विद्युतको भी पुरुषोंका दर्प चूर्ण करना था, वह भी चमक चमक कर पल भरमें एक छोरसे दूसरे छोर तक गगन में चक्कर लगा आती और इतने कड़क कर अट्टहास करती कि धरती कांप जाती, कई गर्भवती स्त्रियोंके गर्भपात हो जाते, कितने ही भयसे अचेत हो जाते दिल दहल जाता, बच्चे मां के क्रोड़ोंमें छिपने लग जाते, पत्नियां पतियोंके अंकमें छिपनेकी चेष्टा करतीं, इतनेसे भी विद्युतको शान्ति न मिली, क्रोधमें वह बज्रसे भी आघात करती, आह! कितना कष्णोत्पादक वह दृश्य था! एक बारात लौट रही थी, इतनेमें मूसलाधार वर्षा बरसने लगी, वर-वधू अन्य बारातियों सहित एक घने बृहत वट वृक्षके तले रुक गये, विद्युतकी दृष्टि इन पर पड़ी, वह चमकी और कड़क कर एक बज्र इन पर फेंक दिया, वर सुरधाम पहुंच गया, वधू बाल विधवा बन गयी, कई बाराती कालके ग्रास बने, कई एक सख्त घायल हुए, खुशीके स्थान पर गमीका राज्य छा गया, जो अभी हंस रहे थे वे रोने लगे, आह! बधु, वह तो करुण-क्रन्दन कर रही थी,……

यह काण्ड इसी भांति चलता रहा, न किसीकी जय होती और न पराजय।

× × ×

मार्तण्डको अपनी किरणोंके द्वारा नित्य प्रतिदिन मेघराज तथा विद्युतके हृदय-विदारक अमानुषिक अत्याचारके के समाचार मिलते रहते, अब मार्तण्ड अपना क्रोध न रोक सका, उसने भी युद्धकी पूरी तैयारी कर ली थी, वह सोचने लगा, 'मैं गगनका सम्राट, मेघराजसे भय खाऊं! तीन महीने बीत गये और अभी तक जम कर बैठा है और मनमाना अत्याचार कर रहा है, सन्धि पत्रमें तो वादा किया था मैं तीन मास पश्चात् स्वयं ही लौट जाऊंगा? मैं राज्य करने नहीं आया बल्कि आपके अत्याचारोंसे पीड़ित जनताकी रक्षा करने, अन्यायको न्यायसे कुचलने, किन्तु अब तो दृश्य ही दूसरा नजर आ रहा है, खुद ही पांव फैलाकर बैठ गया, और अब न्यायके नाम पर नृशंष हत्याका बाजार गर्म कर रखा है।……

बुलाया,

आंधी उपस्थित हो गयी।

'किरण' मार्तण्डने दूतको भी बुलाया।

किरण भी हाजिर हुई।

'किरण, अभी मेघराजने टंटा-बंटा नहीं उठाया।'

'नहीं सम्राट, वह तो अधिकार कर जमके बैठ गया, और, औडर'……।

'और क्या?'

'औडर पति-पत्नियोंके मध्य प्रतियोगिता चल रही है।'

'कैसी प्रतियोगिता?'

'यही, दोनोंमें कौन शक्तिशाली है।'

'अच्छा! अब मनोरंजन भी होने लग गया, आंधी सेना सुसज्जित है?'

'मैं अपनी सेना पल भरमें तैयार कर लूंगी।'

'मुझे तुमसे यही आशा थी, जाओ, दुश्मनोंको शीघ्र-से-शीघ्र गगनसे भगाओ।'

'महाराजाधिराज, वह तो जम गये हैं, जरा सख्ती तथा क्रूरतासे पेश आना पड़ेगा, इस घोर संग्रामका असर पृथ्वी-जगतमें भी पहुंचेगा और कुछ वेदना भी वहांके निवासियों को सहनी पड़ेगी, यदि आज्ञा हो तो ... ।'

'जो कुछ होगा देखा जायगा, यदि एक भागमें युद्ध होता है तो उसका असर सब भागोंमें पड़ता है। और... इनका सहारा तो करना ही पड़ेगा, लातोंके देवता बातोंसे नहीं मानते, आज्ञा है।'

× × ×

आंधीने हमला बोल दिया, मेघराज अपनी सेना सहित इधरसे उधर आंधी द्वारा पटके जाने लगे, प्रतियोगिता समाप्त हो गयी परन्तु एक ओर समस्या खड़ी हो गयी। अपनी जान बचाये या पत्नियों की, घोर संग्राम छिड़ गया, पृथ्वी पर भी असर पड़ने लगा, झोपड़े उड़ गये, मकानोंके छप्पर गिर गये, वृक्ष उखड़-उखड़ कर धराशायी होने लगे, यहां तक कि कई लोगोंके आंधीके साथ प्राण ही उड़ गये। सहस्त्रों मनुष्य घायल हो गये। फल-फूल-पत्ते, टहनियां-शाखायें टूट-फूट कर धरतीमें पर गिर पड़ी।

दो दिनके युद्ध ही में आंधी की विजय हो गयी। मेघराजकी सेनाके सिपाही एक-दूसरेसे बिछुड़ गये। वे गगनमें एक छोरसे दूसरे छोर तक विद्युतको बगलमें दबाये, हृदयमें छिपाये मारे-मारे फिरने लगे...... आंधीने मेघराजकी समस्त सेना समाप्त कर दी, इनेगिने जो बच गये थे उन्हें भी आंधी चुन-चुन कर थप्पड़ोंसे पटक-पटक कर मारने लगी।

युद्ध समाप्त हुआ मार्तण्डकी विजय हुई। मार्तण्डने अपनी उज्ज्वल ज्योतिमें देखा पृथ्वी पर फल-फूल, वृक्ष-डालियां, झोपड़े इत्यादि इस भांति पड़े हैं मानो रुण्ड-मुण्ड-धड़-हाथ-पांव आदि कट कर गिरे हों।

मार्तण्डके दर्शन होते ही पृथ्वी पुनः प्रसन्न बदन दृष्टिगोचर होने लगी, गगन निर्मल हो गया था। मेघराज अपनी रानी विद्युतको लेकर पुनः सागरमें घुस कर छिप गये थे, मार्तण्डका अधिकार गगनमण्डलमें फिर हो गया था। चारों दिशाएं ज्योतिर्मयी हो गयीं, किन्तु अभी घायलोंकी मलहम-पट्टी-शुश्रूषा करनी शेष थी।

मार्तण्डने 'शरद-चन्द्र' वैद्यको बुलाया। शरद-चन्द्र उपस्थित हो गया।

'जाओ, जगतूलोकमें अपनी शीतल निर्मल चांदनी छिटका कर घायलोंकी वेदना हरो तथा तृप्ति पहुंचाओ।'

तुम वहीं मिलीं—

तुम वहीं मिलीं जहां न कल्पना गयी।

तुम मिलीं अशान्त-से समीरमें !
तुम मिलीं चकोरकी अशेष पीरमें !
सिन्धु-वक्षपर तुम्हें पुकारता फिरा,
तुम मुझे मिलीं अधीर नेत्र-नीरमें !
तुम छिपी प्रदीपमें सिसक पड़ा शलभ !
तुम छिपीं निशीथमें विकल सुनील नभ !
खोज तार-तार मध्य हार मैं गया,
प्राण, तुम अधीर गीत-गीतमें सुलभ !
तुम विहंस पड़ीं, न व्यर्थ अर्चना गयी !
तुम वहीं मिलीं जहां न कल्पना गयी !

साध शेष रह गयी नयन न मिल सके !
मै चला, रुका, मगर न होठ हिल सके !
दर्द रह गया, जलन रही, तड़प रही,
रह गये थमे, न अश्रु भी निकल सके !
तुम मुझे मिलीं कि हार जीत हो गयी !
तुम मुझे मिलीं कि पीर गीत हो गयी !
निष्ठुरा निशा कि जो तड़प जगा रही,
तुम मिलीं, कि वह पुनीत-शीत हो गयी !
तुम मुझे मिलीं नवीन प्रेरणामयी !
तुम वहीं मिलीं जहां न कल्पना गयी !

—घनश्याम अस्थाना 'संध्या प्रदीप'

निराला : उपन्यासकारके रूपमें

श्री रामकृष्ण

आज से एक युगके पहले ।

स्थान लखनऊ, अमीनाबाद पार्क । शामको ६ बजे होंगे । पालिश, जूता पालिश, पालिश—' एक नवयुवक गला फाड़-फाड़ चिल्ला रहा था । निरालाजी घूम रहे थे बाजारमें । यह आवाज उनके कानोंमें आयी । देखा, एक साफ-सुथरा लड़का, जो देखनेमें उच्च कुलका मालूम होता था, ब्रश और शीशी लिये पालिश-पालिश चिल्ला रहा है ।

उसे बुलाया ।

'क्योंजी, पालिश करोगे ? निरालाजी ने पूछा ।

'हां, बाबू जी । उसने कहा ।

और अपना पांच बरस पुराना, सत्तर पेबन्द लगा जूता, जिसे लगता था निराला जी अभी रद्दीखानेसे निकाल कर लाये हों, उन्होंने पालिश करनेको दे दिया ।

फिर तो; जबतक वह पालिश करता रहा, निराला जी उससे खूब घुलमिल गये । उसे चार आनेकी मलाई भी खिलाई । जब वह चलने लगा, निराला जी ने उससे पूछा—किस जातिके हो तुम ?

'हुजूर, ब्राह्मण', उसने सहमते हुए कहा—

निराला जी का हृदय द्रवित हो गया । 'ब्राह्मण !' उन्होंने पुनः पूछा—'क्या पढ़े-लिखे नहीं हो !'

'बाबू जी, आठवां दर्जा पास हूं । मां-बाप मर गये हैं, कहीं नौकरी नहीं मिलती । पेट तो किसी तरह पालना ही पड़ेगा । यही धन्धा करता हूं ।' आंसूके दो बूंद टपकाते हुए उसने कहा—

निराला जी समाजके ढहते हुए खण्डहरको देखकर तिलमिला उठे । फलस्वरूप 'निरूपमा' की सृष्टि हुई, और इस तरह 'पालिश-पालिश' चिल्लानेवाले उस ब्राह्मण युवक की प्रेरणामें हमें अमर ग्रन्थ प्रदान किया ।

× × ×

निरालाजी ने पांच-छः उपन्यास लिखे हैं । 'निरूपमा' 'प्रभावती', 'अलका', और 'अप्सरा' लोक प्रसिद्ध हो चुके हैं । वे 'उपन्यासकार' के रूपमें 'कवि' के रूपसे कम प्रसिद्ध नहीं । एक जागरूक लेखककी भांति उन्होंने अपने चारों ओर देखा है, और जो कुछ उन्होंने देखा, उसका प्रतिबिम्ब हमें दिया अपनी अमर कविताओं और लेखोंके रूपमें ।

निराला जी युग प्रवर्तक लेखक हैं, वे हिन्दीकी विद्रोही शक्ति हैं, और इसीसे उनकी लेखनीसे आजके रूढ़िवादी समाजके प्रति कटुसत्य कटु व्यंग्यके रूपमें प्रवाहित हुआ है। अपने उपन्यासोंमें उन्होंने किसी वर्गको नहीं छोड़ा । राजनीतिक, सामाजिक साहित्यिक एवं धार्मिक रूढ़ियोंपर उन्होंने कटु व्यंग्यके छींटे अपनी युग-प्रवर्तक पिचकारीसे छोड़े हैं । सम्पादक, प्रकाशक, नेता-जमीन्दार, रईस-मिल मालिक, पुलिस-थाना, सामाजिक सुधारकों और तिलकधारी पण्डोंके जो चित्र उन्होंने खींचें हैं, वे अत्यन्त सजीव और हृदयस्पर्शी है । देखिये एक सम्पादकका रेखा चित्र :

'सम्पादक ऐसी स्वतन्त्रताके ढोल हैं, जो केवल बजते हैं । बोलके अर्थ, ताल, गीत नहीं जानते, अर्थात उनके अन्दर वैसी ही पोल भी है । वे दूसरोंके हाथोंकी मधुर थपकियों से बोलते हैं । जनता वाह-वाह करती है और बजानेवाले देवताको पुष्प माला देकर यथाभ्यास, जैसे सुझाया गया पूजनेको दौड़ती है । यह स्वतन्त्रताका परिणाम नहीं ।'

निराला जी गांधीवादी नहीं हैं । वे उनके आदर्शको भार के लिये हितकर नहीं समझते । नेता उनके विचारमें, काम नहीं, नामके इच्छुक हैं । राहुल सांकृत्यायनका मार्ग उन्हें पसन्द है और उसी मार्गके प्रसादके लिये उन्होंने अलका को जन्म दिया ।

इसके अलावा निरालाजी समाज सुधारक हैं । उसकी पूर्ति उन्होंने 'अप्सरा' में की । हिन्दुस्तानकी सभ्यता एवं संस्कृतिके पुनरुत्थानका प्रयत्न अपनी 'प्रभावती' में किया और इस तरह निरालाजी राजनीति और समाज, दोनोंके सुधारक बन गये ।

गांवोंके चित्रणमें निराला जी प्रेमचन्दके साथी हैं। उन्हें ग्रामीण वर्गसे सहानुभूति है, जिसका उदाहरण उनकी

'अलका' है। 'अलका' का 'बुधुआ' गोदान के होरी का सगा भाई है। ग्रामीणोंसे उन्हें बौद्धिक सहानुभूति ही नहीं, ये उनमें अच्छी तरह रम गये हैं। गोदानकी ही तरह उनके उपन्यासोंमें भी गांवका यथार्थ चित्रण है। गांवकी गिरती हुई दशा, जमीन्दारोंकी सख्तियां, महाजनोंकी महाजनी, हाकिमोंको बेगार, कुर्की पंचायत, नीलाम ग्राम-संगठन और किसानोंके स्वराज्यकी मांग, सभी हम उनके उपन्यासोंमें देखते हैं। उनको 'अलका' हमारे लिये एक दर्पण है, जिसमें हम अपनी और अपने साथियोंकी वयय-परिस्थितियोंको देखते हैं और उसके भयावह रूपको देखकर सिहर उठते हैं।

एक प्रश्न उठ सकता है—वह यह कि आखिर प्रेमचन्दकी तरह निराला जी के उपन्यास भी क्यों नहीं घर-घरमें फैलकर, शिक्षित वर्गकी एक संकुचित सीमाके अन्दर ही रह जाते हैं। बात ठीक है, परन्तु उसके कारण हैं। निराला जीके उपन्यासों उनके कवि का रूप अधिक प्रबल है। अलका या उनके और दो एक उपन्यासोंको छोड़कर और सबमें प्रेमकी गाथाएं अधिक हैं। वे आजके प्रत्येक पुरुषको दुष्यन्तके रूपमें और हरएक स्त्रीको शकुन्तलाके रूपमें देखते हैं और अपनी इसी धारणाकी प्रतिच्छवि उन्होंने अपनी रचनाओंमें रक्खी है। निरालाजी के शुरूके उपन्यासोंको देखनेसे लगता है कि तब वे अधिक भौतिक थे। बादमें धीरे-धीरे उनका वह रूप कम होता गया। यही कारण है कि जितना यौन हम 'अप्सरा' और 'प्रभावती' में पाते हैं, उतना 'अलका' और 'निरुपमा' में नहीं।

दूसरी बात, प्रभावती और अप्सरा उनके कथानक प्रधान उपन्यास हैं। निराला जी ने इन दो उपन्यासोंमें जिन प्रेम-कथाओंका वर्णन किया है उन्हें यदि वह नाटक का रूप दे देते तो अधिक सफल रहते। कारण, इन रचनाओंकी वस्तु और विषय नाटककी चीजें हैं उपन्यासकी नहीं। यही वजह है शायद कि निरालाजी प्रेम कथानकोंका वर्णन अपने इन उपन्यासोंमें ठीकसे नहीं निभा पाये हैं। इसी तरह निरालाजी के पात्र अपना विकास स्वयं नहीं करते। उनकी सीमा बंधी हुई है और उसके बाहर बहुत कोशिश करनेपर भी वे नहीं निकल पाते।

निराला जी की असफलताका एक कारण और भी है। उनकी भाषा जन साधारण की भाषा नहीं होती। वह संस्कृत मिश्रित अलंकारात्मक होती है जिसमें रूपक उपमा और उत्प्रेक्षा आदि साथ-साथ चलते हैं। फल यह होता है कि एक विद्वान् पाठक को भी एकबारगी उनकी पुस्तक पढ़कर समझनेमें मुश्किल पड़ती है। उसे बीच-बीच में कुछ देर रुक-रुक कर रचनाका अर्थ समझना पड़ता है। साधारण पाठककी गिनती ही क्या ? पर फिर भी निराला



युग प्रवर्तक कलाकार निराला जी

जी ने ऐसी भाषाका प्रयोग किया है और उसका फल यही हुआ कि उनकी पुस्तकें साधारण जनता तक नहीं पहुंच पाईं और उनकी जैसी प्रसिद्ध होनी चाहिये थी नहीं हुई।

लेकिन हर जगह निरालाजी ने वैसी कठिन भाषाका प्रयोग नहीं किया है। कहीं-कहीं तो उन्होंने कमाल कर दिया है।

बेनी बाजपेयीकी स्त्री गम्भीर होकर बोली—'सपूतने पचास रुपयेका मनीआर्डर भेजा है। फिर दोषकी भावनासे भ्रू-कुंचित कर रह गयी।

गुरदीनकी स्त्रीने कहा—तुम्हारे बाजपेयी तो कहते थे कि—

'भाई, हमारे उनको बदनाम न करो, बेनीकी स्त्री आखें तेरेर कर बोली-फलाने क्यों कहते हैं, संसार कहता है।

संसार कहता होगा, गांवमें तो उन्होंने ही कहा है। गुरदीनकी स्त्री विश्वास पर प्रमाण का जोर देकर बेनीकी स्त्रीकी त्योरियोंकी परवाह न करती हुई बोली।

तो तुम्हीसे कहा होगा! स्वर चढ़ा कर भावमें बन्ध कर बेनीकी वीणा झंकृत हुई।

मुझसे कहे, किसकी मजाल है। मूंछें न उखाड़ ली जायेंगी। गुरदीनकी सरस्वतीने अपने काव्यकी एक पंक्ति सुनाई।

निरालाजीके सब उपन्यासोंके पात्र लगभग एक तरह के हैं। सबकी मानसिक तथा शारीरिक स्थिति भी एक ही है। अलकाके विजयको ही हम अप्सरामें राजकुमार, प्रभावती में राजकुमार देव, और निरूपमामें कुमारके रूपमें देखते हैं। चरित्रमें भी चारों एक-से हैं। चारों उच्च शिक्षित गाने-बजानेमें दक्ष, मांस भक्षक; पहलवान, फक्कड़ तबियत और रूढ़ियोंको तोड़ने वाले हैं। मानों निरालाजीने स्वयं अपना ही व्यक्तित्व इन चारोंके रूपमें चित्रित किया हो। स्त्री पात्रोंमें भी साम्य है। वे भी संगीतकलामें निपुण हैं और अकेले ही रूढ़िप्रिय समाजसे विद्रोह करनेमें सफल होती हैं। निरालाजीके पात्रोंमें स्त्री पुरुषकी अपेक्षा अधिक प्रगतिशील है। निरालाजीने अपने स्त्री पात्रों द्वारा हमें प्राचीन भारतीय नारियोंकी आदर्श-प्रियताका दिग्दर्शन कराया है। जिसमें समर्पण भावना गुरु है। उपर्युक्त पात्रोंको छोड़ कर भी निरालाजीके उपन्यासोंमें कुछ और पात्र हैं, जो हिन्दी संसारमें अमर रहेंगे। जैसे नीली, योगेश, तेजनारायण, बुधुआ और शिवस्वरूप पण्डित। नीलीके चित्रणमें तो निरालाजीकी लेखनी ने कमाल कर दिया है। शिवस्वरूप पण्डित भी वर्तमान ब्राह्मण समाजके उदाहरण हैं। बुधुआ तो आजके किसानोंके घर-घरका प्रतिनिधित्व करता है।

चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे निरूपमा निरालाजीका सर्व श्रेष्ठ उपन्यास है। परन्तु मेरे विचारसे इसमें यदि निराला जीने नीरूकी वेदनाको अन्तमें उचित सहानुभूति दी होती और विवाहको ही कथानककी फल प्राप्ति न बनाया होता, तो वह दुनियांके किसी भी अच्छे-से-अच्छे उपन्यासकी बराबरी कर सकता था।



देशी राज्योंकी समस्या

प्रो० चन्द्रशेखर एम० ए० डी० लिट०

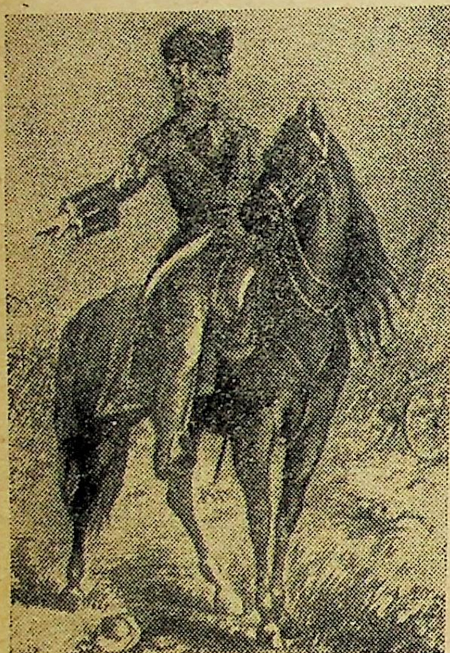
"पूरबके इन निस्तेज और निकम्मे राजा नामधारियोंको जिन्दा रखकर हमने उनके स्वाभाविक अन्तसे उनकी रक्षा कर ली है। बगावतके द्वारा प्रजाजन अपने लिये एक शक्तिशाली और योग्य नरेश ढूंढ़ लेते हैं। जहां अब भी देशी नरेश हैं, हमने वहांके प्रजाजनोंके हाथोंसे यह सुविधा और अधिकार छीन लिया है। यह इल्जाम सही है कि, हमने इन नरेशोंको सत्ता दे दी, पर उसकी जिम्मेदारीसे उन्हें बरी कर दिया है। अपनी नपुंसकता, दुर्गुण और गुनाहोंके बावजूद भी, केवल हमारी तलवारके बलपर ही वे अपने सिंहासनों पर टिके हुए हैं। नतीजा यह है कि अधिकांश रियासतोंमें घोर अराजकता फैली हुई है। राज्यका कोष किरायेके टट्टू जैसे सिपाहियों और नीच दरबारियोंपर बरबाद हो रहा है। और गरीब रियायासे बेरहमीके साथ वसूल किये गये भारी करोंके रुपयोंसे नीचसे नीच मनुष्योंको पाला जाता है। असलमें अब सिद्धान्त यह काम कर रहा है कि सरकार प्रजाजनोंके लिये नहीं, राजा और उसके ऐशोआरामके लिये जनता है और यह कि, जब तक हमें राजाकी सत्ता और उसके सिंहासनकी रक्षा करना अभीष्ट है, तब तक हमें भी भारतकी सर्वोपरि सत्ताके रूपमें वे तमाम बातें करनी ही होंगी, जो ऐसे राजा अपनी प्रजाके प्रति करते हैं।"

—'लन्दनटाइम्स'

आजसे लगभग एक शताब्दी पूर्व १८५३ में 'लन्दन टाइम्स' ने देशी नरेशोंके सम्बन्धमें उक्त शब्द लिखे थे, किन्तु आज भी उनका उद्धरण अनुपयुक्त नहीं है। अधिकांश रियासतोंका शासन सर्वथा निरंकुश, अनुत्तरदायित्वपूर्ण और कलंकित हाथों द्वारा हो रहा है। दरबारियों की चाटुकारिता, अयोग्यता और स्वार्थपरताके कारण कितने ही नरेशों तक प्रजाजनोंके अभाव अभियोगोंके समाचार तक नहीं पहुंच पाते और सारा वातावरण इतना विषाक्त हो चलता है कि नागरिक अधिकारोंकी मांगको राजद्रोहका नाम देकर उसका उत्तर लाठियों और गोलियों द्वारा दिया जाता है। यह स्थिति कब तक चलेगी? "ऐसे देशभक्ति-विहीन कार्योंके अनिवार्य परिणाम-स्वरूप खतरोंसे हमें खिलौनों-से राजाओंको सावधान कर देना चाहिये। इतिहासमें असंख्य उदाहरण इसके साक्षी हैं कि डावांडोल होने वाले सिंहासनों ने जब कभी ऐसे अनाचारोंका सहारा लिया है, तभी उन्हें विध्वस्त हो जाना पड़ा है। ऐसी नीतियां राजाओं और उनके सहकर्मियोंको सदा ही ले डूबी हैं। रूसके महाप्रतापी जारने कुख्यात 'सो कालों', विवेकहीन पादरियों, कज्जाक सरदारों और रूढ़िवादी सामन्तोंको मिलाकर ऐसाही कुचक्र रच रखा था, किन्तु यह सब मिलकर रूसी सर्वहाराका प्रभाव रोक न सके। टर्कीके पाक खलीफाके सहायकोंकी कमी नहीं थी, दूसरे राष्ट्रोंका कूटनीतिक समर्थन भी उन्हें प्राप्त था, किन्तु टर्कीकी प्रजातन्त्रात्मक शक्तियोंका अभियान रोका नहीं जा सका। सीधे सूर्यके उत्तराधिकारके नाते ५००० वर्षसे शासन करते चले आते चीनके शाही खानदान को चीनके जन-विद्रोहने केवल कुछ इनेगिने दिनोंमें ही सदाके लिये मटियामेट कर दिया। और उस उद्धत और अभिमानी कैसरका क्या हुआ? भारतके देशी राजाओं और नबाबोंकी भांति मिश्रके पाशाओंने भी विदेशी हितों के संरक्षणके लिये ऐसा ही विश्वासघाती कुचक्र रच रखा था, लेकिन समय रहते ही उन्हें होश आया और राष्ट्रीय मोर्चेमें सम्मिलित होकर उसने अपना अस्तित्व बचा लिया। देशी राजाओं पर प्रभुत्व रखने वाले ब्रिटिश सिंहासनकी भी कहानी क्या है? यह भी तो ब्रिटिश प्रजातन्त्र का ही एक खिलौना है।" (श्री के० एफ० नारीमैनः दक्षिण राज्य प्रजा-परिषदके अध्यक्षपदसे दिये गये भाषणका अंश, ५ जून, १९३७ ई०)

ऐतिहासिक आधार

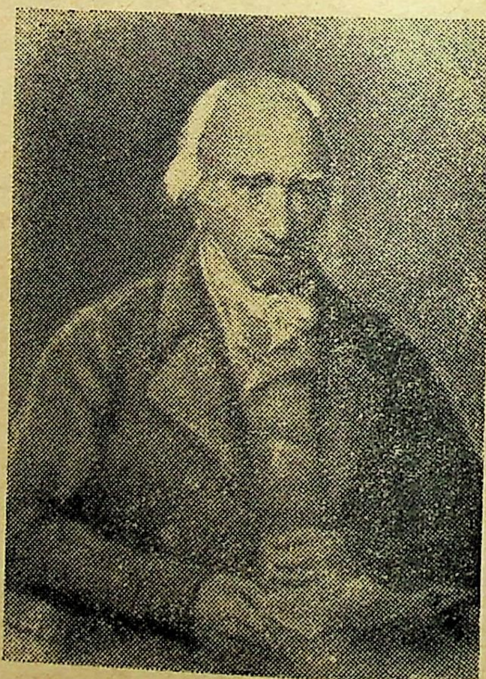
देशी राज्योंका ऐतिहासिक आधार, ब्रिटिश सरकार के साथ की गयी उनकी सन्धियों अथवा उससे प्राप्त उनकी



भारतमें अंगरेजी राज्यके प्रारम्भिक प्रतिष्ठाता क्लाइव।

सनदें हैं। भारतके विशाल क्षेत्रोंको अपने अधीनस्थ कर लेनेके पश्चात् ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने युद्धका मार्ग छोड़कर भारतमें अपनी शक्ति संगठित करनेका संकल्प किया और इसके लिये उन्होंने विभिन्न राजाओंके साथ विभिन्न नीतियोंका अवलम्बन किया। ईस्ट-इण्डिया कम्पनीने विभिन्न देशी राज्योंके साथ जैसा सम्बन्ध स्थापित किया और अन्तमें ब्रिटिश सरकारका जैसा सम्बन्ध उनके साथ स्थापित हुआ, इन सबका इतिहास जहां शिक्षाप्रद एवं मनोरंजक है, वहीं अत्यन्त कारुणिक भी है। तलवारके बलपर भारतके एक अंशपर विजय प्राप्त कर लेनेके बाद कूटनीतिक हथकण्डों द्वारा दूसरे अंशपर ब्रिटेनने विजय पायी। यह दूसरा अंश देशी राज्योंका है। सर जार्ज बार्लो ने ८ जुलाई १८०३ को स्वयं स्वीकार किया था कि "यह सर्वथा आवश्यक है कि भारतमें ऐसी कोई रियासत नहीं रहने देना चाहिये जिसपर ब्रिटिश प्रभुत्व न हो; अथवा जिसपर पूर्ण ब्रिटिश नियंत्रण न हो।" वारेन हेस्टिंग्सने पहली फरवरी १८१४ को लिखा था: "अपनी सन्धियोंमें हम उन्हें (देशी नरेशोंको) स्वतन्त्र स्वीकार करते हैं। फिर हम एक रेजिडेन्ट मुकर्रर करते हैं। राजदूतकी तरह न रहकर; वह तानाशाहकी भांति रहता है। वह उनके सभी खानगी मामलोंमें भी दखल देने लगता है...और रेजिडेन्ट जो कुछ भी करता है; सरकार सभीमें उसके साथ है।" क्योंकि वारेन हेस्टिंग्सके ही ६ फरवरी १८१६ के एक दूसरे लेखके अनुसार: "यथार्थमें उनपर हमें ब्रिटिश सरकारका ही सर्वप्रधान प्रभुत्व स्थापित करना है; भलेही हम इसकी घोषणा न करें। नाममें नहीं; लेकिन काममें देशी राज्योंको हमें अपना पिछलग्गू बना देना है।"

इस प्रकार भारतमें ब्रिटिश सत्ताकी प्रतिष्ठाको ही दृष्टिगत रखकर देशी राज्योंके प्रति ब्रिटिश नीति कार्यान्वित हुई। वेलेजली और हेस्टिंग्सने यदि देशी नरेशोंको पराजित किया और उनसे सन्धियां कीं तो मलकम, मेटकाफ मुनरो और एलफिन्स्टनने उक्त सन्धियोंके आधारपर देशी राज्योंमें ब्रिटिश सत्ताकी स्थापनाके लिये बहुत अधिक कार्य किया। हेस्टिंग्सके द्वारा की गयी कुछ महत्वपूर्ण सन्धियां इस प्रकार हैं—कच्छ, करन्ती, समथर, भोपाल और कोटासे १८१७ में, जोधपुर, मेवाड़, कोटा, बीकानेर,

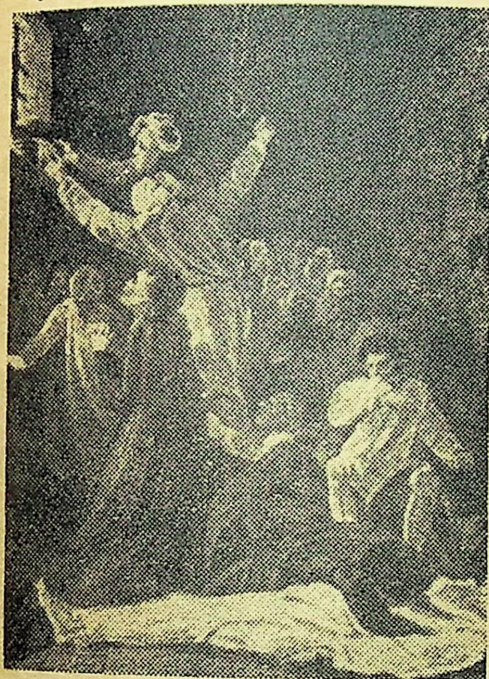


देशी राज्योंका इतिहास वारेन हेस्टिंग्ससे सर्वथा सम्बद्ध है।

कृष्णगढ़, जयपुर, प्रतापगढ़, देवास, जैसलमेर, बांसवाड़ा और धारसे १८१८ में और राजपीपला से १८२१ में।

ब्रिटिश साम्राज्यवादके स्तम्भ——

ऊपरके कुछ उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि देशी नरेशोंके साथ सन्धि करके यद्यपि उनकी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करनेका बहाना किया गया किन्तु उनके हाथमें वास्तविक अधिकार कुछ भी नहीं रखे गये। रेजिडेंटों और पोलिटिकल एजेंटोंकी नियुक्ति करके उनके हाथमें ही वास्त-



काल कोठरी—ब्लैक होल—
तथ्य या कल्पना ?

विक सत्ता प्रदान की गयी। इनका काम यह रहा कि कभी राजाके विरुद्ध ये प्रजाजनोंका साथ देते और कभी प्रजाजनोंको सतानेके लिये राजाका साथ देते। हर तरहसे नरेशोंको ब्रिटिश नियंत्रणमें रखना ही इनका उद्देश्य रहा और इस प्रकार स्वेच्छा अथवा अनिच्छासे देशी नरेश भारतमें ब्रिटिश शासनके बहुत प्रबल स्तम्भ हो गये। आज भी मि० विंस्टन चर्चिल जो देशी नरेशोंके लिये इतना हायतोबा मचाते हैं, इसका कारण एकमात्र यही है कि राजनीतिक प्रगतिमें सर्वथा शिथिल देशी नरेशोंने अस्तित्व-रक्षाके लिये प्रजाकी सद्भावनापर अवलम्बित रहनेके बजाय ब्रिटिश संगीनोंकी छायाके नीचे रहना ही अधिक श्रेयस्कर समझा और उनकी ऐसी मनोवृत्तिका ब्रिटिश कूटनीतिज्ञोंने सदाही अधिकाधिक सदुपयोग अपने हितोंके संरक्षणके लिये किया है।

कितने ही ऐसे उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं जो इस बातको स्पष्ट करते हैं कि ब्रिटिश वायसरायोंने एक ओर तो देशी नरेशोंके कुशासनकी निन्दा करके प्रजाको संतुष्ट करनेका नहीं, प्रजाको उत्तेजित करनेका संकेत किया और नरेशोंको अपने राज्यमें प्रजाको नागरिक अधिकारोंके प्रदान करनेका परामर्श दिया और दूसरी ओर जब प्रजा की मांगोंका उत्तर नरेशोंने गोलियोंसे देना चाहा, तो ब्रिटिश सत्ताने उन्हें ऐसा खुलकर करनेका मौका भी प्रदान कर दिया। इसका कारण स्वतः स्पष्ट है। राजा और प्रजामें 'फूट डालो और शासन करो,' की साम्राज्यवादी नीतिके आधारपर ही ब्रिटिश शासकोंने ऐसा किया। देशी नरेश इसीलिये अपने राज्योंमें दमनचक्र चलानेमें कभी हिचके नहीं। प्रजाकी राजनीतिक चेतना देशी नरेशके लिये ही नहीं ब्रिटिश प्रभुत्वके विरुद्ध भी जाती, इसलिये ब्रिटिश शासक इस चेतनाके विरुद्ध देशी नरशोंकी निरंकुशताके समर्थक क्यों न होते? और मजा यह है कि अंगरेज राजनीतिज्ञ साथ-साथ नरेशोंकी भर्त्सना भी करते चलते थे। लार्ड कर्जनने कहा था कि, 'एक देशी नरेश, जहां तक उसका सम्बन्ध साम्राज्यसे है, वह सम्राटकी वफादार रियाया होनेका दावा करता है किन्तु अपनी प्रजाको लेकर वह गैर जिम्मेदार, निरंकुश और अत्याचारी बना रहता है और खेल तमाशों तथा वाहियात बातोंमें अपना समय और धन बरबाद करता रहता है। यह दोनों ही बातें साथ-साथ नहीं चल सकतीं। उसे यह साबित करना चाहिये कि जो अधिकार उसे दिये गये हैं उनका वह अधिकारी है। वह अपनी प्रजाका स्वामी है तो उसे सेवक भी बनना चाहिये। उसे यह बात समझ लेनी चाहिये कि राज्यका कोष उसकी विलासिताके लिये नहीं, प्रजाकी भलाईके लिये है। उसके आन्तरिक शासनमें सार्वभौम सत्ता—पैरामाउण्ट पावर—के हस्तक्षेपसे वह तभी तक मुक्त रह सकता है जब तक कि ईमानदारीसे अपने कर्तव्यका पालन करता रहे। उसका सिंहासन विलासिताके लिये नहीं, कठोर कर्त्तव्य



१८५७ के सिपाही विद्रोह अथवा भारतकी स्वाधीनता के प्रथम संग्राम का एक चित्र।

पालनके लिये है। सिर्फ पोलोग्राउण्ड, रेसकोर्स (घुड़दौड़ के मैदानों) और यूरोपियन होटलोंमें घूमने से ही उनके कर्त्तव्यका अन्त नहीं हो जाता। उनका वास्तविक स्थान तो प्रजाके बीच है। जो हो, देशी नरेशोंके सम्बन्धमें मेरी तो यही कसौटी है और यही कसौटी उनके लिये भाग्य-निर्णायक होगी, या तो वे जीवित रहेंगे या उनका अस्तित्व ही संसारसे उठ जायगा।' लार्ड हार्डिंज, नार्थब्रुक, हेरिस, मेयो, चेम्सफोर्ड, रीडिंग, इरविन और लार्ड वाविलनेभी इसी आशयके वक्तव्य समय-समयपर दिये हैं किन्तु इनकी कोई सार्थकता इसलिये नहीं रही, क्योंकि देशी नरेशोंने इस बातको महसूस कियाकि यह ब्रिटिश प्रभुओं की कोरी धौंस है, उनकी असली मंशा नहीं। असली मंशा तो सिर्फ यह है कि वे ब्रिटिश इच्छाके अनुसार बने रहें, इसीमें उनका कल्याण है।



भारतमें ब्रिटिश प्रभुत्व स्थापित होनेके बादकी प्रथम कौंसिलकी बैठक

कुछ तथ्य

भारतमें कुल देशी राज्योंकी संख्या ५६२, कुल क्षेत्रफल ७,१२,५०८ वर्गमील और जनसंख्या १९४१ की जनगणनाके अनुसार ९,३१,८९००० है। क्षेत्रफलके हिसाबसे यह समस्त भारतका ४० प्रतिशत और जनसंख्या के अनुसार समस्त भारतकी आबादीका २३.२४ प्रतिशत है। कुल १२० राज्योंको विभिन्न संख्याकी तोपोंकी सलामीका अधिकार है और ४४२ राज्यों या जागीरोंको सलामीका अधिकार नहीं है। ४५४ राज्योंका क्षेत्रफल १००. वर्गमील और जनसंख्या एक लाखसे भी कम है। १५ रियासतोंका क्षेत्रफल १ वर्गमीलसे भी कम है। ३ रियासतोंकी आबादी १०० से भी कम है। और कई रियासतें हैं जिनकी सालाना आमदनी १०० रुपये भी नहीं है। ऐसी भी एक रियासत है जिसकी वार्षिक आय २०) है। देशी राज्योंके सम्बन्धमें यह कुछ विचित्र तथ्य हैं।

बटलर कमेटी

देशी नरेशों और ब्रिटिश सार्वभौम सत्ताके पारस्परिक सम्बन्धके विषयमें ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे नरेशों की स्वाधीन सत्ताकी वास्तविकता स्पष्ट हो जाती है। नरेशोंने स्वयं भी अपनी वास्तविकता जाननेकी इच्छा १९२७में प्रकटकी थी। लार्ड बर्केनहेड उस समय भारत मंत्री थे। उन्होंने नरेशोंका अनुरोध स्वीकार करते हुए सर हरकोर्ट बटलरकी अध्यक्षतामें एक कमेटी नियुक्त की, जिसने देशी राज्योंके सम्बन्धमें अनेक तथ्य एकत्र किये; उनकी समीक्षा की और उनकी वास्तविक स्थितिपर प्रकाश डाला। राज्योंके सम्बन्धमें बटलर कमेटीकी रिपोर्ट बहुत ही महत्वपूर्ण है। कमेटीने अपनी रिपोर्टमें एक जगह लिखा है:—"ऐतिहासिक तथ्यों एवं इस कथनमें कोई सामंजस्य नहीं है कि देशी राज्य जब ब्रिटिश सत्ताके अन्तर्गत आये, तब उन्हें पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त थी! अन्तर्राष्ट्रीय विधानके अनुसार भी उन्हें वह पद नहीं प्राप्त था कि उनकी कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा हो। प्रायः सभी राज्य मुगल

साम्राज्य, मराठों अथवा सिखोंके प्रभुत्वमें थे। कुछको अंगरेजोंने छोटा बना दिया और कुछका नव-निर्माण किया।'

रिपोर्टका उक्त निष्कर्ष यदि स्वीकार कर लिया जाय तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि राज्योंका स्वतंत्र सत्ताका दावा सर्वथा निराधार है। अतः उनका यह दावा भी युक्तिसंगत नहीं है कि स्वाधीन भारतके विधानमें भी उन्हें पूर्ण स्वाधीनता रहनी चाहिये। पूर्ण स्वाधीनता तो उन्हें कभी थी ही नहीं और वस्तुतः रहनी चाहिये भी नहीं। भारतकी केन्द्रीय शक्तिपर जिसका प्रभुत्व एवं नियंत्रण रहा है, उसीके अधीनस्थ यह राज्य रहे हैं और नवीन विधानके अन्तर्गत भारतीय संघको ऐसे कितने ही अधिकार प्रदान करने होंगे जिसके अनुसार देशी राज्योंसे सम्बद्ध कितने ही विषयों पर नियंत्रण स्थापित किया जा सके। नरेशोंको स्वतः प्रजाके अधिकारोंका श्रोत माना जाय या नहीं, यह विवादग्रस्त विषय है, किन्तु आधुनिक युगका सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जनता ही शक्तिका श्रोत है। भारतीय विधान परिषदके गत अधिवेशनमें पण्डित जवाहरलाल नेहरू द्वारा उपस्थित 'स्वतन्त्र भारतीय प्रजातन्त्र' का जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है, उसमें भी जनताको ही सभी शक्तियोंका मूल श्रोत स्वीकार किया गया है। युगधर्म यही है। और इसी आधार पर यदि नरेशोंने अपनी भावी शासन-नीति संचालित की तो वैधानिक नरेशके रूपमें वे बने रह सकते हैं, अन्यथा खतरेकी सम्भावना है। मेरठ कांग्रेसके अध्यक्षपदसे आचार्य कृपलानीने स्पष्ट घोषणा कर दी है कि आधा देश स्वाधीन और आधा (देशी राज्यों वाला) पराधीन रहे, यह असह्य है।

गीत

स्नेह अक्षत है हृदय-तल,
　　　　फिर न कैसे मैं लुटाता!
मिट गयी युग की निराशा
मिट गया युग भी अकेला!
आ गया नव-युग उदित हो;
पर मिटी कब प्रणय-बेला!
　　　　मंजरित सु अम्ब-तरु से
　　　　ली न कोकिल ने बिदाई!
　　　　प्राण-चातक की पिपासा
　　　　और अब तक बुझ न पाई!
स्वर-सुधा-निधि उच्छ्वसित उर,
　　　　गीत फिर कैसे न गाता!
सुभग वसुधा-रेणु दल से
अंकुरित हरिताभ कोमल—
हैं कई ये नवल पौधे;
झूमते नव फूल-कलि खिल!
　　　　पर, हरे पत्रांक नीचे शूल लख—
　　　　जग जी चुराता!
　　　　बीन पर कांटे सभी मैं
　　　　फूल से पथ को सजाता!
मिट न पाया धूल से उन—
　　　　फूल का पर, नेह—नाता!
दीन, अवनत शीश, स्वर सब—
आर्त, कंपित हो लुटाये!—
प्रार्थना में ही उन्हीं के;
और वे भी जग न पाये!
　　　　तब हृदय के शून्य कोने से
　　　　उमग आवाज आयी!
　　　　"तू महान, अजेय मानव,
　　　　और गर्दन क्यों झुकायी!"
पत्थरों में गड़ गये सब
　　　　जो कभी थे विधि-विधाता

—'शलभ' साहित्यरत्न

मितव्ययता

श्री विनायक नानेकर

अमेरिकाके सोलहवें प्रेसीडेंट अब्राहमलिंकन एक समय अपने जूतोंपर पालिश चढ़ा रहे थे। ऐसे मौकेपर वहां एक 'सिनेटर' आ पहुंचा और लिंकन सरीखे विख्यात् व्यक्तिको जूतोंपर पालिश चढ़ाते देख उसने आश्चर्य प्रदर्शित करते हुए पूछा, 'मिस्टर प्रेसीडेंट, आप खुद ही अपने जूतोंपर पालिश करते हैं ?'

इसपर लिंकनने अपना काम चालू रखते हुए शांतिसे उत्तर दिया, 'जी, मैं अपने ही जूते पालिश करता हूं, मगर आप किसके जूते पालिश करते हैं ?

'सिनेटर' को सिवाय मौन रहनेके कोई चारा न था। लिंकन इतने बड़े देशके प्रतिष्ठित अध्यक्ष होते हुए भी अपना काम कर लेनेमें पीछे नहीं हटते थे।

मगर आज कलके लड़के रेलमें जब सफर करते हैं तो उनकी ऐंठका कोई ठिकाना नहीं रहता। सफर तो करते हैं तीसरे दर्जेमें। चढ़ते वक्त उन्हें कोई देखे तो उतरते वक्त पहिचानना मुश्किल हो जाय। इस कदर सूरत हो जाती है इनकी ऐंजिनके धुएंसे, मगर रुआब ऐसा कि एक हेंडबेग उठानेमें इनकी शानमें धब्बा लगता है—कुली चाहिये। गांधीजी का तत्व है कि जितना सामान इन्सान खुद ले सके तबतक उसे दूसरोंकी तरफ ताकना नहीं चाहिये। ठीक ही तो है। यदि छोटी-छोटी बातोंमें भी हम दूसरों पर निर्भर रहने लगे तो स्वतन्त्रता कैसे प्राप्त करेंगे ? अपना सामान खुद उठानेमें क्या शर्म ? अपने ही घरमें झाड़ू देनेमें क्या हिचक ? काम अपना ही ठीक होता है न कि दूसरों का। हर बातमें दूसरोंकी सहायताकी आशा करना आलस्य और मनहूसीकी निशानी है।

❀ ❀ ❀

गांधी जी जितने ही पूज्य हैं उतने ही बदनाम हैं। काबिल आदमी हमेशा अपने जीवनकालमें बदनाम रहते हैं। उसी तरह गांधीजी की बहुत-सी बातें लोगोंको भाती नहीं, पटती नहीं—उनमेंसे एक सादगी और मितव्ययता है। जिस वक्त किसीको लड़ाई की गंध न थी, उस वक्त गांधीजी ने लोगोंको मितव्ययतासे रहनेका इशारा किया था। मगर लोगोंने इस सलाहपर गौर नहीं किया। बातों में उड़ा दिया। कोई कहने लगे, बूढ़ेका दिमाग थक गया है—साठा बुद्धिनाठा—कहता है जो जी में आता है। मगर जब लड़ाई छिड़ी और उसकी लपटोंसे सारा देश भुन गया तो मजबूरन लोगोंको सादगी और मितव्ययतासे जीवन काटना पड़ा। अब सहसा लोगोंके मुंहसे निकल पड़ता है—बूढ़ेने ठीक कहा था। यदि उस वक्त लक्ष्य दिया होता तो आज इतना कष्ट न होता।

❀ ❀ ❀

आजकल लड़के-लड़कियां बाजार जाते हैं। चार जगह मोल-भाव करनेमें उन्हें शर्म मालूम पड़ती है और वे महंगी और बेकार चीजें लेकर घर आ जाते हैं। डेविड-सन राकफेलर दुनियाका नम्बर एक धनी था। उसकी कम्पनियोंमें अरबों डालरोंकी पूंजी लगी हुई थी मगर उसे आडम्बर और प्रदर्शनसे सख्त नफरत थी। उसने कभी शराब और तमाखूको हाथ नहीं लगाया। अरबों डालरों का स्वामी होते हुए भी उसने मितव्ययता न त्यागी। सामान्यसे सामान्य वस्तुकी खरीदमें ठगा जानेमें वह कभी राजी नहीं होता था। आजकल लोगोंका मोटा ख्याल होता है कि जो वस्तु जितनी ही महंगी होती है उतनी ही अच्छी होती है। इसी कारण दूकानदार झुकाते हैं जो झुकते हैं, बेवकूफ बनाते हैं जो बनते हैं।

❀ ❀ ❀

लोगोंमें चैन और आलस्यकी मात्रा दिनोंदिन बढ़ती जा रही है और फैशनके नामपर दिखावा और छैलापन भी जोर पकड़ रहा है। बिना कष्ट उठाये, बैठे-बैठे बड़ा बनने का वे स्वप्न देखा करते हैं। ऐसे ही लोग अपने धनका ऐसा दुरुपयोग करते हैं। नतीजा यह होता है कि अन्तमें जरूरत के नामपर वे एहसान और कर्जके शिकार होते हैं और दुनियामें एक गुलामकी तरह जिन्दगी बिताते हैं। जिस तरह खाली थैली खड़ी नहीं रहती, मुर्दा मनुष्य बोल नहीं

सकता, गुनहगार मनुष्य निडर नहीं हो सकता उसी तरह एक कर्जदार मनुष्यको दुनियामें लुकते, छिपते, डरते सर झुकाते जीवन काटना पड़ता है। वह अपनी स्वतन्त्रता खो बैठता है और बहुत ही नीचे दर्जेपर पहुंच जाता है। अंग्रेजोमें कहावत है "Who goes a borrowing goes sorrowing" जो इन्सान अपनी कमाई में वफादारीके साथ जीवन नहीं काट सकता; वह जरूर ही दूसरोंकी कमाईपर बेईमानीसे गुजारा करता है। जो इन्सान खुद अपना दोस्त नहीं बन सकता वह दूसरोंसे दोस्त बननेकी कैसे आशा कर सकता है? वही मितव्ययी मनुष्य इन दुर्गुणोंसे अलिप्त हो, स्वतन्त्रतासे रहकर अपनी इज्जत कायम रखता है। मितव्ययी मनुष्य समझदार सहनशील; परिश्रमी और आजाद होता है।

❀ ❀ ❀

मैं मितव्ययतासे चलता हूँ और मेहनत करनेसे कभी पीछे नहीं हटता, ये उद्‌गार हैं लिप्टनके। शुरुआतमें लिप्टन एक स्टेशनरीकी दुकानपर १० शिलिंग वेतनपर नौकर था। मितव्ययता और नित्य मेहनतसे कुछ वर्षों में ही उसने एक दुकान खोली। मेहनतका मीठा फल मिला और तकदीर जगी क्योंकि परिश्रम ही भाग्यकी जननी है। व्यापार बढ़ा और आज ६००० से ऊपर उसकी कंपनीके एजेण्ट समस्त संसारमें फैले हुए हैं। मितव्ययी होते हुए भी उसने अपने कर्मचारियोंको संतुष्ट रक्खा और सबोंको यही नसीहत दी कि "हाथ बन्द कर खर्च करना ही सफलताका रहस्य है।" इसी कारण उसकी कंपनी हड़तालसे अछूती रह गयी। लोग लिप्टनको कंजूस कहते थे मगर कहनेवाले बेखबर मर गये और थामस लिप्टनकी चाय आज भी लोगोंको आनन्द दे रही है।

❀ ❀ ❀

'तेती पांव पसारिये जेती लम्बी सौर' कहावत प्रसिद्ध है। मगर खेद है कि कहावत सिर्फ कहनेके ही निमित्त रह गयी है; अमलमें लाने योग्य नहीं। एक व्यक्ति मेरे देखने में ऐसा आया जिसकी तनख्वाह मामूली थी मगर बड़ोंकी नकल करनेकी उसे बीमारी थी जिसके कारण उसकी बीबी को बर्तन मांजनेकी नौबत आती थी। बम्बईमें कुछ ऐसे व्यक्ति भी देखनेमें आये जो प्रदर्शनके लिये अपनी सारी कमाई खर्च कर बैठते थे और उधर देशमें उनके रिश्तेदार दूसरोंके सामने हाथ पसारते थे। कुछ ऐसे रईस भी देखे (यदि उन्हें रईस कहा जाय) जिनकी रहन सहनका दर्जा काफी ऊंचा था मगर बादको नौकरोंसे मालूम हुआ कि वे कर्जके बोझसे दबे हुए हैं। आज घरमें जूतोंकी नुमायश है और कल इज्जत पर जूते पड़ रहे हैं। ऐसी भी जिन्दगी क्या काम की? ऐसे एक नहीं अनेक दृष्टान्त फिजूलखर्चियोंके मिल सकते हैं। फिजूल खर्ची अन्तमें भयंकर रूप धारण कर मनुष्यको नीचा दिखाती है। महादेव गोविन्द रानडे रोजके खर्चकी वस्तु रोज लाते थे। उन्होंने अपने क्रममें कभी अन्तर नहीं आने दिया। उनका कहना था कि इस क्रमसे कुटुम्बमें समरसता और स्फूर्ति कायम होती है। मगर लोग उन्हें 'चिकू' कहते थे। कहनेवाले तो कीड़ोंकी तरह मर गये किन्तु रानडे अमर हो गये।

× × ×

लोग मितव्ययताको कंजूसी कहते हैं, क्योंकि मितव्ययताका अर्थ समझनेमें वे भूल करते हैं। वे मितव्ययताका उलटा अर्थ निकालते हैं। उदाहरणार्थ एक साबुनकी बट्टी चार आनेमें आती है। इस साबुनसे कपड़े जल्द और अच्छे स्वच्छ होते हैं, साबुन भी कम लगता है और मिहनत भी बच जाती है। यह साबुन अंग स्वच्छ करनेके भी उपयोगमें आ सकता है मगर लोग किफायतकी आड़में सस्ता साबुन खरीदते हैं। जिसे रगड़ते-रगड़ते साबुन खर्च हो जाता है मगर कपड़े साफ होनेके बजाय जल्द फट जाते हैं। मितव्ययताका यह अर्थ नहीं कि सस्ती और हल्की चीजें खरीद कर मिहनत, वक्त और पैसा बर्बाद करें। मितव्ययताका अर्थ कम-से-कम खर्च करनेसे नहीं है बल्कि बुद्धिमानीसे खर्च करनेसे है। अक्सर, सस्ते दामपर अच्छी चीज लानेवालेकी लोग प्रशंसा करते हैं। मितव्ययी बुद्धिमान और अन्वेषक होता है।

लोगोंकी शिकायत है कि महंगाई बहुत बढ़ गयी है इतनी बढ़ गयी है कि दो वक्त खाना नसीब होना दुश्वार हो गया है। मैं कहूँगा कि महंगाई तो जो बढ़ी है वह तो बढ़ी है मगर उसके साथ-ही-साथ लोगोंका खर्च भी हदसे ज्यादा बढ़ गया है। एक वे लोग भी थे जिन्होंने अकाल

और पिछली लड़ाईकी महंगाईका सामना किया मगर वे उतने हताश और दीन अवस्थापर नहीं पहुंचे थे जितने पर आज-कल लोग दीख रहे हैं। वजह यह है कि उस वक्त लोगोंको सिनेमाका खर्च तथा सिगरेटका व्यसन न था। आजकल लोगोंकी वृत्ति इस कदर उच्छृंखल हो गयी है कि एक दफेका खाना बाद कर उस पैसेसे सिनेमा जरूर देखते हैं। कभी-कभी यहां तक देखनेमें आता है कि १० आने का टिकट न मिला तो सावा रुपयेका टिकट खरीदनेको वे राजी हो जाते हैं और वहां भी निराश हुए तो दो रुपये तक खर्च करनेकी नौबत आ जाती है। चोरबाजारसे भी टिकट खरीदनेमें लोग नहीं चूकते। इस तरह शौकके पीछे पैसा खर्चकर उधर जरूरी क्षेत्रोंमें वे तंगी उत्पन्न कर लेते हैं। वही हाल सिगरेटका है। पहले इसका प्रचार इतना नहीं था मगर आजकल यह शौक ५-१०रुपये ले ही बैठता है। तीसरा फिजूल खर्च चायका है जिसने लोगोंको पूरा समरसाल्ट खिलाया है। कमसे कम दस रुपये महीने यह खा जाता है। इसके पश्चात् शौककी चीजें; जो पाउडर, वेसलिन, क्रीम और अप-टु-डेट बननेके लिये बिलायती ढंगके कपड़े तन-ख्वाहकी आधी रकम चाट जाते हैं। इस तरह मोटे हिसाब से हर इन्सान महीनेमें आडम्बर और बेकार शौकके पीछे ३०-४० रुपयोंका दुरुपयोग करता है जिसे यदि बचाया जाय तो दस वर्षमें वह एक स्वतंत्र मकान खड़ा कर सकता है। हमारे देशमें कुछ सम्प्रदाय ऐसे हैं जिनसे कुछ न कुछ शिक्षा ली जा सकती है।

कमाना सीखो गुजरातियोंसे, खर्च करना और बचाना सीखो मारवाड़ियोंसे और अच्छे रहन-सहनके लिये पारसियों का उदाहरण सामने रखो तो जीवन बेदाग और सुखी होगा। एकने ठीक कहा है Economy can be styled the daughter of prudence, the sister of temperence and the mother of liberty.

यदि आप एक एक पैसे की फ़िक्र करेंगे तो रुपये अपनी फ़िक्र आपही कर लेंगे। विलायतमें एक शख्स था जो एक पेटीमें रोज एक पेंस डालता था। उसके ऐसा करनेके बाद जब वह पेटी खोली गयी तो उसमेंसे १० मनुष्योंको सालभर खिलाने योग्य रकम निकली। अमेरिकामें शराबकी दूकानपर नौकर एक मनुष्यको बोतलोंके कार्क जमा करनेका शौक उत्पन्न हुआ। कुछ ही वर्षों पश्चात् उसके पास कार्कका ढेर लग गया जिसे बेचकर उसने एक स्वतंत्र धंधे की नींव डाली। बूंद-बूंदसे ही समुद्र भरता है सिर्फ संतोष और धीरजकी जरूरत है। मितव्ययता यही सिखाती है क्योंकि मितव्ययता का अर्थ ही है, उत्तम व्यवस्था खबरदारी और वस्तुकी बर्बादी से रक्षा।

सादगी और मितव्ययता से जीवन व्यतीत करने वाला मनुष्य संयमी और परिश्रमी होता है और परिश्रमका फल अंतमें मीठा होता है। इमान्युएल कांट, प्रसिद्ध दार्शनिक एकसा जीवन व्यतीत करनेके कारण अमर हो गया है। उसने अपने जीवनके विषयमें कहा है: "मैं एक ऐसा व्यक्ति हूं जिसने लगभग ८० वर्ष तक अपने आपको जीवनरूपी कसे हुए रस्सेपर सन्तुष्ट रखा और एक बार भी दायीं या बायीं ओर नहीं हटा।"



रिक्शावाला

श्री भूमेश्वर शरण

माघ मासके कृष्ण पक्षकी अंधेरी एवं ठंडी रात्रिमें, स्टेशनपर रिक्शा न मिलनेके कारण, मैं और मेरे एक मित्र छात्रावासको पैदलही चल पड़े। परन्तु अभी हम दो ही पग चल पाये थे कि लौह जिह्वा रात्रिकी भयानक शांतिको बेधती हुई दो बार झंकार उठी। हम दोनों भयभीत होकर एक दूसरेका मुंह देखने लगे। क्या इस समय चलोगे—दोनोंके नेत्रोंने आपसमें अपनी मूक भाषामें पूछा। पर, पगों ने हृदयकी अवहेलना की और आगे बढ़ने लगे।

उस रात भीषण ठंढ़ थी। यद्यपि हम अच्छी तरह कपड़े पहने थे तथापि हमको कभी-कभी कंपकंपी आ जाती थी। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। हमारी ही पद-ध्वनि हमको चौंका रही थी। नगरके कुत्ते बिजलीके खंभों के नीचे पेटसे मुंह सटाये पड़े, अत्यधिक ठंढ़के कारण कू-कू कर रहे थे। भारतकी दरिद्रता, सड़कके दोनों ओरके फुट-पाथों,पर कुछ फटे चिथड़ोंमें ठंढ़से बचनेकी व्यर्थ चेष्टा कर रही थी। सारा नगर इन निर्धनोंको क्रूर प्रकृतिके आसरे छोड़ प्रगाढ़ निद्रामें निमग्न था। इन्हीं निराश्रितोंमें से कभी कोई कराह भी उठता। पर किसको इतना अव-काश था कि उस भग्न हृदयकी, हृदयविदारक आहको सुनता। वह आह, उस घोर वातावरणमें एक बार प्रति-ध्वनित होकर कहीं शून्यमें जाकर विलीन हो जाती।

'बाबू जी'

किसी दुखित हृदयकी पुकारने हमें एकाएक चौंका दिया।

'हम भीख मांगनेवालोंको इस समय भी तो चैन नहीं है'—मेरे मुंहसे यह शब्द अनायास ही निकल पड़े।

'बड़े कठोर हो तुम'—मेरे मित्र विनयने जरा रुकते हुए और इधर-उधर देखते हुए कहा।

विनयका रुकना मुझे उस समय अच्छा न लगा, इस-लिये उनको आगेकी ओर मैंने खींचते हुए कहा—'ऐसे दानी बने तो एक ही दिनके हो जा…।'

'बाबूजी…।'

फिर वही आर्तनाद! इस बार मुझसे भी न रहा गया और मेरी गर्दन स्वयं ही पीछेकी ओर घूम गयी। हमसे कोई दस कदम पीछे बिजलीके खम्भेके नीचे एक रिक्शा-वाला खड़ा था। प्यासेको पानी मिल गया।

'रिक्शा चाहिये बाबू?'—रिक्शावालेने हमसे पूछा।

और रिक्शापर बैठनेके विचारसे हम उस ओर बढ़ गये। परन्तु न जाने क्यों, विनय रिक्शाके पास ही ठिठक कर खड़े हो गये और मुझसे अंग्रेजीमें बोले—'क्या यह हम दोनोंको खींच सकेगा?'

मैं रिक्शावालेको एक ही दृष्टिमें ऊपरसे नीचे तक देख गया। उसके जर्जर शरीरको—जिसे कदाचित् सप्ताहों से खाना न मिला था, उसके मलिन मुखको—जो रोग-ग्रस्त-सा प्रतीत होता था, उसके पिचके हुए गालोंको—जिनपर आध-आध इंचके लगभग दाढ़ी लटक रही थी, एवं गढ़ेमें धंसी हुई दो आंखोंको—जिनमें असीम वेदना छिपी हुई प्रतीत होती थी, देखकर मुझको भी शंका होने लगी और फिर वह आधुनिक भारतीय मानव न जाने किस वस्तुका बना था कि ऐसी ठंढ़में केवल एक नेकर, कमीज और उसपर सूती फटी हुई गाढ़ेकी चादर लपेटे हुए था। जूता तो किसी रिक्शावालेके भाग्यमें ही नहीं। मैं उसके पतले हाथोंको जो हैन्डिलको थामे हुए थे देखही रहा था कि विनयने उससे पूछा—

क्या तुमको ठंढ़ नहीं लगती?

ठंढ़! गरीबोंसे तो बाबू ठंढ़ भी घृणा करती है—एक आहके साथ उसकी हृदयतन्त्री बज उठी।

अच्छा, हमको बी० टी० छात्रावास तक खींच सकोगे?—हमारी स्वार्थ भावनाने उससे प्रश्न किया।

मानो पके फोड़ेको छू दिया हो। वह बोला—खींचेंगे नहीं तो बाबू पेट कहांसे भरेंगे। निर्धनोंकी हड्डियोंमें ही बल होता है।

यद्यपि उसकी दुर्बल देहको देखकर हमारा हृदय, रिक्शा पर बैठनेके पक्षमें न था किन्तु किसी अज्ञात प्रेरणावश

आत्माको कुचल कर, हम रिक्शापर चढ़ गये। 'ऊं' रिक्शावालेने जोर लगाया और रिक्शा चला। वायु हमारे विपरीत थी इसलिये उसको अधिक परिश्रम करना पड़ रहा था। वह ऐंड़ीसे चोटी तकका जोर लगा रहा था। उसकी प्रत्येक सांससे, हृदयमें टीस उत्पन्न कर देनेवाली एक ध्वनि हो रही थी। मानों उसके अन्तस्तलमें व्यथाकी एक ज्वाला धधक रही हो, जो श्वासके साथ बाहर निकल पड़ना चाहती हो। हमारी आत्मा चिल्ला-चिल्ला कर कह रही थी—'यह अत्याचार है, उतर पड़ो।' पर हम उतर न सके, मानों रिक्शा में जकड़ गये हों। और फिर उतरते भी कैसे? हमको तो अभी कुछ और ही देखना था।

(२)

छात्रावासकी बरसातीकी जगमगाती बत्तीके नीचे जैसे ही रिक्शा रुका, रिक्शावाला तत्क्षण रिक्शाको, छोड़, नीचे जमीन पर, सिर थाम कर बैठ गया और जोर-जोर से हांफने लगा। 'कदाचित थक गया है'—मैंने अपने मनमें कहा, और उसको देनेके लिये बटुएमें-से पैसे निकालने लगा। उचित दाम गिन कर, मैंने उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—'लो'

उसने मेरा आशय समझ कर अपना पतला-सा निर्जीव हाथ आगे बढ़ा दिया। मैंने उसकी सूखी हुई पीली हथेली पर पैसे गिन दिये। उसने हांपते हुए, पैसों पर एक दृष्टि और डाली और विनीत स्वरसे बोला—'बाबूजी एक आना और'

'नहीं। बस यही ठीक है।' कहकर हम सीढ़ीपर चढ़ने लगे।

रिक्शावाला जमीनपर हाथ टेक कर उठा और हमारे पीछे आता हुआ बोला—'बाबूजी बस एक आना और। बच्चे का दूध और स्त्रीकी···द···वा।'

वह अभी वाक्य भी पूरा न कर पाया था कि लड़खड़ा कर वहीं सीढ़ियोंपर गिर पड़ा। 'कैसा बन रहा है'—मेरे मुंहसे ये शब्द धीरेसे निकल गये। पर ओफ्। कैसा घृणित विचार था वह। वैसा सोचना भी अन्याय था—एक घोर पाप था। रिक्शावालेके मुंहसे—हां मुंहसे—रक्त बह रहा था। हम भावी आशंका से कांप उठे। क्या करें? कहां जायं? किससे कहें? कुछ समझमें ही न आता था। परन्तु विनय ने उस समय साहस दिखाया। उन्होंने लपक कर रिक्शावालेको उठाना चाहा। पर, उसके शरीरको छूते ही उछल पड़े। मानो अंगार पर हाथ रख दिया हो। रिक्शावालेका शरीर बुरी तरह भुन रहा था।

हमने जल्दीसे छात्रावासके चौकीदारको तथा अपने चार पांच मित्रोंको जगाया। उनसे सब वृतान्त कहा और परामर्श किया। सबकी राय यही हुई कि उसको आज रात यहीं रखा जाये। हम सबने उसके ओढ़ने और बिछौनेके लिये कपड़े जुटाये और उसको एक कमरेमें आरामसे लिटा दिया। हममेंसे कुछ प्रारम्भिक चिकित्सा भी जानते थे, वह उसकी शुश्रूषामें लग गये।

× × × ×

कुछ समय पश्चात् उसकी मुट्ठी खुली; तो बोला—'बाबूजी मेरा बच्चा भूखा तड़प रहा होगा।'

'हमको अपना घर बता दो; हम वहां दूध दे आयेंगे'—हमारे एक मित्रने उसको सान्त्वना देते हुए कहा!

'बाबूजी आप जायेंगे मेरे घर! जहां अन्नका दाना भी जाते हुए हिचकिचाता है।' रिक्शावालेने आंखोंमें आंसू भरकर कहा।

'नहीं; नहीं; घबड़ाओ मत' हम अवश्य जायेंगे।'—मेरे एक दृढ़ प्रतिज्ञ मित्र कैलाशने कहा।

'भगवान आपको लाख वर्षकी आयु दे। जहांसे आपने रिक्शा ली थी वहीं बायीं ओर की अंधेरी गलीमें दाहिने हाथकी दूसरी कोठरी मेरी ही है।'—रिक्शावालेने आत्मीयताके भावसे कहा।

कैलाशने छात्रावासमेंसे ही एक बोतलमें दूध इकट्ठा किया और मुझसे बोले—'चलो हमें वह स्थान बता दो।' कैलाश; मैं और एक अन्य मित्र; तीनोंने साइकिलें उठायीं और रिक्शा वालेके घरकी ओर चल पड़े। न जाने उस समय वह कड़कड़ाती ठंढ; वह तीक्ष्ण वायु; कहां लोप हो गयी थी। मानो प्रकृतिने एक गरीबकी आहके सम्मुख घुटने टेक दिये हों—हार मान ली हो।

(३)

रिक्शावालेके घर पहुंच कर हमने अपनी टार्च जला ली और दरवाजा खटखटाया। परन्तु अन्दरसे कोई उत्तर न मिला। इस पर कैलाशने किवाड़को जरा-सा धक्का दिया

तो वह स्वयं ही एक धीमी आवाजके साथ खुल गया। मैंने टार्चका प्रकाश अन्दर डाला तो वह स्थान पूर्णतः दरिद्रता देवीका देवालय-सा प्रतीत हुआ। धुंएंसे सारी कोठरी काली हो गयी थी। छत और दीवारों पर जाले लटक रहे थे। सामने कोनेमें एक टूटा-फूटा चूल्हा बना हुआ था, जिसकी दशा बता रही थी कि उसमें कई दिनोंसे आग तक नहीं जली थी। उसीके पास कुछ मिट्टीके गन्दे बर्तन मुंह बाये लुढ़क रहे थे। वहीं पर पानीका एक घड़ा भी रखा था जिसपर काई जम गयी थी। चूल्हेके ऊपर ही एक खुली अल्मारी थी जिसपर कुछ टीनके डब्बे उलटे-सीधे पड़े थे। वे डिब्बे कदाचित अन्न रखनेके लिये होंगे, जो उस समय खाली ही थे। कोठरीकी दूसरी ओर आले पर एक तेल-रहित बुझा हुआ दीपक रखा था। और उसी बुझे दीपकके नीचे दरिद्रता देवीकी पुजारिन, अपने कंकालको एक फटे हुए कम्बलमें लपेटे, कदाचित अपनी अन्तिम घड़ियां गिन रही थी।

हम लोगोंने धीरेसे अन्दर प्रवेश किया। हमारे हृदय, उस समय धकधक कर रहे थे। उस स्त्रीके मुंदे हुए नेत्रोंमें अश्रुधारा बह रही थी। वक्षस्थल लोहारकी धौंकनीकी तरह उछल रहा था। 'इस स्त्रीसे हम क्या कहेंगे'—यह विचार हमारे मस्तिष्कमें रह-रहकर पीड़ा पहुंचा रहा था। इतनेमें स्त्रीने करवट बदली और कैलाश कह उठा—'यह दूध।'

इतना सुनना था कि वह अभागिनी फूट फूट कर रोने लगी और बोली—'दूध! इतनी देर बाद! अब तो बहुत देर हो चुकी। दूध पीने वाला—'तुम्हारा लाल तुम्हें छोड़ कर पहले ही जा चुका।'—इन शब्दोंके साथ-साथ उसने अपनी पथराई हुई सी आंखें खोल दीं और कहने लगी—'कहां हो तुम? अपने लालकी सूरत तो देख लो! अरे, तुम बोलते क्यों नहीं? क्या तुम कोई और हो?'

कैसा हृदय विदारक दृश्य था वह! हम तीनोंकी आंखोंसे, पानी बह रहा था। दिल बैठा जा रहा था। जी चाहता था कि कानोंमें उंगली देकर वहांसे निकल भागें। पर पैर भी तो नहीं उठते थे। मानो किसीने बेड़ियां डाल दी हों। कैलाशने हिम्मत बांधी और स्त्रीसे कहा—'तुम्हारे पतिकी तबियत खराब होनेके कारण हमने उन्हें यहां न आने दिया। इसलिये हम दूध लेकर आये हैं। तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, वह अब अच्छी तरहसे है।'

उस अबला पर मानो आकाश फट पड़ा हो। बिलख-बिलख कर कहने लगी—'हाय! मना किया था, मत जाओ। बीमार हो। पर न माने, चल ही पड़े। इस बच्चेकी खातिर जो अब केवल मिट्टी ही है। हे भगवान! मैं अब उन्हें कैसे मुंह दिखाऊंगी? उनके लालको अब कैसे और कहांसे पाऊंगी। हे ईश्वर, अब क्यों तड़पा रहे हो। मुझे भी मेरे लालके पास ही बुला लो।'

वह करुण क्रन्दन, वह मर्मस्पर्शी युक्तियां, वह भयंकर हाय, सर्वथा असह्य थी। मेरे हाथ एकाएक कांप उठे और टार्च फर्श पर गिर पड़ी। और उधर, बस; केवल एक चीख और वह दीप जो अबतक टिमटिमा रहा था, कालके एक ही झोंकेमें बुझ गया।

वह तीनों अपनी आंखें पोंछते हुए बाहर निकल आये। कैलाशने बाहर आते ही वह दूध भरी बोतल जमीन पर दे मारी। खन···न···न···। मानो बोतल कह उठी—'काश, मुझे फोड़ कर तुम फिर बना सकते।'

हमने अपनी अपनी साइकिलें लीं और छात्रावासको चल पड़े।

(४)

विनय कमरेके बाहर ही खड़े थे। उसने यह दुखद कहानी कही और रिक्शा वालेकी दशाके बारेमें पूछा। 'बारम्बार तुमको ही पूछ रहा है'—विनयने उत्तर दिया।

'क्या वे लोग आ गये'—अन्दरसे रिक्शावालेने पूछा।

हमारा चित्त उस समय इतना अशान्त तथा दुखित था कि बिना सोचे समझे ही हम कमरेके अन्दर चले गये।

'क्यों भाइयो, वे दोनों अच्छे हैं या समाप्त हो चुके?'—कितनी कसक; कितनी तड़प थी उसके शब्दों में।

हम लोग उसके सामने अपराधीसे खड़े आंसुओंके घूंट पी रहे थे। कुछ कहना चाहते थे पर मुंहसे बोली न निकलती थी। जैसे किसीने हमारा गला पकड़ रखा हो। हमको चुप देखकर वह बोला—'यह तो मुझे पहलेसे ही आभास हो चुका था। कदाचित आप डरते हैं कि मुझे दुख होगा। परन्तु बाबू जी; गरीबका हृदय पत्थरका होता है। जिसपर यदि कील भी ठोंकी जाये तो वह भी उचट

जाये।' यह शब्द कहकर; बेचारा बिलख-बिलख कर रोने लगा। और थोड़ी ही देर बाद मूर्छित हो गया।

उसी चेतनाहीन दशामें पहले तो खूब हंसा और फिर पागलोंकी तरह बकने लगा—'मर गये। दोनों मर गये। चलो अच्छा हुआ। कब तक जीते और फिर जीकर करते भी क्या? बीस दिनसे बीमार थी। उदर और ज्वरकी अग्निमें तिल-तिल भस्म हो रही थी। किसको चिन्ता थी उसकी? डाक्टर मेरे यहां—एक गरीबके यहां—कैसे आता? मेरे पास चांदीके चमकते हुए टुकड़े कहां थे; जो उसे लुभाता—उसकी जेब भरता—उसकी दवा मोल लेता। नहीं···नहीं···। उसका ही कसूर था। क्यों लिया गरीब के यहां जन्म? क्यों गरीबके यहां व्याही गयी? फिर गरीबके यहां बीमार क्यों हुई? गरीबीमें बीमार होना भी तो पाप है। परन्तु फिर भी सब कुछ सहा। भूख, प्यास, ठंढ, लू; सब कुछ। कितनी अच्छी थी वह! इतना कष्ट होते हुए भी; चूं तक न की। जानती थी न; कि वह गरीब है। असहाय है। आह, आग-सी लग रही है।'

'फिर वह बच्चा। क्या बिगाड़ा उसने किसीका? कैसी भोली थी उसकी सूरत। नन्हे-नन्हे हाथ। वह तुतली बोली। ओफ हृदयमें छुरी-सी चुभ रही है। अभी दो दिन हुए घंटीकी आवाज सुन कर कैसा खुश हो रहा था। पर ईश्वरसे उसे भी न देखा गया। उस नन्ही सी जानको भी छीन लिया। वह भोला सा मुखड़ा—वह मधुर मुस्कान—गयी। चली गयी। सदाके लिए गई। अच्छा ही हुआ। जल्दी ही निपट गया। बड़ा होकर फिर भी तो भूखा और नंगा ही मर जाता। और यह दुनिया बैठी बैठी देखती ही रहती। दो आंसू भी तो न बहाती! अब उसके जाने पर—उसकी मौत पर कोई आंसू तो बहा रहा है। ना—ना—ना—। मैं रोऊंगा?

नहीं—नहीं—। मैं रो भी कैसे सकता हूँ। गरीब को तो रोनेका भी अधिकार नहीं है।'

टन—टन—। छात्रावासकी घड़ीने पांच बजाये। हमारा ध्यान टूटा। रिक्शावालेका विलाप सुनकर हृदय दहला जा रहा था। वहांसे भाग जानेको मन चाह रहा था। इसी विचार से मैंने अपने मित्रोंकी ओर देखा। सब की आखोंमें आसुओंकी झरियां लगी थीं। हम सब कमरे से बाहर निकल आये। और आपसमें इस सम्बन्धमें विचार करने लगे। कुछकी राय हुई कि इसको यहीं रखा जाये और इलाज करवाया जाये। परन्तु बहुमत यही रहा कि इसको चिकित्सालय पहुंचा दिया जाये एवं रिक्शा वालेकी स्त्रीके बारेमें यह निश्चित हुआ कि उसकी सूचना स्वयंसेवक-संघमें दी जाये।

कुछ विद्यार्थियोंने रिक्शा वालेको चिकित्सालय पहुंचानेका दायित्व लिया और कुछ, जिनमें मैं भी था स्वयं-सेवक-संघकी ओर चल पड़े।

(५)

प्रातःकालका समय था। नदीके उस पार पौ फट रही थी। दूर बहुत दूर, पेड़ोंकी पंक्तियोंके उस पार प्राची दिशा में बालारुण नयी नयी आशाएं और उमंगें लिये धीरे धीरे ऊपर उठ रहे थे। और इस ओर एक चिता अपने उदरमें, मां और उसके बच्चेके—हृदयके टुकड़ेको—समाये धू-धू कर जल रही थी। एक ओर जीवन था, दूसरी ओर मृत्यु—शून्य—महाशून्य। इन दोनोंके बीच कलकल निनादिनी हिलोरें लेती बलखाती बही चली जा रही थी। मानो मानवकी क्षणभंगुरता पर अट्टहास कर रही हो—

'कोई मरे या जिये, मैं तो अनन्त तक यों ही बहती रहूँगी।'



राष्ट्र और साहित्य

श्री कदमलाल पोद्दार 'साहित्यरत्न'

राष्ट्र एक सजीव अवयव है। यह एक जीवित संस्था है। किसी सभ्यता विशेष, संस्कृति विशेष, परम्परागत मर्यादा विशेष तथा गतानुगतविशेषकी प्रतिष्ठित प्रतिमूर्तिका ही नाम साहित्य है। इन अवयवोंको सुरक्षित रखना राष्ट्रके शरीर को विगलित होनेसे बचाना है। राष्ट्रके प्राण इसके अवयवोंमें सन्निहित हैं। यदि ये अवयव जीवित हैं, जाग्रत हैं, चेतन हैं और स्वस्थ हैं तो राष्ट्र भी जीवित है, जाग्रत है, चेतन है और स्वस्थ है। साहित्यका प्रधान कार्य है—राष्ट्रीय चरित्रको विकसित करना, उसका निर्माण करना और उसकी रक्षा करना। साहित्य एक प्रधान साधन है जिसके द्वारा राष्ट्र अपनी साधनामें सिद्धि प्राप्त कर सकता है। राष्ट्रके विस्तार तथा उसकी इच्छा शक्तिको लोकसंग्रह की बुद्धिसे उद्घोधित करना साहित्यका कार्य है।

इधर कुछ लोग समझने लगे हैं कि जीवनमें विज्ञान, उद्योग-धन्धे, व्यवसाय, व्यापार आदिका ही उपयोग है, साहित्यका कुछ भी नहीं। साहित्य यों ही एक मन बहलावकी चीज है, एक दिमागी ऐयाशी है। जीवनमें स्थूल दृष्टिसे उपयोगी समझे जानेवाले विषयोंका जो महत्व है उससे किसी अंशमें कम महत्व साहित्यका नहीं है। एक की उपयोगिता यदि पेटकी भूख मिटानेमें है तो दूसरेकी उपयोगिता है आत्मा और मनकी भूख शान्त करने में। साहित्य साधारणतः कल्पनासे सम्बद्ध माना जाता है और लोगोंके हृदयमें यह बात घर कर गयी है कि कल्पना-प्रसूत रचनाओंका कोई सामाजिक अथवा व्यावहारिक महत्व नहीं होता। साहित्य मनुष्यके अन्दर बसनेवाले देवताका रक्षक और पोषक है तथा वह केवल मनोरंजनकी वस्तु नहीं होकर उस तपोवनके समान है जहां मनुष्य शुद्धता लाभ करके देवताकी ओर बढ़नेकी तैयारी करता है।

समर्थ स्वामी रामदासने शिवाजीको मंत्र दिया था कि 'नरदेहा स्वाधीन, सहसा न होवे पराधीन' और इसी मंत्रसे आमन्त्रित होकर शिवाजी तथा महाराष्ट्रके वीरोंने स्वाधीन राष्ट्रकी स्थापना की थी।

समर्थ स्वामी रामदासके मंत्रोंसे दीक्षित होकर शिवा जी ने जिस प्रकार नवीन राष्ट्रका जन्म दिया वह भारतवर्षके इतिहासकी एक अक्षय निधि है।

देश तथा राष्ट्र पूजाके यजमान पृथ्वीराजके पत्रको पढ़कर जातीययज्ञके पुरोहित राणा प्रतापकी जीवन सरिता में राष्ट्रधर्मकी मन्दाकिनी प्रवाहित होने लगी और आपने पृथ्वीराजके उत्तरमें लिखा—

'खुशी हूं त बीथल, कमध पटको सूं छा प्राण ॥
पटछन है जो तैप तो कमला सिरके वाण ॥

अर्थात् हे पृथ्वीराज ! आप प्रसन्न होकर मूछोंपर ताव फेरिये। जब तक राणा प्रताप है, तलवारको यवनोंके सिर पर ही समझिये।

साहित्यके जाननेवाले सब जानते हैं कि पृथ्वीराजके पत्रने क्या किया और यह पत्र यदि प्रतापको न मिला होता तो भारतवर्षका इतिहास क्यासे क्या हो गया होता और जो स्फूर्ति आज हमें मिलती है—नहीं मिलती।

रणक्षेत्रमें, जीवन संग्राममें, सामाजिक क्रान्तिमें, तथा राजनीतिक उत्थानमें साहित्यिकोंका मृत्युञ्जय मंत्र ही अमोघ शक्तिका काम करता है। बन्दे मातरम् आज एक ऐसा ही महामंत्र है जो राष्ट्रके भालके कुअंकको काढ रहा है।

बाबर बड़े गर्वसे कहा करता था—एक हाथमें शाहनामा दे दो और दूसरे हाथमें नंगी तलवार और मैं विश्व को जीत लेता हूँ।

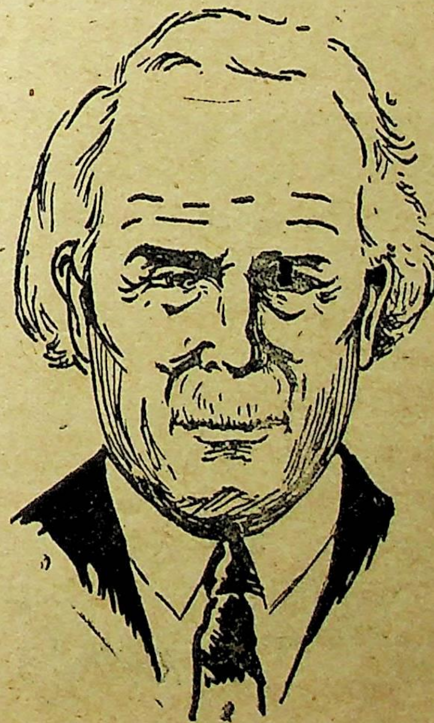
जिस कालमें इस्लामका दौरा भारतवर्षमें आरम्भ हुआ उस समय भारतके रंगमंचपर कितने क्रान्तिकारियोंने प्रवेश किया और तत्कालीन साहित्यमें कितना परिवर्त्तन कर दिया। भारतवर्षकी १३ वीं १४ वीं १५ वीं सदीका इतिहास उसका साक्षी है। रामानन्द, कबीर, नानक, चैतन्य, चन्डीदास, विद्यादास, विद्यापति, तुलसीदास, सूरदास, मीरा आदि अनेक धर्माचार्यों तथा साहित्याचार्योंने हमारे साहित्यमें युगान्तर उपस्थित कर दिया। तुलसीदास



गोस्वामी तुलसीदास

की रामायण कितना व्यापक साहित्य है और राष्ट्रपर इसका कितना प्रभाव पड़ा है। १६ वीं शताब्दीमें रामायणकी रचना हुई और आज २० वीं शताब्दीमें भी इस ग्रन्थका प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है। ग्वीब्स महाशयने लिखा है कि "रामायण केवल हिन्दुओंका राष्ट्रीय साहित्य नहीं है किन्तु उसमें वह विशेष गुण भी है जिससे वह अपने देशवासियों के विश्वास तथा चरित्र के चित्र अत्यन्त सत्यतापूर्वक चिताकर्षक रूपमें खींचती है। इसका फल होता है कि उसके अनुशीलनसे यूरोपवासियों के बहुतसे मिथ्या विश्वास और दुर्भाव दूर हो जाते हैं और दोनों जातियोंमें परस्पर सहानुभूतिकी वृद्धि होती है। इससे यह स्पष्ट है कि रामायणसे राष्ट्र पर ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। श्री ग्रियर्सन साहबने लिखा है कि यह साहित्य (रामायण) राजमहलसे लेकर झोपड़ी तक प्रत्येक मनुष्यके हाथोंमें देखी जाती हैं और हिन्दू जातिके प्रत्येक वर्ण द्वारा चाहे वह उच्च हो या नीच, धनी हो या निर्धन, युवा हो अथवा वृद्ध-एक रूपसे पढ़ी सुनी जाती है और आदृत होती है। वह हिन्दू जातिके जीवन, भाषा अथवा चरित्रमें प्रायः तीन सौ वर्षोंसे ओत-प्रोत है। आगे ग्रियर्सन साहबने लिखा है कि वर्त्तमान कालमें इस साहित्यका लोगों पर जो प्रभाव है यदि हम-लोग उसकी कसौटी बना कर जांच करें तो मालूम पड़ेगा कि एशियाके तीन चार बड़े लेखकोंमें इनका भी स्थान है। विसेन्ट स्मिथ महाशयने लिखा है कि तुलसीदास मध्यकालीन हिन्दू साहित्यकी अशोक वाटिकामें सबसे महान वृक्षके रूपमें हैं। वे अकबरसे भी बड़े हैं क्योंकि सहस्त्रोंके हृदय और मस्तिष्क पर विजय प्राप्त कर लेना अकबरकी अनेकों विजयोंसे कहीं बढ़ कर है। इन उद्धरणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि साहित्यका राष्ट्रपर कितना प्रभाव पड़ता है। हमारे समाजमें, राष्ट्रमें एक नवीन धारा रामायणने बहा दी है जिसके प्रभावमें 'कलिमल' दूर हो गया है।

प्रत्यक्ष ऐतिहासिक सत्य तो यह है कि जब कभी किसी राष्ट्रमें राजनीतिक जाग्रति होती है तो उसके पूर्व उस राष्ट्र में धार्मिक क्रांति अथवा मानसिक क्रांतिके आधार पर साहित्यिक क्रांति हो जाती है। साहित्यमें जो क्रांति १५ वीं और १६ वीं शताब्दीमें हुई उसे इतिहासमें पुनरुत्थान काल कहते हैं। विकलिफ तथा लूथरने धार्मिक साहित्यमें क्रांति की थी और उसीके आधार पर जबकि मानसिक दासता दूर हो गयी—यूरोपमें नवीन जागरण हुआ था। वर्त्तमान



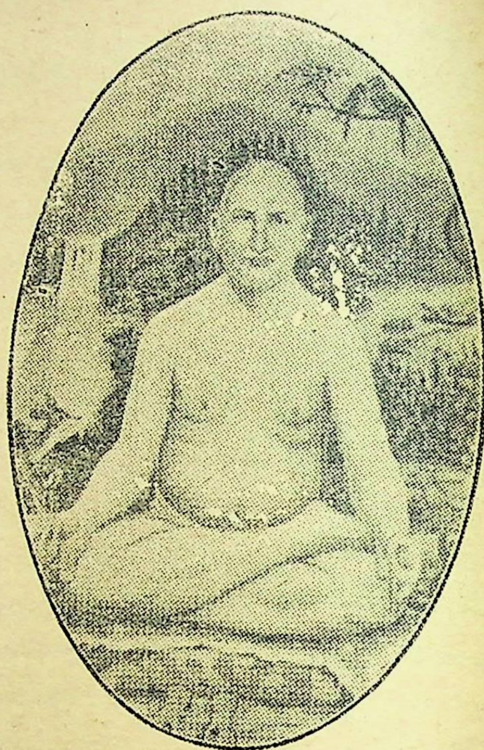
लायड जार्ज

भारतवर्षमें स्वामी दयानन्द सरस्वतीने साहित्यमें महान् क्रान्ति की। स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ प्रभृति पथ-प्रदर्शकोंने साहित्यमें नवीन धारा प्रवाहित कर दी और आज उन लोगोंके कामोंका फल हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। उनका सबसे प्रधान काम साहित्यमें क्रान्ति करना था।

भारतवर्षके वर्त्तमान राष्ट्र-निर्माण तथा राष्ट्रधर्मके प्रतिष्ठानमें साहित्यका कितना हाथ है उसका पता श्रीयुत विपिनचन्द्रपालजीके वाक्योंमें मिलेगा।

यदि भारतमें राष्ट्रीय जागरणका कारण बंगालका जागरण है तो अनुमान किया जा सकता है कि एक साहित्यिक अपने अमर ग्रन्थसे राष्ट्रके जागरणमें कितना कार्य कर सकता है।

यूरोपमें पुनरुत्थान कालके पश्चात् ही नवीन युगका प्रादुर्भाव हुआ। प्राचीन विचारोंमें महान् परिवर्त्तन होने लगा। बाल्टेयर, रूसो, डिडरो, तुर्गनेव प्रभृति विद्वानों की विचार गंगा यदि उस समय साहित्यिक क्षेत्रमें प्रवाहित नहीं होती—फ्रांसकी राज्यक्रान्ति हो सकती या नहीं इसमें सन्देह ही है और पुनश्च यूरोपका उत्थान हो पाता या नहीं यह भी विवादास्पद ही रह जाता। उक्त महानुभावों जैसे साहित्यिकोंसे ही यूरोपमें युग-परिवर्त्तन हो पाया है। रूसोके ग्रन्थोंने यूरोपमें बम-सा गिरा दिया।



महर्षि दयानन्द सरस्वती

उससे राजनीतिक प्रभुता एक व्यक्तिके हाथसे निकल कर जनताके हाथोंमें चली गयी। इसी सिद्धान्तके आधार पर प्रचीन समाजका पतन हुआ और नवीन समाजकी सृष्टि हुई। बर्क, मार्लें, जेम्समिल, जानस्टूअर्ट, मिल आदि मनीषियोंके सिद्धान्तोंसे तत्कालीन जीर्ण समाजका शरीर ही बदल गया। यूरोपमें पूर्वसे ही छापाखाना स्थापित हो जाने के कारण इन लोगोंके विचारका प्रचार तथा प्रसार वेगसे होने लगा। 'टौमकाकाकी कुटिया' नामक उपन्याससे उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिकामें दास-प्रथाका नाश हुआ और हब्शी गुलामोंका वाणिज्य रुक गया। अपटन सिन्कलेयरने अपने उपन्यासके बलसे शिकागोके कसाई घरोंका सुधार किया। रूसो एमिलीने स्वलिखित उपन्याससे शिक्षा पद्धतिमें सुधार किया। गिववनकृत 'रोम राज्यका उत्थान' नामक ग्रन्थसे इटलीमें स्वाधीनता प्राप्तिके लिये विराट जागरण हुआ। कैपिटल नामक कार्लमार्क्सके ग्रन्थसे संसारमें साम्यवादका प्रचार हो रहा है और अनेक राष्ट्रोंपर इस अमर साहित्य का प्रभाव विलक्षण रीतिसे पड़ रहा है। मेरिया, बर्नाडशा, तथा लायडजार्जके ग्रन्थ कुछ ही दिन हुए—यूरोपियन



श्रीरामकृष्ण परमहंस

जातियोंके विचार-संसारमें उथल-पुथल मचा चुके हैं। जिस प्रकार कार्लमार्क्सके ग्रन्थ संसारके राष्ट्रोंमें उथल पुथल मचा चुके हैं, जिस प्रकार कार्लमार्क्सके ग्रन्थसे संसारके राष्ट्रोंमें साम्यवादका प्रचार हुआ है, उसी प्रकार हैक्सन तथा सीमवर्टकी पुस्तकोंसे संसारमें सम्पत्तिवादका प्रचार हुआ था। प्लेटोके रिपब्लिक तथा टामसमूरके युटोपिया से समाजके राजनीतिक स्वरूपको स्थिर करनेमें सहायता मिली थी। श्री दीनबन्धु मित्रके 'नील दर्पण' से बंगालके कोठीवाले गोरोंका अन्त हुआ था। महाकवि मिल्टनके साहित्यका तत्कालीन लोक समाजपर बहुत प्रभाव पड़ा था।

सचमुच साहित्य चेतन पदार्थ है। इसकी अमरतापर राष्ट्रकी अमरता निर्भर है। राष्ट्रके जीवन तथा उसके अस्तित्वका आधार साहित्य ही है। साहित्यमें विज्ञान और कला का समन्वय है। साहित्यमें राष्ट्रके प्राण हैं राष्ट्रकी शक्तियोंका संचय साहित्यके गर्भमें निहित है। साहित्य राष्ट्रकी निहित शक्तियोंको प्रकट करता है। साहित्यका निर्माण राष्ट्रका निर्माण है। इसलिये श्री अरविन्दने कहा है कि यदि कोई समाज सेवक किसी रोगीके समीप जाकर उसकी सेवा करता है तो वह उसके शोक और दुखमें हाथ बंटाता है और उसके सुख और आनन्दको द्विगुणित करता है और इसी कारण यह महान् है—समाजके लिये उपयोगी है परंतु उससे अधिक महान् वह साहित्यिक है जिसकी अमर लेखनी तथा साहित्यिक वैभव इतने व्यापाक हैं, इतने उन्नत हैं—इतने औदार्यपूर्ण हैं और इतने शक्ति-सम्पन्न हैं कि इनके द्वारा अनेक समाज सेवक निकलते हैं। इस प्रकार साहित्य राष्ट्रके वैभवका अमरकोष है। राष्ट्रके वैभवके लिये साहित्य की सृष्टि आवश्यक है। राष्ट्रका भविष्य अपने अतीतके अंचलमें छिपा रहता है। इसकी रक्षा राष्ट्रकी रक्षा है।

कुछ दिनोंसे भारतीय साहित्यके पुनरुद्धारके लिये बहुत प्रयत्न हुए हैं। देशी एवं विदेशी विद्वानों और मनीषियोंके उद्योगसे हमारे साहित्यकी अमर ज्योतिका प्रकाश हुआ है। नये-नये साहित्यिक अन्वेषण हुए हैं। पिछले दिनोंकी बात यदि छोड़ भी दें तो इधर तथाकथित सिपाही विद्रोहके पश्चात् कितने हस्त लिखित ग्रन्थ यूरोप चले गये और कितने नष्ट हो गये—पता नहीं। महामहोपाध्याय श्री हर प्रसाद शास्त्रीने अनेक हस्तलिखित ग्रन्थोंका पता दिया है, जो बर्मा युद्धके पश्चात बर्माके राजकीय पुस्तकालयसे इटली भेज दिये गये। बहुत-सी हस्तलिखित पुस्तकें अबतक पुस्तकालयमें पड़ी हैं, जो १८२६ के बर्मा युद्धमें लूटी गयी थीं। हमारे अनेकों हस्तलिखित ग्रन्थोंका इसी प्रकार सत्यानाश किया गया। जितनी हस्तलिखित पुस्तकें मिल रही हैं यदि उनका प्रकाशन हो जाय तो साहित्यिक जगत कम्पायमान हो जायगा। जो पुस्तकें प्रकाशित हों उनका यदि हिन्दी संस्करण भी हो तो राष्ट्र भारतीका बड़ा कल्याण हो।

यदि इन अप्रकाशित पुस्तकोंका प्रकाशन हो जाय, यदि अतीतकी प्रकाशित पुस्तकोंका प्रसार हो जाय और उनका विदेशी भाषामें अनुवाद भी हो जाय और साथ ही साथ यदि इनकी रक्षा तथा सुव्यवस्थाके लिये पूर्ण प्रयत्न भी कर लिया जाय तो यह प्रत्यक्ष है कि इस प्रकारके साहित्यिक जागरणसे हमारा राष्ट्र अत्यन्त लाभान्वित हो जायगा। हमारी जातीय अधोगतिके भाव, हमारी दास मनोवृत्ति, विदेशियों द्वारा लगाये गये झूठे दोष और हमारी निष्प्राण रूढ़ियां सब तिरोहित हो जायंगी और तब विश्वको विदित होगा कि हमारी सभ्यता और संस्कृतिकी प्रतिमूर्ति हमारा राष्ट्र कितना गौरवमय है, कितना विशाल है, कितना आलोकमय है, कितना पुण्यमय है, कितना प्रकाशमय है और उसकी गोदमें पला हुआ हमारा जीवन, धर्म कितना मंगलमय है। जब इतना हो जायगा तभी और तभी हमारी जाति हिमालय-से उच्च, गंगा-सी पवित्र, प्रातःकालीन मन्द-सी सुखकारिणी ज्योत्स्ना-सी निर्मल और मध्याह्नकालीन सूर्यकी किरण सी ओजमयी होगी और तभी आजके संतप्त संसारको विश्वास होगा कि भारतवर्षमें सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्का षोडसकला पूर्ण अवतार है।

—o—

गूंजता स्वर

श्री छेदीलाल गुप्त

उस व्यक्तिके बारेमें कोई कुछ नहीं जानता, जो चरखा का उत्तराधिकारी, पति या परिवारका कोई सगा सम्बन्धी था। वह मर गया है।

चरखाका जैसा नाम है वैसा गुण है। चरखेकी तरह वह दिन भर, तबतक, जबतक सो नहीं जाती बड़बड़ाती रहती है। उसकी बड़बड़ाहटमें विकट स्वर झंकारता—इतनी वह कटु हो गयी है। अपने पास-पड़ोस और जान-पहचानवालोंकी बुराइयोंकी आलोचना विशद रूपसे वह करती रहती है जिसके कारण उसे कोई भी सहानुभूति नहीं देता। वह अब बूढ़ी हो चली है। उसके शरीर का मांस सिकुड़ने लगा है। मुखाकृति पर कटुताओंका मेला लगने लगा है। अपनी एक आंखसे जिसकी ओर वह देखती है वह सिहर जाता है, कांप उठता है, डर जाता है। उसका न घर है न द्वार। वह उस चायकी दूकानपर दिनभर बैठी समय व्यतीत करती है, जो मुहल्लेकी सारी दूकानोंसे गंदी और निराली है। यह मुहल्ला भी कलकत्तेके और मुहल्लोंसे निराला है। यहांकी छोटी-छोटी गलियोंमें गिरे-भहराये पक्के मकान कतारसे बने हैं। बेतरतीबसे छोटी-छोटी दूकानें बनीं हैं। प्रायः प्रत्येक दूकानके पीछे तो नहीं लेकिन अधिकांश पान-बीड़ी और चायकी दूकानों में खुलेआम शराबकी बोतलें और गांजेकी पुड़ियोंकी खरीद-बिक्री होती है। एक ही साथ इसका अनोखा और निरालापन अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। आंखें टिकाना मुश्किल हो जाता है—क्या देखें क्या नहीं?

अक्सर मैं वैसी ही चीजोंको वैसी ही स्थितियोंको, वैसे ही लोगोंको देखता हूँ जिनकी ओरसे जगतके मनुष्य आंखें मोड़ लेते हैं, नाता तोड़ लेते हैं। ऐसा हो सकता है कि मुड़ने और तुड़ने वाले व्यक्ति इसे भूल जाते हों कि उन्हींका वह एक अंग है जिसे वे अपनी उदारतासे ऊंचाई पर छोड़ आये हैं।

उस चौराहेकी चायकी दूकान पर चरखा बैठी रहा करती है। संसारमें उसका कोई नहीं। वह अकेली है, सैकड़ों मनुष्योंके बीच मनुष्य अपनेको अकेला समझता है! पृथ्वीके मनुष्योंके लिये चांद और सूर्यप्रकृतिका वैभव आज भी एक आश्चर्य है, पर मनुष्य, मनुष्योंके बीच अपनेको अकेला समझता है इसे आश्चर्य क्यों नहीं माना जाता?

'मेरा अब कौन हैं' चरखा चायकी दूकानके बाहर खड़े व्यक्तियोंकी ओर देख कर बोली—'एक दिन, जाने कब, बैठे बैठे प्राण चोला छोड़ कर चले जायेंगे। मिट्टी गन्धाती, सड़ती रहेगी, चील कौए, नोंच-नोंच कर खा लेंगे......'

> भूखे मनुष्यके लिये भगवानकी कोई कीमत नहीं, अन्न, वस्त्र, गृह-शिक्षा मनुष्यके जीवनके लिये जरूरी चीजोंको जुटाना ही आज हमारा प्रथम और जरूरी काम है।
>
> —पं० जवाहरलाल नेहरू

उसे घेर कर जो खड़े हैं वे संसारमें मरे पड़े हैं तभी उन्हें मरनेका भय नहीं। सभी एक-से हैं, काले शरीरपर मैल जमी है, जैसे बरसोंसे नहाया नहीं। दांत पीले हैं, आंखोंमें कीच भरी है! इनमेंसे एकने कहा—'तू मरती भी तो नहीं, कल मर जा तो चन्दनकी लकड़ियोंकी चितापर चुन दूं लेकिन कल तकही, परसोंकी जिम्मेदारी मैं नहीं लेता।'

'चुप रह' चरखा झपट पड़ी—'तेरे बापका कुछ खाती हूं या तू मुझे खिलाता है, जो मैं भार बन गयी तेरे लिये? बड़ा आया चन्दनसे चिता चुनने वाला। घरमें भूंजी भांग नहीं, अम्मा चली भुनाने।'

चरखा मरना नहीं चाहती। चाहती है जीना, उस दुनियांमें जहांका इन्सान शैतानके चुंगलमें पड़ा है, सिक्कों की मायामें पड़ा है जिन सिक्कों पर सात समुद्र पारके व्यापारियोंकी मक्कारीके अक्षर खुदे हैं।

वह आदमी दांत निपोर कर हंस पड़ा। फिर बोला—'अच्छा अब तू जीना क्यों चाहती है ? मुट्ठी भर जहां पाती है, खा लेती है, उसीका गुणगान करती है, उसीको भगवान् मानती है……'

'देख सबेरे-सबेरे मैं यहां धूप सेंकने बैठी हूँ'—चरखा ने उसे बीचमें ही रोक लिया—'मुझे कुछ कहने सुनने पर आमादा मत कर।'

चरखा अभी पूरी तरह कुछ कह भी नहीं पायी थी कि तुलिया आ खड़ी हुई। सब के सब उसकी ओर एका-एक मुखातिब हो गये। उससे उलझ पड़े—'जरा गा दो, जरा हो जाये छूम् छमाछम् !'

तुलिया सभीको कतरती दूकानदारके पास जा पहुंची —'चायवाला दो चुक्कड़ चाय !' चायवालेको चाय बनाने के लिये कह उसने अपने साथवाले उस आदमीसे पूछा जो टूटा-सा हारमोनियम लिये एक ओर खड़ा था—'प्यारे, चाय पियेगा ?'

अपने सिर परके शतरंगी रूमालमें गांठ लगाते हुए उसने सिर हिला दिया—पियेगा।

अभी सबेरेका नौ बजा है। जाड़ेका दिन है। पासमें बाजार है। लोग सामान खरीद कर आ-जा रहे हैं। रास्ते पर आने जाने वालोंकी साधारण भीड़ है। यह भीड़ वैसे आदमियोंकी ही है जो बाजारसे सामान खरीदते हैं और चल पड़ते हैं। अपना ज्यादा नहीं देना चाहते, दूसरोंका ले लेने की हविश रखते हैं। चायकी दूकानसे कुछ दूर पर चमरूकी बीड़ीकी दूकान है। उसकी बीड़ियां बिकें या न बिकें उसे परवाह नहीं। क्योंकि शराब सबेरे पांच बजेसे ही बिकने लगती है। वह हमेशा सकपकाये हुए खरीदारोंसे कहता है:

'डरते क्यों हो, सिपाही, कानून, सरकार सबके सब एक धोखा हैं। धोखेकी चमकमें जो आ जाता है वह मजा पा जाता है। यहां तो, मेरे पास मियांका सिर और मियांकी जूतीवाली बात है। सरकारका कानून है उसीका सिपाही। लेकिन सिपाही भी तो सफाई देकर ले जाते हैं हिस्सा। फिर डर किससे सिपाहीसे ? कानूनसे ? खूब पियो और बहुत दिन जिओ मेरे मालिक।'

वह चमरू भी लपक कर तुलियाके पास आ डटा, बोला—'तुलिया चाय क्या पीती है, अरे, पीनेकी चीज पी। और तुम सब खड़े क्या हो ?' भीड़की ओर इशारा करके कहा—'पिओ और पिलाओ तब न, छूम् छनन्न् छम्म्।'

'दे भइया दे एक अद्धा।' अबतक जो चरखासे उलझा था बोला—'शामको फड़से पैसे लाकर दूंगा।'

'अरे अन्तू तू जानता है साले, ५०) रु० हफ्ता हबीबी हवलदार। गाहे बगाहे मजुमदार बाबूकी पूजा, बेटा ! इलाके का बड़ा बाबू है।' चमरू कहने लगा—'इसपर भी चार आनेकी बचतके लिये तुझे उधार अद्धा दूं, तो सबको देना पड़े और सबको दिया तो दरदर मुझे दरवानी करनी पड़े। तीन सौ तेरह मर्तबे ३०)-३५) रुपल्लीकी सलामी दागनी पड़े।'

'अरे भइया, कह तो रहा हूँ शामको दे दूंगा।'—अन्तू मुरझा गया।

तुलियाकी चाय समाप्त हो गयी। वह जानेको आगे बढ़ी। चमरूने उसकी नरम कलाईको अपने पंजेमें ले लिया, वह 'उई, माई' कर उठी। इसके बाद चमरू अन्तूसे कहने लगा—'तू शामको दे कहांसे देगा। कुबेरका खजाना तो उठ कर तेरे पास नहीं आ जायेगा। अच्छा सुन, मैं जीता हूँ, मौज करता हूं और तू जीता है, भूखों मरता है। साले गैरतसे मर क्यों नहीं जाता।' इतना कह चुकने पर वह अन्तू पर तरस खाकर बोला—'जा मांग ले दूकानसे। जरा मुझे भी देना।'

अन्तूने तपाकसे दो कदम बढ़ कर अद्धा ले लिया और दो चार चुक्कड़ चढ़ानेके बाद तुलियाकी ओर चुक्कड़ बढ़ा कर तौलने लगा। तुलिया तैयार बैठी थी। चुक्कड़ चढ़ा कर नाचने लगी खेमटा। सबके सब जूझ पड़े। वह अपनेको करतती ब्योंतती बोल उठी—'तुम ऐसे क्यों करते हो ? मेरा नाच देखोगे या मुझे निगलोगे ? निगलना है तो बोटियां बना डालो मेरी और जन-जन बांट लो—बेहया !'

वह तुनक कर आगे निकल गयी। सबके सब होंठ बिचका उसको इस शानपर थूकने लगे।

अन्तू अब अद्धा खाली कर चुका है। उसके कानोंमें चरखाकी बड़बड़ाहट जा पड़ी। चरखा आदतके मुताबिक अलग बैठी बड़बड़ा रही थी।

'जहां तनी चमड़ी देखी लोगोंने वहीं कुत्तोंकी तरह टूट

पड़े। उस बेहयाको भी देखो भला। इतने मनसेधूके सामने अपनेको अपनी जवानीको बिखरती कैसे थी? गुमान करती है। यह भला कितने दिन चलेगा। चमड़ी पर झुर्रियां पड़ने लगेंगीं तब?'

'तब क्या?'—अन्तू उसके नजदीक आ गया—'देख, चरखा! दुनिया दो दिनका मेला है, महज दो दिन का। इसके बाद तू मरेगी, मैं मरूंगा। फिर तू मरनेसे डरती क्यों है?'

'मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता।'—चरखा उलझी उलझी-सी रहकर बोली। इसके सिवा वह और कुछ नहीं कह सकती। उसके लिये सबसे बड़ा रहस्य है कि एक आदमी सवेरेसे पानीकी जगह शराब पीता रहता है और दूसरा शाम तक पेटपर हाथ रख कर भूखको सहलाता रहता है। वह इसे भगवानकी माया समझती है, भाग्यकी बात जानती है।

भाग्य और भगवान……

इन दो संज्ञाओंपर आस्था रखनेवाली जातिने अपना सब कुछ खो दिया है, संस्कृति, सभ्यता, सुख, ऐश्वर्य। क्योंकि यह उनकीही उत्पत्ति है जो दूसरोंको मार कर जीते हैं, यह उन्हींका नारा है जो लूट कर लुटे हुएके सन्तोषके लिये बुलन्द करते हैं।

चरखा वहांसे उठी। वह रोज मन्दिर जाती है। मैं नहीं कह सकता कि वह मन्दिरके देवताके दर्शन करती है या उस मूर्ति पर पड़े सैकड़ों, लाखों रुपयोंके आभूषणके।

लेकिन मन्दिरका दरवान महानन्द चरखाको देवताका चरण-स्पर्श नहीं करने देता है। उसे जानेसे रोक कर कहता है—किनारे खड़ी होकर दर्शन कर ले। चरखा दूधसे निकाली हुई मक्खीकी तरह दूरही खड़ी होकर उस भगवानका दर्शन करती है जो चरखाकी तरह उत्तेजित है, जो पत्थरकी मूर्ति है—कलाकारकी भावुकताका आरोप्य रूप! मौन है, निर्जीव है, पाषाण है। पर्वतके शिला-खण्डका वह टुकड़ा जिसे पर्वतने अनावश्यक समझ कर अपने अंगसे अलग कर दिया है। अपनी सहानुभूतिसे वंचित कर दिया है।

चरखा मन्दिरसे लौट आयी है। उसी मुहल्लेमें जहां काले स्याह, रक्तहीन प्राणियोंका मेला है। जहांके प्राणियों की ओर अब संसारके वे लोग जो जोंककी तरह चिपक कर सारा रक्त चूस चुके हैं—देखना नहीं चाहते।

अन्तू ऐसे आदमियोंको नहीं पहचानता, नहीं जानता कि वे किस रूपमें संसारमें चक्कर काटते हैं, किस तरह जाल में उसे फंसाते हैं।

अगर उन्हें वह जानता, पहचानता तो·· तो···

तो पहले उनसे ही निपटता बादको उसे जिसकी हत्याके जुर्ममें वर्षों सजा काट आया है। वह था अमीर-सिंह अन्तूके गिरोहका सर्दार। कसूर उसका इतना ही था कि वह अन्तूकी पाकिटमारीकी रकमसे नाजायज रूपसे हिस्सा खाता था।

रात अधिक हो गयी है—घनी अंधियाली रात! भयंकरता की गूंज आकाश से प्रत्यावर्त्तन कर सड़ककी ऊंची और बड़ी इमारतोंसे टकरा रही है। चौड़ी सड़कपर इस जाड़ेकी रातमें भी कितने आदमी आपसमें एक दूसरेसे चिपटे, पैरोंको पेटमें घुसाये पड़े हैं, सोने का रस्म अदा कर रहे हैं। उनके तन-बदनपर एक मैली, फटी धोती पड़ी है।

अन्तू नशेमें लड़खड़ाता, नंग-धड़ंग हाथोंकी हथकड़ी बांधे बढ़ा जा रहा है।

सड़कपर जो एक मकान अवस्थित है उसके दरवाजे पर वह रुका। दरवानने दरवाजेपर उसे रोक लिया। अन्तू ने कहा—'बाबूको पुकारदो।'

इतनी रातको!

रातको ही मिलते हैं बबू!

थोड़ी देर बाद बाबू नीचे उतर आया। अन्तूको अलग ले जाकर पूछा, अन्तूने कहा—'सरकार, जुएके फड़पर आज सिपाहियोंने धावा बोल दिया। परसोंसे जो आपके लिये बन्द पड़ी थी वह भाग गयी। अपने दलका बड़कू, विदेशी और कल्लू गिरफ्तार हो गया। मेरे पास खानेको पैसे नहीं हैं।'

साफ-सुथरे सभ्य कपड़ोंमें लिपटे बाबू कफनमें लिपटे हुए मुर्देकी तरह अकड़ गये—'मैं क्या करूं?'

'तुम करोगे क्या? फड़से रुपये जो पिछले दिनों आये हैं। उसमें से निकालो'—अन्तूने अजीब तरहसे कहा—'भले आदमी कभी ऐसा नहीं करते।'

'उस रुपयेमें तुम्हारा क्या है ?'—बाबूने कहा—'मैंने तो अपने मकानका किराया भर लिया है।'

'तुम भगवान्‌की पूजा करते हो, धर्मकी दुहाई देते हो,' अन्तू बोला—'हम यह सब कुछ करना नहीं जानते इसीसे हमें आदमी नहीं समझती दुनिया। और जब तुम ऐसा कहते हो तो तुम्हें क्या कहेगी दुनिया ?'

बाबू झपटके साथ मकानमें घुस गये।

उसी सड़कपर दस पन्द्रह गज अन्तू चलकर अपने मुहल्लेकी गोदमें पहुंच गया।

'कौन है रे, इतनी रातको ?'

'मैं-मैं'—अन्तू बोला—'मै हूँ अन्तू' तू कौन है चमरू !'

चमरू अपनी दूकानके सामने सड़कपर ही विस्तर बिछा कम्बलमें लिपटा बीड़ीका कश खींच रहा था। अन्तू उसके पास जा पहुंचा। बोला—'कुछ जुगाड़ है ?'

'जुगाड़'—तनकर चमरूने कहा—'अबे चुक्कड़का अनोखा पियक्कड़ में तुझसे कहूँ कि जब अपनी टेंटमें टका नहीं, तो टमाटरकी तरह लुढ़कता क्यों है ? शौक तभी सुहाता है जब अपने पास रकम अपनी हो' अपने बापका भी नहीं। पहले सवेरेका पैसा ढीला कर फिर बातें करना।'

चमरूकी खरी-खोटी सुनकर वह सिकुड़ा-सा खड़ा था कि लंगड़ा गोपा उतनी रातको वहां आ उपस्थित हुआ।

'कुछ खिलाओ, मैं भूखसे मरा जा रहा हूँ, आसरा तुम लोगोंका ही है।' उसने कहा।

अन्तू भड़क उठा—'तूने नहीं खाया—इस मुहल्ले में जितने घर हैं उनमें से निन्नानवे के घर भी यही रोना होगा। वह कहता-कहता रुका, कान लगाकर कुछ अट-कल लगाया उसने। इसके बाद पुनः कहा—'कहांसे रोने की आवाज आ रही है रे ?'

रो रही है चरखा…।

अपने भाग्यपर अपने भगवान् पर। उन तीनोंसे दूर बैठी वह रो रही थी। उसके रोनेकी ध्वनि रातके महाशून्य में मिलकर एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर रही थी मानो निन्नानबे घरोंके रोनेकी ध्वनि एक स्वरमें गूंज रही हो।

राष्ट्र भाषा

डा० ब्रजमोहन

राष्ट्र भाषा एक ऐसी भाषा होनी चाहिये, जिसमें हम सरलतासे अपने भावोंको व्यक्त कर सकें। जो हमारी संस्कृतिके अनुकूल हो, और हमारे देशकी जलवायुके अनुरूप हो। इस सम्बन्धमें तुरन्त दो प्रश्न उठ खड़े होते हैं—१—राष्ट्र भाषाकी आवश्यकता भी है या नहीं ? २—यदि आवश्यकता है तो कौन-सी भाषा हमारी राष्ट्रभाषा हो सकती है ?

देशमें कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जिनका विचार है कि किसी भी राष्ट्रभाषाकी आवश्यकता ही नहीं है। उनका तर्क इस प्रकारका है। प्रत्येक व्यक्तिको अपनी ही मातृभाषाकी उन्नति करनी चाहिये। गुजरातमें गुजराती फले-फूले, बंगालमें बंगालीकी उन्नति हो, महाराष्ट्रमें मराठीका उत्थान हो। इसका परिणाम यह होगा कि देशकी समस्त भाषाएं फले-फूलेंगी और उनमें परस्पर कोई संघर्ष नहीं होगा। इस सम्बन्धमें मैं आपके सम्मुख दो विचार उपस्थित करता हूं। यदि कोई गुजराती अपनी मातृभाषाकी सेवा करता है या कोई बंगाली, बंगली भाषाके साहित्यकी वृद्धि करता है तो उससे मेरा कोई झगड़ा नहीं है। परन्तु प्रश्न यह है कि ई० आई० आर० का कालक्रम (टाईम-टेबुल) किस भाषामें छपेगा। आप कह सकते हैं कि ई० आई० आर० जिन क्षेत्रोंमें स्थित है उनकी भाषाएं हिन्दी और बंगाली हैं। अतः ई० आई० आर० का कालक्रम हिन्दी और बंगालीमें छपना चाहिये। इसी प्रकार एम० एस० एम० आर० का कालक्रम तामिल, तेलगू,

मलयालम और कन्नडमें छपना चाहिये। मैं थोड़ी देरके लिये यह बात मान लेता हूं कि सरकारके आज्ञापत्र किस भाषामें छपेंगे। इस प्रश्नका भी एक उत्तर यह हो सकता है ऐसे आज्ञापत्र भारतकी समस्त भाषाओंमें छपने चाहिये। आज्ञापत्रकी परन्तु केन्द्रीय सरकारके आज्ञापत्रकी गुजराती अनुकृति गुजरातको भेजनी चाहिये, बंगाली अनुकृति बंगाल को और तामिल, तेलगू अनुकृतियां मद्रासको। थोड़ी देरके लिये मैं इसको भी मान लेता हूँ।

परन्तु अब प्रश्न यह आता है कि एक आदमी पेशावर को एक मनीआर्डर भेजना चाहता है। मनीआर्डरका फार्म वह किस भाषामें भरेगा। मान लीजिये कि उसकी मातृभाषा तामिल है और वह तामिलमें फार्म भर देता है, परंतु पेशावरकी भाषा पश्तो है। अतः पेशावरके डाकघरका क्लर्क केवल पश्तो जानता है। वह मनीआर्डरका रुपया किस प्रकार वितरित करेगा। एक बात समझमें आती है यह कठिनाई इस प्रकार दूर हो सकती हैं कि डाकघरों, बैंकों और रेलवेमें केवल वही लोग नियुक्त किये जायं जो देशकी समस्त भाषाएं जानते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि एक क्लर्कको लगभग एक दर्जन भाषाएं सीखनी पड़ेंगी। एक दर्जन भाषाएं सीखनेके लिये कमसे कम ६ वर्ष चाहिये। जरा सोचिये कि जब देशके युवकोंको क्लर्क बननेके लिये भाषाएं सीखनेमें ६ वर्ष लगाने पड़ेंगे, तो उसमें देशकी शक्तिका कितना ह्रास होगा। कार्य-विधि इस प्रकारकी होगी—पहले तो देशमें सहस्त्रों अध्यापक तैयार कीजिये जो दर्जनों भाषाओंमें शिक्षा दे सकें। तब इन भाषाओं की शिक्षाके लिये सैकड़ों स्कूल खोलिये, फिर इन भाषाओं की शिक्षा देकर क्लर्कों की एक सेना तैयार कीजिये। तब बैंकों, डाकघरों और रेलवेके समस्त क्लर्कों को पदच्युत कीजिये और उनके स्थानपर इन नये क्लर्कों को नियुक्त कीजिये और इन सबके उपरान्त स्वराज्य ले लीजिये।

इस महायुद्धमें सरकारके एक भंडारके प्रबन्धकने सरकार को पत्र लिखा कि भंडारका अनाज चूहे खाये जा रहे हैं। कई सप्ताह पहले सरकारका उत्तर आया कि चूहोंको पकड़ने के लिये भंडारमें चूहेदानी रख दो। उसके कई सप्ताह उपरांत प्रबन्धकने लिखा कि बाजारमें चूहेदानी प्राप्य नहीं हैं। उसके कई सप्ताह बीत गये। सरकारी कार्योंमें तो देर लगा ही करती है। कुछ दिन पश्चात् सरकारका पत्र आया कि वह अपनी ही एक निर्माण-शालामें चूहेदानी तैयार करा रही हैं। तैयार होते ही भेज देगी। प्रबन्धकने लिख भेजा कि देश भरमें सैकड़ों भंडार हैं और प्रत्येक भंडारमें चूहेदानी रखने योग्य सैकड़ों स्थान हो सकते हैं। एक विशेषज्ञ ही जान सकता है कि कौन-सा स्थान चूहेदानी रखनेके लिये सबसे उपयुक्त होगा। अतः चूहेदानी-निरीक्षक नियुक्त होने चाहिये जो देश भरमें दौरा करके गोदामोंके प्रबन्धकोंको परामर्श दें। अतएव चूहेदानी-निरीक्षक नियुक्त किये गये। कुछ मास पश्चात् सरकारने प्रबंधकके पास एक चूहेदानी भेजी। प्रबन्धकने चूहेदानी सरकारको लौटा दी और लिखा कि उसके भंडार के चूहे साधारण चूहोंसे बड़े हैं। अतः ये चूहेदानियां उसके भंडारके लिये उपयुक्त नहीं होंगी। उसने सरकारसे प्रार्थना की कि पहले चित्रकारोंसे चूहेदानीके चित्र बनवाये जायं। उन चित्रोंमें जो अत्युत्तम हो उसीढंगकी चूहेदानी तैयार करवाये जायं। सरकारको यह योजना पसंद आयी उन्होंने समाचार पत्रोंमें विज्ञापन दिया कि चित्रकार भिन्न-भिन्न प्रकारके चूहेदानियोंके चित्र बनाकर भेजें इस झमेलेमें कई महीने लग गये और चूहोंने निःसंकोच भंड़ारका सारा अनाज समाप्त कर दिया। युद्ध समाप्त हो गया परन्तु सुनते हैं योजना अभीतक पूरी नहीं हुई।

इस सम्बन्धमें एक बात और कहनी है। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाकी कार्यवाही किस भाषामें होगी। आप यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनोंकी कार्यवाही कई भाषाओंमें होती है उसी प्रकार केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाकी कार्यवाही भी देशकी समस्त भाषाओंमें हो सकती है। मराठा सदस्य मराठीमें बोले, गुजराती सदस्य गुजरातीमें बोले, बंगाली सदस्य बंगलामें। इसका परिणाम यह होगा कि मान लीजिये एक मराठा सदस्य माराठीमें प्रस्ताव उपस्थित करता है। एक दूसरा सदस्य मलयालममें उसका विरोध करता है। एक तीसरा सदस्य हिन्दीमें उसका समर्थन करता है। चौथा सदस्य बंगालीमें उसका प्रतिवाद करता है। प्रस्तावको यह पता भी नहीं चलेगा कि कोई वक्ता उसके प्रस्तावका सम-

र्थन कर रहा है अथवा विरोध, और सभापतिको यह पता नहीं चलेगा कि वक्ताकी वक्तृता प्रासंगिक भी है या नहीं। यदि आप यह कहें कि हम केवल ऐसे ही व्यक्तियोंको व्यवस्थापिका सभाओंमें भेजेंगे जो देशकी समस्त भाषाएं जानते हों। इससे तो फिर वही कठिनाई आ पड़ेगी, जिसका मैंने ऊपर उल्लेख किया है और यदि व्यवस्थापिका सभा के सदस्य केवल अपनी ही मातृभाषा जानते हों तो बड़ी गड़बड़ी पड़ेगी जिसका मैं वर्णन कर रहा हूं। प्रत्येक सदस्य अपनी ही कह सकेगा दूसरेकी नहीं सुन सकेगा। मैंने इस प्रकारके एक काल्पनिक विवादका चित्र अपनी आंखोंमें खींचा है। उस विवादका मैं वर्णन करता हूँ:—

मराठा—मैं प्रस्ताव करता हूं कि राजपूतानेके मध्य में एक ऐसा आश्रम स्थापित किया जाय जिसमें ऐसे व्यक्ति रखे जायं जिनकी मूछें ५ इंचसे अधिक लम्बी हों।

मलयालम—मैं इसका विरोध करता हूं क्योंकि इसके कारण टर्कीके आलुओंका भाव बढ़ जायगा।

हिन्दी—मैं इस प्रस्तावका समर्थन करता हूं क्योंकि त्रिभुजकी दो भुजायें मिलकर तीसरीसे बड़ी होती हैं।

बंगाली—मैं इसका विरोध करता हूँ क्योंकि हिटलर का व्याह कभी ईवाब्राउनसे हुआ ही नहीं था।

इस प्रसंगको छोड़नेसे पहले केवल एक बात और कहनी है। कुछ दिन हुए मैंने एक दैनिक पत्रमें एक चुटकुला पढ़ा था।

एक न्यायाधीश बहरा था। उसके न्यायालयमें एक मुकदमा आया। जिसमें वादी और प्रतिवादी दोनों बहरे ही थे।

वादीने कहा कि इस मनुष्यको मकानका किराया देना ही पड़ेगा।

न्यायाधीशने प्रतिवादीसे पूछा कि उसको इस सम्बन्ध में क्या कहना है।

प्रतिवादीने उत्तर दिया कि मैं तो अपना अनाज सदैव रातहीको काटता हूँ।

न्यायाधीशने अन्तमें यह निर्णय दिया कि मैंने दोनों पक्षोंके कथन पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है और इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि दोनों भाई अपनी माताके पालनके लिये उत्तरदायी हैं।

विरोधियोंका दूसरा तर्क यह है कि एक राष्ट्र-भाषा बनानेमें लाभ ही क्या है, दीर्घ-कालसे हम लोग अंग्रेजीसे काम चलाते आ रहे हैं। आप इस स्थितिमें परिवर्तन क्यों करना चाहते हैं? इन व्यक्तियोंसे एक प्रश्न मैं भी करना चाहता हूँ। दीर्घ-कालसे हम लोग अंग्रेजी शासनमें रहते चले आये हैं, आप इस स्थितिमें क्यों परिवर्तन करना चाहते हैं? स्वराज्य लेनेसे लाभ ही क्या है? यह सज्जन उत्तर देंगे कि ये दोनों बातें एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न हैं। स्वराज्य तो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है परन्तु राष्ट्र-भाषाका प्रश्न तो इतना मौलिक नहीं है। तो मैं यह उत्तर दूंगा कि जिस प्रकार स्वराज्य हमारी राष्ट्रीयताका प्रतीक है, उसी प्रकार राष्ट्र-भाषा भी हमारी राष्ट्रीयताकी द्योतक है। हमें केवल एक राष्ट्रीय शासनही नहीं चाहिये वरन् एक राष्ट्रीय दृष्टि-बिन्दु, राष्ट्रीय संस्कृति, राष्ट्रीय वेश-भूषा, राष्ट्रीय रहन-सहन और एक राष्ट्रीय भाषा भी चाहिये। मैं इसे केवल अपनी दासताका ही एक प्रतीक समझता हूं कि इस देशके कुछ शिक्षित सज्जन गम्भीरतापूर्वक यह विचार भी कर सकते हैं कि देशमें किसी राष्ट्र-भाषाकी आवश्यकता है ही नहीं। मेरे मित्रो! मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि इस प्रश्न पर विचार कीजिये और इस बात पर ध्यान दीजिये कि विदेशी शिक्षाने हमें अधोगतिके कितने गहरे गर्तमें डाल दिया है। आज हमारी यह दशा है कि हम मित्रोंको पत्र अंग्रेजीमें लिखते हैं। घरके आय-व्ययका लेखा अंग्रेजीमें रखते हैं, भेंट-पत्र अंग्रेजीमें छपाते हैं और भारतीय मित्रोंको भी निमन्त्रण अंग्रेजीमें भेजते हैं। मैं आई० सी० एस० के ऐसे भारतीय सदस्योंको जानता हूँ जो अपने माता-पिताको क्रिसमस कार्ड भेजते हैं। यदि कोई अंग्रेजी वस्तु दिखाई देती है तो हम उसे आदरकी दृष्टिसे देखते हैं परन्तु भारतीय वस्तुओंकी ओर हम उपेक्षाका और कभी-कभी घृणाका भाव प्रदर्शित करते हैं। मैं आप दो एक उदाहरण देता हूँ।

हमारे मस्तिष्क पर अंग्रेजी वेश-भूषाकाका प्रभाव अधिक पड़ता है, जो एक साधारण भारतीयकी शक्ति के परेकी वस्तु है। स्वदेशी कुर्ते और धोतीका प्रभाव उतना नहीं पड़ता जो गरीब भारतीय भी खरीद सकते हैं। हिन्दी परिषद् और लेखक संघ हमारा ध्यान उतना आकृष्ट नहीं

करते जितना रोटरी-क्लब और फ्राइडे-क्लब। भारतीय भाषाओंके पत्रकारों, लेखकों और अध्यापकोंको उतना वेतन नहीं मिलता जितना अंग्रेजी वालोंको। हममें पूर्वजोंकी पहले जैसी भक्ति नहीं रही। हम अपने देशकी महत्ताको भूलते जा रहे हैं। हमें अपने और परायेका ज्ञान नहीं रहा। इंगलैण्डमें यदि कहीं पर शेक्सपियरके हाथकी कलम मिल जायं तो मुझे विश्वास है कि वह लाखों रुपयेमें बिकेगी, परन्तु भारतवर्षमें प्रेमचन्द जैसा प्रतिभाशाली लेखक गरीबीमें जन्मा, गरीबीमें ही पनपा और गरीबीमें ही मर गया। इंगलैण्डके समस्त बड़े-बड़े नगरोंमें शेक्सपियर-परिषद स्थापित है। भारतवर्षमें तुलसीदासजीके जन्म-स्थान पर कोई ढंगका स्मारक भी नहीं। विदेशी शिक्षा हमारे राष्ट्रीय जीवन पर कुठाराघात कर रहीहै। यह अराष्ट्रीयकरण हम लोग कब तक सहन करेंगे। अब हमारे कुम्भकर्णी नींदसे जागनेका समय आ गया। आइये, हम और आप मिल कर अपने आलस्य त्याग दें। अपने और परायेकी पहचान करें। देशकी शिक्षाका राष्ट्रीयकरण करें और संसारको दिखा दें कि हम लोग अपने उच्च आदर्शोंको नहीं भूले हैं।

हमारे शिक्षित वर्गमें भी ऐसे व्यक्ति विद्यमान हैं जो यह कहते हैं कि यदि एक राष्ट्र-भाषा बनानी ही है तो अंग्रेजीको ही क्यों न बनायें। इसका कारण वह लोग यह बताते हैं कि अंग्रेजी तो हम लोग जानते ही हैं यदि कोई अन्य भाषा हमारी राष्ट्र-भाषा बनायी गयी तो उसे नये सिरेसे सीखना पड़ेगा। उससे हमारे मस्तिष्क पर अनावश्यक बोझ पड़ेगा। यह तर्क मुझे बिलकुल खोखला दिखायी देता है। वर्तमान समयमें हमारे देशमें शिक्षित जनता ८ प्रतिशत है परन्तु इनमेंसे अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति लगभग ८ मेंसे १ हैं अर्थात् देश भरमें १ प्रतिशतसे अधिक अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति नहीं हैं। हमारा ध्येय है अनिवार्य शिक्षा। अतः यदि अंग्रेजीको राष्ट्र-भाषा बना दिया जाय तो हमें ९९ प्रतिशत भारतवासियोंको अंग्रेजीकी शिक्षा देनी पड़ेगी। जरा इस कार्यकी कठिनाई पर ध्यान दीजिये, परन्तु यदि किसी भारतीय भाषाको राष्ट्र-भाषा बनाया गया तो अंग्रेजीकी तुलनामें बहुत कम व्यक्तियोंको शिक्षा देनी होगी। मेरी समझमें नहीं आता कि अंग्रेजीको राष्ट्रभाषा बनानेसे हमारी समस्या किस प्रकार सुलझ जायेगी। एक समय था जब आयरलैंडके अधिकांश निवासी अंग्रेजी पढ़ते थे परन्तु ज्योंही आयरलैंडको स्वतन्त्रता मिली उन्होंने अपनी आयरिश-भाषाका पुनरुत्थान किया। वेल्स के अत्यधिक निवासी अंग्रेजी पढ़ते हैं तथापि वे लोग अपनी वेल्श-भाषा को पुनरुज्जीवित करनेका उद्योग कर रहे हैं और याद रखिये कि आयरिश, वेल्श और अंग्रेजी एक ही परिवारकी भाषाएं हैं तथापि वे लोग अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं हैं। परन्तु हमारी भाषाएं तो अंग्रेजीसे, भौगोलिक और मनोवैज्ञानिक दोनों अर्थोंमें सहस्त्रों मील दूर हैं तथापि हम लोग अंग्रेजीको राष्ट्रभाषा बनानेका विचार भी हृदयमें ला सकते हैं, यह केवल हमारी दासताका प्रतीक है। अंग्रेजी सोलह आने विदेशी भाषा है और किसी भी भारतीय भाषाका स्थान नहीं ले सकती। एक दिन मैं स्व० आचार्य प्रफुल्लचन्द रायका व्याख्यान सुन रहा था। उन्होंने कहा कि यदि कोई मुझसे यह कहे कि मैं सुन्दर हिन्दी अथवा बंगला बोलता हूँ तो मुझे गर्व होगा। परन्तु यदि कोई कहे कि मैं सुन्दर अंग्रेजी बोलता हूं तो मैं इसे अपना अपमान समझूंगा।

अंग्रेजीके पक्षमें एक तर्क लोग यह भी देते हैं कि अंग्रेजी द्वारा हमें अन्तर्राष्ट्रीय स्थान मिलता है। यदि हम किसी भारतीय भाषाको राष्ट्र-भाषा बना लें तो हम लोग कूप-मण्डूक हो जायेंगे और हमारी प्रगति रुक जायगी। यह तर्क भी बिलकुल निस्सार है। प्रथम बात तो यह है कि हम लोगोंमें से कितने ऐसे हैं जो अन्य राष्ट्रोंके सम्पर्कमें आते हैं। अधिकतर ऐसे मनुष्य तीन प्रकारके होते हैं : व्यापारी, यात्री और राजनीतिज्ञ। यदि आपमेंसे किसीमें इतना धैर्य हो तो किसी ब्रिन अभिधान-ग्रन्थों अथवा वार्षिक विवरणों से पता चला लीजिये कि प्रति वर्ष कितने भारतवासी देशके बाहर जाते हैं। मैंने स्वयं ऐसा कभी नहीं किया परन्तु परिणामके बारेमें मुझे पूरा निश्चय है कि ऐसे मनुष्योंकी संख्या अवश्य ही १ प्रतिशतसे कम ही होगी। शेष ९९ प्रतिशत भारतवासियोंको बाहरी संसारके सम्पर्कमें आनेका कोई अवसर ही नहीं मिलता। किसी सामान्य भारतवासीको, चाहे वह मजदूर हो, क्लर्क अथवा वकील कोई भी, विदेशी

भाषा जाननेकी क्या आवश्यकता है ? जहां तक समाचारों का सम्बन्ध है, वह तो उसे अपनी मातृभाषाके समाचार पत्रों द्वारा मिल ही जाते हैं। क्या आप १ प्रतिशत भारतीयोंके हेतु शेष ६६ प्रतिशत भारतवासियोंके गलेमें जबरदस्ती अंग्रेजी उतारना चाहते हैं ? इतिहासके विद्यार्थी हमें बताते हैं कि राजा नीरोने रोमका सारा नगर जला दिया केवल इसलिये कि वह एक प्रचण्ड होलीका दृश्य देखना चाहता था। यह तो चूहा निकालनेके लिये पहाड़ खोदनेके समान है।

इस सम्बन्धमें मुझे एक चुटकुला याद आता है। एक समय एक पति और पत्नी रहते थे। उसके एक छोटी-सी लड़की थी जिसे वे बच्ची कहते थे। पति किसी कार्यालयमें बैठा हुआ था कि उसकी स्त्रीने टेलीफोन किया कि तुरंत चले आओ। बेचारा घबड़ा गया। उसने समझा कि उसकी स्त्री अथवा बच्चीपर कोई दुर्घटना हुई है। वह कार्यालयसे दौड़ा, टैक्सी तो उसे मिली नहीं, वह आधे रास्ते ट्रामपर आया और शेष आधे रास्ते पैदल दौड़ता हुआ। वह हांफते-हांफते घर पहुंचा और स्त्रीसे पूछा कि क्या बात है। स्त्री बोली—तुम तो बड़ी देरमें आये। बच्ची ने अपने पैरका अंगूठा अपने मुंहमें ले लिया था और बड़ी ही सुन्दर लगती थी।

कुछ व्यक्ति कहते हैं कि अंग्रेजी जानना इसलिये आवश्यक है कि बिना अंग्रेजीके अनुसंधान कार्य नहीं हो सकता। अब सर्वप्रथम तो देशभरमें जितने अन्वेषक हैं उनकी गणना कर लीजिये। हिंदू विश्वविद्यालयमें अधिकसे अधिक सौ अन्वेषण-छात्र हैं और इस विश्वविद्यालयकी जनसंख्या लगभग ५००० है। अतः जनसंख्याके दो प्रतिशत व्यक्ति अन्वेषण-कार्यमें लगे हुए हैं। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयोंको छोड़कर अन्य कालेजोंमें अन्वेषण छात्र बहुत कम होते हैं और स्कूलोंमें तो बिल्कुल नहीं होते। अब यदि आप देशभरके स्कूलों और कालेजोंके विद्यार्थियों की गणना करें तो उनकी संख्या शिक्षित वर्गके आधेसे अधिक नहीं होगी और इस देशका शिक्षित वर्ग ८ प्रतिशत है। अतः अन्वेषकोंकी संख्या -) से कम हुई। यह निश्चित है कि शिक्षाके राष्ट्रीयकरणके पश्चात् अन्वेषकोंकी संख्या बढ़ेगी परन्तु किसी प्रकार भी आधेसे अधिक नहीं हो सकती। अर्थात् देशके दो सौ निवासियोंमें-से केवल एक अन्वेषक होगा। यदि उस एकके कारण आप अंग्रेजीको राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं तो उसका अर्थ यह हुआ कि एक व्यक्तिके हेतु शेष १६६ व्यक्तियोंके हितोंका गला घोंटा जायगा।

एक बात और भी है। हम यह तो नहीं कहते कि अंग्रेजी हमारे शिक्षालयोंसे बोरिया-बंधना उठाकर फेंक दी जाय। किसी भी विदेशी भाषाकी शिक्षा लाभदायक होती है परन्तु कोई विदेशी भाषा हमारी राष्ट्रभाषाका स्थान नहीं ले सकती। इंग्लैण्डमें स्कूलोंके अन्तिम दो वर्षोंमें प्रत्येक विद्यार्थीको एक विदेशी भाषा फ्रेंच अथवा जर्मन पढ़नी पड़ती है। जर्मनीमें स्कूलके प्रत्येक छात्रको दो विदेशी भाषाएं सीखना अनिवार्य है और जर्मनीके निवासी यह समझते हैं कि उनके लिये यह आवश्यक है क्योंकि उनका देश यूरोपके मध्य भागमें स्थिति है, परन्तु इन विदेशी भाषाओंको केवल दो वर्ष, सप्ताहमें तीन घण्टेका समय दिया जाता है। भारतवर्षमें भी जब हमारी शिक्षा का राष्ट्रीयकरण हो चुकेगा तो हम प्रत्येक विद्यार्थीके लिये एक विदेशी भाषा, अंग्रेजी अथवा फ्रेंच अनिवार्य कर सकते हैं। यदि आवश्यकता हुई तो प्रारम्भमें कुछ वर्षोंके लिये केवल अंग्रेजीको ही अनिवार्य भाषा बना सकते हैं। परन्तु इसका महत्व अवश्य ही घटना चाहिये। जितना समय स्कूलोंमें आजकल अंग्रेजीको मिलता है उतना कदापि नहीं मिलना चाहिये। स्कूलोंमें अन्तिम या दो-तीन वर्षोंमें अंग्रेजीको सप्ताहमें तीन या चार घण्टे दिये जा सकते हैं। कालेजोंमें भी अंग्रेजी एक वैकल्पिक विषय रह सकता है। जिन्हें अन्वेषण अथवा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जाना है वे कालेजमें भी अंग्रेजीका विषय ले सकते हैं।

अब प्रश्न यह आता है कि यदि अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती तो कौन-सी भारतीय भाषा हो सकती है ? हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी क्यों हो ? कोई अन्य भारतीय भाषा क्यों न हो। इस सम्बन्धमें सबसे पहला प्रश्न तो यह है कि भारतकी कौन-सी भाषा सबसे अधिक समझी जाती है। पेशावरसे कलकत्ते तक आप अपने भावों को हिन्दी अथवा हिन्दीके किसी रूपमें व्यक्त कर सकते हैं। मैं कलकत्ते में डेढ़ वर्ष रहा हूं और मुझे एक दिन भी

कोई कठिनाई नहीं पड़ी। दक्षिण भारतमें मैं स्वयं तो बम्बईके आगे कभी नहीं गया, परन्तु सुननेमें यह आता है कि दक्षिण भारतमें भी हिन्दीसे थोड़ा बहुत काम चलाया जा सकता है और उस,प्रदेशमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी 'दक्षिण भारत प्रचार समिति'के प्रयत्नसे हिन्दीकी जानकारी बढ़ती ही जाती है।

एक पंजाबी हिन्दीको समझ लेता है यदि उसमें संस्कृतके शब्द अधिक न हों। एक मरहठा हिन्दीको समझ लेता है यदि उसमें फारसीके शब्द अधिक न हों। इन दोनों पथोंके बीच एक मध्य मार्ग निकालना होगा। जैसे-जैसे हम उत्तरसे दक्षिण अथवा पूरबसे पश्चिम जाते जायेंगे, हिन्दीके रूपमें अन्तर पड़ता जायगा। परन्तु देशके ऐसे निवासियोंकी संख्या जो हिन्दीके किसी न किसी रूपको समझ लेते हैं लगभग ७३ प्रतिशत है। देशकी कौन-सी दूसरी भाषा इतनी लोकप्रिय है। यदि हम हिन्दीको राष्ट्र-भाषा स्वीकार कर लें तो कमसे कम जहां तक बोलचाल की भाषाका सम्बन्ध है, हमें केवल २७ प्रतिशत भारत-वासियोंको हिन्दीकी शिक्षा देनी होगी। परन्तु यदि हम किसी ऐसी भाषाको राष्ट्र भाषा स्वीकार कर लें जिसे केवल २५ प्रतिशत भारतवासी बोलते हों तो हमें बोल-चालकी भाषा भी ७५ प्रतिशत भारतवासियोंको सिखानी पड़ेगी। किसी ऐसी भाषाके समर्थक कह सकते हैं कि कोई चिन्ता नहीं, हमारी भाषाको राष्ट्र भाषा बनाओ। यदि आप देशके २७ प्रतिशत निवासियोंको एक भाषामें शिक्षा दे सकते हैं तो ७५ प्रतिशतको भी दे सकते हैं। ऐसे व्यक्तियोंको मैं केवल एक ही उत्तर दूंगा—

एक व्यक्ति सड़कपर जा रहा था। उसने किसी बटोही से पूछा कि गंगाजी कितनी दूर हैं। बटोहीने उत्तर दिया कि जिस मार्गसे तुम जा रहे हो उस मार्गसे गंगाजी २४९९९ मील दूर हैं परन्तु यदि तुम घूमकर बिल्कुल उल्टे मार्गसे जाओ तो केवल एक मील दूर हैं।

कुछ सज्जनोंका—जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है, यह विचार है कि यदि हिन्दी राष्ट्र भाषा बन गयी तो वह अन्य भारतीय भाषाओंको कुचल डालेगी। यह तर्क मेरी समझमें आज तक नहीं आया। मेरी योजनाके अनुसार किसी प्रांतका समस्त प्रान्तीय कार्य प्रान्तीय भाषामें होगा। प्रान्तीय विश्वविद्यालयोंमें शिक्षाका माध्यम प्रान्तीय भाषाएं होंगी। बम्बईमें उच्चसे उच्च शिक्षा गुजराती अथवा मराठी द्वारा दी जायेगी, बंगालमें बंगला द्वारा, मद्रासमें तामिल और तेलगू द्वारा, इस अखिल भारतीय हिन्दू विश्वविद्यालयमें हिन्दी द्वारा, महाराष्ट्रमें कचहरीकी भाषा मराठी होगी, कर्नाटकमें कन्नड़, और गुजरातमें गुजराती। प्रान्तीय सरकारोंके आज्ञापत्र और सूचनापत्र प्रान्तीय भाषाओंमें छपेंगे। केन्द्रीय सरकारके आज्ञापत्र हिन्दीमें छपेंगे। समस्त प्रान्तीय पत्र-व्यवहार प्रान्तीय भाषामें होगा। अन्तर्प्रान्तीय पत्र व्यवहार हिन्दीमें होगा। प्रान्तीय भाषाओंकी कार्यवाही प्रान्तीय भाषामें होगी। केन्द्रीय सभाओंकी कार्यवाही हिन्दीमें होगी। प्रान्तीय भाषाओंके कुचलनेका प्रश्न ही कहां आता है। किसी भी प्रान्तीय भाषाकी प्रगतिमें हिन्दी किस प्रकार बाधा डालेगी? किसी प्रान्तके अधिकांश निवासी अखिल भारतीय कार्यके सम्पर्कमें नहीं आते। प्रान्तके गिने-चुने राजनीतिज्ञ अन्वेषक और व्यापारी देशव्यापी महत्वका काम करते हैं। किसी भी भाषाके कवियों, लेखकों और पत्रकारोंको अपनी भाषाकी सेवा करनेका उतना ही अवसर मिलेगा जितना आजकल मिलता है। फिर मेरी समझमें नहीं आता कि हिन्दी किस प्रकार किसी प्रान्तीय भाषाके मार्गमें रोड़ा अटकायेगी।

कुछ व्यक्ति एक दूसरे ही प्रकारका तर्क देते हैं। मान लीजिये कि एक विद्यार्थी मद्रास विश्वविद्यालयसे बी० एस-सी० पास करके आता है। वह सारे विषयोंकी शिक्षा तेलगू भाषा द्वारा प्राप्त करता है और बनारसमें आकर इन्जीनियरिंग कालेजमें नाम लिखाता है जहां शिक्षाका माध्यम हिन्दी है। अब उस बेचारेकी गाड़ी कैसे चलेगी। मैं प्रश्नके उत्तरमें दो बातें आपके सम्मुख उपस्थित करता हूँ—

प्रथम तो यह है कि जब एक विद्यार्थी भारतवर्षसे शिक्षा ग्रहण करने जर्मनी जाता है तो जानेके पूर्व कमसे कम ६ महीने जर्मन भाषा पढ़ता है। यह आशाकी जाती है कि ६ महीनेमें वह जर्मन जैसी कठिन भाषाका क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त कर लेगा। यह सब लोग जानते हैं कि हिन्दी संसारकी सबसे सरल और वैज्ञानिक भाषाओंमें-से एक है

यदि एक भारतीय विद्यार्थी एक विदेशी भाषाका व्यावहारिक ज्ञान ६ महीनेमें प्राप्त कर लेता है तो एक स्वदेशी भाषाका उतना ही ज्ञान दो महीनेमें सरलतासे प्राप्तकर लेगा।

दूसरी बात यह है कि सारी पारिभाषिक शब्दावली का अनुवाद संस्कृतमें किया जा रहा है। हमारा ध्येय है कि देशकी समस्त भाषाओंकी शब्दावली एक-सी हो जाय। अतएव जहां तक शब्दावली और संकेत लिपिका प्रश्न है मद्रासके विद्यार्थीको कोई नयी बात नहीं सीखनी है। उसकी कठिनाई केवल इतनी रह जाती है कि तेलगू व्यंजनाके स्थानपर हिन्दी व्यंजनाका प्रयोग करे। यदि यह संभव है कि भारतीय विद्यार्थी फ्रेंच और जर्मन विश्वविद्यालयोंसे उत्तीर्ण होकर निकलें तो कोई कारण नहीं कि जब शिक्षा का राष्ट्रीयकरण हो जाय तो भारतीय विश्वविद्यालयोंसे उत्तीर्ण होकर न निकला करें।

इस सम्बन्धमें एक बात और कहनी है। पिछले डेढ़ सौ वर्षोंसे हमारे ऊपर अंग्रेजी जबर्दस्ती ठूंसी गयी है तथापि अंग्रेजी एक विदेशी भाषा होते हुए भी हमारी भारतीय भाषाओंको कुचलने नहीं पायी है। तब हिन्दी जो कि एक सोलह आने स्वदेशी भाषा है और संस्कृतकी पुत्री है जैसी कि अन्य भारतीय भाषाएं, किस प्रकार इन भाषाओंको कुचल देगी जो उसके लिये भगिनीके समान हैं। इस संबंध में एक चुटकुला याद आ रहा है।

एक सज्जनने भूलसे गुड़की एक डली कमरेमें डाल दी। उसका बड़ा भाई बहुत बिगड़ा और कहने लगा कि बड़े गधे हो जी, तुम्हें लज्जा नहीं आती।

छोटा भाई बोला कि यह मैं मान लेता हूं कि मुझसे एक छोटी-सी भूल हो गयी है परन्तु फिर भी इतना बिगड़नेकी क्या बात है? बड़ा भाई बोला छोटी-सी भूल नहीं, बहुत बड़ी भूल है। तुम अपने कार्यका परिणाम नहीं समझ रहे हो। देखो, तुमने यहां गुड़की डली रख दी। इसको खानेके लिये चींटियां आयेंगी, चीटियोंको खानेके लिये चींटे आयेंगे, चीटोंको खानेके लिये मेढ़क आयेंगे, मेढकोंको खानेके लिये सांप आयेंगे। यदि कोई सांप यहां बैठा हो और मैं यहांसे जा रहा हूं, सांप मुझे काट खाये और मैं मर जाऊं तो।

समाप्त करनेसे पहले केवल एक बात और कहनी है। राष्ट्र भाषाका प्रश्न प्रान्तीय प्रश्न नहीं है। संसारमें और भी देश हैं जिनमें एकसे अधिक भाषाएं प्रचलित हैं, परन्तु वे किसी विदेशी भाषाको राष्ट्र भाषा नहीं बनाते, वह सम्मान अपनी ही बहुसंख्यक भाषाको देते हैं। फ्रांसमें सबसे पहला वाक्य बच्चोंको जो सिखाया जाता है वह है 'वाइवाल फ्रांस' अर्थात् 'फ्रांस देश जीवित रहे' अथवा 'फ्रेंच राष्ट्र जीवित रहे'। दूसरा वाक्य सिखाया जाता है 'वाइवाल फ्रांसे' अर्थात् 'फ्रेंच भाषा जीवित रहे'। इसी प्रकार भारतवर्षमें हम लोगोंको भी अपने बच्चोंको पहला वाक्य पढ़ाना चाहिये 'जय हिन्द'। दूसरा वाक्य 'जय हिन्दी'।

इस सम्बन्धमें हम अपने मुसलमान भाइयोंसे शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। यह कहना त्रुटिपूर्ण है कि देशके समस्त मुसलमानोंकी भाषा उर्दू है। सीमाप्रान्तके मुसलमान पश्तो बोलते हैं, बंगालके मुसलमान बंगला बोलते हैं, सिन्धके मुसलमान सिन्धी बोलते हैं, राजपूतानाके मुसलमान हिन्दी बोलते हैं, गुजरातके मुसलमान गुजराती बोलते है, तथापि जब कभी राष्ट्र भाषाका प्रश्न आता है सब मुसलमान एक स्वर से कहते हैं कि हमारी राष्ट्र भाषा उर्दू है। हम लोग भी एक स्वरसे क्यों नहीं कह सकते कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है। यदि आपने हिन्दीको स्वीकार न किया तो उसका परिणाम यह होगा कि उर्दूका पारिभाषिक साहित्य बढ़ता चला जायेगा और हिंन्दीका साहित्य पीछे रह जायेगा। इस समय भी ऐसा ही हो रहा है। उर्दूमें समस्त वैज्ञानिक विषयोंमें एम० एस-सी० तककी पुस्तकें तैयार हैं हिन्दीमें इण्टरमीजियेटकी भी तैयार नहीं हैं। जिस दिन राष्ट्रीय सरकारके सम्मुख राष्ट्र भाषाका प्रश्न आवेगा उस दिन उर्दूवाले यह कहेंगे कि हमारा तो साहित्य उच्चसे उच्च कक्षा तकके लिये तैयार है, हिन्दीमें तो दिखाओ कि क्या रखा है। उस दिन आप क्या उत्तर देंगे? उस दिन आपको हिन्दी और उर्दू इन्हीं दोनोंमें से एक भाषा चुननी पड़ेगी! उस दिन हिन्दी गुजरातीका प्रश्न नहीं होगा, हिंदी तामिलका प्रश्न नहीं होगा, हिन्दी बंगलाका प्रश्न नहीं होगा, केवल हिन्दी उर्दूका प्रश्न होगा। इन दोनोंमेंसे कौन-सी भाषा चुननी है इसका निर्णय आप लोगोंको करना है।



बच्चोंकी चोर प्रवृत्ति

एक आदत है जो बालकोंको झूठकी भांति ही प्यारी और मीठी लगती है—चोरी। खेल-खेलमें ही बालक चोरीकी लत लगा लेता है। फिर उसके पास बचनेके लिये झूठकी शरण के सिवा और कोई मार्ग नहीं मिलता। बहुधा उसे झूठ बोल देनेसे चोरीकी सजा मिल नहीं मिल पाती फलतः उसे चोरी और झूठ दोनोंके लिये ही प्रोत्साहन मिल जाता है।

यह कहनेकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं कि लड़कपनकी चोरी जितनी अबोध होती है उतनी ही भयंकर भी। किन्तु, बच्चे जानबूझ कर चोरीकी ओर प्रवृत्त नहीं होते। चोरी करते हैं मगर उन्हें ज्ञात नहीं होता कि ये जो कर रहे हैं उसका नाम चोरी है और यह चोरीकी बात बहुत खराब है। एक तिनकेकी चोरी भी चोरी ही समझी जाती है, किन्तु बालकोंकी इस चोरीके अनुसार 'बड़े-चोर'से तुलना कर देना उचित नहीं।

हमें बालकोंको मार-पीट करनेके पूर्व देखना होगा कि कौन-सी ऐसी चीज है—कौन-सा आकर्षण है जो इस कोमल हृदयको अपनी ओर खींच लेता है। और इसके अनुसार जबहम मूल ढूढ़ने लगते हैं तो ऐसी निन्नानवे प्रतिशत चोरियोंमें उस बालकके सहपाठीकी कोई चीज रहती है। मोहनके पास एक बहुत बढ़िया पेंसिल है। सोहनकी पेंसिल भस्ससे टूट जाया करती है। सोहन ने अपने काकासे कहा—'काका, हम मोहनकी तरह पेंसिल लेंगे।' मगर काकाने ध्यान न दिया और कल चाहे परसों मोहनकी पेंसिल सोहनके हाथ थी। सोहनको क्लासमें भी मार लगी और घरमें भी। अब यदि हम यह कहें कि अरे, यह तो धन्ना चोरका कान काटने लगा तो क्या हमारी यह तुलना ठीक होगी? कदापि नहीं। बालक की चोरी भी बालक ही होती है। बालक चोरी कितना बड़ा पाप है, चोरको समाजवाले किस तरह अपनी नजरसे गिरा देते हैं। आदि बातें ज्ञात नहीं होतीं। सयाना चोर तो सब जानता है। सब जानते हुए भी चोरी करता है। जाने और अनजानेमें तो सिर पांवका अन्तर है।

मोहन पेंसिलकी चोरी करता है और यदि चोरी पकड़ी नहीं जाती तब तो उसे हिम्मत मिल जाती है कि अरे, इससे बढ़कर तो जादू और कोई है ही नहीं। इस तरह आज पेंसिल, कल रबड़ परसों और कोई चीज—अब तो सोहन बड़ा होते-होते बड़े-बड़े चोरोंको नाक काटने लग गया। इसे हम मानते हैं। हम यह भी जानते हैं कि बालकका हृदय मिट्टीके कच्चे घड़ेके समान होता है कि जो भी चिन्ह हुआ सो आजीवन बना ही रह गया। किन्तु इस पतनमें, बच्चा अपनी ओरसे इंच मात्र भी दोषी नहीं होता। अभिभावक की लापरवाही ही इसका प्रधान कारण है। पेंसिलसे सोहन चोरी करना आरम्भ करता है। यदि इसके पूर्व अभिभावक सोहनपर ध्यान देता है और यह सोचता है कि सोहनको इस रद्दी पेंसिलसे कष्ट होता होगा। पेंसिल रोज दस दफे टूट जाती होगी और मास्टर जी से बकवास सुननी पड़ती होगी! उल्टे अभिभावक भी बिगड़ते हैं कि तू खामख्वाह पेंसिल तोड़ दिया करता है। बालापन ही जीवन-निर्माणका समय होता है। अर्थात इस वयसमें जिसे जो धारा मिलती है उसीमें जीवनकी नौका चल पड़ती है—बालकके अभिभावकको ऐसे समयमें सोचना चाहिये कि उनका एक-एक क्षण उत्तरदायित्वसे पूर्ण है। हम मानते हैं कि उन्हें फुर्सत नहीं मिलती कि बालकको जरा देखभाल कर लिया करें। मगर उन्हें फुर्सत निकालनी पड़ेगी। उन्हें बालकके साथ क्षण भर घुलना-मिलना पड़ेगा। उन्हें चेष्टा करनी पड़ेगी कि बालक हमारा प्रतिबिम्ब हो मगर उसमें क्रांति हमसे भी अधिक रहे। मगर इसके लिये अभिभावकको बड़े-बड़े उपदेश और श्लोकका सहारा लेनेसे काम न चलेगा और बालक उनसे अलग भाग जाना चाहेंगे। उसे उपदेश नीरस जान पड़ेगा।



शैशव कालसे ही बच्चोंको समुचित ज्ञान कराया जा रहा है।

बालकको अपने जैसा बनानेके लिये अभिभावक पहले बालक बनें। वे बालक बन कर बालकके साथ जब घुल मिल जायेंगे तभी उन्हें बालकका असली परिचय मिलेगा और वे उसकी तात्कालिक धाराको जान सकेंगे। हमें सर्वप्रथम यह देखना होगा कि बालकको क्या आवश्यकता है। हमें यह मानना होगा कि बालककी आवश्यकता अबोध होती है किन्तु आकुलता जिसमें हमारी आवश्यकतासे कई गुनी बढ़ी-चढ़ी होती है। जिसका हृदय दुर्बल होता है उसमें अभाव बर्दाश्त करनेकी ताकत नहीं होती। उसके पास जिस चीजका अभाव होता है उसे ही जब वह अपने सहपाठीके पास देखता है तो उसे यह प्रतीत होता है कि सहपाठी उसे चिढ़ाता-ललचाता है। ऐसा बालक अपने अभावकी पीड़ाके कारण स्वगत समझ लेता है। अक्सर सहपाठी उसे चिढ़ानेका यत्न भी करते हैं क्योंकि कक्षामें बालकोंमें परस्पर मधुर दोस्ती-और-अदावत का भाव वांछनीय होता है और दोनोंके ही बावजूद सबमें एक दूसरेके प्रति मधुर प्रतिद्वन्दिताका भाव अपेक्षित है। प्रत्येक बालक यह चाहता है कि उसके पास अच्छी किताबें, बढ़िया बैग, साफ-सुथरे कपड़े और जूते हों। और अभिभावककी ओरसे दूसरी लापरवाही हुई तो फिर बालकको प्रतिद्वन्दिताकी यादके कारण चोरीकी शरण लेनी ही पड़ती है। इसमें अभिभावककी निर्धनता ही बाधक है इसे हम जानते हैं। किन्तु बात तो असली यह है कि बालक धन नहीं चाहता है वह तो अपने आप राजा हुआ करता है।

अभिभावक यदि निर्धन है और इस निर्धनताके कारण उसका बालक चोरी करने लगता है तो ऐसी स्थितिमें अभिभावक और भी द्रोही हुआ क्योंकि निर्धनके बच्चे सन्तोषी होनेमें अपनी तुलना नहीं रखते। बालक संतोषी नहीं है तो इसका मानी है कि अभिभावकने संतोष सिखाया नहीं। हम बालकको प्यार करते हैं। हमें बालक उससे भी अधिक प्यार करता है। उसे हमारी लापरवाही और नहीं सुननेकी बात बर्दाश्त नहीं होती। किन्तु, जब वह हमारी असमर्थता देखता है तो आप ही उसे सन्तोष हो जाता है। किन्तु तब जबकि अभिभावक डांट-डपटकी अपेक्षा प्यारसे उपचार करें। बच्चा सबसे बड़ा प्रेमी है

और प्यार पानेके लिये वह सब कुछ कर सकता है। बालक जैसा दूसरोंको देखता है वैसा ही अपनेको बनानेका यत्न करता है। उसमें अनुकरण करनेकी कुछ खास प्रकृति होती है। उसमें स्वत्व और ममताकी प्रकृति भी कम नहीं होती। यह उसकी आयुके साथ ही आगेको बढ़ी चली जाती है। अतः शिक्षक तथा अभिभावकका कर्तव्य है कि वह बच्चेकी प्रकृतिका अध्ययन करें और उसके अनुसार ही बाल-शिक्षा का कार्य करें। किन्तु बालकके सामने सयाना बन कर डट जानेसे लाभकी कोई आशा न होगी। उन्हें बालकके लिये बालकके साथ बालक बनना पड़ेगा—तभी वे बालकको पाने में सफल होंगे।

कतिपय अभिभावक बालक को उसकी चोरीमें सहायता भी पहुंचाने लगते हैं। पड़ोसी जब उनके बच्चेकी चोरी की शिकायत लेकर आते हैं, अभिभावक उससे अपना अपमान समझते हैं और चोरीकी चीज छिपाकर, लड़केका पक्ष लेते हुए, पड़ोसीसे भिड़न्त कर बैठते हैं। एक बच्चेको बड़ीसे बड़ी चोरीकी आदत इसलिये पड़ गयी कि अभिभावक उसे रोज ठाकुरजीके लिये चौधरी साहबके उद्यानसे फूल चुरा लानेको कहते थे। अन्तमें फूलकी चोरी उसके जीवन भरके लिये शूल बन गयी। अभिभावक अपने उत्तरदायित्वको समझें मारपीटको छोड़कर प्यारका सम्बल लें—बालकका अभाव समझें और बालकको समझायें कि चोरी क्या चीज है और वह कितनी भयंकर होती है।—'मधुप' विशारद

ग्रामोंमें नवजीवनका संचार कैसे हो ?

अगर आप किसी भी राष्ट्रके वास्तविक स्वरूपका दर्शन करना चाहते हैं तो आपके लिये उसके ग्रामोंमें जाना आवश्यक होगा। ग्राम ही उसकी सभ्यता एवं संस्कृतिका माप-दण्ड है। अतः राष्ट्र निर्माणमें ग्रामोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमारा भारतवर्ष ग्रामोंकी भूमि है। इसमें लगभग सात लाख ग्राम हैं और इन्हीं पर समस्त देशका उत्थान निर्भर करता है। किन्तु यह तभी संभव है जब हम विदेशी चीजोंको बन्द कर अपने ग्रामोंकी बनी हुई चीजों को ही व्यवहारमें लाने लगें। जहां तक आधुनिक उद्योग-धन्धोंके लिये कच्चे मालकी जरूरत है प्रकृतिने हमें काफी सहायता दी है और सौभाग्यसे इन सभीके निवास-स्थान हमारे ग्राम ही हैं। फिर भी यह अत्यन्त दुःखका विषय है कि हमारा ध्यान ग्रामोंकी ओर आकृष्ट नहीं होता। हम नित्य अपनी मांगोंकी पूर्तिके लिये दूसरोंका मुंह जोहा करते हैं और इसी कारण सम्पत्ति रखते हुए भी हम आज गरीब हैं।



लड़कों की अपनी प्रदर्शिनी

जहां तक व्यवसायका सम्बन्ध है ग्राहक ही उसके संचालक एवं परिपोषक कहे जा सकते हैं। उन्हींके हाथों भारतकी समस्त जिम्मेवारियां हैं। जिन चीजोंको वे खरीदते हैं उनके उद्भव-स्थानमें, किसके द्वारा वे तैयार होती हैं, पैदावारका कौन-सा अंश मजदूरोंको मिलता है, उनसे अधिकाधिक मानव-शक्तिमें सहायता मिल सकती है अथवा नहीं, आदि बातोंकी जानकारी उनके लिये अनिवार्य है। ग्रामोद्योगको प्रोत्साहन देना हमारा ही कर्त्तव्य है। आज देशमें ऊन, रेशम और कपासके रहते हजारों स्त्रियां वस्त्रा-

भावसे आत्महत्याएं कर रही हैं; कीमती खनिज द्रव्य और उपजाऊ भूमि रख कर भी कितने भूखों मर रहे हैं, लेकिन इन सभीके लिये हम अपने ग्रामीणोंको दोषी नहीं ठहरा सकते। इसका उत्तरदायित्व एकमात्र उन उपभोक्ताओं पर है जिनकी प्रभावपूर्ण मांगकी पूर्ति वे करते हैं। श्री शान्ति-निकेतनकी ग्राम पुनर्निर्माण संस्थाका उद्घाटन करते हुए डा० टैगोरने कहा था—'एक समय था जब हमारे ग्रामों का इस भूमिकी भिन्न-भिन्न सभ्यताओंके साथ सम्बन्ध था; किन्तु आज कई कारणोंसे वे विस्मृत हैं।

यहांकी समाजिक स्थितियोंको ध्यानमें रखते हुए क्रय-शक्तिका समान वितरण एवं उत्पत्ति और बांटनेका समुचित प्रबन्धका होना आवश्यक है। ग्राम्य-क्रान्ति इस युगमें प्राचीन दर्शनकी जन-समानतासे ही नहीं वरन् परिश्रमानुकूल वस्तु-विभाजनसे ही हमारा प्रयोजन है। मानव-महत्ता और कर्त्तव्य पर निर्धारित समाज ही शान्ति तथा शुभेच्छाकी घोषणा कर सकता है। भावी नूतन समाजके लिये प्रत्येक ग्रामीणको इच्छित कार्यका मिलना भी अत्यन्त जरूरी है। इतना ही क्यों, प्रस्तुत बाजारके बिना तो हमारे ग्रामीण उत्पादककी प्रगति भी संभव नहीं। अतः वर्तमान परिस्थितियोंका परिवर्त्तन एकमात्र उपभोक्ता द्वारा ही किया जा सकता है। मशीनके इन दिनोंमें यदि ग्रामोद्योग जीवित है तो अपनी थोड़ी पूंजी, साधारण जीवन, पीढ़ियोंसे उपार्जित कारीगरी आदि कतिपय गुणोंके कारण ही। इसके सम्बन्धमें यहां खादी, कागज, आदि व्यवसायोंको पुनरुज्जीवित करनेमें सरकारने जो उद्योग किया है उसका उल्लेख कर देना अनुचित न होगा।

इन दिनों भावी मांगोंकी प्रत्याशामें ही मशीन द्वारा

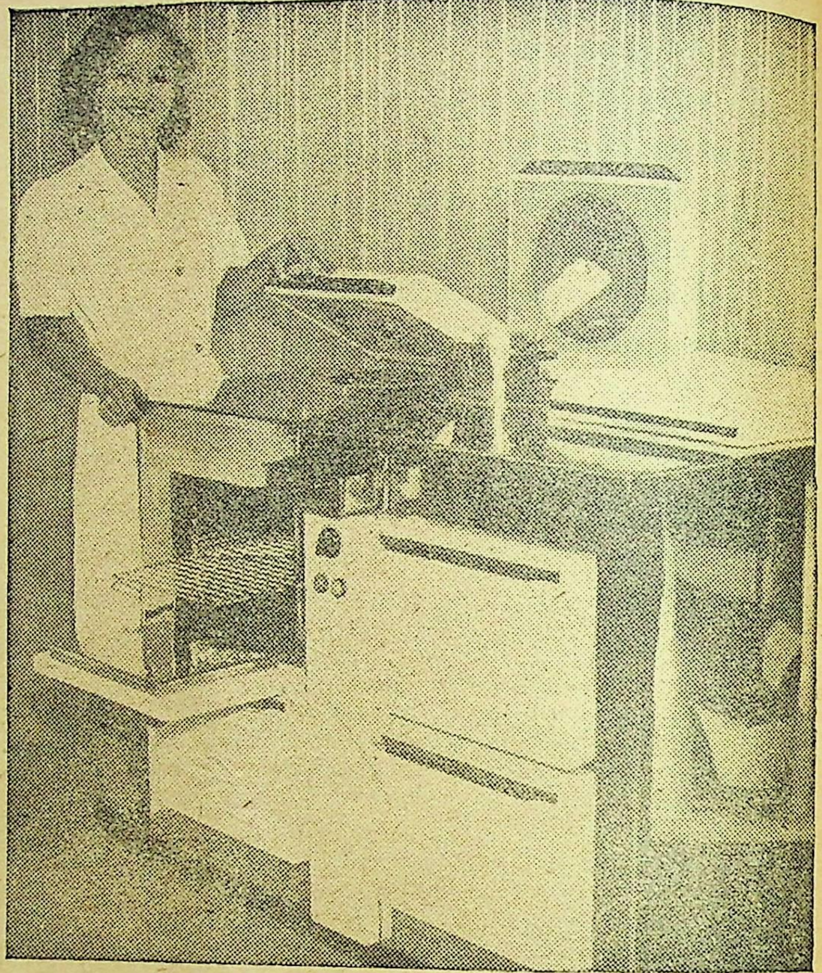


ब्रिटेन-ब्राजील आर्थिक समझौतेपर उनके प्रतिनिधि हस्ताक्षर कर रहे हैं।

वस्तु-उत्पादन किया जा रहा है। इसी कारण हमें नित्य ही अति और अल्प उत्पादनके भी उदाहरण देखनेको मिलते हैं। ये कठिनाइयां हमें ग्रामोद्योगमें नहीं मिलतीं, वरन् ऐसे उद्योगके केन्द्रीकरणसे लाभ ही होता है। 'सेण्ट्रल बैंकिंग इनक्वाइरी कमेटी' ने भी इस सम्बन्धमें अपना मत प्रकट करते हुए कहा था कि किसानोंके सहायक कार्य के लिये ग्रामीण-व्यवसायको प्रश्रय देना प्रान्तीय सरकारका कर्त्तव्य है।

समग्र ग्रामोद्योग आज दिनों-दिन अवनतिकी ओर बढ़ रहा है। इसके मुख्य कारण हैं—मशीनोंकी बनी चीजोंके साथ इनकी बराबरी, संगठनकी न्यूनता और बिक्री एवं लेनदेनकी अव्यवस्था। इन्हीं कारणों से उधर उत्पादक भी महाजनोंके सहज शिकार बन रहे हैं। कुछ लोगोंका इस सम्बन्धमें यह भी कहना है कि मशीन युगमें ग्रामोद्योगको पुनरुज्जीवित करना बालूसे तेल निकालने के सदृश है। किन्तु इन दोनोंके बीच हमें संघर्षका कोई कारण नहीं दीख पड़ता। मशीन और ग्रामोद्योग दोनों साथ-साथ बढ़ सकते हैं। जैसा कि किसी विद्वानका कहना है—'मशीनोंका प्रादुर्भाव स्थायी होनेको है और इसके सदुपयोगसे अभिशाप भी वरदान बन सकते हैं। आज हमारे सामने मशीनोंको स्थगित करनेकी समस्या नहीं, किन्तु मानवके बिना दास बनाये मशीन और ग्रामोद्योगके उचित क्षेत्रोंकी व्याख्या एवं विवरण कर होड़का निराकरण करना है।'

वही पश्चिम जो कभी सुषुप्तावस्थामें था आज आलस्य का परित्याग कर पागलकी भांति व्यापारिक होड़में आगे बढ़नेके लिये उतावला हो रहा है। पिछले वर्षों तक वस्तु-बाहुल्य तथा मानव-शक्तिके अभावके कारण परिश्रम



बिजलीके यंत्रोंकी प्रदर्शिनी

बचाने वाली मशीनोंका काफी अन्वेषण होता आया है; किन्तु आज वह समस्या परिवर्त्तन हो गयी है। बहुसंख्यक जनसमूह कार्य-विहीन होकर बेकार बैठे हैं। मशीनोंने उनकी जगह ले ली है। अतः उनके लिये आज मशीनोंके बदले ऐसी मशीनोंकी आवश्यकता है जिनके द्वारा अधिकसे अधिक मनुष्य कार्यमें लग जायं। दरिद्र-सहायताकी योजना, करोड़ों व्यक्तियोंकी बेकारी इस बातकी साक्षी है कि हमारे आर्थिक रूपमें कोई न कोई मौलिक त्रुटि अवश्य रह गयी है।

रिपोर्टोंके अध्ययनसे यह स्पष्टतः ज्ञात हो जाता है कि आजका विश्व-उत्पादन अपने उद्देश्यकी ओर प्रेरित नहीं किया जाता अर्थात् उनका उचित समभोग नहीं हो पाता। आधा विश्व इसी आशामें अधिकाधिक उत्पादन करनेमें लगा है कि दूसरा आधा उनका उपभोग कर सकेगा। इस

तरह समस्त विश्वका दम इस व्यवसायी वंशके कारण घूंट रहा है। किन्तु अब तो ऐसा समय आ गया है जब हम मानव-शक्तिके विकासके लिये पूर्णतः आयोजन करें। मशीनके प्रयोगमें संभवतः जो आर्थिक बचत है वह निस्सन्देह गुड़ियों का ब्याह नहीं। जन-समुदायके मंगलको भुला मशीनके प्रयोगने ही हमें इस वर्त्तमान अवस्थामें रख छोड़ा है।

कीमती अथवा साधारण किसी भी व्यवसायका कार्य हमारे जीवन-निर्वाहमें सहायता देना है और ऐसाही कर हम उत्पादकोंके बीच धनका सम-विभाजनकर सकते हैं। उत्पादकोंका कार्य मांगके अनुसार पदार्थ उत्पादन ही है। अतः उनके लिये उन विधियोंका अपनाना अति आवश्यक है जिसके कारण हम कभी-कभी मशीनोंके प्रयोगके लिये बाध्य हो जाते हैं। यहां पर मशीनोंके आमूल और सर्वकालीन विनाश से हमारा प्रयोजन बिलकुल नहीं है किन्तु उत्पादकोंके सम्बन्धकी रक्षा एवं मजदूरोंको उचित व्यवसाय देना हमारा कर्त्तव्य है। इसीलिये कागजके उद्योगमें उसकी कठिनतर विधियोंको मानव-शक्तिसे नहीं कर मशीनोंसे ही कराना सर्वथा अपेक्षित है। इससे हम कच्चे मालों के सदुपयोग द्वारा पूर्ण लाभ उठा सकते हैं और यही बात अन्य ग्रामोद्योगोंमें भी पूर्णरूपेण चरितार्थ है। भारतके आर्थिक पुनर्निर्माणमें आज-कल चारों तरफ मशीनोंको अधिक प्रश्रय देनेकी चर्चा चल रही है; किन्तु हमें यह कदापि न भूलना चाहिये कि जिन जगहों पर मशीनें शक्तियोंको बचानेमें समर्थ हैं वहां वे कभी उनके अन्तका स्वयं कारण भी बन सकतीं हैं। अतः हमारे लिये मानव-शक्तिका यथा-संभव और अनिवार्य अवस्थाओंमें मशीनोंका प्रयोग आवश्यक है। इन्हीं अर्थशास्त्रके मौलिक सिद्धान्तोंकी अवहेलनाने युद्धका मार्ग और सरल कर दिया है।

जब हम पश्चिमी सभ्यताकी ओर अपना ध्यान आकृष्ट करेंगे तो यह स्पष्टतः मालूम हो जायगा कि उसकी दीवार नगरोंकी नींव पर ही आधारित थी और इसे ही हम उसकी सबसे बड़ी भूल कह सकते हैं। यही कारण था कि वहां नगर उत्पादनके केन्द्र हो गये जिसके फलस्वरूप आगे चलकर ग्रामोद्योग और मजदूरोंका ह्रास हो गया। ग्रामोंके लिये सभी उद्योग बन्द कर कच्चे मालोंके उत्पादन के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह गया। किन्तु, हमारा भारत तो एक ग्राम प्रधान देश है। सौभाग्यसे औद्योगीकरणके लिये यहां अपरिमित रूपसे स्वाभाविक साधन उपलब्ध हैं। किसी भी देशके लिए यह औद्योगीकरण स्वतंत्रता-प्राप्तिमें अत्यन्त अनिवार्य है। इन सभी साधनोंकी जन्मभूमि हमारे वे गौरवपूर्ण ग्राम ही हैं। अतः हम उन्हें इस तरह विस्मृतिके गड्ढेमें नहीं फेंक सकते।

यहां पर जिन बातोंका उल्लेख किया गया है उससे ग्रामोद्योगकी महत्ता बिल्कुल स्पष्ट है। पश्चिमी देशों को भी इसकी प्रमुखता पूर्णरूपेण प्रमाणित हो चुकी है। सन् १९१८ का 'इन्डस्ट्रियल कमीशन' भी भारतके औद्योगिक जीवनमें ग्राम-व्यवसायके स्थानसे अत्यन्त प्रभावित हुआ था। ग्रामोद्योगको 'अपव्ययी' और 'निश्चित विनाश होने वाला' कह कर कलंकित करने वाले सज्जन हमारी अवस्थाओंसे अधिकांशतः अपरिचित हैं। फलतः हमारी परिस्थितियोंकी व्याख्यामें वे मौलिक रूपसे असफल रह जाते हैं।

—पथिक बाकरपुरी

पशुओंके विविध रोग और उनकी चिकित्सा

लन्दनके चिड़ियाखानेमें यहांके अनेकों पशुओंके अतिरिक्त बहुतसे अफ्रीकासे लाये गये हैं जिनकी संख्या ३ लाखके लगभग है। इन जानवरोंमें वनमानुष, गोरीला, शेर, बन्दर आदि उल्लेखनीय हैं।

इन पशुओंके मुख सम्बन्धी रोग, उनकी नर्सिंग तथा चिकित्साका कुछ विवरण मैं नीचे देती हूँ।

मुख सम्बन्धी कष्ट मनुष्यकी भांति प्रायः नवजात पशुके बच्चोंमें भी होता है। पहिले ही कष्टमें उन्हें ज्वर, भूखकी कमी आदि हो जाती है। दूसरे प्रकारसे पशुओंमें उनकी चेतना तथा सहनशीलताके साथ रोगमें कमी या बढ़ाव हो जाता है।

उन पशुओंके निरीक्षणके लिये दांत चिकित्सकको बुलाया जाता है, साथ ही मनोवैज्ञानिक भी उनकी दशा का निरीक्षण करते हैं।

इन दोनों ही को पीड़ित पशुओंके निरीक्षण तथा चिकित्सामें खड़े होकर, झुक कर, जानवरोंको सलाखोंमें बंद कर, कीपर द्वारा सिर या शरीर पर दबा कर ईलाज करना पड़ता है।

बड़े बड़े भयानक चीतोंका इलाज प्रायः बन्द सलाखोंमें क्लोरोफार्म देकर मसूढ़ोंके आपरेशन द्वारा होता है। कभी कभी ये रोग ठीक होनेमें काफी देर लगाते हैं।

बब्बरके बच्चोंके रोग लक्षण कड़ी वस्तुके चबानेमें लीफ, भूखकी कमी आदिसे प्रारम्भ होते हैं।

कभी-कभी दांतोंमें बहुत अधिक पीड़ा होनेपर संरक्षक न्हें कोठरीमें बन्द रख सकता है। इन थोड़ी-सी पाशविक विधियोंके अतिरिक्त यहां उन पशुओंके लिये प्रत्येक दशामें इन्जेक्शन प्रणाली व्यवहारमें लायी जाती है। साथ ही थोड़ी बहुत दवाओंका प्रयोग किया जाता है।

छोटे बकरे जैसे जानवरोंको फल, मांसके साथ मूर्छित होनेकी दवा पहले खिला दी जाती है और बेहोशीकी दशा में उन्हें लाया जाता है।

हाथी, तथा सिंह आदि अपनी रुग्णावस्था पर नियंत्रण करनेमें तथा स्वस्थ होनेमें बड़े सतर्क रहते हैं। प्रायः एकाधही ऐसे कम चैतन्य एवं बुद्धिहीन जन्तु दवा या रोग़से कम प्रभावित होते हैं।

बन्दरके बच्चे अपनी प्रत्येक कार्यवाहीमें बड़े पटु होते हैं। उदाहरणार्थ एक स्थान पर एक दांत-रोगी बन्दर चिकित्सकके बुलाने पर आपरेशन द्वारा उससे दांत निकलवा कर, हर्षके साथ वहीं खेलमें मशगूल हो गया।

नियमानुसार शिम्पाजी अपना रोग दिखानेमें बड़ी झंझट करते हैं। उन्हें केवल अपना रोग दिखानेमें महीनों लग जाते हैं, शायद आपरेशनके पश्चात् उन्हें पीड़ा भी कम अनुभव होती है।

इसी प्रकार कुछ पशुओंका केवल कुछ खानेकी चीज मुंहके अन्दर करनेके बहाने ही औजार द्वारा दांत उखाड़ दिया जाता है। कुछका आग्रहपूर्ण स्वभाव उन्हें मुखका निरीक्षण करने ही नहीं देता।

कोमल प्रकारके जानवरोंमें रेनडीयरका नाम उल्लेखनीय है। इनका स्वास्थ्य ठीक करनेमें बड़ी देर लगती है। कभी-कभी उन्हें जल्दी नियंत्रित करनेपर चिकित्सक इनके दांतोंमें तार बांध शीघ्र ही अच्छा कर देते हैं।

चिकित्सकको भिन्न-भिन्न प्रकारके भयानक जानवरोंके सामनेकी भयानक परिस्थितियोंका सामना करना पड़ता है। किन्तु मनुष्यकी उच्च नैतिकता पशुओंके साथकी पाशविक विधियोंका वहिष्कार करती है।

—रतन "प्रेम"

राशन प्रणालीका इतिहास

भारतके कितने ही भागोंमें आज राशन प्रणाली प्रचलित है। लेकिन यह बीसवीं शताब्दीकी आविष्कृत प्रणाली नहीं है। हजारों वर्ष पूर्व खाद्याभावकी स्थितिमें पहले भी राशनप्रणाली अपनायी जा चुकी थी। इसलिये राशन कार्डका इतिहास बड़ा ही मनोरंजक है। ईसाके पूर्व ११०० में चीन में यह प्रणाली अपनायी गयी थी। यांग-टी-सी क्यांग नदी की भयंकर बाढ़से धानकी अधिकांश फसल खराब हो गयी थी और जनतामें अकालकी स्थिति उत्पन्न हो चली थी, इसलिये तत्कालीन चीन-नरेशने जो कुछ खाद्यान्न उपलब्ध था, उसके समुचित वितरणकी व्यवस्था की। जितना भी चावल एकत्र किया जा सकता था, उसने एकत्र कराया और फिर प्रत्येक नागरिकोंमें उसके वितरणकी इस प्रकार व्यवस्था की कि प्रत्येकके लिये रेशनका एक लम्बा डोरा सरकार की ओरसे दिया गया। गल्ला देनेके बाद डोरेका एक अंश काट लिया जाता था। एक बार एक नागरिकको एक महीने का राशन दिया जाता था। उस समयके लिये यह प्रणाली चीनी नरेशकी दूरदर्शिताकी परिचायिका थी, किन्तु हीरोडोटससे लेकर एच०जी० वेल्स तक, किसी भी इतिहासकार ने इसका उल्लेख नहीं किया।

राशन प्रणालीका एक और बहुत पुराना उदाहरण फारसमें मिलता है। फारसमें भीषण अकाल पड़ा। उसके राजा तेहमुरश्कने सभीमें समान रूपसे खाद्य वितरणके लिये राशन-प्रणालीका सहारा लिया। उसने फरमान जारी किया कि सम्पन्न व्यक्ति सिर्फ एक वक्त खाना खायें और अपना एक वक्तका खाना गरीबोंमें वितरित कर दें। इस फरमानका बड़ी कड़ाईके साथ पालन किया जाता था। इस विचित्र राशन-प्रणालीसे यह नियम बना दिया गया कि देशकी विपत्तिमें धनी-गरीब सब समान रूपसे त्याग करें। यह नहीं कि अकालमें अमीर तो मौज उड़ायें और गरीब भूखों मरें।

ईसासे ६७२ वर्ष पूर्व मिस्रमें राशन-प्रणाली अपनायी गयी थी। सभीके लिये समान रूपसे गल्ला वित-

रण करनेकी योजना कार्यान्वित की गयी थी । धर्माधिकारी इस कामके लिये सरकार द्वारा नियुक्त किये गये थे । प्रत्येक नागरिकके पास एक पुर्जा रहता जिसपर मुहर लगी रहती और लिखा रहता कि कितना गल्ला मिलेगा । किन्तु मिस्र नरेश फरोआने सख्त फरमान जारी किया था कि राशन-प्रणालीमें तनिक भी बाधा डालनेवाले अथवा चोर बाजार चलानेवाले व्यक्तिको फांसीकी सजा दी जायगी ।

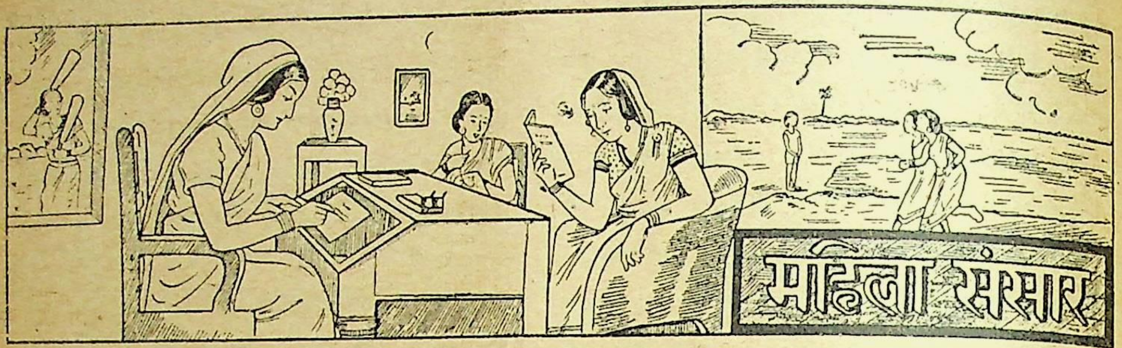
फारस और एथेन्सके बीच ईसाके ४६० वर्ष पूर्व जो युद्ध हुआ था उसमें एथेन्स जब चारों ओरसे घिर गया और रसदका पहुंचना बन्द हो गया तब प्रत्येक नागरिकको संगमर्मरके छोटे-छोटे टुकड़े बांटे गये । पत्थरके इन कार्डों को दिखानेपर सरकारी गोदामसे खाद्य मिलता । अमीर आदमियोंने पहले अपने नौकरों द्वारा पत्थरके कार्डोंको भिजवाकर खाद्य मंगाना शुरू किया, इसपर जनताने बहुत हो-हल्ला मचाया । तब सरकारी हुक्म निकला कि प्रत्येक नागरिकको स्वयं जानेपर गल्ला मिलेगा, अन्यथा उसे भूखों मरना पड़ेगा ।

रोग द्वारा हो वे सफल हुए

संसारमें बीमार कोई नहीं होना चाहता । 'तन्दुरुस्ती लाख न्यामत' यह कहावत ही प्रसिद्ध है । किन्तु वैज्ञानिकों का कथन है कि बीमारी हर हालतमें बुरी ही नहीं है। कितने ही व्यक्तियोंके सम्बन्धमें कहा जाता है कि बीमारी के बाद उनमें अभूतपूर्व परिवर्तन हुए और कितने ही असफल व्यक्तियोंको बीमारीसे उठनेके बाद असाधारण सफलता मिली । प्रकृति जब बीमारी द्वारा किसी अवगुण विशेष शारीरिक या मानसिक—का निराकरण कर देती है तब रोगी मनुष्य स्वस्थ होकर अपने उक्त अवगुणोंसे मुक्त होकर नये ढंगसे कार्यारम्भ करता है और सफलता प्राप्त करता है । इतिहासमें ऐसे कितने ही उदाहरण वर्तमान हैं जबकि रोगियोंने स्वास्थ्य लाभ कर पुनः संसारमें प्रवेश किया और उन्हें महान् सफलता मिली । फ्लोरेन्स नाइटिंगेलने अपनी बीमारीके दिनोंमें ही स्वर-शास्त्रमें युगान्तरकारी परिवर्तन कर डाले और मिल्टनने अन्धा होनेके बाद ही अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'पैराडाइज लास्ट'की रचना की । कितने ही ऐसे व्यक्ति हैं जो अत्यन्त प्रतिभाशाली हैं । जो जीवनकी सफलताकी चरम सीमा पर पहुंच सकते हैं, किन्तु वे नियमबद्ध कार्योंमें फंसे रहते हैं और उनकी प्रतिभा उन्हींमें नष्ट होने लगती है । किन्तु जब किसी भीषण बीमारी द्वारा उनका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है, तब बीमारीकी अवस्था में वे अत्यन्त कुशाग्र चिन्तनशीलतामें लग जाते हैं । वे बीमारीसे उठते ही पुनः अब संसारमें प्रवेश करते हैं तब उसकी रचनात्मक प्रतिभा जागृत हो जाती है और वे अपने जीवन-संग्राममें पूर्ण विजयी होते हैं ।

यूने-ओं,-नील, एक लम्बे अरसे तक नियमबद्ध काम करता रहा । अपने कामकी प्रणालीसे वह तंग आ जाता, वह शिथिल होने लगता । उसकी प्रतिभा की उड़ान मन्द पड़ने लगी और जो काम उसके पास था, उसे नियमानुकूल मानकर वह करता, किन्तु उसकी रचनात्मक प्रतिभा का कुछ भी फल उसे नहीं मिला, कोई उल्लेखनीय घटना उसके जीवनमें २५ वर्ष तक नहीं हुई । वह बीमार पड़ा बीमारीके दिनोंमें वह अपने अतीत कालपर सोचता, आत्म-निरीक्षण करता । उसने अपने विचारोंका तारतम्य मिलाया और उसके बाद ही उसने अपनी योजना कार्यान्वित करने का दृढ़ संकल्प किया । रोग शय्यापर ही उसने जिस नाटकका श्रीगणेश किया, वह था 'एक बीबीके लिये बीबी ।' इसके बाद वह कितना विख्यात हुआ, यह किसीके बताने की आवश्यकता नहीं ।

'विश्वास करो या न करो' नामक अपने व्यंग्य चित्रों द्वारा विख्यात राबर्ट रिपलेकी प्रतिभा उस समय जागृत हुई जिस समय उसका हाथ खराब हो गया । बीमारीमें ही दिल बहलानेके लिये उसने चित्र बनाने शुरू किये और अच्छा होनेपर वह व्यंग चित्रकार होकर संसारमें विख्यात हुआ । लार्ड स्नोडन संसार भरमें अपनी राजनीतिक प्रतिभा के लिये कभी प्रसिद्धि प्राप्त ही न कर सकते, अगर साइकिल की दुर्घटनाओंसे दो वर्ष तक बीमार पड़े रहनेके बाद, अपनी नौकरीसे अलग होकर उन्होंने राजनीतिमें प्रवेश न किया होता । शारीरिक शक्ति तो उस दुर्घटनाके बाद उन्होंने कभी प्राप्त नहीं की, किन्तु राजनीतिमें उन्होंने अपना सिक्का जमा लिया । इस प्रकारके असंख्य उदाहरण भरे पड़े हैं । प्रकृतिमें क्षतिपूर्ति करनेकी अपार शक्ति है। अधिकांश अन्धोंमें गायन शक्तिका और अनेक गूंगोंमें संकेत पहिचाननेकी प्रतिभा प्रायः देखी गयी है। अतः बीमारीसे सर्वथा निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है ।



नारीके साम्पत्तिक अधिकार

नारीकी महिमा भारतीय समाज शास्त्रमें चाहे जितनी हो, भारतीय साहित्यमें कलाकारों द्वारा उसकी महिमाका चाहे जितना बखान किया गया हो और 'अर्द्धांगिनी' तथा 'गृह लक्ष्मी' आदि शब्दों द्वारा भले ही उसे सम्बोधित किया गया हो, किन्तु कोई भी न्यायशील व्यक्ति इस तथ्यसे इन्कार नहीं कर सकता कि समाजमें नारीकी कैसी अधोगति रही है। जबसे नारीको पुरुषके आर्थिक परावलम्बनमें रखा गया और उसे 'असूर्यमपश्या' बनाया गया तबसे नारी सामाजिक कर्मक्षेत्रसे बाहर गयी और तभीसे उसे अपनी दैनिक जीवन-चर्या और शारीरिक भरणपोषणके लिये परमुखापेक्षी होना पड़ा। एक ओर तो नारीकी महिमा का बखान किया जाने लगा और दूसरी ओर उसे कर्मक्षेत्र के सर्वथा अयोग्य भी घोषित किया गया। फलतः नारी अपनी सारी स्वाधीनता खो बैठी। और जब वह स्वाधीनता खो बैठी तो अपना अस्तित्व भी खो बैठी। विवाह होनेके पश्चात् कुमारी सरला कुमारी अपना नाम तक खो कर संज्ञाहीन हुई क्योंकि तब सरला अपने नामसे नहीं, अपने पति प्रेमकुमारके नामसे श्रीमती प्रेम कुमार, मिसेज प्रेमकुमारके नामसे सम्बोधित की जाने लगी। साधारणतः देखनेसे यह परिवर्त्तन हानिकर नहीं मालूम होता, किन्तु जिस परिवर्तनसे नारी अपना नाम और अस्तित्व खो कर संज्ञाहीन तक हो गयी, वह साधारण परिवर्तन नहीं कहा जा सकता। नारी अर्द्धांगिनी तो हो गयी और इसीलिये पतिके नामसे वह सम्बोधित होने लगी, किन्तु कभी पुरुषने भी अपनेको अर्द्धांग माना?

पुरुषने अपनेको अर्द्धांग कभी नहीं माना। समाजमें नारीके लिये उसने अस्तित्व नहीं खोया, अस्तित्व खोनेकी बात तो दरकिनार, उसने उसके साथ अपनेको संयुक्त तक नहीं किया। उसका पृथक अस्तित्व ज्योंका त्यों बना रहा, केवल नारीको ही अस्तित्वहीन होना पड़ा। नारीके प्रति समाजकी मनोभावनाका यह प्रतिबिम्ब है, जो उक्त परिवर्तनमें दिखायी पड़ा और इसके परिणाम न केवल कौटुम्बिक एवं सामाजिक क्षेत्रोंमें ही दिखायी पड़े, बल्कि आर्थिक क्षेत्रमें भी। आर्थिक क्षेत्रमें और कानूनी व्यवस्थाओंमें भी नारीके लिये किसी प्रकारके उत्तराधिकार अथवा साम्पत्तिक अधिकार देनेकी आवश्यकता नहीं समझी गयी। भला हो, डा० देशमुखका, कि उन्होंने सीमित रूपमें नारीके साम्पत्तिक अधिकारोंका प्रश्न उठाया और उसे बहुत अंशोंमें पूरा भी करके दिखाया। परिणाम तो समाजमें अभी बहुत स्पष्ट नहीं हो सका है, किन्तु यह इस बातका साक्षी अवश्य है कि नारीके सम्बन्धमें सामाजिक दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ है।

आर्थिक परावलम्बनसे नारी प्रगतिमें कितनी बाधाएं हुई हैं, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है। आर्थिक स्वावलम्बनके बिना किसी प्रकारकी भी भौतिक उन्नति सहज साध्य नहीं है। जब अपने भरण-पोषण तकके लिये नारी को दूसरोंका मुंह ताकना पड़े, जब शरीर ढंकनेके लिये दो गज कपड़ों तकके लिये नारीको पुरुषकी कृपा पर अवलम्बित रहना पड़े तब नारीके लिये किसी भी दिशामें अग्रसर होने का अवसर ही कहां है? उसका तो सारा जीवन ही रोटी कपड़ेके लिये पुरुषकी चाटुकारिता और गुलामी करनेमें बीतेगा। इसके साथही कितने ही और सामाजिक बन्धनों की श्रृंखलामें नारी बांधी गयी है। युगोंसे पर्देके भीतर



श्रीमती रमादेवी मुरारका

रख कर, शिक्षा और विज्ञानकी रोशनीसे उसे पृथक रख कर उसे संसारकी प्रगतिसे भी अज्ञान रहने दिया गया। परिणाम यह हुआ कि उसे अपने परावलम्बनकी स्थितिको दयनीय समझनेका ज्ञान और अवसर नहीं दिया गया। परावलम्बनको ही वह आसान समझने लगी। वह समझने लगी कि पुरुषने उसे कितना सुख दे रखा है, कितनी सुविधाएं उसे प्राप्त हैं कि उसे करना कुछ नहीं पड़ता, पुरुष अर्थोपार्जन करता है और नारी बिना कुछ किये सहज ही 'गृहलक्ष्मी' के पदपर आसीन हो गयी है। उसने कभी सोचा ही नहीं, उसे कभी सोचनेका अवसर ही नहीं दिया गया कि गृहलक्ष्मी कही जाने वाली नारी वास्तवमें क्रीत दासी की स्थितिमें पड़ती जा रही है। पुरुष जब चाहे उसका त्याग कर सकता है, उसके स्वस्थ एवं जीवित रहते हुए भी पुरुष मनमाने चाहे जितने जितने विवाह करके, चाहे जितनी गृहलक्ष्मियां बना सकता है। ऐसी गृहलक्ष्मियोंको किस प्रकार रोते-रोते सारी जिन्दगी काटनी पड़ती है, यह किसीसे बतानेकी आवश्यकता नहीं है।

किन्तु वर्तमान युगकी नारी जागरूक है, उसने अपनेको पहचाना है। उसने सामाजिक प्रगति और आर्थिक महत्वको भी पहचाना है। अतः आज वह अपने अधिकार लेनेको निकली है। वह उनसे मांगने नहीं, अपने अधिकारों के बल पर उन्हें स्वतः लेने निकली है। यह सन्तोषका विषय है कि अपने अधिकारोंके लिये भारतीय नारीको अमेरिकन और ब्रिटिश बहनोंकी भांति युद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी है। भारतीय राजनीतिक चेतनामें यह संतोषजनक स्थिति है कि नारीके अधिकारों पर हमारे नेताओंने न्यायोचित उदारताका परिचय दिया है। इस बातका सबसे अधिक श्रेय महात्मा गांधीको है। गांधीजीने सदाही आधुनिक युगमें नारीकी प्रतिष्ठाके लिये जोर दिया है और जितना उपकार उन्होंने नारी समाजका किया है, उतना और किसीने नहीं।

हिन्दू कानूनमें नये सिरेसे परिवर्तन हो रहे हैं। इसके लिये नियुक्त समितिकी सिफारिशें अभी प्राप्त नहीं हुई हैं। हमें आशा है कि समिति नारीके अधिकारोंके सम्बन्धमें रूढ़िवादी परम्पराओंसे प्रभावित न होकर युग धर्मका ध्यान रखते हुए नारीके साम्पत्तिक अधिकारोंका ध्यान रखेगी। नारीकी कुछ सामाजिक असुविधाओंका निराकरण



श्रीमती दुर्गेश्वरी देवी मखरिया, बम्बई

तो हो चला है, किन्तु सम्पत्ति-सम्बन्धी सुधार जब तक नहीं किये जाते, तब तक बहुतसे सुधार खोखले रहेंगे। भारतकी सामाजिक व्यवस्था कुछ ऐसी है कि नारीके अधिकारोंमें परिवर्तन करनेके लिये उक्त सामाजिक व्यवस्थामें भी परिवर्तन आवश्यक होगा। सम्भव है, इसे कुछ लोग अवांछनीय समझें, किन्तु इसके लिये नारीको दंड क्यों दिया जाय।

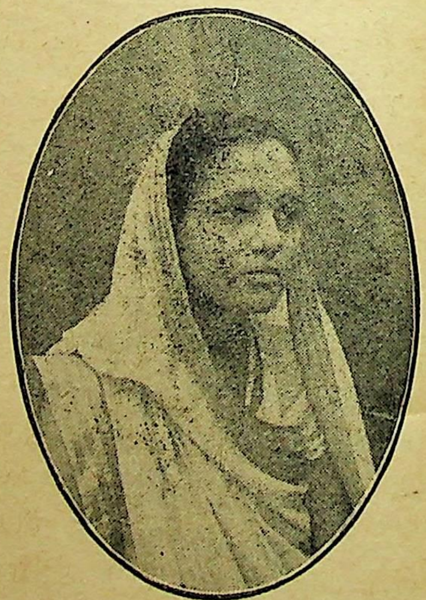
—मनोरमा गुप्त एम० ए०



श्रीमती बासन्ती देवी गोविन्दराम सेकसरिया

दुलहनें बदल रही हैं!

गोरखपुरके १७ मार्चके एक समाचारमें बताया गया कि एक गांवके दो व्यक्ति एक साथ ही एक ही गांवसे अपनी-अपनी पत्नियोंको विदा कराके ला रहे थे। ट्रेनसे उतरने पर दोनों ही दम्पति एक ही इक्के पर सवार होकर अपने गांवको पहुंचे। वहां पहुंचने पर दुलहनें बदल गयीं। चार दिनोंके बाद भूलका पता लगा और तब वे अपने-अपने असली घरोंमें पहुंची। गोरखपुरकी यह घटना पर्दा-प्रथा पर मजेदार प्रकाश डालती है। देहातोंमें पर्देका बहुत अधिक प्रचार है और विवाहके पहले तो कन्या देखनेके सभी विरोधी हैं। इसी प्रथाका परिणाम है कि अपनी विवाहिता पत्नीका गौना लाते समय भी पतिको उसकी पहिचान नहीं रहती और दुलहनें इतने पर्देमें रहती हैं कि बण्डलकी तरह उन्हें सवारियोंमें बैठा दिया जाता है। गोरखपुरमें दुलहनोंको लेकर जो भूल हुई है उसका कारण इसके अतिरिक्त और क्या है कि उन्हें उनके पति तक पहचानते नहीं थे। अगर पतियोंको भी अपनी-अपनी पत्नियोंकी पहचान होती तो चार दिन तक उनकी शिनाख्त न होना असम्भव था। पर्देकी कुप्रथाके कारण ही इस प्रकारकी घटनाएं घटित होती हैं। पिछले दिनों इस कुप्रथाके कारण और भी भीषण काण्ड होते सुने गये हैं। कितनी ही बार अपहृता नारियोंको लेकर इसलिये मारपीट तककी नौबत आ गयी हैं कि संदेह होनेपर जब दूसरोंने चेहरा देखनेके लिये बुरका या घूंघट उठानेके लिये कहा तो एक दलने इसपर आपत्ति की। इस तरहकी घटनाओंके दुष्परिणाम कलकत्तेमें पिछले दिनों एक स्टेशन पर देखे गये और परदानशीन औरतोंको लेकर भीषण मारपीट हुई। इसलिये पर्दा प्रथाके निवारणकी अनिवार्य आवश्यकता है। इस कुप्रथाके पक्षमें एक भी उचित तर्क नहीं है। स्वास्थ्यके लिये भी यह सर्वथा हानिप्रद है। और जो लोग मिथ्या, लज्जा और संकोचके कारण इसे अपनाये हुए हैं, उनमें भी प्रायः यह देखा जाता है कि वे परदा करते भी हैं तो केवल अपने लोगोंसे वे। बाहर निकलते हैं तो तबतक परदा नहीं करते जब तक कि दूसरे लोगोंके सम्पर्कमें रहते हैं किन्तु जहां किसी जान-पहचानके आदमी दिखाई पड़े, फौरन स्त्रियोंके मुंहपर



सुश्री गीता देवी

घूंघट आया। कितनी लज्जाजनक स्थिति है और स्त्रियों की कितनी दयनीय स्थिति है कि हमने उन्हें अपनी इच्छाओंका गुलाम बना रखा है। जैसी घटनाओंका अमर उल्लेख किया गया है, वे पर्दा प्रथाके भयानक परिणामोंकी ओर संकेत करती हैं। जिन कारणोंसे कितने ही लोग आज भी पर्देके पक्षमें हैं, वे स्त्री जातिके प्रति हमारे अवांछनीय अविश्वासका प्रमाण देते हैं। ऐसे अविश्वासके लिये कुछ भी कारण नहीं है। अतः पर्देकी नाशकारी प्रथाका सर्वथा बहिष्कार ही अनिवार्य है।

स्त्री-शिक्षा और राष्ट्र-निर्माण

केन्द्र एवं प्रान्तोंमें राष्ट्रीय सरकारोंके गठित हो जाने के बाद शिक्षा सम्बन्धी सुधारोंकी आशा करनी चाहिये और वस्तुतः युक्तप्रांत जैसे प्रान्तोंने इस दिशाकी ओर कदम उठाया है। आवश्यकता इस बातकी है कि स्त्री-शिक्षाके सुधार एवं प्रसारका प्रयत्न किया जाय। सुधारकी आवश्यकता इसलिये है कि अभी तक स्त्री-शिक्षाका जो स्वरूप है उसकी बहुत उपयोगिता स्त्री-समाजके लिये नहीं है। स्त्रियों और पुरुषोंके जीवन-क्षेत्रमें कुछ मौलिक अन्तर है। अतः उनके विभिन्न क्षेत्रोंके लिये उन्हें तैयार करनेके लिये उनके लिये विभिन्न पाठ्यक्रमकी आवश्यकता है। किन्तु वर्तमान शिक्षण-प्रणाली एवं पाठ्यक्रममें कोई विभेद नहीं रखा गया है। हमारा ख्याल है कि सामाजिक दृष्टिकोण से दोनोंके लिये उपयोगी पाठ्यक्रम निर्धारित करनेकी आवश्यकता है। तभी शिक्षाका उद्देश्य-साधन हो सकेगा। नारी भले ही समाजके विभिन्न क्षेत्रोंमें काम करे, किन्तु इस सत्यसे कोई इन्कार नहीं कर सकता है कि घरके भीतर उसके लिये जितना कार्य है, उतना बाहर नहीं। पाश्चात्य देशोंमें, जहां नारीके लिये किसी भी क्षेत्रमें जानेके लिये कोई प्रतिबन्ध नहीं है वहां भी—नारीका कर्मक्षेत्र अधिकांशतः घर ही है। गृहस्थीका सारा उत्तदायित्व, बच्चोंकी जिम्मेदारी उसीपर है। रूसमें नारी स्वाधीनता अपनी चरम सीमापर है, किन्तु वहां भी सरकार द्वारा वही नारियां पुरस्कृत होती हैं जो गृहस्थी एवं शिशु पालनमें सुदक्ष होती हैं। ऐसी दशामें भारतीय नारी को भी घर एवं बाहरके कार्यों में सामंजस्य स्थापित करके चलना पड़ेगा और जब उसके कर्तव्योंका क्षेत्र इस प्रकार निर्धारित हो जाता है, तब यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि उसी कर्मक्षेत्रके अनुसार उसकी शिक्षा भी होनी चाहिये। अभी तक हमारी शिक्षा पद्धति एवं पाठ्यक्रम इस तरह सामाजिक आवश्यकताके अनुसार निर्धारित नहीं होता रहा है। किन्तु युग एवं समाजकी आवश्यकताओंकी उपेक्षा अब हम नहीं कर सकते।

जिस प्रकार शिक्षा सुधारकी आवश्यकता है, उसी प्रकार शिक्षा प्रसारकी भी। देशकी शिक्षाका औसत बहुत कम है और स्त्री-शिक्षाका औसत और भी कम। नारी आज भी अशिक्षाके अन्धकारमें पड़ी हुई है। इसके कारण उसे बाहरी प्रकाशके दर्शन तो असम्भव ही हैं, वह गृहस्थीके कार्योंके लिये भी अयोग्य है। शिशु-पालन, गृहस्थी-संचालन, स्वच्छता-सफाई, बच्चोंका स्वास्थ्य एवं पोषण, यह सब ऐसे कार्य हैं जिनका महत्व केवल परिवारके लिये नहीं, समाज एवं राष्ट्रके लिये भी है। सबसे प्रथम और सबसे अधिक प्रभाव बच्चोंपर माताका और घरेलू वातावरणका पड़ता है। अतः स्त्री-शिक्षा और सही ढंगकी स्त्री-शिक्षाकी अत्यधिक आवश्यकता है। नारीको अशिक्षित रख कर राष्ट्र अपने भविष्यको अन्धकारपूर्ण बनाता है क्योंकि आजके बच्चे भावी कलके नागरिक है, और उनकी उपेक्षा अयोग्य नागरिकोंके रूपमें दिखायी पड़ेगी। इसलिये स्त्री-शिक्षाके लिये देशव्यापी योजना बननी चाहिये और कहना नहीं होगा कि यातायातके साधनोंके निर्माण एवं वैज्ञानिक आविष्कारोंसे भी अधिक महत्वपूर्ण विषय यह है। अशिक्षा जनित गृह-कलह एवं तज्जनित अशान्तिका निराकरण स्त्री-शिक्षाके व्यापक प्रसारसे ही सम्भव है। इस रूढ़िवादी देश में ऐसे लोगोंकी संख्या अब बहुत कम ही रह गयी है जो स्त्री-शिक्षाके विरोधी हैं। सम्भवतः ऐसे लोग भी उच्च शिक्षाके ही विरोधी हैं, स्त्री-शिक्षाके नहीं। इसलिये स्त्री-शिक्षा द्वारा राष्ट्रके निर्माणकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिये। राष्ट्रीय सरकारोंका पहला कर्त्तव्य होना चाहिये, किन्तु नागरिकोंका भी यह कर्त्तव्य है। सार्वजनिक शिक्षालयोंकी संख्या बहुत बढ़ जाय, यदि धनीमानी उदार नागरिक इस ओर ध्यान दें। तो क्या वे ध्यान देंगे?

—लीला सूद।



नयी हिन्दी कहानी

श्री पलायनवादी

कहानीका विकसित स्वरूप उपन्यास है और उपन्यासकी संक्षिप्त झांकी कहानी। दोनोंमें आदि और अन्तके तारतम्यका गुण वर्त्तमान है। कहानीकी दौड़ पलसे प्रारम्भ होकर कुछ ही घण्टों और बहुत बढ़े तो पखवाड़ेतक समाप्त हो जाती है। उपन्यास ठीक इसके विपरीत धीमी-धीमी चालसे विश्वासके कदम रखता हुआ युवासे वृद्ध और शैशव से युवावस्थाका तकाजा लिये कुछ कर दिखानेके लिये आ खड़ा होता है। इतना निश्चित है कि इसके पार्श्वका सक्रिय भावनात्मक गुण एक ही है। इस अर्थका निर्वाह करनेके लिये व्यक्तिको अपने सामाजिक उत्तरदायित्वके प्रति कर्त्तव्योन्मुख करना या उसकी सुप्त भावनाओंको जाग्रत करना जिनसे वह अवगत नहीं है, अत्यन्त आवश्यक है और वह भी ईमानदारीसे।

कलाके लिये कला और मनोरंजनके नारे आज उद्देश्यहीन-से प्रतीत होते हैं। कलाका अर्थ उसकी प्रचलित प्रथा, अनुभूतिकी अभिव्यक्तिका कल्पनामें असंगत रूपसे मिश्रण होना तथा रागात्मक प्रवृत्तियोंका उथला चित्रण और चाव से अपनाये गये टेकनीकके कारण नष्ट हो गया। कहानियोंमें प्रेमके गतिशील तत्वकी जो जोरदार लहर आयी उसका कोई प्रत्यक्ष फल नहीं हुआ। प्रेमी या प्रेमिकाको वास्तविक मृत्यु की अपेक्षा लेखककी भावुकताके कारण सस्ती मौत मर जाना पड़ा। 'देवदास' का पुनर्निर्माण न हो सका। दूसरी ओर सामाजिक उतार-चढ़ावसे उत्पन्न असंगतियोंने और जीवन से पृथक इस धाराने अपने उपेक्षित स्वरूपकी समाजके द्वारा मूर्त्त मांग की। सरिताके उद्गमकी छटा और सौंदर्य के महत्वकी सत्ताको मानते हुए भी उसमें बांधे गये बांधसे संचालित विद्युतकी गतिका मूल्य और उपयोग कहीं अधिक सत्य है। इसे आप असुन्दर भले ही कह लें; सत्य और शिव का उसमें पूर्ण समागम है तथा उसके तथागत विकासकी सम्भावना भी। इसका प्रसार भी केवल इसी दशामें हो सकता है। इसलिये कलामें सौंदर्य दृष्टिको इतना अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। कदाचित् कहानीका यह विषय भी नहीं है और न वह इसका क्षेत्र ही।

कथा साहित्यका अन्तर्जगत लेखककी मान्यताओं और अचेतनका चेतनके द्वारा पारस्परिक सम्बन्धोंको अपनाने एवं एकीकरण करनेका जो वाह्य स्वरूप लेकर आगे बढ़ता है उसमें जीवनके विवेचनात्मक क्रमिक विकासकी अपेक्षा एक गूढ़ विन्यास ही हम अधिक पाते हैं। कहानी कविताकी तरह कल्पनाकी ओर अग्रसर न होकर विध्वंसात्मक प्रवृत्तियोंको नष्ट कर रचनात्मक कार्य अधिक करती है। इसीलिये वह अधिक स्थायी होती है। कहानीके इस दोहरे स्वरूपका स्पष्टीकरण करना आवश्यक होगा। घटना स्वयं एक ठोस अथवा भौतिक और मूर्त्त सत्य है। उस तथ्यको शब्द चित्र-सा तटस्थ ही रख देना एक कुशल लैंड-स्केप चित्रकार

का परिचायक है। इससे आगे बढ़कर मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे देखें तो किसी भी प्रकारकी वस्तुकी मानवपर प्रतिक्रिया अवश्य होती है और उस प्रतिक्रियाको यदि लेखक अपनी कृतिमें व्याकरणके अन्य पुरुषमें कथाके गौण या प्रमुख पात्र के द्वारा प्रस्तुत करता है, जिसमें लेखककी स्वयंकी अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है तो उसकी कृतिका माध्यम अधिक तीव्रतर होगा और कथा-साहित्यका यही स्वरूप हमारे यहां अधिक लोकप्रिय-सा हो गया है। घटनाके साथ लेखक स्वयं कितना वास्तवमें सम्बन्धित हो जाता है और उसकी व्यक्तिगत तथा सामाजिक भावनाओं और परम्पराओं तथा आदर्शोंका आदान-प्रदान कितना घनीभूत हो जाता है। इसका दिग्दर्शन उपर्युक्त कहे गये प्रकारसे नहीं हो सकता। केवल प्रेमचन्दजी ही एक ऐसे कहानीकार थे जिनपर यह बात लागू नहीं होती। लेखक अपनेसे विभिन्न प्रकृतिके पात्रका निर्माण करके उसके द्वारा उन सब भावोंको उसे कठपुतली बनाये बगैर व्यक्त नहीं कर सकता और यदि वह ऐसा करता है तो कथा साहित्यकी नींवको ठेस पहुंचती है। यदि वह आत्मपक्ष को लेकर घटनाके साथ चलता है तो वह अधिक विचारात्मक और कहानीके मान्य प्रसाद गुणसे दूर हो जाती है। जैनेन्द्रकी कहानियोंके साथ बहुत कुछ यही हुआ है। विचारोंसे बोझिल उनके पात्र दार्शनिक ध्रुवयात्रा कर 'वातायन' से गिरकर फिर उठनेमें समर्थ नहीं होते हैं। जैनेन्द्रकी आत्मचेतना सीधी और सरल हैं, अज्ञेयकी तरह दुरूह, गम्भीर और प्रश्नात्मक नहीं। इस विभिन्नताका मूल कारण अज्ञेय का विस्तृत कैनवास है। जैनेन्द्रके केनवासमें व्यक्तिका बौद्धिक मस्तिष्क और नाना प्रकारके विचार अधिक हैं और अज्ञेयका केनवास लोक परम्परासे आयी आदर्श-भावना, धर्म और कर्त्तव्यका द्वन्द्व तथा ऐतिहासिक चेतनाकी क्रांति से बना है। 'विपथगा' के पात्रोंकी दृष्टि पहाड़ीकी तरह 'छायामें' टमाटर आलूके खेतोंमें किसी शोध या अन्वेषणके लिये नहीं ठहरती, न 'बयाका घोंसला'ही उनके लिये काफी है। सियारामशरणका सीधे-साधे पात्रों द्वारा ग्राम संस्कृतिका निर्माण, वृन्दाबनलाल बर्माका सामाजिक क्षोभ, इलाचन्द्र जोशीकी 'रोमांटिक छाया' की मूल भावना या दीनानाथ व्यासकी 'जीवनकी झलक'के पात्रोंसी आसान मौत कदाचित उनको नहीं सुहाती। यशपालकी क्रान्तिसे उनका मोह हो सकता है। 'परम्परा'की कहानियां मेरे इस कथनको पुष्ट करेंगी। 'परम्परा' शीर्षक कहानीकी घटनाओंका चाक जिस कोमलतासे उठाया गया है वह वास्तवमें हिंदी साहित्यको शेखरकारकी एक देन है।

प्रसादजीकी कहानियोंकी सजीवताका शिलान्यास ऐतिहासिक घटनाओंके प्रस्तर स्तम्भोंसे दृढ़ किया हुआ है। पुरातन वैभव नूतनताको शक्ति तथा गति प्रदान करता है फिर भी आजके युगके प्रतीक तथा वातावरण ही बदल गये हैं। इसलिये उनमें सौंदर्यकी स्वस्थ चेतनासे शराबोर नायक देखनेको नहीं मिलते जो आजके कुछ काल पूर्व थे। वर्त्तमान केवल उपहास, अट्टहास और व्यक्तित्वकी कुचली हुई सांसें भरता संघर्ष तथा युद्ध जनित परिस्थितियोंसे जूझ रहा है। भावीकी कल्पनामें दृष्टिगत वस्तुस्थितिके संस्कार ढीले पड़ जाते हैं। 'पिंजरेकी उड़ान' से देखना शुरू कीजिये कई किंकर्त्तव्यविमूढ़ और क्रांतिकारी शक्लें आपको धूएंमें काम करती नजर आयेंगी, जो स्वयं स्थायी न हों पर उनका कार्य समाजको गति दे रहा है। यशपालका मन्तव्य वस्तुस्थिति और घटनाका निश्चित क्रम तथा संघर्षके साथ तीव्रतम स्थितिपर घसीटा चला जाता है और कभी-कभी तो पात्र को 'देशद्रोही' की भांति उल्टे पांव घटनाके पीछे भागना पड़ता है। उसमें चारित्रिक कमजोरियां अवश्य हो सकती हैं, दृश्य विशेषकी कमियां नहीं। कथानक वार्तालापसे अधिकतर आगे बढ़ता है। उनके पात्रोंको परम्परा या पैतृक अंशमें विश्वास नहीं होता।

अंचलका 'ये वे बहुतेरे' कुछ मानोंमें उग्रके स्कूलका सुधरा संस्करण है। उसके पात्र भरी जवानी ले रंगरूप, मुखाकृतिका विचार करते निश्चित दिनचर्यामें प्रवृत हो जाते हैं। समाजकी आलीशान बिल्डिगें और पूंजीपतियोंको ध्वंस करनेकी इच्छाएं भभक-भभक उठती हैं। उसमें ईथरका-सा वेग है। श्रीराम शर्माके आखेटका चाव नहीं। उनका दृष्टिकोण अधिक तीव्र और सजगतासे समाजमें अपनी स्थितिको देखता रहता है, जो कभी-कभी नाटकीय प्रहसन करती नजर आती हैं। चतुरसेन शास्त्री की चुटकियोंका-सा आलोक भी उनमें छनता रहता है। भगवतीचरण वर्माका उपन्यास 'चित्र लेखा' और

राहुल जी का 'वोल्गासे गंगा' में जिस प्रकार आदर्शों का द्वन्द्व और समन्वयकी समस्या और Tribes से लेकर हमारे आज तकके नैतिक विकासके इतिहासकी प्रतिध्वनियां हैं वही बात इनकी कहानियोंके साथ भी लागू है। राहुल जी की कहानियोंमें प्रकाशचन्द्र गुप्तके द्वारा लिखे गये स्केचेज की तरह की एक चेन-सी मिलेगी। पौराणिक युग के पात्रोंकी उपयोगितामें उनकी आस्था स्थिर नहीं है। कहानी-कलाके अन्य गुण लेखकके मन्तव्यमें छिप जाते हैं। पर उनका घटनाको पेश करनेका ढंग अपना ही है जो रोचकताको जाने नहीं देता। कहीं-कहीं पात्र थलयुद्ध करतेसे प्रतीत होने लगते हैं। वास्तवमें हिन्दीके कहानीकारोंने पात्रकी आयु, वातावरण और काल व्यक्तिक्रमपर अभी समुचित ध्यान नहीं दिया है। उनका यह विश्वास कि 'प्लाट' ही पर सब कुछ है निराधार है, गलत है। किसी घटना या प्लाटके बिना भी सशक्त कहानीकार अपना मन्तव्य प्रकट कर सकता है। उसमें केवल मन्तव्य ही होगा, पात्र केवल बुदबुदोंकी तरह आते और मिटते रहेंगे। इस अभावका मुख्य कारण नवीन प्रवृत्तियोंको नहीं अपनाना ही है। एक बार जो प्रथा चल पड़ती है हम उसके इतने पीछे पड़ जाते हैं कि वह रूढ़ि बनकर घिस जाय और तब कहीं उसे त्याग दिया जाय। इसी कारण शैली सामयिक हो जाती है और हमारे साहित्यमें उतने स्कूल देखने को नहीं मिलेंगे जितने इतर साहित्य में। उनके पात्र हमारी सामयिक विकृतियोंके ध्वंस और निर्माणके उगते हुए पौधे हैं। उनमें उतना ही यथार्थ है जितना पदुमलाल पुन्नालाल बख्शीकी आत्म-कहानियों में। दुनियाको बदलो यही ध्वनि है।

वीरेन्द्र कुमारका दृष्टिकोण जैनेन्द्रकी दार्शनिकताका दूसरा पहलू है जो सहृदयताकी लहरोंसे सिंचित है। मानव धर्म और अहिंसा उसके प्राण हैं। इसकी ही देन हमारे समाजके आत्म प्रपीड़क व्यक्ति हैं। 'आत्म परिणय' के पात्रोंमें सहृदयतासे प्रेरित होकर सेवा-धर्मसे कर्म करनेका उदाहरण और आप अन्यत्र नहीं पा सकेंगे। व्यक्तित्वका समुचित विकास मानों उसीमें भरा हो। अनुभवमें आत्म-बोधका बोझ है जो 'वह पत्थर की तरह सत्य और ठोस है। हिंदी-कथा-साहित्यमें देश-प्रेमसे युक्त राष्ट्रीय कहानियां सामाजिक उतार-चढ़ावका अंकन, हास्यका पुट और मनोविज्ञानकी धारा भी काफी प्रगति कर रही है। फिर भी जिस संघर्षमें से हम गुजर रहे हैं और युद्ध कालीन चित्रके कथानक देखनेको नहीं मिलते। जीवन और मरणके भेद खोलनेवाले कुछ पात्रोंका चित्रण स्वर्गीय कौशिक जी ने अवश्य किया था। 'संगीनोंका साया' ने कुछ हद तक कथा साहित्यकी इस न्यूनताकी पूर्ति की है। उनमें अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिके पात्रोंका सृजन हुआ है, इसका मूल कारण प्रभाकर जी माचवेका अध्ययन तथा जन-सम्पर्क है। कहानियोंमें व्यंग्य भी काफी सुन्दर-सा होता है। पात्र उच्च मध्यवर्ग के टिपिकल व्यक्ति होते हैं। पात्रोंकी भाषा ठेठ हिन्दी ही नहीं होती है न वे एक शहर या गांवमें ही घूमा करते हैं इसलिये लेखक दृश्य विशेषके बिना भी उद्देश्यको मनोविज्ञान या चित्रकारीके द्वारा निबाह लेता है।

'भीगी रात' की कहानियोंकी अपनी विशेषता है राजेन्द्र सक्सेनाका वाह्य दृष्किोण समाजके प्रति अधिक समवेदनशील है। जरा सी घटनाके बलपर कहानीके पात्र इधर-उधरके चौराहेसे निकलकर एकत्रित होते तजर आते हैं जैसे किसी सिनेमाका शूटिंग प्रारम्भ होनेवाला हो। बालक और बूढ़ोंसे उनका इतना मोह नहीं मिलता। बोर्डरवाली साड़ियां पहने हुई युवतियोंसे हैं। रंग आपको विशेष प्रिय हैं। कहानियोंमें पात्रोंका प्रेम अभिनय केवल दृश्य-विशेष के स्थानपर लिया जाता रहा है, ऐसा लगता है। कुछ हदतक भावुक हृदयोंको वह अपनी ओर आकर्षित कर सकें ऐसा प्रसाद गुण भी उनमें विद्यमान है। कहानीके अन्तमें कोई दावा करना या राय पेश करनेकी अपेक्षा उसका भार 'कन्या-विवाहकी तरह पाठकपर ही छोड़ दिया जाता है। गार्हस्थ जीवनके उत्तरदायित्वसे बरी उनके युवक पात्र सड़कों पर 'आवारा'की तरह कहीं पर मिल जायेंगे और युवती-पात्र मातृत्वकी भूखले किसी ओर कारण-अकारण खिचती जान पड़ेगी। उनका यह खिचाव बहुधा शैशव कालीन विद्याभ्यासके समयकी स्मृतिको लेकर होता है। प्रेमका प्रदर्शन इतना अस्वस्थ नहीं है जितना अन्यत्र देखा जाता है। चूहा' धर्म, कर्तव्य और समाजकी सीमाओंका उल्लंघन नहीं करता और इसी कारण उसको इस तरहके दिन काटने पड़ते हैं। यह नम

सत्य काफी तीखा और शोषण-चक्रके विधानका एक नमूना है। राजेन्द्रका दृष्टिकोण प्रारंभ होकर विभिन्न रंगोंको लिए बन रहा है और इसी कारण उनसे बहुत कुछ सम्भावनाकी जा सकती हैं।

हमारे देशके इतिहासमें जिस संक्रांति-कालकी झलक है, साहित्यमें उसकी मीमांसा नहीं। भाव हैं, कर्म नहीं, और यही अकर्मणयता हमारे आन्तरिक विद्रोह तथा ग्रंथियोंको सुलझा नहीं पाती प्रगतिकी चाहमें हम जर्जर संस्कृतिको नष्ट कर देना अवश्य चाहते हैं, पर उसके निर्माणकी नींवका अभी कोई उप-क्रम नहीं इसीलिए डर लगता है कि वे घरबार नहीं हो जांय। खंडहरके प्रतीकसे यदि संतोष है तो कहना पड़ेगा हम अभी भी भ्रममें हैं, हमारी प्रवृत्ति पलायनकी ओर अग्रसर और उसकी चेतना उन्मुख नहीं हो पायी है। अभ्यास और खोजके सम्मिश्रणसे उद्‌भूत रंगमें न तो स्थायित्व है और न आशा। उसके इस विकृत स्वरूपसे सत्य शिव, सुन्दर कला और मनोरंजन किसीकी भी अभिवृद्धि नहीं हो सकती केवल जन सम्पर्कके अध्ययन पर हमें विश्वास हो सकता है और उसीमें जीवित रहनेकी शक्तिके स्वस्थ बीज भी हैं, जिनका पोषण' अनिवार्य है। इसे चाहे आप तलवारसे कर सकते हैं या कलम से।

समालोचना

जड़की बात—लेखक श्री जैनेन्द्र कुमार, प्रकाशक हिन्दी मन्दिर, प्रयाग। सजिल्द छपाई-सफाई साधारण। पृष्ठ संख्या २१५, मूल्य २॥)

प्रस्तुत पुस्तक जैनेन्द्रजीके १६ लेखोंका संग्रह है। पैसा, राष्ट्रीयता, धर्म, युद्ध, न्याय, गांधीनीति आदि अनेक विषयोंपर लेखकने अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके सभी विचारोंसे सहमत होना असम्भव है, पर उनकी लेखन-शैली और मन्तव्य विचारोत्पादक हैं। कुछ ऐसे विषयों पर भी लेखकने अपने मनन एवं अध्ययनपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं, जिनकी लोग साधारणतः उपेक्षा करते हैं। हिन्दीके पाठक इन निबन्धोंके अध्ययनसे लाभान्वित होंगे।

माटीकी मूरतें—लेखक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रकाशक पुस्तक-भण्डार पटना, सजिल्द, छपाई-सफाई सुन्दर, पृष्ठ संख्या १०४, मूल्य ३)

बेनीपुरीजी प्रगतिशील और विचारशील लेखक हैं और अपनी निजी लेखन-शैली रखते हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें उनकी ११ कहानियां संग्रहीत हैं, जिनमें समाजके उस स्तर एवं श्रेणीके व्यक्तियों—बल्कि कहना चाहिये—व्यक्तित्वका चित्रण है, जिन्हें समाजमें अभी उपेक्षणीय ही माना जाता रहा है। बेनीपुरीजीकी कुशल लेखनीने इन माटीकी मूरतों को अत्यन्त आकर्षक बना दिया है। अपने पाठकोंसे हम इस पुस्तकको पढ़नेका अनुरोध करेंगे।

सन् बयालीसका विद्रोह—लेखक श्री गोविन्द सहाय एम०एल०ए० भूमिका लेखक—श्री जयप्रकाश नारायण, प्रकाशक नवयुग सहित्य सदन इन्दौर, सजिल्द, छपाई-सफाई सुन्दर, पृष्ठ संख्या ३४३, मूल्य ६॥)

प्रस्तुत पुस्तकमें, जैसाकि इसके नामसे ही स्पष्ट है, लेखकने १९४२ के अगस्त-आन्दोलनका इतिहास लिखा है। अगस्त-आन्दोलनका महत्व भारतीयोंके लिये समझानेकी आवश्यकता नहीं है। लेखकने यथासाध्य तथ्यों एवं आंकड़ोंका संकलन करनेका प्रयत्न किया है और इस विषय पर हिन्दीमें यह पहला प्रामाणिक एवं सफल प्रयास है। ब्रिटिश भारतके विभिन्न प्रान्तोंके आंदोलनके अतिरिक्त देशी राज्योंके तद्विषयक आंदोलनका इतिहास भी पुस्तकमें है। पुस्तकके अन्तमें अनेक नक्शे दिये गये हैं, जिनके कारण पुस्तककी उपयोगिता और भी बढ़ गयी है।

उपमन्यु वंशावली—लेखक श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, प्रकाशक—उपेन्द्र नारायण वाजपेयी, पत्थर गली, काशी। छपाई-सफाई साधारण, पृष्ठ संख्या २०१,

पुस्तकका विषय नामसे ही स्पष्ट है। प्रारम्भमें वाजपेयीजीकी विद्वत्तापूर्ण भूमिका है और अन्तमें विशाल कुर्सीनामा। इस विषयके जिज्ञासुओंके लिये पुस्तक बड़े कामकी है।



अखिल एशीया सम्मेलन—

नयी दिल्लीमें विगत २३ मार्चको अखिल एशिया-सम्मेलनका अधिवेशन श्रीमती सरोजिनी नायडूकी अध्यक्षतामें हुआ। पण्डित जवाहरलाल नेहरूने सम्मेलनका उद्घाटन करते हुए अपने सहज ओजस्वी स्वरमें विश्व-शांतिके प्रयत्नोंमें एशियाई राष्ट्रोंके योग-दानकी अनिवार्य आवश्यकता एवं उसका महत्व बताते हुए कहा किः—

"विश्व इतिहासके इस संक्रांतिकालमें एशियाको निश्चय ही महत्वपूर्ण भाग लेना है। एशियाई देशोंका उपयोग अब कोई भी अपने स्वार्थ-साधनके लिये नहीं कर सकता। विश्वकी समस्याओं पर अब उनकी अपनी नीति होगी। यूरोप और अमेरिकाने मानव प्रगतिमें अत्यधिक योगदान दिया है और इसके लिये हमें उनका सम्मान और सराहना करनी चाहिये। किन्तु पश्चिमने हमें असंख्य युद्धों एवं संघर्षोंमें भी घसीटा है और आज भी एक भीषण युद्धके पश्चात् भी इस अणु-युगमें पुनः युद्धोंकी बात चल रही है। इस अणु-युगमें एशियाको विश्व-शांतिके लिये प्रभावशाली कार्य करने होंगे।"

नेहरूजीके उक्त शब्द एशियाकी परम्परागत शान्ति एवं मानववादी विचारधाराके अनुरूप ही हैं। एशियाने अपनी इस आस्थाके लिये यथेष्ट बलिदान चढ़ाया है। प्रथम एवं द्वितीय महायुद्धोंमें विश्व-शांति तथा गणतन्त्रकी स्थापनाके लिये सभी एशियाई राष्ट्रोंने युद्ध किया, किन्तु युद्धोपरान्त न तो शांतिकी सम्भावनाएं हीं उत्पन्न हुईं और न तो गणतन्त्रकी प्रतिष्ठा हुई। जिस अटलांटिक घोषणाके आधार पर चार स्वाधीनताओंकी प्रतिष्ठा ब्रिटेन और अमेरिकाने की थी, उनमेंसे एकके भी उपभोग करनेका अधिकार स्वेच्छापूर्वक किसी भी एशियाई राष्ट्रको नहीं प्राप्त हो रहा है। नात्सीवादके पराजयके पश्चात् एशियाई राष्ट्रोंको विभिन्न साम्राज्यवादी देशोंसे युद्ध-रत होना पड़ रहा है। पराधीन एशिया विश्व-शांतिके लिये भी एक खतरा है, अतः समस्त एशियाई राष्ट्रों पर यह उत्तरदायित्व है कि वे संयुक्त हों, शक्ति-सम्पन्न हों और स्वाधीन हों। एशिया सम्मेलन इसी की ओर संकेत करता है।

वावेल बनाम माउण्ट बेटेन—

वायसराय लार्ड वावेलका प्रस्थान और उनके स्थानपर माउण्ट बेटेनका आगमन यह दोनों घटनाएं साधारण कही जातीं, यदि देशकी स्थिति आज असाधारण न होती। लार्ड वावेलका शासनकाल भारतीय राजनीतिके इतिहासमें प्रगतिशीलताके नाते उल्लेखनीय रहेगा और ब्रिटिश सरकार की घोषणाके अनुसार यदि जून १९४८ तक ब्रिटेन भारत छोड़ देता है तो साधारणतः लार्ड माउण्ट बेटेन भारतके अन्तिम वायसराय होंगे। इसलिये उनके सामने अनेक महत्वपूर्ण कार्य हैं। ब्रिटिश सरकारने सत्ता हस्तान्तरित करनेके सम्बन्धमें जो घोषणा की है, उसकी प्रतिक्रिया विभिन्न रूपोंमें हुई है और इसके कारण भी नये वायसरायका उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया है। हस्तान्तरित सत्ता ग्रहण करनेके लिये जो इकाइयां तैयार हो रही हैं, उनमें पारस्परिक सामञ्जस्य नहीं है और उनके मनोभाव परस्पर विरोधी एवं संघर्षशील हैं। केन्द्रीय सरकारकी स्थिति और भी जटिल है और लार्ड वावेलके नैतिक साहसके अभाव ने लार्ड माउण्ट बेटेनके कार्यको और भी कठिन बना दिया

है। लीग विधान परिषदमें नहीं जाना चाहती किन्तु केन्द्रीय सरकारमें बनी रहना चाहती है। यह विषम स्थिति है और नये वायसरायपर इसके निराकरणका उत्तरदायित्व है। लीगका यह भी राजनीतिक अधः पतन है कि अन्तः-कालीन सरकारको ब्रिटिश सरकार तो औपनिवेशिक पद देनेको तैयार है पर लीग उसे वायसरायकी शासन परिषद ही बनाये रखना चाहती है। मन्त्रिमण्डलके संयुक्त उत्तरदायित्वको भी लीगी सदस्य स्वीकार करना नहीं चाहते। अतः नये वायसरायको उक्त वैधानिक जटिलताओं के निराकरणके लिये तत्काल प्रयत्नशील होना चाहिये। शपथ ग्रहणके अवसरपर वायसरायने देशकी साम्प्रदायिक स्थितिके सम्बन्धमें भी कुछ संकेत किये हैं और इसके लिये उन्होंने प्रयत्नशील होनेका आश्वासन दिया है। प्रत्यक्षतः पुराने वायसराय तद्विषयक अपने कर्तव्यका पालन करनेमें सफल नहीं रहे और इसके लिये १९३५ के शासन विधानकी दुहाई देना व्यर्थ है, अतः नये वायसरायकी तद्विषयक तत्परता सराहनीय कही जायेगी यदि वस्तुतः उन्हें अशांतिके मूलोच्छेदमें सफलता मिल सके। साम्प्रदायिक अशान्तिका श्रोत कहां है, यह उनपर विदित हो जायगा और जिस सद्भावनाके लिये उन्होंने भारतीय जनतासे अनुरोध किया है, वह उन्हें स्वतः प्राप्त हो जायेगी, यदि वे साम्प्रदायिक उपद्रवोंके कारणोंका सर्वथा निराकरण करनेमें सफल हो सके।

मद्रासमें नया मन्त्रिमण्डल—

नये प्रान्तीय निर्वाचनके सिलसिलेमें मद्रासमें कांग्रेसी व्यवस्थापकों एवं उनके नेताके निर्वाचनके सम्बन्धमें जैसी घटनाएं घटीं और पिछले कुछ दिनोंसे घटनाएं जो स्वरूप पकड़ती जा रही थीं, उनके परिणाम-स्वरूप मद्रासमें प्रकाशम्-मन्त्रिमण्डलका पतन हुआ और नये मन्त्रिमण्डलका गठन हुआ। आचार्य कृपलानी भी उस समय 'दर्शक' की हैसियतसे उपस्थित थे और दृश्य था भी वास्तवमें दर्शनीय। मद्राससे बाहरके कितने ही लोगोंकी दिलचस्पी प्रान्तके नेतृत्वमें जितनी थी और जितने कारणोंको लेकर—जिनमें श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य एक प्रधान कारण थे—उनकी दिलचस्पी थी, उन सबको देखते हुए मद्रासमें नये मन्त्रिमण्डलका दृश्य निश्चय ही दर्शनीय था। किन्तु रंगमंच पर जो अभिनय हुआ, उससे अधिक दर्शनीय नाटक तो पृष्ठ-भूमिमें हुआ, जिसे देखनेके सौभाग्यसे कितने ही वंचित रहे यद्यपि नेपथ्यसे आनेवाली आवाजें कुछ अधिक स्पष्टतासे सुनायी पड़ गयीं और अन्तिम आवाज राजाजीकी आयी, सुदूर दिल्लीसे, रेड्डीको बधाईके रूपमें! खेद है हम इस बधाईमें सम्मिलित होनेमें असमर्थ हैं। श्री प्रकाशम्के धैर्य, सन्तोष एवं सौजन्यकी हम सराहना करेंगे कि उन्होंने उक्त नाटकके अवांछनीय दृश्यों पर अपने ही बलिदानसे परदा डाल दिया। उनके इस कार्यसे कांग्रेसकी प्रतिष्ठाकी वृद्धि हुई है।

मास्को-सम्मेलन—

युद्धोपरान्त होनेवाले वैदेशिक सचिव सम्मेलनोंमें विभिन्न राष्ट्रों परराष्ट्र मन्त्रियोंके जैसे कूटनीति युद्ध चलते रहे हैं उनकी पुनरावृत्ति इस समय मास्को वैदेशिक सचिव सम्मेलनमें हो रही है। ट्रीस्टके प्रश्नपर विभिन्न राष्ट्रोंमें जैसा मतभेद था, उससे भी अधिक मतभेद जर्मनी के प्रश्नपर है। जर्मनीके आर्थिक पुनर्गठनको लेकर ब्रिटेन, अमेरिका और रूसके विचारोंमें जैसा असामञ्जस्य प्रकट हो चुका है, उससे भी उत्कट असामञ्जस्य जर्मनीके राजनीतिक पुनर्गठनके प्रश्नपर है। अगर उनमें न्यूनतम मतभेद किसी प्रश्नपर है तो इसपर कि पराजित जर्मनीको इस प्रकारकी व्यवस्थाओंकी श्रृंखलामें आबद्ध कर देना कि दीर्घकाल तक वह सामरिक संगठनके योग्य न रह जाय। किन्तु विजेता राष्ट्रों में जर्मनीके अन्यान्य सभी प्रश्नोंपर जो मतभेद है उसके कारण उनमें पारस्परिक अविश्वासोंकी सृष्टि हो रही है, अथवा पारस्परिक अविश्वासोंके कारण उनमें मतभेद है, अथवा यह दोनों ही एक दूसरेपर निर्भर हैं या सम्भवतः दोनों ही एक दूसरेके लिये कारण उत्पन्न करते हैं। कारण जो भी हो, किन्तु तथ्य स्पष्ट है कि विजेता राष्ट्र युद्ध समाप्त होते ही पारस्परिक अविश्वासों एवं अपने स्वार्थों के संरक्षणकी प्रेरणासे प्रेरित हो रहे हैं और अन्तर्राष्ट्रीयता को उन्होंने तिलांजलि दे दी है। अपने अभ्युदयकालमें हिटलर कहा करता था और रूसपर आक्रमण करनेकी घोषणा करते हुए हिटलरने इसे दुहराया भी था कि यदि जर्मनी में साम्यवादकी प्रतिष्ठा हुई तो सारा यूरोप साम्यवादी हो जायगा। विजेता राष्ट्रोंने यद्यपि हिटलरका विनाश

कर दिया, किन्तु नात्सीवादसे वे अब भी आतंकित हैं और उनके आतंकका प्रमाण ब्रिटेन और फ्रांसके उस समझौतेमें मिलता है जिसपर पिछले दिनों डङ्कर्कमें हस्ताक्षर हुए हैं और जिनमें इस प्रकारकी व्यवस्था की गयी है कि अगले पचास वर्ष तक जर्मनीका अभ्युदय न हो सके। क्या आश्चर्य है यदि ब्रिटेन और अमेरिका बर्लिनपर रूसी प्रभुत्व एवं उसके निकटवर्ती अंचलोंपर रूसी नियंत्रणमें हिटलरकी कल्पनाके अनुसार ही साम्यवादके प्रचारसे आतंकित हों। यूरोपके कितने ही अंचल रूसी प्रभाव क्षेत्रमें आ चुके हैं। यह भी एक आधार है जिसपर ब्रिटेन और अमेरिका आशंकित हैं। यह सभी मनोभाव हैं जो मास्को सम्मेलनमें विभिन्न रूपोंमें अभिव्यक्त हो रहे हैं। ऐसी स्थितिमें उसकी सफलता सन्देहास्पद है और यदि ऊपरसे प्रयत्नों द्वारा धूल डालनेमें सफलता मिल भी जाय तो वह चिरस्थायी न होगी और अन्ततोगत्वा उसके परिणाम विश्वशांतिमें सहायक होंगे, यह सन्देहसे परे नहीं है।

पंजाबकी विनाशलीला—

पथ-भ्रष्ट नेताओंकी पतित राजनीति एवं अनैतिक नेतृत्व द्वारा जिस विष-वृक्षका बपन किया जाने लगा था, उसके कुफल दिखायी पड़ने लगे हैं। जिस किसी भी दल, जिस किसी भी नेता और जिस किसी भी कारणसे निरीह जनताका बध हो रहा है और अतुल सम्पत्तिकी आहुति दी जा रही है, उसकी निन्दाके लिये शब्द पर्याप्त नहीं हैं। किनके द्वारा और किन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये निरीह प्राणियोंका वध कराया जा रहा है? संक्रांतिकालमें किसी भी देशमें गृहयुद्धोंकी सम्भावना हो सकती है, किन्तु पंजाबमें पिछले दिनों जो नारकीय दृश्य उपस्थित हुए हैं, उन्हें क्या गृहयुद्ध कहा जायगा? क्या वे कोरे धार्मिक उन्माद एवं अन्ध साम्प्रदायिकताके ही परिणाम नहीं है? कितने ही हजार व्यक्तियोंका खून और कितने ही करोड़की सम्पत्तिका विनाश! पंजाबके विदेशी गवर्नर जेकिन्स—जिनके हाथमें साम्प्रदायिक उपद्रवोंके दिनोंमें शासनसूत्र था—क्यों करें पंजाबके निरपराधोंके हत्याकाण्ड पर मर्मपीड़ाका अनुभव? और कैसे करें वे हमारी दयनीयता पर वेदनाकी अनुभूति? लेकिन पंजाबकी जनताको गुमराह करनेवाले नेताओंने, जिन्होंने ऐसे रक्तपातके लिये परिस्थिति उत्पन्न की, क्या उन नारकीय दृश्योंको देखनेके बाद भी चेतना ग्रहण की? मलिक सर खिज्रहयात खांकी दूरदर्शिताकी प्रशंसा करनेमें हम असमर्थ हैं कि उन्होंने प्रांतीय व्यवस्थापिकामें बहुमत रखते हुए और अपने मन्त्रिमण्डलमें प्रांतके सभी सम्प्रदायोंका प्रतिनिधित्व रहते हुए भी अकस्मात् अपने मन्त्रिमण्डलके त्यागका निश्चय कर लिया। मुसलिम लीगियोंके उपद्रवोंसे घबरा कर इन्होंने ऐसा किया यह तो स्पष्ट है किन्तु जिस नैतिक साहस-हीनताका परिचय उन्होंने अपने उक्त कार्य द्वारा दिया, वह भी स्पष्टतर है। मन्त्रिमण्डलके पतनकी प्रतिक्रिया इतने व्यापक और इतने विनाशकारी रूपमें होगी, सम्भवतः इसकी कल्पना भी उन्हें न हो सकी हो, किन्तु जिस प्रकार प्रान्तके विभिन्न अंचलोंमें आगकी लपटें प्रबल वेगसे बढ़ीं और प्रांतव्यापी हुईं, उनसे स्पष्ट है कि बारूद राखके नीचे ही ढंकी थी और विस्फोटक घड़ी निकट थी। पंजाबमें जो कुछ हुआ उससे सभी राष्ट्रवादियोंकी आखें खुल जानी चाहिएं और साथ ही जनताको सचेत हो जाना चाहिये। उसे सतर्क हो जाना चाहिये पथ-भ्रष्ट नेतृत्व और अनैतिक लक्ष्यसे। सर्वत्र साम्प्रदायिक उपद्रवोंमें सर्वहाराका ही सर्वनाश होता है, तो क्या साम्प्रदायिक उन्मादका निराकरण करनेमें उसे सचेष्ट होनेका अवसर अभी नहीं आया? अभी कबतक साम्प्रदायिक विष हमारी राष्ट्रीयताको दूषित रखेगा?

हड़तालकी महामारी—

देशके विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रोंमें आर्थिक वैषम्यसे उत्पन्न श्रमिकोंके असन्तोषका परिणाम असंख्य हड़तालोंके रूपमें दिखायी पड़ रहा है। जनताकी दैनिक आवश्यकताओंके अभावकी पूर्ति उत्पादनके अभावमें अभी तक नहीं हो सक रही है और उधर हड़तालोंके कारण उत्पादनकी कठिनाइयां और भी बढ़ गयी हैं। परिणाम यह है कि उपभोक्ताओंके कष्ट उत्तरोत्तर बढ़ते ही जा रहे हैं। श्रमिकोंके आर्थिक असन्तोषका निराकरण समुचित प्रणाली द्वारा करना अनिवार्य है, किन्तु विवेकहीन हड़तालोंका बात-बातमें आश्रय ग्रहण करना नितान्त अवांछनीय है और हड़तालने आज जो महामारीका रूप धारण कर रखा है, उससे जनता

की असुविधाएं इतनी बढ़ गयी हैं, कि उनके प्रति उसमें सहानुभूतिका अभाव देखा जा रहा है। भारतके कितने ही शहरोंमें यातायातके साधनोंसे सम्बद्ध श्रमजीवियोंने भी हड़ताल कर रखी है और कलकत्तेमें इस महामारीका व्यापक प्रसार हो चला है, अतः साम्प्रदायिक अशांति तथा अन्यान्य कारणोंसे उक्त हड़तालें और भी अवांछनीय स्थिति उत्पन्न कर रही हैं। नेता अपने नेतृत्वके मोहमें, श्रमिकोंको असन्तुष्ट करके अपने नेतृत्वके खो जानेका खतरा नहीं उठाना चाहता, इसलिये वह मौनावलम्बन किये बैठा है। जब स्पष्ट पथ-प्रदर्शनकी आवश्यकता है, तब वह अपनी ख्याति और नेतृत्वकी सुरक्षाके लिये अधिक चिन्तित है। उद्योगपति श्रमिकोंकी कमाई छीन कर अपना स्वार्थ-साधन करें, यह व्यवसायिक दृष्टिसे भी अधःपतन कहा जायगा, किन्तु श्रमिक कोरे संगठन द्वारा समझौतेका आश्रय छोड़कर विवेकहीन हड़तालोंको ही एकमात्र अपना मार्ग समझें, यह भी अनेक दृष्टियोंसे अवांछनीय ही कहा जायगा। अतः आवश्यकता सामंजस्य एवं समझौतेकी भावना की है और यह अनिवार्य आवश्यकता है।

इण्डोनेशियासे समझौता——

अन्ततोगत्वा हालैण्डको इण्डोनेशियासे समझौता करना ही पड़ा। नवम्बरमें इण्डोनेशियाने हालैण्डकी सद्भावनापर विश्वास प्रकट करते हुये समझौतेमें भाग लिया था किन्तु बादको हालैण्डकी पार्लमेंटमें कुछ साम्राज्यवादी सदस्योंने उसका तीव्र विरोध किया, फलतः जो गतिरोध हुआ, उसमें दोनों दलोंके धन-जनकी क्षति हुई। इण्डोनेशियाने अपनी स्वाधीनताके लिये जैसा दृढ़ संकल्प प्रकट किया और उसे कार्यान्वित करनेके लिये उसने जिस प्रकार प्राणोंकी बाजी लगायी उसे देखते हुये हालैण्डकी मूर्खता ही थी कि उसने सामरिक शक्तियों द्वारा उसकी अजेय आत्मापर नियंत्रण करनेका विफल प्रयास किया। सारे एशियाने साम्राज्यवादी कुचक्रोंको विफल करनेका जैसा निश्चय किया है, उसमें हालैण्डको देरसे ही सही, इण्डोनेशियासे समझौता करनेकी सुबुद्धि आयी, यह संतोष की बात है। इस समझौते द्वारा हालैण्डने इण्डोनेशियाके वर्तमान प्रजातन्त्रपर अपनी स्वीकृति दी है और वहांकी वर्तमान सरकारको इण्डोनेशियाका वैधानिक शासक न मानते हुए भी वास्तविक रूपमें उसको शासक स्वीकार किया है। समझौतेकी शर्तें साम्राज्यवादी हथकण्डोंसे सर्वथा रहित नहीं है, किन्तु वर्तमान स्थितिमें इण्डोनेशिया को जितनी सफलता मिली है, उसके लिये हम उसे बधाई देतेहैं। हालैण्ड अपने साम्राज्यवादी हितों एवं भावनाओंको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये चाहे जितना सतर्क हो, इण्डोनेशिया पूर्ण स्वतन्त्र होकर रहेगा।

निरस्त्रीकरण——

संयुक्त राष्ट्र मण्डलके महामंत्री मो० लाई ने निरस्त्रीकरणके लिये अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्नोंके प्रारम्भके पूर्व एक अनुरोध करते हुए कहा है कि 'तद्विषयक प्रयत्नोंका परिणाम लाखों व्यक्तियोंके लिये कुछ अर्थ रखता है, और इसकी सार्थकताके लिये ही अबसे १५ साल पहले राजनीतिज्ञोंने अथक परिश्रम किये थे और कितने ही सन्धि पत्रोंपर हस्ताक्षर हुए, कितने ही समझौते और कितने ही सम्मेलन हुए, किन्तु राष्ट्रोंका रणोन्माद समाप्त नहीं हुआ और तब उनमें शस्त्रास्त्रोंकी पारस्परिक प्रतियोगिता भी समाप्त नहीं हुई। आज भी निरस्त्रीकरणके लिये एक ओर चर्चाकी जाती है और दूसरी ओर शस्त्रास्त्रोंके आविष्कारोंमें एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रसे आगे बढ़ जाना चाहता है। काश राष्ट्रोंका यह रणोन्माद समाप्त होता! लेकिन जब तक उनकी साम्राज्यवादी लिप्साका अन्त नहीं हो जाता तब तक क्या रणोन्मादके अन्त और निरस्त्रीकरणकी योजनाकी सफलता की कुछ भी आशा की जा सकती है?

वायसराय-गांधी-जिन्ना वार्ता——

नये वायसराय लार्ड माउण्ट बेटेनने शासनसूत्र हाथमें लेते ही गांधी जी और मि० जिन्नाको विचार-विनिमयके लिये दिल्लीमें आमंत्रित किया है और दोनों ही व्यक्तियोंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया है। कहा जाता है कि वायसराय ब्रिटिश सरकारकी निर्धारित योजनाएं लेकर आये हैं। और जून १९४८ तक सत्ता हस्तान्तरित करनेके पहले वे वातावरणको सर्वथा शान्त बना देना चाहते हैं। वर्तमान अशान्तिके निराकरणमें यदि उन्हें सफलता मिल जाय और वर्तमान राजनीतिक असंगतिका अन्त हो जाय और साम्प्रदायिक सामंजस्यके आधारपर देश प्रगतिशील हो सके, तो लार्ड माउण्ट बेटेनके इस सफल प्रयत्नके लिये सभी

उनकी सराहना करेंगे। किन्तु स्थितिकी जटिलताएं उनके समक्ष हैं। मुस्लिम लीगके प्रेसीडेंट मि० जिन्नाकी हठ-धर्मीका ज्ञान भी सम्भवतः उन्हें होगा और लीगकी इस असंगत स्थितिका ज्ञान भी उन्हें हो गया होगा कि एक ओर तो वह विधान परिषदमें जाना नहीं चाहती और दूसरी ओर अन्तःकालीन सरकारमें भी वह बनी रहना चाहती है, तब दो छोरोंको मिला सकनेमें उन्हें सफलता मिल सके तो निश्चय ही उनका प्रयत्न स्तुत्य समझा जायगा। किन्तु बम्बईमें मुसलिम चेम्बर आव कामर्सके समक्ष भाषण करते हुए मि० जिन्नाने जो विचार व्यक्त किये हैं और जिसमें उन्होंने कहा है कि यदि पाकिस्तान स्वीकार नहीं कर लिया गया तो भयंकर संकटकाल आयेगा अतः पाकिस्तानकी स्वीकृतिपर 'विराम सन्धि' की बात उठायी जा सकती है, उसे देखते हुए क्या इस बातकी सम्भावना हो सकती है कि जिन्ना अपनी हठवादिताका परित्याग कर देंगे? गांधी जी ने तो स्पष्टतः ब्रिटिश सरकार और वायसरायमें आस्था प्रकट करनेका देशवासियोंसे अपने पटनासे प्रकाशित वक्तव्य द्वारा अनुरोध किया है और उन्होंने सदा ही समझौतेके मार्गका अवलम्बन किया है। अतः उनके और जिन्नाके विचारोंका मतभेद क्या वायसराय-गांधी-जिन्नावार्ताको सफल करनेमें सहायक हो सकेगा? वार्ता सफल हो या असफल, किन्तु पाकिस्तानके बिना जो मि० जिन्ना 'विराम सन्धि' की बात भी नहीं करना चाहते, तो इसका अर्थ क्या यह समझना असंगत होगा कि वर्तमान अशान्तिपर उनकी स्वीकृति है? अगर वास्तवमें ऐसा है तो यह अत्यन्त हीन मनोवृत्ति है और तब वायसरायको स्थितिके पूर्ण स्पष्टीकरणके पश्चात् उसका सामना करनेके लिये तैयार होना चाहिये।

आसामकी स्थिति—

मुसलिम लीगके काल्पनिक राष्ट्र पाकिस्तानका पूर्वी शीमान्त आसाम है, किन्तु वैधानिक उपायों द्वारा जब लीगियोंकी दाल आसाममें नहीं गली तो अब वे अवैध प्रणालीका अवलम्बन करना चाहते हैं। आसाम प्रान्तमें प्रवेश करनेके सम्बन्धमें जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं, लीगी आंदोलक उसकी अवहेलना करके कुछ निषिद्ध अंचलोंपर कब्जा करना चाहते हैं। उनके इस आंदोलनको लेकर प्रांतीय शांति एवं व्यवस्थाके लिये कितनी खतरनाक संभावनाएं उत्पन्न हो चली हैं, इसका अनुमान इसी बातसे लगाया जा सकता है कि भारत सरकारने उस सम्भाव्य स्थितिके नियंत्रणके लिये ईस्टर्न कमाण्डकी फौज आसामके लिये सुलभ करनेके हेतु आदेश जारी किया है। समझौतेके मार्गका परित्याग कर, उपद्रवोंको शरण लेना साम्प्रदायिकतासे विषाक्त वातावरणमें अनेक जटिलताएं उत्पन्न कर सकता है, आसामके लीगी नेता क्या इसे अनुभव नहीं करते? अथवा अनुभव करनेके कारण ही ऐसा कर रहे हैं?

पूर्वी साहित्यमें रूसकी दिलचस्पी—

"पूर्वी देशोंका ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास, उनकी भाषाएं और साहित्य, रूसी विद्वानोंको वर्षोंसे आकर्षित कर रहे हैं। सोवियट कालमें इस ओर बहुत उन्नति गयी। पूर्वी देशोंका अध्ययन करनेवाली संस्थाके पुस्तकालय में इस समय लगभग पंद्रह लाख पुस्तकें और हस्तलिखित प्रतियां साठ भाषाओंमें हैं। इस संस्थामें भारतीय, चीनी, जापानी, तुर्की, ईरानी आदि अनेक विभाग इन देशोंके विशेषज्ञोंको अध्यक्षतामें काम कर रहे हैं। एक छोटी-सी अवधिमें इस संस्थाने लगभग ८० विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित की हैं। १९३९-४० में विभिन्न देशोंकी भाषाओंके शब्दकोष तथा व्याकरण तैयार करनेका काम शुरू किया गया था। प्रोफेसर नरानिकावने गोस्वामी तुलसीदासके 'रामायण' का अनुवाद रूसी भाषामें किया है। यह ग्रन्थ, जिसके तीन भाग हैं, इस समय छप रहा है। पहला भाग अनुवाद है, दूसरा भूमिका और तीसरी टीका-टिप्पणी। इस इस संस्थाने शब्दकोषोंको प्रमुख स्थान दिया है। जापानी-रूसी, मंगोलियन-रूसी और चीनी-रूसी (पहला भाग) आदिके शब्दकोष तैयार हैं; हिन्दी-रूसी शब्दकोषपर इस समय काम हो रहा है।" 'तास' के उक्त वक्तव्यसे पूर्वी साहित्यसेमें रूसकी दिलचस्पी स्पष्ट है।

नवलकिशोरसिंह द्वारा विश्वमित्र प्रेस कलकत्तामें मुद्रित और प्रकाशित

Regd. No. C. 2230

त

साम

आसाम

मुसलिम

शीमान्त आसाम

लीगियोंकी दाल आ

प्रणालीका अवलम्बन क

सचित्र मासिक

विश्वमित्र



वार्षिक
मूल्य
६)

विश्वमित्र कार्यालय

क ल क त्ता

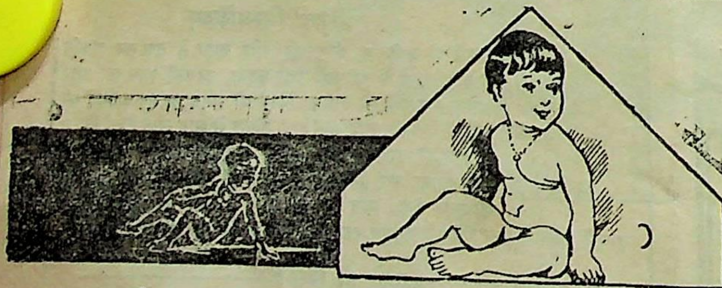
एक
प्रति

मासिक विश्वमित्र

मई, १९४७

विषय-सूची

विषय-सूची



मासिक

विश्वामित्र

सम्पादक—

शिवदेव उपाध्याय 'सतोश' बी० ए०, बी० एल०

मई १९४७ वर्ष १५, संख्या---५ ज्येष्ठ २००४

मिलन यामिनो से—

गरमी में प्रातःकाल पवन
बेला से खेला करता जब
तब याद तुम्हारी आती है !

जब मन से लाखों बार गया-
आया सुख सपनों का मेला,
जब मैंने घोर प्रतीक्षा के
युगका पल-पल जल-जल झेला,
मिलने के उन दो यामों ने
दिखलाई अपनी परछाई,
वह दिन ही था बस दिन मुझको
वह बेला थी मुझ को बेला ;
उड़ती छाया-सी वे घड़ियां
बीतीं कबकी, लेकिन तब से
गरमी में प्रातःकाल पवन बेला से खेला करता जब
तँब याद तुम्हारी आती है !

तुमने जिन सुमनों से उस दिन
केशों का रूप सजाया था,
उनका सौरभ तुमसे पहले
मुझसे मिलने को आया था,
वह गंध गयी गठबंध करा
तुमसे, उन चंचल घड़ियों से,
उस सुख से जो उस दिन मेरे
प्राणों के बीच समाया था;
वह गंध उठा जब करती है
दिल बैठ न जाने जाता क्यों,
गरमी में प्रातःकाल पवन, प्रिय, ठंढी आहें भरता जब
तब याद तुम्हारी आती है!
गरमी में प्रातःकाल पवन बेला से खेला करता जब
तब याद तुम्हारी आती है!

चितवन जिस ओर गयी उसने
मृदु फूलों की वर्षा कर दी,
मादक मुसकानों ने मेरी
गोदी पंखुरियों से भर दी,
हाथों में हाथ लिए, आए
अंजलि में पुष्पों के गुच्छे,
जब तुमने मेरे अधरों पर
अधरों की कोमलता धर दी—
कुसुमायुध का शर ही मानों
मेरे अंतर में पैठ गया!
गरमी में प्रातःकाल पवन कलियों को चूम सिहरता जब
तब याद तुम्हारी आती है।
गरमी में प्रातःकाल पवन बेला से खेला करता जब
तब याद तुम्हारी आती है!

—बच्चन

पूंजीपतियोंका प्रभाव क्षेत्र

(विश्वमित्र संचालककी कलमसे)

पहले इस देशमें जो राजा रईस और जमींदार अपनी असीम कामवासनाकी तृप्ति करना चाहते थे, वे या तो निम्न श्रेणीकी स्त्रियां 'रखनी' के रूपमें रख लेते थे या वेश्याओंकी शरण लिया करते थे, परन्तु मुझे स्वप्नमें भी यह संभव नहीं दिखायी दिया कि देशकी कुलीन शिक्षित लड़कियां अपना रूप, यौवन और काया रुपयेपर निछावर कर देंगी। आज उस नग्न सत्यको सामने देखकर आत्मा कांप गयी और पंडित बनारसीदासजी चतुर्वेदीके उस सात्विक उपदेशको पढ़कर हंसी आयी, जो उन्होंने बेचारे हिन्दी श्रमजीवियोंको राजसी छत्रछायाके शीतल वायु-मंडलसे प्रदान किया है। उन्होंने पूंजीपतियोंके नये समाचारपत्रोंके जन्म पर भय प्रकट करते हुए लिखा है कि हिन्दी पत्रकारोंको उनका वहिष्कार करना चाहिये और अधिक वेतनके लोभमें पत्रकारी पेशेका हनन न करना चाहिये। एक आदर्शवादी पत्रकार यही परामर्श दे सकता है, परन्तु इस प्रकारका परामर्श माना कैसे जाये। परिवार को भूखा और नंगा रखकर पत्रकार केवल आदर्शवादकी रक्षाके लिये अपने गुण और श्रमका अधिकसे अधिक मूल्य क्यों न वसूल करे, जबकि उसे घर बैठे वह मूल्य मिल रहा हो। लक्ष्मीका तिरस्कार किस प्रकार किया जाये, जबकि अर्थ चक्र सबको बुरी तरह पीस रहा हो। क्या वर्नार्ड शा 'टाइम्स' और 'डेलीमेल' का वहिष्कार करेंगे और छोटे-मोटे पत्रोंमें अपने प्रतिभापूर्ण लेख और रचनाएं स्वान्तः सुखाय प्रकाशित करायेंगे ? वर्षोंकी यातनाएं सहनेके बाद यदि हिन्दी पत्रकार आज भरपेट भोजन पानेका सुअवसर पाते हैं, तो उसे आदर्शवादके नाम पर किस प्रकार खोया जाये।

गर्म लोहे पर तुरन्त आघात कीजिये, परन्तु इस बात का ध्यान तो रखना ही होगा कि रुपयेकी प्राप्तिमें आत्मा का खून न हो। प्राप्ति केवल आंशिक रूपमें हो अधिक है, इसलिये आत्माका खून करना वांछनीय नहीं। पूंजीपतिके एक नये पत्रका उद्घाटन करते हुए जब एक सुविख्यात पत्रकार इस प्रकार अग्रलेख लिखता है, तो हंसी आती है—यह पत्र कारखानेके मजूर और खेतके किसान-सर्वसाधारण के हित साधनको अपना मुख्य उद्देश्य मान कर जन्म ग्रहण कर रहा है—परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम् इस पत्रका उद्देश्य गीताके कृष्णके समान है। यह सम्पादकीय लेखनी और सम्पादकीय आत्माका हनन ही है। क्योंकि असंख्य श्रमजीवियोंका भाग्यविधाता पूंजीपति समाचारपत्रका प्रकाशन अपने प्रभाव क्षेत्रको और अधिक विस्तृत और आकर्षक बनानेके लिये ही कर रहा है ? पूंजीपतियोंको समाचारपत्र प्रकाशनका धन्धा इसलिये भी पसंद आया है कि वे समाचारपत्रोंके मार्गमें अब पुरानी कठिनाइयां नहीं देखते। उनके समाचारपत्र बड़े-बड़े नगरोंमें अपना जाल बिछायेंगे, परन्तु भारत तो सात लाख ग्रामों का देश है और सच्चे पत्रकारोंको कमसे कम एक लाख स्थान दे सकता है। इसलिये जिनमें आत्म विश्वास है, वे उसी प्रकार भयशून्य हैं,जिस प्रकार रूपहीन गृहरमणी किसी आकर्षक वेश्याको देखकर। पूंजीपतियोंको ज्यादा रुपये देकर अनुभवी प्रेस कर्मचारी और पत्रकार आसानीसे मिल जायेंगे। सच्चे पत्रकारोंको इन्हें तैयार करना होगा। पूंजीपति इतना सत्साहस नहीं रखते, कि वे नये आदमी तैयार करें और पुराने आदमी खींच कर पीछे उन्हें इच्छानुसार हटा भी सकते हैं, क्योंकि इच्छा दास हुए बिना वहां किसीका निर्वाह भी तो संभव न होगा।

जिन पूंजीपतियोंके पास सार्वजनिक रुपयेसे संगठित बहुसंख्यक कल कारखाने हैं, वे सरकारी टैक्स और शेयर होल्डरोंके डिवीडेण्डसे काफी रुपये बचाकर समाचारपत्रोंमें फूंक सकते हैं और आर्थिक दृष्टिसे समाचार पत्र संचालनमें निश्चिन्त हैं, परन्तु जनताके पत्र तो गायब नहीं हो सकते। देशमें ऐसी बहुतसी समस्याएं उपस्थित होती रहेंगी जिनको हल करनेके लिए जनताके पत्रोंकी आवश्यकता

होगी। श्रमजीवी पत्रकार जिन पत्र संचालकोंको अभी पूंजीपति मान रहे हैं, उनकी कलई नये विशाल पूंजीपतियों के आगमनसे खुल जायेगी और पत्र संचालक अनुभव करेंगे कि वे वास्तवमें पूंजीपति नहीं और परिश्रम ही उनकी सबसे बड़ी पूंजी है। पत्र-संचालनके लिए अब साधारण स्थानोंमें भी कार्यालयको अपनी इमारत तथा नयी मेशीन आदि आवश्यक होगी, जिनके लिये सार्वजनिक चन्दे पर निर्भर नहीं रहा जा सकता, इसलिये रिजर्व पूंजी परम आवश्यक होगी, पूंजीके अस्तित्वसे व्यक्ति विशेषको पूंजी-पति कहना स्वाभाविक ही है, परन्तु श्रमजन्य पूंजी और विशाल पूंजीका अन्तर सूर्यके प्रकाशके समान स्पष्ट हो जायेगा। इङ्गलैंड, अमेरिका आदि देशोंमें पूंजीपतियों और पत्रकारोंके समाचारपत्र चलते ही हैं और दोनोंमें काफी अन्तर भी है। उन देशोंके पूंजीपतियोंकी यह विशेषता है कि वे समाचारपत्रोंको अपना धन्धा बनाए हुये हैं, परन्तु हमारे देशके पूंजीपति अभी तो समाचारपत्रोंको अपने आमोद-प्रमोदके लिये क्रिकेट, फुटबाल या टेनिस समझकर ही उनके भाग्य विधाता बने हैं। जहां उन देशोंके पूंजी-पति काफी शिक्षित और राजनीतिज्ञ हैं, वहां हमारे देशके अशिक्षित, अर्द्ध शिक्षित या भोग विलासी पूंजीपति और उनके आत्मीय अपना सिक्का जमानेके लिये इस नये क्षेत्रमें उतरे हैं। चाटुपरायण पत्रकार उन्हें घेर कर अपना स्वार्थसाधन करना चाहते हैं, और सूर्यसे प्रकाश उधार लेकर स्वयं पत्रकार क्षेत्रके सूर्य बनना चाहते हैं। ये महाशय पत्रकारिताके महान् शत्रु कहे जा सकते हैं।

वे सुधारवादी पत्रकार अब क्या करेंगे, जो प्रधान सम्पादक या सहायक सम्पादक बनकर समाज सुधारका ढोल भी पीटना चाहेंगे और अपने स्वामीके निन्दनीय समाज विरोधी कार्यों के विरुद्ध कलम भी न चलाना चाहेंगे? एक ओर खद्दर धारण कर देशभक्तोंकी जमातमें भी बैठना चाहेंगे और दूसरी ओर उन अत्याचारोंकी कहानियां चुप-चाप सुनते रहेंगे, जो मन चले स्वामी बेचारी गुमराह अबलाओंपर करेंगे। एक ओर देशी राज्योंमें होनेवाले अत्याचारोंपर अश्रुपात भी करेंगे और दूसरी ओर उस रियासतको बाद देना चाहेंगे जिसके बारेमें उन्हें वायरलेस संवाद पत्र स्वामीसे मिल चुका है। कांग्रेस देशका शासन सूत्र संभाल रही है, इसलिये इस समय कांग्रेस हिमायती और स्वतन्त्रता प्रेमी बनना तो बायें हाथका खेल हो गया है, परन्तु उन समस्याओंके सम्बन्धमें क्या होगा जिनका सम्बन्ध समाजके पुनर्निर्माणसे होगा। राष्ट्रीयकरणकी योजनाओंको कितना समर्थन प्रदान कर सकेंगे। नाईके बाल सामने आते ही हैं। पूंजीपतियोंके बाद हमारे देशी नरेश भी तो अग्रसर होकर अपने समाचारपत्र निकाल सकते हैं। वे पूंजीपतियोंके भी भाग्य विधाता अपनेको माने हुए हैं। इसलिये देशमें जहां समाचारपत्रोंकी बाढ़ संभव मालूम होती है, वहां समाचारपत्रोंका समुचित संचालन, सम्पादन और व्यवस्था करनेके लिये सारे देशमें दस बीस आदमी भी नहीं दिखायी देते। इन्हें तैयार करनेके लिये यदि उद्योग और व्यय किया जाये, तो यही बहुत बड़ा काम होगा, परन्तु अभी तो पूंजीपति छीन-झपट की नीतिसे ही काम लेना चाहते हैं। आगे चलकर यदि उनमें सुबुद्धि आयी, तो देशका एक बहुत बड़ा अभाव दूर हो सकेगा।

———



खतरेको घण्टी

श्रीमती होमवती देवी

गली गली और मुहल्ले मुहल्लेमें कांग्रेस अधिवेशनकी धूम थी। कोई भी व्यक्ति नगरमें ऐसा न था, जिसकी जबानपर यही चर्चा न हो। हर एक व्यक्तिको इस मौके पर आनेवाले मेहमानोंकी भी चिन्ता थी—राशनका जमाना ठहरा-नपा तुला अनाज मिलता है—जो अपने परिवारके लिये भी काफी नहीं होता--फिर दूसरोंको कहांसे खिलाया जायगा, इसके लिये सुना था कि शायद उस अवसर पर दूना राशन मिल सकेगा-पर कौन जाने क्या होगा। और भी कई एक समस्याएं सामने थीं—सभीके घर तो इतने बड़े नहीं होते कि जो चाहे जितने आदमी रह सकें और न सभीके घरमें बिजली की रोशनी। मिट्टीका तेल भी नपा तुला ही मिलता है, और सरसोंका तेल दस छटांक, घीके भाव ठहरा। फिर दाल साग-ईंधन और मसाला—घी या कोटोजम—यह सब अलग रहा। अपने घरमें न जाने इस मंहगीके जमानेमें कोई कैसे गुजर करता है। मेहमानोंके सामने तो मैला कुचैला भी नहीं पहना ओढ़ा जा सकता। कपड़ेकी तंगी अलग नाकों दम किये है।

रोज-रोज कौन किसके घर आता है। परन्तु क्या करे? आमदनी थोड़ी और खर्च ज्यादा! इसी सोचमें चौधराइन साहिबा माथेपर हाथ धरे रसोईके सामने बैठी चूल्हेपर चढ़ी पतीलीकी ओर देख रही थी—"घंटों हो गये—दाल गल कर ही नहीं देती—आग लगे बनियोंके घरमें, नयीके भावमें न जाने यह कबकी पड़ी-गिरी दाल दे दी है। घड़ियों ईंधन फुक गया। उन्हें तो कुछ सूझता ही नहीं। जबसे एम० एल० ए० हुए हैं—सारा काम नौकरपर छोड़ रखा है, वह चाहे जो करे। भाड़में जाये ऐसी देश सेवा, घर द्वार को कुछ भी तो देखभाल नहीं कर पाते···रात दिन दूसरों के कामोंमें टांग अड़ाये फिरते हैं। एक बराबरकी लड़की-ब्याहनेको पड़ी है—दूसरी अब तैयार हुई—लौंडोंके इम्तहान सिरपर आ गए, और इन्होंने इस कांग्रेसकी आफत सिरपर ले रखी है······।"

चौधराइनकी विचार धारामें ठेस पहुंचायी पड़ोसकी बड़ी बूढ़ी--मुलुआकी दादी ने। दोनों पास-पासके ही गांव की ठहरीं। एक दूसरेसे बड़ा मेल और हमदर्दी होना स्वाभाविक था। आंगनमें पैर रखते ही मुलुआकी दादीने कहा—"अरी थोड़ी आग है असर्फी! दियासलाईके लिये सारे बाजारमें धक्के खाकर लौट आया भूलन, पर मिली ही नहीं। रोटी बन चुकी क्या तुम्हारे···?

"कहां दादी! दाल तो पत्थर हुई पड़ी है, लो तुम आग ले जाओ।" कहकर चौधराइनने पौनी भर कोयले चूल्हेमें से खींचकर एक ओर सरका दिये।

बुढ़िया दादी ने कंडेकी कोर तोड़ कर दो चार पतंगे उस पर धरते हुये पूछा लाला अभी नहीं आये क्या? बाल बच्चे भी कहीं गये दीखते हैं—"घर फाड़खानेको आ रहा हैं। पर उन्हें क्या दादी! मैं हूं तो रखवाली करनेके लिये उनकी बला से कोई अकेला दीवार से सिर मारता रहे। अभी तो अपने आप ही सिर मारते फिरते थे-अब बालकों को भी वैसा ही बनाये दे रहे हैं।" असर्फीने चूल्हे में लकड़ी सरकाते हुये कहा।

'क्यों··कोई मीटिंग वीटिंग होगी कहीं?' बुढ़िया हाथ सेंकते सेंकते बोली।

'क्या खबर जी,···यह जो कांग्रेसका जलसा यहां होनेको है इसीमें सबके लिये नाम लिखा दिये हैं। सुना है कि दूर दूरकी लड़कियां लड़के आये हैं उन्हें स्वयंसेवकोंका काम सिखाया जा रहा है। इनके जिम्मे उनकी देखभाल का भी काम चिपका दिया गया है-कांग्रेस वालोंको किसीके दुःख सुख से क्या? न जाने कब तक लौटेंगे?'

'आ जाएंगे, कुछ कहा नहीं जाता, इन मर्दोंकी बात यही जाने बीबी! वैसे तो कांग्रेसको सब यही कहते हैं कि गरीबोंका दुःख यही सुनती है बस···भुलआ तो महात्मा गांधी की झोपड़ीमें कुछ काम करने जाता है। वह कह रहा था-बन कर तैयार हो गई, कल मुझे भी दिखाने ले जायेगा परसों पूरनमासी है। मैं गंगाजी जानेकी सोच रही हूं। न

हो दो रोटी तूही दे दीजो उसे खाकर पड़ रहेगा। आटा में देती जाऊंगी' कह कर बुढ़िया खड़ी हो गई।

'हां...दाल दूंगी रोटीका क्या है? कह कर चौधराइनने बटलोही अंगारों पर पटक दी और चूल्हे पर तवा टेक दिया।

(२)

उस दिन रातको सहसा साम्प्रदायिक दंगोंकी सुलगती हुई प्रचंड ज्वालाकी कोई चिनगारी उड़कर यहां भी प्रज्वलित हो उठी और छुरेबाजी शुरु हो गई। दिन छिपते न छिपते दो चार घटनाओंकी सूचना शहरके कोने कोनेमें फैल गयी।

इसी परेशानीमें दौड़ा दौड़ा भूलन चौधरी साहबके पास पहुंचा-'इन लड़कियोंका क्या हो? जंगलमें निहत्थे पड़े हैं हम लोग और डेरोंमें न किवाड़, न ताला इज्जत बचानी मुश्किल हो रही हैं-पराई बहू बेटी हैं-अगर किसीको कुछ हो गया तो'।

चौधरी साहब नगरके गिने चुने नेताओंमें से ठहरे-फिर अब तो एम० एल० ए० भी हो गये हैं-किसीके ऊपर यदि रत्ती भर भी आंच आई तो उनका मरन है, बस।

तुरन्त 'टेलीफोन' पर जा बैठे और अनेक स्थानोंके बाद लड़कियोंके बोर्डिंगमें सब स्वयं सेविकाओंके ठहरनेका प्रबन्ध किया गया-पक्की इमारत थी--वह-मजबूत फाटक लगे हुये थे-दीवारें भी ऊंची ऊंची थीं-वहां किसी प्रकारका भय देखती आंखों तो था नहीं-आगे भगवानकी इच्छा।

अपनी तरफ से उन्होंने बोर्डिंगको ऊंची इमारत पर 'खतरेका घंटा' भी लगवा दिया था-जो कि स्कूलकी लड़कियोंको समयका ज्ञान कराया करता था-इसके अतिरिक्त पचासके करीब स्वयंसेवक भी वहां रख दिये गये थे फिर खुद भी वहीं रहनेका निश्चय कर चुके थे वे क्योंकि जलसेकी तैयारीका कार्य तो एक दम रोक देना पड़ा। न मिस्त्री आ सकते थे, न मजदूर—फिर इस समय तो जानके ही लाले पड़े थे।

(३)

टन-टन करके घंटा-घरकी घड़ीने १२ बजा दिये। चारों ओर सन्नाटा था, सब सुखकी नींद सो रहे थे। अभी जो कुछ घंटे पहले विपत्तिका समुद्र सबकी आंखोंके सामने लहरा रहा था, वह जैसे एक तूफानके बाद शांत हो चुका था। चौधरी साहबने करवट बदली ही थी कि उन्हें बाहर कुछ शोरगुल सुनाई पड़ा—पल भर आंखोंमें भरी हुई नींद काफूर हो गयी, वह लेटेसे एकदम बैठे हो गये। आवाज लगाई—"भूलन...!" मालूम हुआ कि भूलनको तो उन्होंने ही दो स्वयंसेवकोंके साथ घर सोनेका आदेश दिया था, किन्तु वहां तो सैकड़ों भूलन मौजूद थे—बातकी बातमें सामने आकर खड़े हो गये।

"बाहर शोरगुल सुन पड़ा था—खतरेकी घंटी बजा दो।" कहकर चौधरी साहब लड़कियोंकी ओर भागे"—सब सावधान होकर एक जगह बैठ जाओ, घबराना मत। और अनुशासनमें रहना...।" आदि आदेश देकर उन्हें समझाने लगे।

बीस मिनटके बाद बाहरसे किसीने आवाज दी--"दरवाजा खोलो।" चौधरी साहबका सर्वाङ्ग कांप उठा। धीरे-धीरे दरवाजेके पास आकर किवाड़ोंकी झिरीमेंसे झांक कर देखा। उनके साथी राघोप्रसाद एम. एल. ए. कारमें बैठे हैं, उनके पास ही पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं और ड्राइवर दरवाजा पीट रहा है। कई एक पुलिस गार्ड स्कूलको घेरे खड़े हैं और पास ही स्कूलका चौकीदार हाथमें लालटेन लिये खड़ा है।

"यह खड़े हैं...।" उसने बड़े अन्यमनस्क भावसे कोने की ओर इशारा कर दिया। चौधरी साहब सड़कपर आ गये, बोले—'बड़ा शोरगुल सुनाई दिया था सावधान रहनेके लिये मैंने......।"

"क्यों चौकीदार? क्या बात थी? कैसा शोरगुल था और अब वह लोग कहां भाग गये सब?" पुलिस सुपरिन्टेन्डेण्ट साहबने चौकीदारसे प्रश्न किया।

"सरकार! आदमी वादमी तो कोई था नहीं यहां, दो कुत्ते अलबत्ता लड़ रहे थे आपसमें—मैंने और सामने वाले डेरीवालेने तभी उन्हें मारकर भगा दिया था।

और तब सब हक्के बक्के से एक दूसरेका मुंह देखने लगे। और चौधरी साहब चुपचाप अपराधीके समान मुंह लटकाये खड़े रहे।

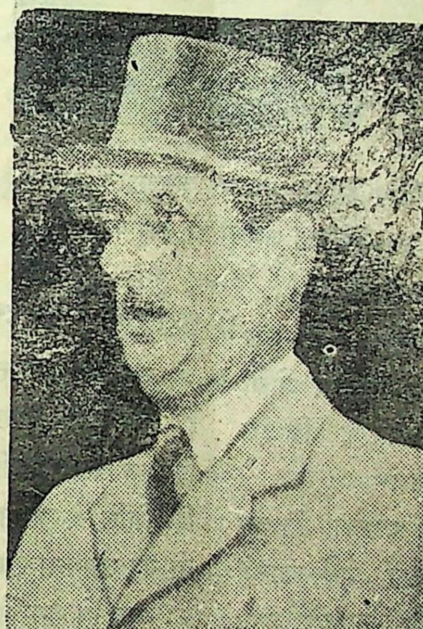
——

युद्धोत्तर जगतका सिंहावलोकन

श्री मन्मथनाथ गुप्त

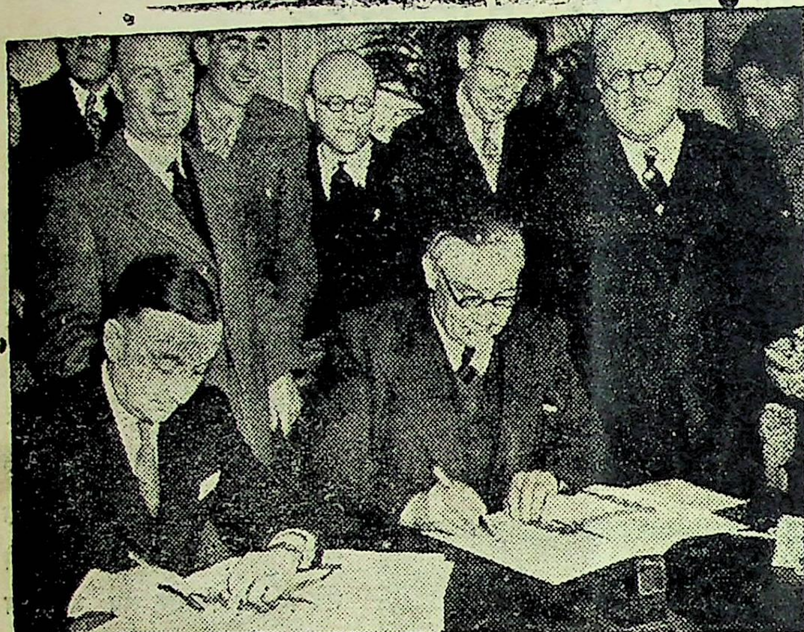
द्वितीय साम्राज्यवादी महायुद्ध वर्षों तक चला। अब उसके बन्द हुए एक सालसे अधिक हो गया है। स्वाभाविक रूपसे यह प्रश्न हमारे मनमें उठ सकता है कि यह जो लड़ाईके बाद दुनिया हमारे सामने आयी है, क्या वह किसी तरह पहलेकी दुनियासे अच्छी है। यदि अच्छी नहीं है तो स्वभावतः यह कहा जा सकता है कि यह सारा धन जनका व्यय तथा संहार बिल्कुल व्यर्थ गया।

हमारे लिये यह सम्भव नहीं है कि सारे जगतकी राजनीतिक परिस्थितिका सिंहावलोकन करें, इसलिये हम कुछ मोटी-मोटी बातों को ही देखेंगे। सबसे पहले तो हम उस बातको देखेंगे कि क्या युद्धकी सम्भावना पहलेसे कम हो गयी है? जब हम इस दृष्टिसे देखते हैं तो दुनियाको एक अजीब ही रूपमें पाते हैं। इस महायुद्धमें ब्रिटेन, अमेरिका तथा सोवियट रूस कन्धेसे कन्धा मिलाकर फासिस्ट जर्मनी, इटली तथा जापानके विरुद्ध लड़े। ऊपरसे देखनेमें ये शक्तियां जिस प्रकार एक साथ मिलकर लड़ती हुई ज्ञात होती थीं, भीतरसे उनका एका उतना ठोस नहीं था। ब्रिटेन और सोवियट रूसमें जो सहयोग था, वह बहुत कुछ अस्त्र शस्त्र तथा अन्य रसदकी लेन देन तक ही सीमित था। पर ब्रिटेन और अमेरिकामें जो सामरिक सहयोग था वह सचमुच ठोस तथा वास्तविक था। १९४६ में वाशिंगटनसे अमेरिकन सेना विभागके चीफ आफ स्टाफकी ओर से बड़े गर्वके साथ यह लिखा गया था कि 'इन दोनों राष्ट्रों में जिस प्रकारका सम्पूर्ण सामरिक सहयोग था, वह दो मित्र राष्ट्रोंके इतिहासमें अभूतपूर्व था। दोनों जातियोंकी सारी शक्तियोंको किस प्रकार कहां रखा जाय, कहां सेना तथा अस्त्र शस्त्र भेजा जाय, खबरकी लेन-देन, सामरिक खबरोंका नियंत्रण, कब्जा किये हुए इलाकोंका शासन, इन सब विषयोंमें दोनों राष्ट्रोंके सेना विभागोंमें बिल्कुल एका था।'



फ्रांसके जेनरल देगाल जो फ्रांसकी सभी प्रतिगामी शक्तियोंका संगठन कर रहे हैं।

इन दोनों राष्ट्रोंकी सेनाओंमें सहयोगके लिये दिसम्बर १९४१ में Combined chiefs of staffs नामक विभाग खोला गया था। लड़ाईके खतम हुये १८ महीनेसेअधिक हो गये पर यह विभाग अब भी काम कर रहा है। क्या कोई कह सकता है कि इस विभागकी अब जरूरत क्या है? इसका उत्तर देते हुए रूसी मेजर जेनरल ग्लाक्तिनोफ लिखते हैं कि अब भी इस विभागको चालू रखनेका एकही कारण हो सकता है, और वह यह है कि यह विभाग भविष्यके युद्धोंके सम्बन्धमें एक संयुक्त योजना बना रहा है, और यह सोच रहा है कि कैसे योजनात्मक रूपसे दोनों राष्ट्रोंकी सेनाका ढंगसे इस्तमाल हो सके। कहना न होगा कि इस विभागका अभीतक कायम रखना ही बहुत बड़े सन्देहका विषय है। इधर मित्र पक्षके जानकार लेखकोंसे और भी नये गुल खिल रहे हैं जिनसे हर तरहका संदेह उत्पन्न होता है। रूसके लिये ब्रिटेन और अमेरिकाकी यह सामरिक मित्रता और भी सन्देहजनक इस कारण हो जाती है कि अब यह मालूम हो चुका है कि भयंकर युद्धमें फंसे रहनेपर भी चर्चिलने जहांतक हो सके दूसरा मोर्चा खोलने में देरी की। अब यह पता लग गया है कि जब सोवियट रूसकी सेनाएं प्रबलताके साथ जर्मनीमें घुस पड़ीं और



डंकर्कमें ब्रिटेन और फ्रांसके प्रतिनिधि सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर रहे हैं इसकी प्रधान शर्तों में ५० वर्षतक जर्मनी को दबा कर रखने की व्यवस्था की गयी है।

चर्चिलको यह डर हुआ कि कहीं सारा योरोप रूसकी लाल सेनाके प्रभावमें न आ जाय, तभी उसने द्वितीय मोर्चा खोला और सरपट आगे बढ़ता गया। आशा है कि इस सम्बन्धमें और भी रहस्य समय पर खुलेंगे।

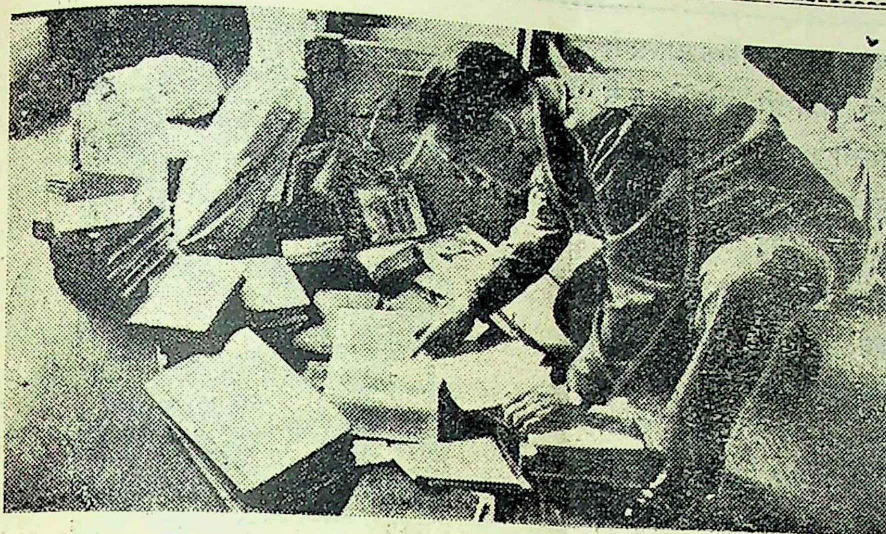
इन बातोंके साथ जब हम इस बातका मिलान करते हैं कि सारी ब्रिटिश परम्पराके विरुद्ध शान्तिकालमें भी ब्रिटेनमें बाध्यता मूलक सैनिक भरती कायम हैं, तथा अमेरिका दिन ब दिन और अधिक युद्ध तैयारियां करता जाता है, तब मामला बहुत ही संगीन हो जाता है। अमेरिका प्रशान्त महासागरमें ही नहीं ध्रुवोंमें भी अपनी जड़ोंको मजबूत कर रहा है।

स्वाभाविक रूपसे ये बातें बहुत सन्देहजनक हैं, और भय उत्पन्न करनेवाली हैं। जो तैयारियां हो रही हैं,उनको देखते हुए यह ज्ञात होता है कि रूसको खतरा है। रूसको यह खतरा केवल इसलिये नहीं है कि रूस समाजवादी पद्धतिका प्रतिनिधित्व करता है, और समाजवादी पद्धति सम्पूर्ण रूपसे उस पूंजीवादीका विरोधी है जिसके अमेरिका तथा ब्रिटेन सबसे बड़े प्रतिनिधि तथा प्रतिपादक हैं।

रूस और कलके अन्य मित्र राष्ट्रोंका विरोध सबसे ज्यादा जीते हुए राष्ट्र जर्मनी और जापान के प्रति नीतिसे सूचित होता है। पहले हम जापानको लें। मित्र राष्ट्रोंमें यह तय हुआ था कि नात्सीवाद तथा फासीवादका सम्पूर्णरूपसे विनाश किया जायगा। विनाशकी इस योजनाको कार्यान्वित करनेके लिये सबसे बड़ा तरीका तो यह है कि उन वर्गों को खतम कर दिया जाय जो फासीवादके लिये जिम्मेदार थे। दुःखके साथ कहना पड़ता है कि जापानमें ऐसा कोई प्रयत्न दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। इस सम्बन्धमें दुनियाको असली खबरसे भी वंचित रखा जा रहा है।

जापानके सम्बन्धमें जो खबरें दुनियाको दी जा रही हैं, उनसे ज्ञात होता है मानों जापानमें पुराने शासक बिल्कुल खतम कर दिये गये हैं। जब साडाओअराकी, हिरोशिसि, केन्जीडोयिहारा, टोजो पर मुकदमा चल रहा है तो यह समझना स्वाभाविक है कि जापानमें प्राचीन जगत का अन्त हो गया है। पर यह बात बिलकुल गलत है। अब भी जापानी जल सेना तथा स्थल सेनाका जेनरल स्टाफ ज्योंका त्यों बना हुआ है, 'अवश्य इसका नाम बदल गया है और बहुत सी बातें छिपकर होती हैं। पहलेके बहुत से सैनिक कर्मचारी अब सादी पोशाकमें घूमते फिरते हैं, पर वे सामरिक कार्योंमें व्यस्त हैं।

युद्धके अपराधियों पर टोकियोमें यह जो मुकदमा चल रहा है, यह बहुत कुछ धोखेमें डालने वाला है। सबसे बड़ा युद्धापराधी तो मिकाडो स्वयं है। पर वह अभी भी जापानका सम्राट् बना हुआ है। अवश्य मिकाडोके सम्बन्ध में यह खबर दी गयी है कि उसने जापानको एक विधान दिया है और अब जापान अर्द्ध सामन्तवादी राष्ट्रसे लोक-



जर्मनीके लिये नात्सी-विरोधी साहित्यकी खोजमें व्यस्त एक शिक्षा शास्त्री

सामन्तवादी परिवार मित्सूई, मित्सूबीसी, सूमीटोमो तथा आधुनिक पूंजीवादी गुट जाइबात्सू जिन्दा है, और वे जापानपर शासन कर रहे हैं। वे समझते हैं कि सम्राट् पूजाकी बदौलत जनताको अंधी बना करके वे शक्ति आरूढ़ रह सकते हैं, और बुरा वक्त निकल जाने पर फिर उनके साम्राज्यका पुनरुद्धार कर सकता है।

जब हम जर्मनीकी ओर जाते हैं तो वहांपर भी अजीब हालत पाते हैं। पाटसडाम कानफरेंसमें मित्रराष्ट्रोंमें यह तय हुआ था कि जर्मनीका सम्पूर्ण रूपसे निःशस्त्रीकरण तथा असामरिकीकरण होगा, और साथ ही ऐसे सब जर्मन उद्योग-धन्धोंको नियंत्रित किया जायेगा जो युद्ध कार्यमें लगाये जा सकते हैं। इसके साथ ही यह भी तय हुआ था कि जर्मन जातिका इस तरह सङ्गठन किया जायेगा कि वह शांतिप्रिय तथा लोकतांत्रिक जातिके रूपमें दुनियाके सामने आये। जर्मनीको चार टुकड़ोंमें बांट दिया गया। इसमेंसे पूर्वी हिस्सेपर सोवियटका कब्जा रहा। इस हिस्सेमें पूंजीवाद तथा सामन्तवादको बिलकुल खतम करके भूतपूर्व नात्सी धनियोंकी सारी जायदादें जनतामें बांट दी गयी है, पर जो टुकड़े अन्य राष्ट्रोंके हिस्सेमें पड़े हैं उनमें हालत बिलकुल दूसरी है और अक्सर शक्ति भूतपूर्व नात्सियोंके हाथमें जा रही है। अमेरिकाके टुकड़ेमें नात्सियोंको शक्तिकी जगहोंसे निकालनेकी योजना बिलकुल काममें नहीं लायी गयी। १९४६ के मार्चमें अमेरिकाके टुकड़ेमें नात्सियोंके निष्काशनके लिये एक विशेष कानून बना, पर इस कानूनपर कोई अमल नहीं किया गया। अक्सर तो नाजियोंके निष्कासनके लिये जो कमेटी आदि बनायी गयी, उसमें भूतपूर्व नात्सियोंका ही बोलबाला हो गया। जब छिनरा ही डोलीके सङ्ग हो गया, तो फिर कौन किसे

तांत्रिक राष्ट्र हो गया है। पर यह बात कहांतक सही है इसमें सन्देह है। रूसी क्षेत्रोंसे पता लगता है कि जो विधान दिया गया है, उसको जापानके लोगोंने इस तरहसे लिया है कि एक जाति परास्त हो चुकी है, और उसे उठना है। कहना न होगा कि इस उठनेका अर्थ साम्राज्यवादी तथा सामरिक अर्थमें ही लिया जाना चाहिये। दुखका विषय है कि जानबूझ कर गलत खबर देकर दुनियाको धोखेमें डालने की चेष्टा की गयी है।

हिरोहितो अपने वंशका १२४ वां राजा है, इस वंशने २६ सौ वर्षसे लगातार राज्य किया है। हिरोहितोंको जापानी न केवल सम्राट् समझते थे बल्कि मनुष्य देहधारी ईश्वर समझते थे। क्या जनताके इस रुखमें कोई फर्क आया है? नहीं। बल्कि रूसी संवाददाता कुरगानौफ लिखता है "हिरोहितो एक मोटरपर पार्लियामेंटमें आया। पार्लियामेंट के सदस्य काली पोशाकमें उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ज्योंही हिरोहितोने हालमें प्रवेश किया त्योंही पार्लियामेंटके सदस्य उसके सामने दंडवत हो गये। फिर वे उसके साथ-साथ भीतर चले। सम्राट सिंहासन पर बैठे तो फिर तमाम सदस्य दंडवत हो गये।" हमें उससे आगे वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है।

हिरोहितोके प्रति उच्च वर्गकी यह कृतज्ञता बहुत सच्ची है, और उसके कारण हैं। सम्राटके सूत्रसे ही जापानके

रोकता। नात्सियोंके निष्कासनके कानूनने बल्कि नात्सियों की रक्षा ही की। एक बार इस सम्बन्धी कमेटीसे पास मिल गया, तो फिर भूतपूर्व नात्सी बेखटका हो जाता था।

अब हमें और ब्यौरोंमें जानेकी आवश्यकता नहीं है। सबसे बड़ा छिनरा जो डोलीके सङ्ग है, वह तो पूंजीवाद ही है, और ब्रिटेन तथा अमेरिका पूंजीवादी राष्ट्र है। पूंजीवाद और फांसीवादकी जड़ें एक ही है, यदि फांसी-वादकी जड़ें अर्थात् शोषणमूलक पद्धति खतम कर दी जाती है तो साथ ही साथ पूंजीवाद भी तो खतम हो जाता है। इसी कारण आज दुनियाका जो नक्शा है, वह किसी भी प्रकार १६३८-३६ से अधिक आशाप्रद नहीं ज्ञात होता।

इसमें सन्देह नहीं कि अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस आदि पूंजीवादी शक्तियां अब भी दुनियाको लूटना चाहती हैं। ब्रिटेनमें लेबर सरकारके आनेसे जिनको बहुत आशा हुई थी, वे उसकी वैदेशिक नीतिसे बराबर निराश रहे हैं। देशमें भी उसने समाजवादका जो ढोंग रचा है, उससे स्थिर स्वार्थ खतम नहीं हुए, बल्कि उनका रूप बदल गया और उनपर नियन्त्रण हो गया। यह किसी भी तरह नहीं कहा जा सकता कि आज ब्रिटेनकी जनता सचमुच अर्थमें देशके शासक है।

१६१४-१८ के युद्धके बाद जिस तरह सोवियट रूसके रूपमें दुनियाको एक विराट प्रगतिशील शक्तिका उदय हुआ था। उस प्रकार इस युद्धके बाद किसी नयी शक्तिका उदय नहीं हुआ, अवश्य कुछ स्लैव छोटे देश तथा पोलैण्ड एक बड़ी हदतक लोकतांत्रिक राष्ट्रोंके रूपमें उदित हुए हैं, पर अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस इन तीन प्रतिक्रियावादी शक्तियोंके आर्थिक हमलेके सामने कबतक केवल रूसके सहारे टिक सकेंगे इसमें सन्देह है।

अवश्य युद्धोत्तर जगतकी आयके लेखेमें हम हिन्देशिया आदि नये राष्ट्रोंके उदयको ले सकते हैं। भारतवर्षने भी नये युगकी पूर्व सूचना दिखायी पड़ रही है। बर्मा और भारतवर्ष इन क्षेत्रमें कन्धेसे कन्धा मिलाकर चलते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं। एशियाके अन्य देशोंमें जागरणके लक्षण दिखायी दे रहे हैं। पर हम जानते हैं कि इन क्षेत्रोंमें जो कुछ भी प्रगति हुई है और होनेवाली है वह कथित मित्र शक्तियोंके बावजूद बल्कि उनके विरोधमें हुई है।



जेनरल फ्रैंकोने स्पेनके लिये तथा कथित राजतंत्रकी प्रतिष्ठा की घोषणा की है।

एक अफवाह तो यह है कि भारत, बर्मा आदिके साथ ब्रिटिश साम्राज्यवाद इसलिये और भी जल्दी समझौता करनेके लिये उत्सुक है कि वह समझता है कि युद्धके दौरानमें तथा १६४२ के सिलसिलेमें जिन क्रांतिकारी शक्तियोंका देशमें उदय हुआ है, उनको टाला नहीं जा सकता, न दबाया जा सकता है, एक ही तरीकेसे उनपर कुछ रोक थाम की जा सकती है, वह यह है कि पुराने नेताओंके साथ समझौता कर लिया जाय। इस प्रकार इन क्षेत्रोंमें भी साम्राज्यवादका उद्देश्य उतना उदार नहीं है जितना कि कुछ लोग समझनेके लिये उधार खाये बैठे हुए हैं!

इस प्रकार जिस दृष्टिसे भी हम देखें युद्धोत्तर जगतमें साम्राज्यवादने अपने उद्देश्य नहीं बदले हैं, उसने तरीके शायद कुछ बदले हैं, पर ऐसा मजबूरीसे है। अवश्य आज साम्राज्यवादके पैरके नीचेसे जमीन पहलेके मुकाबिलेमें कुछ खिसकती हुई नजर आती है, पर ऐसा जनशक्तियोंके उदयके कारण हैं। पर फिर भी साम्राज्यवाद बिना युद्ध किये शक्ति त्याग करेगा ऐसा समझनेका कोई कारण नहीं है। हम जो दिखा चुके हैं उससे यह साबित है कि युद्धका अन्त नहीं हुआ है, और हम अब भी एक ज्वालामुखीके किनारे खड़े हैं।

———

प्रगतिवादकी शव-परीक्षा

श्री सत्यदेव

साहित्य और दर्शनका बहुत ही निकट सम्बन्ध है। राजनीति अर्थशास्त्र और नीति शास्त्र वगैरह भी, साहित्य की ही भांति, किसी दर्शन विशेष पर आधारित हैं। मनुष्य अपने विकास-क्रममें (भौतिक विकास) दर्शन-विशेषकी सृष्टि करना चाहता है और दर्शन-विशेषके प्रकाशमें अपने विकाश-क्रमको भी संचालित करता है। अपने कथनकी व्याख्या करनेके पहले एक बात मैं कह देना चाहता हूं कि दर्शनसे तात्पर्य्य है मनुष्यका जीवन तथा जगत्के प्रति दृष्टिकोण।

हमारे विचार कैसे निर्मित होते हैं ? हम जानना चाहते हैं कि पुस्तक क्या है ? कागज है। कागज क्या है ? आज का वैज्ञानिक लेबोरेटरीमें आपको दिखा सकता है कि वह भिन्न तत्वोंसे बना है तथा इनकी भिन्न-भिन्न विशेषताएं हैं, भिन्न-भिन्न क्रियाएं हैं। वस्तुके ज्ञान तथा वैज्ञानिक उन्नतिके आधारपर विचार निर्मित होते हैं तथा इनमें संशोधन होता रहता है। अतः दर्शनके आधार पर मनुष्य अपने जीवनको संचालित करता है—साहित्य, राजनीति, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा समाज-शास्त्र इत्यादिकी नींव तैयार करता है। जिस युगमें उपलब्ध, ज्ञान तथा दर्शनके बीच निकट संबंध स्थापित नहीं हो पाता, मानव-समाजके विकासमें बाधा उपस्थित हो जाती हैं। प्रगतिवादका दार्शनिक आधार, मार्क्सवाद, आज रूढ़िग्रस्त हो चुका है। जन्मसिद्ध मार्क्सवादी नवीन वैज्ञानिक आन्वेषणोंके प्रकाश में अपने दर्शन का संशोधन नहीं करना चाहते। नीतिके क्षेत्रमें, राजनीति तथा साहित्यमें रूढ़िग्रस्त मार्क्सवादी दुनियाकी इस संकटतम घड़ीमें आज अपनी जिस उत्तर-दायित्वहीनताका परिचय दे रहे हैं उसे देखकर सभी गम्भीर विचारकोंके कान खड़े हो गये हैं। रूढ़िग्रस्त मार्क्सवाद पर आधारित नीति तथा राजनीतिके सैद्धान्तिक तथा क्रिया-त्मक पक्षकी विवेचना अत्यंत रोचक होते हुए भी मैं इस लोभका संवरण करके केवल साहित्यके सम्बन्धमें ही अपना ध्यान केंद्रित करूंगा।

प्रगतिवादका अधार है मार्क्सवाद (भौतिकवाद+द्वंद्ववाद)। विरोधी शक्तियोंके संघर्षके फलस्वरूप 'स्वस्थ रूपका उद्भव और अस्वस्थ रूपका लय आप-से आप होता रहता है।' मार्क्सवाद इस स्थान पर किसी दैवी सत्ताके पूर्व निश्चित नियम पर अंधविश्वास करता है —अन्यथा स्वस्थ-रूप का उद्भव और अस्वस्थ रूपका लय स्वतः किस भांति संभव हो सकता है ? आयडियलिस्ट दार्शनिक भी सत्य और असत्यके संघर्षके द्वारा सत्यकी जीत और असत्यकी हारका सिद्धान्त मानता आया है। इस दृष्टिसे मार्क्सवाद भी आयडियलिज्म का शिकार होनेसे नहीं बच सका। यदि हम खुली आंखोंसे मानव समाजके विकासके इतिहासपर गौर करें तो पता चलेगा कि अपेक्षित दिशामें भौतिक शक्तियोंके विकासके निमित्त चेतनताका कितना अधिक हाथ रहा है। इस सत्यको नहीं समझ सकनेके कारण, 'चढ़ती धूप' की भूमिकामें प्रगतिवादी अंचलने अपनी भ्रमात्मक धारणाका परिचय दिया है। "मनुष्यका अस्तित्व उसकी चेतनाको निर्धारित करता है और यह कहना कि मानव-चेतना उसकी जीवन-सत्ताको निरूपित करती है, गलत है।' क्या प्रगतिवादी इसका उत्तर दे सकते हैं कि पूंजीवादी वातावरणमें, विशेषतः उन्नतकालके पूंजीवादी वातावरणमें, रहनेवाले मार्क्सने समाजवादके सिद्धान्तको किस भांति प्रणयन किया ?

यदि मनुष्यकी दृष्टि भविष्यके अंधकारमें भी पैठ सकती है तो कोई कारण नहीं है कि व्यक्ति अपनी चेतनाके बलसे जीवन सत्ताको निरूपित नहीं कर सकता ! मानव-समाजके विकाशमें परिवृत्ति मात्रपर जोर देनेके कारण प्रगतिवादियोंने आज अपनेको प्रतिक्रियावादियोंके कैंपमें शामिल कर दिया है। यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रगतिवादी, व्यक्ति सभी प्रकारके बंधनोंसे मुक्त हैं का आदर्श मानते ही नहीं, खुल्लम खुल्ला विरोध करते हैं। आध्यात्मिक तथा आधदैविक सत्ताओंके बंधनसे मुक्त कराकर मार्क्सवादने व्यक्तिको समष्टिके भारसे दबा दिया है। 'चढ़ती धूप' में ममतासे

मोहनने कहा कि 'धरतीमें गड़कर धरतीके तलको जरा ऊंचा कर जाना-भविष्यकी पुष्टिके लिये जीवन और वर्तमानको होम देना—अपनेको स्वाहा कर देना तुम पहचान चुकी हो। × × × व्यक्तिको समष्टिके सम्मुख क्या समझा जाय? महासागरके सामने एक विन्दुके लिये तुम रोती हो! (पृष्ठ ४७-४८)' अतः पं० इलाचन्द्र जोशीका कहना ठीक ही जंचता है कि ' × + + किसी भी समष्टिके अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजी सत्ता रखता है। समष्टियोंमें रहकर सम्बद्ध जीवन व्यतीत करने वाले पशुओंसे मनुष्योंकी विशेषता यहीं पर है। व्यक्तिके इस अपनेपनकी अवज्ञा करके जो लोग कलाके क्षेत्रमें भी समष्टिवाद लाना चाहते हैं, वे मानव-जातिकी चेतना पर भेड़ोंकी चेतनासे अधिक श्रद्धा नहीं रखते, यह निश्चित है'।

गोर्की की यह धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण है कि व्यक्तिवादका कारण है वैयक्तिक संपत्ति ('कल्चर ऐंड दि पिपुल')। चूं कि वैयक्तिक संपत्तिका भावी समाजमें समाजीकरण होगा, इसलिये यह सोचना कि व्यक्तिका भी समाजीकरण हो जायेगा, सर्वथा अवैज्ञानिक है। मनुष्यमें व्यक्तित्वके फैलाव की मांग निहित है, और यह फैलावकी क्रिया बायोलौजिकल है। वैयक्तिक संपत्तिके दुश्मन होनेके कारण ये व्यक्तिवादके भी शत्रु हैं, और यही कारण है कि साहित्य, जो जीवनकी अभिव्यक्ति है, के क्षेत्रमें प्रगतिवादी 'कलेक्टिव-इमोशन' अथवा 'सामूहिक रस' का सिद्धान्त उपस्थित करते हैं, और साहित्यको 'सामाजिक सृष्टि' मानते हैं। दूसरी ओर, कुछ प्रामाणिक चितकोंका मत है कि साहित्य 'वैयक्तिक सृष्टि' है। इस सम्बन्धमें सामाधान उपस्थित करनेके पहले मानव-जीवनके पहलुओं पर गौर कर लेना आवश्यक होगा। मनुष्यके जीवनके दो पहलू हैं—भौतिक तथा सांस्कृतिक। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है कि मनुष्यका विकास एक ओर भौतिक जगत पर अपेक्षित है और दूसरी ओर व्यक्तित्वके फैलावकी मांग पर। इन दोनोंमें केवल पहले पर ही जोर देना बुद्धि संमत नहीं होगा। केवल पहले ही पहलू पर जोर देने के कारण प्रगतिवादियोंके हाथ में आज साहित्यकी दुर्दशा हो रही है। इस सम्बन्धमें विस्तृत रूपसे विवेचन नहीं करके मैं 'अज्ञेय' द्वारा दिये गये समाधान पर नये साहित्यकारोंको गंभीरतापूर्वक विचार करनेके लिये निवेदन करूंगा —

"साहित्यकार और प्रगतिशीलताका कोई अर्थ हो सकता तो यही कि वह अनुभूति और परिस्थितिमें कार्य कारण जोड़नेकी वृत्ति है।" ("संक्रान्ति-कालकी कुछ साहित्यिक समस्यायें")

जिन्दगी बदल गयी

प्रीति हो गयी नहीं कि पीर साथ मिल गयी
तीर तो मिला नहीं कि तीव्रधार आ गयी
जीत जो हुई उसीके साथ हार मिल गयी
जिन्दगी मिली नहीं कि जिन्दगी बदल गयी

दर्द बढ़ गया नहीं कि दिल भी मुस्कुरा उठा
दर्द मिट गया नहीं कि दिल भी तिलमिला उठा
अश्रु बह गये कि तबीयत जरा बदल गयी
मौत आ गई नहीं कि जिन्दगी बदल गयी।

प्यार के निशीथ में खड़ा रहा जड़ा रहा
प्यार के प्रभात में विमुग्ध बन पड़ा रहा
साध तो सधी नहीं कि साधना मचल पड़ी
प्राण रह गये नहीं कि जिन्दगी बदल गयी।

शान्ति तो मिली नहीं विरागमें विरोध में
क्रान्ति है पली कभी नहीं विवण्ण क्रोध में
कार्य ही बना सका धरा की सृष्टिको नयी
कर्म बढ़ गया नहीं कि जिन्दगी बदल गयी

वासना उपासना से ध्येय तो मिला नहीं
चिन्तना अचेतना में चैन कुछ मिला नहीं
जब कभी कलामयी विभावना सरस हुई
विश्व भी बदल गया औ जिन्दगी बदल गई।

ब्रजकिशोर 'नारायण'

....फिर कपटोंके साथही यह अन्याय क्यों ?

प्रोफे० एस० पी० कनल बी० ए० आनर्स (लण्डन)

इस लेख का शीर्षक निष्कपट और कपटी दोनों प्रकार के पाठकोंमें लेखकके विरुद्ध क्रोध और घृणाके भावोंको जागृत कर सकता है। कारण इसका यह है कि कपट तो आचार जीवनका महा घृणित रोग समझा जाता है और लोग कपटीसे उतना ही दूर रहना चाहते हैं जितना कि वह किसी प्लेग, चेचक या हैजेके रोगी से। लुत्फ तो यह है कि कपटी भी कपटताकी पुष्टि नहीं करता इसलिए कपटताके पक्षमें कुछ कहना अपने विरुद्ध तूफान उठाना है। कई क्रोधित पाठक मेरे सम्बन्धमें क्या दृष्टि धारण करके मेरे स्थान पर आधुनिक साहित्यकी वृत्ति और प्रवृत्तियोंको दोषी ठहरावेंगे और कहेंगे कि लेखक बेचारा क्या करे! आधुनिक साहित्यकी मांग ही यह है कि परम्परागत गुणोंसे उदासीनता और विमुखता दिखाकर अनाचारमूलक विचारों, व्यक्तियों और व्यवहारोंसे सहानुभूति की जाय। आजकलके उपन्यासोंमें सीता और सावित्रियां नहीं, बल्कि सतीत्व भ्रष्ट स्त्रियां ही नेत्री होती हैं और उन्हींकी पुष्टिके लिये सहानुभूति दिखायी जाती है। यदि नये और अनुभवहीन लेखक आधुनिक साहित्यका यह दोष धारण कर लें तो आश्चर्यकी बात नहीं।

आधुनिक साहित्यकी यह वृत्ति और प्रवृत्ति दोष नहीं गुण हैं। वस्तुओं और व्यवहारों, सत्यों और विचारोंके असीमित रूप हैं। परम्परागत दृष्टि कोण असीमित दृष्टि-कोणोंमेंसे एक है। साहित्यकारका कर्तव्य तो वस्तुओं, विचारों और व्यक्तियोंको नयी दृष्टिसे दिखाना है और उनके अकल्पित और न खोजे हुए रूपोंके दर्शन कराना। साधारण वस्तुओं और व्यक्तियोंकी असाधारणता दिखाना है। तो क्या उसकी ऐसी गति दोषपूर्ण है?

भूतकालसे कपटताका एकही अर्थ लिया गया है परन्तु इसके और भी कई रूप हैं। कपटता आचार जीवनका केवल गुण नहीं इसकी नींव है। कपटता तो आचारकी आत्मा है, उसके विकासकी सामग्री है और उसकी स्थिरता का स्तम्भ है।

वह व्यवहार कपटी है जिससे व्यक्तिके सच्चे भावों और विचारोंका प्रकाश न हो। यदि हमारा व्यवहार सदा हमारे भावों और विचारोंका पूर्ण प्रतिबिम्ब हो तो क्या सामाजिक सभ्यता और शिष्टाचार सम्भव हैं? यदि हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ उसके मनमें आये कहे और करे तो क्या समाजमें गड़बड़ी न मच जाये? यदि पोस्ट-मास्टर अपनी मन मौजसे पोस्ट आफिस खोले और पोस्ट मैन जब उसका जी चाहे डाक बांटे या ले आवे, टिकट बाबू अपने समय पर टिकट दे, गार्ड अपने मनमें जब आवे गाड़ी चलावे या न चलावे और इञ्जिन ड्राइवर जब चाहे गार्डकी आज्ञाको पूरा करे या न करे तो क्या पोस्ट आफिस और रेलगाड़ी जैसी सामाजिक संस्थाएं चल सकती हैं? इसी प्रकार क्या कोई पाठशाला, कालेज और राजनीतिक संस्था एक दिनके लिये भी सम्भव हो सकती है यदि उसके छोटे बड़े पदाधिकारी अपने भावों और विचारोंके अनुसार व्यवहार करें? सामाजिक जीवन तभी ठीक चल सकता है जब हम अपनी इच्छाओं और विचारोंके विरुद्ध सामाजिक नियमके अनुसार व्यवहार करें अर्थात् हमारा व्यवहार हमारे भावोंका दर्पण न हो बल्कि सामाजिक मांगोंका प्रकाश हो। यह कपटता नहीं तो क्या है? इसीलिये किसीने सच कहा है—कि केवल पशु और स्त्रियां ही निष्कपट हो सकते हैं क्योंकि यह सामाजिक मशीनरीके चलानेके उत्तरदायी नहीं।

अब शिष्टाचारको लीजिए—शिष्टाचार अर्थरहित है यदि हम अपने भावोंको न छिपा सकें। वह शिष्टाचार ही क्या जिसमें हम अपने बड़ोंपर क्रोध दिखा सकते हों, जिसमें हम बड़ोंके साथ अपमानजनक व्यवहार कर सकते हों, जिसमें हम दूसरोंकी बहनों-बेटियोंके सतीत्वका अपहरण कर सकते हों, जिसमें हम निजी स्वच्छन्दतासे विमुख और उदासीन हो सकते हों। शिष्टाचारका अभिप्राय तो यह है कि हमारे भाव चाहे दोषी और निकृष्ट क्यों न हों हमारा व्यवहार शुभ होना चाहिये—क्या यह कपटता नहीं? क्या

दूसरोंको हमारे शुभ व्यवहारोंसे हमारे भावोंके सम्बन्धमें धोखा नहीं ?

हमारे उत्तम गुण भी कपटताके रूप हैं। वीरता क्या है ? वही वीर है जो अपने भय पर संयम पाकर भयङ्कर वाह्य वातावरण पर विजय पानेकी चेष्टा करे। दुनियाके प्रसिद्ध सेनापतियोंके जीवन चरित्र पढ़नेसे यह ज्ञात होता है कि उन्होंने भी एक-एक समयपर कितना भय अनुभव किया है परन्तु इस भयको अपनी सेनासे छिपाया है और अपना व्यवहार ऐसा दिखाया है कि सेनाको प्रतीत ही न होने पावे कि वह भयका अनुभव कर रहे हैं। क्या यह कपट नहीं ? इसी प्रकार सतीत्व काम-वासनाओंपर संयम पाकर ऐसा व्यवहार करना है जिससे दूसरेको यह भी अनुभव न हो कि इसमें काम-शक्ति अंश मात्र भी है। क्या यह कपट नहीं ? वास्तवमें आचारपूर्ण जीवन अपने भावोंपर संयमका नाम है जिस मात्रामें हम अपने भावों को दबा सकें और उनकी अभिव्यक्तिका दमन कर सकें उतना ही हम अधिक आचारी बन जाते परन्तु उतने ही क्या हम कपटी नहीं हो जाते ? मनुष्यकी प्रकृति तो मुख्य रूपसे नीच है यदि इसका खुल्लमखुल्ला प्रकाश किया जावे तो मनुष्य पशुमें परिवर्तित हो जावेगा। कपटता ही मनुष्य को पशुओंसे भिन्न और श्रेष्ठ बनाती है। क्या अब भी कपटता अवगुण है ?

जिस भाषाके द्वारा मनुष्य जातिने ज्ञानोपार्जन और आचार विकास किया है वह पूर्ण कपटी है। भाषा हमारे ज्ञान और भावोंके अनुभवोंके अद्वैतका निरादर करती है। किसी भी वैज्ञानिकसे पूछ कर देखिये कि जिस प्रकारका लाल रङ्ग मैं देख रहा हूं वह दूसरा व्यक्ति कोई देख सकता है ? लाल रङ्गका मेरा अनुभव किसी दूसरे व्यक्तिके लाल रङ्गके अनुभवसे समरूप नहीं, क्योंकि मैं और दूसरे जन अद्वैत हैं। परन्तु भिन्न अनुभव रखनेपर भी कहते हैं कि हम सब लाल रङ्ग देख रहे हैं। क्या हमारे शब्द हमारे ज्ञानानुभावोंके सम्बन्धमें धोखा नहीं देते ? इसी प्रकार जब चेम्बरलेन और चर्चिल कहते हैं कि हम हिटलर और नात्सीवादसे घृणा करते हैं तो क्या शब्द घृणा उनकी घृणा भावकी मात्राओंका कुछ भी अनुभव कराता है ? कदापि नहीं। शब्दोंकी इस त्रुटिको दूर करनेके लिये मनुष्य शब्दोंके वाक्य बना कर अपने ज्ञान और भावानुभवका प्रकाश करता है ताकि उनका सच्चा और ठीक ठीक चित्र दे सके। परन्तु इससे भी कुछ नहीं होता क्योंकि वाक्य भी विचारों और भावोंके अद्वैतका प्रकाश नहीं कर सकते। भाषा अपनी गठनसे ही हमारे मनका ठीक-ठीक प्रकाश न देकर हमारे प्रकाशोंको भी कपटताका रङ्ग दे देती है परन्तु भाषासे बेहतर हमारे भाव प्रकाशोंका दूसरा यंत्र भी क्या है ?

कभी पाठकोंने विचार किया है कि निष्कपटता वहीं संभव हो सकती है जहां व्यक्तिका मन एकाकारी हो अर्थात् उसके भावोंमें अंश मात्र भी किसी प्रकारका कोई विरोध न हो। मनुष्य स्वभाव परस्पर-विरोधी है। इसका बुद्धिपूर्ण प्रकाश तभी हो सकता है जबकि परस्पर भावोंमें से एक समयमें एकका ही प्रकाश किया जाय परन्तु एक प्रकाश दूसरे भावोंके सम्बन्धमें धोखा देता है और इसलिये यह प्रकाश कपटपूर्ण है। यदि दोनों परस्पर विरोधी भाव एकही समय प्रकाश पावें तो हमारा भाषण और व्यवहार अर्थरहित हो जाता है। यह आधुनिक मनोविज्ञानने सिद्ध करके बताया है।

तब जिस कपटतासे ही समाजकी सत्ता सम्भव होती हो, जिस कपटता पर शिष्टाचार, सतीत्व और वीरता जैसे गुणोंका आधार हो, जिस कपटतासे ही उच्च जीवनकी परिभाषा हो, क्या वह कपटता सामाजिक और व्यक्तिगत रूप से हमारी निन्दाके योग्य है ? निष्कपटी तो सामाजिक गठनका नाशक है। यदि सब उसका अनुकरण करें तो आज मनुष्य समाजका इस पृथ्वीमें हड्डियोंके ढेरके सिवाय और कोई चिन्ह ही न रहे।

यह ठीक है कि कई लोग कपटताका अपने स्वार्थी और निकृष्ट उद्देश्योंके लिए प्रयोग करते हैं परन्तु इससे कपटता बुरी तो साबित नहीं होती। कौनसी वस्तु है जिस का मनुष्यने बुरे कामोंके लिये प्रयोग नहीं किया ?—युद्ध जैसे महा अपराधके लिये, पराधीनता जैसे घृणित दासत्व के लिए ईश्वरका सहारा लिया गया है। धर्मको अत्याचारों की पुष्टिके लिये काममें लाया गया है। विज्ञानको मानव संहारका यन्त्र बनाया गया है। तो क्या इसलिये ईश्वर, धर्म, विज्ञान, घृणा योग्य है ? यदि नहीं, तो सिर्फ कपटीके साथ ही यह घोर अन्याय क्यों ?

भारतकी राजनीतिक विचारधारा और विधान परिषद

श्री शिवदेव उपाध्याय बी० ए० बी० एल०

भारत आज एक संक्रान्ति कालसे गुजर रहा है। अनेक विचार धाराएं हैं जिनका प्रवाह कभी एक संगमपर मिल रहा है तो ऐसी भी विचार धाराएं हैं जो विभिन्न पथ गामिनी हैं अतः परस्पर संघर्षशील भी हैं और उनके संघर्षों में देशके विभिन्न जीवन-क्षेत्रोंमें व्यापक रूपमें अवांछनीय प्रतिक्रियाएं भी उत्पन्न हुई हैं। देश तेजीसे प्रगतिके पथपर अग्रसर हो रहा है, तो प्रतिगामी शक्तियां भी सर्वथा निश्चेष्ट नहीं हैं और वे स्वभाव जन्य स्वार्थोंके आधार पर संगठित भी हो रही हैं। भारतीय विधान-परिषद हमारी वर्तमान राजनीतिक विचारधाराका मापदण्ड हो रही है। विधान परिषदके प्रति विभिन्न विचार-धाराओंका रुख अनेक तथ्योंको स्पष्ट करेगा। परिषदके प्रति विभिन्न विचार-धाराओंके लोगोंने विभिन्न प्रवाहोंका अनुसरण किया है। उसके प्रति इन धाराओंका रुख पहले अनुमान जन्य भी था किन्तु गत २८ अप्रैलसे प्रारम्भ होने वाले परिषदके तृतीय प्रारम्भिक अधिवेशनने स्थितिको अधिकांशतः स्पष्ट कर दिया है और जो अस्पष्टता अबतक बनी हुई है उसके सम्बन्धमें अनुमान सम्भवतः निराधार नहीं होंगे।

आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी देशकी जिस राजनीतिक विचारधाराका अनुसरण करती है, उसका उसीने प्रवर्तन भी किया है और सच तो यह है कि विधान परिषद चाहे ब्रिटिश सरकारके आदेश, उसकी १६ मई की योजना द्वारा आयोजित हुई हो, किन्तु है वह कांग्रेसके प्रयत्नोंका ही परिणाम। विधान परिषद द्वारा राष्ट्रके स्वभाग्य-निर्णयके अधिकारका सिद्धान्त भी नया नहीं है, किन्तु इस दिशामें भारतीय राजनीतिकी विचारधाराको प्रवाहित करनेका श्रेय उसी प्रकार पण्डित जवाहरलाल नेहरू को है जिस प्रकार भारतीय समस्याको विश्व-समस्याका ही एक अङ्ग बनानेका श्रेय नेहरूजी को है। नेहरूजीके सम्बन्धमें अधिक लिखनेका प्रसंग यहां नहीं है, किन्तु सरदार वल्लभ भाई पटेलने सत्यकी ही पुनरावृत्ति की थी, जब उन्होंने कहा था कि स्वाधीनता युद्धके नेता जिस प्रकार गांधीजी थे, उसी प्रकार स्वतन्त्र भारतके वैधानिक निर्माणके नेता नेहरूजी हैं। सन्तोषका विषय है कि जिस विधान परिषदके लिये प्रमुखतः नेहरूजीके प्रयत्नसे कांग्रेसने आन्दोलन किया उसका भी संचालन नेहरूजीके ही नेतृत्वमें हो रहा है।

तो नेहरूजीके नेतृत्वमें विधान परिषदमें कांग्रेस किस विचारधाराका नेतृत्व करती है? स्वभाग्य निर्णयके सिद्धान्तको कांग्रेसने चरम सीमा तक पहुंचा दिया है और इसीलिये उसके अध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसादने यहांतक २८ अप्रैलको विधान परिषदमें कहा है कि सम्भवतः परिषदको न केवल संघ का, न केवल प्रान्तोंका बल्कि प्रान्तोंके अंगोंका भी विधान बनाना पड़े। अध्यक्षका संकेत स्पष्ट है। मुसलिम लीग यदि स्वकल्पित पाकिस्तानी प्रान्तोंके विधान निर्माणमें परिषदसे असहयोग करती है और इसके लिये स्वभाग्य-निर्णयकी दुहाई देती है, तो वह पंजाब और बंगालके उन अंचलोंको स्वभाग्य-निर्णयके अधिकारसे बंचित नहीं कर सकती जो पाकिस्तानमें बाध्यतः नहीं रहना चाहते। अध्यक्षने इसीका संकेत पंजाब एवं बङ्गालके विभाजनके लिये किया है। इस सिद्धान्तके आधारपर ही कांग्रेस संघके अधिकार अत्यधिक सीमित रखते हुए संघकी इकाइयोंको अधिकाधिक—यहांतक कि अवशिष्ट क्षमताएं भी देनेको तैयार है। २२ जनवरी १९४७ को विधान परिषदने जो सर्वसम्मत प्रस्ताव स्वीकृत किया है, वह कांग्रेसकी राजनीतिक विचार-धाराका पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। संघ व्यवस्थाके अन्तर्गत विभिन्न इकाइयोंकी पूर्ण स्वाधीनता, नागरिकोंके धार्मिक, सांस्कृतिक, नागरिक एवं आत्मिक मौलिक अधिकारोंकी सुरक्षा, यह कांग्रेसका आदर्श है। देशकी स्वाधीनताका आदर्श उसने स्वतंत्र भारतीय प्रजातंत्र रखा है और इसीको कार्यान्वित करनेमें वह प्रयत्नशील है। विधान परिषद द्वारा जिन्हें उक्त उद्देश्योंकी पूर्तिमें अविश्वास है और उनके अविश्वासका आधार ब्रिटिश सरकारके प्रति जिनका पर-

म्परागत अविश्वास है; उनमें भारतीय समाजवादी दलके लोग प्रमुख हैं और यही लोग इसीलिये संघर्षकी आवश्यकता बताते हैं। किन्तु कांग्रेसके नेता ऐसी स्थितिके प्रति उदासीन कब हैं? वे शान्तिपूर्ण ढंगसे राजनीतिक सत्ता के हस्तान्तरित होनेके प्रति आशान्वित हैं, किन्तु नेहरूजीने परिषदके प्रारम्भिक कालमें ही और गत २८ अप्रैलको उसके अध्यक्षने भी क्या यह सर्वथा स्पष्ट नहीं कर दिया है कि विधान परिषद द्वारा निर्मित्त विधानकी उपेक्षा ब्रिटिश सरकार नहीं कर सकती और यदि वह करना चाहे तो उसका प्रतिरोध किया जायगा? ऐसी सम्भावनाओंको ही लक्ष्य करते हुए तो अध्यक्षने कहा है कि पता नहीं कि किस रूपमें परिषदको अपने द्वारा निर्मित विधानकी पूर्ति करानी पड़े।

संघ व्यवस्थाके प्रति देशी राज्यों एवं मुसलिम लीगकी विचारधाराका प्रसंग यहां अनिवार्य है। लन्दनमें होनेवाली प्रथम गोलमेज परिषदमें देशी नरेशोंने संघमें सम्मिलित होनेका अपना स्पष्ट मन्तव्य प्रकट किया था। किन्तु जून १९३९ में बम्बईमें उनका जो सम्मेलन हुआ था, उसमें वे अपने पहलेके विचारोंसे खिसकते नजर आये। इस बीचमें देशमें अनेक राजनीतिक परिवर्तन हुए। दुनियाका चेहरा बदल गया। भूगोलकी कितनी ही लकीरें बदल गयीं और हिन्दुस्तानके नक्शेकी लकीरें भारतीय विचार-धाराके अनुसार अस्थिर हैं और वे भी बदलेंगी, यह निश्चित है। रणजीत सिंहने भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यको उत्तरोत्तर बढ़ते देखकर भविष्य वक्ताकी भांति कहा था कि "सब लाल हो जायगा" और यद्यपि ऊपरसे देखनेपर हिन्दुस्तानका सारा नक्शा लाल तो नहीं दिखायी पड़ा लेकिन पीली लकीरोंसे घिर रहनेवाले अंचलों—देशी राज्योंका शासन सूत्र वस्तुतः लाल लकीरोंवाले ब्रिटिश भारतके अंगरेज शासकोंके हाथमें ही रहा। और यद्यपि देशी नरेश इस बात को स्वीकार नहीं करना चाहेंगे, लेकिन इस सचाईको वर्तमान जितना प्रमाणित कर रहा है उससे अधिक भविष्य प्रमाणित करेगा कि हिन्दुस्तानके नक्शेका लाल रंग जब बदलेगा, तभी पीली लकीरें भी लाल रङ्गके प्रभुत्वसे मुक्त होंगी! देशी नरेशोंमें जिनके पास राजनीतिज्ञता एवं दूरदर्शिताका अभाव नहीं है, वे स्पष्ट स्वीकार करें या न करें, किन्तु वे महसूस करने लगे हैं और इसलिये वे स्वतन्त्र होनेवाले लाल लकीरोंसे घिरे रहने वाले भारतके साथ संयुक्त होना चाहते हैं। यह उनका कोरा स्वार्थ ही नहीं है। स्वार्थ तो है, क्योंकि इसीसे उनकी रक्षा भी हो सकेगी, किन्तु यह उनकी राजनीतिज्ञता भी है। इसीलिये जून १९३९ में जिस बम्बईमें उन्होंने संघके विरुद्ध आवाज उठायी, उन्होंने ही उसी बम्बईमें अप्रैल १९४७ में संघमें सम्मिलित होनेका नेतृत्व भी किया। विधान परिषदमें आठ देशी राज्योंके १२ प्रतिनिधियोंने इसी प्रेरणासे भाग लिया और जो अभी पीछे रह गये हैं, वे भी आगे आयेंगे, परिस्थितियां तर्कसे भी बड़ी होती हैं और देशी नरेशोंके लिये विधान परिषदमें सम्मिलित होने और भारतीय संघसे संयुक्त रहनेके अतिरिक्त और कोई दूसरी बुद्धिमतापूर्ण परिस्थिति हो ही नहीं सकती।

लेकिन कितने ही नरेश अब भी परिषदसे बाहर हैं। अतः जिन तर्कोंका वे सहारा लेते हैं उनकी भी समीक्षा कर लेनी चाहिये। भारतीय संघमें सम्मिलित होनेके विरुद्ध वे क्या तर्क देते हैं? वस्तुतः उनकी आशंकाही उनका तर्क है। उन्हें आशंका है ब्रिटिश सरकारसे की गयी सन्धियोंके भंग होने एवं अपने निरंकुश राजतंत्रके समाप्त होनेकी और उन्हें आशंका है अपनी आयमें न्यूनता आ जानेकी। अब इन आशंकाओंकी मीमांसा करलेनी चाहिये। ब्रिटिश सरकारके साथ की गयी उनकी सन्धियोंका मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय कानूनकी दृष्टिसे यदि हो भी तो उसे भी बहुत महत्व पूर्ण इसलिये नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जिन परिस्थितियोंमें वे सन्धियां हुईं उनमें देशी रियासतें पूर्ण स्वाधीन नहीं थीं; क्योंकि ब्रिटिश प्रभुत्वके दबावमें ही वे हुई थीं और क्योंकि ब्रिटिश सरकारने सन्धियोंके हो जानेके पश्चात् भी देशी नरेशोंको पूर्ण स्वाधीन कभी नहीं माना। देशी नरेशोंका ऐसा कहकर हम असम्मान नहीं कर रहे हैं कि ह्वाइटहाल और दिल्लीका पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट ही उनका सदासे भाग्य निर्माता रहा है। अनेक नरेशोंकी पदच्युति से हमारे इस कथनकी पुष्टि होती है और किस देशी नरेश को पोलिटिकल डिपार्टमेण्टकी तानाशाही और स्वेच्छाचारिता का कटु अनुभव नहीं है? ऐसी स्थितिमें अन्तर्रा-

ष्ट्रीय कानूनकी दुहाई अगर नरेश देते हैं तो निश्चय ही वे या तो जानबूझकर उसका दुरुपयोग करते हैं या स्वतः भ्रम में हैं। और यदि अन्तर्राष्ट्रीय कानूनका हवाला दिया भी जाय तो उन्हें क्या यह ज्ञात नहीं है कि पिछली चौथाई शताब्दीमें कितने सन्धिपत्रोंका क्या भाग्य हुआ है। परिस्थितियोंने उनका उतना भी मूल्य नहीं रहने दिया जितने मूल्यके कागज पर वे लिखे गये थे।

राजतंत्रगत जिस स्वतन्त्रताका आज वे उपभोग कर रहे हैं और जिसके छिन जानेकी आशंकासे वे आतङ्कित हैं वह स्वतन्त्रता क्या संयुक्त राज्य अमेरिकाके उन राज्योंसे भी बढ़कर है जिनका उपभोग वे राज्य संघमें सम्मिलित होनेके पहले करते रहे? वे पूर्ण स्वाधीन थे, उनकी क्षमताएं असीम थीं, एक दूसरेपर वे आयात और निर्यात कर लगा सकते थे, राजदूतोंकी नियुक्तिका अधिकार उनके हाथमें था। वे अपनी सेनाएं रख सकते थे, उन्हें युद्धकी घोषणा एवं सन्धि करनेके अधिकार थे। जर्मन संघमें सम्मिलित होनेके पहले सेक्सनी और बावेरियाको जैसी स्वाधीनता थी, उससे बड़ी स्वाधीनता क्या देशी राज्योंको है? तो जिस मातृभूमिकी सेवा करनेकी घोषणा वे करते हैं उसके लिये वे अपनी थोड़ी-सी स्वाधीनताका परित्याग संघको शक्तिशाली करनेके लिये नहीं कर सकते? स्विजरलैंड का भी एक उदाहरण हमारे सामने है। मो० मोट्टाने स्विजरलैंडकी फेडरल कौंसिलके लम्बे अरसे तक सदस्य रहने और अक्सर उसके अध्यक्ष होनेके नाते अपने अनुभवोंका उल्लेख करते हुए एक बार कहा था कि, बन्दरसाका काम एक प्रकारसे स्कूलके समान है। इसमें विभिन्न विचारोंके लोग, विभिन्न भाषाओं, विश्वकी समस्याओंपर विभिन्न दृष्टिकोणोंको लेकर एक साथ काम करनेके लिये उपस्थित होते हैं। उनके विचारोंका असाम्य उनकी कार्यशैलीको भी प्रभावित करता है, किन्तु "देशके प्रति अगाध प्रेम और समझौतेकी आन्तरिक भावनाके आधारपर वे सब सहमत होते हैं। जनताकी धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक शान्तिके लिये वे अपने दलगत विचारोंकी भी उपेक्षा करते थे।" तब देशी नरेशोंसे क्या इसकी आशा न की जाय?

संघ व्यवस्थाके अन्तर्गत जिन्हें प्रतिनिधित्व मिलता है, उन्हें इसलिये भी व्यग्र नहीं होना चाहिये कि संघ स्वभावतः ऐसी कोई विधान व्यवस्था कार्यान्वित करनेमें असमर्थ होता है जो उसकी इकाइयोंके विरुद्ध हो और फिर वह अपने ही विधानकी सीमाओंसे भी घिरा रहता है। इसीलिये प्रसिद्ध विधान वेत्ता डाइसीने कहा है कि "संघके अन्तर्गत प्रत्येक व्यवस्थापिका परिषद जो कुछ नियम निर्धारित करती है, वह एक प्रकारसे उपनियम-सा हुआ करता है क्योंकि वह विधानके सबसे बड़े नियमकी सीमाओंके अन्तर्गत बंधा रहता है।" इसलिये संघ प्रणालीसे आतंकित होनेकी कोई आवश्यकता नहीं हैं। संघकी इकाइयोंको अगर संघसे संयुक्त होनेपर अपनी थोड़ीसी स्वाधीनता—बल्कि कहना चाहिये कि—अपनी थोड़ी-सी स्वच्छन्दता या निरंकुशताका परित्याग करना पड़ता है तो अनेक संकट कालोंमें उन्हें सुरक्षाके लिये भी अपेक्षाकृत अधिक सहायता सम्भव हो जाती है। देशी नरेशोंने जिस प्रकार एक एक करके पृथक रहकर अपनी स्वाधीनता अपहरण होते देखा है, वही कूपमण्डूक नीति उनकी भविष्यमें नहीं रहनी चाहिये।

वर्तमान अत्यन्त भयावह है और भविष्य और भी भयावह होनेकी सम्भावनाएं रखता है, अतः राष्ट्रीय कल्याण और स्वतः अपने कल्याणके लिये भी उन्हें कूपमण्डूक नीतिका परित्याग करना ही होगा।

किन्तु मुसलिम लीग इस कूप मण्डूक नीतिका परित्याग नहीं करना चाहती। उसने सहयोग नहीं, असहयोग की नीति अपनायी है, वह संयुक्त नहीं, पृथक होना चाहती है। और सच तो यह है कि इसी आधार पर उसका अस्तित्व है। लीगके पास साम्प्रदायिक विभाजनके अतिरिक्त और कोई आर्थिक पुनर्गठन या सामाजिक पुनरुद्धार की योजना नहीं। साम्प्रदायिक असहयोग और विभाजन उसका उद्देश्य और यही उसका तर्क भी है। साध्य और साधन दोनों ही उसके एक हैं। एक ओर जहां उसने विभाजनके लिये साम्प्रदायिक विषका प्रचार किया वहां उसी साम्प्रदायिक विषको पुनः तर्क और आधार बनाकर विभाजनके पक्षमें उपस्थित किया। लीगकी राजनीतिक विचार-धारा सामन्तवादी और उसकी प्रणाली वर्बर-कालीन है। लीगी नेताओंने अबतक अपने कल्पित राष्ट्र

की जनताके लिये कोई आर्थिक योजना नहीं उपस्थित की, सामाजिक प्रगतिके लिये उसने अबतक किसी कार्यक्रम की ओर सकेत तक नहीं किया है। इसलिये मुसलमानोंके लिये एक स्वतंत्र राष्ट्र—'पाकिस्तानके निर्माणकी मांगके अतिरिक्त राजनीतिक विचार धाराके रूपमें उसका कर्तृत्व नगण्य साही है।

इसी स्थल पर यह बात भी सर्वथा स्पष्ट कर देनी है कि पाकिस्तानके विरोधके रूपमें हिन्दू महासभाके साम्प्रदायिक दृष्टिकोण और उसकी विचार-धारासे भी राष्ट्रवादी विचारधाराको सुरक्षित रखना है। देशके साम्प्रदायिक उपद्रवोंके आधारपर पाकिस्तानके विरोधका नकाब चढ़ाकर हिन्दू साम्प्रदायिक नेता अगर हिन्दू राज्यकी स्थापना करनेका स्वप्न देखना चाहते हों और इस उद्देश्यसे त्रस्त और पीड़ित जनताके मनोभावोंका साम्प्रदायिक उपयोग करना चाहते हों, तो यह उनका भ्रम होगा और तद्विषयक उनका प्रयत्न देशके राजनीतिक स्वास्थ्यके लिये घातक होगा। धर्मोन्मादके आधार पर मुसलिम राज्यकी कल्पना से कम घातक धार्मिक भावावेशमें हिन्दू राज्यकी कल्पना नहीं है। देशव्यापी साम्प्रदायिक उपद्रवोंके बादसे हिन्दू सभावादियोंमें यह विचार धारा प्रवाहित हुई है और राष्ट्र को इससे सतर्क एवं सावधान रहनेकी आवश्यकता है। इस युगमें धार्मिक आधारपर—चाहे वह कोई भी धर्म हो—राष्ट्रका गठन नहीं किया जा सकता और गठन होनेपर वह टिक भी नहीं सकता। इसीलिये मुसलिम लीगकी हठवादिता भी भीषण रूपसे भी घातक है और विधान परिषद से उसका असहयोग उसकी दूषित राजनीतिक विचार-धारा का परिचायक है।

विधान परिषदके सम्बन्धमें एक आशङ्का कुछ लोगों द्वारा उसके परिणामके सम्बन्धमें की गयी है और जिसका आधार ब्रिटिश सरकारकी सद्भावनामें उनका अविश्वास है, उसका स्पष्टीकरण किया जा चुका है। उसके सम्बन्धमें एक और आशङ्का कुछ क्षेत्रोंमें की गयी है और वह यह है कि उसमें देशके सभी भागों एवं सभी सम्प्रदायोंके प्रतिनिधित्व न होनेके कारण उसके द्वारा निर्मित विधानका क्या होगा? प्रश्न वैधानिक एवं व्यवहारिक दोनों ही है और दोनोंका विश्लेषण करना आवश्यक है।

ब्रिटिश मंत्रिदल मिशन द्वारा प्रस्तावित १६ मईकी विधान-योजनाके अन्तर्गत जिस विधान परिषदकी व्यवस्था है, उसके अनुरूप ही प्रस्तुत भारतीय विधान परिषद है या नहीं और ब्रिटिश सरकारके मन्तव्यके प्रतिकूल तो इसकी कार्य प्रणाली नहीं है? उत्तर स्पष्ट है। कांग्रेसने प्रारम्भसे ही इस स्थितिको स्वीकार किया है। और परिषदकी वैधानिक स्थितिमें जो कुछ परिवर्तन आया है, वह आया है ६ दिसम्बरके ब्रिटिश सरकारके वक्तव्य द्वारा। उक्त वक्तव्यमें कहा गया है कि जिनका प्रतिनिधित्व विधान परिषदमें नहीं होगा, उन्हें परिषदके निर्णयको माननेके लिये बाध्य नहीं किया जा सकता। कांग्रेसका भी यह स्पष्ट मत है और एक बार स्वभाग्य-निर्णयका सिद्धान्त स्वीकार कर लेनेके बाद इससे भिन्न मत हो भी नहीं सकता। अतः १६ मई की योजना ६ दिसम्बरके वक्तव्यसे प्रभावित होती है और उसके कारण यदि विधान परिषदकी मान्यतामें कुछ आंशिक भौगोलिक संशोधन होता है तो भी परिषदका मूल समाप्त नहीं होता और उसे अवैधानिक नहीं कहा जा सकता और इस आधार पर मुसलिम लीग या किसी की भी आपत्ति विधानतः उचित नहीं कही जा सकती। अब प्रश्न है व्यवहारिकता का। व्यवहारमें परिषदके निर्णयकी क्या मान्यता है इसके सम्बन्धमें हमें संसारकी कुछ विधान परिषदोंके इतिहासमें जाना पड़ेगा। तद्विषयक तथ्य इस विषयके स्पष्टीकरणमें सहायक होंगे। विधान निर्माणके इतिहासमें ऐसे तथ्योंका अभाव नहीं है कि आंशिक रूपमें भी उपस्थित व्यक्तियोंने आंशिक रूपमें भी राष्ट्रके लिये जब विधान-निर्माण किया तब उनकी मान्यता अवैधानिक नहीं समझी गयी, बल्कि हुआ यह कि जिनका प्रतिनिधित्व विधान निर्माणके समय नहीं हुआ था उन्होंने भी बादको विचार विनिमयके पश्चात् उसी विधानको स्वीकार किया। यदि पहले ही सभीके संयुक्त न होनेपर विधान निर्माणका कार्य स्थगित कर दिया गया होता या छोड़ दिया गया होता, तो कहा नहीं जा सकता कि उसका भविष्य क्या होता और कब विधान निर्माण होता। किन्तु जिन्होंने कार्यारम्भ किया, उन्होंने बाधाओंकी चिन्ता

नहीं की। वे अग्रसर हुए और बादको सभीने उनका स्वागत किया। ऐसे कुछ तथ्योंका उल्लेख यहां आवश्यक है।

भारतीय विधान परिषद जिस प्रकारकी परिस्थितियोंमें अपना कार्य कर रही है उसी प्रकारकी परिस्थितिमें फिलाडेलफिया परिषदने भी अपना कार्यारम्भ किया था। फिलाडेल्फिया विधान परिषद्की परिस्थितियां क्या थीं? पतोमा नदीके जलमार्गके उपयोगके सम्बन्धमें विचार विनिमय करनेके लिये वर्जीनियां और मेलैण्ड देशोंके प्रतिनिधि अलेजेण्ड्रियामें उपस्थित हुए। वाशिंगटनके सुझावपर वे लोग उसके घरपर माउण्ट वर्ननमें पुनः एकत्र हुए और वर्नन कम्पैक्टपर उनके हस्ताक्षर हुए। केवल आर्थिक प्रश्नोंको लेकर उनमें समझौता हुआ किन्तु मेलैण्डका उत्साह बढ़ा और उसने एक दूसरा आयोजन वर्जीनिया, दिलवेयर और पेन्सलवानियाके प्रतिनिधियोंको आमंत्रित करके किया। वर्जीनियाने निमंत्रण स्वीकार किया लेकिन सिर्फ एक शर्तके साथ कि सभी १३ रियासतें विचार विनिमयके लिये आमंत्रित की जायें। सितम्बर १७८६ में अन्नापोलिसमें सम्मेलन हुआ। लेकिन केवल ५ राज्योंके प्रतिनिधियोंने उसमें भाग लिया। किन्तु उनमें इस बातपर समझौता हुआ कि संघकी आवश्यकताओंको देखते हुए सभी व्यवस्थाएं की जायें। २१ फरवरी १७८७ को सभी राज्योंसे प्रार्थना की गयी कि फिलाडेलफियामें वे अपना प्रतिनिधि भेजें। और राज्योंकी तत्कालीन व्यवस्थापिका परिषदोंने फिलाडेलफिया कन्वेंशन के लिये अपने अपने प्रतिनिधियोंका निर्वाचन किया। फिलाडेल्फिया सम्मेलनने विधान निर्माण किया और यद्यपि उस समय उसमें केवल ९ राज्योंने भाग लिया किन्तु किस प्रकार एकके बाद दूसरे राज्यने उसमें सहयोग दिया, उसके विधानको स्वीकृत किया और अन्तमें संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थापना हुई, यह वैधानिक विकासके इतिहासज्ञोंको ज्ञात है। भारतके विभिन्न सम्प्रदायोंके आज जो मनोभाव हैं, उससे भी खराब भाव अमेरिकाके विभिन्न राज्योंमें आपसमें थे और हमारे प्रान्तोंको आज जो सीमित अधिकार हैं, वे तो अमेरिकाके स्वतन्त्र राज्योंके अधिकारोंकी तुलनामें सर्वथा नगण्य हैं। इसलिये व्यवहारिकताकी दृष्टिसे भारतीय विधान परिषदके परिणामोंके प्रति किसी अनिश्चय अथवा आशंकाके लिये कोई कारण नहीं है। १३ अप्रैलको दिल्लीमें भाषण करते हुए इसीलिये पण्डित जवाहरलाल नेहरूने कहा था कि जो लोग अभी विधान परिषदमें आ रहे हैं, उन्हें लेकर काम चलाया जायगा और जो लोग अभी अलग रहना चाहते हैं, वे रहें, किसी दिन वे आकर सम्मिलित होंगे। इसीकी आशा हमें करनी चाहिये और इसीके लिये हमें सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिये लेकिन उनके न आने तक हमें चुपचाप बैठे भी नहीं रहना चाहिये। इतने विशाल देशकी इतनी विशाल जनसंख्याकी प्रगति कुछ अंशों और कुछ लोगोंके असहयोगके कारण रोकी नहीं जा सकती। विधान परिषदका कार्य इसीलिये बढ़ रहा है। उसके प्रति आशङ्काओंके लिये कोई स्थान नहीं होना चाहिये। क्योंकि यदि कुछ आशङ्काएं हों भी, तो राष्ट्रको उनका निराकरण करना होगा, केवल ब्रिटिश सरकारकी कृपापर ही तो हमें अवलम्बित नहीं रहना है और उस ब्रिटिश सरकारकी कृपा पर जो जून १९४८ तक भारत खाली कर देनेकी घोषणा कर चुकी है। कांग्रेसने परिषद और उसके निर्णयोंके प्रति यही भाव अपनाया है अतः देशको उसके नेतृत्वमें आस्था रखते हुए चलना है। और इसीलिये समाजवादी नेताओंकी यह विचार-धारा कि हमें ब्रिटिश सरकार की घोषणाओंपर विश्वास न करते हुए संघर्ष करना चाहिये, इस समय असङ्गत है। इसलिए असङ्गत है क्योंकि विगत २० जूनकी ब्रिटिश सरकारकी घोषणाके अनुसार अब हमें ब्रिटिश सरकारकी कृपा पर अवलम्बित रहनेकी आवश्यकता नहीं है, हमें तो अब सम्पूर्ण सत्ता लेनेके लिए तैयार रहना चाहिए और वह सत्ता जितनी ब्रिटिश सरकारकी २० फरवरीकी घोषणाके अनुसार मिलती है, उतनी ही विधान परिषद द्वारा भी। एकसे साध्यकी घोषणा होती है तो दूसरीसे साधनकी प्राप्ति। विधान परिषद इसीलिये दिल्ली में भारतका भाग्य-निर्माण कर रही है और राष्ट्रका भाग्य उसके हाथमें सुरक्षित है।

सरदार अजीत सिंहके संस्मरण :

पंजाबका वह सरदार

श्री मातासेवक पाठक सम्पादक दैनिक 'विश्वमित्र'

अभी कई सप्ताह पहले महात्मा गांधीने नेताजी सुभाषचन्द्र बोसके सम्बन्धमें यह कहा था कि, "सुभाष चन्द्र बोसको जिन कठिनाइयोंसे होकर निकलना पड़ा, कोई अल्पतर व्यक्ति होता, तो वह उनका शिकार हो गया होता।" सुभाष बाबूको निस्सन्देह अनेक परीक्षणोंसे होकर निकलना पड़ा था, किन्तु जितनी कठिनाइयां पंजाबके सरदार अजीत सिंहको अपने जीवनमें मातृभूमिकी स्वतन्त्रताके लिये झेलनी पड़ी हैं, उतनी नेताजी या कदाचित् अन्य किसी भारतीय क्रान्तिकारी नेताको नहीं झेलनी पड़ी होंगी। परन्तु सरदारजी सारी अग्नि-परीक्षाओंसे तप्त कांचनवत् अधिकाधिक दीप्तिमान् निकले हैं। आज वे लगभग चालीस वर्षके पश्चात् स्वदेश लौटे हैं, अतएव हमारे पचास-साठ वर्षसे कम अवस्था वालोंको उनके सम्बन्धमें यदि विशेष ज्ञान नहीं है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या? परन्तु बंगभंगके आन्दोलनके समय पंजाबके जिन क्रान्तिकारी युवकोंने अपने बंगाली भाइयोंका पूरा-पूरा साथ दिया था, उनके प्रधान नेता सरदार अजीतसिंह ही थे। विशेषकर १९०६ ई० वाली कलकत्ता कांग्रेसके पश्चात् सरदार अजीत सिंहने पंजाबमें जो अंग्रेज विरोधी प्रचंड आन्दोलन छेड़ा था, उसके कारण वे देखते-ही-देखते केवल पंजाबके ही नहीं, समस्त भारतके चोटीके नेताओंमें गिने जाने लगे थे और वह समय आते देर नहीं हुई, जब सम्पूर्ण भारतने एक स्वरसे लाला लाजपत राय और सरदार अजीत सिंहको मांडलेके किलेकी नजरबन्दीसे मुक्त करनेके लिये अंग्रेज सरकारसे मांग की थी और उसे लेकर इतना प्रबल आन्दोलन छेड़ा गया था कि अन्तमें उसके सामने सरकारको झुकना पड़ा था। एक ऐसे महान नेताका संक्षिप्त परिचय देना ही प्रस्तुत लेखकका उद्देश्य है।

आदर्श परिवार

सरदार अजीत सिंहकी अवस्था इस समय सत्तर वर्षके लगभग है। आप जिन सरदार अर्जुन सिंहके मझले पुत्र हैं, उनके दो सुपुत्र और थे—सरदार किशन सिंह इनसे बड़े और सरदार स्वर्ण सिंह छोटे थे। इन तीनों सरदार बन्धुओंके सम्बन्धमें इतनाही कहना पर्याप्त होगा कि उन्होंने भारतमाताका अंग्रेजोंकी गुलामीसे उद्धार करनेका जो पवित्र व्रत ग्रहण किया, उसके लिये अपना सर्वस्व निछावर कर देनेमें कोई कसर नहीं रखी। सरदार साहबके ज्येष्ठ भ्राता सरदार किशन सिंह . ही सुपुत्र थे वे सरदार भगत सिंह, जिन्होंने लाला लाजपत रायके वक्षस्थलपर अत्यन्त कायरतापूर्ण प्रहार करनेवाले अंग्रेज सौंडर्सको गोलीके घाट उतार कर अन्तमें फांसीके तख्तेको चूमा था और 'इन्किलाब जिन्दाबाद' का घोष करते हुए अपनी इहलीला संवरण की थी। जैसा कि पं० जवाहरलाल नेहरूने अपनी पुस्तकमें लिखा है, सरदार भगत सिंहकी फांसीसे लटकनेके समय तक अपने चाचा सरदार अजीत सिंहसे सम्पर्क स्थापित करनेकी हसरत बनी रही, किन्तु बहुत अधिक प्रयत्न करने पर भी उस वीरात्माको सरदार साहबका पता देना न तो सरकारके लिये संभव हुआ था और न किसी भारतीय नेताके लिये ही। हमें यह भलीभांति स्मरण आ रहा है कि पीछे सरदार साहबके दक्षिण अमरीकाके, ब्रेजील प्रजातन्त्रमें होनेका पता शीघ्र ही लग गया था और वहांसे उनके पत्र भी आये थे, किन्तु सरदार भगत सिंह तब चले जा चुके थे। इन पंक्तियोंके लेखकको सरदार अजीत सिंह के सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य उस समय प्राप्त हुआ था, जब वे अंग्रेज सरकारके जेलखानों . पड़कर सड़नेमें कोई लाभ न देखकर विदेशोंमें जा भारतमाताका उद्धार करनेकी योजना बना चुके थे और स्वदेशसे निकल जानेकी तैयारी एक प्रकारसे पूरी कर चुके थे। उस समय सरदार साहबने बताया था कि उनके पूज्य पिता जब इनको जल्दी जल्दी घर आते देखते थे, तो बहुत बिगड़ते थे और जोरूका मुंह

देखनेके लिये घर न आ भारतमाताके उद्धारमें ही सारा ध्यान, समय और शक्ति लगानेको प्रेरित किया करते थे। सरदार अजीत सिहकी भांति ही वे अपने अन्य दोनों पुत्रों को भी निरन्तर प्रेरणा प्रदान करते देखे जाते थे। नयी दिल्ली से मार्चके अन्तमें जो पत्र सरदार साहबने लेखकके पास भेजा है, उससे उनकी रुग्णावस्थाका दुःखद समाचार ध्यान को बरबस उस समयकी ओर खींच ले जाता है, जब चालीस वर्ष पूर्व पूर्ण रूपसे स्वस्थ और एक भव्य रूपमें सरदारजी-के दर्शन करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ था। बड़े भाई सरदार किशन सिह उस समय भी स्वतन्त्रताकी लड़ाईमें व्यस्त थे, जब उनका लाल सरदार भगत सिह हंसता हुआ फांसीके तख्तेपर चढ़ा था और उसके बाद भी सरदार साहबके छोटे भाई सरदार स्वर्ण सिहने भी जेल-यात्रामें ही अपना स्वास्थ्य खोया था और अन्तमें अल्पावस्था हीमें यक्ष्माके शिकार बन गये थे। सरदार भगतसिह के भाइयों और बहनको भी नौकरशाहीके कोपका शिकार एकाधिक बार बनना पड़ा था।

प्रथम आन्दोलन

सरदार अजीतसिह वैसे तो और पहलेसे पंजाबके किसानोंमें देशभक्तिका मंत्र फूकनेमें लग रहे थे, किन्तु १९०६ वाली कलकत्ता कांग्रेसमें सम्मिलित होनेके पश्चात् जब वे अपने ज्येष्ठ भ्राताके साथ घर लौटे तब तो वे उन लोकमान्य तिलकके पूर्ण भक्त बन गये थे, जो उस समयकी राष्ट्रीय कांग्रेसकी 'भिक्षां देहि' नीतिका अन्त करके उसे स्वावलम्बी बनानेके उच्च उद्देश्यको लेकर कांग्रेस परसे माडरेट (नरमदली) नेताओंका प्राधान्य मिटा देनेके लिये प्रयत्नशील हो रहे थे। पंजाबमें नये कालोनी एक्ट और दुआबाबारी एक्ट नामके जो कानून बनाये गये थे, वे किसानोंको बुरी तरह पीसनेवाले थे, इसलिये पंजाब भरमें उनके विरुद्ध घोर असन्तोष था। कलकत्तेसे लौटने पर सरदार अजीतसिहने उसे क्रान्तिका रूप देनेकी ठान ली और 'पगड़ी सम्भाल ओ जट्टा' का नारा लगाते हुए कानून भंग करनेके लिये किसानोंका संगठन करनेमें लग गये। शीघ्रही उनका वह आन्दोलन देहातोंसे फैल कर शहरोंमें भी व्याप्त हो गया और सरदार साहब अपने व्याख्यानोंमें उन कानूनोंके प्रतिवादमें सेना और पुलिसकी नौकरी छोड़नेके लिये भी लोगोंको उभाड़ने लग गये। लाला लाजपतराय भी अपनी सारी शक्तिसे आन्दोलनका समर्थन करने लग गये। नौकरशाही आंदोलनके बढ़ते हुए प्रवाहसे इतनी भयभीत हो उठी कि १८१८ के तीसरे रेगुलेशनके अनुसार सरदार और लालाजी को चुपचाप पकड़ कर निर्वासित कर देनेका निश्चय उसने कर लिया। लालाजी तो तत्काल पकड़ लिये गये और मांडलेके किलेमें नजरबन्द कर दिये गये, किन्तु सरदार साहबके भक्तोंको पहलेही पता लग गया था, इसलिये सरदार साहब कई महीने तक अन्तर्ध्यान रहनेके बाद ही गिरफ्तार हुए और उसी किलेमें बन्द किये गये थे। इन नेताओंके विरुद्ध आधुनिक कालमें उस काले कानूनका यह प्रथम ही प्रयोग था, इसलिये इनकी रिहाईके लिये देशव्यापी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ और कांग्रेसके नरम दली नेताओंने भी उसका अपने ढंगसे समर्थन किया। लोकमान्य तिलकके 'केसरी' और 'मरहठा' पत्रोंने और वैसे ही उनके उदीयमान नवीन राष्ट्रीय दलने तो नेताओं के उस देश निकालेके विरुद्ध सारे देशमें खासी धूम मचा दी थी। फलस्वरूप नौकरशाहीको झुकनेको लाचार होना पड़ा और लालाजीके साथ सरदारजी छोड़ दिये गये। पंजाबके वे कानून भी रद्द कर दिये गये।

क्रान्तिका आन्दोलन

परन्तु सरदार अजीतसिह तो पंजाबके उस प्रान्तीय आन्दोलनको भारतकी स्वतन्त्रताके लिये क्रान्तिके आन्दोलनका रूप देनेका आरम्भ पहलेही कर चुके थे, मांडलेसे लौटनेके पश्चात् वे उसकी पूर्तिमें और भी अधिक उत्साहसे लग गये। तब वे अखिल भारतके नेता बनही चुके थे और पंजाबने तो उन्हें अपना सरदारही मान लिया था, इसलिये १९०७ की सूरतवाली कांग्रेसमें भेंट करनेके लिये दो सुनहरे ताज बनवाये गये थे। परन्तु नरमदलियों की कुचालके कारण सूरतकी वह कांग्रेस भंग हो गयी और लाला लाजपतराय माडरेटोंमें मिल गये, इसलिये वे दोनोंही ताज सरदार अजीतसिहको ही भेंट किये गये, जो उस समयसे लोकमान्यके राष्ट्रीय दलके पंजाबमें प्रधान

नेता हुए। बंगालमें बा० विपिनचन्द्र पाल और श्री अरविन्द घोषके नेतृत्वमें लोकमान्यके दलकी शक्ति इतनी बढ़ गयी थी कि नौकरशाहीको उससे बड़ा भय मालूम हुआ और उसे आरम्भमें ही कुचल डालनेका निश्चय कर लिया गया। परन्तु कठोर दमननीतिका एक मात्र परिणाम यह हुआ कि गुप्त रूपमें क्रान्तिकारी आन्दोलन जोर पकड़ने लगा और तब 'अहिंसा'का उपदेश देनेवाले महात्मा गांधीका भारतके राजनीतिक क्षेत्रमें प्रादुर्भाव हुआ नहीं था, इसलिये पाश्चात्य ढंग पर बम और पिस्तौलके अस्त्र स्वतन्त्रताके विरोधियोंमें आतंक पैदा करनेके लिये अपनाये गये और बंगाल तथा पंजाबकी, क्रान्तिकारी पार्टियां बहुत कुछ सम्बद्ध होकर कार्य करने लगीं। उनसे कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध भलेही न रहा हो, पर उनके कितनेही कार्यकर्त्ता सरदार अजीतसिंहमें निस्सन्देह भारी श्रद्धा रखते थे। सरदार अजीतसिंहने लोकमान्यके दलकी पंजाबमें शक्तिवृद्धिके लिये 'भारतमाता सोसाइटी' स्थापित की और लाहौरमें एक विशाल तिलक लाइब्रेरी और विद्यालय स्थापित करनेकी धुनमें थे। कितनेही ट्रैक्ट और पुस्तकें सरदार साहबने लिखीं और प्रकाशित की जिनमेंसे कुछके नाम ये हैं—'बागी मसीह', 'अंगुली पकड़ते पहुंचा पकड़ा', 'देशी फौज', 'मुहब्बाने वतन'। इस कार्यमें सुप्रसिद्ध देश भक्त विद्वान् सूफी अम्बा प्रसादका पूर्ण सहयोग प्राप्त होनेसे सरदार साहबको थोड़े ही समयके भीतर बहुत अधिक प्रचार करनेमें पूरी सफलता प्राप्त हुई। परन्तु इससे नौकरशाहीके भी कान खड़े हो गये और सरदार साहबको राजद्रोहके अभियोगमें गिरफ्तार कर लेनेका निश्चय किया गया। सरदार और सूफी साहबको समय रहते पता लग गया और वे अन्तर्ध्यान हो गये। इस अवस्थामें कई सप्ताह उन्होंने देशके विभिन्न भागोंमें बिताये और भारतसे निकल भागनेकी तैयारियां होती रहीं। नौकरशाहीके जासूस छोड़ गये और सारी शक्ति उन्हें पकड़नेके लिये लगा दी गयी, तो भी वे हाथ नहीं लग सके। लगते भी कैसे जबकि पुलिस तो उन्हें कलकत्तेमें ढूंढ़ रही थी और उन्होंने कराचीकी राह भारत की सीमा पार की। अवश्य, सरदार साहब भारतसे प्रस्थान करनेके पूर्व कलकत्ता आये थे और उस समय वे वहीं पर थे, जब सुप्रसिद्ध अलीपुर बम केसके मामलेका फैसला सुनाया गया था, पर भेदिया पुलिसको चकमा देनेकी कलामें जैसे सूफी अम्बा प्रसाद वैसे ही सरदार साहब ऐसे निष्णात थे कि वह तब किसी स्थान पर पहुंच पाती थी, जब उसे छोड़े कई सप्ताह बीत चुके होते थे। कलकत्तेसे लौटने पर ही सरदार साहब कराची पहुंचे थे, जहां सूफी अम्बा प्रसाद पहले ही पहुंच चुके थे। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि ये दोनों नेता कराचीसे चलकर सकुशल फारस (ईरान) पहुंच गये और अंग्रेज सरकारके जासूस खाक छानते ही रह गये। कहा जाता है कि कराचीमें सरदार साहबको एक पुलिस इन्स्पेक्टरने पहचान लिया था; किन्तु उसने इतने बड़े नेता को पकड़ कर उनके महान् कार्यमें बाधक बनना ठीक नहीं समझा, इसलिये देशभक्तिसे प्रेरित हो अपना परिचय दे अपनी शुभकामनाके साथ उन्हें विदा कर दिया। ईरानके क्रान्तिकारियोंसे मिलकर इन दोनों नेताओंने वहां भी अंग्रेजोंके प्रभावके विरुद्ध बहुत कुछ किया था।

प्रथम युद्धमें

जब १९१४ का प्रथम विश्वव्यापी महायुद्ध छिड़ा था, तब सरदार और सूफीने अंग्रेजोंके विरुद्ध जर्मनी और तुर्की का साथ दिया और भारतको स्वतन्त्र करनेके लिये उसे बहुत उपयुक्त अवसर समझा। अंग्रेजोंकी हिन्दुस्तानी फौजोंको भड़कानेके अभियोगमें सूफी अम्बा प्रसाद तो पकड़ लिये गये, पर सरदार साहब फिर भी बच निकले थे। पीछे सूफी साहबको फांसीकी सजा दी गयी। सूफी साहब काफी पहुंचे हुए योगी थे और बराबर कहा करते थे कि "मैं तो अपनी इच्छासे ही मरूंगा।" वैसा ही हुआ भी। फांसी देनेके लिये जब वे कोठरीसे निकाले जानेको थे तो देखा गया कि उनकी आत्मा पहले ही प्रयाण कर चुकी है। पीछे तो कभी यह भी सुना गया था कि उनकी लाश जब गाड़ दी गयी, तो दूसरे दिन वह उस स्थानसे लापता थी, किन्तु यह असंभव नहीं कि उनके भक्तोंने जिनकी संख्या बहुत अधिक हो चुकी थी—ऐसा प्रसिद्ध किया हो। फिर

(शेष ७५ वें पृष्ठ पर)

स्वाधीनचेकजातिके भाग्यविधाता मैसरिक

प्रो० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र एम० ए० बी० एल०

एक बार बर्नार्ड शा से पूछा गया कि संयुक्तराष्ट्र यूरोपके राष्ट्रपतिके पदके लिये वह किस व्यक्तिका नाम प्रस्तावित करना चाहेंगे उन्होंने उत्तर दिया—" मैं केवल एक ही व्यक्तिको जानता हूं। वह व्यक्ति है मैसरिक।"

यह मैसरिक कौन था? सब विषयोंमें असामान्य प्रतिभा लेकर जिसने जन्म ग्रहण किया था और जो आधुनिक यूरोपके शिक्षा जगत, विचार जगत, समाज साहित्य एवं दर्शनके क्षेत्रमें अपनी उस प्रतिभाकी छाप छोड़ गया है। नूतन चेक जातिके निर्माणमें इस एक व्यक्तिने अपनी बहुमुखी प्रतिभा द्वारा जितना किया उतना आजतक किसी भी देशके जननायक द्वारा संभव नहीं हुआ है।

मैसरिकका जीवन रोमान्स जैसा लगता है। आस्ट्रिया के सम्राट्की विराट जमींदारीमें एक दास परिवारके गृहमें जिस बालकने जन्म लिया था, उसका पिता गाड़ीवान था और माता दासी थी वही आगे चलकर इतिहासमें राष्ट्रपति मैसरिकके नामसे विश्वविख्यात हुआ। स्नेहमयी माता दारिद्र्य दुःखसे घातक होकर भगवान्से प्रार्थना करती, मेरा पुत्र बड़ा होकर निदारुण दुःखका कभी अनुभव नहीं करे। पुत्र भविस्यत्के संबन्धमें माताके मनमें न मालूम कितनी कल्पनायें उठती। कितने रंगीन स्वप्न वह देखा करती। किन्तु गाड़ीवानकी पत्नी उस गरीबिनीने क्या कभी अपने मनमें इतनी बड़ी कल्पनाकी होगी कि उसका पुत्र एक दिन आस्ट्रियाके सम्राट्को राजसिंहासनसे च्युत करके प्रागके राजप्रासादमें चेकोस्लावाकियाके राष्ट्रपतिका जीवन व्यतीत करेगा? स्वयं उस गाड़ीवानके पुत्रने भी यह कल्पना नहीं की होगी कि वयस्क होकर वह एक स्वाधीन राष्ट्रका निर्माण उसका भाग्यविधाता और राष्ट्रपति होगा। किन्तु हमारे जीवनमें कभी-कभी कथा-कहानीसे भी बढ़कर विस्मयजनक प्रतीत होता है। जीवनकी नाट्यशालामें न मालूम कितने प्रकारके चित्र-विचित्र अभिनय चलते रहते हैं।

बालक मैसरिककी जीवन यात्रा आरंभ दुःसह दारिद्र्य के कण्टकवनमें हुआ। बचपनसे ही दरिद्रय जीवनके अनेक कटुतिक्त अनुभव होने लगे। गाड़ीवान पिताकी उर्दी पोशाक जब फटी-पुरानी हो जाती तब मां उसे किसी तरह काट-छांट कर उससे पुत्रके लिये कपड़ा तैयार करती। धनीके लड़कोंकी पुरानी गरम पोशाकसे बालकका जाड़के दिनोंमें शीत-निवारण होता। किन्तु दरिद्रयके ये कटु अनुभव ही उसके भावी जीवनमें उसके चरित्र-निर्माणमें सहायक हुए। दरिद्र जीवनकी उसने प्रयक्ष अभिज्ञता प्राप्त की। इसलिये उसके चरित्रका विकास एक विशाल महीरुहके रूपमें हुआ जिसकी जड़ मिट्टीमें मजबूतीके साथ जमी हुई थी। पिताको अपने मालिककी अनुमतिकी यचना करनी पड़ी बालककी गांवके स्कूलमें भागनेके लिये। किन्तु यह शिक्षा भी कुछ ही दिनों तक चल सकी।

गांवमें ही लोहारका एक कारखाना था उसीमें हथौड़ा लेकर नेहाई पर चोट लगानेमें दिन बीतने लगे। कुछ दिनों के बाद एक स्कूलमें मास्टरी मिल गयी।

जिस समय मैसरिक स्कूलमें शिक्षकका काम करते थे उस समय एक ऐसी घटना हो गयी जिससे उनकी असाधारण बुद्धि एवं प्रत्युत्पन्न मतित्वका परिचय मिलता है। उस समय आस्ट्रियाके साथ प्रसिया और इटलीकी लड़ाई चल रही थी। उन दिनों सैनिक लोग पाटमार्गवर्गी ग्रामोंमें लूट-पाट मचाते हुए युद्ध यात्रा किया करते थे। एक दिन सुना गया कि प्रसियन सिपाही मैसरिकके गांवकी तरफ आ रहे हैं। गांवकी जनता तो मारे भयके सूख कर कांटा हो रही थी। मैसरिक चुप-चाप दौड़ कर उस स्थान पर पहुंचे जहांसे गांवमें प्रवेश किया जा सकता था। वहां सबसे पहला जो घर पड़ता था उसकी दिवार पर खालीसे मोटे-मोटे अक्षरोंमें लिख दिया—"इस गांवमें भीषण रूपसे हैजा हो रहा है।" प्रसियन सिपाही जब वहां पहुंचे तो उन्होंने दूरसे ही दीवाल पर लिखा हुआ देखा और उस गांवमें प्रवेश नहीं किया। संध्या समय गांवके सब लोग एकत्र हुये और उन्होंने बालक मैसरिककी करतूत सुनी तो सबोंने हंसीके कह-कहे लगाये।

वियेना विश्वविद्यालयमें अध्ययन करते हुए मैसरिकके अपने ज्ञानकी अदम्य पिपासा शान्त करनेका सुयोग प्राप्त हुआ। दर्शन एवं अर्थशास्त्रका उन्होंने विशेष रूपसे अध्ययन किया और प्राचीन साहित्यका भी अनुशीलन किया। दूसरे विषयोंकी ओर भी उनकी दिलचस्पी थी।

पुस्तकोंके अध्ययन द्वारा उन्होंने जो ज्ञानार्ज्जन किया था उस ज्ञानको परिपुष्ट करनेके लिए उनके मनमें बाहरी दुनियाके साथ परिचय प्राप्त करनेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई। स्वाधीन देशोंकी जीवन यात्रा प्रणाली, वहांकी रीति नीति तथा शासनतंत्रकी अभिज्ञता प्राप्त करनेके लिए उनके प्राण आकुल हो उठे। इसके लिए कुछ समय तक उन्होंने अरबी भाषाका भी अध्ययन किया। उनकी इच्छा थी किसी विदेशमें राजदूत बनकर जाने की। किन्तु मैसरिकको क्या मालूम कि यह पद उन जैसे साधारण कुलशील व्यक्तिकी पहुंचके बाहर था। इसलिए उधरसे निराश होकर मैसरिक फिर प्राचीन साहित्य एवं दर्शनके अध्ययनमें रत हो गये। अध्ययन करना और मुक्त आकाशके नीचे दूरतक फैली हुई हरियाली पर बैठकर एकान्तमें चिन्तन करना यही उनकी जीवन चर्य्या थी।

मैसरिककी प्रथम पुस्तक मृत्युके संबन्धमें प्रकाशित हुई। इस पुस्तकको लिखकर उन्होंने समझा कि विश्वविद्यालयमें उन्हें अध्यापकका पद मिलेगा। किन्तु यह नहीं हुआ। अब वह वियेनासे लिपजिग चले आये। यहां उनका परिचय एक अमेरिकन किशोरीके साथ हुआ जो अमेरिकाके वोस्टन शहरसे जरमनी संगीत सीखने आयी थी। दोनों परस्परके प्रेम द्वारा आकर्षित हुए। एक साथ मिलकर दर्शन ग्रन्थोंका अनुशीलन करने लगे। अपनी इस प्रेयसीके प्रति वह इतने अनुरक्त हो उठे कि पत्नी रूपमें उसे प्राप्त करनेके लिए अमेरिका जैसे सुदूर देशकी यात्रा की। दोनों विवाह-बन्धनमें आबद्ध हुए और जीवन पर्य्यन्त आदर्श दम्पतिके रूपमें आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत किया। मैसरिकने स्वयं लिखा है कि मेरे जीवनके गठनमें मेरी पत्नीका बहुत कुछ हाथ था। जीवनके अन्धकार पूर्ण क्षणोंमें उसके मधुर सम्पर्क एवं उत्साहपूर्ण वाक्योंसे मुझे बहुत कुछ प्रेरणा मिली थी।

मैसरिक प्रेग चले आये और वहांके एक नये विश्वविद्यालयमें अध्यापकके पद पर नियुक्त हुए। यहां आकर उन्होंने देखा कि चेक जाति राजनीति एवं संस्कृतिके क्षेत्रमें अपनी स्वतंत्रताकी रक्षा करनेमें व्यस्त थी। आस्ट्रिया और जरमनीके साथ उसका शत्रुतापूर्ण भाव था। मैसरिकको अब मालूम हुआ कि अब तक उन्होंने जिन सब विषयोंका अनुशीलन किया है उनके साथ चेक जातिकी मुक्ति-समस्याका बहुत कम संबन्ध है। घटनाचक्रमें पड़कर उन्हें राजनीतिमें आना पड़ा। उन्होंने एक समाचार पत्र प्रकाशित करना शुरू किया।

साठ सालकी उम्रमें मैसरिकने राजनीति क्षेत्रमें सक्रिय रूपसे प्रवेश किया। सन् १९०८ में आस्ट्रियाने बलेरनियाको हड़प लिया था। इसके बाद ही उसने राजद्रोहके अपराधमें तिरपन सर्ब और क्रोचको गिरफ्तार कर लिया। मैसरिकने इस अन्यायका प्रतिवाद किया। यहींसे आस्ट्रियाके विरुद्ध मैसरिकके ऐतिहासिक अभियानका आरम्भ होता है। उन्हें क्या मालूम कि उनके इस अभियानका अन्त स्वाधीन चेकोस्लोवेकियाके अभ्युदयमें होगा। सन् १९१४ में जब यूरोपका प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ उस समय मैसरिककी उम्र पैंसठ सालकी हो चुकी थी। किन्तु इस उम्रमें भी शरीर और मनकी शक्ति क्षीण नहीं हुई थी। अबतक जीवनमें उन्होंने जो ज्ञानार्ज्जन किया था, देश-विदेशोंमें भ्रमण करके जो विचित्र अनुभव प्राप्त किये थे उनकी परीक्षाका समय अब उपस्थित हुआ। अपनी अभिज्ञता, अपनी मानसिक एवं शारीरिक शक्ति तथा अपनी प्रतिभा लेकर वह राजनीतिके भंवरमें कूद पड़े मुक्ति संग्राम के सेनापतिके रूपमें। आस्ट्रियाके उद्धत साम्राज्यका अन्त करके स्वाधीन चेकोस्लोवेकियाकी स्थापना करनेका सुयोग उनके सामने उपस्थित था। इस स्वाधीनताके लिए उन्होंने विप्लवके कण्टकाकीर्ण मार्गका अवलम्बन किया। जिस उम्रमें अधिकांश मनुष्य शान्त जीवनकी कामना करते हैं उस उम्रमें मैसरिकने विप्लवकी वह्निशिखा प्रज्वलित की। उनके व्यक्तित्वकी महिमा इसी समय प्रस्फुटित हुई। मित्र-पक्ष आस्ट्रियाके राजतन्त्रको कायम रखना चाहते थे। मैसरिक उसका अवसान चाहते थे। इसलिए स्वदेशमें रहते हुए विप्लवके षड्यन्त्रको सफल करना संभव नहीं था। स्वदेश छोड़कर हालैण्ड चले गये। वहींसे विप्लवका सूत्र संचालन

करना होगा। अभी विप्लव योजना बिलकुल गुप्त रखी गयी थी। किसीसे यहांतक कि पत्नीसे भी उन्होंने विप्लवकी बात नहीं कही थी। वह जानते थे कि पुलिस उनके पीछेमें उनकी पत्नीको तंग करेगी—और वह पुलिससे झूठ किसी भी हालतमें नहीं कह सकेगी।

सन् १९१४ के नवम्बरमें अपनी एक कन्याको साथ लेकर इटली जानेवाली ट्रेन पर सवार हुए। आस्ट्रियाके सीमांत पर पहुंचते ही विदेश जानेका पासपोर्ट मांगा गया। पासपोर्ट नहीं मिला था। मिलनेकी उम्मीद भी नहीं थी। इसलिये कानूनकी आंखोंमें धूल झोंकनेके सिवा और कोई उपाय नहीं था। मैसरिक अपनी कन्याको साथ लेकर चलती ट्रेनमें सवार हो गये। बस अब इटलीमें उन्हें कौन पकड़ सकता था। कानूनकी दृष्टिसे इस प्रकार आस्ट्रियाका परित्याग करना उनके लिये अवैध कार्य्य अवश्य हुआ था। किन्तु यदि वह ऐसा नहीं करते तो चेकोस्लोवेकियाकी स्वाधीनताका स्वप्न किस प्रकार चरितार्थ होता। इस छोटी-सी घटना पर ही तो एक देशका भाग्य निर्भर करता था। और इस घटनाके तीन साल बाद लेनिनने भी तो इसी तरह अपने प्रवाससे स्वदेशकी यात्रा की थी। लेनिन प्रवासी हुए थे अपने देशमें लौट कर विप्लवकी अग्निशिखा को प्रज्वलित करने; और मैसरिक प्रवासी हुए थे अपने प्रवासमें विप्लवके षड्यन्त्रकी रचना करने और फिर सुयोग उपस्थित होनेपर उसे अपने देशमें मूर्त रूप देनेके लिये। रोम पहुंच कर मैसरिकको सम्पर्क कई विप्लववादियोंके साथ हुआ। आस्ट्रियाके अत्याचारोंका अन्त करनेके लिए उन्होंने मैसरिकका साथ दिया। सन् १९१५ में मैसरिक जेनेवा चले आये और वहांसे उन्होंने अपने षड्यन्त्रका तानाबाना बुनना शुरू किया। गुप्त रूपसे पत्र लिख-लिखकर वह आस्ट्रिया भेजने लगे। अदृश्य स्याहीसे पत्र लिखना उन्होंने पहलेसे ही सीख रखा था। इसलिए विप्लवके संबंधमें जो कुछ सन्देश उन्हें भेजना होता वह इसी कौशल द्वारा अपने देशके विप्लववादियोंके पास भेजते और उन्हें विप्लवके लिए तैयार करते।

किन्तु उनके जीवनमें सबसे कठिन परीक्षाका अवसर उस समय उपस्थित हुआ जब देशकी स्वाधीनताके लिये एक सैन्य दलका संगठन करना आवश्यक समझा जाने लगा। जबतक चेकोस्लोवेकियाकी कोई अपनी सेना नहीं होगी जो स्वाधीनताके लिये संग्राम कर सके तबतक मित्र-शक्तियोंकी ओर सहायता मिलनेकी संभावना नहीं थी। क्या किया जाय। स्वयं वह समर कौशलसे सर्वथा अनभिज्ञ थे। सैन्य दलका संगठन किस प्रकार किया जाय? आस्ट्रियाके सैन्य दलसे भाग कर बहुतसे चेक सैनिक रूस चले गये थे। उन्हींको लेकर रूसमें एक चेकोस्लोवाक सेना संगठित करनेका विचार किया गया। किन्तु उस समय तक रूसके जारका पतन नहीं हुआ था। इसलिये सैन्य-संगठन संभव नहीं था। जारके पतनके बाद वह सुयोग्य उपस्थित हुआ। चालीस हजार जेकोस्लोमके स्वयं-सेवकोंको लेकर एक विराट सैन्यवाहिनी गठित करना था। इसके लिये एक कमेटी बनायी गयी। जो लोग अस्ट्रियाकी सेनासे भाग कर रूस आये हुए थे उनके सामने सिविलियनकी पोशाकमें खड़े होकर मैसरिकने कहा, "यदि आस्ट्रिया-जर्मनी विजयी होकर रूसमें प्रवेश करे तो भी तुम लोग उनके हाथ बन्दी नहीं हो सकते। इसलिये स्वदेशकी मुक्तिके लिये तुम लोग शस्त्र ग्रहण करो। मित्र शक्तियोंकी ओरसे तुम्हें लड़ना होगा। इसके लिये तुम्हें फ्रांसके रणक्षेत्रमें जाना पड़ सकता है।" स्वयंसेवकोंने मौन भावसे उनकी वाणीको सुना, और फिर चुपचाप अपनेको उनके हाथ समर्पित कर दिया। "क्या यह सुननेमें एक कहानी जैसा मालूम नहीं पड़ता कि दर्शनशास्त्रका एक अध्यापक जिसका जीवन गूढ़ तत्वोंके स्नानमें व्यतीत हुआ—साठसे अधिक सालकी उम्रमें एक सैन्य दलका अधिनायक बन कर सैनिकका जीवन व्यतीत करे? मैसरिक अब स्वयंसेवकोंके साथ सैन्य शिविरोंमें रहने लगे। दार्शनिकके शान्त चिन्तनशील जीवनके बदले सैनिकका कर्मकठोर जीवन। सैनिकोंको रोज ब रोज इस बातकी शिक्षा देने लगे कि देशको स्वाधीन बनानेके लिये विदेशमें शस्त्र ग्रहण करके युद्ध करना होगा। युद्धका क्या परिणाम होगा कौन बता सकता है। स्वाधीनताका स्वप्न सफल होगा अथवा स्वप्न ही रह जायगा यह तो भविष्यके गर्भमें है किन्तु स्वाधीनताके लिये अनवरत संग्राम करना होगा।

मैसरिकके मनमें एक नया विचार उठा। सैन्य दलको साथ लेकर साइबेरिया होते हुए अमरिका जाना होगा और

वहांसे फिर सेनाको यूरोपके रण क्षेत्रमें भेजना होगा। फ्रांसके रणक्षेत्रमें और किसी दिशासे पहुंचनेका उपाय भी तो नहीं था। अड़सठ सालकी उम्रमें इस प्रकारका अदम्य साहस धारण करके मैसरिक रेलके तीसरे दर्जेके डब्बेमें सवार हुए और जापानके समुद्र तट पर पहुंचे। मार्गमें रेल गाड़ी पर उनकी लेखनी अविराम मार्गसे चल रही थी। लम्बी तीर्थ यात्रा। पीछे-पीछे चालीस हजार स्वयं-सेवक वाहिनी। अमेरिकाके राष्ट्रपति उडरो विलसनके पास आवेदन पहुंचाना है। वह भी तो पहले एक अध्यापक ही थे। घटनाचक्रसे राजनीतिके क्षेत्रमें चले आये। क्या वे आवेदन पर ध्यान देंगे? राजधानी टोकियो पहुंच कर मैस-रिकने विलसनको एक लम्बा तार दिया। तारमें यह भी लिख दिया···मेरे पीछे-पीछे चालीस हजार स्वयंसेवक वाहिनी आ रही है।

सन् १९१८ के सर्दमें शिकागोमें धूमधामके साथ मैस-रिकका स्वागत हुआ। विलसनके साथ उनकी मुलाकात हुई। दोनों अध्यापकोंने मिल कर न मालूम किन-किन विषयों पर वार्तालाप किया। दोनों ही भजनशील विद्वान थे; केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं। आखिर विलसन इस बात पर राजी हो गये कि जेकोस्लोविकियाको अस्ट्रियासे अलग कर दिया जाय।

इतने दिनोंके बाद मैसरिकका स्वप्न अब सफल होता हुआ दिखायी पड़ा। आस्ट्रियन साम्राज्यका पतन हुआ और तीन सौ सालकी दुःसह पराधीनताके बाद स्वाधीन जेकोस्लोवेकियाकी पताका सगौरव आकाशको चूमने लगा। मैसरिक अभी प्रवासमें ही थे। स्वदेशवासियोंकी ओरसे उन्हें तार मिला—स्वाधीन प्रजातन्त्र राष्ट्रके प्रथम राष्ट्रपति वही निर्वाचित हुए हैं।

कई सालके निर्वाचनके बाद मैसरिकने स्वदेशके लिये प्रस्थान किया। इस बीचमें उनके परिवारवालों पर अनेक विपत्तियां आयीं। पुलिसने उनकी पत्नीको गिरफ्तार किया था, उनकी लड़कीको जेलखानेमें डाल दिया था, उनका एक पुत्र जेलमें ही बीमार होकर मर गया और दूसरे पुत्रको आस्ट्रियन सैनिक बननेके लिये बाध्य होना पड़ा था। राष्ट्रपति बन करके वृद्ध मैसरिक स्वदेश लौटे हैं। स्वदेश-वासियोंने उनके चरणोंमें श्रद्धाके फूल निवेदन किये। जिस दुर्गमें आस्ट्रियाके महामहिम सम्राट्का राज सिंहासन सुशो-भित हो रहा था उसीमें इस दार्शनिक राजनीतिज्ञका निवास स्थान निश्चित हुआ। किन्तु जीवन संगीनी उस समय एक सेनिटोरियममें रुग्न शय्यापर पड़ी हुयी थी। आस्ट्रियन सम्राट्के उस विशाल दुर्गमें मैसरिककी संगीनी हीन पहली रात किस तरह कटी होगी—कौन बता सकता है? अतीत जीवनकी घटनायें एक-एक करके मनमें उठी होंगी और फिर विलीन हो गयी होंगी। जीवन कितना विचित्र है। घटनाओंके प्रवाहमें पड़ कर मनुष्यका जीवन क्यासे-क्या हो जाता है। अदृश्यमें बैठा हुआ कौनसा विधाता पुरुष मनुष्यका भाग्यसूत्र संचालित करता रहता है, कौन जाने!

मैसरिकका जीवन सच-मुच रोमान्सकी तरह चित्ता-कर्षक है। अमेरिकाके राष्ट्रपति लिंकनकी तरह ही मैस-रिकका अधिकांश जीवन दरिद्रतामें बीता। आरम्भसे ही इन्हें परिश्रम करके जीविका निर्वाह करना पड़ा। घोर परिश्रम और अनवरत अध्यवसायके बीच चरित्रका गठन एवं विकाश हुआ। कारखानेमें और फिर एक लोहार की दूकान पर काम करना पड़ा। जिस समय मैसरिक रूसमें निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे थे, टाल्सटाय उनसे मिलने गये थे। उनके हाथकी झुकी हुयी अंगुलियों को देखकर टाल्सटायके चेहरेपर एक दिव्य आनन्दकी आभा दौड़ गयी। उस समय मैसरिक भाषा-विज्ञान, इतिहास और दर्शनके अध्यापक थे। वार्तालापके प्रसंगमें उन्होंने टाल्सटाय को बताया कि जरमन दार्शनिकोंको समझनेमें उन्होंने भूल की है। मैसरिकका चरित्र बहुत ही उज्ज्वल था। ज्ञानी गुणी होनेके साथ-साथ वे बहुत बड़े संयमी थे। आहार-बिहारमें एक आदर्श संयमीकी तरह वह जीवन करते थे। यही कारण है कि वृद्धावस्थामें भी उनका मानसिक एवं शारीरिक स्वा-स्थ्य अक्षुण्ण बना हुआ था। अध्ययन एवं चिन्तनमें उनका अधिकांश समय व्यतीत होता था। दृष्टि उनकी बड़ी पैनी थी। यूरोपकी राजनीतिके संबन्धमें उनका ज्ञान असाधारण था। वह एक चलता-फिरता विश्वज्ञान कोष समझे जाते थे। कामका इतना बड़ा बोझ उनके सिरपर था कि सोने-का अवसर भी बहुत कम मिलता था। सुप्रसिद्ध जरमन साहित्यिक एमिल लुडविगने उनके संबंधमें लिखा है—

"सोते वे बहुत कम थे या नहींके बराबर। साठसे अधिक उम्रके होनेपर भी अपनी शारीरिक कामनाको कायम रखने के लिये उन्होंने घोड़ेकी सवारी करना सीखा था।"

विप्लवी नेता होनेपर भी मैसरिकने अपने जीवनको राजनीतिक मिथ्या एवं कपटाचारसे विमुक्त रखा। उनका खयाल था कि सत्य ही सबसे बड़ा प्रचार कार्य है। देश-प्रेम एवं राष्ट्रीयताका ढिंढोरा पीटना भी उन्हें पसन्द नहीं था। उन्होंने लिखा है—"एक साधारण समझदार आदमी इस बातका बखान करते नहीं फिरता कि मैं अपने माता-पिता, पत्नी और बच्चोंको प्यार करता हूं। उसका यह प्रेम तो स्वभाव सिद्ध होता है। मुझे बराबर इन शब्दोंके उच्चारण करनेमें लज्जा होती है 'मेरा देश', 'मेरा राष्ट्र'।" राष्ट्रपतिके पदपर आसीन होकर उन्हें सबसे अच्छी जो बात लगती थी वह यह थी कि उन्हें अपने पास रुपया पैसा रखकर चलना नहीं पड़ता था उनकी जेबमें एक पेन्सिलके सिवा और कुछ नहीं रहता था।

मैसरिक अपने देशकी उस अपमानजनक स्थितिको देखनेके लिये जीवित नहीं रहे जबकि म्यूनिख पैक्टमें उनके देशको फासिस्ट शक्ति द्वारा पददलित होनेके लिये छोड़ दिया गया। हिटलरको राजधानी प्रेगमें देख कर उन्हें दुःख एवं क्षोभ होता अवश्य किन्तु फिर भी वह अपने देश के भविष्यके संबन्धमें निराश नहीं होते। जिस दिन राष्ट्रपति हाथाने बर्लिनकी चैन्सलरीमें बैठ कर अपने देशकी स्वाधीनता नात्सी जरमनीके हाथ बेच डाली वह सचमुच चेकोस्लोवेकियाके लिये घोर अपमान एवं लज्जाका दिन था। किन्तु जातिके भाग्याकाशमें विपत्तिके जो बादल छा गये थे वे थोड़े ही दिन तक रहे। एक बार फिर मुक्त गगनके नीचे स्वाधीन चेक जातिका झंडा फहराने लगा। चेक जातिके प्राणोंमें मैसरिकने स्वाधीनताकी जो अशान्त पिपासा भर दी है उस यूरोपकी कोई भी राजनीतिक दुरभिसन्धि नष्ट नहीं कर सकती। वह अमर है।

——

व्यंग

श्री विष्णु

क्रोध और दुखसे बा० दीनानाथका दिल फटा पड़ता था। बार बार सिरसे पैर तक एक सिहरन-सी दौड़ जाती थी और वे चौंक चौंक पड़ते थे। उन्होंने आज तक सुखका जीवन बिताया था। कमसे कम उनके और उनके परिवारके आचरणकी सफेद चादर पर अभी तक कोई दाग नहीं लगा था। आचरणके अर्थ क्या थे? इसके लिये उनका अपना कोष था। हर एकका अपना अपना होता है। उसीके अनुसार वे अपने और दुनियाके आचरणकी सीमा रेखा निर्धारित करते हैं। उनकी दृष्टिमें उनके परिवारकी सीमा आज तोड़ दी गयी थी। उनके आचरणके आगे आज एक बड़ा प्रश्नवाचक चिन्ह लगा था। वही चिन्ह उन्हें सन्तप्त किये हुए था। वे क्रोध भरी दृष्टिसे चारो ओर बेबससे देख रहे थे पर उस ज्वालामें भस्म होने वाला लक्ष्य वहां नहीं था।

वे सोचते—आखिर यह हुआ कैसे? कैसे उनका अपना पुत्र ऐसा घृणित आचरण कर सका। उनका पुत्र …? हां! उनका अपना पुत्र ही उनकी इस असहनीय वेदनाका कारण था। वह वेदना साधारण नहीं थी। उनके पुत्रके इस कार्यसे उनके परिवारके पवित्र नाम पर काला धब्बा लगता था। वह दुनियाकी नजरोंमें आचरणहीन साबित होता था। वे देख रहे थे—लोग उनकी ओर उंगली उठा कर कह रहे हैं, देखो। वह उन्हींका लड़का है?

—वह कौन?

—वही जिसकी प्रेम कहानीकी नगर भरमें चर्चा है, जिसका उस लड़कीसे अनुचित सम्बन्ध है……।

वे आगे न सोच सके;उनका सिर घूमने लगा। उन्होंने जोरसे गर्दनको झटका दिया और एक तरहसे चिल्ला उठे, नहीं, नहीं, यह नहीं होगा। मैं उसे जानसे मार डालूंगा!

मैं उसका खून कर दूंगा।

ये सब मनकी बातें थीं। ऊपरसे वे किसीसे भी कुछ नहीं कह रहे थे। परन्तु देखनेवाले जानते थे दालमें कुछ काला है। उनसे कुछ पूछनेकी हिम्मत हर किसीमें नहीं थी। उनकी पत्नीने एक आध बार उनकी इस असाधारण व्यग्रताका कारण जानना चाहा पर वे क्रोधसे चिनचिना कर रह गये, बताया कुछ नहीं। वे नहीं चाहते थे बेटेसे बातें करनेसे पहिले कोई उस बातको जाने फिर भी जब उनकी बहिनने पूछा—भइया, आज आप इतने दुखी क्यों हैं। तो वे अपनेको बसमें न रख सके और क्रुद्ध होकर बोले—ज़ानना चाहती है मैं क्यों दुखी हूं?

बहिन बोली—जाननेके लिये ही तो पूछ रही हूं।

पूछ रही हूं—वे चिनचिनाये और फिर सहसा तेजीसे बोले—तो सुनो उनका कारण तुम हो।

बहिन कांपी—मैं…।

—हां, तुम।

—कैसे भला?

—कैसे! जैसे कुछ जानती ही नहीं। लड़केको आवारा बना दिया। उसे किसी कामका नहीं रखा। उसे ऐसी शिक्षा दी कि…कि…।

भइया! भइया!

—कि वह मेरे कुलमें कलंक लगा सके।

बहिन जैसे गिर पड़ेगी। किवाड़ थामकर उसने कांपते हुये स्वरमें कहा—भइया! आप क्या कह रहे हैं?

उसी तीव्रतासे भइया बोले—ठीक कह रहा हूं।

—ब्रजेशकी बात।

—हां! ब्रजेशकी बात।

—पर सुनूं तो, क्या है?

—क्या करोगी सुन कर? मैं नहीं जानता था तुम उसकी इतनी भी देख भाल नहीं कर सकोगी। तुम उसे इस तरह हाथसे निकल जाने दोगी।

—भइया! आप उसी तरह कहे चले जा रहे हैं। बताते हैं नहीं आखिर क्या बात है? आखिर क्या किया ब्रजेशने और…और…।

और आगे बोलनेमें असमर्थ बहिनका गला रुंध गया। साथ ही उसे इतना क्रोध आया कि वह फिर वहां क्षण भर भी नहीं ठहरी। सीधी अपनी भाभीके पास आकर सुबक सुबक कर रोने लगी। भाभी पहिले ही व्यथित हो रही थी, उसे रोते देख कर और भी घबरा उठी बोली—सुमित्रा क्या हुआ? और तू क्यों रोती है?

… … :……

—अरी बोल तो! भई ऐसे नही रोते। चल उठ, देख दिल घबराने लगेगा…।

भाभी…।

हां बता तो। क्या कह दिया उन्होंने? आज तो उन्होंने हद कर रखी है। न जाने क्या बिजली गिर पड़ी है?

बहिनने जरा संभल कर कहा—भाभी! भइया कहते हैं मैंने ब्रजेशको बिगाड़ दिया।

भाभीका दिल धकसे रह गया—ब्रजेश…।

हां……।

क्या किया उसने?

बताते हैं कि। बस चिनचिना पड़ते हैं।

भाभी जैसे बैठी थी उठ खड़ी हुई। युद्ध क्षेत्रमें जो करुणा और खीज भरी आ रही थी उसका स्थान अब उग्र क्रोधने ले लिया। प्रश्न ब्रजेशका था और वह ब्रजेशकी मां थी। बेटेके लिये मां सिंहनी हो जाती है। पतिके पास पहुंचकर उसने तेजीसे कहा—मैं पूछती हूं आखिर ब्रजेशने क्या कर दिया जो इतना तूफान मचा रखा है?

बा० दीनानाथने एक बार पत्नीको देखा। उन्हें लगा अब वह उनकी पत्नी नहीं है, ब्रजेशकी मां है। उस पर वे शासन नहीं कर सकेंगे, करनेका अर्थ होगा भयंकर विद्रोह। इसीलिये अन्दर ही अन्दर सुलगते हुए उन्होंने उसी तीव्रता से कहा—सुनोगी उसने क्या किया? उसने मेरी नाक काट डाली है। उसने तुम्हारे मुंह पर स्याही पोत दी है। और सुनोगी।

पत्नी एक बार तो धकसे रह गयी पर दूसरे ही क्षण संभल कर कहा—वही तो पूछती हूं तुम्हारी नाक किधरसे कटी है और जहां तक मेरे मुंहका सम्बन्ध है वह सदाकी तरह गोरा चिट्टा है और रहेगा।

देख लूंगा।

देख लेना पर मैं कहती हूं आखिर हुआ क्या?

ब्रजेशको आने दो ।

लेकिन मुझे तो बता दो ।

नहीं, उसीको आने दो । मैं उससे पूछूंगा आखिर इस बुढ़ापेमें मेरे सफेद बालोंको काला करनेकी उसे क्या सूझी ?

ऐसी बात है ?

हां ।

पत्नीने अब एक बार पतिकी आंखोंमें झांका । वे क्रोध और वेदनासे भरी पड़ी थीं । ऊपर जो आग चमक रही थी उसके नीचे खारे पानीका समुद्र हिलोरें ले रहा था । उसका अपना मन भी भीग गया । वह निशस्त्र होकर बोली—न बताओ पर एक बात कहती हूं जवान बेटा है सम्भल कर बात करना ।

और कह कर वह रुकी नहीं, अन्दर चली गयी । उसका दिल भरा आ रहा था पर वह अपने आंसू पतिको नहीं दिखाना चाहती थी । उन आंखोंमें पतिकी बेबसी और मां की पराजय छिपी हुई थी । बा० दीनानाथने यह सब कुछ देखा पर हंस न सके बल्कि उनकी वेदना और भी गहरी हो उठी और वे एक गहरी सांस लेकर अन्दरकी बैठकमें आ बैठे । बैठते ही विचारोंका बांध टूट गया और उस तूफानने उन्हें विचलित कर दिया । वे किसी भी काम में मन न लगा सके । इसोलिये उन्हें कुर्सी पर बैठ कर शून्यमें ताकने और विचारोंका ताना बाना बुननेके अतिरिक्त और कुछ न सूझा ।

बा० दीनानाथकी जवानी कभीकी बीत चुकी थी। बालोंका कालापन बीते युगकी याद बनकर सफेदीमें पलट गया था पर खालमें अब भी झुरियां नहीं पड़ी थीं । वे सरकारी स्कूलके पेन्शन पानेवाले मास्टर थे । उन्होंने लड़कोंपर शासन करना सीखा था और इसीलिये घरमें भी वही शासन चलानेकी आदत पड़ गयी थी । उनकी तीन सन्तानें थीं दो लड़के और एक लड़की । बड़ा लड़का राजेश एम० ए० एल-एल० बी० होकर स्थानीय कालेजमें अभी लैक्चरर नियुक्त हुआ था । छोटा ब्रजेश लखनऊमें, अपनी बुआके पास रहकर, मेडिकल कालेजमें पढ़ रहा था। आशा की जाती थी तीन वर्ष बाद वह अच्छा खासा डाक्टर बनेगा । लड़कीका विवाह जिस घरानेमें हुआ था वे सम्पन्न थे, लड़का वकील था । इस प्रकार उन्हें भविष्यकी कोई विशेष चिन्ता नहीं थी । समाजमें आदर था, घरमें सम्पन्नता थी और मनमें शान्ति पर विधिका विधान ? भूकम्प आनेका समय कोई नहीं जानता । आज सवेरे वे सन्ध्यासे निबट कर बाहर बैठकमें बैठे थे तभी राजेशने आकर उन्हें एक पत्र दिया ।

वे बोले—क्या है ? और पत्र खोलने लगे ।

राजेशने कुछ जवाब नहीं दिया । चुपचाप कुरसी पकड़ खड़ा रहा । उन्होंने फिर पूछा— किसका पत्र है बेटा!

पढ़ लीजिये ।

जवाब सुनकर दीनानाथ बाबूने अचरजसे एक बार पुत्रको देखा फिर चश्मा निकाल कर शीघ्रतासे पत्र पढ़ने लगे । वे अचकचाये जैसे पत्रमें अक्षर नहीं थे, खूनके धब्बे थे । एक बार फिर पुत्रको देखा । वह मुस्करा रहा था और वह मुस्कराहट व्यंग और मात्सर्यसे पूर्ण थी । उन्होंने साहस करके पत्रको पढ़ डाला । प्रत्येक अक्षर पढ़नेके बाद लगता था उन्हें उबकाई आ रही है पर आखिर तो जीवन भर मास्टर रह चुके थे । बहुत कुछ पढ़ा पढ़ाया था, अपनेको संभाले रहे । पत्र हिन्दीमें था । लिखा था—

प्रियतम प्राणेश्वर,

आपका प्रेम पत्र मिला । आप कितने अच्छे हैं ? जी करता है सदा सामने बिठाकर निहारा करूं । जबसे पत्र पाया है हृदयमें एक अजीब प्रकारकी उद्विग्नता भरी आ रही है । क्षण-क्षण भारी हो रहा है । सुनती हूं पुराने युगमें परियां होती थीं । आज क्यों नहीं होती ? काश मैं परी बन पाती तो इसी क्षण उड़कर अपने प्रियतमके पास पहुंच जाती पर···हाय ! इस युगने परोंका प्राप्त करना असम्भव कर दिया है । क्या करूं ? पर कुछ भी हो मैं जानती हूँ, मैं तुम्हारे बिना नहीं जी सकती । तुम्हारेसे जुदा होते ही मालूम होता है जैसे मैं अपनेको खो बैठी हूँ जैसे मेरे दिलकी दुनिया सूनी हो गयी है । तुम मेरे पास होते हो तो मेरा मन खुशीके भारसे दबा रहता है । चले जाते हो तो वेदनाके भारसे दब जाता है । कैसा है यह भार, जिससे मुक्ति ही नहीं मिलती ।

कोई कहता है मुक्ति अवश्य मिलेगी पर तब जब हम तुम एक हो जावेंगे । जब खुशी और वेदनाका द्वित्व दूर हो जावेगा । जब न तुम होगे न मैं हूंगी । माना 'हम' होंगे

जिस तरह यह प्रकृति और पुरुष हैं। देखनेमें दो हैं पर वास्तवमें एक हैं। पर चाहे जो कुछ हो अभी तो हम अलग अलग हैं। यही अलगाव पीड़ा देता है। मैं समाजसे नहीं डरती। मैं छाती ठोक कर कह सकती हूँ मैं तुमसे प्रेम करती हूँ, मैं तुम्हें चाहती हूं, तुम मेरे हो! हां! प्राणेश्वर! तुम मेरे हो! तुम्हारे बिना मैं कुछ नहीं हूँ। छाया जिस प्रकार प्रकाशसे भिन्न नहीं है। आत्मा जिस प्रकार परमात्मामें लय रहती है। ज्योति जिस प्रकार दीपकका अविभाज्य अङ्ग है उसी प्रकार मैं आपकी हूं और आपकी रहूंगी।

आप कब आयेंगे। चिन्ता न करिये, हम सुरक्षित हैं! फिर भी आपको भय लगता है तो कृपा कर बताइये मैं आपसे कहां मिलूं। मेरी छातीमें जो तूफान उठ रहा है वह शान्त होना ही चाहिये और प्रियतम! आप जानते हैं......।

अब आगे उनसे नहीं पढ़ा गया। मस्तक घूमने लगा। क्रोधसे आंखें भभक उठीं। पत्रको मुट्ठीमें मींचकर उन्होंने राजेशको देखा और कहा—यह पत्र तुम्हें कहांसे मिला?

राजेशने विजयी खिलाड़ीकी तरह कहा—ब्रजेशकी जेबमें।

तुमने निकाला?

जी हां।

क्यों?

धोबीको कपड़े देते समय मुझे लगा जेबमें कुछ है। देखा तो यह पत्र था। दीनानाथ बाबू क्षण भर कहनेको शब्द न पाकर उसे देखते ही रह गये फिर थके हुए यात्रीकी तरह कुरसीकी पीठपर लुढ़क गये। कई क्षण आये और गये। राजेश एकटक अपने पिताको देखता रहा। उसका मन एक अद्भुत चक्रमें फंसा हुआ था। उसे खुशी हो रही थी, यह बात तो नहीं थी पर फिर भी वह अपनी अहमियत महसूस कर रहा था और उसे लग रहा था कुटुम्बकी प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा पर विचार करनेका उसका भी हक है। और पिता सोच रहे थे। आखिर यह क्या हुआ? यह अनहोनी कैसे घटी? क्या यह सच है? कहीं छलना तो नहीं है...वे चौंक उठते और देखते, हाथमें वही पत्र है जो राजेशने ब्रजेशकी जेबसे निकाला है; जो किसी लड़कीने ब्रजेशको लिखा है। वह लड़की ब्रजेशको प्रेम करती है; प्रेम......तो ब्रजेश ऐसा है। वह प्रेम करता है छिपकर प्रेम करता है, दुष्ट, कुलांगार, बेइमान, नफ्सका कुत्ता...।

और आंखें फिर क्रोधसे जल उठीं। तेजीसे राजेशसे पूछा—तुम इस लड़कीको जानते हो।

जी नहीं।

कौन हो सकती है?

गरदन हिला कर गम्भीरतासे राजेशने कहा—कुछ पता नहीं। कोई कालेजकी लड़की था कोई बदचलन औरत हो सकती है।

क्षण भर फिर सन्नाटा रहा। दोनों सोचते रहे आखिर दीनानाथ उठे और बोले—ब्रजेश आज ही लौटेगा न?

जी हां, अवश्य।

तब ठीक है। मैं खुद उससे बातें करूंगा। मैं उससे पूछूंगा मेरी नाव अब किनारे लगने वाली है, उसमें वह क्यों छेद करना चाहता है? जिस कुलकी चादरको उसके पुरखोंने आज तक बेदाग रखा है उस पर दाग लगा कर वह क्यों सुर्खरू होना चाहता है।

कहते कहते वे सुर्ख आंखें उबल पड़ीं, पानी भर आया, भर्राये गलेसे बोले—दुनिया कहेगी दीनानाथका लड़का दुराचारी है ..।

और आगे बोलनेमें असमर्थ वे मुंह फिरा कर अन्दर चले गये। राजेश क्षण भर अकेला शून्यमें ताकता रहा फिर वह भी अन्दर आकर कालेज जानेकी तैयारी करने लगा।

❀ ❀ ❀ ❀

आखिर वह सन्ध्या आ पहुंची। गरमी थी, धरतीने राहतकी सांस ली। प्राणियोंके प्राण खिल उठे परबा॰ दीनानाथके घरमें उमस और भी गहरी हो आयी। सबने भारी दिलसे सोचा—बादल अब बरसे, अब बरसे। और बादल भी वे जो आगसे भरे पड़े थे। घरके अन्दर ननद भौजाई चुपचाप रसोईमें लगी रहीं पर रह रह कर वे दोनों चौंक उठती थीं। सुमित्राने एक बार परावंठे पर घी लगाते लगाते चूल्हेमें छोड़ दिया, भाभीको याद नहीं रहा आलूमें नमक डाला है या नहीं। बोली—अरी सुमित्रा! देखना आलूमें नमक है या नहीं। मैं तो भूल गयी। न जाने क्या होने वाला है। इस ब्रजेशने......।

सुमित्रा नमक चखती चखती बोली—भाभी ! ब्रजेशको मैं जानती हूं । समझमें नहीं आता ऐसा उसने क्या कर दिया ?

जानूं तो मैं भी हूं । मेरे ही पेटका तो है पर… ।

तभी बाहर खड़ खड़की आवाज उठी । आंख उठा कर देखा—ब्रजेश आ गया था । वही हंसमुख, भरा हुआ चेहरा आंखोंमें मस्ती, ओठोंमें मुस्कान और नस नस जैसे चुलबुलाती हो । बाहरसे ही जोरसे बोला—भाभी ओ भाभी ! बुआ री !…ओह नमस्ते… ।

नमस्ते !

बड़ा अच्छा ट्रिप रहा ।

हूं ।

ब्रजेशने क्षण भर रुक कर यह देखनेकी बिल्कुल चिन्ता नहीं की कि उसकी मां और बुआ आज कितनी त्रस्त हैं बल्कि वहींसे जूता उतारते उतारते बोला—अरे भई बड़ी भूख लगी है । खाना बन गया क्या ?

बन रहा है ।

तो आता हूं । पिताजी कहां हैं ? भइया आये ?

तभी बुआ और मांके दिलको कपांती हुई उसके पिताकी आवाज आयी ब्रजेश ।

जी पिताजी ।

इधर आओ ।

आता हूं जी ।

मां ने बुआको देखा और बुआ ने मांको । ब्रजेश खुशी से सीटी बजाता हुआ पिताके पास चला गया । मां उठी—मैं देखती हूं… ।

न, न, भाभी । सुमित्राने कहा—तुम मत जाओ । वह मेरे पास रहता है शायद मैं उस बातको सुलझा सकूं ।

मांकी समझमें बात आ गयी और सुमित्रा चुपचाप बैठकमें पहुंची । वहां जाकर उसने देखा—अचरजसे पूर्ण ब्रजेश क्रोधसे उफनाते हुए अपने पितासे पूछ रहा है पिता जी ! क्या बात है आप… ।

बताता हूं … ।

जी ।

मैंने तुम्हें लखनऊ क्यों भेजा है ?

कैसा अजीब सवाल है ? ब्रजेश हतभाग्य-सा देखता हुआ बोलाऔर किस लिये भेजते । डाक्टरी पढ़नेको भेजा है ।

और तुम क्या करते हो ?

पढ़ता ही हूं ।

और

और…… ।

हां, और कुछ नहीं करते ।

ब्रजेशने अपने आपको संभाला और दृढ़तासे कहा—पिताजी ! बात क्या है आप बता दीजिये ।

सुनोगे ।

जी… ।

बेईमान… ।

पिता जी…… ।

सुमित्रा बोली—भइया । शान्ति रखो ।

क्रोधसे उफन कर पिताजीने बिना किसीकी ओर देखे कहा हां तुम बेईमान हो ! कुलांगार हो । तुमने मेरे बालोंका, मेरे कुलका जरा भी ध्यान नहीं किया । जरा भी नहीं सोचा… ।

ब्रजेशका मस्तक चकराने लगा । उसे सूझ नहीं पड़ा क्या कहे, क्या करे । वह एक ऐसे भंवरमें आ फंसा था जहां सामने मौत थी और उसकी सांस फूल रही थी पर उसी क्षण उसने देखा पिताके हाथमें एक पत्र है । उन्होंने उस पत्रको उसके सामने फेंक दिया और कहा—देखो यह किसका पत्र है ? जैसे भूकम्प आया । ब्रजेश पत्र उठानेको झुका । सुमित्रा एक दम बोली कैसा पत्र ? देखूं देखूं… ।

और बिजलीकी फुर्तीसे ब्रजेशसे पहिले ही उसने उस पत्रको उठा लिया । फिर ऐसी शीघ्रतासे उसे पढ़ा कि ब्रजेश और बा० दीनानाथ दोनों चकित विस्मित उसे देखते ही रह गये । सुमित्राने एक लम्बी सांस ली, पत्र फिर पढ़ा, फिर पढ़ा और न जाने क्या हुआ, बड़े जोरसे खिलखिला कर हंस पड़ी । बाप बेटे दोनों ठगेसे कांप उठे ।

अन्दरसे मां दौड़ी आई कि क्या है? क्या है सुमित्रा? होता क्या भाभी । सुमित्रा बोली बाप रे बाप ! भइया आप भी बस…कोई नहीं बोल सका । वही बोली—भइया ! ऐसे पत्र तो मैंने इसके पास बहुत देखे हैं ।

हां ! यह और इसका दोस्त पीताम्बर दोनों ऐसे पत्र लिखा करते हैं और पत्र ही क्या ? कविता, कहानी, नाटक

न जाने क्या क्या लिखा करते हैं।

दीनानाथ अब चरित्रसे पड़े—सुमित्रा

ठीक है भइया। कई बार मैंने इसे कहा भी। भई! तू पढ़नेमें ध्यान लगा। यह बोला—बुआ! यह भी पढ़ाई है, साहित्य सेवा। नाम होता है और देश सेवा भी। पूछ लो इससे कहा कि नहीं। क्यों रे …।

दीनानाथ पसीना पसीना हो चले थे। ब्रजेशकी ओर मुंह करके धीरे से कहा—क्यों ब्रजेश?

अपराधीकी तरह ब्रजेशने गरदन हिला दी।

जैसे पानी पड़ गया। हंसते हंसते आगे बढ़ कर मांने बेटेको बांहसे पकड़ लिया—चल उठ। भूख-भूख चिल्लाता आया था। ले बैठे ये पचड़े। कुलमें दाग लगा दिया। मैं भी सोचती थी आखिर कैसा दाग लगा दिया। आखिर बेटा तो इन्हींका है…।

बा० दीनानाथ संकटमें आ गये थे, बोल नहीं निकला परन्तु सबेरेसे जो कड़ुआ धुआं अन्दर ही अन्दर उनके प्राण घोट रहा था वह क्षण भरमें न जाने कहां चला गया? उसके स्थान पर अन्दरसे आता हुआ मुक्त हास्य उन्हें प्रसन्नतासे भरने लगा। उन्हें मालूम हुआ जैसे वे कोई भयंकर स्वप्न देख कर जागे हैं और दुनिया सूर्यके मुक्त प्रकाशसे मुखरित हो रही है।

गीत

—*:o:*—

दूर कहीं वह कोयल बोली!
अरे, अचनाक मेरे दिल की,
सूनी-सी यह दुनिया डोली।
कोयल को यह बोली सुन कर
फूल उठी सारी अमराई।
लाल पलाश-वनों में बजती
आली, आज मधुर शहनाई।
वन-उपवन में चुपके-चुपके
लाली किसने भर दी आली?
मानवके भी तन में, मन में,
प्याली मस्ती की यह ढाली?
बिखर पड़ी पीड़ित मानव पर
मधु ऋतु की यह मादक झोली।
धू-धू कर जलते प्राणों पर
शीतलता की छाया डोली।
दूर कहीं वह कोयल बोली!

—हीरादेवी चतुर्वेदी

विजेता राष्ट्रों द्वारा नयी जर्मन जातिका निर्माण

श्री विश्वनाथ सेठी बी० एस-सी०

डङ्कर्कमें गत मार्चमें ब्रिटेन और फ्रान्सने एक सन्धि-पर हस्ताक्षर किये हैं। यह सन्धि जर्मनीके भविष्यको लेकर हुई है और इसकी मुख्य शर्तें इस आधारपर बनायी गयी हैं कि जर्मनीको इस प्रकार अपदस्थ बनाकर रखा जाय कि वह भावी पचास वर्ष तक पुनः आक्रमणकी स्थिति में न हो सके। मास्कोमें मार्चके अन्त एवं अप्रैलके प्रारम्भ में जो विभिन्न राष्ट्रोंके वैदेशिक मंत्रियोंका सम्मेलन हुआ है, उसमें भी जर्मनीकी आर्थिक नीतिको लेकर रूस, अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांसमें काफी मतभेद रहा है, और जर्मनीकी राजनीतिक समस्याओंको लेकर भी उनमें मतैक्य नहीं रहा, पर इस बातपर सभी सहमत दिखायी पड़े कि जर्मनीको हर प्रकारसे दबाकर रखा जाय और वह दीर्घ-काल तक शक्तिशाली न हो सके। हिटलरका विनाश हो गया, किन्तु नात्सीवादका आतङ्क मित्र राष्ट्रोंपर अब भी बना हुआ है। अब भी फ्रांस आतंकित है कि जिस प्रकार जर्मनी पराजित हुआ है, वह स्थायी नहीं है और अवसर पाते ही जर्मनी पुनः सिर उठायेगा। अमेरिका और ब्रिटेनके विचार भी कुछ ऐसे ही हैं और उधर रूस है जो नात्सी-वादका शत्रु है। हिटलरकी दम्भपूर्ण वाणी, जिसमें रूसपर आक्रमण करते हुए उसने कहा था कि, "जब स्टैलिनको जंजीरोंमें बांध कर बर्लिन लाया जायगा, तब संसार मुझे क्षमा कर देगा" रूस सहजही भूल नहीं सकता। भाग्य-का चक्र कि बर्लिनपर लाल पताका फहरा रही है और हिटलर लापता है। हिटलर कहा करता था कि जर्मनीकी भौगोलिक स्थिति इस प्रकार की है कि यदि जर्मनीमें कम्यू-निज्म-साम्यवादकी प्रतिष्ठा हो जाय, तो फिर सारा यूरोप साम्यवादी हो जायगा। हिटलरने भलेही रूसके विरुद्ध ब्रिटेनको अपने पक्षमें लानेके लिये ही वैसी कूटनीतिक कल्पना की हो, किन्तु हिटलरके पतन और बर्लिनपर रूसी झण्डोत्तोलनके पश्चात् स्टैलिन अब स्वतः हिटलरके कथनमें विश्वास करता प्रतीत होता है। वह जर्मनीको सर्वथा पदानत करनेपर तुला हुआ है। जर्मन पराजयके पश्चात् सबसे पहला अखबार था जो रूसी नियंत्रणमें प्रकाशित हुआ और सबसे पहली पाठशाला थी जो रूसी नियंत्रणमें जर्मन बालकोंके लिये खोली गयी।

विजेता राष्ट्र सहमत दिखायी पड़ते हैं कि जर्मनीको सदा सर्वदाके लिये इतना निर्बल बना दिया जाय कि वह सिर न उठा सके, और इसके लिये वे ऐसी सन्धिकी शर्तोंके ऊहापोहमें पड़े हुए हैं। इसी प्रकारकी प्रेरणा प्रथम महायुद्ध (१९१४-१९१८) के बाद पेरिस शान्ति-सम्मेलनमें भाग लेनेवाले विजेता राष्ट्रोंमें भी थी। बिस्मार्ककी 'रक्त और लौह' नीतिको कैसरने जिस प्रकार कार्यान्वित किया था, उससे लायड जार्ज, क्लीमेन्सू और आर्लैण्डो भीतरसे अत्यन्त त्रस्त थे, भले ही ऊपरसे उन्होंने उसे पागल कह कर ही सम्बोधित किया हो। वार्साईकी सन्धि द्वारा जर्मनीको अपंगु बनानेका प्रयत्न भी उन्होंने किया, किन्तु उन्हें क्या पता था कि उसी सन्धिसे भावी युद्धके बीज भी अंकुरित होंगे और हिटलरके रूपमें युद्धके महादानवका आविर्भाव होगा। इसी वार्साई सन्धिको हिटलरने अपने संगठनका सबसे बड़ा अस्त्र बनाया। हिटलरने कहा था कि "वार्साई सन्धिका क्या उपयोग किया जा सकता है? इस अपमान और शोषणका किस प्रकार दृढ़ संकल्प व्रती सरकार जर्मनीकी विक्षुब्ध जनताको क्रोधसे बौखला देनेवाले आवेश के लिये अस्त्रके रूपमें उपयोग कर सकती है? इसके द्वारा जर्मन जातिके उपेक्षा भावको आवेश और आवेशको क्रोधाग्निमें परिवर्तित किया जा सकता है। और उसके मानसिक आवेशको इस हद तक उत्तेजित किया जा सकता है कि ६ करोड़ जर्मन नर-नारी इस घृणित सन्धि पत्रके विरुद्ध एक स्वरसे बोल उठें। जर्मन जातिको पुनर्जीवित करनेके लिये वार्साईकी सन्धि प्रचारकोंका सबसे बड़ा अस्त्र है।"

द्वितीय महायुद्धके बाद विजेता राष्ट्र किसी भावी हिटलरके विनाशके लिये तो सतर्क हैं, किन्तु वार्साईके समान एक नये अस्त्रका निर्माण करनेमें भी तल्लीन हैं।

इसके लिये इस बार न केवल वे सन्धि-शर्तोंका सहारा ले रहे हैं, बल्कि सारी जर्मन-विचार-धारा परिवर्तित करनेके लिये भी वे प्रयत्नशील हैं। उनका विचार है कि जर्मन बाल-बालिकाओंको ऐसी शिक्षा ही न दी जाय कि उनमें सामरिक भावना, नात्सीवादी विचार-धारा और जर्मनीको सर्वश्रेष्ठ समझनेकी प्रवृत्ति प्राप्त हो सके। उनका विचार है कि आज वे कोमल मति शिशुओंसे ही जर्मनीके कायापलट का प्रारम्भ किया जाय। और यह शिशु नागरिक होनेपर तानाशाही नहीं, प्रजातंत्रात्मक विचारोंके समर्थक और पोषक हों। इसके लिये विजेता राष्ट्र जर्मन शिक्षा-पद्धति और जर्मन पाठ्यक्रमको सर्वथा परिवर्तित कर देना चाहते हैं। गणतंत्रके किसी भी उपासकको विजेताओंकी इस भावनासे विरोध नहीं हो सकता बशर्ते कि उनका उद्देश्य जर्मन जातिमें वास्तविक गणतंत्रात्मक विचार-धाराका प्रचार हो। किन्तु यदि जर्मन जातिकी प्राकृतिक विचार-धाराका परिहार हो तो यह सन्देहास्पद ही है कि उनके उक्त प्रयत्नमें सफलता मिल सकेगी।

जर्मनीकी प्राचीन शिक्षा पद्धतिके परिवर्तनके साथ इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए पिछले दिनों अपार नात्सी साहित्य आगकी लपटोंमें झोंक दिया गया है। युद्ध समाप्त हो गया, नात्सी शासन भी समाप्त हो गया, नात्सीवादके विनाशके लिये युद्ध चल रहा है। जर्मनोंमें सहज सैन्यभाव होता है, जर्मनोंमें अपनी सैन्य शक्तिके प्रति सहज आस्था एवं स्वाभाविक आत्म-विश्वास पाया जाता है। महान् फ्रेडरिककी भावधारा और प्रशाकी सैन्य प्रवृत्ति जर्मन जाति की स्वाभाविक विचार-धाराका अंग बन चुकी है, किन्तु विजेता इन सबको आमूल विनष्ट करनेपर तुले हुए हैं। ढेर की ढेर पुस्तकें जलादी गयी हैं। शिक्षकोंकी नियुक्तिके समय नात्सीवादके संबन्धमें पूछताछ करके इस बातका विश्वास प्राप्त करनेका प्रयत्न किया जाता है कि शिक्षक नात्सीवादी तो नहीं है, किन्तु समस्त जर्मनी जिस प्रकार नात्सी हो गया था, उसमें वास्तविक गैर-नात्सियोंकी खोज निकालना भी बहुत आसान नहीं है। फिर भी इतना तो हुआ ही है कि कितने ही स्कूल खुल गये हैं और उनमें जहां पहले जर्मन राष्ट्रकी प्राचीन वीर गाथाएं बालकोंको पढ़ाई जाती थीं वहां अब परियोंकी कहानियां पाठ्यक्रममें निर्धारित हुई हैं।

लाल क्रान्ति द्वारा जारके पतनके पश्चात् सोवियट रूसके रूसी शिक्षालयोंका कायापलट करनेका प्रयत्न किया और उसे अद्भुत सफलता मिली इसीका उदाहरण विजेता राष्ट्रोंके शिक्षा-शास्त्री देते हैं और उनका कथन है कि रूसको जब शिक्षापद्धतिमें आमूल परिवर्तन द्वारा सारी विचारधाराको परिवर्तित करनेमें सफलता मिल गयी तब जर्मनीमें इस नये प्रयोगमें सफलता क्यों नहीं मिल सकती। किन्तु उदाहरण गलत है। रूसमें जारका पतन हुआ, शासन-पद्धतिमें परिवर्तन हुआ और सारी जातिको नयी विचार-धारा मिली और यह सब हुआ रूसमें रूसियों द्वारा। जर्मनी की स्थिति भिन्न है। जर्मनी पराजित राष्ट्र है। जर्मनी अपने भीतरी नहीं; बाहरी शत्रुओंसे पराजित हुआ है। अतः जर्मन जाति स्वेच्छापूर्वक नहीं, अनिच्छापूर्वक विजताओं द्वारा होनेवाले परिवर्तनोंको ग्रहण करेगी। यही स्वभाविक है। अतः विजेता राष्ट्रोंके शिक्षा-शास्त्री अब यह कहते हैं कि नवीन शिक्षाप्रणाली एवं उसके आदर्शको जर्मन जाति प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर रही है, तो उनका कथन उतना ही मूल्य रखता है जितना मूल्य प्रथम महायुद्धके विजेताओं के इस कथनमें था कि जर्मनी कैसरकी नीतिके विरुद्ध एवं वर्साई सन्धिके पक्षमें है। वस्तुतः बात यह थी कि जर्मनीने कभी पराजय स्वीकार नहीं किया और द्वितीय महायुद्धमें भी जर्मनीकी पराजयको कितने ही जर्मन स्वीकार करनेका मनोभाव नहीं दिखाते। अतः जर्मनीके साथ विजेताओंकी सन्धिका प्रश्न चाहे जैसे हल हो। जर्मनीकी नवीन सन्तति पर शिक्षाका जो नया आदर्श और भावी नागरिकोंके लिये जो एक अस्वाभाविक लक्ष्य विजेताओं द्वारा उपस्थित किया जा रहा है उसे जर्मन जाति सहज ही स्वीकार कर लेगी, यह सन्देहसे परे नहीं है और तब बिजेतायों द्वारा जो नयी जर्मन जातिके निर्माणका कार्यारम्भ हुआ है उसकी सफलता भी सन्देह रहित नहीं है।

नारीके सम्बन्धमें प्रेमचन्दजीके विचार

श्री उग्रनारायण मिश्र

अपनी रचनाओंमें प्रेमचन्दजीने नारी और उसकी समस्याओंपर कितने ही विचार व्यक्त किये हैं। उनके कुछ विचारोंका संकलन यहां किया गया है।

'कर्मभूमि' से—

'विधवाका जीवन तपका जीवन है। लोकमत इसके विपरीत कुछ नहीं देख सकता। ++ किन्तु जीवन बिना किसी आधारके तो नहीं रह सकता। भोग-विलास, सैर-तमाशेसे आत्मा उसी भांति सन्तुष्ट नहीं होती, जैसे कोई चटनी और आचार खाकर अपनी क्षुधाको शान्त नहीं कर सकता। जीवन किसी तथ्य पर ही टिक सकता है।'

'कष्ट सहनेमें, या सिद्धान्तकी रक्षाके लिये स्त्रियां कभी पुरुषोंसे पीछे नहीं रहीं।'

'नारीके लिये नारीके हृदयमें जो तड़प होगी, वह पुरुषोंके हृदयमें नहीं हो सकती।'

'नाचना विलास की नहीं, भक्ति और आध्यात्मिक आनन्दकी वस्तु है, पर हमने इसे लज्जास्पद बना रखा है। देवियोंको विलास और भोगकी वस्तु बनाना अपनी माताओं और बहनोंका अपमान करना है। हम सत्यसे इतनी दूर हो गये हैं, कि उसका यथार्थ रूप भी हमें नहीं दिखायी देता।'

'स्त्री जब किसी बात पर अड़ जाय तो पुरुष कैसे 'नहीं' कर दे।'

'…औरतमें रूप ही सबसे प्यारी चीज नहीं है।'

'…लड़कियां कहीं अपने मुंहसे कुछ कहती हैं…? वह तो नहीं-नहीं किए जाती हैं।'

'पुत्र और पतिके बाद अगर उन्हें (स्त्रियों) किसी वस्तुसे प्रेम होता है, तो वह गहने हैं। कभी-कभी तो गहनोंके लिए वह पुत्र और पतिसे भी तन बैठती हैं।'

'मा में केवल वात्सल्य है। बहनमें क्या है,…पर वह वात्सल्यसे कोमल अवश्य है! मां अपराधका दण्ड भी देती हैं। बहन क्षमाका रूप है। भाई न्याय करे, अन्याय करें। डांटे या प्यार करे, मान करें, अपमान करें, बहनके पास क्षमाके सिवा और कुछ नहीं है। वह केवल उसके स्नेहकी भूखी है।'

'औरतकी जिन्दगी और है ही किस लिए…। वह अपने दिलसे लाचार है, जिससे वफाकी उम्मीद करती है, वही दगा करता है। उसका क्या अख्तियार, लेकिन बेवफाओंसे मुहब्बत न हो, तो मुहब्बतमें मजा ही क्या रहे। शिकवा शिकायत, रोना-धोना, बेताबी और बेकरारी यही तो मुहब्बतके मजे हैं,…।'

'खुदा न करें, गरीबकी लड़की हसीन हो। गरीबीमें हुस्न बला है। वहां बड़ोंका तो कहना ही क्या, छोटोंकी हसाई भी आसानीसे हो जाती है।'

'…पुरुषमें थोड़ीसी पशुता होती है, जिसे वह इरादा करके भी हटा नहीं सकता। वही पशुता उसे पुरुष बनाती हैं। विकासके क्रममें वह स्त्रीसे पीछे हैं। जिस दिन वह पूर्ण विकासको पहुंचेगा, वह भी स्त्री हो जायगा। वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया इन्हीं आधारोंपर यह सृष्टि जमी हुई है और यह स्त्रियोंके गुण हैं। अगर स्त्री इतना समझ ले, तो फिर दोनोंका जीवन सुखी हो जाय। स्त्री पशुके साथ पशु हो जाती है, जभी दोनों दुखी होते हैं।'

'…ऐसे पुरुषको, जो स्त्रीके प्रति अपना धर्म न समझे क्या अधिकार है कि वह स्त्रीसे व्रतधारिणी रहनेकी आशा रखे?'

'…जब स्त्री-पुरुष सुखसे रहें, तभी तो मालूम हो कि उनमें प्रेम है। ++ प्रेम तो विरले ही दिलोंमें होता है। धर्मका निवाह तो करना ही चाहिये।'

'औरत निर्बल है और इसीलिये उसे मान-अपमानका दुःख भी ज्यादा होता है।'

'परिहासमें औरत अजेय होती है, खास कर जब वह बूढ़ी हो।'

'…स्त्रियोंको संसार अबला कहता है। कितनी बड़ी मूर्खता है। मनुष्य जिस वस्तुको प्राणोंसे भी प्रिय समझता

है, यह स्त्रीकी मुट्ठी में है।'

'लड़कीके लिये वहीं मौका है, जहां उसके मां-बाप, भाई-भावज रहें। और लड़कीको मौका जितना प्यारा होता है, उतनी ससुराल नहीं होती।'

'कायाकल्प' से—

'हमारे यहां पुरुषकी आज्ञा मानना स्त्रियोंका परम धर्म माना गया।'

'...यदि स्त्री और पुरुषके विचार और आदर्श एक-से हों, तो स्त्री पुरुषके कामोंमें बाधक होनेके बदले सहायक हो सकती है।'

'स्त्रीमें कितने ही गुण हों, लेकिन यदि उसकी सूरत पुरुषको पसन्द न आई, तो वह उसकी नजरोंसे गिर जाती है और उनका दाम्पत्य-जीवन दुखमय हो जाता है। ++ वर और कन्यामें दो-चार बार मुलाकात भी हो जानी चाहिये। कन्याके लिये तो यह अनिवार्य हैं। पुरुषको स्त्री पसन्द न आई, तो वह और शादियां कर सकता है। स्त्री को पुरुष न भाया, तो उसकी सारी उम्र रोते ही गुजरेगी।'

'...जो विवाह लड़कीकी इच्छाके विरुद्ध किया जा सकता है, वह विवाह ही नहीं है।'

'...सुन्दरता मनोभावोंपर निर्भर होती है। माता अपने कुरूप बालकको भी सुन्दर समझती है।'

'चार भांवरें फिर जानेसे ही ब्याह नहीं हो जाता।++ नामसे कोई व्याहता नहीं होती, सेवा और प्रेमसे होती है।'

'जब किसी पुरुषका एक स्त्रीके साथ पति-पत्नीका सम्बन्ध हो जाय, तो पुरुषका धर्म है कि जबतक स्त्रीकी ओरसे कोई विरुद्ध आचरण न देखे, उस सम्बन्धको निबाहे।'

'...सबसे पहली बात है कटाक्ष करनेकी कलामें निपुण होना। जिसे यह कला आती हैं, वह चाहे चन्द्रमुखी न हो, फिर भी पुरुषका हृदय छीन सकती है। सौन्दर्य स्वयं कुछ नहीं कर सकता, उसी तरह जैसे कोई सिपाही शस्त्रों-से कुछ नहीं कर सकता, जबतक उन्हें चलाना न जानता हो। चतुर खिलाड़ी एक बांसकी छड़ीसे वह काम कर सकता है, जो दूसरे संगीन और बन्दूकसे भी नहीं कर सकते।'

'आदमी कड़े दम चाहिये, जिसका अन्याय देखे, उसे डांट दे, बुरी तरह डाट दे, खून पी लेनेपर उतारू हो जाय। ऐसे ही पुरुषोंसे स्त्रियां प्रेम करती हैं। भय बिना प्रीति नहीं होती। आदमीने स्त्रीकी पूजा की और उनके आंखों-से गिरा। जैसे घोड़ा पैदल और सवार पहचानता है, उसी तरह औरत भी भुकुए और मर्दको पहचानती है। जिसने सचा आसन जमाया और लगाम कड़ी रखी, उसकी जय है। जिसने रास ढीली कर दी, उसकी कुशल नहीं।'

'जिस तरह रणसे भागते हुए सिपाहीको देख कर लोगोंको घृणा हो जाती है, यहां तक कि उसका बध कर डालना भी पाप नहीं समझा जाता, उसी तरह कुलमें कलंक लगनेवाली स्त्रियोंसे भी सबको घृणा हो जाती है और कोई उसकी सूरत नहीं देखना चाहता। हम चाहते हैं कि सिपाही गोली और आगके सामने अटल खड़ा रहे। उसी तरह हम यह भी चाहते हैं कि स्त्री सब कुछ झेल कर अपनी मर्यादाका पालन करती रहे। हमारा मुंह हमारी देवियों ही से उज्ज्वल है और जिस दिन हमारी देवियां इस भांति मर्यादाकी हत्या करने लगेंगी, उस दिन हमारा सर्वनाश हो जयगा।'

'...स्त्रीमें सुन्दरता ही सबसे बड़ा गुण नहीं है।,

'...स्त्री हो या पुरुष, गुण और स्वभाव ही उसमें मुख्य वस्तु है। इसके सिवा और सभी बातें गौण हैं।

'...ईश्वरने स्त्रियोंको निन्दा और परिहासके लिये ही रचा है।'

'कठोरसे कठोर हृदयमें भी मातृ-स्नेह की कोमल स्मृतियां संचित होती हैं।'

'लड़की कंगालको दे दे, पर बूढ़ेको न दे। गरीब रहेगी तो क्या, जन्म भरका रोना-झींकना तो न रहेगा।

'ब्याह जोड़का अच्छा होता है। ऐसा ब्याह किस कामका कि वह बहूका बाप मालूम हो, बेचारी कन्याके दिन रोते ही बीते।'

अलंकार भावोंके अभावका आवरण है। सुन्दरको अलंकारोंकी जरूरत नहीं। कोमलता अलंकारोंका भार नहीं सह सकती।'

'प्राण-भयसे बड़े-बड़े शूर-वीर भूमि पर मस्तक रगड़ते हैं, एक अबलाकी हस्ती क्या। भ्रष्ट वह होता है, जो दुर्वासनासे कोई कर्म करे। जो काम हम प्राणभयसे करें, वह हमे भ्रष्ट नहीं कर सकता।'

'अबलाके पास कौशलके सिवाय आत्मरक्षाका और कौन सा साधन है ?

'...पति-प्रेम नारी-जीवनका अधार है। इससे वंचित होकर अबला निराधार हो जाती है।

'नारी-बुद्धि तीक्ष्ण होती है। ×× रमणीका हृदय सेवा के सूक्ष्म परमाणुओंसे बना होता है। उसका प्रेम भी सेवा है, उसका अधिकार भी सेवा है, यहां तक कि उसका क्रोध भी सेवा है।

'...पुरुष कितना ही विद्वान् और अनुभवी हो, स्त्रीको समझनेमें असमर्थ ही रहता है।

'हम क्यों ऐसा समझते हैं कि स्त्रियोंका जन्म केवल भोग-विलासके लिए होता है ? क्या उनका हृदय ऊंचे और पवित्र भावोंसे शून्य होता है ? हमने उन्हें कामिनी रमणी, सुन्दरी आदि बिलास-सूचक नाम दे देकर वास्तवमें उन्हें वीरता, त्याग और उत्सर्गसे शून्य कर दिया है।,

'...नारीके लिए पुरुष-सेवासे बदलकर और कोईशृंगार और विलास, कोई भोग नहीं है।,

.. स्त्रीकी दृष्टिमें पति-प्रेम ही संसारकी सबसे अमूल्य वस्तु है।

'स्त्री कभी पुरुषोंका खिलौना है, कभी उनकी जूती। इन्हीं दो अवस्थाओंमें उनकी उम्र बीत जाती है।'

'मनकी गति तो विचित्र है। वही पीड़ा जो बाल-विधवा सहती है और सहनेमें अपना गौरव समझती है, परित्यक्ताके लिये अदृश्य हो जाती है।'

'वह स्त्री सचमुच पिशाचिनी है, जो अपने पुरुषका अनभल सोचे।'

'पतिकी कमाईको छोड़कर और किसीकी कमाईपर स्त्री का अधिकार नहीं होता।'

'पति ही स्त्रीका सर्वस्व है।'

'जो स्त्री अपने पतिसे दिलमें कीना रखे, उसे विष खाकर प्राण दे देना चाहिए। हमारा धर्म कीना रखना नहीं, क्षमा करना है।'

'गबन' से—

'स्त्रीका सप्रेम आग्रह पुरुषसे क्या नहीं करा सकता ?'

'...स्त्रीके नेत्रमें तुच्छ बनना कौन चाहता है ?'

'गहनोंसे बुड्ढे नई बीबियोंका दिल खुश किया करते हैं। उन बेचारोंके पास गहनोंके सिवा होता ही क्या है ? जवानोंके लिये और बहुत लटके हैं।'

'...मित्रोंसे अपनी व्यथा कहते समय हम बहुधा अपना दुःख बढ़ाकर कहते हैं। जो बातें परदेकी समझी जाती हैं, उनकी चर्चा करनेसे एक तरहका अपमान जाहिर होता है। हमारे मित्र समझते हैं, हमसे जरा भी दुराव नहीं रखता और उन्हें हमसे सहानुभूति हो जाती है। अपनापन दिखानेकी यह आदत औरतोंमें कुछ अधिक होती है।'

'रुपयेके मामलेमें पुरुष महिलाओंके सामने कुछ नहीं कह सकता है, उस वक्त मेरे पास रुपये नहीं है ? वह मर जायगा, पर यह उज्र न करेगा। वह कर्ज लेगा, दूसरोंकी खुशामद करेगा, पर स्त्रीके सामने अपनी मजबूरी न दिखायेगा। रुपयेकी चर्चामें ही वह तुच्छ समझता है।'

'पुरुष मन का हो तो स्त्री उसके साथ उपवास करके भी प्रसन्न रहेगी।'

'स्त्रियोंमें बड़ा स्नेह होता है। पुरुषोंकी भांति उनकी मित्रता केवल पान-पत्तेसे समाप्त नहीं हो जाती ,...।'

'प्रौढ़ा स्त्रियां अनुरागकी अवहेलना नहीं कर सकतीं।'

'निर्मला' से—

'यही (स्त्रियोंके स्वभावका ज्ञान होना) एक ऐसी विद्या है, जिसमें आदमी बूढ़ा होनेपर भी कोरा रह जाता है।'

'औरतोंको रूपकी निन्दा जितनी अप्रिय लगती है, उससे कहीं अधिक अप्रिय पुरुषोंको अपने पेटकी निन्दा लगती है।'

'दरिद्र विधवाके लिए इससे बड़ी और क्या विपत्ति हो सकती है कि जवान बेटी सिरपर सवार हो ? लड़के नंगे पांव पढ़ने जा सकते हैं, चौका-बर्तन भी अपने हाथसे किया जा सकता है, झोपड़ेमें दिन काटे जा सकते हैं; लेकिन युवती कन्या घरमें नहीं बिठाई जा सकती।'

'वह रूपवती है, गुण शीला है, चतुर है, कुलीन है, तो हुआ करे, दहेज नहीं तो उसके सारे गुण दोष हैं। दहेज है तो सारे दोष गुण हैं। प्राणीका कोई मूल्य नहीं; केवल दहेजका मूल्य है। कितनी विषम भाग्य लीला है।'

'युवतीके सामने खूब प्रेमकी बातें करनी चाहिये— दिल निकाल कर रख देना चाहिये। यही उसके वशीकरण-

का मुख्य मन्त्र है।'

'बिना मांके बच्चेको कौन पूछे ?'

'नई बीबी पाकर आदमी अन्धा हो जाता है।'

'लौंडियोंको पंजोंमें लाना क्या मुश्किल है, जरा सैर-तमाशे दिखा दो, उनके रूप-रंगकी तारीफ कर दो, बस, रंग जम जायगा।'

'जिसे रुपयोंका हिसाब तक करना नहीं आता, वह घर की स्वामिनी कैसे हो सकती है ?'

'सभी स्त्री-पुरुष विवाह करते हैं। उनका जीवन आनन्द से कटता है। आनन्दकी इच्छासे ही तो हम विवाह करते हैं।'

'जब युवक वृद्धाके साथ प्रसन्न नहीं रह सकता, तो युवती क्यों किसी वृद्धके साथ प्रसन्न रहने लगा ?'

'जवानी ढल जानेपर जवान औरतसे विवाह करके कुछ न कुछ बेहयाई जरूर करनी पड़नी है; इसमें सन्देह नहीं। स्त्री स्वभावसे लज्जाशीला होती हैं। कुलटाओंकी बात तो दूसरी है, पर साधारणतः स्त्री-पुरुषसे कहीं ज्यादा संयम शीला होती हैं। जोड़का पति पाकर वह चाहे पर-पुरुषसे हंसी-दिल्लगी कर ले पर उसका मन शुद्ध रहता है। बेजोड़ विवाह हो जानेसे चाहे किसीकी ओर आंखें उठाकर न देखे, पर उसका चित्त दुखी रहता है। वह पक्की दीवार हैं, उसमें सवारीका असर नहीं होता, यह कच्ची दीवार है और उसी वक्त तक खड़ी रहती है, जबतक उसपर सवारी न चलाई जाय।'

'कुलवती स्त्रियां पतिकी निन्दा नहीं करतीं—यह कुलटाओंका काम है। वह उनकी दशा देखकर कुढ़ती है, पर मुंहसे कुछ नहीं कहती।'

'स्त्री कितनी परिहास कुशल होती हैं।'

'माताका हृदय प्रेममें इतना अनुरक्त रहता है कि भविष्यकी चिन्ता और बाधाएं उसे जरा भी भयभीत नहीं करती। उसे अपने अन्तःकरणमें एक अलौकिक शक्ति का अनुभव होता है, जो बाधाओंको उसके सामने परास्त कर देती है।'

'लड़कियां ससुरालसे घुल कर नहीं आतीं,...।'

'मालकिनको दुनिया भरकी चिन्ताएं रहती हैं,...।'

'...दुहाज पति अपनी स्त्रीको प्राणोंसे भी प्रिय समझता है;...।'

'उनके (बुड्ढों) दिलमें हर दम एक चोर-सा बैठा रहता होगा कि मैं उस युवतीको प्रसन्न नहीं रख सकता। इसीलिये जरा-जरासी बातपर उन्हें शक होने लगता है।'

'जो लोग हृदयके उदार होते हैं, क्या चरित्रके भी अच्छे होते हैं ? पराई स्त्रीके घूरनेमें तो किसी मर्दकी संकोच नहीं होता।

'...ईश्वर न करे लड़कोंको सौतेली मां से पाला पड़े। जिसे अपना बना-बनाया घर उजाड़ना हो—अपने प्यारे बच्चोंकी गर्दनपर छुरी फेरवानी हो, वह बच्चोंके रहते हुए अपना दूसरा व्याह करे। ऐसा कभी नहीं देखा कि सौत के आनेपर घर तबाह न हो गया हो। वही बाप जो बच्चोंपर जान देता था, सौतके आते ही उन्हीं बच्चोंका दुश्मन हो जाता है—उसकी मति बदल जाती है। ऐसी देवीने जन्म ही नहीं लिया, जिसने सौतके बच्चोंको अपना समझा हो।'

'मांके हाथकी रोटियां लड़कियोंको बहुत अच्छी लगती हैं।'

'गहने ही स्त्रीको सम्पत्ति होते हैं। पति की और किसी सम्पत्ति पर उसका अधिकार नहीं होता। इन्हींका उसे बल और गौरव होता है।'

'मातृ-हीन बालकके समान दुखी-दीन प्राणी संसारमें दूसरा नहीं होता। और सारे दुःख भूल जाते हैं।'

विमाताका नाम ही बुरा होता है। अपनी मां विष भी खिलाये तो अमृत है,...



साम्राज्यवादी पश्चिमको स्वाधीनचेता पूर्वकी चुनौती

प्रो० चन्द्रशेखर एम० ए० पी-एच० डी०

"वे (भारतीय) अपने व्यवहारोंमें प्रवञ्चक या विश्वासघाती नहीं होते और अपनी बातके पक्के होते हैं। उनकी शासन प्रणाली अत्यन्त अनुशासनपूर्ण एवं उनका आचरण नम्रता तथा मधुरिमा पूर्ण होता है"—ह्वान सांग



जापानी नृत्य कलापर भारतीय नृत्य कलाका प्रभाव नर्तकियोंकी नृत्य मुद्राओंसे स्पष्ट है।

"सम्भ्रान्त व्यक्तियों एवं धनिकोंने शहरोंमें अस्पताल बनवा रखे हैं; जिनमें किसी भी देशके लूले, लंगड़े, अपाहिज और रोगी इलाज करा सकते हैं। सभी प्रकारकी सहायता उन्हें स्वतः प्रसन्नता पूर्वक प्रदान की जाती है"—फाह्यान

फाह्यान, इत्सिंग, ह्वान सांग आदि अनेक चीनी पर्य्यटकोंने समस्त भारतका भ्रमण करने एवं भारतीयोंके सम्पर्कमें वर्षों रहनेके पश्चात् उक्त विचार व्यक्त किये हैं। ह्वान सांग ६२९ ई० में चीनसे चलकर भारत आया था और १६ वर्ष उसने भारतकी परिक्रमा की। सम्राट् हर्ष वर्द्धनके सम्पर्कमें भी वह आया और इतना आया कि उसने सम्राटको चीनसे घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये प्रेरित किया। नालन्दा विश्वविद्यालयमें उसने तत्कालीन विख्यात बौद्ध विद्वान शीलभद्रके साथ पांच वर्ष बिताये और बौद्ध धर्म एवं साहित्यका गम्भीर अध्ययन किया। चीन लौट कर उसने बौद्ध साहित्यका चीनी भाषामें अनुवाद किया और बौद्ध धर्मके दार्शनिक तत्वोंके प्रचारमें उसके साहित्यने अद्भुत काम किया। फाह्यान और पहले ३९९ ई० में आया था।

चीन और भारतका सम्बन्ध, न केवल धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक, बल्कि आर्थिक एवं व्यवसायिक भी दीर्घकालीन एवं घनिष्टतम रहा है। इस सम्बन्धके कारण मध्य एशियाकी कलात्मक प्रतिभा भी भारतसे बहुत अधिक प्रभावित हुई है। भारतकी प्राचीन कलाके आचार्य प्रो० ओ० सी० गांगुलीने गवेषणाओं, शिलाओं, स्तुपोंके आलेखों तथा अनेक अन्यान्य तथ्योंके आधार पर निष्कर्ष निकालते हुए कहा है कि, "भारतकी भौगोलिक सीमाओंसे बाहर संस्कृतिके कितने ही क्षेत्रोंमें कलाके जिन विभिन्न स्वरूपोंका प्रचलन एवं प्रचार हुआ, वे साधारणतः भारतीय कलासे प्रोत्साहित या प्रभावित हुए। इसलिये बृहत्तर भारतमें, इण्डोनेशियामें या तिब्बतमें जो कला प्रचारित हुई, उसे 'औपनिवेशिक' कला न कहकर; भारतीय कलासे उसे प्रभावित ही कहना चाहिये।" भारतीय कलाओंका भारतकी सीमाके बाहर जो प्रचार हुआ, उसकी प्रेरणा उस प्रेरणासे भिन्न थी जिससे प्रेरित होकर रोमनोंने ग्रीक कला का अनुकरण किया। प्रो० गांगुली लिखते हैं कि, "ग्रीसके मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित मूर्तियों एवं देवताओंके सम्बन्धमें ग्रीस वालोंकी कल्पनाके आधार पर निर्मित प्रतिमाओंका प्रचार रोम साम्राज्यमें दूषित कलात्मक प्रवृत्तियों, कामुकता मयी भावनाओं एवं श्रृङ्गार सज्जाके आकर्षणोंके कारण बंगलों प्रासादों एवं भव्य भवनोंको मात्र सुसज्जित करनेकी लिप्सा के लिये ही हुआ और तब रोमके कलाकारोंसे ग्रीक

प्रतिमाओंकी मांग की जाने लगी और उन्होंने ग्रीक भावनाको कुछ भी समझे बुझे बिना उनका अन्ध अनुकरण करना प्रारम्भ कर दिया। "परिणाम यह हुआ कि एकही प्रतिमाका विभिन्न परिचयों द्वारा प्रचार होने लगा। सिसरोने इसीलिये एक बार एटिकसको पत्र लिखते हुए "उधार ली गयी प्रतिमाओंके मिथ्या परिचयों" का तीव्र प्रतिवाद किया था। भारतीय कलाके सम्बन्धमें यह बात नहीं है, भारतीय संस्कृतिके प्रभावके कारण ही भारतीय कलाके प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ अतएव इसे कोरा अनुकरण नहीं कहा जा सकता।

भारतके साथ अन्यान्य एशियाई देशोंका प्राचीन सम्बन्ध ही एक ऐसा तथ्य है जो प्रमाणित करता है कि एशियाके विभिन्न देशोंमें यातायात, पारस्परिक सम्पर्क, वाणिज्य व्यवसायकी कितनी ही शृङ्खलाएं थीं जिनमें एशियाके विभिन्न देश आबद्ध थे। इसमें भी चीन और भारतका सम्बन्ध घनिष्ठतम था। इतिहासज्ञ डा० पी० सी० बागची लिखते हैं कि, "संसारके इतिहासमें भारतीय और चीनी-जैसी दो महान जातियोंके ऐसे घनिष्ट सांस्कृतिक सम्बन्धका और कहीं भी कोई उदाहरण नहीं मिलता। ईसाके एक शताब्दीके पहलेसे ही यह सम्बन्ध स्थापित हो चला था। भारतीय सीमान्तोंपर होने वाले राजनीतिक परिवर्तनोंने इसका श्री गणेश कर दिया। मध्य एशियाकी भ्रमणशील जातियों—सीथियन और यूचीने—भारतकी ओर बढ़ना शुरू किया और भारतमें आकर यहांकी संस्कृति अपनानी शुरू की और उन्होंने ही चीनमें बौद्ध धर्मके प्रचारके कार्यका भी श्री गणेश किया।

"यूची जातिके ही कुशणोंने ईसाके जन्मके पहलेकी शताब्दीके अन्तमें भारतीय ग्रन्थों एवं बुद्ध प्रतिमाओंको चीनमें भेजना आरम्भ कर दिया। कुशण बौद्ध धर्ममें बड़ी आस्था रखते थे और मध्य एशियाई देशों तथा चीनमें उसके प्रचारके लिये अत्यधिक उत्सुक थे। हिमालयके परवर्ती प्रदेशोंमें बौद्ध धर्मके प्रचारका मूल कारण उनका उत्साह ही था।

ह्वानसांग, फाह्यान और इत्सिग जैसे चीनी पर्यटकोंका उल्लेख हमने किया है। वे भारत आये किन्तु उनके पहले ही भारतीय पर्यटक चीन पहुंच चुके थे। कश्यप, मातंग और धर्मरक्षके तत्कालीन चीनी राजधानी लोआंग में ६५ ई० में पहुंचनेका उल्लेख है। उस समय चीनका सम्राट् मिग-ती था। इन तीन भारतीय पर्यटकोंके सम्बन्धमें चीनके मनोभाव कैसे थे। इसका प्रमाण इस तथ्यमें मिलता है कि इनके सम्मानमें राजधानीमें पोमास्से नामक एक

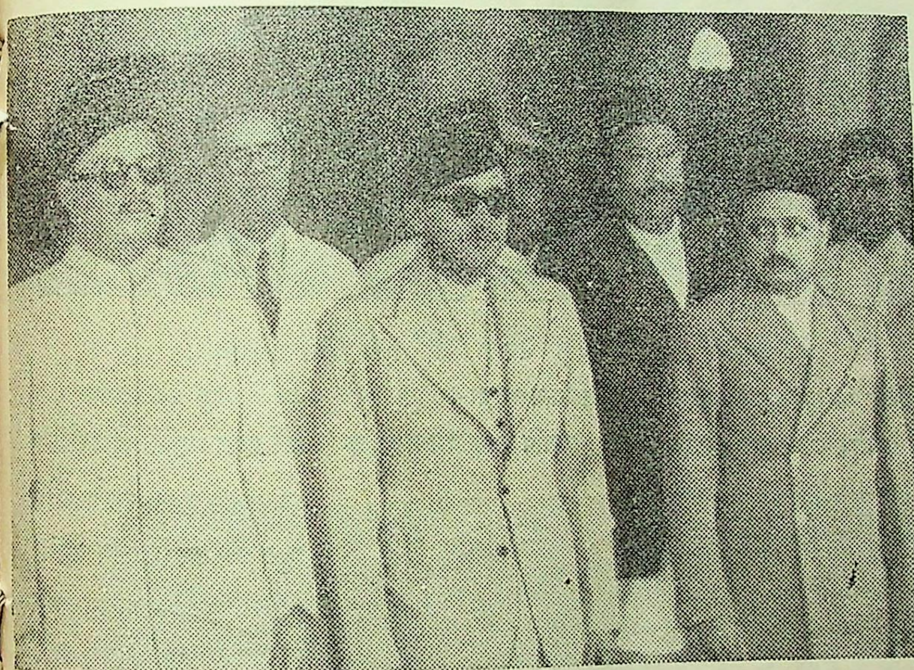


जापानी नृत्य कलाका एक दूसरा चित्र।

भिक्षु-शालाकी स्थापना हुई। पोमास्से, चीनी शब्द है। इसका अर्थ है 'श्वेताश्व-भिक्षुशाला दो तीन शताब्दियों तक यह शाला चीन-भारत-सम्बन्धका प्रधानकेन्द्र बनी रही।

भारत और अन्य एशियाई देशोंको मिलाने वाला स्थल मार्ग भारतके पश्चिमोत्तर सीमान्तसे निकलता था। एक ओर यह हिन्दूकुशको चीरता हुआ, काबुलकी घाटीसे गुजरता बलख तक चला गया था और दूसरी ओर काशगर से चीनके सीमान्त तक चला गया था। चीन और भारत के लिये जल मार्ग चौथी शताब्दीमें खुला और चीनी पर्यटक फाह्यान भारत भ्रमण करनेकेबादसमुद्री मार्गसेही अपने

देश वापस गया था। यह पहला चीन निवासी था जो सर्व प्रथम समुद्री मार्गसे चीन गया था। उस समय काश्मीर विद्याका केन्द्र माना जाता था और इसमें सन्देह नहीं कि काश्मीरी विद्वानोंने भारत-चीन-सम्पर्कस्थापित करनेमें बहुत योगदान दिया। लेकिन यह बात नहीं कि भारतके दूसरे भागोंके लोगोंने इस विषयमें शिथिलता दिखायी हो। मध्य प्रदेशके धर्म क्षेत्र एवं गुणभद्र, उज्जयिनीके परमार्थ, और पश्चिमोत्तर भारत-गन्धारके विमोक्षसेन और जिनगुप्तके नाम तत्कालीन पर्यटकोंमें लिये जाते हैं, जिन्होंने चोन



एशिया सम्मेलन (दिल्ली) में भाग लेनेवाले मध्यपूर्वीय देशोंके प्रतिनिधि

की यात्रा की थो। सम्भव है कि इन पर्यटकोंके कार्योंसे प्रभावित होकर ही उसी कालमें फा-ह्यान भारत आया और यहां उसने १४ वर्ष बिताये।

चीनके इतिहासमें तांग परिवारके सम्राटोंका शासनकाल अत्यन्त महत्व पूर्ण समझा जाता है। सातवीं शताब्दीमें उनकी नींव पड़ी और दसवीं शताब्दी तक उनका शासन काल रहा। इन शताब्दियोंमें चीन-भारत सम्बन्ध और दृढ़ हुआ। नालन्दाके प्रभाकर मित्र, दक्षिण भारत के बोधरुचि, मध्य प्रदेशके वज्रबोधि और उनके शिष्य अमोघवज्र इन्हीं दिनोंमें चीन गये थे। प्रसिद्ध चीनी पर्यटक इन्हीं दिनों भारत आया था।

भारतीय संस्कृतिका अन्य एशियाई देशोंपर कितना गहरा प्रभाव पड़ा और इसकी स्थापत्य कला, संगीत कला और चित्रकला की वैसी गहरी छाप उनपर पड़ी, इसके सम्बन्धमें एक कहानी कही जाती है कि चीनके सम्राट् काओ-त्सूने, जिसका शासन काल ५८१-५६५ ई० था, एक सरकारी आदेश निकाल कर भारतीय संगीत पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। उसे भय था कि भारतीय संगीतके प्रभाव एवं बहुल प्रचारसे चीनके अपने संगीतका कहीं सर्वथा विलोप न हो जाय। लेकिन मजेदार बात यह है कि जब उसके उत्तराधिकारी शासनारूढ़ हुए तब उन्हें भारतीय संगीतके प्रति ऐसी ममता उत्पन्न हुई कि उन्होंने कितने ही चीनी गीतोंका भी भारतीय संगीत शास्त्रके नियमोंके अनुसार स्वर-साधन कर डाला। भारतके गणित एवं ज्योतिष शास्त्र-का प्रभाव भी चीनपर बहुत पड़ा। सम्राट द्वारा शाही प्रयोग--शालामें गौतम, कश्यप और कुमार नामक विद्वानोंकी तद्विषयक गवेषणाओंके लिए नियुक्ति हुई थी और उनकी बनाई हुई पंजिकाएं अब भी चीनी भाषामें चीनमें सुरक्षित हैं।

एशियाई देशोंके साथ भारतका संबन्धी इस प्रकार दीर्घकाल तक बहुत ही घनिष्ट रहा किन्तु सांस्कृतिक सम्बन्ध रहते हुए भी अनेक कारणोंसे यह सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया। इस विछेदका प्रधान कारण रहा विभिन्न एशियाई देशोंपर विभिन्न साम्राज्यवादी देशोंका प्रभुत्व एवं प्रभाव। जब एशियाई देश पराधीन हुये तब उनकी गतिविधि स्वभावतः नियंत्रित हो गई और स्वेच्छा पूर्वक वे आपसमें सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते थे। साम्राज्य वादियोंने

विशाल पैमानेपर एशियाई देशोंकी स्वाधीनताका आपहरण कर, उनका शोषण करना शुरु किया। एशियाई देश आपस में भी मिल न सके और मिलकर शोषणका प्रतिरोध न कर सकें, इसलिये साम्राज्य-वादियोंने उनके बीचमें दीवारें खड़ी कीं और यहां तक कि एक गुलाम देशके वेतन भोगी सैनिकोंका दूसरे गुलाम देशके स्वाधीनता आन्दोलनको कुचलनेके लिये उपयोग करना शुरु किया ताकि उक्त देशोंमें पारस्परिक मनोमालिन्य एवं विद्वेषकी भावना घर कर जाय। अभी हालमें इण्डोनेशियाके विरुद्ध जब भारतीय सैनिकों-का उपयोग किया गया तब आखिर उसकी आवश्यकता ही क्या थी जबकि ब्रिटेन और हालैंडके पासभी सैन्य शक्ति कुछ कम नहीं थी। किन्तु फिर भी भारतके विरोध करनेपर भी इण्डोनेशियाके विरुद्ध भारतीय सेनाका उप-योग किया गया।

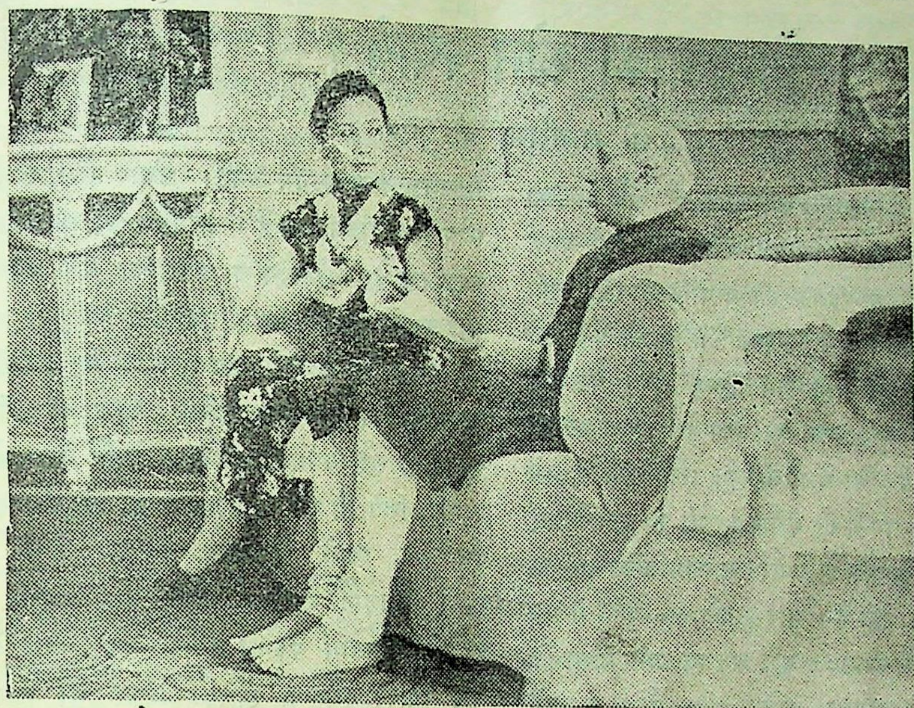


सम्मेलनमें भाग लेनेवाले नेपाल और तिब्बतके प्रतिनिधि

यद्यपि साम्राज्यवादी हथकण्डों द्वारा एशियाई देशोंको एक दूसरे पृथक रखने और 'फूट डालकर शासन करने' की नीतिका अवलम्बन करने-का प्रयत्न किया गया, और जिस सांस्कृतिक एकता और सद्भावनाकी धारा समस्त एशियामें प्रवाहित होती थी, वह अवरुद्ध अवश्य हुई तथापि उसका श्रोत सूख नहीं सका। सभी देशोंमें वही पुरानी धारा पुनः प्रवाहित हुई है। सभीने एक साथ विदेशी शोषकोंके विरुद्ध सम्मिलित आवाज उठायी है। गत २३ मार्चका दिन इसीलिये समस्त एशियाके



इण्डोनेशियाके प्रधान डा० शरियर जिन्होंने एशिया सम्मेलनमें भाग लिया।



मादम चांगकाई-शेक और पण्डित जवाहरलाल नेहरू ।

लिये ऐतिहासिक हुआ है जिस दिन अखिल एशिया सम्मेलनका प्रारंभ हुआ । भारतने पहले भी एशियाका नेतृत्व



एशिया सम्मेलनमें फिलस्तीनके प्रतिनिधि

किया था और इसबार फिर भारतने ही टूटे हुये धागेको पुनः जोड़नेका प्रयत्न किया है । केन्द्रीय सरकारके प्रधान पंडित जवाहरलाल नेहरूका प्रयत्न इस दिशामें सबसे प्रमुख रहा है । दिल्लीका विगत एशिया सम्मेलन एशियाई देशोंका, एशियाकी नव जागृति, एशियाके नव संकल्प एवं एशियाके नूतन अभियानका प्रतीक है । और यही एशियाके मंगलमय भविष्यका परिचायक एवं उसकी स्वाधीनताका भी अभिनव प्रतीक है । नव जागृत पूर्वने साम्राज्यवादी पश्चिमको एक चुनौती-एक महान चुनौती दी है ।

हिन्दुओंको कौन बचाये ?

श्री सन्तराम, बी० ए०

हिन्दू और सिक्ख हार भी खा रहे हैं और व्यर्थकी डींग भी हांकते जा रहे हैं कि हम पाकिस्तान नहीं बनने देंगे। समझमें नहीं आ रहा है कि वे पाकिस्तानको क्या समझते हैं और उसे बननेसे वे रोक कैसे सकते हैं। छठी शताब्दीमें समूचा अफगानिस्तान हिन्दू था। पर वह आज सारेका सारा मुसलमान हो चुका है। आज सीमा-प्रान्त, सिन्ध एवं बलूचिस्तानमें हिन्दू घटते-घटते दालमें नमकके बराबर रह गये हैं। पंजाबमें भी १०० मेंसे ५६ मनुष्य मुसलमान हो चुके हैं और मुसलमानोंकी संख्या प्रति दिन बढ़ती जा रही है। यदि अगले २० वर्षमें पंजाब में मुसलमानोंकी सख्या ७० प्रति शत हो जाय जैसा कि आशा है कि वह हो जायगी, क्योंकि हिन्दुओंके भाग्यमें भगवानने घटना और मुसलमानोंके भाग्यमें बढ़ना लिख दिया है, तो प्रजातन्त्रके सिद्धान्तके अनुसार भी पंजाबमें उन्हींका राज्य होना चाहिये जो बहुसंख्यामें हों। ऐसी दशा में हिन्दुओं और सिक्खोंका यह आशा करना कि उनकी अल्पसंख्या मुसलमानोंकी बहुसंख्या पर शासन करे एक हास्यजनक और अन्यायपूर्ण बात होगी। पंजाब तो अलग रहा, मैं तो समझता हूँ, यदि हिन्दुओंकी जात-पांत सलामत रही तो पाकिस्तानको रोकनेकी उन्मत्त चेष्टाओं और चिल्लपोंके रहते भी, वह दिन दूर नहीं जब पाकिस्तानकी तलवार वर्णाश्रमी हिन्दुओंके गढ़, संयुक्त प्रान्तके सिरपर लटकने लगेगी। पंजाबको दो भागोंमें विभक्त करके रावी नदी तकका प्रदेश तो हिन्दू अब भी पाकिस्तानको सौंपने को तैयार हो गये हैं। कुछ दिन और ठहरिये। सवर्ण हिन्दू यमुना तक सारा पंजाब पाकिस्तानमें सहर्ष दे देना स्वीकार कर लेंगे।

इस सारे अनिष्टका मूल कारण यह है कि हमारे नेताओंने देशके रोगको समझा ही नहीं। इसलिये वे देशोद्धारके जो भी उपाय करते हैं वे सब निष्फल जाते हैं। भारतमें एक भी ऐसा नेता नहीं जो अपनी लोकप्रियताको जोखिममें डालकर हिन्दुओंमेंसे उनके जन्ममूलक वर्णभेदको मिटानेका काम हाथमें लेनेको तैयार हो। कांग्रेसी नेता स्वयं जात-पांतमें फंसे हैं। उनमेंसे कोई अगरवाल आश्रम खोल रहा है, कोई कायस्थ पाठशाला चला रहा है और कोई ब्राह्मण सभाका प्रधान बना बैठा है।

सातवीं शताब्दीसे, जब मुहम्मद बिन कासिमने पहले-पहल सिंधपर आक्रमण किया, आज बीसवीं शताब्दी तक, तेरह सौ वर्षमें हिन्दुओंने विदेशी आक्रमणोंसे अपनी रक्षाके लिये जो भी यत्न किया वह सब निष्फल हुआ। हमारे वेद, हमारे उपनिषद, हमारा उच्च तत्वज्ञान, हमारे ब्रह्मज्ञानी महात्मा, हमारे बीर राजपूत भारतको विदेशी दासतामें पड़नेसे न बचा सके। निसर्गने दो एक बार देशको स्वतन्त्र होनेका अवसर भी दिया। मराठों और सिक्खोंने स्वराज्य स्थापित भी कर लिया। पर हम उन अवसरोंको सम्भाल न सके। आज फिर निसर्गने स्वतन्त्रताका वैसाही अवसर उपस्थित किया है। पर मुझे यह भी हाथसे जाता प्रतीत हो रहा है। खेद है, इसके कारणोंपर विचार करनेकी आवश्यकताका अनुभव ही हमारे नेताओंसे नहीं हो रहा। वे सोचते ही नहीं कि मुसलमान ही नहीं स्पृश्य और अस्पृश्य शूद्र भी सवर्णोंसे क्यों दुःखी हैं। तीन करोड़ सवर्ण हिन्दुओंने हिटलरकी भांति क्यों सारी दुनियासे लड़ाई छेड़ रक्खी है। और ऐसी दशामें वे कितने दिन जीते रह सकेंगे ? सवर्ण हिंदुओं का सब लोगोंको देश द्रोही और ब्रिटिश साम्राज्य वादकी कठपुतली कह कर सन्तुष्ट हो जाना व्यर्थ है। इस से वे भयसे बाहर नहीं हो सकते।

जबतक कोई जाति स्वयं स्वतन्त्र रहनेके योग्य न हो, बाहरकी कोई सहायता न उसे स्वतन्त्र बना सकती है न स्वतन्त्र रख सकती है। स्वर्गीय देशभक्त हरदयालने भारतको स्वतन्त्र करनेके लिये प्राणोंकी बाजी लगा देने वाले कुछ देशभक्तोंकी एक गदर पार्टी अमेरिकामें संगठित की थी। इन देशभक्तोंका आत्मोत्सर्ग और शौर्य अद्वितीय था। वे भारतमें आये और दीपक

पर पतंगकी भांति जलकर मर गये। पर यह देश टससे मस न हुआ। इसकी दासताकी शृङ्खला वैसीकी वैसी बनी रही। फिर नेताजी सुभाषचन्द्र बोसने "आजाद हिन्द सेना" बनाई। जापानियोंकी सहायतासे भारतपर चढ़ाई भी की। पर चिंगारी वहीं आग लगा सकती है जहां सूखी घास पहलेसे विद्यमान हो। हिममय महासागरमें चिंगारी गिर कर आप ही बुझ जाती है उसी प्रकार इस की स्वतंत्रताके लिये तैयार न होनेके कारण सुभाष बाबूका अपूर्व त्याग निष्फल हो गया। मुझे तो ऐसा दीख रहा है कि और दो तीन वर्षमें आजाद हिन्द फौजके कितने ही लोग भी उसी प्रकार साम्प्रदायिकताके शिकार हो जायेंगे जिस प्रकार कहा जाता है कि श्री जिन्ना श्री इकबाल और श्री फजले हुसैन हो गये थे।

श्री जिन्ना और मुसलमानोंको ही कोसना अज्ञता है। शायद इससे कुछ कालके लिये उनको बाहरकी दुनियाके सामने बदनाम करनेमें सफलता भी हो जाय। पर देशका दुःख तभी दूर होगा जब यह सोचा जायगा कि वे कौन परिस्थितियां हैं जिन्होंने इन देश बंधुओंको कांग्रेस और सवर्ण हिन्दुओंका साथ छोड़नेपर वाध्य किया। यदि अछूतोंका नेता डा० अम्बेदकर सवर्ण हिन्दुओंका विरोध करता है तो वह टोडी और ब्रिटिश साम्राज्यवादके हाथकी कठपुतली कहलाने लगता है। यदि स्पृश्य शूद्रोंका नेता रामास्वामी नायकर द्विजोंको अपनेको दूसरोंसे श्रेष्ठ समझना छोड़नेको कहता है तो वह देशद्रोही हो जाता है। यदि आदि वासी महासभाका प्रधान जयपाल सिंह सवर्ण हिन्दुओंकी शिकायत करता है तो वह दण्डनीय ठहरा दिया जाता है। उनके दृष्टिकोणको, उनके कष्टोंके समझनेका यत्न ही नहीं किया जाता।❀

सच्ची बात यह है कि जब तक देशमें सामाजिक समता और एकता नहीं होती तबतक राजनीतिक समता और एकता भी प्रायः असम्भव है। और भारतकी सामाजिक समता और एकताके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा हिन्दुओंका जाति-भेद है। जो व्यक्ति जातिभेदको मिटानेके लिये जो कुछ भी यत्न करनेको तैयार नहीं, पर अंगरेजोंको निकाल कर उनके स्थानपर स्वयं सिंहासनारूढ़ होनेके स्वप्न देखता है, वह मूर्खोंके स्वर्गमें रह रहा है। उसकी सभी आशाओंपर पानी फिर जाना अनिवार्य है। हमारे नेताओं ने राजनीतिक एकताके बजाय यदि जातिभेदको मिटानेपर बल दिया होता तो आज फूटके स्थानमें हम देशमें एकता देखते। आज पाकिस्तानकी मांग न होती। स्पृश्य और अस्पृश्यका भेद मिट गया होता। देश एक संगठित राष्ट्र देख पड़ता। हिन्दुओंमें कांग्रेसवादी निकलते हैं, हिन्दू सभाई निकलते हैं, सोशलिस्ट निकलते हैं और कम्यूनिस्ट निकलते हैं, पर आजतक एक भी ऐसा दल नहीं निकला जो जातिभेदको मिटानेको ध्येय बनाकर काम करता हो। इसीसे अछूत और स्पृश्य शूद्र कहते हैं कि संग्राम सवर्ण हिन्दुओंके लिये शासनाधिकार चाहती है, सामान्य जनता के लिये स्वतन्त्रता नहीं। उनको भय है कि कांग्रेसका स्वराज्य उनके लिये केवल प्रभुओंका परिवर्तन होगा।

दस करोड़ मुसलमानोंको देशसे निकाला नहीं जा सकता। सवर्ण हिन्दू न तो, जात-पांतके कारण, मुसलमानको शुद्ध करके रोटी-बेटी-व्यवहार द्वारा आत्मसात करनेको तैयार है और न अपवित्र समझ कर उससे घृणा करना ही छोड़ता है। वह चाहता है कि अछूत और शुद्रकी तरह वह मुसलमान भी उससे दबकर रहे। पर राजनीतिक जागृतिके साथ मुसलमानमें आत्मसमानका भाव भी जाग उठा है। इसलिये वह नहीं चाहता कि हिन्दू उससे घृणा करके उसमें हीनताका भाव उत्पन्न कर सके। हालमें लाहौरके राष्ट्रवादी मुसलिम पत्र 'ज़मज़म' ने लिखा था कि यदि "हिन्दू मुसलमानका सामाजिक वहिष्कार न करता, उसे नीच और अपवित्र समझ कर उसमें हीनताका भाव उत्पन्न करनेकी कुचेष्टा न करता, तो मुसलिम लीग पाकिस्तानको कभी अपना ध्येय न बनाती।'

हमारे राजनीतिक नेता कहते हैं कि साम्प्रदायिक

❀ इस लेखमें लेखकके सभी विचारोंसे हम सहमत नहीं हैं। सं० वि०

फिसादोंका कारण आर्थिक है। पर यह उनकी भारी भूल है। यदि यह पूंजीवाद और श्रमका ही झगड़ा हो, यदि अमीरी और गरीबीके कारण ही हिन्दू-मुसलमान लड़ते हों तो मुसलमान दरिद्र मुसलमान धनीको मारे और हिन्दू निर्धन हिन्दू धनीको गला काटे। पर होता क्या है? मुसलिम कंगाल हिन्दू कंगालके पेटमें छुरा भोंपता है और हिन्दू कंगाल मुसलिम भिखमंगेकी झोंपड़ी जलाता है। महात्मा गांधी कितने महीनोंसे नोआखालीमें एकताका प्रचार करते फिरे हैं। पर परिणाम यह है कि आज भी वहां उसी प्रकार साम्प्रदायिक लूट-मार जारी है। उलटा वहांकी आग सीमाप्रान्त और पंजाबमें भी आ पहुंची है। सीमाप्रान्तमें लोगोंको बलात् मुसलमान बनाया जा रहा है। यही दशा रही तो कुछ ही वर्षमें पश्चिमी पंजाबके देहातोंमें एक भी हिन्दू देखनेको न मिलेगा। जो हिन्दू जाति जात-पांतके किलेमें अपनेको बंद करके बैठ रही है वह इस्लाम और ईसाइयतकी आक्रमणकारी सेनाके सामने कितने दिन तक जीती रह सकेगी? उसके किलेमें छेद हो चुके है। शत्रु भीतर घुस आया है। उसके अपने मनुष्य बाहर निकलते जा रहे हैं। बाहरसे आकर कोई उसमें मिल नहीं सकता। यह आत्मरक्षाकी दशा कबतक बनी रह सकेगी? जो अछूत और शूद्र अपने थे वे भी छोड़ जाना चाहते हैं; सेनामें फूट और विद्रोह फैल गया है, दुर्ग जर्जरित हो रहा है। जो हममें मिलना चाहते हैं उनको हम मिला नहीं सकते, जो हमसे नाराज होकर छोड़ जाना चाहते हैं, उनको रोक नहीं सकते। ऐसी दशामें हिन्दुओंको बचाए तो कौन बचाए?

गीत

लख तुम्हें प्राण मेरे पुलक खिल गये!
प्राण में भर गई एक नव रागिनी,
छा गई श्वेत-उज्ज्वल मधुर चांदनी,
मिट गया एक क्षणमें विरहका तिमिर
आ गई ज्योति-पुलकित मिलन-यामिनी!
सर्वथा स्निग्ध मंजुल प्रणय-राग से
तार उर-वाण के मुग्ध हो मिल गये!
लख तुम्हें प्राण मेरे पुलक खिल गये!!

खुल गया प्राण में स्वर्ग का द्वार-सा,
मिल गया भाव को एक आधार-सा,
निष्पलक निष्कलुष दृष्टि के सामने
हो गया आज मधु-स्वप्न साकार-सा!
आ गया आज सहसा मलय का पवन,
पात-तृण उर-विपिनके सभी हिल गये!
लख तुम्हें प्राण मेरे पुलक खिल गये!!

अब कहां इन दृगों में सजल हास है?
अब कहां वेदनामय विकल सांस है?
धुल गया आज आकाश उल्लास से
अब कहां घन-सदृश आर्द्र उच्छ्वास है?
बंध गया आज तन-मन रुचिर पाश में,
कल्प दुखके निमिषकी तरह झिल गये!
लख तुम्हें प्राण मेरे पुलक खिल गये!!

—जितेन्द्र कुमार

पाली

श्री शम्भुनाथ सकसेना

...'शहरसे बाहरका हिस्सा है लेकिन उसे गांव नहीं कह सकते। गांवके साथ जिस सत्यका गठबन्धन है, उसका वहां सर्वथा अभाव है और इसीलिये मैंने कहा उसे गांव नहीं कहा जा सकता। लेकिन मेरी यहां इच्छा शहर और गांवकी व्याख्या करना नहीं है।'

श्रीकान्तने अपने दोनों हाथ पीछे ले जाकर हाथके पंजोंमें पंजे मिलाये और अघा कर अंगड़ाई ली, मानों अपने सामनेकी लम्बी बातको पूरी करनेके लिये स्वस्थ हो जाना चाहता है—शिथिलता और मनोभावोंके बीच-बीचमें उदय होनेवाली अनिच्छाको एक बारगी ही घरके कूड़े-सा बुहार कर एक तरफ इकट्ठा कर देना चाहता है। उसने प्रभानाथकी तरफ संकेत करते हुये कहा—

'मि० प्रभानाथ, हमारी भावनाएं और हमारे कर्म सभी अनिश्चित हैं। अभी-अभी सामने आयी परिस्थितियों से प्रेरणा पा हम क्या कर बैठेंगे और क्या नहीं, इसे सिवा सिरजनहार के कौन जानता है? जिस घटनाका मैं तुमसे जिक्र करने जा रहा हूँ उसका सूत्र कल भी मेरे लिये ढूंढ़ना अनिश्चित रहा है और आज भी—सही तो यह मैं परिस्थितियोंके बीचमें यही न समझ सका ऐसा सब क्यों हो गया? मेरा विवेक मुझसे कहता है—किसी मूर्तिको जन्म देनेके पहले मूर्तिकार के सामने भी एक कल्पना रहती है—एक चित्र रहता है और उस चित्रके पीछे मनके सत्य-की एक ठोस भावना रहती है। लेकिन तू तो निरा अकाल्पनिक ही रहा है और आज जो एक बार तेरे जीवनमें प्रतिबिम्ब बनकर आया उसकी छायाको पकड़नेके लिये पागलों-सा इधर और उधर दौड़ा फिरता है।'

मि० प्रभानाथने जेबसे रुमाल निकाल कर आनन पर दीप्त ओस-कणसे श्रम-बिन्दुओंको पोंछा और कहा—

'भाई श्रीकान्त, मेरा आपका परिचय अभी चन्द घण्टों का है। लेकिन इन चन्द घण्टोंमें ही मैंने महसूस किया है कि आपके हृदयमें वेदना ही वेदना भरी है—भावना इस अप्रत्याशित वेदनासे प्रभावित हुए बिना नहीं रहती। और इसीलिये मेरी समवेदना आपके साथ है।'

श्रीकान्त मुस्कराया, जैसे दिन भर धूपसे कुम्हलाई पौदमें सन्ध्या समय जीवन-सा आ गया हो। लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी मुद्रा कठोर पड़ गई। उसने अपने नेत्र प्रभानाथके चेहरे पर गड़ा दिये—

'धन्यवाद मि० प्रभानाथ! लेकिन मुझे दुःख है कि आपने मुझे समझनेकी चेष्टा नहीं की। आप समवेदनाकी बात करते हैं और अपनेको ही धोखा देते हैं। जो यह कहता है कि उसकी दूसरेकी वेदनाके साथ समवेदना है—वह गलत है, वह या तो अपने आपको धोखा देता है या फिर सामनेवालोंको धोखा देनेकी चेष्टा करता है। हम सब अपने लिये हैं—अपने लिये जीते हैं और अपने लिये मरते हैं। अपने स्वार्थ पोषणके लिये हम समवेदनशील बनते हैं—लेकिन हमारे एक दूसरेसे सम्बन्ध 'अर्थ' से सम्बन्धित है।'

कहते-कहते यकायक उसकी आकृति पर उभरी कठोरता तिरोहित हो गई। उसने अपनेको सम्भालते हुए कहा—

'लेकिन, मेरे इस कटु व्यवहारके लिये मुझे क्षमा करना भाई प्रभानाथ, परिस्थितियोंने और जीवनकी भयानक असफलताने मुझे अभद्र बना दिया है। जिस समय भावना प्रबल होती है तो विवेक हाथसे जाता रहता—मैं विवश हो जाता हूं।'

श्रीकान्त कहते-कहते शान्त हो गया। प्रभानाथ जो श्रीकान्तके इस परिवर्तनसे साबित हो गया था, द्रवित हो उठा। उसने बर्थपर और सिरकते हुए कहा—

'भाई श्रीकान्त, तुम जो कुछ कहना चाहते हो—कहो। मैंने तुम्हारी न किसी बातका बुरा माना और न मानूंगा।'

श्रीकान्तने कहा—

'अभी-अभी मैंने जिस जगहकी बात कही है—घटना वहीं की है। हमारे जीवनकी घटनाएं सभी एक-सी नहीं होतीं, उनका भी वर्गीकरण है। प्रथम श्रेणीकी घटना वहीं है जिसकी जीवन-पटल पर अमिट छाप अंकित हो जाये,

जिसका आदि तो हो लेकिन अन्त नहीं, दूसरी वह जो हमारे समीपवर्ती मित्र या नातेदारके जीवनकी प्रथम श्रेणी की घटना हो और हम चूंकि उससे किसी न किसी रूपमें 'अर्थ' से बंधे हैं इस कारण उस घटनाका प्रभाव हमारे ऊपर भी पड़ता रहेगा, तीसरी—अन्तिम वह हैं जिन्हें हम नित्य अपनी आंखों देखते हैं और मात्र दुख या सहानुभूतिके चलते-फिरते दो अश्रु-कण बहा कर भूल जाते हैं।

लेकिन मैंने मि० प्रभानाथ अभी कहा, मेरे जीवनमें जिस घटनाने आमाश्यमें शिशु-सा बीजारोपण किया वह तो नित्य जीवन ही पाती गई, आज ऊपरसे वह ईजिप्टके पिरामिड या इन्द्रप्रस्थ-सी ध्वस्त अवश्य हो गयी है लेकिन घटनाका अस्तित्व मुझमें सिक्त हो गया है और उसकी बाहरी आकृतिको ही मैं आज ढूंढ़ता फिरता हूँ। भाई, यदि आज मैं भाग्य पर विश्वास कर सका होता, तो जो अपरिमित कष्ट, मानापमान और दर-दरकी ठोकरें मुझे खाना पड़ रही हैं केवल भाग्यका लेखा, या विधाताके खेलमें अन्त पा गई होती। लेकिन मैं बुद्धिवादी हूं और बुद्धि केवल कर्मकी ही प्रेरणा देती है और जैसा कि आज आप मुझे सफर करते देख रहे हैं एक आशा-दीप अपने हृदयमें सजाये बराबर साल भर से घूम रहा हूँ। कभी-कभी निराशा करवट ले जागरूक हो उठती है, तो जीवन भार बन जाता है—अपनी आशा खोखली दिखने लगती है—हृत्पिंड, घड़ीके पेराडोलम-सा हिलने लगता है—अपना कर्म और विवेक हास्यास्पद दिखने लगता है। लेकिन……

लेकिन पालीके पुनर्मिलनकी आशासे निराशाके यह शत-शत बन्धन ढीले पड़ जाते हैं—कल्पना उर्वरा हो हृदयके भूमि-भागको सावनकी रिमझिम-सी निसृत हो सींच देती है—अवयव अतिशय हर्षसे मृगछौने-से, स्फूर्तिसे भर जाते हैं। और मैं एक विश्वासके सहारे आगे बढ़ जाता हूँ—भाई प्रभानाथ यही मेरे हृदयका मनोविश्लेषण है—यही मेरे जीवनकी गति है।

'जीवन की गति !'

श्रीकान्त अपनेसे ही मुस्कराया—

'नहीं…नहीं मेरे जीवनकी गति पाली है। पाली—'

और वह कहते-कहते खोया-सा सामनेके शून्यमें देखने लगा उसने फिर एक निस्वांस भरी—

'पाली !'

प्रभानाथने देखा कि उसके पास बैठा श्रीकान्तका व्यक्ति यथार्थसे अधिक भावनामें डूबता चला जा रहा है। उसने स्नेहसे श्रीकान्तका हाथ दबाते हुए कहा—

'मि० श्रीकान्त, जिस पालीका अभी तुमने जिक्र किया क्या उसीसे तुम्हारी प्रथम श्रेणीकी घटनाका सम्बन्ध है ?'

बात स्पष्ट थी कि जो कुछ प्रभानाथने कहा था वह केवल अचेतन्य श्रीकान्तको उसकी वर्तमान भावुकतासे पृथ्वी पर लानेके लिये कहा था। और उसमें उसे सफलता मिली। श्रीकान्त अपने बांहे हाथकी दो अंगुलियोंको अपनी दोनों आंखोंके पास ले गया और उनसे पलको पर फेर कर स्वस्थ हो गया। प्राकृतिस्थ होकर उसने कहा—

शहरके बाहरके हिस्सेमें आजसे डेढ़ साल पहले कुछ खानाबदोशोंने अपने डेरे डाल रखे थे। दिन भर यह शहरमें भीख मांगते थे—पुतलीका खेल करते थे, तरह-तरहके मनोरंजनोंकी रचना कर शहरकी जनताका मन बहलाते थे और आजीविकाके साधन जुटा कर शामको उस शहरके बाहरके निर्जन, नीरव प्रदेशमें लौट आते थे। खानाबदोशोंके इस जिरगेमें ही पाली थी।

एक दिन सुबह जैसे ही मैं टहल कर लौट रहा था, कि शहरके सिंहद्वारके पास मुझे एक बुढ़िया खड़ी मिली—उसके बाल भेड़की ऊन से भूरे थे—उसके आगेके दो दांत हाथीके दांतोंसे चमक रहे थे और वह अत्यन्त निर्बल दीख पड़ती थी। जैसे ही मैं उस डुकरियाके पाससे गुजरा कि बुढ़ियाने हाथ आगे पसारते हुए भिक्षा मांगी—

'ऐ दाताओंके दाता कुछ देता जा।'

मैंने अपनी जेबसे एक चवन्नी निकाली और कहा—

'भाई मेरे पास पैसे नही बंधी चवन्नी है।'

बुढ़ियाने अत्यन्त वेदना भरे स्वरमें कहा—

'भगवान् तुम्हारा भला करे दाता, पैसे मैं चवन्नीके उस दुकानसे ले दिये देती हूं। मैंने चवन्नी निकाल कर उसके हाथ पर टपका दी। लेकिन प्रभानाथ उस समय मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा जबकि बुढ़िया चवन्नी पाकर

चौकड़ी भरकर भाग उठी। यह पाली थी और यह स्वांग भर कर भिक्षा मांगना भी उसकी एक कला थी। मि० प्रभानाथ, आप नित्य ही अपने जीवनमें सड़क पर मानव होकर कीड़ोंकी तरह किट-बिल—किट-बिल करते भिखारियोंके रूपमें देखते हैं जिनके वमनसे कड़ी दुर्गन्ध उड़ा करती है—जो अपाहिज और अङ्ग-भ्रष्ट शरीरको लिये लोगोंकी सहानुभूति उभार कर उनकी दया—उनकी कृपाके हाथों अपना जीवन अर्पित कर देते हैं। लेकिन मैं कहता हूं, वे दया या कृपाके पात्र नहीं हैं—हमारी सहानुभूति उनके समाजको बढ़ाती है—हमारी दयाके सहारे उन्हें गलत प्रोत्साहन मिलता है—हमारी दी हुई भिक्षा उन्हें गुलामी सिखाती है। और यही कारण है कि कुछ तनसे स्वस्थ लेकिन मनसे निकम्में व्यक्तियोंने इसे पेशेके रूपमें इख्तियार कर रखा है—आप सही मानिए यह भिखारी और इनकी भिक्षा वृति हमारे युगका सबसे बड़ा अभिशाप है। आप जहां उन्हें भिक्षा देते हैं वहां उनके योग्य काम दीजिए, उन्हें पंगु न बनाकर उनकी भावनाको कर्मसे सींचिए।

खैर, उस दिन पाली मुझे चकमा देकर ऐसी गायब हुई कि दिखलाई ही नहीं दी। करीब एक सप्ताह बाद मैं फिर घूम कर उधरसे गुजर रहा था कि मैंने देखा खानाबदोशोंके डेरेके पासके शहतूतके पेड़के नीचे बैठी एक युवती हाथसे जमीनमें कुछ रेखाएं बना और मिटा रही है। मैं आगे बढ़ा ही था कि पीछेसे आवाज सुनी—

'बाबू—ऐ मेरे दाता चवन्नीके बाकी पैसे लिये जा।'

मैंने पलट कर देखा युवती मेरी ओर देख कर हंस रही है और हाथसे संङ्केत करके बुला रही है—वह पाली थी। पालीकी उम्र अधिक नहीं थी। उस दिनकी भिखारिन बुढ़िया और पालीमें जमीन आसमानका अन्तर था। पाली की बड़ी-बड़ी आंखोंमें मदिरा थी जिसकी मादकता उसकी एक दृष्टिक्षेपमें 'जाम'में अधिक भरी आसव-सी छलक पड़ती थी। अपरिमित चपलताने उसे उन फटे पुराने कपड़ोंमें भी कामिनी बना रखा था। मैंने पालीकी ओर देखा और वह बराबर कल-कल निनाद करते स्रोत-सी हंसती चली जारही थी। मैं उसके पास चला गया। मेरे उसके पास पहुंचते ही उसकी हंसी रूक गयी। मैंने कहा—

'तुमने उस दिन धोखा क्यों दिया?'

पाली मेरी ओर अवाक्य देखते रह गयी। मुझे मिला जैसे वह मेरी बातको समझ नहीं पायी। जिसे वह अपनी जीविका अर्जनका एक साधन समझती है, वह क्या जाने उसमें धोखा कहा और कैसा है। मैंने फिर कहा—

'देखो इस तरह पैसा कमाना बुरा होता है।'

पाली इस समय भी एकटक मेरी तरफ देख रही थी। मैंने पूछा—

'तुम्हारा नाम क्या है?'

उसने अपनी आंखें नीची करके कहा—

'बाबूजी मुझे पाली कहते हैं।'

फिर कुछ देर रूक कर बोली—

'बाबूजी इस तरह पैसा लेना क्यों बुरा है!'

मैंने बातको विस्तार देकर कहा—

'पाली भीख मांगना ही बुरा है—तुम नौकरी करो।'

पाली मेरी बात सुनकर फिर खिलखिलाकर हंस पड़ी—

'मैं नौकरी करूं। अरे बाबूजी आप भी खूब...'
और हंसे चली जारही थी। मैंने चलनेका उपक्रम किया कि उसने फिर कहा—

'आप नाराज होगये बाबूजी! लेकिन मेरी भी तो सुनिए?' मैं खड़ा होगया। उसने कहा—

'सरकार, आप माई-बाप हैं, अमीर हैं, हमारे अन्नदाता हैं। हम खानाबदोशोंका कहीं कोई ठीक है, आज यहां डेरे लगे हुए हैं, तो कल हमारा कारवां किसी दूसरे शहरमें होगा। हम भला क्या नौकरी करेंगे—सरकार हम एक जगह टिकने और नौकरी करनेके लिये बनायेही नहीं गये हैं।

कहते-कहते पाली भावनामें डूब गयी। मैंने अपनी छड़ी से जमीनकी मिट्टी कुरेदते हुए कहा—

'लेकिन यह भी कोई जीवन है। जिन्दगी भर भिक्षा मांगों और गुलामीके बोझको अपने सिर पर लादे चलो।'

मैं इतना कह कर आगे बढ़ गया। लेकिन उस दिनसे पाली नित्य ही मुझे घूमनेके समय मिलने लगी। एक दिन बोली—

'बाबूजी भीख मांगना आपको बुरा लगता है?'

मैंने हंसते हुए कहा—

'मैं'र अच्छे और बुरेसे क्या पाली ?'

पालीने अपनी चंचल आंखें नचाते हुये अपने फटे दुपट्टे का खूंट दांतसे काटते हुए कहा—

'नहीं बाबूजी आपको बतलाना पड़ेगा।'

मैंने कहा—

'पाली जिसतरहको तुम्हारी स्थिर जिन्दगी है उसमें पेट भरनेके लिए और साधन ही क्या हो सकती है।'

पालीने फिर हिट्ट की—

'नहीं बाबूजी आप यह बतलाइये भीख मांगना आप को बुरा लगता है ?'

मैंने कहा—

'हां पाली, यह भीख मांगना बड़ा बुरा है।. चौबीसों घन्टे दूसरोंके आगे हाथ पसारना—दूसरोंसे अपना पेट भरनेके लिये भिक्षा मांगना, यह अपना अपमान है—अपने श्रमका मखौल है।

पालीने स्थिर होकर कहा—

'बाबूजी अब मैं कभी भीख न मांगूंगी।'

मैं हंस दिया। पालीने अपने स्वरमें दृढ़ता लाते हुए कहा—

'सच कहती हूं बाबूजी अब कभी भीख नहीं मांगूंगी।'

उसके दूसरे दिन ही मैंने देखा पाली शहतूतके पेड़के नीचे बैठी पीली-पीली खजूरकी पत्तियोंको अमेठ-अमेठ कर गजरे बना रही है। मैंने कहा—

'इस सबका क्या करोगी पाली ?'

पालीने अपनी पुतलियोंको 'सम' पर लाते हुए कहा—

'आप इतना भी नहीं जानते ? मैं आज इन्हें ले जाकर बाजारमें बेचूंगी।'

दूसरे दिन पालीने बतलाया कि उसने उन खजूरकी पीली पत्तियोंके गजरोंसे एक रुपया कमाया। उसने उस दिन कहा—

'भीखसे मेहनत सरल है बाबूजी। कल आरामसे पूरा एक रुपया कमा लाई।'

दिन बीतते गये। जिस दिन टहलनेमें नागा हो जाती पाली मेरा इन्तजार करती रहती। पालीने एक दिन कहा—

'बाबूजी जिस दिन आप टहलने नहीं आते उस दिन मन काममें नहीं लगता। कल दुपहरिया तक मैं इस पेड़के नीचे बैठी-बैठी आपकी बाट जोहती रही।'

मैंने कहा—

'पाली तुम बड़ी भोली हो।'

पालीने तुनक कर कहा—

'हूँ, बड़ी भोली हूँ। अभी उस दिन जब आपकी चवन्नी ले भागी थी, वह भोलापन ही तो था।'

फिर थोड़ी देर रुक कर आपसे आप बोली—

'एक विनती मेरी आपसे है।'

मैंने पूछा—

'क्या ?'

उसने अपने फटे दुपट्टे के खूंटसे दस रुपयेका नोट खोल कर मेरे हाथमें दिया—

'इसका बाबूजी आप अपनी पसन्दका दुपट्टा ला दीजिये।'

मैंने नोट लौटाते हुए कहा—

'पाली इसे तुम अपने पास रखो। मैं कल तुम्हें दुपट्टा ला दूंगा।'

पालीने लेकिन मेरे लाख मना करने पर भी रुपये वापस नहीं लिये। मुझे विवश होकर उसके ही रुपयोंसे दुपट्टा लाना पड़ा।

आप सही मानिए मि० प्रभानाथ न जाने क्यों मैं पालीके निकट आता चला जाता था, यह मैं स्वयं नहीं जानता ? लेकिन पाली मेरे लिये चुम्बक बनती चली जा रही थी और मैं अपने एकान्त-चिन्तनमें महसूस करता था कि मैं उसकी तरफ खिचता चला जा रहा हूँ। एक दिन मैं टहल कर लौटा कि देखता क्या हूं पाली चुस्त मुहरीकी शल्वार, रेशमी कुर्त्ता और मेरी पसन्दका दुपट्टा ओढ़े उसी शहतूतके पेड़से टिकी खड़ी है। मैंने मीठी चुटकी लेते हुए उससे कहा—

'क्या ससुराल जा रही हो पाली ?'

पालीने नाखूनसे नाखूनपर रेखाएं बनाते हुए कहा—

'आप तो गाली देते हैं बाबूजी।'

जिस समय उसने अपने नेत्र ऊपर उठाये उनमें मौन सन्देश था—एक गहरी कल्पना थी—कुछ ऐसा भाव था

कि मैंने उसे खींच कर अपने हृदयसे लगा लिया। पालीने विरोध नहीं किया। मैंने कहा—

'सचमुच पाली आज तुम बहुत सुन्दर लग रही हो।'

पालीकी आंखें खुशीसे नाच रही थीं--उसकी कल्पना आकाशके सुदूरवर्ती देशमें परिभ्रमण करनेवाले श्वेत बकुल-दल-सी गगन-बिहार कर रही थी। मैंने उत्साहसे—स्नेह से—आकर्षणसे कहा—

'पाली!'

पालीने वक्षसे सिर हटाते हुए कहा—

'बाबूजी!'

उस दिनकी उस आकस्मिक घटनाके बाद पाली मेरे जीवनके बिल्कुल निकट आ गई। पाली मुझे मेरे जीवनकी आवश्यकता महसूस होने लगी। रोज हम एक दूसरेसे मिलते थे—हंसते थे—बातचीत करते थे—खेलते थे। उस नीरव स्थानकी छोटी-छोटी पहाड़ियोंके टीलोंपर बैठ कर मैं पालीसे बातें करता था और वह एक टक मेरी ओर निहा-रती ध्यानसे बातें सुनती रहती थी। पाली मेरे जीवनका एक नया रंग बन कर आई थी, जिसके स्वरमें मैं आत्म-विभोर हो गया था—मैं खो गया था।

फाल्गुनका महीना था। मुझे आरम्भमें हल्का-सा बुखार आया और बादको स्थिति गिरते-गिरते 'टाय फायड' हो गया। दस दिनसे घरसे निकलना बन्द था। चौबीसों घन्टे अपनी चारपाई पर पड़ा रहता था। पालीकी याद मुझे बुरी तरह सताती थी। लेकिन जिस समाजमें मैं पला था—जिस उच्च आर्थिक-स्तरके वातावरणमें मेरी शिक्षा हुई थी और जिस संस्कृतिकी मेरी मनोवृत्ति पर छाप अङ्कित हो गई थी, इनने मुझे पालीके विषयमें एक शब्द भी बोलनेसे मजबूर कर दिया था। भाई प्रभानाथ, आज की परिस्थितियोंमें मैं सोचता हूं कि यह आर्थिक वर्गीकरण जिसके आधार पर हमारे समाज और राजनीतिकी आधार-शिलाएं टिकी हुई हैं; कब समूल धरातलमें धसक कर लोप हो जायेंगी। आज हमारा धर्म, हमारी संस्कृति, हमारे सोचनेकी गति सभी दूषित हो गई हैं। ऐसा लगता है कि यह ऊंच-नीच और हमारे धर्मकी व्यवस्थामें अब कहीं ऐसा जबरदस्त विस्फोट होने वाला है जिसके भग्नावशेषके नीचे हमारी कलकी और आजकी परम्पराएं दब जायेंगी—नष्ट हो जायेंगी। मैं आपसे सही कहता हूँ आगे आने-वाली पीढ़ी इन आवश्यक बोझोंको और अधिक नहीं ढोयेगी।

पालीसे मैं प्रेम करता था—पाली मेरे जीवनकी आवश्यकता थी लेकिन इस सत्यको मैं न तो किसीसे कह सका और न इस सत्यकी अपने अन्दरवाले व्यक्तिके सामने अवहेलना कर सका। किन्तु इससे क्या? इसमें दोष मेरा है—दोष उस मनोवृत्तिका है जिसका पोषण समाजके संकरे दायरेमें हुआ। एक दिन मेरे नौकरने मेरी तबियत अच्छी देख कर कहा—

छुटका भय्या, जबसे तुम बीमार पड़े हो रोज एक लड़की बंगले पर आकर तुमसे मिलनेकी हट्ट करती थी। गये मंगेलको बड़ी उदास होकर बोली—

'बाबा, एक बार उन से कह दो कि पाली मिलने आई है लेकिन उसदिन मालकिन और बाबूजी तुम्हारे पास थे, मैं न कह पाया'।

मैंने उत्सुक होकर पूछा—

बल्देव दादा और कुछ कहती थी वह'।

'छुटका भय्या बस उसके बाद आखरी बार वह शुक्रवारको आई थी और एक कागजका टुकड़ा तुम्हारे लिये दे गई।'

बल्देवने पालीका लिखा कागजका टुकड़ा मुझे देदिया। पालीका काफिला कूच करने वाला था, इसकी ही सूचना पालीने दी थी। लिखा था—

मेरे सरकार, आप बड़े आदमी हैं। हमारी पहुंच आप तक नहीं हो सकती। बराबर एक महीने तक आपके बंगले पर चक्कर अगाती रही हूं, कि एक बार आपको देख भरलूं। आपकी बीमारीने मुझे पागल बना दिया है। लेकिन मैं अपना दुखड़ा किसके सामने रोऊं। मन मसोस कर रह जाती हूं। लेकिन आप बड़े हैं मेरी आवाज बंगले की चहार दीवारीको चीरकर आपके पास नहीं पहुंच सकती। मैं जा रही हूं-नजाने अब कभी जिन्दगीमें आपसे मिल भी सकूं या नहीं। लेकिन जो चीज आपको पसन्द नहीं है उसे मैं कभी नहीं करूंगी, यानी भीख कभी नहीं मांगूगी। आपकी याद और शहतूतकी साया कभी मेरे

ख्यालसे दूर न होगी-अलबिदा।

मि० प्रभानाथ, इस घटनाके बाद मेरा स्वभाव बदल गया—मैं बदल गया—मेरा सामनेकी चीजोंको देखनेका दृष्टिकोण बदल गया—मेरा युग, एक पूरी करवट लेकर परिवर्तनका संदेश मुझे देगया। उसके बाद मैंने शहरके बाहर उस स्थानको जाकर—डेरोंके निशान, बकरियोंकी मेगनियां, अधजली लकड़ियां और राखके ढेर तब भी वहां मौजूद थे लेकिन काफिला वहां न था—प्रकृतिमें फिर से मृत्यु-सी नीरवता भर गई थी।

उस समयसे ही मैं पालीको ढूंढता फिरता हूं। मैं बराबर चक्कर लगा रहा हूं और मुझे विश्वास है कि मैं पालीको ढूंढ निकालूंगा।

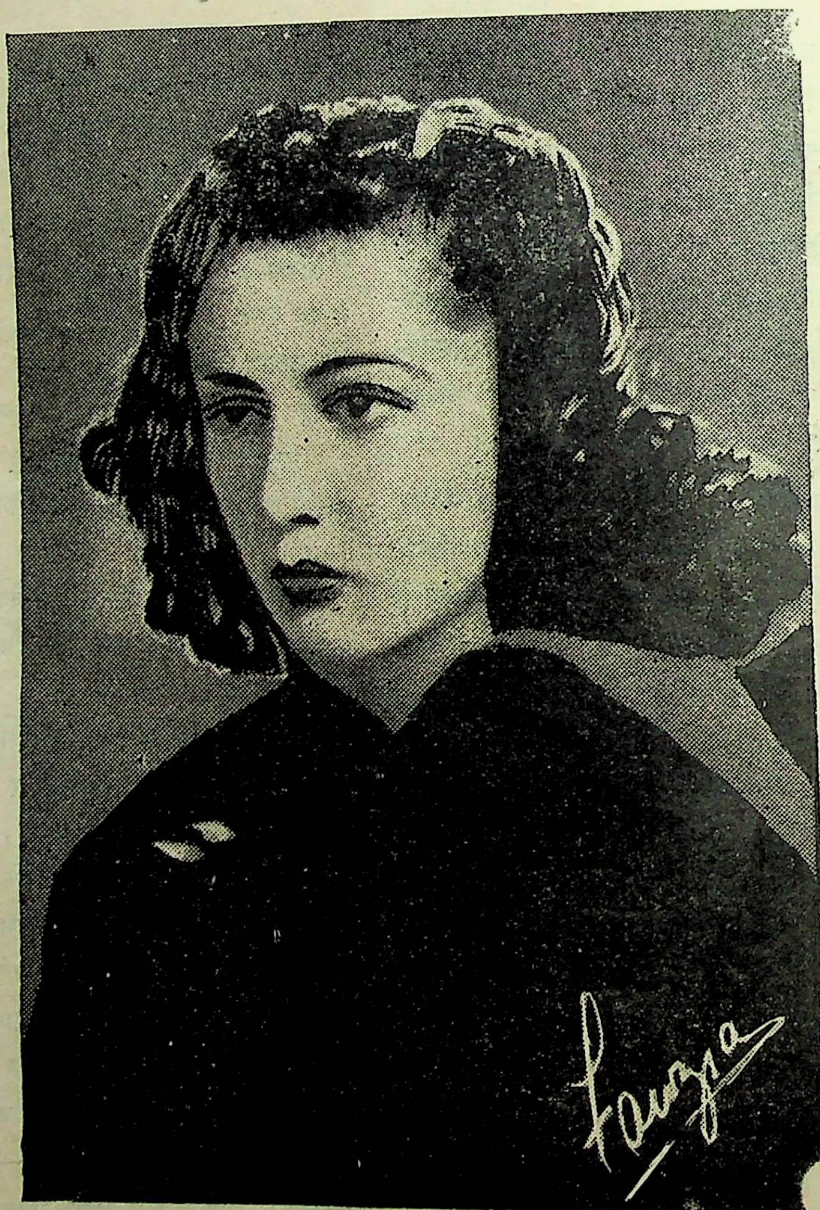
विद्युत्-सो तेज गतिसे दौड़ती पेशावर-एक्सप्रेस सहसा सि···स···सिच करके रुक गई। श्रीकान्त पागलों-सा अपने सैकिन्ड क्लास कम्पार्टमेन्टकी चेन खींच रहा था। जैसे ही ट्रेन रुकी वह अपनी अटेची लेकर नीचे कूदनेके लिये तैयार हुआ। मि० प्रभानाथने कहा—

'अरे यह क्या कर रहेहो श्रीकान्त?

श्रीकान्त उस समय मुस्करा रहा था—

'देखते नहीं हो वह सामनेके मैदानमें खानाबदोशोंके तम्बू।'

——



जर्मनीकी युवतियां विज्ञापन कर ऐसे पति चाहती हैं जो किसी होटलका मालिक हो।

नगदनारायण

श्री विनायक नानेकर

कोर्टमें कुछ काम था इससे जल्दी अपने कामसे निबट कर घर छोड़ा। रास्तेमें एक भिखारी मिला।

'मालिकके नाम पर एक पैसा मिल जाय। जो तांबे का दोगे तो सोनेका पाओगे मालिक तुम्हारे काममें बरकत बख्शे।'

मैंने जेबमें हाथ डाला। दो पैसा हाथमें आया। भिखारीको देने लगा तो दो पैसा देख वह बोला' 'साहब, महंगाई है, दो पैसा क्या देते हैं।'

'ठीक याद दिलाया। महंगाई है, एक-एक पैसा सोच कर खर्च करना चाहिये। तुम बड़े अक्लमन्द हो। मालिक तुम्हें ऐसी ही बुद्धि दें।' कह कर मैंने उन दो पैसोंको फिर उनकी जगह रख कर आगे रास्ता नापा।

कोर्टमें पहुंचा।—रिपोर्ट देनी है, कहते ही कारकुनने ५ रु० के स्टाम्पका एक कागज मेरे हाथमें थमा दिया। कोर्ट फी। मैंने मनमें कहा, 'न्याय भी पैसे वगैर नहीं मिलता।'

वहांसे छुटकारा पा घरकी ओर लौटा। रास्तेमें मंदिर पड़ा। सोचा 'चलो भगवान्‌से सफलताके लिये प्रार्थना कर आवें।' पुजारीजीसे बात छेड़ी तो बोले, 'भेंट-पूजा चढ़ाओ तो भगवान् प्रसन्न होंगे। तब काम 'फत्ते' होगा।' —तो भगवान् भी फोकटमें दया नहीं बख्शते?

मनमें एक वहम आ गया कि आजका दिन ही कुछ खराब समझ पड़ता है। जहां जाओ वहां पैसेकी मांग हो रही है। आजका दिन खर्चका मालूम देता है। इससे सीधा घर जानेके निश्चयसे मन्दिर छोड़ा। मगर रास्तेमें एक मित्र साहब आते दिखायी पड़े। इस डरसे कि कहीं यह भी कुछ मांग न कर बैठें, मैं उनकी नजर बचाते हुए आगे बढ़ा जा रहा था मगर वह ठहरे पक्के उस्ताद। आवाज दे ही दी। लाचार हो ठहरना पड़ा। चेहरा देख पूछ बैठे, 'क्या बात है, किस फिक्रमें हैं आप?'

'क्या कहें भाई, आज तो जहां जावो वहां पैसेकी ही मांग हो रही है पैसे वगैर तो कोई बात भी करनेमें अपनी तौहीन समझता है।'

'आजकल पैसेकी ही दुनिया है; और फिर यह बम्बई है। बम्बईमें पैसा हो तो मां-बापके सिवाय सब कुछ मिल सकता है।'

मैंने कहा, 'मां-बाप तो सरकार है ही। सिर्फ पैसा टेंटीमें हो न?'

मित्र साहब पीठ पर थाप मारते बोले, 'बड़े समझदार हो। बड़ी जल्द समझ जाते हो पैसे की बात।'

❀ ❀ ❀

—मैं तो क्या, दो सालका बचा भी पैसेको खूब अच्छी तरह समझता है। पैसा चीज ही ऐसी है। कोई बातूनी और अलल टप्पू लोग कहते हैं, 'पैसा क्या है, हाथ का मैल। पैसा तो वेश्या भी कमाती है। पैसा-पैसा क्या करते हो?' कहनेको तो ये लोग कह देते हैं, मगर जब वक्त पड़ता है तो हाथ मल कर रह जाते हैं। और उस वक्त हाथ मलनेसे सिर्फ मैल ही निकलता है, सिक्के नहीं। बार-बार हाथ देखते हैं मगर धनरेखा उसमें नजर नहीं आती।

पैसा चीज ही ऐसी है। पैसेके कारण ही आज दुनिया में इतनी चहल-पहल है, दौड़-धूप है। किसी भी मनुष्यसे प्रश्न करो तो मालूम होगा कि उसका उद्देश्य धन उपार्जन है। उस रोज रेलमें एक व्यापारीसे पहचान हुई। मैंने पूछा, 'आप सिगरेट पीते हैं?' इसपर वह बोला, 'पैसा खर्च करनेकी बात न करो। पैसा कमानेकी बात करो। पैसा जमा करो क्योंकि पैसा है तो कुटुम्बी है। पैसा करे काम और बीबी करे सलाम। पैसा है तो रिश्तेदार हैं, यार हैं, प्यार हैं, जीवनमें सार है सब जगह बेड़ापार है और पैसा नहीं तो न तार है न समाचार है, चारों तरफसे पड़ती मार है, जीना दुश्वार है, सब बण्ठाढार है।'

मुझे एक संस्कृत श्लोक याद आ गया :—

'धनैर्निष्कुलीना, कुलीना भवन्ति,

धनैरापदा मानवा निसारन्ति।

धनैक्यः परो बान्धवो नास्ति लोके,

धनन्यर्जयध्वम् धनन्यर्जयध्वम ॥'

पैसा है तो कई मित्र हो जाते हैं। निर्धनोंसे कोई मित्रता नहीं करता। पैसा है तो सुन्दर बीबी भी उपलब्ध हो जाती है। गरीबी कुरूप है इससे सब हिचकते हैं। लोग आश्चर्य करते हैं कि कौवेको हंसिनी कैसे मिली? यह सब पैसेका चमत्कार है। पैसा है तो मान है, मान है तो शान है, शान है तो वही इन्सान है और बाकी नादान हैं।

एक रईसने अपनी जिन्दगीमें ही अपनी सम्पत्तिका बटवारा अपने लड़के बच्चोंमें कर दिया। लड़के बेईमान निकले और उन्होंने बुढ्ढाको तंग करना शुरू किया। बूढ्ढा अपनी गलती पर पछताने लगा। दोस्तसे सलाह ली। रातको जब लड़के अपने-अपने कमरोंमें सोनेको जाते तो बुढ्ढा अपने कमरेमें दरवाजा लगाकर जोर-जोरसे रुपये बजाता और गिनता। लड़कोंने जब रुपयोंकी आवाज सुनी तो बूढ्ढेकी ओर उनका ध्यान गया और उसके पास पूंजी देख वे उसकी फिर आवभगत करने लगे। मरते वक्त बुढ्ढेने मित्रके दिये रुपये लौटा दिये और लालची लड़कोंको सबक पढ़ा गया।

डाकूवाल्मिकीने नारदके कहनेपर जब अपने कुटुम्बियों से पूछा कि वह धन लाता है और वे उसका उपभोग करते हैं, मगर उसके कर्म फलका भी कोई भागीदार है या नहीं?' तो सब कुटुम्बियोंने कानपर हाथ देकर कहा, 'हम तो कमाईके भागीदार हैं, हमें कर्मों और उसके फलसे क्या मतलब'। यह जवाब सुनकर वाल्मिकिने वैराग्य ग्रहण कर लिया।

'हरो चरहीं, तापहि वरत, फरे पसारहि हाथ।
तुलसी स्वारथ मीन सब, परमारथ रघुनाथ'।

दुनिया दामकी है, कामकी नहीं। लोगोंने इसीको उलटे ढगसे कहना शुरू किया है। वे पैसेको दोष देते हैं। उनका कहना है कि पैसा बुरा है। पैसाही दुखोंकी जड़ है। यह तो वैसेही हुआ जैसे कोई आगमें हाथ डालकर कहे कि आगने मेरा हाथ जला दिया। पैसा न बुरा है न भला। पैसातो जड़ है न उसके हाथ हैं न पांव, न वह खुद किसीका भला करता है न बुरा। पैसा बुरा नहीं, पैसेका उपयोग बुरा या भला होता है। पैसा बुरा नहीं पैसेका लोभ बुरा होता है। एक मनुष्य है जो पैसेका सदुपयोग करता है, गरीबोंकी भलाई करता है, लोगोंका उपकार कर उनकी दुआ प्राप्त करता है और एक मनुष्य है जो पैसेके लिये मनुष्यको विष देने या छुरा भोंकने पर उतारु हो जाता है। पहले मनुष्यकी वावत पैसा अच्छा समझा जाता है और दूसरेकी वाव तबुरा। पहलेकी वावतमें पैसेके सदुपयोगके कारण उसे भला माना गया है और दूसरेकी वावत उसके लोभके कारण बुरा माना गया है। एक तीसरा दल भी है जो पैसेकी मददसे अनुचित कर्म करता है जैसा जुआ खेलना, शराब पीना, ऐय्याशी करना। लोग कहते हैं वह पैसा बरबाद कर रहा है। मगर पैसा बरबाद नहीं होता उसका दुरुपयोग होता है। पैसा गोल है और वह हमेशा चलता ही रहता है। पैसा बरबाद नहीं होता, इन्सान बरबाद होता है। पैसेका दुरुपयोग करने वाले अक्सर बुरे आचार-विचार वाले होते हैं और बुरी कमाईका पैसा बुरे कर्म करनेको ही प्रेरित करता है। ये लोग पैसेके धनी नहीं होते, पैसा इनका धनी होता है। इनके हाथमें पैसा नहीं होता, पैसेके हाथमें ये लोग होते हैं। इससे पैसेके स्वामी बनो। यदि आप इसके स्वामी बने रहे तो आप उससे अच्छे कर्म कर सकते हैं मगर यदि वह आपका स्वामी बन गया तो वह आपसे बुरे ही कर्म करायेगा।

ईश्वरने दुनियामें हर वस्तु एक दूसरेके परोपकारके लिये रची है। नदी पानी देती है, पत्थरसे मकान बनते हैं, समुद्र नमक देता है, बृक्ष फल और छाया देते हैं, मिट्टीसे खेती होती है, पहाड़ोंसे वर्षा होती है, जानवर दूध और चमड़ा देते हैं, फिर इन्सान जो सबसे समझदार प्राणी है क्यों इस कर्मसे वंचित रहे?

'जब जल बाढ़े नाव में, घरमें बाढ़े दाम।
दोनों हात उलीचिए, यह सज्जनके काम।'

हमारे यहां परम्परासे धन गाड़नेकी प्रथा चली आ रही है। आगरेका एक रईस मेरे पास शोक प्रकट करने लगा। उस वक्त विक्टोरिया और एडवर्डके रुपयोंके चलन के बारेमें नोटिस निकली थी। उसका कहना था, 'यह मौका है पूंजी दूनी करनेका। फावड़ोंसे समेटनेके इतना रुपया है मगर लाचार हूँ।'

मैंने कहा, 'क्यों गोल मटोल बकते हो ? जब पूंजी है तो लाचार क्यों ? जब सामर्थ्य है, तो विचार क्यों ?'

'अजी वो तो जमीनमें गड़े हैं। खुदवा कर निकलवाऊं तो बराबरीवाले कहेंगे मेरा दिवाला निकल रहा है उसीसे गड़े धनको खुदवानेकी जरूरत पड़ रही है। निकालूं तो बदनामी होती है, न निकालूं तो नुकसान होता है। यहां तो लाचारीकी बात है।'

तो इसी तरह हमारे देशमें करोड़ोंकी सम्पत्ति भूगर्भमें मास जाती है। मैंने कई ऐसे रईस भी देखे हैं (यदि वे रईस कहाने योग्य हों) जिनका जन्म हाय पैसा हाय पैसा करते करते ही बीता। दया और धर्मको बलाए ताक रखकर इन्होंने धन संचय किया। कारण पूछा तो जवाब मिला कि यह सब उत्पात संतानोंके लिये है ताकि वे रईस रहें। मगर मुल्ककी हालतके आंकड़े कहते हैं कि ऐसे रईसोंके पचहत्तर फीसद लड़के अवारा, गंवार और उठाउ टप्पल निकलते हैं और इस तरहकी बिना मेहनतकी कमाईका दुरुपयोग करते हैं और यह भी देखा गया है कि मुंहताज होनेपर वे अपने बापको कोसते हैं कि उसके ही लाड़-प्यार और मुवाफिज शिक्षाके कारण वे उन्नति करनेसे रोके गये। इसीसे धनका संचय निषेध है। यदि मनुष्य हिले-डुले नहीं तो वह मुर्दा माना जाता है उसी तरह धनका व्यवहार लेन-देन न हो तो वह कंकड़ पत्थरके समान है। यदि सन्तान बुरी है तो धनका सञ्चय व्यर्थ है क्योंकि वह उसका दुरुपयोग करेगा, और यदि संतान अच्छी है तो भी धनका सञ्चय व्यर्थ है क्योंकि वह अपने पुरुषार्थसे कमा लेगा।

पूत कपूत तो क्यों धन संचें, पूत सपूत तो क्यों धन संचें ?

तुम खाओगे तभी तुम्हारा पेट भरेगा, तुम मरोगे तभी स्वर्ग दीखेगा, तुम्हारे फोड़ेका दर्द तुम्हें ही मालूम हो सकता है उसी तरह तुम्हीं कुछ करोगे तो उसका फल तुम्हें ही मिलेगा। इससे जिन्दगीमें कुछ अच्छा कार्य करलो। अपने धनका गुणका सदुपयोग करलो तो वही तुम्हारे उत्तम स्मारकका काम देगा। पारसी सम्प्रदायने इस तथ्यको अच्छी तरह समझा है और उसका कार्यमें भी उपयोग किया है इसी कारण उनके सम्प्रदायमें भिखारी और अशिक्षित लोगोंकी न्यूनता है। राजा हरिश्चन्द्र दानके कारण ही प्रसिद्ध हो गये, युधिष्ठिर उपकारके कारण ही धर्मराज कहलानेके पात्र हुए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने भी अपनी सम्पत्ति गरीबों और विद्वानोंको बांट दी। इन्सानके साथ उसकी सम्पत्ति नहीं जाती, उसके सत्कर्म और यश इहलोक और परलोकमें भी उसका साथ देते हैं।

एक दाता गरीबों को दान दिया करता था। मगर उसकी नजर हमेशा नीचे रहती थी। किसीने उसका भेद जानने के लिये पूछा,

"देना सीखे कौन से, देते हो दिन रैन।
चारों द्वारे देत हो, कर कर नीचे नैन॥

उस दाता जवाब दिया :—

देन हार समरथ है, देता है दिन रैन।
लोग समझ मो पै धरे, तासे नीचे नैन॥

पैसा हो तो सब कुछ मिल सकता है जो लोग ऐसा कहते हैं वे लोग पैसेके लिये ही सब कुछ करते हैं। पैसे से मिला मान मतलबी होता है जो मतलब निकल जाने पर कुहरेकी तरह आपही आप लुप्त हो जाता है। एक समझदार मनुष्य, जिसका जीवन सेवा और परोपकारमें व्यतीत हो रहा है, फिर चाहे वह किसी भी श्रेणीका क्यों न हो, जितने सम्मानके पात्र होता है उतना मान एक धनी अपनी अटूट सम्पत्तिसे प्राप्त नहीं कर सकता। पहिला दिलोंमें स्थान पाता है, दूसरा जबान में। जबानपर की वस्तु हवा हो जाती है मगर हृदयपर की रेख पत्थरकी तरह अटल रहती है।

एक अमीर है, एक फकीर है। एकके पास पैसा है दूसरेके पास दया है। फकीर पूजे जाते हैं अमीर कोसे जाते हैं। 'राजा नरकके भागी होते हैं।' ये शास्त्र वाक्य है क्योंकि राजा स्वार्थी होते हैं।

मनुष्य धनी हो तो उदार भी हो। मगर चोरबाजार औरुपयेमें चारआने ब्याज खाने वाले धनी बेकार हैं। धनी की उदारताकी तभी तारीफ हो जब उसकी कमाई पवित्र हो -पसीनेकी हो। मगर यह होना कठिन है क्योंकि अच्छे ढंगसे कमाई कर उदार दिलसे खर्च करने वाला कभी धनी नहीं हो सकता। न धनी कभी अपनी उदारता और पवि-

•त्रताका कोई उज्वल सबूत दे सकते हैं।

अबुलहवास (सूफी) के पास उनका चेला जाकर बोला 'मेरे पास हजार दीनार हैं, मुझे हज्ज करनेकी इच्छा है। इसपर सूफी बोली, 'किसी कर्जदार या, मुहताज इन्सानको देदो क्योंकि खुदाकी एक औलादका दुःख दूर करना हजार बार हज्ज करनेके बराबर है। चेला बोला, 'धन आपसे बटोरा हुआ है जिसके कारण तुम उसका तुरन्त उचित लाभ नहीं उठा सके'।

अमीर बनना बुरा नहीं मगर मीली अमीरीका सदुपयोग न करना बुरा है। जो इन्सान यह कहे कि वह अमीर बनना नहीं चाहता तो समझना चाहिये कि वह दूसरों का भला करना नहीं चाहता। अमीर बननेका प्रयत्न करो और अमीरीका सदुपयोग कर अमर बनो। ईश्वरने तुम्हें अमीरके घर जन्म दिया है तो कुछ अच्छा करनेके लिये ही दिया है। जो ऐसा नहीं करते वे ईश्वरकी अवहेलना करते हैं। ईश्वरके हुक्मकी अवहेलना करने वाले दुःखके भागी होते हैं। भगवान्को नहीं है पसन्द 'कंजूस अमीर और लालची फकीर'।

हजरत इब्राहिमके पास एक अमीर पहुंचा और उन्हें एक हजार दीरम लेनेको कबूल करनेको मजबूर करने लगा हजरत बोले, 'मैं मंगतोंसे कुछ नहीं लेता'। अमीर बोला, 'मैं मांगता नहीं अमीर हूं'। हजरत इब्राहिम बोले, 'तू अमीर नहीं मंगता है। क्या तुझे, जो तेरे पास है इससे अधिककी चाह नहीं है?' धनी बोला, 'है'। तब तो तू मंगता है। मैं उनके धनको कबूल करता हूं जो संतोषी हैं'।

माया ऐसी है कि जो माया माया करते हैं वह उससे दूर भागती है और जो उसे दुतकारते हैं उसके वह पैर चूमती है। जो आदमी सत्कर्मोंमें एक पैसा खर्च करते हैं वे उसके बदले दस पैसे पाते हैं। जो बुरे कर्मोंसे एक पैसा कमाते हैं वे उसके बदले दस खोते हैं। एक अमीर जो गरीबीसे अमीर बना था अपने पुराने एक मित्रके यहाँ गया मित्रने इसे बैठनेको पीढ़ा दिया। इसपर अमीरने कहा 'भाई मैं तो वही हूं जो पहले था। मैं तो पहलेकी तरह ही जमीनपर बैठूंगा। यह पीढ़ा तुमने मुझे नहीं मेरी संपति को दिया है। यह कह कर इस अमीरने अपने हाथोंके दोनों कड़ें निकाल कर उस पीढ़ेपर रख दिए। फिर उस रईस ने आगे कहा, 'पैसा पैसा करनेसे पैसा नहीं मिलता बल्कि समय और शरीर नष्ट होता है'। अच्छी नीयत उंचा दिल और परिश्रमसे पैसा आपही आप प्राप्त होता है'।

———



राधाकी कुटिया

श्री चतुर्भुज कर्मकार बी० ए०

राधा चक्कीके मुंहमें चनेके दाने डालती हुई मधुर ग्रामीण स्वरसे गा रही है— सावन मास सुहावनो महीना रुमक झुमक जल बरसे। उसकी दुनिया इस समय चक्की तक ही सीमित है। पासमें बच्चे चिथड़ोंकी सेजपर लेटे हुए हैं। मुहल्लोंमें पूरा सन्नाटा है। रात समाप्त होनेवाली है और मुर्गे बोलने लगे हैं। चक्कीसे छुट्टी पाते ही राधाको खेतोंकी तरफ जाना है। वहांसे वह अपनी प्यारी भैंसके लिये घास काट कर लायेगी। भैंस ही उसकी सबसे बड़ी पूंजी है। उसका दूध बन्द हो जानेपर राधा और उसके कच्चे परिवारकी क्या दशा होगी, यह सोच कर राधा कभी कभी पागल सी हो उठती है, परन्तु न जाने उसे कौन भरोसा दिला देता है कि यह भैंस तो बारहमासी है। दूध देती ही रहेगी और दूध बन्द करते ही, फिर नया बच्चा दे देगी। इस आशावादने राधाको इस भयंकर अकालमें जीवित रख छोड़ा है। अकालके दिन लम्बे होते चले जा रहे हैं, परन्तु राधाका आशावाद उनसे कहीं अधिक लम्बा है। वैधव्यके दारुण दुखसे ढकी हुई राधा यह नहीं जानती कि नयी साड़ी क्या होती है। वह उन दिनोंको भूल चुकी जबकि रेशमी साड़ियां पहना करती थी। वे दिन तो स्वप्न समान दिखायी देने लगे। जहां राधाके यहां पहले पंडित और ज्योतिषियोंका तांता लगा रहता था वहां अब कुछ मजूर भले ही भैंसकी करामातें जाननेके लिये आ जाते हैं। पंडित पुजारी तो चांदीकी थालियां देखकर आकर्षित हुआ करते हैं।

ज्योतिषीजी राधाकी जन्म कुण्डली देखकर उसे प्रसन्न करनेके लिये उसके अखण्ड सौभाग्यकी निशदिन चर्चा किया करते थे। चांदीकी चवन्नी राधासे पानेकी आशामें उसका वैभव और उसका सुख महासमुद्रके समान असीम बनाते हुए नहीं थकते थे, परन्तु अब दर्शन देने कैसे आयें। उस रास्तेसे निकलते भी नहीं कि कहीं दिन भरके लिये अशकुन न हो जाये। राधा इतनी अभागिन मान ली गयी। देव पूजनके लिये जाने वाली ग्राम महिलाएं डरती रहती हैं कि कहीं राधाके मकानका दरवाजा खुला न हो और राधा उससे झांकती हुई दिखायी न दे जाये। उसका मुख आज इतना अमङ्गलसूचक जो हो गया है। राधा बेचारी डाइन मान ली गयी है, क्योंकि उसके आते ही घरकी सारी सम्पदा हवा हो गयी और उसने अपने प्रिय पतिको भी डस लिया। राधा रोती है, परन्तु किवाड़ बन्द कर, क्योंकि उसका रोना सुनकर कोई कोसने न लगे कि अशकुन की पुतली रात-दिन आंसू ही बहाती रहती है, किसीका मंगल कार्य भलीभांति सम्पन्न ही नहीं होने देती। उसके बच्चे किसी आती हुई बारातको देखकर इस तरह हांफते हुए भागते हैं, मानों किसी भेड़ियाका सामना कर रहे हों। बारातके आगे चलनेवाले मसालची कहने जो लगते हैं कि इन कपूतोंके पैर आगे पड़ गये। पहले इन कपूतोंके पैर पोंछते हुए वे गुड़की ढेलियां इनाममें पाया करते थे और कृष्ण कन्हैया, राम दुलारे कह कर उन्हें कन्धों पर चढ़ा लिया करते थे।

एकान्तमें भीतर रोती हुई राधा कभी कभी आत्म-हत्याकी बात सोचने लगती है, क्योंकि वैधव्यके साथ समाजने उसे अभागिन जो मान लिया और सहानुभूतिके स्थानमें उसे कुत्तोंकी तरह दुर दुराता है। उसके विरुद्ध थानेमें रिपोर्ट लिखा दी गयी थी कि उसके पनालेका पानी बराबर रास्तेमें बहता रहता है। थानेदार मुसलमान थे। उन्होंने जुर्माना नहीं किया, परन्तु राधाको यह नेक सलाह दी कि वह मुसलमान हो जाये, तो उसके बच्चे चैनकी बंशी बजायेंगे और वह अपना सौभाग्य भी वापस पानेमें समर्थ हो जायेगी। वही राधा फिर एक मदारीकी रानी बनकर भी गांवकी औरतोंमें इज्जत पा जायेगी और यदि किसी पीर पूजनेवालेके यहां चली गयी, तो बड़ी बड़ी साहूकारिनें और पुजारिनें उसकी धूल चाटने लगेंगी और उसका थूक अपने प्रसादमें लेकर गले तले निकाल लेंगी। कैसा सुन्दर

वह जीवन होगा। राधाके सामने काफी प्रलोभन था और दारोगा साहबकी मेहरबानीको ध्यानमें रखती हुई वह उनके प्रस्तावपर गंभीर विचार करने लग जाती थी। परन्तु रातको कोई छतके ऊपरसे पुकार कर उससे कहता था कि राधा संभल कर रह। ये दिन हमेशा न रहेंगे। हिन्दू समाज की तुम सरीखी बहन बेटियोंके भाग्य पर प्रतिदिन सहानुभूति दिखायेगा। चक्की रोक कर राधा कभी दारोगाकी बातें याद कर लेती और कभी छतसे होनेवाली आकाशवाणी को।

राधाके सुकुमार बच्चे पूरे प्रकृतिजेता बन गये थे। भयंकर जाड़ेकी कड़ी शीत उनके नंगे बदनोंपर कोई असर नहीं डाल सकती थी और न कड़ी गर्मी ही उन्हें तेज दोपहरीमें छप्परके नीचे लेटा रख सकती थी। बरसात तो उनके लिये खिलवाड़की चीज थी। गांवका कोई काम किसीको बरसते हुए पानीमें कराना हो, तो ये तीनों वीर उसके लिये हमेशा तैयार पाये जाते थे। राधाके डरसे वे किसीसे कुछ ले भी नहीं सकते थे, क्योंकि दूसरोंकी दी हुई फूटी कौड़ी राधाको जहर मालूम होती थी। घोर परिश्रममें विश्वास करनेवाली विधवा अपना स्वाभिमान अक्षुण्ण रखना चाहती थी, और उन शहरी शिक्षितोंमें न थी, जो चायके प्यालेके लिये भी राहगीरों तकसे पैसे मांगनेमें संकोच नहीं कर सकते और उधार लेना तो जिनके लिये गवर्नमेंटके लोन जारी करना है। एक दिन गांवमें राधाकी बिरादरीके लोग इकट्ठे हुए। किसी शैतान ने राधाको बुद्धि दी कि वह पंच परमेश्वरोंसे निवेदन करे कि उसके बच्चोंको अपनी गोदमें लें। राधा प्रभावित होकर प्रार्थना करने चली गयी। प्रार्थना सुनते ही पंच आग बबूला हो उठे। आज वे एक महान् यज्ञकी तैयारीके लिये इकट्ठे जो हुए थे और उनका कीमती समय इस प्रकार एक हतभाग्य विधवा बर्बाद करनेका कोई अधिकार न रखती थी। बिरादरी वालेके यहां एक बिल्ली मरनेकी बात पंचोंके कानोंमें पहुंच चुकी थी और आज वे उसके साथ न्याय करनेपर तुले हुए थे। जातीय बहिष्कारसे कममें वे सन्तुष्ट नहीं हो सकते थे। खुदाबख्श कारीगरने खास पंचोंके यहां जाकर काफी शान चढ़ा दी थी कि वे जीवित रहें और बिल्ली मारनेवाला बिरादरीका नाम गन्दा करता रहे, तब तो हमारी बिरादरी और पंचोंकी बिरादरीमें फर्क ही क्या रहा।

खुदाबख्शने जिस ढंगसे दस पांचके घर जाकर शान चढ़ाई, उससे उसका काम बनता नजर आने लगा था। गांवमें पचीस वर्ष पहले उसका एक ही घर था, परन्तु आज तो सवा सौसे कम नहीं। उनका अपना स्कूल है, अपनी दस बारह मसजिदें हैं और बीस-पचीस ताजिये भी गांव वालोंके चन्दे और शरबतसे निकलते हैं। मसजिदें साफ-सुथरी हैं और महादेवजीकी मढ़ियां खंडहर बनकर कुत्ते बिल्लियोंके लिये आश्रय स्थान बन रही हैं। ताजियों की पूजाकी खासी धूम है। जितना बड़ा पंच, उतनी ही अधिक उसके परिवार द्वारा ताजियोंपर चढ़ौती। खुदाबख्शके सभी साथी पंच महाशयको इतना आसमानपर चढ़ाते जो रहते हैं। पंचोंने रात भर चिलम फूंक फूंक कर घोषणा कर दी कि बिल्ली मारनेवाले सोहनलालको आजसे सपरिवार जाति बहिष्कृत किया जाता है। सोहनलालने बहुत चाहा कि उसकी बात पंच परमेश्वर सुनें, परन्तु पंचोंने कहा कि हम तो ऐसे पापीका मुंह भी नहीं देखना चाहते। रातको बिल्ली एक कोठरीमें घुस गयी थी और कोई विषैला चूहा खाकर खतम हो गयी थी, उस चूहेका अपराध सोहनलालके शिर पंच परमेश्वरोंने थोप दिया और कई वर्ष तक सपरिवार तिरस्कृत होता हुआ सोहनलाल अजमेर जाकर एक मसजिदमें सपरिवार नूर इलाही बन गया।

राधा डर कर पंचोंके सामनेसे भागी और घर लौट कर बच्चोंके पास लेट गयी। खुदाबख्शका एक रिश्तेदार उसे पंचोंके पास जानेकी सलाह दे गया था। दूसरा रिश्तेदार अब उसकी नब्ज पहचाननेके लिये आया और किवाड़ खुलवाने लगा। राधा धीरे-धीरे अचेत सी हो चुकी थी। उसे पंचोंका अपमान असह्य हो रहा था। छोटे बच्चेके सुलानेके लिये वह अफीम खरीद लाती थी। उसकी फटी धोतीकी गांठमें वह बूटी बंधी हुई थी। राधा उसे हाथमें लेकर मुंहमें डालने लगी। किसीने उसी समय उसका हाथ झटका और वह फिर अचेत अवस्थामें पड़ी रह गयी। न जाने कौन उन तीन बच्चों की मां को बचा ले

गया। राधाके लिये तो जादूगर ही था। तिरस्कृत राधाने गांव छोड़नेका विचार किया, परन्तु कौन भारतीय गांव विधवाओंके लिए स्वर्ग है। विधवाश्रम भी तो उनके लिए सुरक्षा गृह नहीं। ईश्वर पर भरोसा रखकर राधा भैंसके बलपर अपने बुरे दिन काट रही है और आज यदि वह चक्की चलाकर सावनके सुहावने महीनेके गीत गाती है, तो केवल उस सन्तप्त आत्माको दिलासा देनेके लिये, जो चारों ओरसे असन्तोष और आत्मग्लानिकी लपटोंसे घिरी हुई होकर भी केवल पुत्र रक्षाके लिए अपना अस्तित्व रखे हुए है।

——

चतुर्दशपदी

प्रतिदिन भावोंका संघर्षण, प्रतिदिन तन-मन का द्वन्द, सखी !
पंखों में रोज नया बल भर तन का पंछी उड़ता फिरता,
हर रोज क्षितिजसे टकरा कर आशाहत हो भू पर गिरता,
इङ्गित पा चांद-सितारों की, मन रोज वहां उड़ जाता है ;

हटता तन पर से, किन्तु, नहीं निष्ठुर जगका प्रतिबन्ध, सखी !
छविका आकर्षण एक तरफ, मनकी जिसपर होती रुझान,
यह मोह जगतका एक तरफ, पलता जिसमें तन नाशवान,
मनका आदर्श बहुत ऊंचा, तनपर जगका अधिकार बहुत ;

पर, बैठ न पाता ठीक कभी जगसे मनका सम्बन्ध, सखी !
मन कहता,--'तोड़ चलो बन्धन', तन कहता--'मत तोड़ो विधान,'
दो लहरों पर बिम्बित होते अरमानोंके सन्ध्या-बिहान,
पल-पल ढलता जाता जीवन-यौवनका एक दिवस स्वर्णिम;

मिटकर भी होता, किन्तु नहीं भावुक जीवन निर्बन्ध, सखी !
प्रतिदिन भावोंका संघर्षण, प्रतिदिन तनमन का द्वन्द, सखी !

— राजेन्द्र प्रसाद सिंह

नारी-शिक्षा और अर्थोपार्जन

कुमारी विद्यावती वर्मा एम० ए० एल० टी०

आजसे पचास वर्ष पहिले, अनेक दिशाओंसे प्रकाश पाकर, जब मध्य और आधुनिक युगके सन्धि-स्थल पर खड़ी होकर भारतीय नारीने अपनी ओर देखा तो वह विक्षुब्ध हो उठी। उसने देखाकि श्रृंखलाओंसे जकड़ी नारी का स्थान आज मूक-पशुओंसे भी अधिक दयनीय है। तब वह विद्रोह कर उठी। वह बन्धनोंको तोड़कर, स्वतंत्रता प्राप्त करनेकी, सामाजिक जीवनमें अधिकार पानेकी, अपना एक स्थान निर्धारित करनेको चेष्टा करने लगी। और कम से कम एक वर्ग सफल भी हुआ इस प्रयत्नमें। यह एक वर्ग के, नन्हेंसे दायरेके अन्दर सफल हो जानेको हम सफलता नहीं कहेंगे। मलिन-वसना, जटिल-अलका नारी यदि अधरों पर राग लगाकर घूमे, तो वह अधर-राग उसके सौन्दर्यका प्रसाधन न बनकर उसका विद्रूप कर उठेगा। इसी तरह की स्वतंत्र, संस्कृति, सुशिक्षित नारी भी उपहास और भय की वस्तु बन गयी है। जिन आशाओंको लेकर नारी-आन्दोलनका आरम्भ हुआ, वे फलीभूत न हुईं। लोगोंका विचार था कि शिक्षाके ही द्वारा भारतीय नारी ऊपर उठेगी। पर वैसा हुआ नहीं।

आखिर इसका कारण क्या है ?

कारण अनेक हैं। दोष पूरा नारी समाजका ही नहीं। सबसे बड़ा कारण तो देशकी परतंत्रता है। यह सदैवसे होता आया है कि शासित जाति सदैवसे शासकोंकी नकल करती है। हमने भी वही किया। पश्चिमकी अन्धाधुन्ध नकल करनेमें हम भूल गये कि भारतका आदर्श ही दूसरा है। भारतीय नारी सबसे पहिले गृहिणी है, माता है, फिर पत्नी है। उसे जीवनमें अनेक कार्य करने हैं। पर हम इन बातोंको भूल गये। जैसा पूज्य गांधीजी कहते हैं आधुनिक लड़कियां अपनेको लोगोंकी आंखोंमें आकर्षक बनानेकी अधिक से अधिक चेष्टा करने लगीं और इसमें कोई झूठ नहीं कि 'आधे दर्जन रोमियोंकी जूलियट' बननेमें उसे कोई हानिं न दिखायी पड़ी। पश्चिमी नारीका आकर्षण उसका बड़ा गुण हो सकता है, पर भारतमें पश्चिमी नारियोंकी तरह रहनेसे हमारा काम नहीं चल सकता।

शिक्षा पाने पर आंखें खोलकर भारतीय नारीने जब सोचना आरम्भ किया तब उसने अनुभव किया कि उसका स्थान पुरुषोंसे किसी तरह निम्न नहीं है। उसके मनमें प्रश्न उठा कि फिर शासनकी, समाजकी बागडोर पुरुषके हाथमें क्यों है? नारीको ही क्यों परतंत्र रहकर, घरकी चहार दीवारीके अन्दरके झंझटोंसे माथापच्ची करनी पड़ती है। इस प्रश्नके उत्तरके लिये उसने फिर योरपका मुंह देखा। अपने अल्प अनुभवके बलपर उसे जो उत्तर मिला वह आज के भारतके लिये ठीक न था। महायुद्धके समयमें स्वतंत्र अर्थ उपार्जनकी इच्छा भारतीय स्त्रियोंमें जागी और उन्हें लगा कि अर्थ ही उनकी परतंत्रताका कारण है। उन्होंने देखा कि रूसकी नारी आर्थिक क्षेत्रमें स्वतंत्र होकर सम्मान पा सकी है। अतएव उसने भी यही उचित समझा।

इसमें सन्देह नहीं कि आर्थिक व्यवस्थाके कारण स्त्रियों को बहुत बड़े बड़े कष्टोंका सामना करना पड़ा। परिवारकी सम्पत्तिमें कोई अधिकार न होनेसे न जाने कितनी देवियोंको निम्नसे निम्न कार्य पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिये करने पड़े। और इन सब विचारोंने स्त्रियोंको बाहर निकलनेको उत्साहित किया। पर उनके बिना उचित रूपसे विचार किये नौकरी-प्रतियोगिताके क्षेत्रमें उतर आनेसे समाजकी बहुत बड़ी हानि हुई। घरकी रानीका स्थान छोड़ कर हमने अपनेको दोहरी गुलामीकी श्रृंखलामें बांधलिया। हमारे घरकी व्यवस्था नष्ट हो गई। जहां यह आशा थी कि शिक्षिता जननी अपनी संतानकी उचित देख भालकर सकेगी, वहां भारतीय बच्चे और भी अधिक अशिक्षित और असंस्कृत नौकरोंके हाथोंमें पालित होने लगे। शिक्षा पाना दूर रहा, वे मां के सहज स्नेहसे वंचित होकर अपना स्वास्थ्य भी खो बैठे।

जब आवश्यकता न होनेपर भी मां अपने नन्हेंसे

बच्चेको किरायेकी नौकरानीके आंचलमें डालकर, अर्थोपार्जन के लिये चली जाती है तो वाणी हीन बच्चे ही जानते हैं कि उनकी क्या दुर्गती होती है। घरमें यदि और लोग हैं तब तो गनीमत, नहीं तो बच्चे भूखसे चिल्लाते रहते हैं, गर्मी से परेशान रहते और 'आया' साहिबा या तो अन्य नौकरों के साथ बैठकर, 'मेम-साहब' और 'साहब'के स्वभावकी, उनके रहन-सहनकी, उनके पारस्परिक सम्बन्धकी आलो-चना-प्रत्यालोचना करती रहती है या दिवा-निद्रामें पड़ी सुख-स्वप्नोंका आनन्द लेती है। कभी जब बच्चा बीमार होता है तो मां और बच्चे दोनोंकी समस्या गम्भीर हो जाती है। बच्चा चाहता है कि प्रति पल मां उसके पास रहे—मां भी खूब समझती है कि बीमार बच्चेके पास मां की उपस्थिति स्वयं एक दवा है—पर उसने जो एक भार सिरपर ले रक्खा है उसे भी पूरा करना है और उसे कभी बीमार और कभी हालकी बीमारीसे उठे कमजोर बच्चेको छोड़कर बाहर जाना पड़ता है। बाहर जाकर अपना कार्य वह ठीकसे नहीं कर पाती। उसके नारी-हृदयसे बच्चेकी रुदन-ध्वनि बार बार टकरा जाती है। आंखोंमें बच्चेका पीड़ा-विकृत मुख नाच जाता है—पर वह विवश है। फिर बच्चोंके उचित संस्कारकी समस्या भी सामने है। शिक्षिता मां जिस तरहसे अपने बच्चोंमें उचित संस्कारोंकी नींव डाल सकेगी वैसा और कोई नहीं कर सकता।

इस प्रकार अर्थ उपार्जन करने वाली महिलाओंको चार श्रेणियोंमें विभाजित कर सकते हैं। सबसे पहिले तो वे देवियां हैं जो जीवनकी मुख्य आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये अर्थ उपार्जन करती हैं। इनमें कुछ ऐसी हैं जिनका भरण-पोषण करने वाला या तो कोई है ही नहीं या हैं तो झिड़कियोंके साथ आधे पेट भोजन देने वाले, और कुछ ऐसी हैं, जिनके पतिकी या घरके अन्य पुरुषोंकी आय अल्प हैं और उन्हें उसमें कुछ जोड़ देनेकी आवश्यकता है। इन महिलाओंके लिये कुछ न-कुछ करना आवश्यक है। इन्हें कोई दोष नहीं दिया जा सकता। बल्कि यह हर्षकी बात होगी, यदि सभी भारतीय नारियां ऐसी दशामें दूसरोंका मुख न देखें।

दूसरी श्रेणीमें वे बहनें आती हैं जो सोचती हैं कि अर्थउपार्जन न करनेके कारणही नारी हेय मानी जाती है और यदि वे आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्तकर लेंगी तो उनकी स्थिति भी समाजमें ऊंची उठ जाएगी। इनके विचारोंसे भी हमारा अधिक मतभेद नहीं। क्योंकि आर्थिक स्थिति बहुधा पुरुषोंके मनमें अभिमानकी भावना भर देती है। वे सोचने लगते हैं कि चूंकि वे स्त्रीको भोजन-वस्त्र देते हैं, इसलिये वह उनकी आश्रित है—वे उसपर मनमाने अत्याचार कर सकते हैं। अनेक पुरुष यह भूलजाते हैं कि गृहिणी का स्थान, कमाने वाले गृहस्वामीसे यदि ऊंचा नहीं, तो नीचा भी नहीं। जिन्हें दुर्भाग्यसे ऐसे पुरुषोंसे सम्पर्क पड़े उनके लिये यह उचितही है कि वे अपनी स्वतंत्र सत्ता बना लें। परन्तु जो बहिनें अपने गृहोंकी साम्राज्ञी हैं, उन्हें केवल एक विचारको लेकर गृह कर्त्तव्योंसे विमुख होजाना बच्चोंके प्रति अपना उत्तर-दायित्व भूलजाना किसी तरह उचित नहीं। यहां तर्क हो सकता है कि इस समय यदि ऐसी स्थिति हो तो यह कहां निश्चय है कि जीवनमें कभी दुःखकी घटायें आयेंगी ही नहीं? पर इतना अधिक विचार करनेके लिये जीवन नहीं है।

तीसरी श्रेणीमें वे महिलायें आती हैं जो सब तरहसे सम्पन्न हैं, जिनके ऊपर बच्चोंकी जिम्मेदारी नहीं, गृहस्थी का बोझ नहीं। वे सोचती हैं—बेकार बैठनेसे क्या लाभ कुछ काम ही क्यों न करें। उनका विचार भी ठीक है—जीवन बेकार खोनेके लिये नहीं है। परन्तु ये देवियां यदि थोड़ा विचार कर देखें तो इन्हें पता चलेगा कि कामका अर्थ यह नहीं कि अपने लाभका कार्य हो। इन बहिनोंको भाग्यसे ऐसा संयोग मिला है कि वह देश और जातिके लिए कुछ कर सकें। न जाने कितनी बहिनें उन्हीं सा शरीर, मन और बुद्धि पाकर गहरे अन्धकारके गर्तमें पड़ी हैं। न जाने कितने होनहार बच्चे उनकी ओर आशा भरे नयनोंसे देखकर यह याद दिलाते हैं कि उनका भी हमपर अधिकार है। हमें उनके लिये भी कुछ करना चाहिये। कुछ करनेका अर्थ यह नहीं कि कुछ सार्वजनिक संस्थायें खोली जाय, जिनमें तरह तरहके व्याख्यान हों स्त्रियोंकी कमेटियां बैठें, आमोद-प्रमोद हो। यह सब तो बहुत हो चुका। अब तो ठोस कर्त्तव्यकी ही पुकार चारों ओरसे आ

रही है ।

चौथी श्रेणीमें वे स्त्रियां आती हैं जो केवल इसलिये नौकरी करनेको अग्रसर होती हैं वे सोचती हैं कि शिक्षाका उद्देश्य केवल नौकरी है । हमारे इन विचारोंके लिये उत्तर दायी विदेशी शासन है । जबसे, यह देखा गया कि अयोग्यता योग्यताका विचार किये बिना ही बहुधा ऊंचे पद प्राप्त होने लगे, डिगरियोंके बलपर, तबसे भारयीय जनताके लिये शिक्षा नौकरीकी पर्याय बन गयी । पर विचार चाहे जहांसे आये हों, हमारे देशके लिये घातक हैं और इनका हमारे घरोंके अन्दर प्रवेश पाना तो और भी घातक है । स्त्रियां ही नहीं, पुरुष भी यह सोचते हैं कि यदि पत्नि थोड़ी पढ़ी है तो उसे अवश्य उपार्जन करनी चाहिये । यह मनोवृत्ति दिनोंदिन अधिक प्रसार पाती जा रही है । यदि हम किसी भी शिक्षालयमें जाकर देखें तो हमें इस विचारकी छाया स्पष्ट दृष्टिगोचर होगी । इससे घर और समाज दोनोंकी हानि हो रही है । महिलाओंने थोड़ा पढ़ा, और घर छोड़कर (मुख्यतः) किसी पाठशालामें अध्यापिका बनाने निकल पड़ी उनके इस प्रकार आनेसे उनके घरकी हानि हुई ही —बहुधा ऐसा भी होता है कि वे उस कार्यके योग्य भी नहीं होतीं, जिसका भार अपने सिर ले लेती हैं ।

हमारे इतना कहनेका यह अर्थ नहीं कि स्त्रियोंको अर्थ-उपाजंन करना नहीं चाहिये । इस संघर्षके युगमें, जब कि हमारे खर्च दिनोंदिन बढ़ते जा रहे हैं, स्त्री-पुरुषोंकी सम्मिलित आय आवश्यक हो पड़ी है । हमारा तात्पर्य यह है कि अर्थ जो केवल आवश्यकता-पूर्त्तिका साधन है स्वयं आवश्यकता न बन जाये । घर का, परिवारका सौख्य नष्ट करके, अर्थचिन्तनमें लग जाना बुद्धिमानी नहीं । इस विचारसे घर छोड़ देना कि घरमें थोड़ा और धन आ जाने से हमारे 'ट्वायलेट' का खर्च निकल आयेगा, हमारी हेय मनोवृत्तिका परिचायक है । इसलिये गुलामोकी जंजीर पहिन लेना कि हम शिक्षिता हैं और भी निन्दनीय है ।

इसके अतिरिक्त, एक बात और है । नौकरी करनेवाली अधिकांश महिलायें वही कार्य कर सकती है जो निरुद्देश्य रूपसे प्राप्त की हुई उनकी स्कूलकी शिक्षा द्वारा हो सकता है । इनमें अध्यापन कार्य मुख्य है । पर यह कार्य जीवनके स्वार्थोंका बलिदान चाहता है । इस प्रकारकी नारीपर भावी समाजके, कलकी माताके निर्माणका पूरा-पूरा बोझ रहता है । तब यदि वह उत्तरदायित्वका विचार न करके यों ही आर्थिक-प्रतियोगितामें उतर आयेगी तो हम कहेंगे कि जिस आशाको लेकर स्त्री शिक्षाका, नारी-उन्नतिका बीज बोआ गया, वह आज विष-वृक्षके रूपमें उग आया है।

नारीकी इस मनोवृत्तिने शिक्षाका महत्व कम कर दिया । एक ओर लोग यह सोच कर भय करते थे कि पढ़ी-लिखी लड़की गर्व-शीला होती है, गृह-कार्यमें चतुर नहीं होती । और अब यह दूसरी समस्या सामने आयी । आज यह भी स्पष्ट देखनेमें आता है कि नारीका महत्व भी कम हो गया । न जाने कितने पुरुष ऐसे हैं कि शिक्षिता नारी को केवल इसलिये उच्च समझते हैं कि वह स्वयं उपार्जन कर लेगी । वे उससे यह आशा नहीं करते कि वह सफल माता और पत्नी बनकर, अच्छी गृहणी बनकर अपनी शिक्षा की उपयोगिता सिद्ध करेगी । बल्कि वह भी अपनी तरह उसे अर्थ-उपार्जनका साधन मानने लगे हैं ।

हमारी स्थितिके परिवर्तन बहुत शीघ्र शीघ्र हुए हैं और नारी-नौकरी-प्रतियोगिता अभी आरम्भ ही हुई है । अच्छा हो कि हमारी मनोवृत्तियोंमें फिर एक मोड़ आये । आज जब अन्य देशोंकी नारियां, जिन्हें पुरुषोंके समान अधिकार प्राप्त हैं, घरकी ओर लौट रही हैं, तब हमें बाहर का आकर्षण खींच रहा है । जब पुरुषोंके कंधेसे कंधा मिला कर चलने वाली रूसी नारी अपना उचित स्थान घर मानने को अग्रसर हो रही है तो हमारे लिये यह कहां उचित है कि हम उनके छोड़े मार्गोंपर चलें ? क्या अभागे भारतके भाग्यमें सदा विस्मृत पद-चिह्नों पर ही चलना लिखा है ? यदि नहीं, तो हमें अपना मार्ग पहिचानना चाहिये । हमारी पराधीनताका कारण अर्थ कभी नहीं । हमें स्वतन्त्र होनेके लिए अपनी कमजोरियां दूर करनी हैं । शिक्षाका ऊंचा महत्व समझना है । हमें यदि बाहर निकलना है तो घर और समाज दोनोंकी आवश्यकताओंपर पूरा ध्यान रख कर । हमें कुछ ऐसे कार्योंमें हाथ डालना है जो हमारी अन्य बहिनोंका उपकार कर सके । जो बहिनें कार्य करनेके लिए समयका उपयोग करनेको बाहर होती हैं, वह अपनी अन्य बहिनोंमें शिक्षा प्रचार करके, शक्ति अनुसार उनकी कठिनाइयोंको दूर करके समयकी और अपनी शिक्षाका सदुपयोग कर सकती हैं ।

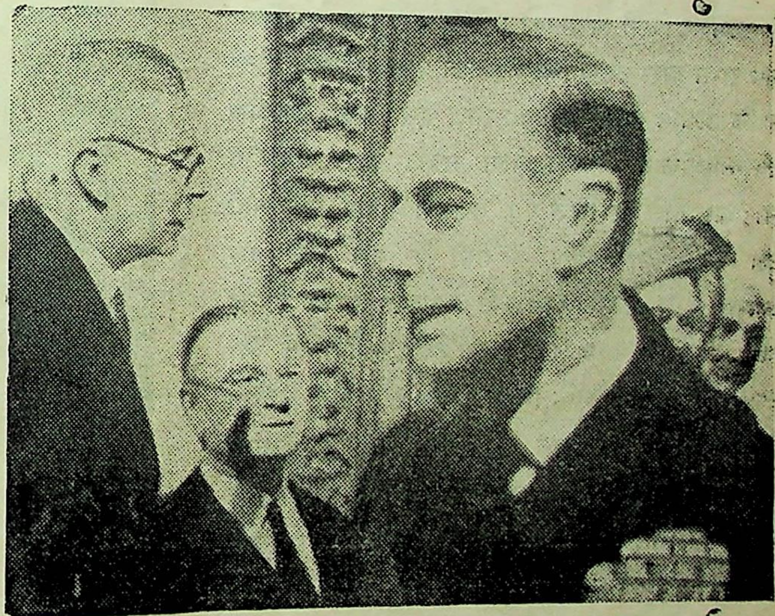
वर्तमान ब्रिटिश पार्लमेण्ट के सदस्योंका एक जीवन-चित्र

वे किस ढङ्गके प्राणी हैं?

डा० धुरन्धर शर्मा पी० एच० डी०

ब्रिटिश पार्लमेण्टके गत निर्वाचनमें वहांके मजदूर दलकी विजय हुई और उसके फलस्वरूप वहां नयी सरकार की स्थापना हुई है। इस मजदूर सरकारने कुछ कालमें ही ऐसी कई व्यवस्थाओंका प्रयत्न किया है जिससे राष्ट्रीयकरण हो सके। कई ऐसे भी प्रश्न हैं जिनपर मजदूर सरकारसे दूसरे दलवालोंका और खास कर अनुदार दलका घोर विरोध है। अनुदार दलके नेता मि० विन्स्टन चर्चिल तो एक अरसेसे मजदूर दलकी सरकारके पतनके लिये कुचक्र चला रहे हैं और उनके भाषणोंसे प्रतीत होता है कि उन्हें मजदूर सरकारके पतनमें पूर्ण विश्वास हो चला है—यह बात भिन्न है कि उसमें कुछ समय लगे। उधर मजदूर दल है जिसके कितने ही सदस्य अपने दलकी सरकारकी नीतिके विरुद्ध हैं। मजदूर दलके विद्रोही सदस्योंकी संख्या काफी बड़ी है और अनुदार दलके गहरे विरोधको देखते हुए अपने दलके विद्रोहियोंको लेकर उसका चिन्तित होना स्वाभाविक है। किन्तु इतना होते हुए भी मजदूर सरकार के पराजयकी आशंका नहीं की जा सकती। युद्धोत्तर कालमें जैसी समाजवादी विचार-धारा प्रवाहित हो रही है, उसमें अनुदार दलके कुचक्र सफल होंगे, इसके लिये फिल-हाल आशंका नहीं करनी चाहिये।

पिछले निर्वाचनोंके फलस्वरूप ब्रिटेनमें जिस मजदूर सरकारकी स्थापना हुई है, उसने अनेक राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय एवं ब्रिटिश साम्राज्य-वादी प्रश्नोंको हल करनेके लिये जिस नीति एवं प्रणालीका अवलम्बन किया है उसकी विभिन्न प्रकारकी आलोचनाएं ब्रिटेन ही नहीं, अन्यान्य देशोंमें भी हुई है। पार्लमेण्टमें मजदूर दलका बहुमत है अतः उस दलकी सरकार किसी भी प्रश्न पर जिस नीतिका अवलम्बन और जो भी प्रणाली कार्यान्वित करना चाहेगी, उसे वह कर सकती है। लोकमत ही एकमात्र उसे अपने निर्दिष्ट पथसे विरत कर सकता है। अन्यथा पार्लमेंटकी शक्ति असीम है। एक विधानवेत्ताने तो एक बार कहा ही था कि "नरको नारी और नारीको नर बनानेके अतिरिक्त, पार्लमेण्ट और सब कुछ कर सकती है।" और अब तो वैधानिक स्थिति यह है कि पार्लमेण्टके एक अङ्ग कामन्स

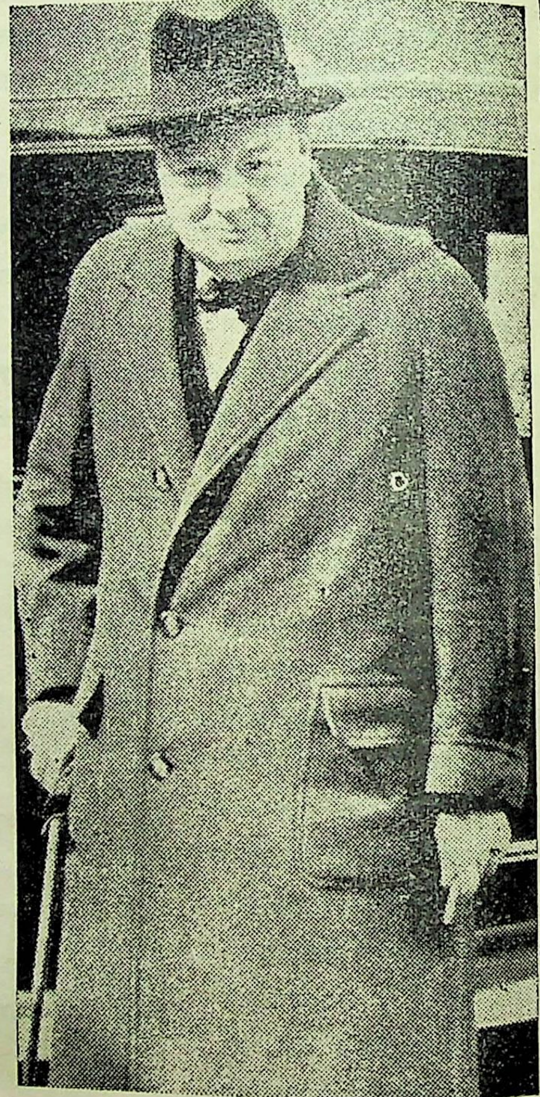


सम्राट भूतपूर्व भारत सचिव एमरीके साथ। नये निर्वाचनोंके पश्चात् एमरीका राजनीतिक जीवन ही समाप्त प्राय हो चला है।

सभाको ही उसकी सभी क्षमताएं प्राप्त हैं। १९११ के पहले लार्ड सभा और कामन्स सभाके मतभेदोंको लेकर कितनी ही जटिल स्थितियां उत्पन्न हो सकती थीं, किन्तु अब तो स्थिति यह है कि लार्ड सभा विरोध भी करे और कामन्स द्वारा स्वीकृत किसी प्रस्तावको अस्वीकृत भी कर दे तो भी उसका कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि १९११ के तद्विषयक वैधानिक संशोधनके अनुसार लार्ड सभाकी अस्वीकृति होते हुए भी कामन्स अकेले स्वतः कोई भी कार्य करनेकी पूर्ण वैधानिक क्षमता रखता है।

और आज अनुदार दल वालोंकी यही आलोचना है। उनका बहुमत लार्ड सभामें है और कामन्समें मजदूर दलका अजेय बहुमत है। अतः अनुदार दली चर्चिल पंथी आलोचना करते हैं, तिलमिलाते हैं और दांत किटकिटा कर रह जाते हैं किन्तु कुछ कर नहीं पाते, कुछ कर सकनेकी स्थिति में ही नहीं हैं। कारण हम ऊपर बता चुके हैं। पहले कितनी ही बार यह विषम समस्या उपस्थित हो गयी थी कि कामन्स किसी प्रस्तावको स्वीकार कर लेता था किन्तु लार्ड सभा द्वारा उसकी अस्वीकृतिका परिणाम यह होता था कि प्रस्ताव बेकार हो जाता था। इस प्रकार जनताके प्रतिनिधियोंके मन्तव्योंकी उपेक्षा सम्राट द्वारा मनोनीत लार्ड आसानीसे कर सकते थे। कामन्सको यह सह्य नहीं हुआ। अतः ऐसी व्यवस्था की गयी कि यदि तीन बार कामन्स सभा किसी प्रस्तावको स्वीकार करले तो वह स्वतः वैधानिक स्वरूप ले ले। इसलिये इस वैधानिक व्यवस्थाके कारण अब लार्ड सभाके अधिकार अत्यन्त सीमित हो गये हैं और वह अपने मन्तव्योंके अनुसार कामन्स सभाको बाध्य नहीं कर सकता। इसलिये पार्लमेण्टकी कामन्स सभामें मजदूर दलके अजेय बहुमतको लार्ड सभा के दबानसे झुकनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं रह गयी है। चर्चिल दल इसीलिये कामन्स द्वारा स्वीकृत प्रस्तावको लार्ड सभासे अस्वीकृत करा कर भी मजदूर सरकारको कुछ हानि पहुंचा सकता।

यह तो हुई पार्लमेण्टके विभिन्न दलोंकी राजनीतिक स्थिति। उनकी सामाजिक स्थितिके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेकी इच्छा लोगोंको हुई है। पिछले निर्वाचनमें मजदूर दलकी जैसी अद्भुत विजय हुई वह ब्रिटेनके वैधानिक इतिहासमें एक अभूतपूर्व घटना हुई है। चर्चिल जैसे यशस्वी और देश भक्तके दलकी जो पराजय हुई और भयंकर युद्धमें चर्चिलके नेतृत्वमें इंगलैण्डकी विजय हो जानेकी स्थितिमें जो उनके दलकी पराजय हुई है, वह ब्रिटिश इतिहासमें एक अनहोनी घटना सी दिखायी पड़ती



अनुदार दलके स्तम्भ मि० चर्चिल

है। और वास्तवमें घटना हुई ऐसी ही। इस विजयके पश्चात् मजदूर सरकार ईमानदारीसे समाजवादी विचारधाराके अनुसार प्रयत्नशील है। इसलिये वर्तमान पार्लमेण्ट के सदस्योंके सम्बन्धमें, उनकी शिक्षा दीक्षा, उनके सांस्कृतिक एवं सामाजिक धरातल एवं उनकी प्रारम्भिक

जीवन-चर्याके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेकी इच्छा लोगोंमें हो रही है।

इसी भावनासे प्रेरित होकर एक पत्र (The British Journal of Psychology) ने एक लेख हालमें ही प्रकाशित किया है। श्रीमती नान्सी ई० रावर्टसन और डा० जे० ए० वेट्सने पार्लमेराटकी कामन्स सभाके सदस्योंके सम्बन्धमें बड़े दिलचस्प तथ्योंका संग्रह किया है। 'मैंचेस्टर यूनिवर्सिटीके मनोविज्ञान-विभागमें काम करनेवाले इन व्यक्तियोंने बड़े परिश्रमसे अपनी छानबीन करके सदस्यों की स्थितिके आधार पर उनकी मनोवैज्ञानिक स्थितिका विश्लेषण किया है। इस मनोवैज्ञानिक स्थितिका प्रभाव निश्चय ही सदस्योंकी विचारधारा और उनके कार्यकलाप पर पड़ता है अतः उनकी जानकारी सभीके लिये उपयोगी एवं मनोरंजक होगी। आंकड़ोंके द्वारा और स्वयं सदस्यों से प्रश्नोत्तर करके उनके सम्बन्धमें तथ्योंका संकलन किया गया है और यथासाध्य उन तथ्योंको प्रामाणिक बनानेका प्रयत्न किया गया है। लेखकोंने सभी दलोंके सदस्योंके पास एक प्रश्न माला भेजी थी जिसमें ६७ प्रतिशत सदस्यों ने न केवल अपने उत्तर भेजे बल्कि और भी कितनी ही अन्यान्य बातोंकी जानकारी लिख भेजी।

सबसे मुख्य प्रश्न था सदस्योंकी शिक्षाके सम्बन्धमें। मजदूर दलके २००से ऊपर सदस्योंमें ५६ फीसदी सदस्य मजूरी करके गुजर करने वाले बापोंकी सन्तान और १० फीसदी कलाकौशल द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले बापोंकी सन्तान हैं, जिसका अर्थ यह हुआ कि ६६ फीसदी सदस्य श्रमिक वर्गके हैं। यह उक्त लेखककी खोजोंके अनुसार पाया गया। अनुदार दली सदस्योंमें कोई भी अकुशल श्रमिकवर्गका नहीं पाया गया और दूसरे दलोंके सदस्योंमेंसे जिन्होंने प्रश्नोंका उत्तर लिखकर भेजा, उनमें केवल एक ही मजदूर दलके सदस्योंकी भांति अकुशल श्रमजीवीवर्ग का पाया गया। लेकिन एक अनुदार दली सदस्यने लिखा कि अगर वह राजनीतिक पचड़ेमें न पड़ा होता तो उसे अकुशल श्रमजीवियोंके समान जीविकोपार्जन करना पड़ता। अकुशल श्रमजीवियोंमें वे लोग आते हैं जो हाथसे काम करते हैं। जैसे फावड़ा कुदाल चलाना, मिट्टी ढोना, कुलीगिरी करना इत्यादि।

४१ फीसदी अनुदारदली और ५ फीसदी मजदूर दली सदस्य फौजी नौकरियोंसे आये हैं। अन्य ३२ फीसदी सदस्य प्रारम्भमें मामूली मजदूरीका काम करते थे। ३१ फी सदी सदस्य विभिन्न पेशोंसे सम्बन्ध रखने वाले और २८ फीसदी मिलों, खदानों आदिमें काम करने वाले श्रमजीवी एवं हरकारे, चपरासी और चिट्ठियां पहुंचाने वाले नौकरोंका काम करते रहे हैं।

मजदूर दलके आधेसे अधिक, अनुदार दलके करीब ४० फीसदी और दूसरे दलोंके करीब २५ फीसदी सदस्योंने राजनीतिको ही अपना पेशा बनाया है। वे अपना सारा समय राजनीतिक कार्योंमें ही लगाते हैं। तो वे किस उम्रमें अपने कार्य क्षेत्रमें आये? नीचेकी तालिकासे यह बात स्पष्ट हो जायेगी। इसमें हर दलके लोगोंका प्रतिशत बताया गया है।

उम्र	मजदूर दल	अनुदार दल	दूसरे दल
१४ से नीचे	३०	२	६
१४-१६	३३	८	२८
१७-२१	२१	५७	२८
२१ से ऊपर	१६	३३	२५

ऊपरकी तालिकासे स्पष्ट है कि ३० फीसदी मजदूर सदस्योंने १४ वर्षकी उम्र होनेके पहले ही जीविकोपार्जनके लिये कर्मक्षेत्रमें प्रवेश किया। इसलिये उन्हें साधारण शिक्षा प्राप्त करनेका भी अवसर बहुत कम ही मिला। वास्तव में कुल ३७ फीसदी मजदूर सदस्योंको प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करनेका ही अवसर मिला जब कि ७८ फीसदी कंजर्वेटिव सदस्योंको उच्च शिक्षा प्राप्त हुई है।

प्रोफसर टी० आर० पियरने एक बार लिखा था कि वर्तमान कामन्स सभामें देशकी वास्तविक स्थितिका प्रतिनिधित्व है। "देशकी आबादीका जैसा प्रतिनिधित्व वर्तमान कामन्समें है वैसा कभी नहीं हुआ था।" कामन्स की सदस्यता पर जब हम वर्तमान नौकरी या पेशेकी स्थिति के दृष्टिकोणसे विचार करते हैं तब जो निष्कर्ष निकलता है, वह निम्न आंकड़ोंसे स्पष्ट है।

नौकरी या पेशा	मजदूर		कंजर्वेटिव		अन्यान्य दल	
	संख्या	प्रति०	संख्या	प्रति०	संख्या	प्रति०
पेशेवर राजनीति	१७६	५६	३६	४०	८	२५
कुशल श्रमजीवी	१६	५	८	९	२	६
अकुशल श्रमजीवी	—	—	१	१	—	—
इंजीनियरिंग इत्यादि	२२	७	६	७	१	३
औषधि चिकित्सा	५	२	१	१	१	३
कानून	२७	९	१२	१३	७	२२
अध्यापन	१४	४	१	१	१	३
पत्रकार कला	२२	७	३	३	४	१३
वाणिज्य व्यवसाय	३१	१०	२३	२५	९	२८
कुल जोड़	३१३	१००	९१	१००	३२	१००

ऊपर कहा जा चुका है कि मजदूर दलके कितने ही लोगोंको प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करनेका भी अवसर नहीं मिला। इसलिये सदस्योंके सम्बन्धमें यह दिलचस्प बात मालूम होगी कि जिन्होंने १३ वर्षकी उम्रमें ही कर्म क्षेत्रमें प्रवेश कर लिया और जीविकोपार्जनमें लग गये उनमेंसे कितने ही सदस्योंने जीविकोपार्जनके साथ-साथ सन्ध्याकालीन पाठशालाओंमें शिक्षा ग्रहण की। इस प्रकार स्वाध्याय एवं बचतके समयमें उन्होंने हिसाब किताब, अर्थशास्त्र, इतिहास और समाज शास्त्र आदिकी शिक्षा ग्रहण की, जो उनके राजनीतिक जीवनमें आगे चलकर उपयोगी प्रमाणित हुई।

मजदूर दलके कितने ही सदस्योंको 'सरकार'का अनुभाव स्थानीय सरकारी बोर्डों, समितियोंकी सदस्यताके कारण प्राप्त हुआ है। कामन्सके करीब आधे सदस्योंने विश्वविद्यालयोंकी शिक्षा प्राप्त की है। उनमेंसे मजदूर सदस्योंकी संख्या ४० प्रतिशत है और अनुदार (कंजर्वेटिव) सदस्योंकी ६० प्रतिशत। इस परमाणु युगमें भी केवल इने गिने सदस्योंको ही भौतिक विज्ञानकी जानकारी है और कुछ ही वाणिज्य-व्यवसायसे सम्बद्ध हैं। उत्तर भेजनेवाले सम्पूर्ण सदस्योंमें केवल १२॥ फीसदी वाणिज्य व्यवसायसे सम्बन्ध रखने वाले निकले। पहलेकी तुलनामें यह संख्या बहुत ही कम है। पहले लगभग ५० फीसदी सदस्य वाणिज्य व्यवसाय से आते थे और इस आम चुनावके पहलेकी पार्लमेंटमें भी उनक यही औसत था।



मजदूर सरकारके प्रतिभाशाली सदस्य मि० ए० वी० अलेक्जेण्डर

सदस्योंकी उम्रकी छानबीनकी गयी। पता चला कि सभी सदस्योंको मिलाकर उनकी उम्रका औसत निकाला जाय तो वह ५० वर्ष ३ महीने आता है। १९३५ के निर्वाचन में निर्वाचित होने वाले सदस्योंकी औसत उम्र ५१ वर्ष की थी।

कामन्सके सदस्योंकी शिक्षा उनका सामाजिक स्तर और नौकरी पेशा यह सब ऐसे तथ्य हैं जो उनके मनोभावों का परिचय देते हैं और मनोभावोंके अनुसार ही पार्लमेंट के भीतर उनके कार्यकलाप होंगे। इस लिये इन बातोंकी जानकारीके बाद उनके द्वारा उपस्थित प्रस्तावों एवं सरकारी कार्यक्रम का अनुमान सहजही लगाया जा सकता है।

डायरीका एक पृष्ठ

श्री पुरुषोत्तमदास मोदी

कला, जीवन, संस्कृति और सभ्यता—नहीं ! नहीं ! कुछ नहीं । मनको दुलराने और सपनोंको समझानेके आवरण मात्र हैं । दुनिया पर जितनी भी नजरें फेरता हूं, देखता हूँ आंखोंमें कोई रो रहा है, मुस्कराहटोंमें कोई कराह रहा है । यह क्या ? क्या यही जीवन है ! जीवनकी क्या यही संज्ञा है ? आज मैंने जवानीको जलते पाया । तरुणाईके तकाजेको मनुष्यता और सभ्यता कही जानेवाली प्रणालियों में दहकते पाया । न मैं डाक्टरके यहां जाता और न मेरे मनमें यह मसोस उठती । जिस जवानीने अपने जीवनमें प्रवृत्तिसे विद्रोह कर अपने जीवनका अस्तित्व खड़ा किया था आज वही नश्वरताके ईश्वरके सम्मुख समपर्ण लिये बैठा है । अपने ऐसे बूढ़े दादाके लिये डाक्टरकी जरूरत है। गांवमें कितने बड़े डाक्टर होते हैं—बस, वही एक डा० जोशी । पिता जमींदार थे, लड़केको डाक्टरी पढ़नेकी धुन समायी और एम० बी० बी० एस० पास कर आया। बड़ा सा-हवेलीसा मकान । उसीमें दवाखाना खोल लिया और अपना आफिस भी बना लिया ।

डाक्टरके कमरेमें जब घुसा तो देखा वह दवा बना रहा था। मेजपर तरह तरहकी बोतलें पड़ी थीं । दो नीले रंग की बोतलें थीं जिनमें पानी भरा रखा था और कुछ शीशियां विभिन्न रंगोंकी ; और कुछ वैसी ही बोतलें। मेजपर कितनी ही गर्द पड़ी थी और शीशियोंके न जाने कितने दाग उसे चितकबरे रंगमें परिवर्तित कर चुके थे। गांववालोंकी नजरोंमें वही खूबसूरत लगी। लेकिन मैं जो शहरकी हवा और ठोकरें, दोनों खा चुका था उसे देखकर बड़ी घृणा सी हुई। एकही हाथसे बगैर उसे धोये हर एक को हर तरहकी दवाएं दे रहा था। शीशियोंके कार्क तक खुले थे जिनमें मक्खियोंका श्मशान बना हुआ था। डाक्टर उसका भी उपयोग करता था। और न जाने कितनी गंदगी। कुछ इसमें छोड़ी, कुछ उसमें छोड़ी, कुछ यह और कुछ वह। मैं सहमा, दुखित हुआ और बड़ी घृणासी उत्पन्न हुई। क्या जीवनके टूटते स्वरको जोड़नेवाले तंतुओंकी यही भाषा है ? क्या यही अस्तित्व है ? दूरसे मुझको देखते ही डाक्टर बोला—'वेल मिस्टर मोदी हाऊ आर यू ?' बदकिस्मतीसे आज कितने दिनों बाद उसे मैं एक अंगरेजी जानने वाला मिला था। उसकी फूटती आकांक्षायें आज अंगरेजीके स्वरोंमें बोलीं। मैंने कहा 'जरा दादाकी तबियत खराब हो गयी है इसलिये आया हूँ !' अभी चलता हूँ, डाक्टर बोला। बैठनेकी सभी बेंचे स्त्री-पुरुषोंसे भरी थीं। हर एक चेहरेपर मुर्देका-सा पीलापन, स्वास्थ्यकी बेबसी सूखी हड्डियां बोल रही थीं। कोई भी शहर वालोंकी तरह हट्टाकट्टा मोटा रोगी न था। शहरोंमें तो लोग खा खाकर मरते हैं। खाकर रोगी होते हैं। और गांववाले बेचारे बिना खाये हो मरते हैं। मेरी आंखोंसे आंसू टपक पड़े। डाक्टर इनको क्या दवा देता होगा। भूखको मार कर, पेटपर पत्थर रख कर ये पशमुर्दा जीने वाले इन्सान। अपनी जवानीमें हताश बोलते हुए। क्या इस डाक्टरके पास ऐसी भी कोई दवा है जो इन्सान बिना खाये भी जीता है। जरूर होगी तभी तो इसके यहां रोज इतने-इतने भूखे इन्सान तृप्तिका वरदान मांगने आते हैं। डाक्टरके साथ बातें करता जाता था और वह किसीको दवा देता और किसीके पट्टी बांधता। रोजी की बात शायद ही सुनता हो। आखिर डाक्टरकी भी तो एक भूख होती है—मानसिक भूख जो वह किसीके सम्मुख अपने मस्तिष्ककी हलचल भरी बातें कर सकें। उसके धरातलका व्यक्ति उसे आज मिला। उसे अपूर्व आनन्द प्रतीत हो रहा था। बड़ी फुरतीसे शीशियोंमें दवाएं उड़ेलवा पट्टियां बांधता और चुटकी बजाकर कहता—बस जाओ। डाक्टर एक दूसरे कमरेमें गया ; साथमें मैं भी गया। मेरे मनमें बेकसी हो रही थी परन्तु आंखें जिन्दगी पढ़नेको उत्सुक थीं। आगे बढ़ा, देखा—एक बीस वर्षका छोकरा अपने सारे शरीरमें एक अजब भयानकता छिपाये

हुए है। दोनों कलाइयोंपर तीन-तीन इञ्चकी गोलाईके घाव उसके दोनों पैरोंमें पंजोंके ऊपर, ठेहुनेके पास और गलेके चारों ओर और पीठपर कई इस तरहके लम्बे लम्बे घाव। मैं देख न सका, मेरी आंखें रो दीं, आंसू छलछला आये। मैंने कहा—'डाक्टर मैं बाहर बैठता हूँ। आप इसे खतम कीजिये। 'यह देखिये मिनटोंमें खतम हुआ' डाक्टर बोला और उसने घावोंपर बोरिक छिड़की और उसके साथके बुढ्ढेसे कहा, जो शायद उसका बाप था—लो पट्टी बांध लो।' अपने कांपते हाथोंसे वह अपने बेटेके घावोंपर पट्टी बांध रहा है। एक आध आंसू मैंने गौरसे देखा घावोंपर टपक पड़े। डाक्टर बोला—"मिस्टर मोदी जानते हैं आप यह क्या और क्यों है ? ये सब जलाये गये हैं।"

"जलाये गये हैं!" मैं पुकार उठा। मेरी आंखोंके सामने अंधेरी सी छाने लगी।

और तब डाक्टरने बताया। पड़ोसके गांवके जमींदार के खिलाफ इसने प्रचार किया, किसानोंको भड़काया क्योंकि जमींदार धरतीके बेटोंसे नाजायज कर वसूलता था उन्हें बहुत सताता था। एक दिन जमींदारने उसे पकड़वा मंगाया और कहा—'फिर ऐसा करोगे ?' उसने कहा—"हम धरतीके बेटे, हम जैसे धरती खोदखादकर जीते हैं वैसे ही अपने दुश्मनोंको भी खोदते हैं। अन्यायके विरुद्ध जबान उठाना हमारा काम है। कभी सरकारके खिलाफ और कभी कभी बैठे बैठे खानेवाले पूंजीपतियोंके खिलाफ।' एक बार मैंने उसके चेहरेको ओर देखा। सारा मनोविज्ञान उसके चेहरेपर उतर चुका था। बहादुरोंसी मुसकराट थी उसके चेहरोंपर और आंखोंमें पिताके आंसुओंकी कसमसाहटकी बेबसी। दोनोंमें एक अजीब उतार और चढ़ाव था।

डाक्टर मेरे साथ चल रहा था और मेरे दिमागमें हिन्दुस्तानके सात लाख गांवोंकी तसवीर फिर रही थी—भयानक, क्रूर और बेबस इन्सान। कला, जीवन, संस्कृति और सभ्यता सब कुछ अबकी तरह उगने और प्रवृतिके अभिशापसे यकायक नष्ट हो जानेवाले मनुष्य देवतामें देख रहा था।

चरवाहा

चरवाहे ने बंशी फूंकी !
वनबाला के रग रग में
अलसित यौवन डोल उठा ;
पल्लव-दल के दामन में
तंद्रिल पागलपन बोल उठा !

यह कौन अरे है जिसने
वन में जीवन छलकाया,
बंशी के भोले बोलों से
गीतों में मधुरस टपकाया !

उड़ते पंछी रुक जाते हैं
रुक कर कुछ झुक जाते हैं
मानों गीतों की मदिरा में
छक कर अलसा जाते हैं !

चल पल्लव के चिलमन से
सुकुमारि कलिका झांक उठी
चपल लहर की थिरकन में
आशा की मोना नाच उठी !

चरवाहे ने बंशी फूंकी !

—विजय कुमार मुन्शी

हर्षदर्शनका स्मृति-स्तम्भ

श्री कृष्णाचार्य एम० ए० साहित्यरत्न

कुछ दिनों दूतावासमें रहनेके उपरान्त यवन राजदूत ईलियोडोरसने ऊब कर आवासके अध्यक्ष शांति वर्मासे नगरोंके वास्तविक जीवनमें घुलमिल कर रहनेकी इच्छा प्रकट की। राजसी सम्मानके कृत्रिम और एकाकी वातावरणमें उसका मन न जमा। राजसभामें, उचित नियमों और रूढ़ियोंका दास बन कभी कभी हो आना या फिर दूतावासमें ही पड़े रहना, यह सब ज्ञान लाभोत्सुकको कहां तक संतोष देता? भले ही सभामें जाना कितना ही गौरव प्रद हो और सुसज्जित दूतावासमें रहना कितना ही आनन्द-प्रिय! शांति वर्माको विशेष कौतुहल न हुआ; वह जानता था राजदूतकी अध्ययनशील प्रवृत्ति और आर्य संस्कृतिमें उसकी बसनेवाली रुचि को। सम्राट्से दूतकी इच्छा प्रकट करनेवाली बातका आश्वासन अध्यक्षने दिया!

एक दिन महाराजके निमंत्रण पर ईलियोडोरस राजसभामें गया। व्यक्तिगत निवेदनों, या आमोद-प्रमोदकी बातोंके लिए शुङ्ग सम्राट् सन्ध्या वेलामें ही अवकाशके साथ बैठ कर मनकी बात कहने और सुननेमें विशेष रुचि रखते थे। क्रीड़ा-कौतुक दिखानेके लिए दूर दूरके कलाकार, नट, संगीतज्ञ, और न जाने कौन-कौन सबको इस समय की सभामें जानेको छूट थी। हां, उस दिन ईलियोडोरस आये और नियत आसन-पीठिका पर बैठ गये।

सम्राट्ने मुस्कराते हुए यवन दूतकी ओर देखकर कहा, "आह्लादित होनेका क्या कारण है दूतदेव!"

"आज मैं अभी अभी पैदल ही आ रहा था कि मार्गमें एक बृद्धाने मुझे बेटा कह कर संबोधित किया और सिर परसे मदिरा घट उतार कर धरती पर रख देनेको कहा, मैं जब चलने लगा तब आंखों फाड़-फाड़ कर घबराई सी देखने लगी मेरे वस्त्रोंको (भड़कीले)। मैंने पूछा, क्या है 'मां'! मां शब्द सुनते ही उसकी घबराहट दूर हो गई! और वस्त्रोंसे पहिचान कर कहा, तुम यवन हो यवन!' और वे हांफते हुए बोली 'तुम्हारे देशकी मदिरा उत्तम होती है, व्यापारी हो?' मैंने अपना परिचय दिया तो फिर कहने लगी! राम राम। क्षमा कीजिये, हम विदेशी राजदूतोंका आदर करते हैं। सम्राटसे मेरी धृष्टताकी बात मत कहना! फिर मेरा नाम पूछने लगी। मैंने कहा ईलियोडोरस, वह बोली 'क्या हर्षदशरथ!' बस इसी नये नामकरण पर हंसता चला आता हूं।"

नाम बदल डालनेका विचार तो मेरा भी हो उठा है। क्योंकि विदेशी शब्द जल्दी पचता नहीं, कोई कुछ कहता होगा, कोई कुछ! अन्यथा कोई असार्थक नाम पड़ जायगा। आपके अलेक्जेन्डरको भारतवासियोंने सिकन्दर बना ही तो डाला! बृद्धाने तो बृद्धोंकासा नाम दशरथ रख दिया। हर्षके साथ उसका क्या तुम! अरे हां, हर्षदर्शन रख सकते हो। विशेष कर जबतक भारतमें हो तब तक!

"श्रीमान्का सुझाव स्तुत्य है। किन्तु चम्पलिल पड़ने पर मैं अपनी इच्छा प्रकट कर ही दूं कि मैं भारतमें ही रहना चाहता हूँ।"

"हां शांति वर्मा कहते थे! यह मैं भूल ही गया। आप राजदूतसे अरुचिकी बात कहते थे न!

"महाराजाधिराज, आडम्बरसे दम घुटने लगता है! मैं सरल और सत्य जीवन यापन करना चाहता हूं! भारतीय संस्कृतिकी यह विशेषता मुझे भली लगी। मुझे नागरिक होना पसन्द है।

"आप गान्धाराधिपतिके बिदिशास्थ राजदूत हैं। राजनैतिक कारणोंसे आपके सम्राट्को आपत्ति हो सकती है? दूत पदसे नीचे उतारनेके अधिकारी हम नहीं हैं।"

"मैं वाह्लीकराजसे मैं पद् पृथक होनेकी प्रार्थना करूंगा!"

फिर तो बात ही दूसरी होगी! भारत जैसे विशाल देशमें सदैवसे कई जातियों और कई धर्मोंका केन्द्र रहा। धर्म और राजनीतिमें सहोदरीय सम्बन्ध नहीं है। "आपका कोई धर्म हो, कोई जाति हो। इन कारणोंसे आपको

विदिशाका नागरिक होनेसे कोई भी वंचित नहीं कर सकता। फिर भी, शुङ्गोंके इस ग्रीष्म प्रधान राष्ट्रमें रहने की इच्छा क्यों कर बलवती हुई ? मांस, मदिरा, वाह्लीक और पुष्कलावतीकी स्वस्थकर ऋतुयें यहां कहां। सूखा अन्न खानेवाला देश है, हां दुग्ध घृतकी कमी नहीं।

'महाराज यथार्थ कहते हैं। वाल्टिकको मदिरा सुन्दर होती है, मांस भोजन वहांका दैनिक कर्म है अतः बनानेकी क्रियाएं रुचिकर हैं! किन्तु मेरा अनुभव है घी दूधसे बढ़ कर पौष्टिक पदार्थ दूसरा नहीं। उत्तरके शीतदेशवासी लम्बे चौड़े होते हैं, किन्तु मैंने अनेक योद्धाओंसे सुना है कि आर्यावर्तके आरोही कुशलता और वीरतामें यवनोंसे कम नहीं होते। विश्व विजयी सिकन्दर और उसकी सेना यवनों में शौर्य-पराक्रमके आदर्श हैं, किन्तु भारतीय वीरोंने उनके छक्के छुड़ाये थे—यह कहानी प्रत्येक यवनको आजतक (दो सौ वर्ष बाद) याद है। एक छोटा युद्ध अपने बाल्यकालमें मैंने भी देखा था! सम्राट् मिलिन्दके पुत्रकी सेना एक पहाड़ी राजाने हरायी थी।

'तो भारतकी वीरताने आपको आकर्षित किया है ?'

'वीरतासे अधिक बुद्धि वैभवने, श्रीमान् मुझे भारतीय साहित्य, उसका धर्म दर्शन आदि यवन वांगमयसे सब भांति कहीं अधिक पुष्ट और प्रभूत मालूम हुआ! यूनानसे लेकर वाल्टिक तक भारतका यश फैल गया, किन्तु भारतके विषयमें वहां बड़ी अज्ञानता है ? सब लोग भारतको सोने की चिड़िया समझते हैं, दार्शनिकोंके देशके रूपमें भी जानते हैं। एक वृद्ध यवनने मुझे पारस्य देशमें बतलाया था कि भारतमें सैकड़ों मनुष्य ऐसे मिलेंगे जो सूर्यकी ओर मुखकर के वर्षोंसे बिना खाये पीए खड़े हैं।

'अच्छा! इन अपवादोंका कारण ?'

'सिकंदरके साथी इतिहासकारोंकी यह करामात है! सिकंदरके आक्रमण करनेके समय दर्जनों इतिहासज्ञ उसके साथ रहते थे; उनका काम नये देशोंकी विचित्र बातोंके साथ अपने प्रभुके विजयोंका हाल लिखना था। जब उनके प्रभुने ही भारतमें पैर नहीं रखा तब इतिहासकार भारतके हृदयमें प्रवेश कैसे करते! उन्होंने भी जनुश्रुतियोंके आधार पर अपनी कलम मनमाने रूपसे चलायी। मेगस्थनीज ही पहला यवन था जिसने भारतकी वास्तविकताका प्रथम दर्शन कराया, किन्तु उसकी कलम भी सर्वत्र असंदिग्ध नहीं है।'

उस दिनका वार्तालाप समाप्त हुआ। कालान्तरमें इलियोडोरसको दूतपदसे मुक्ति मिली। विदिशामें वह हर्षदर्शन के नामसे प्रसिद्ध हो गया। उपनिषदोंमें साहित्य और दर्शनके समन्वयने उसे बहुत प्रभावित किया। तत्कालीन भागवत धर्मके आन्दोलनमें भी उसने बहुत काम किया। सम्राट्की सभामें हर्षदर्शन अब भी यदाकदा जाता ही था; विशेष कर शासकके अनुरोध से, क्योंकि उन्हें यवन सभ्यता सम्बन्धी वार्तालापमें आनन्द आता था। एक दिन पुनः बातचीतके सिलसिलेमें हर्षदर्शनने निवेदन किया कि ज्ञानेच्छु पुष्कलावती और वाल्टिकमें अच्छे पण्डित चाहते हैं, अतः संस्कृतिके प्रचारके लिये महाराजसे कुछ पंडित भेजनेका अनुरोध किया।

सम्राट्ने विरक्तिसूचक भावभंगीमें कहा—वैदिक धर्म बौद्ध धर्म नहीं है हर्षदर्शन! यत्र तत्र अकर्मण्यताका ही पाठ बौद्ध प्रचारकोंने पढ़ाया है। इतनाही नहीं, जिस निराकार, शून्यमें इनका विश्वास था, वह सब धारणा विलीन हो गयी है। बुद्ध ही उनके ईश्वर हैं, कुछ आश्चर्य नहीं कि विहारोंमें स्त्रियोंके प्रवेशसे ज्ञान विहार लौकिक विहारमें परिवर्तित हो जाय ? आर्य धर्मप्रचारकी संकुचित प्रवृत्तिमें विश्वास नहीं करता। धर्मको बलपूर्वक लादनेवाला बोझ नहीं बनाना चाहिये।

'लादनेकी बात नहीं श्रीमान्, धर्मप्रचारसे भूले मनुष्यों का उपकार हो सकता है। मानव-कल्याणकी दृष्टि संकुचित नहीं है।

'सत्य शाश्वत होता है, वह प्रचार दुग्धसे नहीं पलता। प्रचार शब्दको धर्म परिवर्तनकी भावनासे अलग नहीं किया जा सकता है। आपने तो पढ़ा ही होगा कि परमभागवत (गीतादर्शनके उपासक)धर्म परिवर्तनको घृणा की दृष्टिसे देखता है।

'हां, श्रीकृष्णने भी स्वधर्ममें निधनकी प्रशंसाकी है। किन्तु प्यासेकी पिपासा कैसे बुझे ?

'पिपासा ? कुआंके पास जानेसे। कभी कुआं भी प्यासे के पास गया है! वाह!

हर्षदर्शन श्रीमद् भगवतगीताके प्रकांड पण्डित हो गये। नीली आंखों और अतिगौर वर्गके अतिरिक्त इलियोडोरसमें अन्य कोई यवन रूप नहीं रह गया था —वह पूर्ण रूपसे हर्षदर्शन था। भक्ति धर्मकी दीक्षा स्वेच्छासे ली। भारतीय आचार्योंने दीक्षाके अवसर पर उसे परमभागवत उपाधिसे अलंकृत किया है।

हर्षदर्शनने भी शुंग सम्राट्की राजनगरी विदिशामें श्रीकृष्णके दिव्य उपदेशसे उपकृत हो गरुड़ध्वजकी स्थापना की। उसमें लिखा था—

'महाराजा एन्टी यालिकदके प्रधान सभासद दियनके पुत्र परमभागवत इलियोडोरस [हर्षदर्शन]ने गरुड़ध्वज स्थापित किया।'

हर्षदर्शनका यह स्मृति-स्तम्भ प्रस्तर उत्कीर्ण लेखके रूपमें आज भी सुरक्षित है। महात्माईसासे डेढ़सौ वर्ष पूर्व भारतीय संस्कृतिकी यह प्रशस्ति लिपिबद्ध हुई थी।

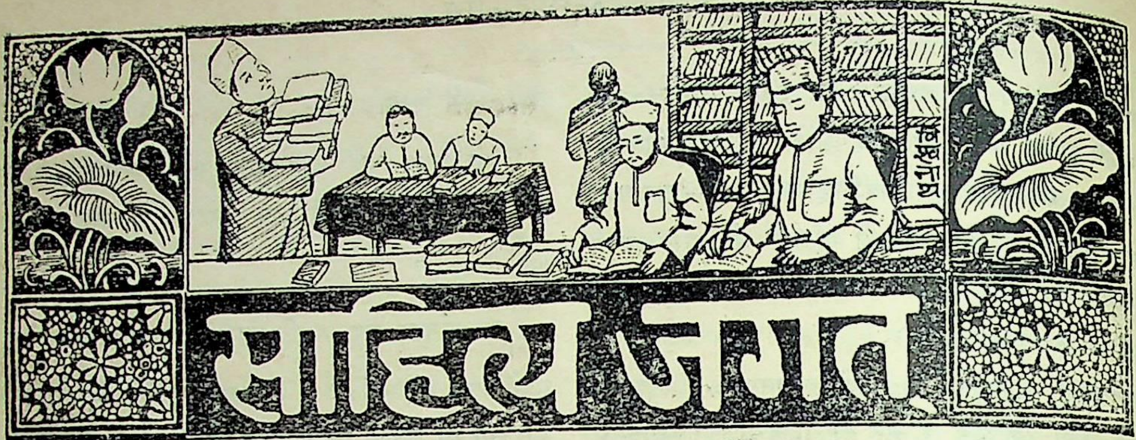
(२६ वें पृष्ठका शेषांष)

भी कहा यह गया था कि बसराके पास ही सूफीजी की समाधि बनी हुई है और वहां प्रति वर्ष मेला लगता है। कहा भी तो है—

शहीदोंकी चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरनेवालोंका यही बाकी निशां होगा॥

द्वितिय युद्धमें

अन्तमें जर्मनीकी हार हो जानेसे सरदार साहबको जैसी कठिनाइयोंमें फंसना पड़ा होगा, उसकी कल्पनाही की जा सकती है। हमें अभीतक उस समयके उनके जीवनकी घटनाओंका कोई विवरण प्राप्त नहीं हो सका है। तब इतनाही मालूम है कि ईरानमें सरदार साहबने अपना नाम मिर्जा हसन खां रख लिया था और तुर्की, रूमानिया, बलगेरिया, युगोस्लाविया, जर्मनी, इटाली, स्वीजरलैंड, फ्रांस, स्पेन आदि यूरोपीय देशोंकी यात्रा वे इसी नामसे करते रहे। अन्तमें ब्रजील पहुंच गये थे। वहांके वे नागरिक बनाये गये और वहांकी क्रान्तिमें भी हमारे क्रान्तिकारी सरदारने अच्छा भाग लिया था। १९३२ ई० में एक जर्मन जहाज पर सवार हो सरदार साहब पुनः जर्मनी गये और १९३४ ई० तक वहीं रहे। परन्तु जर्मनीका जलवायु उनके स्वास्थ्यके लिये अनुकूल नहीं था इसलिये १९३५ ई० में बीमार हो स्वास्थ्य लाभ करनेको स्वीजरलैंड चले गये, जहां दो वर्ष तक रहे। वहांसे इटाली चले गये थे और जब द्वितीय विश्वव्यापी महायुद्ध १९३९ ई० में छिड़ा, तब वे इटालीहीमें थे। वहां सुभाषबाबूसे उनकी भेंट हुई थी और आजाद हिन्द सेनाका संगठन करनेमें सरदारजीने हाथ बटाया था तथा रेडियो पर नित्य प्रति अंग्रेजोंके विरुद्ध प्रचार करते थे। इनके हिमालय रेडियोके दूसरे साथी सैयद मुहम्मद इकबाल शैदाई तो युद्धकी समाप्तिपर किसी तरह भाग निकले, पर सरदार साहब गिरफ्तार कर लिये गये और जर्मनीमें नजर बन्द करके रखे गये। वहां अंग्रेजोंकी कैदमें सरदार साहबके साथ अमानुषिक बर्त्ताव होता रहा और फलस्वरूप स्वास्थ्य इतना गिर गया कि एक बार तो उनकी मृत्यु हो जानेतक का समाचार आ गया था। परन्तु शीघ्रही पता चला कि वह ठीक नहीं और अन्तमें अस्थायी सरकारके उपाध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरूके प्रयत्नसे सरदार साहब बंधनमुक्त हो सशरीर स्वदेश लौटनेमें समर्थ हुए हैं, जो देवताओं की दृष्टिमें पृथ्वीका स्वर्ग है। लोगोंकी धारणा और कहावत है कि जब किसीके जीवित रहते ही उसकी मृत्युका समाचार फैल जाता है, तो उसकी आयु बढ़ती है। परमात्मा करें कि हमारे सरदार अजीत सिंह शीघ्र पूर्ण स्वस्थ हो मार्कण्डेयकी आयु प्राप्त करें और मातृभूमिके उद्धारके लिये की हुई अपनी कठोर तपस्या और साधनाका प्रत्यक्ष फल अपने इन्हीं नेत्रोंसे अवलोकन करनेमें समर्थ हों।



साहित्यकारोंका उत्तरदायित्व

देश स्वाधीन हो रहा है और हिन्दी स्वाधीन भारतकी राष्ट्रभाषा होने जा रही है यह दोनोंही बातें अब सर्वथा निर्विवाद हैं। इसलिये हिन्दीके साहित्यिकों पर एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व भी आ गया है। हिन्दी राष्ट्र-भाषा होगी तो हिन्दी साहित्यको हमें राष्ट्रभाषाके साहित्यके योग्य बनाना होगा और हमें हिन्दी साहित्यके अभावोंकी पूर्ति करनी होगी। हिन्दीका काव्य और कथा साहित्य तो भरपूर है किन्तु अन्यान्य विषयोंके साहित्यका सर्वथा अभाव है। कहां है हिन्दीमें विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति पर साहित्य? पारिभाषिक शब्दोंका इतना अभाव है कि एक नये लेखकोंके लिये एक एक शब्दके लिये माथापच्ची करनी पड़ती है और पुराने लेखक भी एक शब्दके लिये कोई सर्वसम्मत शब्द नहीं दे पाते। यही कारण है कि एकही समाचारका अनुवाद विभिन्न अखबारोंमें भिन्न भिन्न रूपोंमें किया जाता है और कितनी ही बार तो मूल देखे बिना अनुवादका अर्थही समझमें नहीं आ पाता। राष्ट्रभाषा जब हिन्दी होगी और हिन्दी साहित्य ही राष्ट्रभाषाका साहित्य समझा जायगा तब हमारे उक्त अभाव हमारे लिये बड़े ही घातक होंगे और उनके कारण हम दूसरे साहित्योंके समक्ष हास्यास्पद होंगे। आज भी विश्वविद्यालयोंमें सभी विषयोंकी उच्च शिक्षा हिन्दी द्वारा होनेमें हमारे उक्त अभावोंके कारण बड़ी कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। इसलिये हमारे साहित्यिकों पर इस बातका बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ गया है कि राष्ट्रभाषा के साहित्यके अभावोंकी पूर्ति की जाय। इस सम्बन्धमें हमें हिन्दी भाषाभाषी प्रान्तोंकी सरकारोंसे भी यह अनुरोध करना है कि उन्हें भी इस अभावकी पूर्तिके लिये प्रयत्नशील होना चाहिये। साधनोंके अभावमें अकेले साहित्यिकही बहुत सफल एवं उपयोगी कार्य करनेमें सक्षम नहीं हो सकेंगे।

नागरी लिपिमें सुधार

लखनऊके प्राप्त एक समाचारसे पता चलता है कि युक्तप्रान्तीय सरकारने नागरी लिपि को लाइनोटाइप एवं टाइपराइटरके योग्य बनानेके लिये उसमें आवश्यक सुधार करनेका निश्चय किया है। नागरी लिपि पूर्ण वैज्ञानिक है, और 'फोनेटिक्स' के अनुसार उसमें अभिव्यक्ति करनेकी पूरी क्षमता है, किन्तु अहिन्दी भाषा भाषियोंके लिये उसमें कुछ कठिनाइयां हैं। नागरी लिपिमें मात्राओंकी भी कुछ कठिनाइयां लाइनोटाइप एवं टाइपराइटर पर काम लेनेकी दृष्टिसे हैं। ऐसी दशामें युक्तप्रान्तीय सरकारके तद्विषयक प्रयत्नकी हम सराहना करते हैं और आशा करते हैं कि वह लिपि एवं भाषा विशेषज्ञोंकी सहायतासे अभीष्ट परिवर्तन करनेमें सफलता प्राप्त करेगी।

पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

अखिल भारतीय सम्पादक सम्मेलन के इस वर्षके अध्यक्ष श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' निर्वाचित हुए हैं। इस समुचित निर्वाचनके लिये हम सम्पादक सम्मेलनको बधाई देते हैं। नवीनजीने अपना सारा जीवन ही पत्रकार कलाको समर्पित कर रखा है और सम्पादककी हैसियतसे उन्होंने कभी अपने आदर्शको झुकने नहीं दिया। हिन्दी पत्र सम्पादकोंके सामने परिवर्तित होते हुए समयमें अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं जिनका स्वरूप आगे चलकर और भी गम्भीर एवं जटिल हो सकता है, ऐसी दशा में

सम्पादकोंकी दृष्टि सहज ही सम्पादक सम्मेलन एवं उसके अध्यक्षकी ओर जायेगी और हमें आशा है नवीनजी ऐसे समय उनका समुचित नेतृत्व करेंगे। नवीनजीके अध्यक्ष निर्वाचित होनेपर हम उन्हें बधाई देते हैं और उन्हें अपने हार्दिक सहयोगका आश्वासन देते हैं।

ओझाजीका निधन

श्री गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझाकी मृत्युसे हिन्दीका ऐसा निस्वार्थ सेवी और विषय विशेषका ऐसा विशेषज्ञ उठ गया जिसने विज्ञापनसे दूर रहकर अपनी प्रतिभाका चमत्कार अपने खोजपूर्ण ग्रन्थों द्वारा दिखलाया। नागरी लिपि के सम्बन्धमें उनकी जानकारी सराहनीय थी और इतिहास के वे माने हुए विद्वान् थे। उनकी गम्भीर विवेचनापूर्ण शैली और साहित्यकी सराहना सभी करते हैं और मरनेके पश्चात् उनकी रचनाएं उनकी यादगार का काम करेंगी। ओझाजी की मृत्युसे हिन्दी संसारमें एक बहुत बड़ा अभाव हुआ है जिसकी पूर्ति सहजही सम्भव नहीं है। हम उनके शोक सन्तप्त परिवारके प्रति समवेदना प्रकट करते हुए दिवंगत आत्माकी शान्तिके लिये प्रार्थना करते हैं।

रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रन्थ—सम्पादक मडल सर्वश्री राजाराम शास्त्री, विश्वनाथ शर्मा, भगवती प्रसाद पान्थरी, चन्द्रशेखर अस्थाना और गोरावाला खुशाल जैन, सजिल्द, छपाई सफाई सुन्दर। प्रकाशक काशी विद्यापीठ, काशी। मूल्य १५)

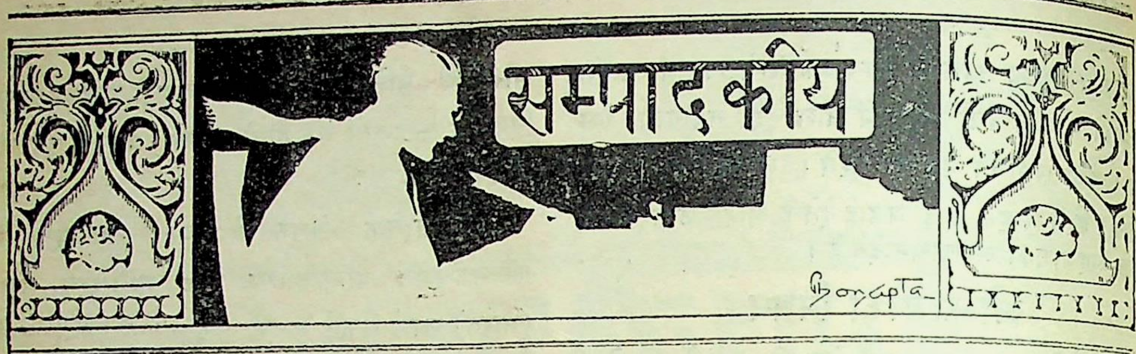
भारत विख्यात काशी विद्यापीठने अपने जीवनके पचीस वर्ष पूरे करनेपर जयन्ती समारोह के सम्बन्धमें प्रस्तुत जयन्ती अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया है। इसमें विद्यापीठ सम्बन्धी लेखोंके अतिरिक्त अनेक विषयोंपर अधिकारी व्यक्तियों द्वारा लिखे निबन्धोंका चयन किया गया है जो सुरुचि सम्पन्न, गौरवपूर्ण, आकर्षक एवं ज्ञानवर्द्धक हैं। अंगरेजीमें भी अनेक सुन्दर लेखोंका संग्रह है। ग्रन्थके अन्तमें विद्यापीठके विगत पचीस वर्षोंकी झांकी चित्रोंमें दी गयी है। प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा न केवल काशी विद्यापीठके सम्बन्धमें बल्कि पाठकोंकी जानकारी अनेक अन्यान्य विषयोंके सम्बन्धमें भी होगी। ग्रन्थ पठनीय एवं संग्रहणीय है।

स्त्री जातक—लेखक प्रो० बी सूर्यनारायण राव, प्रकाशक रमन पब्लिकेशन्स, प्रो० मालेश्वरम्, बंगलोर (भारत) छपाई सफाई सुन्दर, पृष्ठ संख्या १४८, सजिल्द मूल्य ३)

प्रस्तुत पुस्तक अंगरेजीमें है और जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है स्त्रियोंके सम्बन्धमें, उनके स्वभाव, उनकी शारीरिक गठन, काम विज्ञान सम्बन्धी बातें, समाजमें उन की स्थिति आदि विषयोंका वर्णन है। लेखक अधिकारी व्यक्ति हैं और उनकी लेखन शैली गम्भीर एवं आकर्षक है। इस विषयके जिज्ञासुओंके लिये पुस्तक काम की है।

गांधीजीकी यूरोप-यात्रा—मूल लेखिका कुमारी म्यूरीएल लीस्टर, अनुवादक श्री रंजन शर्मा, प्रकाशक बोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स लिमि० ३, राउण्ड बिल्डिङ्ग, कालबा देवी रोड, बम्बई। सजिल्द, सचित्र, छपाई सफाई सुन्दर पृष्ठ संख्या १५८, मूल्य २।)

प्रस्तुत पुस्तककी मूल लेखिका कुमारी म्यूरीएल लीस्टर ने Entertaining Gandhi नामक पुस्तकमें गांधीजीकी यूरोप यात्राका बड़ा ही मनोरंजक वृतान्त लिखा था। गांधी जी उन्हींके अतिथि थे अतः लीस्टरको उन्हें नजदीकसे देखनेका मौका मिला था। प्रस्तुत पुस्तक उन्हींकी अंगरेजी पुस्तकके गुजराती अनुवाद से अनूदित है। अनुवाद अच्छा है, किन्तु जब हिन्दी अनुवाद कराना ही था तब मूल पुस्तक का ही अनुवाद न कराकर गुजरातीसे अनूदित कराने की क्या आवश्यकता थी, यह हम समझनेमें असमर्थ हैं। अनुवादमें मूलकी सौन्दर्य-रक्षा योंही कम हो पाती है फिर दर अनुवादका तो कहानी क्या? फिर भी हिन्दीके पाठक इसे मनोरंजक पायेंगे और गांधीजीकी यूरोप-यात्रा सम्बन्धी अनेक बातोंकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। हम पाठकोंसे इसे पढ़नेका अनुरोध करेंगे।



साम्प्रदायिक स्थिति—

उत्तरोत्तर साम्प्रदायिक विष समस्त देशमें व्याप्त हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। बंगाल, बिहार, बम्बई, पंजाब, दिल्ली, युक्तप्रान्त और सीमाप्रान्त सभी भीषण सङ्कटकालसे गुजर चुके हैं और आज भी कितनेही स्थलोंपर आग जल रही है, कहीं राखके नीचे चिनगारियां दबी हुई हैं। देशकी स्थिति अत्यन्त विस्फोटक हो चली है और आज भी यद्यपि देशका बहुसंख्यक भाग भयङ्कर रूपसे सङ्कटापन्न हो चला है किन्तु देशव्यापी पैमानेपर एक साथही कब विद्रोहकी ज्वाला भभक उठे, नहीं कहा जा सकता। इन साम्प्रदायिक उपद्रवोंके नियन्त्रणके लिये अबतक अनेक उपायोंका अवलम्बन किया गया है किन्तु उपद्रवोंपर कहीं कहीं केवल नियन्त्रण करनेमें सफलता मिली है, उनके मूलोच्छेदमें नहीं। तो इसका कारण क्या है? प्रधान कारण इसका यह है कि साम्प्रदायिक उपद्रव हो रहे हैं साम्प्रदायिकताके आधारपर परन्तु उनका मूल राजनीतिक है और उपद्रव साम्प्रदायिकतासे स्वतः स्वभाव जन्य नहीं हैं, बल्कि वे उत्तेजित, प्रोत्साहित और उत्पन्न किये गये हैं। मुसलिम लीगके इस दावेके समर्थनके लिये कि भारतके दो प्रमुख सम्प्रदाय एकत्र नहीं रह सकते, ऐसे उपद्रवोंको प्रमाण एवं तर्कके रूपमें उपस्थित किया गया है। इसलिये जब एक सङ्गठित दल राजनीतिक उद्देश्य-साधनके लिये साम्प्रदायिक उपद्रवोंको अनिवार्य समझता है तब उपद्रव कैसे रुकें? और क्यों रुकें? इस उद्देश्यके रहते हुए लीगी सरकारोंकी उपद्रव-विरोधी कारवाइयां सफल न हों तो यह आश्चर्य-जनक नहीं। साथही यह भी समझ लेनेकी आवश्यकता है कि साम्प्रदायिक उपद्रवोंकी सृष्टि ही जब की जाती है इस आधार पर कि दो प्रमुख सम्प्रदाय एक साथ नहीं रह सकते तब साम्प्रदायिक उपद्रवोंके बीचमें उन्हीं सम्प्रदायोंसे भाई चारे के अनुसार साथ साथ रहनेकी अपील अगर उन्हीं साम्प्रदायिक नेताओं द्वारा की जाय तो उससे कितनी उद्देश्य-पूर्तिकी सम्भावना हो सकती है यह भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणसे कल्पनातीत नहीं कहा जा सकता। बंगालमें इसका उदाहरण स्पष्ट है। १६ अगस्तको जिस सुहरावर्दी सरकारने 'प्रत्यक्ष संघर्ष' का श्रीगणेश नगर-व्यापी हड़ताल और सार्वजनिक छुट्टी देकर किया, वही आज शान्त रहने की अपीलें भी निकाल रही है किन्तु शान्ति होती नहीं दिखायी पड़ती। मि० सुहरावर्दीकी अपीलोंपर नागरिकोंका विश्वास ही नहीं रह गया है। परिणाम स्पष्ट है कि नगरकी अशान्तिके निराकरणका कुछ उपाय ही दिखायी नहीं पड़ रहा है। बीच-बीचमें दो चार दिनोंके लिये उपद्रवी कुछ शिथिल पड़ते प्रतीत होते हैं; किन्तु फिर आग भड़क उठती है और इस बार मार्चके अन्तिम सप्ताहमें कलकत्ता महा-नगरीमें जो साम्प्रदायिक आग भड़की, उसकी लपटें अब भी उठ रही हैं। हताहतोंकी महीने भरकी संख्यांकी तुलना करनेपर स्थिति उत्तरोत्तर बिगड़ती ही प्रमाणित होगी।

विधान परिषद और नरेन्द्र मण्डल—

नरेन्द्र मण्डल—चेम्बर आव प्रिन्सेज की एक बैठक अप्रैलमें बम्बईमें हुई जिसमें मण्डलने विधान परिषदमें सम्मिलित होनेके लिये सदस्योंको आदेश प्रदान किया। किन्तु मण्डलकी बैठककी जो रिपोर्ट मिली है उससे स्पष्ट होता है कि नरेन्द्र मण्डलने येन केन प्रकारेण अपने अस्तित्व की रक्षा कर ली है। मण्डलके अध्यक्ष नवाब भूपालका यह कुचक्र स्पष्ट हुआ है कि वे नरेशोंके विधान परिषदमें सम्मिलित होनेके न केवल विरुद्ध हैं, बल्कि उसमें वे बाधा भी डालना चाहते थे। किन्तु बीकानेर, पटियाला, जयपुर,

रीवा और जोधपुर आदि राज्योंके नरेशोंने कड़ा रुख लिया और उन्होंने बैठक छोड़कर चले आनेकी धमकी दी, तब कहीं नवाब भूपालका पारा नीचे खिसका और यह सोचकर कि अगर विवेकसे काम नहीं लिया जाता तो नरेन्द्र मण्डल ही समाप्त हो जायगा, उन्होंने अपनी स्वीकृति उस प्रस्ताव पर दे दी जिसके अनुसार नरेशोंको परिषद्में भाग लेनेकी सुविधा मिल गयी है। कोचीन और बड़ौदाने पहले ही परिषद्में भाग लेनेका निश्चय किया था और अब अन्यान्य कई राज्योंने भी ऐसा ही निश्चय किया है। नरेशोंके इस निश्चयकी हम सराहना करते हैं। ग्वालियरमें होनेवाले देशीराज्य प्रजा परिषद्में भाषण करते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरूने कटु किन्तु सत्य शब्दोंमें नरेशोंको चेतावनी दे दी है कि स्वाधीन भारतके निर्माणमें जो लोग असहयोग करेंगे वे राष्ट्रके विरोधी समझे जायेंगे। मि० लियाकतअली ने नेहरूजीके उक्त शब्दोंपर आपत्ति की है और कहा है कि उक्त शब्दोंमें नेहरूजीने राजाओंको धमकी दी है। हमें सन्तोष है कि महाराज बीकानेरने लियाकत अलीके उक्त आरोपका खण्डन किया है और कहा है कि नरेशोंपर कहीं से कोई दबाव नहीं डाला जा रहा है। पूर्ण सद्भावनाके आधार पर ही सारे कार्य हो रहे हैं। तो फिर लियाकत अलीके आरोपका क्या अर्थ है और उसकी प्रेरणा उन्हें कहांसे मिली? नवाब भूपाल एवं लियाकत अलीमें क्या कोई दुरभिसन्धि तो नहीं है कि मुसलिम रियासतें भी मुसलिम लीगकी नीतिका अवलम्बन करें? आगे आनेवाले दिन इस प्रश्नका उत्तर देंगे और सम्भवतः इसका स्वीकारात्मक उत्तर देंगे। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि नरेन्द्र मण्डल को गुमराह करनेका कुचक्र नवाब भूपालने निश्चित रूपसे किया और उनकी इस नीति अथवा कुचक्रकी सराहना नहीं की जा सकती। विधान परिषद्में भाग लेनेका निश्चय जिन राज्योंने किया है, निश्चय ही उन्होंने राजनीतिज्ञता एवं दूरदर्शितासे काम लिया है। रहा नरेन्द्र मण्डल, तो उसका छिन्न भिन्न हो जाना अवश्यम्भावी है।

नरेन्द्र मण्डलका भारत विरोधी षड्यन्त्र?—

ह्वाइट हालकी प्रेरणा और भारतमें स्थित पोलिटिकल डिपार्टमेण्टके प्रयत्नसे जिस नरेन्द्र मण्डल की स्थापना हुई और जिसका उद्देश्य भारतमें ब्रिटिश प्रभुत्वके लिये एक सम्बल प्रदान करनेके अतिरिक्त वस्तुतः और कुछ नहीं रहा, उसके अध्यक्ष नवाब भूपाल तथा उनके कुछ पृष्ठ पोषकोंके सम्बन्धमें इधर जैसी आशंकाएं होती रही हैं, उनकी पुष्टि नयी दिल्लीके उस समाचारसे होती है जिसे हम विस्तृत रूपसे उद्धृत कर रहे हैं। इसमें जो आरोप लगाये गये हैं वे मण्डल के देशभक्त नरेशोंके लिये सर्वथा अवांछनीय एवं अशोभनीय तो हैं ही, उनके आत्म सम्मानके लिये भी घातक हैं। उक्त समाचारमें कहा गया है कि "नरेन्द्र मण्डलकी ओरसे ब्रिटेनमें प्रचार करनेके लिये लन्दन की एक प्रसिद्ध प्रचार-कम्पनी की प्रचार-एजेंसीके रूपमें जो नियुक्ति की गयी है उसके प्रति नरेन्द्र मण्डलके कई सदस्यों ने तीव्र विरोध प्रकट किया है। विदित हुआ है कि इसके विरोधमें मण्डलकी प्रचार-समितिके अध्यक्ष, महाराजा पटियालाने मण्डलके चांसलर, नवाब भोपालके नाम एक कड़ा पत्र लिखा है। उन्होंने चांसलरसे इस पत्रको समाचार पत्रोंमें प्रकाशित करनेकी अनुमति मांगी है। पता चला है कि निजाम हैदराबाद, जो कि नरेन्द्रमण्डलके सदस्य तक नहीं हैं, उक्त प्रचारकार्यके व्ययको बहुत हद तक अपने ऊपर लेंगे। वास्तवमें लन्दन स्थित निजामके एजेण्ट जनरल उक्त प्रचारका कार्यक्रम तैयार करनेमें क्रियात्मक दिलचस्पी ले रहे हैं। नरेन्द्रमण्डलके एक सदस्यने बताया कि जबतक रियासतोंपर ह्वाइट हालका नियन्त्रण रहेगा तब तक वैधानिक तथा राजनीतिक प्रश्नोंपर मण्डलके दृष्टिकोण का ब्रिटेनमें प्रचार किया जाना कुछ-कुछ उचित है। परन्तु इस समय प्रचारकी जो बात है वह स्पष्टतः ब्रिटेनके टोरी जैसे प्रतिगामी दलोंका सहयोग प्राप्त करनेका प्रयास है, क्योंकि भारतके कुछ नरेश प्रतिगामी नीति ही अपनाये हुए हैं। इस प्रचार-कार्यकी तहमें निजाम हैदराबादका हाथ प्रतीत होता है। नरेन्द्रमण्डलके एक प्रमुख सदस्यने नवाब भोपालको यह चुनौती दी है कि वे इस प्रचार-कार्यमें सहयोग देनेवाली रियासतोंके नाम बतायें। यदि चांसलर यह सूचना नहीं देंगे तो सम्भवतः मण्डलके कई सदस्य एक वक्तव्य प्रकाशित करेंगे जिसमें वे घोषणा करेंगे कि उक्त प्रचार एजेन्सी की नियुक्तिसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

नरेन्द्रमण्डलके जन-सम्पर्कमें डायरेक्टरेटमें लिये गये सदस्यों से नरेश गण पहिलेसे ही असन्तुष्ट थे, तथा चांसलर द्वारा किये गये बादके इस कार्यसे उनका यह दृढ़ निश्चय हो गया है कि मण्डलकी प्रचार संस्थाके प्रश्नपर पुनः विचार किया जाय।" आरोप संगीन हैं। हमें आशा है अधिकारी व्यक्तियों द्वारा इसका स्पष्टीकरण किया जायगा। और यदि इसमें कुछ भी सत्यांश हो तो नरेन्द्रमण्डलके कुछ अधिकारियोंको इस प्रकारकी कारवाइयोंको तत्काल नियंत्रित करनेकी आवश्यकता है।

नये भारत सचिव—

लार्ड पेथिक लारेन्सके स्थान पर नये भारत सचिव लार्ड लिस्टवेल की नियुक्ति हुई है। लेकिन भारत-सम्बन्धी ब्रिटिश नीतिमें किसी परिवर्तनका परिचायक यह परिवर्तन नहीं है। राजनीतिमें वह समय अब नहीं रहा जब व्यक्ति विशेषकी नियुक्ति किसी विशेष परिवर्तनकी सूचना दे। इतना अवश्य है कि लार्ड लिस्टवेलने भारतीय समस्याओंका अध्ययन किया है, नेहरूजीके साथ वे एकही सभामंच उतर चुके हैं और लार्ड पेथिक लारेन्सकी वृद्धावस्थाकी स्वभाव-जन्य दुर्बलता उनमें नहीं है। आश्चर्य यही है कि इण्डिया आफिस अब भी बना हुआ है, लेकिन लार्ड माउण्ट बेटेन जिस प्रकार अन्तिम वायसराय होंगे उसी प्रकार लार्ड लिस्टवेल अन्तिम भारत सचिव।

भारत और प्रान्तोंका विभाजन—

कांग्रेसने भारतके अंग-विच्छेदका सदा ही विरोध किया है और आज भी इस रूपमें कांग्रेस पाकिस्तानका विरोधी है। किन्तु यदि मुसलिम लीग अपनी हठधर्मीका त्याग नहीं करती और भारतका विभाजन उसके कारण अनिवार्य हो गया है तो उसे कुछ भी अधिकार नहीं है कि जिन सिद्धान्तों पर वह भारतका विभाजन करना चाहती है उन्हीं सिद्धांतों पर वह प्रान्तके विभाजनका विरोध करे। किन्तु मि० जिन्ना और बंगालके उनके लीगी लेफ्टिनेण्ट मि० हसन शहीद सुहरावर्दी यही चाहते हैं। वे चाहते हैं कि बंगाल भारतसे तो पृथक हो जाय, किन्तु बंगालका विभाजन न हो। इसी प्रकार लीगी पंजाबके विभाजनके भी विरोधी हैं। पंजाब और बंगालके अल्पसंख्यकोंकी सुख-सुविधाके आधारपर जो लोग उनके विभाजनका समर्थन करते हैं, वे वस्तुतः प्रश्नके मूलपर नहीं जा रहे हैं। वास्तवमें प्रश्न केवल सुख सुविधाका नहीं है। प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण यह है कि यदि उनका विभाजन न हो तो उन्हें पाकिस्तानके अन्तर्गत रहना पड़ेगा और भारतीय संघसे पृथक होकर। इस प्रकार उनके सहधर्मी जहां दूसरे प्रान्तोंमें नये राजनीतिक अधिकार प्राप्त करेंगे वहां पाकिस्तानके अन्तर्गत रहनेवालोंको कूपमण्डूक बना रहना पड़ेगा। अल्पसंख्यक होनेके नाते प्रान्तीय शासनको वे सफलतापूर्वक प्रभावित नहीं कर सकते। अतः पाकिस्तानी व्यवस्थाके अन्तर्गत किसी भी स्थितिमें रहनेके लिये वे वाध्य हैं। इसलिये यदि वे कूप-मण्डूक बना रहना नहीं चाहते और किसी भी आकस्मिक संकटमें सर्वथा असहाय स्थितिसे वे आतंकित होते और संघसे संयुक्त रहना चाहते हैं; तो उन्हें वाध्य ही कौन कर सकता है? ऐसी वाध्यता स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धान्तके विरुद्ध होगी, जिसे १५ मार्चके अपने वक्तव्यमें ब्रिटिश प्रीमियर एटली भी स्वीकार कर चुके हैं। बंगाल और पंजाबके बंटवारेका इस आधारपर ही हम समर्थन करते हैं, अन्यथा यदि भारतका विभाजन न हो और उक्त प्रान्त भी केन्द्रिय संघसे संयुक्त रहें, तो प्रांतोंके विभाजनके भी हम विरोधी होंगे।

यूरोप किधर जा रहा है ?

मास्को संम्मेलनके सम्बन्धमें अपना विचार व्यक्त करते हुए पिछले अंकमें हमने उसकी सफलताके सम्बन्धमें आशंका प्रकट की थी और हमारी आशंकाके अनुसार ही सम्मेलन विफल भी हुआ। जर्मनी तथा यूरोपके अन्यान्य प्रश्नों पर विभिन्न राष्ट्रोंके वैदेशिक सचिव सह-मत नहीं हो सके और बिना किसी वास्तविक समझौतेके पुनः सम्मेलन भंग हुआ। इस बीचमें अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं और भी उलझी हैं। और यूरोप पुनः युद्धके ज्वाला-मुखीके निकट उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। अमेरिकाके भूतपूर्व वाइस प्रेसिडेन्ट हेनरी वालेसने स्पष्ट आरोप अपने ही देश और उसके प्रेसिडेन्ट ट्रूमैन पर किया है कि अमेरिका शान्तिकालमें भी युद्धके पैमाने पर सामरिक

तैयारी कर रहा है और ट्रूमैनकी वैदेशिक नीति स्पष्टतः रूस विरोधी है और अमेरिकाको युद्धकी ओर घसीट रही है। इधर रूस यूरोपमें अपनी शक्ति संगठित करता जा रहा है और ब्रिटेनने शान्तिकालमें भी सैनिक भरतीकी ओर कदम उठाया है। फ्रान्समें भारी राजनीतिक परिवर्तनोंकी सम्भावनाएं हो रही हैं। अभी उस दिन फ्रान्सकेप्रधान मंत्री मो० रामादियेने अपनी सरकारमें विश्वासका प्रस्ताव उपस्थित किया तो कम्यूनिस्टोंने उसका साथ नहीं दिया और उसके बाद उन्होंने अपने प्रतिनिधियोंको भी मन्त्रिमंडलसे अलग कर दिया। इस घटनाकी महान प्रतिक्रिया अवश्यम्भावी है। उधर देगाल हैं जिन्होंने सिर उठाया है और एक नये दलका संगठन कर रहे हैं। जेनरल देगाल प्रतिक्रिया-वादी हैं। स्पेनकी स्थिति यह है कि फ्रैंकोने स्पेनमें तथा-कथित राजतन्त्रकी प्रतिष्ठा करनेकी घोषणा की है। "तथा कथित" इसलिये क्योंकि वह स्वयं मुसोलिनीकी भांति स्पेनका वास्तविक शासक बना रहना चाहता है। कुछ दिन पहले मि० चर्चिलने यूरोपके पुनर्गठित करनेकी योजना उपस्थित की थी और उनकी योजना स्वभावतः प्रतिगामी होगी। तो क्या चर्चिलकी योजना सफल हो रही है? सारे यूरोपमें युद्ध समाप्त होते ही जिस प्रगतिशील विचार-धाराका प्रवाह आया था, वह क्या लुप्त प्राय हो रहा है? स्वयं ब्रिटेनमें भी उसके वैदेशिक सचिव मि० बेविनकी वैदेशिक नीति क्या शान्ति एवं प्रगतिको लक्ष्य करती हुई संचालित हो रही है? इसलिये कहना पड़ेगा कि यूरोप आज शान्तिकी अपेक्षा युद्धकी ओर ही अग्रसर हो रहा है।

हेनरी फोर्ड——

विश्व-विख्यात धनकुबेर हेनरी फोर्डकी उस दिन मृत्यु हो गयी। फोर्ड संसारके उन इने-गिने व्यक्तियों में से थे जिन्होंने अपने अध्यवसाय द्वारा निर्धनतासे युद्ध करते हुए अपने बाहुबलसे धनकुबेर होनेकी स्थिति प्राप्त की। राक फेलर और कारनेगी जैसे व्यक्तियोंकी भांति फोर्डने अपनी सम्पत्तिका जन कल्याणके लिये बहुत सदुपयोग नहीं किया, किन्तु एक अत्यन्त साधारण स्थितिसे उठकर उसने जितनी सम्पत्ति अर्जित की वह चमत्कारपूर्ण है और अध्यवसाय एवं धुनके पक्के युवकोंके लिये फोर्डका जीवन एक आशाका सन्देश वाहक है।

सिन्धकी स्वाधीनताका एक नमूना——

भारतके अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा सिन्ध सबसे पहले पूर्ण स्वतन्त्र होना चाहता है। बंगालके प्रधान मन्त्री शहीद साहबने भी इसकी घोषणा करनेका इरादा बहुत पहले किया था। लेकिन मि० गुलाम हुसेन हिदायतुल्ला उनसे आगे निकल जाना चाहते हैं। तो सिन्धकी पूर्ण स्वतंत्रता होनेपर वहांके अल्पसंख्यकोंकी क्या स्थिति होगी इसका एक नमूना मि० हिदायतुल्लाने पेश किया है। नमूना इतना साफ है कि इसपर टीका टिप्पणी अनावश्यक है। कराचीसे प्राप्त एक समाचारमें बताया गया है कि:—

> "कुछ हिन्दू फर्मोंसे यह कहा गया है कि अपने अपने फर्मोंमें मुसलमानोंको हिस्सेदार (पार्टनर) बनाओ अन्यथा कच्चे मालके लिये जो 'परमिट' तुम्हें मिले हुए हैं वह रद्दकर दिये जायेंगे। मालूम हुआ है कि कुछ फर्म इसपर राजी हो गये हैं लेकिन बहुतोंने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया है। ये लोग दूसरे प्रान्तोंमें अपना व्यवसाय उठा ले जानेके प्रश्नपर विचार कर रहे हैं।"

तथोक्त सनातनियोंका 'धर्मयुद्ध'——

श्री करपात्रीके नेतृत्वमें सनातनियों ने गत २८ अप्रैल से तथाकथित 'धर्मयुद्ध' का श्रीगणेश किया और इस सम्बन्धमें धर्मवीर' कहे जाने वाले कई आन्दोलन कर्ता अब तक गिरफ्तार भी हो चुके हैं। धर्मवीरों ने अपने धर्म-युद्धका श्रीगणेश दिल्ली में उस दिन किया जिस दिन भार-तीय विधान परिषद्का तृतीय प्रारम्भिक अधिवेशन आरम्भ हुआ। उसी दिन खास तौर पर उन्होंने ऐसा क्यों किया, यह स्वतः स्पष्ट है। अपनेको सनातनी कहने वाले इन धर्मवीरोंने स्वेच्छा या अनिच्छापूर्वक प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि वे भी विधान परिषद्के विरुद्ध हैं और इस प्रकार उनके धर्मयुद्ध द्वारा भारत विरोधियोंको और भी जोरसे चिल्लाकर यह कहनेका मौका मिल जायगा कि भारतीय विधान परिषद् सनातनी हिन्दुओंका भी प्रतिनि-

श्री गोविन्द चन्द्र चक्रवर्ती द्वारा इलस्ट्रेटेड इण्डिया प्रेस ७४, धर्मतल्ला स्ट्रीट, कलकत्तामें मुद्रित और प्रकाशित।

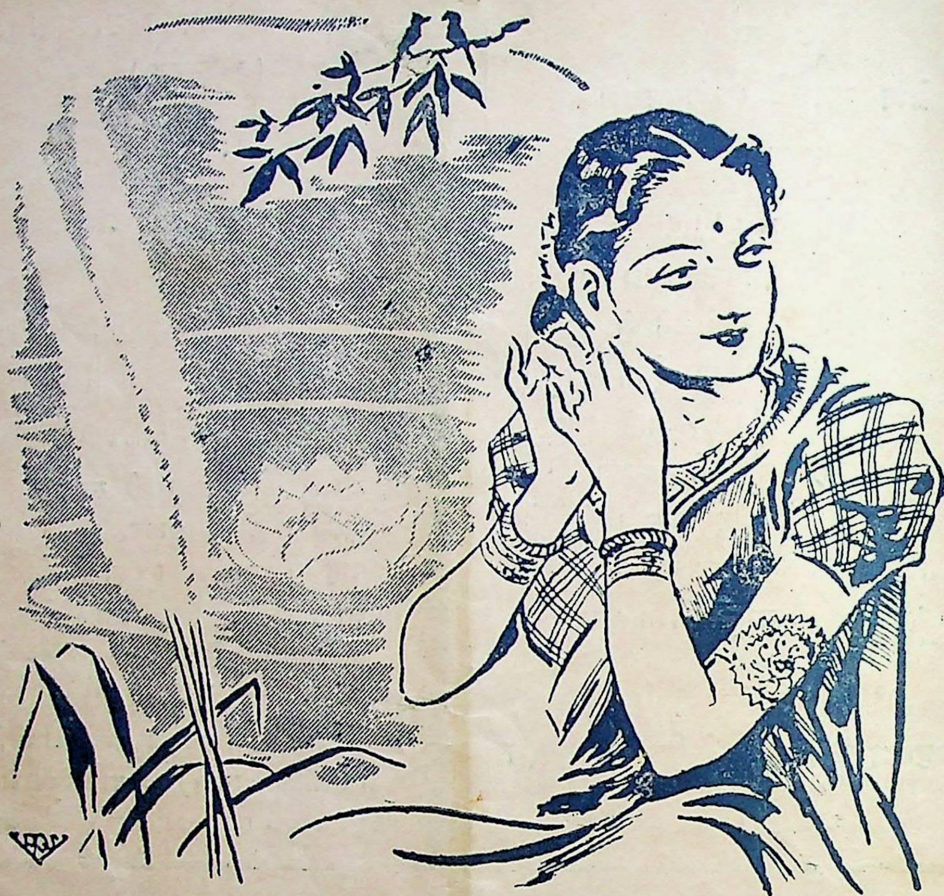
धित्व नहीं करती। सनातनियोंने इसकी मांग भी की हैकि उनके लिये हिन्दू धर्म ज्ञाता पंडित ही विधान बनायें। उनकी अन्य मांगें गोबध बन्द करने और धर्म-विरोधी कानूनोंको बन्द कराने की है। जिस विधान परिषद्के सामने उन्होंने प्रदर्शन किये और जिस परिषदको वे अपना प्रतिनिधि नहीं मानते, उसने अपने इसी अधिवेशनमें सभी के लिये धार्मिक स्वाधीनताके सिद्धान्त को स्वीकार किया है और तब सनातनियोंको अपने इस प्रकारके घातक एवं निन्दनीय आन्दोलनकी क्या आवश्यकता पड़ गयी, इसे तो वही समझें किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि सारा आन्दोलन शरारतसे भरा हुआ है और उसका उद्देश्य ही है जनताकी सरकारोंके विरुद्ध, भारतीय विधान परिषद्के विरुद्ध और केन्द्रीय सरकारके कांग्रेसी नेताओंके विरुद्ध हिन्दू जनताको प्रोत्साहित करना और इसके लिये धर्मवीरोंके नेताओंने आवाज भी उठायी है। इसलिये करपात्रीजी द्वारा यह संचालित आन्दोलन सर्वथा राष्ट्र विरोधी है और ईश्वर एवं धर्मकी दुहाई देते हुए इसे धर्म-युद्ध कहना ईश्वर और धर्मके पवित्र नामको कलंकित करना है। भारत आज जब स्वाधीन होने चल रहा है तब दण्ड कमण्डल धारी यह तथाकथित सनातनी किसके इशारेपर यह राष्ट्र विरोधी मोर्चा तैयार कर रहे हैं? इन्हीं तथा कथित सनातनियोंने क्या गोलमेज परिषद् लन्दनमें सर अब्दुल हलीम गजनवीको अपना प्रतिनि. नहीं बनाया था? इन्हीं करपात्रीजीने क्या अकाल पीड़ित जनताको हजारोंकी संख्यामें नित्य तड़प तड़प कर मरते देखते हुए भी काशीमें मनों घृत और टनों खाद्यान्न यज्ञके नाम पर बरबाद नहीं किया था? जिस युद्धमें अपरिमित गोबध हुआ उसमें भी सरकारी युद्ध-प्रयत्नोंमें इन्हीं करपात्रीजीने क्या सहयोग नहीं दिया? तब आजही अकस्मात उनका गो-प्रेम कहांसे उमड़ आया है? इसलिये धर्मकी दुहाई देना तो एक बहाना मात्र है। वास्तवमें उद्देश्य है भोली भाली हिन्दू जनताको बहकाकर राष्ट्र विरोधी मोर्चेमें उसे सम्मिलित करने का। सन्तोषका विषय है कि हिन्दू जनता आज इतनी मूर्ख नहीं रह गयी है कि इस प्रकारके अधार्मिक काण्डको धर्मयुद्ध समझ बैठे और राष्ट्रका विरोध करनेके लिये बहकावेमें आ जाय। करपात्रीजी विद्वान् व्यक्ति हैं और हिन्दू समाजके कुछ लोगोंपर उनका प्रभाव भी कुछ है, अतः हम उनसे अनुरोध करेंगे कि वे अपने प्रभावका दुरुपयोग न करें और ऐसी देशद्रोही हरकतोंसे बाज़ आवें। जिन दण्ड कमण्डल धारियोंके आशीर्वादोंके चक्करमें वे पड़ गये हैं वे हलवा पूरी तो एक दिनके लिये छोड़ें, क्या करेंगे वे धर्मके लिये बलिदान?

सर ओलफ निकाले जाय—

पश्चिमोत्तर सीमान्तमें व्यवस्थापिका सभामें स्पष्ट बहुमत प्राप्त डा० खां साहबके नेतृत्वमें कांग्रेसी मंत्रि-मण्डल शासन कर रहा है। इसके विरुद्ध कुछ अरसे से लीगियोंने उपद्रव शुरू कर रखा है और अब पता लगा है कि प्रान्तके गवर्नर सर ओलफ केरोका भी उन उपद्रवियों की पीठ पर हाथ रहा है। पं० नेहरू द्वारा नियुक्त कांग्रेस के प्रधान मंत्री आचार्य युगल किशोर एवं दीवानचमन लालने सीमाप्रांतके उपद्रवोंके सम्बन्धमें जो रिपोर्ट पेशकी है, उसमें सर ओलफ पर लगाये गये उन संगीन आरोपोंकी पुष्टि होती है। प्रांतका गवर्नर जिसके पास अल्पसंख्यकोंकी रक्षा और प्रांतकी शांति एवं कल्याणका विशेषाधिकार प्राप्त हो उसका अल्पसंख्यकोंपर होने वाले अत्याचारोंके पीछे हाथ हो और वह स्वयं शांति और व्यवस्थाको विनष्ट कर हिंसात्मक अराजकताके कार्यों से हमदर्दी और एक बद-नाम संस्था के साथ अपना नाम संयुक्त करे, यह सहसा विश्वासनीय नहीं मालूम होता, किंतु सर ओलफ इससे पहले भी अपनी करतूतोंके कारण काफी कुख्यात हो चले हैं सिंधके गवर्नर मूडीकी भांतिही सर ओलफ भी नौक-रशाहीके नमूने हैं और ऐसेही व्यक्तियोंके आधार पर श्री जयप्रकाशनारायणने कहा था कि भारतमें रहनेवाला प्रत्येक अंगरेज मुसलिम लीगी है। ब्रिटिश सरकार अगर सर्वथा निर्लज्ज और विवेकहीन नहीं हो गयी है तो उसे सर ओलफ जैसे लोगोंको तत्काल निकाल बाहर करना चाहिये। प्रांतके पैसे पर पलनेवाला गवर्नर प्रांतकी शांतिका रक्षक होते हुए उसका ही भक्षक बने, यह मूर्खता और निर्लज्जता तो है ही, यह सहनशक्तिके भी बाहर है। लार्ड माउण्ट-बेटेन जिस शांति और सद्भावनाके लिये प्रयत्नशील बताये जाते हैं, उनके लिये घातक सर ओलफ जैसे व्यक्ति ही हैं।

——

Regd. No. C. 2230



मासिक
विश्वमित्र

सम्पादक—

देवदत्त मिश्र

जुलाई १९४७ वर्ष १५, संख्या---७ श्रावण २००४

मिलन यामिनी से—

वह एक दिवसको आई थी
पर कितनी मादक यादों से-
भर गई भवन, भर गई हृदय !

यह द्वार वही जिसने उसके
आते ही उसके पग चूमे,
ये गलियारे, दे गलबाहीं
जिसमें हम हंस-हंस कर घूमे,
इन कमरों की दीवारोंके
मुख होता तो वे रच देतीं,
ऐसी कविता जिसको सुनकर
धरती नाचे, अंबर झूमें !

उसके बतियाने, गाने के,
उसके हंसने केकोमल स्वर-
से घर प्रतिपल गूंजा करता,
अंतरमें है लहराती लय ।

वह एक दिवसको आई थी
पर कितनी मादक यादों से
भर गई भवन, भर गई हृदय !

जब कल स्वागत कर विहंसा था
तो आज विदा दे रोया भी,
कुछ घड़ियोंके अंदर - अंदर
मैंने क्या पाया, खोया भी—

अन्दाज लगा सकना इसका
मेरे तो बसकी बात नहीं,
अबतक हूं मैं जैसे कोई
कुछ जागा भी, कुछ सोया भी ।

कुछ-कुछ सच-सी, कुछ सपने-सी
बीती घटनाएं लगती हैं,
लगता जैसे पी बैठा हूं
कुछ-कुछ मधुमय, कुछ-कुछ विषमय ।

वह एक दिवसको आई थी
पर कितने हर्ष-विषादों से
भर गई भवन, भर गई हृदय !

वह एक दिवस को आई थी
पर कितनी मादक यादों से
भर गई भवन भर गई हृदय !

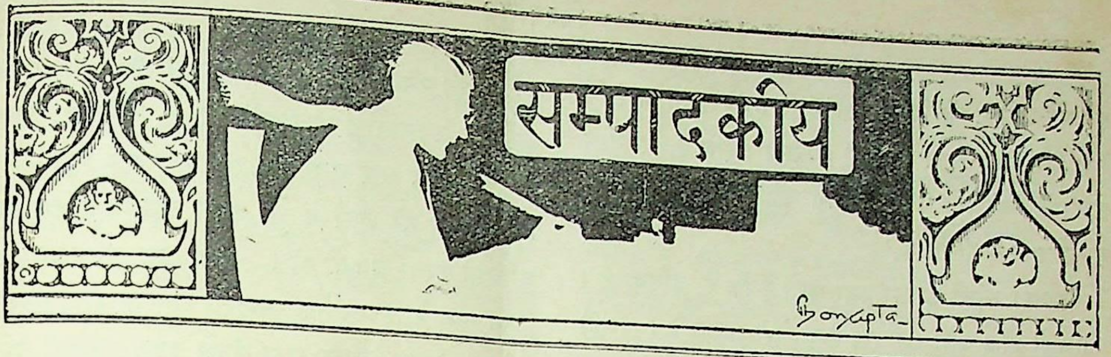
विश्वास [illegible] मनको
आनेवा[illegible] पल पर
वह बो[illegible] 'आज' मधुर,
सबकी [illegible], पगले, कल पर;

कलका उसने मेरे आगे
कैसा बढ़िया खाका खींचा !
स्वर्गों से स्वप्न उतरते थे
उसकी बातोंपर झलमल कर ।

उम्मीदें ऐसी बंधवा दीं
अब मैं बैठा रह सकता हूं
उनको सेता तबतक जबतक
लेता है अन्तिम सांस समय !

वह एक दिवसको आई थी
पर कितने अद्भुत वादों से
भर गई भवन भर गयी हृदय !

वह एक दिवस को आई थी
पर कितनी मादक यादों से
भर गई भवन, भर गई हृदय !



इण्डिया बिल

इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि १५ अगस्त १९४७ की गणना भी उन्हीं एतिहासिक तिथियों में की जायेगी जो फ्रांस, संयुक्तराज्य अमेरिका, चीन प्रभृति देशोंकी शासन प्रणालीमें क्रान्तिकारी परिवर्तन लानेके लिये सर्व प्रसिद्ध हैं। इस दिन हिन्दुस्तान विदेशी अधिकारसे पूर्ण स्वतंत्र होगा। यह स्वतंत्रता अविभाज्य रूपमें नहीं दो खण्डोंमें—हिन्दुस्तान और पाकिस्तानमें—आयेगी और इसी उद्देश्यसे इण्डियन इण्डिपेण्डेंस बिल पार्लमेण्टमें उपस्थित किया गया है। निस्सन्देह यह बिल इङ्गलैण्डके पार्लमेण्टके इतिहासमें, जैसा भारत सचिव लार्ड लिस्टोवेलने कहा है अपूर्व है। इसके पूर्व संसारकी आबादीके इतने बड़े हिस्सेको सिर्फ कानूनके जरिये पूर्ण स्वतंत्रता मिलनेका दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। १५ अगस्तको हिन्दुस्तान पूर्ण स्वतंत्र होगा। बिटिश पार्लमेण्टरी लेबर पार्टीके अध्यक्ष मि० सीमूर कोक्सने जिस दिन पार्लमेण्टमें इण्डियन इण्डिपेण्डेंस बिल पेश किया उस दिनको अर्थात ४ जुलाईको ठीक ही "लेबर पार्टी के लिये, इङ्गलैण्ड बासियोंके लिये, भारत वासियोंके लिये महान दिवस" बताया है। सरदार पटेलने भी इस बिलको ब्रिटिश पार्लमेण्टके इतिहासमें अपूर्व बताते हुए कहा है कि यह बिल इस बातका निदर्शन है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रके प्रति किस हद तक महानता का परिचय दे सकता है। सुधार कमिश्नर श्री बी० पी० मेननने तो बिलकी प्रशंसामें कलम तोड़ दी है। सर्दार पटेलके कथनानुसार इस नये बिलके बनाने में श्री मेननका कम हाथ नहीं रहा। श्री मेनन कहते हैं कि "१५ अगस्तको इस बिलके अनुसार दोनों डोमिनियन सरकारोंको पूर्ण सार्वभौम सत्ता प्राप्त होगी और वे नर को नारी और नारीको नर बना सकनेके सिवा जो चाहें सो कर सकते हैं।"

यह इण्डियन इण्डिपेण्डेंस बिल बड़ी जल्दबाजीमें बना है और इसमें मात्र २० क्लोज हैं। इसकी तुलनामें १९३५ के गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्टमें ३२१ धारायें, १० शिड्यूल्स, इन्स्ट्रूमेंट आफ इन्सट्रक्शन्स और कितने ही आर्डर्स-इन-कौंसिल थे। प्रस्तावित बिलमें यद्यपि मात्र २० धारायें ही हैं किन्तु इनका संकलन इतनी व्यापक दृष्टि रख कर किया गया है कि प्रायः सभी विषयोंका सम्यक रूपेण समावेश हो गया है। इस बिलकी पाण्डुलिपि भारतीय नेताओंको, पार्लमेंटमें पेश करनेके पूर्व दिखायी और उनकी स्वीकृति प्राप्त कर ली गयी थी। नेताओंके विचार परामर्शानुसार पांडुलिपिमें चौतरफा संशोधन करने के बाद ४ जुलाईको पार्लमेंटमें पेश की गयी। प्रस्तावित बिल और १९३५ गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्टमें यह अन्तर है कि इसमें हस्तान्तरित अधिकारोंको स्वेच्छानुसार शासन विधान का रूप देनेका अधिकार दिया गया है। जब कि १९३५ का एक्ट स्वयं शासन बिधान था। इस बिलकी धारा ६ में यह व्यवस्था दी गयी है कि प्रत्येक डोमिनियनकी व्यवस्थापिका को अधिकार होगा कि वह अपने डोमिनियनके लिये तथा डोमिनियनके बाहरके लिये बैधानिक एवं अन्य सब प्रकारके कानून बनाये। इस बातका खास तौरसे उल्लेख किया गया है कि डोमिनियन व्यवस्थापिकाओंको पार्लमेंट द्वारा बनाये गये और इस देशमें प्रचलित किसी कानूनको, यहां तक कि प्रस्तावित बिलको भी रद करनेका, उसमें संशोधन करनेका अधिकार होगा। इस तरह प्रस्तावित बिलके अनुसार अस्तित्वमें आने वाली भारतीय व्यवस्थापिकाओंको वे तमाम अधिकार होंगे जो एक स्वतंत्र राष्ट्रकी पार्लमेंटको होते हैं। भारतीय व्यवस्थापिका १५ अगस्तको या उसके बाद जब चाहे गवर्नर जेनरल का पद मिटा कर प्रजातंत्रकी घोषणा कर सकती है। इस

तरह यह स्पष्ट है कि यह ऐतिहासिक बिल, जो भारतमें ब्रिटिश शासनका अन्त करनेकी व्यवस्था देता है, राष्ट्रीय स्वतंत्रताके लिये गत पचास वर्षोंसे चलाये गये आन्दोलन और संघर्षकी सफलता है।

महात्मा गांधी हमेशा कहा करते हैं कि मै बनिया हूँ। हर चीजको ठोक बजा कर देख लेना मेरी आदत है। यही कारण है कि सर्दार पटेलकी तरह वे बिलकी मुक्तकंठसे प्रशंसा नहीं कर सके। गांधीजी कहते हैं यद्यपि अंग्रेज आज सभी अधिकार छोड़ रहे हैं किन्तु उनकी परीक्षा बिलके कार्यान्वित होने पर कार्य द्वारा होगी उसकी भाषा द्वारा नहीं, पढ़नेमें वह कितनी ही उदार, सुन्दर और उचित क्यों न लगे। देशी रियासतोंके सम्बन्धमें ब्रिटिश नीति पर महात्माजीको खास शिकायत है। मजूर सरकारके पहलेकी ब्रिटिश सरकार की बदनीयती और मौजूदा सरकारमें पर्याप्त साहसके अभावके कारण भारतके दो खण्ड हो गये। वही साहसका अभाव तीसरे खंडको जन्म दे सकता है, इस तरहकी आशंका स्वयं महात्मा जी ने प्रकट की है। ब्रिटिश नीतिकी इस अस्पष्टतासे प्रोत्साहित होकर ही त्रावनकोर और हैदराबाद अपनेको १५ अगस्तके बाद पूर्ण स्वतंत्र घोषित करने जा रहे हैं और यह चेष्टा की जा रही है कि हिन्दुस्तान, पाकिस्तान की तरह उनको भी स्वतंत्र डोमिनियन स्वीकार किया जाये। प्रस्तावित बिलमें यह स्पष्ट उल्लेख होना चाहिये था कि ब्रिटिश सरकार इण्डिया और पाकिस्तानकी दो डोमिनियनों के अतिरिक्त अन्य किसी डोमिनियनका अस्तित्व स्वीकार न करेगी। यद्यपि सुधार कमिश्नर श्री मेननने यह कहा है कि ब्रिटिश सरकार किसी भारतीय रियासतको डोमिनियन स्वीकार करेगी, ऐसी संभावना नहीं है, किन्तु इस बातकी क्या गारण्टी है। कांग्रेस नेताओं और विशेषतया बड़े बड़े विधान विशेषज्ञों द्वारा इस विषयमें खड़ी की गयी आपत्ति को देखते हुए, यदि सचमुच ब्रिटिश सरकार, भारतके दो से अधिक खण्ड नहीं देखना चाहती थी, तो उसे बिलमें अनुकूल पर्याप्त संशोधन करना चाहिये था। कमसे कम पार्लमेण्टमें प्रधान मंत्री द्वारा इस आशयकी स्पष्ट घोषणा की जानी चाहिये थी कि ब्रिटिश सरकार दो डोमिनियनोंसे भिन्न किसी प्रदेश या रियासतकी स्वतन्त्र हस्तीको कदापि स्वीकार न करेगी। इस प्रकारका संशोधन या घोषणा न होते देख रियासतोंके सम्बन्धमें ब्रिटिश नीतिकी अस्पष्टता वस्तुतः सन्देह और आशंका पैदा करती है। बहुत संभव है कि 'सांपभी मरे लाठी न टूटे' वाली कहावत ब्रिटिश सरकार चरितार्थ करना चाहती हो! जैसा कुछ अंचलोंमें संकेत किया गया है रियासतोंके स्वतन्त्र अस्तित्वके सम्बन्धका अन्तिम निर्णय संयुक्त राष्ट्र-संघसे प्राप्त करनेकी चेष्टा की जायगी। इस हालतमें ब्रिटिश सरकार अपनेको तटस्थ रख कर भी, अपने प्रभावसे, देशको दो से अधिक भागोंमें विभाजित करनेकी चाल संयुक्त राष्ट्र संघके अपने समर्थक सदस्योंकी सहायतासे सफलता पूर्वक खेल सकती है। संभवत: इसी बातकी आशंका समझ कर महात्माजीने इस प्रसंगमें कहा है कि "ब्रिटिश सरकारकी परीक्षा है। यदि ऐसा दुर्योग घटा तो इसका कलङ्क अंग्रेजोंके मत्थे मढ़ा जायेगा।" सर्दार बल्लभ भाई पटेल, डा० राजेन्द्र प्रसाद एवं बिधान विशेषज्ञोंने स्पष्ट शब्दोंमें यह कह दिया है कि इस तरहके किसी घृणित प्रयासको बर्दाश्त नहीं किया जायगा और रियासतोंको भारतसे सर्वथा अलग रखनेकी नरेशोंकी मनोवृत्तिको कुचल डालनेके लिये सभी सम्भव उपायों से काम लिया जायेगा।

अबतक अंग्रेज इस बातपर गर्व करते रहे हैं कि उन्होंने हिन्दुस्तानके विभिन्न भागों और प्रदेशोंको एकताकी मालामें गूंथा है। पाकिस्तानकी सृष्टि करके वे अपने हाथों इस एकताको, जो उन्होंने अपनी शासन सुविधाके लिये पैदा की थी, भारतके हितके लिये नहीं, दो खण्ड कर रहे हैं। धोखेबाजी और फरेबसे ब्रिटिश कूटनीतिज्ञोंने, हमारे ही देश वासियोंकी स्वार्थलिप्सा और महत्वाकांक्षाके कारण, देशके विभाजनकी नीतिके समर्थक—मुस्लिम लीगके रूपमें-पैदा किये। किन्तु अंग्रेजोंको स्मरण रखना चाहिये कि भारतीय रियासतोंके सम्बन्धमें उनका यह रवैया बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। आजतक न तो देशी रियासतोंकी प्रजा और न, दो एकको छोड़, किसी नरेशकी ओरसे ही कभी किसी समय यह दावा पेश किया गया है कि एक भारतीय विधानकी छत्रछायामें हमारे वैध अधिकारों और महत्वाकांक्षाओंकी पूर्ति नहीं हो सकती। ऐसी हालतमें

भारतसे ब्रिटिश सत्ताके हटते ही देशीरियासतोंके सार्वभौम रूपेण स्वतन्त्र हो जानेकी घोषणाका तात्पर्य इसके सिवा और क्या हो सकता है कि इस तरह देशी रियासतों को भारतीय संघसे अलग रहनेको उभाड़ा गया है। प्रस्तावित बिलमें भी इसका सुधार नहीं करके ब्रिटिश सरकारने, अन्यथा सुन्दर और सब भांति पूर्ण प्रशंसनीय बिलमें, जो कालिमा बनी रहने दी है वह मिटेगी या नहीं, इसका उत्तर तो महात्मा गांधीके कथनानुसार तभी मिलेगा जब बिल कार्यान्वित किया जायेगा।

प्रथम महिला राजदूत—

रूसके लिये भारतके राजदूतके पद पर श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डितकी नियुक्तिका अन्तर्राष्ट्रीय स्वागत हुआ है। सैनफ्रैंसिस्कोमें भारतके गैर सरकारी प्रतिनिधिकी हैसियतसे श्रीमती पण्डितने जो कूटनीतिक सफलता प्राप्तकी थी उसे देख कर ही उनके भावी उज्वल कूटनीतिक जीवन के सम्बन्धमें तरह-तरहकी भविष्य-वाणियां की जाने लगी थीं। उसके बाद संयुक्त राष्ट्र संघमें दक्षिण अफ्रीकाकी यूनियन सरकारके विरुद्ध भारतका पक्ष उपस्थित करनेके लिये भेजे गये भारतीय प्रतिनिधि मण्डलका नेतृत्व जिस



योग्यता और दक्षताके साथ आपने सुसम्पादित किया वह किसी भी उद्भटसे उद्भट कूटनीतिज्ञके लिये भी गर्व और गौरवकी बात होती। सैनफ्रैंसिस्कोमें अर्जित सफलता, संयुक्त राष्ट्र संघमें संसारके एक बड़े घाघ कूटनीतिज्ञ और राजनेता फील्ड मार्शल स्मटसके मुकाबलेमें प्राप्त विजयने श्रीमती पंडितको अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीतिक अंचलमें बहुत ऊंचे उठा दिया और उसी समय यह समझा जाने लगा था कि अब आपकी गतिविधिका दायरा संयुक्त प्रान्तके एक मिनिस्टर तक ही सीमित न रहेगा। समय आने पर रूस, अमेरिका या ब्रिटेनमेंसे किसी देशमें भारतका राजदौत्य आप करेंगी। यह बात खास-खास लोगोंकी ही नहीं साधारण जनोंकी जबान पर भी उतर आयी थी और आज जब हम रूसके लिये भारतके प्रथम राजदूतके पद पर उनको नियुक्त हुआ देखते हैं तो हमें इस पर जरा भी आश्चर्य नहीं होता। रूस आज यूरोपकी प्रथम कोटिकी शक्तियोंमें सर्वागणी राज है, महाशक्तियोंमें वह हमारा अन्य सबसे सन्निकट पड़ोसी है, अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें रूस आज जो जबर्दस्त पार्ट अदा कर रहा है उसे देखते हुए यह नितान्त आवश्यक था कि किसी प्रखर प्रतिभा सम्पन्न और राजनीतिके चतुर खेलाड़ीको मास्को भेजा जाये। हमारा विश्वास है कि श्रीमती पंडितमें वे सब विशेषताएं पायी जाती हैं जो एक प्रथम कोटिके राजदूतके लिये आवश्यक हैं। यूरोपकी प्रथम शक्तिके साथ भारतका घनिष्ट सम्पर्क कायम करनेके लिये श्रीमती पंडितके व्यक्तित्वको पूर्ण सफलता मिलेगी इसमें हमें जरा भी सन्देह नहीं है। हम उनसे यह भी आशा करते हैं कि वे यूरोपको भी, जो आज मरुभूमि बना हुआ है भारतके और अपने प्रभाव एवं रूसके सहयोगसे उस महाव्याधिसे मुक्त करनेके प्रयासमें बहुत कुछ कर सकेंगी जिसे हम यूरोपीय भाषामें स्वभाग्य निर्णय और शुद्ध सरल हिन्दीमें संघर्षके बीज कहते हैं और जिस व्याधिमें हिन्दुस्तान भी बुरी तरह जकड़ा हुआ है। हमारा विश्वास है कि रूस और भारतके परस्पर सच्चे सहयोगसे इस तरहकी स्थिति उत्पन्न होगी कि यूरोप और भारत दोनों ही इस व्याधिसे मुक्त होंगे। यह काम सहज नहीं है। स्वयं श्रीमती पंडितने उस दिन बम्बईमें प्रीमियर खेर द्वारा दी गयी चाय पार्टीके अवसर पर यह स्वीकार किया है कि उनके ऊपर जो उत्तरदायित्व सौंपा गया है वह कम कठिन नहीं है। पर उनको इस बातकी आशा है कि देश और विदेश स्थित अपने स्वदेशवासियोंकी सहानुभूति और समर्थन मिलनेसे वे इस मुश्किलको आसान बना सकेंगी। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें भारतकी नीति क्या होगी, उक्त पार्टीके अवसर पर दिये गये श्रीमती पंडितके वक्तव्यसे इस पर भी प्रकाश पड़ता है। वे कहती हैं कि "हमारे सामने सवाल यह नहीं है कि संसारकी कौन बड़ी ताकत सही और कौन गलत रास्ते पर है, स्वतंत्र भारत सदा अपना प्रभाव विश्व-शान्तिके पक्षमें काममें लायेगा।' हमें विश्वास है कि जैसा स्वयं श्रीमती पंडितने कहा है, अपने इस मिशनमें वे पूर्ण

सफल होंगी। देशवासियोंके साथ हमारी सदिच्छाएं और सहानुभूतियां उनके साथ हैं।

श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित प्रथम महिला हैं जिनको संसारके दो महान देशोंके बीचमें ऐसे उत्तरदायित्वके पद पर बैठाया गया है, वैसे तो इसके पूर्व श्रीमती चोलनताईने रूसका राजदौत्य स्वीडेनमें किया है किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीतिकी दृष्टिसे उस नियुक्तिका इतना महत्व नहीं है। इस तरह श्रीमती पंडितकी यह नियुक्ति सम्पूर्ण नारी जगतका सम्मान है। बधाई है।

यूरोप बचाओ—

संयुक्त राज्य अमेरिकाके राष्ट्रसचिव मि० जार्ज मार्शल द्वारा प्रस्तावित 'यूरोप बचाओ' योजनाके आधार पर यूरोपके सभी देशोंको एक आर्थिक संगठनके अन्तर्गत लाने के प्रश्न पर ब्रिटेन, रूस और फ्रांसके परराष्ट्र सचिव पेरिसमें गत मास एकत्र हुए थे। रूसने आरम्भ ही में इस योजनाका विरोध किया था और ऐसा समझा जाता था कि पेरिस सम्मेलनमें वह भाग न लेगा किन्तु उसके सम्मेलनमें भाग लेने पर यह आशा उठी थी कि संभवतः एक तरफ अमेरिकन-ऐंगलो-फ्रेञ्च और दूसरी तरफ रूसके बीचमें मार्शल योजनाके आधार पर यूरोपके आर्थिक संगठनको लेकर जो जबर्दस्त मतभेद है उसे मिटानेका कोई रास्ता निकले। मोलोटोव इस सिद्धान्त पर पहुंच चुके हैं कि "यूरोपके राज्योंके बीचमें आर्थिक सहयोगसे" मार्शल, बेविन और बिदोंका अर्थ है 'राष्ट्रोंके सार्वभौम अधिकारोंमें हस्तक्षेप।' परिणाम स्वरूप दोनों दलोंमें इस प्रश्नको लेकर कोई समझौता नहीं हो सका और पेरिस सम्मेलन भंग हो गया। जब द्वितीय विश्व युद्ध चल रहा था तभीसे ब्रिटेन और अमेरिका पश्चिमी यूरोपके राज्योंका एक गुट बनानेकी कोशिश कर रहे थे। युद्धमें रूसकी सफलतासे आतंकित मि० चर्चिल, जो उस समय ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री थे, देख रहे थे कि विजयके फलस्वरूप यूरोपका नेतृत्व आपसे आप रूसके हाथोंमें पहुंच जायेगा और इस तरह सम्पूर्ण यूरोप रूसके प्रभावमें चला जायेगा। रूसकी इस सहज प्रगतिको रोकनेके लिये मि० चर्चिलका उद्वेग सहज स्वाभाविक था किन्तु इंगलैंडके निर्वाचनमें जब चर्चिलकी पार्टी हार गयी और सोशलिस्ट लेबर पार्टी अधिकारमें आयी तो इस बातकी हलकी आशा हुई थी कि अब ब्रिटेनकी वैदेशिक नीति, खास कर जहांतक उससे रूसका सम्बन्ध है, पहलेकी अपेक्षा अधिक उदार और व्यवहारिक होगी। किन्तु सोशलिस्ट पार्टीके अधिकारमें आनेके कुछ दिनोंके भीतर ही यह स्पष्ट हो गया कि मौजूदा सरकार टोरियोंके ही पद-चिन्हों पर चलेगी। यूनानके प्रश्नने इस सम्बन्धमें रहा सहा सन्देह भी दूर कर दिया। परिणाम स्वरूप सोशलिस्ट ब्रिटेन युद्धके बाद रूससे दिन प्रति दिन दूर ही होता चला जा रहा है। अमेरिका, जो पूंजीवादी देश है, प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टके नेतृत्वमें धीरे-धीरे समाजवाद और प्रगतिके मार्ग पर बढ़ रहा था किन्तु उनके देहावसानके बाद उसके नेता फिर उसे पीछेकी ओर ले चलने लगे, क्योंकि उन्होंने देखा कि युद्धसे जर्जर ब्रिटेनसे यूरोपका नेतृत्व हथियाने और इस तरह संसार पर अपना आर्थिक आधिपत्य जमाने का इससे सुन्दर अवसर फिर नहीं आयेगा। ऐसी हालतमें यदि आज साधारण अमेरिकन आश्चर्य चकित होकर देख रहा हो कि यह सब क्या हो रहा है तो आश्चर्य क्या है। इस तरहके अमेरिकनोंका मनोभाव अभी उस दिन न्यूयार्कमें स्वर्गीय प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टके एक अन्तरंग सहयोगी हेनरी मारगेनथू जूनियरने एक वक्तृताके दौरानमें व्यक्त किया है। आप कहते हैं कि "जैसा संसार हम बनाना चाहते थे उससेआज हमारे इर्दगिर्द जो युद्धोत्तर-कालीन ससार बन रहा है भिन्न है। जनसाधारणके सामने जिस संसारके निर्माणका वादा किया गया था यह वह संसार नहीं है। फ्रैंकलिन रूजवेल्टकी मृत्युके बाद उन वादोंका कुछका कुछ हो गया है। या तो वे भुला दिये गये हैं या विकृत कर दिये गये हैं या जानबूझ कर उनको तोड़ा मरोड़ा गया है।" फलतः अमेरिका ब्रिटेनको सब भांति आर्थिक सहायता देने और उसकी आवश्यकताएं पूरी करने लगा। किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं था क्योंकि वह समझता था कि यूरोपके नेतृत्वके लिये उसका प्रवल प्रतिद्वन्द्वी रूस है। रूसका यूरोप परसे प्रभाव हटानेके लिये ही यूरोपके आर्थिक संगठनकी योजना तैयार की गयी है। ब्रिटेन और फ्रांस दोनोंकी आर्थिक स्थिति

इतनी जर्जर और डावांडोल है कि किसी मूल्य पर अमेरिका की सहायता लेनेके सिवा इनके सामने दूसरा रास्ता नहीं है। आर्थिक सहायताकी आवश्यकता रूसको भी है किन्तु वह इतना जर्जर और क्षत-विक्षत नहीं है कि जिस किसी शर्त पर वह कर्जले। एक बात और है। अमेरिका स्वयं मनही मन रूसको आर्थिक सहायता देना भी नहीं चाहता क्योंकि वह जानता है कि ऐसा करना यूरोपमें जानबूझ कर अपने हाथों अपने प्रतिद्वंद्वीको बलशाली बनाना है। इसीलिये 'यूरोप बचाओ' योजनामें ऐसी शर्तें रखी गयी है कि रूस उनको स्वीकार ही न करे और इस तरह संसारकी नजरोंमें उसे बदनाम करने और अपने नेतृत्वमें एक जबर्दस्त पश्चिमी गुट बनानेके इरादेसे ही यह स्वांग रचा गया था। अमेरिकाके समाचार पत्रों और सार्वजनिक वक्तव्योंपर टिप्प णियोंसे यह स्पष्ट आभास मिलता है कि यदि पेरिसमें ब्रिटेन, रूस और फ्रांसके बीचमें समझौतेका कोई रास्ता निकल भी आता तब भी अमेरिकन पार्लमेंगट शायद ही रूस अथवा पूर्वीय यूरोपके किसी देशको ऋण देनेपर सहमत होती।

जार्ज मार्शलने यह समझ बूझ कर ही यूरोपकी आर्थिक सहायताका अपना प्रस्ताव रखा होगा कि स्तालिन अमेरिका द्वारा निर्धारित शर्तों पर कदापि सहायता लेनेको प्रस्तुत न होंगे। यह कल्पना भी तो नहीं की जा सकती कि आज जब कोई संकट नहीं है पूंजीवादी अमेरिका कम्यूनिस्ट रूसको आर्थिक सहायता देगा। अतः जैसा हम ऊपर कह आये हैं मार्शल योजना जानबूझ कर इस तरहकी बनायी गयी है कि रूस आपसे आप उससे वंचित रहे। जानकारोंका कहना है कि अमेरिकन कांग्रेस अपने डालर केमलिन (रूस) के फमें रखनेकी अपेक्षा उनको अतलांतक महासागरमें फेंक देना पसन्द करेगी। इसी बातको डन ईडनने इन शब्द में व्यक्त किया है:—"यह नहीं हो सकता। इसकी कोई गुंजाइश नहीं। है ब्रिटेन, फ्रांस, तमाम यूरोपको कर्ज इस शर्तपर दिया जा सकता है कि यह पैसा कम्यूनिज्मकी बढ़ती हुई लहरको रोकनेके काममें लाया जायेगा। किन्तु रूसको सहायता! यह कांग्रेस एक दमड़ी, एक डब्बा नहीं दे सकती। यहांके राजनीतिक और आर्थिक मनोभावका यह मूल मन्त्र है।"

घटनाक्रमके इस चढ़ाव उतारको समझनेवाल नीतिके कनटरेसे परिचित कोई भी व्यक्ति इससे सहजही इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि संसार आज पूर्वापेक्षा अधिक तीसरे युद्धके निकट पहुंच गया है।

यह इतिहास कहां छिपायेंगे?—

इण्डिया इण्डिपेण्डस बिल, जिसके अनुसार १५ अगस्त से दो स्वतंत्र डोमिनियन-इण्डिया और पाकिस्तान बनेंगे ब्रिटिश पार्लमेण्टकी लोक सभामें बिना विरोधके पास हुआ। यह इस बातका प्रमाण है कि पार्लमेण्टके तीनों प्रमुख दलों —लेबर, कंजरवेटिव और लिबरल—की सम्मतिसे भारतको खण्ड स्वतंत्रता दी जा रही है। परिस्थितियोंसे वाध्य होकर जब मनुष्यको इच्छा विरुद्ध कुछ करना पड़ता है तो बुद्धिमान व्यक्ति यह प्रकट नहीं होने देता कि परिस्थितियोंसे झुक कर वह ऐसा कर रहा है। ब्रिटेनकी जिस कंजरवेटिव पार्टीने भारतकी स्वतन्त्रताका बारम्बार विरोध किया और उसके मार्गमें वह इस तरहके रोड़ोंकी सृष्टि करती रही कि आज स्वतन्त्र होनेके समय उसकी आवश्यकता नहीं रखी जा सकी एवं जिस पार्टीके नेता एवं युद्धकालीन प्रधान मन्त्री मि० चर्चिलने स्पष्ट शब्दोंमें कहा था कि "ब्रिटिश साम्राज्यका अन्त देखनेको मैं सम्राटका प्रथम मिनिस्टर नहीं बना" आज उसी पार्टीके प्रधान वक्ता मि० रिचार्ड बटलरको लोकसभामें बिल पर विचारके दौरानमें यह कहते सुना जाता है कि इस कार्य्य द्वारा ब्रिटेन यह दिखा रहा है कि स्वराज्यका सिद्धान्त किस तरह व्यवहारमें लाया जाता है। किन्तु बात ठीक भी है। एक बापके दो बेटोंमें से एकको दूसरे बापका बेटा बना देनेवाली कलामें अंगरेजों कों कौन मात दे सकता है। इस तरह परिस्थितियोंसे झुक जाने पर भी जहांतक सम्भव था अंगरेजोंने स्वतंत्रताके अमृतमें विष मिला देनेमें कोई बात उठा नहीं रखी। देशको हिन्दू और मुस्लिमको दो खण्डोंमें विभक्त कर ही दिया, नरेशोंको भी अपना झंडा अलग गाड़नेको उभाड़ दिया गया है। न्याय और उचित सापेक्ष शक हैं। इंडिया बिलके अन्तिम वाचनके समय सर स्टेफोर्ड क्रिप्सने कहा है कि "यह बिल हमारी सचाईका प्रमाण है। हमने किसी बाहरी

दबावसे नहीं बल्कि यह समझ कर कि यही न्याय और उचित है यह रास्ता पकड़ा है।" हम उनके इस वक्तव्यको सर्वथा एकांगीन समझते हैं। एक नकली दावेदार ला खड़ा कर मारकाटकी स्थिति पैदा करनेके बाद बंटबारेको न्याय और उचित बताया जाता है। हम इस तरहके ब्रिटिश इन्साफके एक नहीं अनेक दृष्टान्त उपस्थित कर सकते हैं इसलिये उनके इस वक्तव्यसे हमें जरा भी आश्चर्य नहीं हुआ कि "यह सच है कि हम एक संयुक्त सरकार चाहते थे किन्तु वह संभव नहीं हुआ। पर इसके लिये दोषी हममेंसे कोई नहीं है, न भारतीय ही दोषी हैं न अंगरेज ही।" यह खूब कही। पर विचारे और क्या कहें। अपने मुंहसे अपनेको दोषी बिरला ही ठहराता है, और जिसमें जरा भी विवेक होता है वह दूसरेको निर्दोष जानते हुए उसे कैसे दोषी कहें। सर स्टेफोर्ड क्रिप्स भले ही विभाजनके लिये किसीको दोषी न ठहरायें और हम यह मान भी सकते हैं कि कमसे कम उनकी पार्टी इसके लिये उतना जिम्मेदार नहीं। पर इतिहास सर स्टेफोर्डका समर्थन नहीं कर सकता वह तो दावेके साथ सप्रमाण कहेगा कि भारतका विभाजन अंगरेजों की सृष्टि है जिसको ढंगके साथ संकलित योजनाके आधार पर जन्म दिया गया है। Divide et Impera फूट डाल कर शासन करनेके सिद्धान्त पर ब्रिटिश राज नेता अबतक अमल करते रहे हैं। १८८१ से यह सिद्धान्त काममें लाया जा रहा है जब एक ब्रिटिश अफसरने "कर्नेटिकस" के नाम से मई १८८१ के एशियाटिक रिव्यू' नामक पत्रमें लिखा था "भारतीय शासन व्यवस्थाके मामलेमें वह राजनीतिक, सैनिक और नागरिक कुछ भी हो हमारा आदर्श सिद्धान्त Divide et Impera होना चाहिये। बम्बईके गवर्नर लार्ड एलफिन्स्टनने १८५० में इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन किया था। पूर्व बंगालके लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर बैम्पफील्ड फुलरने एक सार्वजनिक भाषणमें कहा था कि ब्रिटिश सरकारके दो बीबियां हैं—एक हिन्दू दूसरी मुसलमान पर सरकारकी प्रिय पात्री मुस्लिम बीबी है। आगा खांके नेतृत्वमें १९०६ में संगठित शिमला डेपुटेशनने कैसे पृथक निर्वाचनकी मांग की और वह कैसे उसे दिया गया, डेपुटेशन की मांग लिखनेवाला कौन था? यह सब 'लार्ड मारलेके संस्करण' और 'लेडी मिण्टोकी डायरी' में अंकित है। इस इतिहासको सर स्टेफोर्ड क्रिप्स कहां छिपायेंगे?

नरेश नहीं कांटे—

ब्रिटिश राजनीतिज्ञ जाते-जाते जहांतक संभव होगा हमारी स्वतन्त्रताके मार्गमें कांटे बिछाते जानेका प्रयत्न करते रहेंगे, यह बात ब्रिटिश पार्लमेण्टमें इण्डिया इण्डिपेण्डेंस बिल पर विचारके दौरानमें देशी रियासतोंके सम्बन्धमें प्रधान मन्त्री मि० एटली एवं उनसे भी अधिक एटर्नी जेनरल सर हार्टले शा क्रास द्वारा व्यक्त किये गये विचारोंसे बिलकुल स्पष्ट है। कितने ताजुबकी बात है कि मुस्लिम लीग इस मामलेमें भी ब्रिटिश सरकारके ही कदम-बकदम चल रही है। १२ सौ वर्ष पहले लोकतन्त्रका पाठ पढ़नेवाले मि० जिन्नाकी जीभ देशी रियासतोंके संबंधमें यह कहते जरा भी नहीं लड़खड़ाती कि रियासतोंको स्वतंत्रता है कि वे अपनेको स्वतंत्र घोषित करें या दोमें से जिस विधान परिषदमें चाहें शामिल हों। हर्षकी बात है कि कुछको छोड़ कर शेष नरेश देशकी स्वतंत्रताके शत्रुओंके चक्करमें अपनेको नहीं डाल रहे।

सर्दार पटेलके नेतृत्वमें भारत सरकारके नव संगठित स्टेट्स डिपार्टमेण्ट एवं महाराजा पटियालाके नेतृत्वमें राज्य प्रतिनिधियोंके बीचमें हुए वार्तालापके फलस्वरूप रियासतों और भारत सरकारके बीचमें घनिष्ट सम्पर्क कायम करनेका निर्णय हुआ है। इसके फलस्वरूप भावी हिन्दुस्तान के सदस्य राज्योंका वही स्तर हो जायेगा जो प्रान्तोंका है। सर्दार पटेलने यह बात स्पष्ट कर दी है कि कांग्रेस राज्योंके घरेलू मामलेमें किसी तरहका हस्तक्षेप नहीं करना चाहती। रक्षा, वैदेशिक मामलात और यातायातके विषयोंको छोड़ कर अन्य सभी मामलोंमें रियासतोंकी स्वतंत्रताका सम्मान किया जायेगा। इस आश्वासनके बाद प्रायः ४०० से ऊपर रियासतें और ९३ में ६० से अधिक रियासती प्रतिनिधि भारतीय विधान परिषदमें भाग ले रहे हैं। यह देख कर भी ब्रिटिश सरकारके सोशलिस्ट ऐटर्नी जेनरलने हर तरहसे देशी नरेशोंको ऐसी स्थिति उत्पन्न करनेको भड़काया है कि इस महत्वपूर्ण प्रश्नका शान्तिप्रद समाधान न हो सके। यह बात ठीक है कि प्रधान मन्त्री मि० एटलीने नरेशोंको नसी-

हत दी है कि ब्रिटिश कामनवेल्थके अन्तर्गत दो डोमिनियनों में से किसी एकमें अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण करेंगे। यदि कोई भारतीय रियासत पृथक और स्वतन्त्र रहनेका फैसला करती है तो मैं उस राज्यके शासकसे यह कहना चाहता हूँ कि अभी समय लेकर इस पर फिर विचार कीजिये। और मैं आशा करता हूँ कि भारतीय संघसे स्थायी रूपसे रहने का अमिट निर्णय न पृथक किया जायेगा। "यह भी ठीक है कि सर हार्टलेने यह बात स्पष्ट कर दी है कि १५ अगस्तको जब नियमानुसार दो डोमिनियन अस्तित्वमें आ जायंगे। ब्रिटिश सरकार किसी रियासतके पृथक अन्तर्राष्ट्रीय अस्तित्वको स्वीकार करनेको तैयार नहीं है, यह भी ठीक है कि मौजूदा ब्रिटिश सरकारने इस सम्बन्धमें जो रुख पकड़ा है वह टोरियोंकी नीतिसे भिन्न है किन्तु पार्लमेण्टमें बहसके दौरानमें प्रधान मन्त्री एवं एटर्नी जेनरल दोनोंको ही बार-बार 'उपयुक्त समय' और ब्रिटिश कामनवेल्थके अन्तर्गत" उल्लेख करना क्या इस बातका सकेत नहीं है कि ब्रिटिश सरकार देशी नरेशोंको भारतीय संघके अन्तर्गत रखनेमें अपना प्रभाव काममें लानेकी कीमत चाहती हैं और यदि उसे वह कीमत न दी गयी तो देशी नरेशोंको संघसे पृथक और स्वतन्त्र रहनेको उभाड़नेमें कोई बात बाकी न रखी जायेगी। एटर्नी जेनरलने यह बात बिलकुल खुलासा कर दी है कि निस्सन्देह संघ-प्रवेशके सम्बन्धमें रियासतकी ओर से यह शर्त रखी जायेगी कि इण्डियन डोमिनियन या पाकिस्तात डोमिनियनके – जिस किसीका प्रसंग हो— ब्रिटिश कामनवेल्थके अन्तर्गत रहने पर ही रियासत संघमें शामिल होगी।" एटर्नी जेनरलके इस वक्तव्यसे साफ-साफ समझा जा सकता है कि जब उसी प्रसंगमें आगे चल कर वे कहते हैं कि "२५ जुलाईसे उचित शर्तों पर और उचित ढंगसे रियासतोंके संघोंमें शामिल होनेके सम्बन्धमें वार्तालाप आरम्भ होंगे" तो उनका 'उचित शर्तों' और 'उचित ढंग' से क्या तात्पर्य है। जैसा हम ऊपर कह आये हैं सर्दार पटेल पहले ही साफ-साफ आश्वासन दे चुके हैं कि संघ प्रवेश पर रियासतको रक्षा, विदेश और यातायात बस यही तीन विषय केन्द्रके जिम्मे समर्पण करना पड़ेगा अन्य सब मामलोंमें रियासतोंको पूर्ण स्वतन्त्रता है तब हमारी समझमें नहीं आया कि एटर्नी जेनरल सर हार्टलीका ब्रिटिश कामनवेल्थके अन्तर्गत रहनेका संघसे आश्वासन प्राप्त करने के सिवा अन्य किस 'उचित शर्त' या 'उचित ढंग' की चर्चा करते हैं। हर्षकी बात है कि नरेश धीरे-धीरे सीधे रास्ते पर आ रहे हैं। अभी उस दिन बड़ोदाके गायकवाड़ने कहा है कि "मैं स्वाभाविक राष्ट्रीयता और सरकारके लोकतंत्रीय आदर्शों पर विश्वास करता हूँ और सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्रकी स्वतन्त्रता और समृद्धिके लिये कोई भी निजी बलिदान कर सकता हूँ। अंगरेज भारतसे जा रहे हैं, हम परतन्त्रता से स्वतंत्रतामें आ रहे हैं। यह महान सफलता हमारे महात्मा गांधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू सर्दार वल्लभ भाई पटेल जैसे सम्माननीय नेताओंकी तपस्या और बलिदान का परिणाम है।" अन्य देशी नरेश भी इस तथ्यको समझें और समझ कर वह रास्ता पकड़ें जिसमें उनका अस्तित्व बना रह जाये।

संयुक्त राष्ट्रसंघकी नपुंसकता—

प्रश्न यह होता है कि संयुक्त राष्ट्रसंघका अस्तित्व बना रहते हुए भी वह घोषित उद्देश्यों और लक्ष्यकी पूर्तिमें नपुंसक क्यों सिद्ध हो रहा है? इसका तरपटक जबाव यह है कि संघके संस्थापक सदस्योंकी, खासकर अमेरिका, रूस और ब्रिटेनकी, स्वार्थ नीतिके कारण संघको स्वतन्त्र रूपसे काम करनेका अवसर ही नहीं दिया गया। इस तथ्यसे इनकार नहीं किया जा सकता कि संयुक्त राष्ट्र संघ जिस भित्तिपर खड़ा किया गया था उक्त तीन महानोंकी निजी कारगुजारियोंके फलस्वरूप वह भित्ति खोखली हो गयी है और संघकी इमारत इस समय बिना किसी आधारके खड़ी है जो किसी एक बड़ेका धक्का लगते ही किसी दिन अर्रा कर धराशायी हो जा सकती है। संघकी स्थापना पांच बड़ोंकी पारस्परिक एकताकी भित्तिपर की गयी थी। इस आधारपर खड़े होकर विश्व सुरक्षाके लिये शान्ति और सन्धियोंकी व्यवस्था और योजनाकी परिकल्पना की गयी थी। सैनफ्रांसिस्कोमें आरम्भमें ही इस मूलभूत सिद्धान्तको स्वीकार किया गया था कि पांच महानोंकी एकता और समझौतेके अभावमें संयुक्त राष्ट्रसंघकी असफलता अवश्यम्भावी रूपसे अनिवार्य है। वही

हो रहा है। ये महान आपसमें किसी समझौतेपर पहुंच ही नहीं पाते। अतः संयुक्त राष्ट्र संघकी असफलताके लिये यही जिम्मेदार हैं।

अब भी समय है। यदि अमेरिका, रूस, ब्रिटेन और फ्रांस नहीं चाहते कि संसार पुनः विध्वसकारी युद्धकी ज्वालामें लपटा जाये तो संघके संस्थापक सदस्योंको अपना रवैया बदलना चाहिये। संघ तबतक काम नहीं कर सकता जबतक संस्थापक सदस्य सैनफ्रांसिस्कोमें गृहीत सिद्धान्त और उत्तरदायित्वके अनुसार चलनेको तैयार न होंगे। कोई एक राष्ट्र, वह कितना ही महान, साधन-सम्पन्न और शक्तिशाली क्यों न हो जबतक अकेले अपने ढरेंपर संसारको चलानेका प्रयत्न करता रहेगा तबतक संयुक्त राष्ट्र संघका अस्तित्व व्यर्थ है। प्रेसिडेंट ट्रूमैन और जार्ज मार्शलकी यूरोप-सहायक नीति यही चाहती है। ये नेता संसारको अपने ढरेंमें ले चलना चाहते हैं। यह संभव नहीं हो सकता। इसका परिणाम तो तीसरे युद्धको अनिवार्य बनायेगा।

जाति-द्वेषी स्मट्स—

इस युगमें जाति विद्वेषका प्रचार करके अपना अभीष्ट साधन करनेको अग्रसर होने वालोंमें हिटलर, स्मट्स और जिन्ना तीन व्यक्ति प्रमुख हुए हैं। हिटलरका उत्थान और पतन लोगोंकी आखोंके सामने हैं। जिन्नाके उत्थानका आरम्भ हो रहा है, भविष्यके सन्बन्धमें अभी कुछ कहना असामयिक होगा। फील्ड मार्शल स्मट्स सम्पूर्ण दक्षिण अफ्रीका और पश्चिमी अफ्रीका यूरोपीय गौरांग जातियोंके लिये सुरक्षित रखना चाहते हैं, एवं वहांके आदिमवासी अफ्रीकनों एवं प्रवासी एशियायियोंको गोरी जातियोंके उत्कर्ष और समुन्नतिकी सीढ़ी बना कर रखना चाहते हैं। संसारके अधिक न्याय प्रिय एवं प्रगतिशील राष्ट्र उनकी इस महत्वाकांक्षा पर लगाम कसना चाहते हैं और इसीका परिणाम है कि गत वर्ष भारतीय प्रतिनिधि मण्डलके प्रयास एवं प्रेरणासे ६ दिसम्बरको संयुक्त राष्ट्र संघकी परिषदने एक प्रस्ताव पास कर दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारकी भारतीय नीतिकी निन्दा की एवं यह आदेश दिया कि वह भारतीयोंके प्रति अपनी नीति और रुखको बदले। किन्तु अभी उस दिन मरिट्ज़-बर्गमें फील्ड मार्शलने जो वक्तृता दी है उससे यह प्रतीत होता है कि संयुक्त राष्ट्र संघकी उनको जरा भी परवाह नहीं है और वे अपने दुराग्रह पर अड़े रहेंगे। अपनी इस नीतिके समर्थनमें उन्होंने भारतके विभाजनको उदाहरणार्थ उपस्थित करते हुए कहा है कि अगर हिन्दुओं और मुसलमानोंके रहने के लिये हिन्दुस्तानका बटवारा किया जा सकता है तो दक्षिण अफ्रीकामें यूरोपियननों और एशियायियोंके शांति पूर्वक अलग अलग रहनेकी व्यवस्थाका विरोध क्यों किया जा रहा है। डा० राममोहर लोहियाने इसके जवाबमें ठीक ही कहा है कि "अच्छी बात है यूरोपियनों और एशियायियोंके अनुपातके अधार पर दक्षिण अफ्रीकाका विभाजन कर डाला जाये तब हम देखेंगे कि उसका कितना हिस्सा स्मट्सके पल्ले पड़ता है। संभवतः वर्तमान दक्षिण अफ्रीकाके एक तिहाई भाग पर ही उनको सन्तोष करना पड़ेगा। भारतके विभाजनके सम्बन्धमें फील्ड मार्शलने जो कुछ कहा है वह दक्षिण अफ्रीकाके प्रसंगमें लागू नहीं होता। यह बात नहीं है कि स्मट्स इस तथ्यसे परिचित नहीं है कि हिन्दुस्तान और पकिस्तानके रूपमें भारतके विभाजनके बाद भी हिन्दू और मुसलमान साथ-साथ अगल-बगल हिन्दुस्तान और पाकिस्तानमें रहेंगे। मुसलमान भारतीय संघमें वही नागरिक अधिकार उपयोग करेंगे जो हिन्दू करेंगे। दक्षिण अफ्रीकाकी यूनियन सरकार द्वारा बनाये गये निन्दनीय कानूनके फलस्वरूप जिस तरह कहां एशियायियोंके लिये यूरोपियनोंसे दूर सर्वथा पृथक निवासकी व्यवस्था की जा रही है यहां दो अलग राज्य हो जाने पर भी वैसा न होगा। हिन्दू गांव, मुस्लिम गांव न होंगे। किन्तु तथ्य उसके लिये आवश्यक है जो सत्य और न्यायका ध्यान रखता है। फील्ड मार्शलका दुराग्रह आज चरम सीमापर पहुंच चुका है। उनके 'अहम' ने उनकी विवेककी आंखोंपर पर्दा डाल दिया है इसीसे आज वे दम्भपूर्वक, सम्पूर्ण संयुक्त राष्ट्र संघकी उपेक्षा करके यह कहते हैं कि किया सो किया। हमारे कियेको कोई ताकत बदल नहीं सकती।" इस दम्भका उत्तर हम आज न देकर उस समयकी प्रतीक्षा करते हैं जब हिटलरकी तरह फील्ड मार्शलका अविवेक उनको धराशायी करेगा या उनका अहम काबूमें लाया जायेगा और वे समयकी गति अनुसार चलनेमें बुद्धिमत्ता समझेंगे।

देशी नरेशोंकी स्वतंत्रता और सार्वभौम सत्ता

श्री कुमारयोगी एम० ए०

जिन परिस्थितियोंके भीतर भारतकी देशी रियासतों का प्रादुर्भाव हुआ उनपर दृष्टिपात करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि कुछ रियासतोंने स्वतंत्र हो जानेका जो दावा पेश किया है ऐतिहासिक क्रममें उसका कोई आधार नहीं है। ब्रिटिश सत्ताका पलायन-मात्र ही एकदम देशी रियासतोंको वह दर्जा नहीं दे सकता जिसकी बुनियाद इतिहासमें कहीं भी नहीं है ! सत्ताके सार्वभौमत्वका आज जो रूप है वह किसी संधि अथवा पार्लमेंट कानूनसे प्रसूत होनेके बजाय भारतीय राजनीतिकी उन परिस्थितियोंसे विकसित हुआ है जिनका सीधा सम्बन्ध भारत और ब्रिटिश सत्तासे है—उस ब्रिटिश सत्तासे जो भारतमें रह कर भारतका शासन-प्रबंध करती रही है। सार्वभौम सत्ताके अधिकारों और दायित्वोंको भी भारत सरकारने ही कार्यान्वित किया है—और केवल भारतके ही शासन-प्रबन्धमें उन्हें मूर्त होनेका अवसर मिला है। भारत सरकारसे परे सार्वभौमत्वकी अधिकारपरिधि अन्यत्र कहीं नहीं रही। इसलिये निरपेक्षतया भारत सरकारमें ही सार्वभौम सत्ताका निवास है—देशी रियासतों पर सार्वभौमत्वकी जो संरक्षणात्मक छाया रही है उसका स्रोत अन्यत्र न होकर एकमात्र भारत सरकार ही रही है—इतिहासका क्रम इसी सत्यको प्रमाणित करता है। ऐसी परिस्थितिमें जब ब्रिटिश सत्ताका भारतसे अन्त होता है तो वसीयतमें जो भी अधिकार प्रस्तुत सरकारको मिल रहे हैं, वे उनके साथ-साथ सार्वभौम सत्ताका स्थायित्व भी प्रकृत क्रमसे मिलना चाहिये। उसे अलग करना कानूनी दृष्टिसे ही अस्वाभाविक नहीं है, वरन् ऐतिहासिक क्रमके भी प्रतिकूल पड़ता है—राजनीतिक दृष्टि-बिन्दुसे तो उसका मिलना सबसे बड़ी राष्ट्रीय आवश्यकता है।

सन् १८५८ से गवर्नर-जनरलके बजाय वायसरायकी भारतमें नियुक्ति होने लगी। इससे पूर्व बोर्ड आफ कंट्रोलका सभापति ही गवर्नर-जनरल नियुक्त करता था और पार्लमेंट की इच्छाके अनुसार उन्हें शासन-सम्बन्धी आदेश देता था। इस प्रकार वायसरायके अस्तित्वके पूर्व ही सार्वभौम सत्ताका प्रादुर्भाव हो चुका था। ईस्ट इंडिया कम्पनीके स्टाक १८०० व्यक्तियोंके पास थे। ये सब व्यक्ति कम्पनीके विधानानुसार बोर्डके डायरेक्टर चुनते थे जिनकी संख्या २४ होती थी। बोर्ड आफ कंट्रोलका सभापति गवर्नर-जनरल के नाम जो भी आदेश भेजता था उसकी स्वीकृति इन्हीं २४ व्यक्तियोंसे लेनी होती थी। किन्तु सभी कार्योंमें पार्लमेंटकी मंजूरी आवश्यक होती थी। यदि इन चौबीस व्यक्तियोंके निर्णयमें पार्लमेंटने असंतोष प्रकट किया तो उसमें पार्लमेंटकी इच्छाओंके अनुकूल परिवर्तन करना पड़ता था। इससे स्पष्ट है कि भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीने जो भी साम्राज्य बनाया उसमें पार्लमेंटकी ही महत्वाकांक्षा मूर्त हुई थी। भारतमें जितने प्रांत बनाये गये, जो नीति बरती गई और जो-जो संधियां की गईं उनमें पार्लमेंटसे ही प्रेरणायें मिलती थीं। स्पष्ट है कि देशी रियासतोंके निर्माणमें भी पार्लमेंटका हाथ है। ईस्ट इंडिया कम्पनीके बाद भी पार्लमेंटने उनको किसी न किसी रूपमें जीवित रक्खा है। आज भारतमें जो राजनीतिक परिवर्तन हो रहा है और सत्ता हिन्दुस्तानी हाथोंमें स्थानापन्न की जा रही है उसमें पार्लमेंट की मंजूरी ली जा रही है। परिस्थितियोंमें जब कि स्वयं पार्लमेंट ही सारी सत्ता और जिम्मेदारी भारतकी एक स्वतन्त्र सत्ताके हाथोंमें सौंप रही है तो वह सिर्फ नरेशोंको प्रसन्न रखनेके लिये उन अधिकारों और दायित्वोंको विच्छिन्न करके नहीं रख सकती जो उसके भारतीय शासन-कालमें शासन-सम्बन्धी सम्पर्कके कारण अविच्छिन्न रूपसे विकसित हो गये हैं; शेष भारतके शासन-प्रबन्धके साथ ही जिन अधिकारों और जिम्मेदारियोंके ढांचे बने हैं उन्हें आज नैतिक दृष्टिसे तो क्या कानूनी दृष्टिसे भी विच्छिन्न करके भावी भारत सरकारके अधिकार क्षेत्रसे परे नहीं बनाया जा सकता। आंतरिक या अन्तर्राष्ट्रीय किसी कानूनसे ऐसे एकान्त सम्बन्ध-विच्छेदकी प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती। अतः ब्रिटिश सत्ताके पलायनके बाद भारतकी देशी रियासतें अपने आप स्वतन्त्र हो सकती हैं—यह सिद्धान्त निराधार

है। जो रियासतें न तो अंग्रेजी शासनसे पूर्व कभी स्वतन्त्र रहीं और न ब्रिटिश शासनमें ही रहीं—अपने अस्तित्वमें उन्हें कभी स्वतंत्रताने स्पर्श भी नहीं किया—वे इस प्रकार स्वतंत्र होनेका दावा करें इसमें नरेशोंकी मनमानी ही नहीं वरन् षडयन्त्रमें पराये हाथोंका भी आभास है। ऐतिहासिक साक्ष्यके साथ कोई भी कानून इस दावेको स्वीकार नहीं करता। राजनीतिक और नैतिक दृष्टिसे भी यह दावा अस्वीकार्य है क्योंकि इसका लक्ष्य सारे भारतमें द्रोह, अराजकता और राजनीतिक षडयन्त्र फैलाना है। किसी भी राष्ट्रके लिये ऐसी परिस्थिति घातक है। आजकी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियोंमें तो यह और भी भयप्रद है।

शाही आवश्यकता

वायसराय और गवर्नर-जनरलको अलग-अलग सत्ताओंका सिद्धान्त तो सर लेजली स्काटकी सिफारिशसे और शाही आवश्यकताके कारण सन् १९३५ में साविष्कृत किया गया—इस समयकी राजनीतिक परिस्थितियोंने देशी नरेशोंको यह अनुभूति दे दी थी कि निकट भविष्यमें ही सत्ता प्रजा—भारतीय जनताके हाथोंमें सौंप दी जायेगी। इस भावीसे ही बचनेके लिये नरेशोंने अपने स्वामियोंके निर्देशनमें इस परिवर्तनकी मांग की थी। भारतीय नरेशोंका यह दावा ऐतिहासिक साक्ष्यों और स्वयं ब्रिटिश सरकारकी रियासतोंसे प्रासंगिक नीतिके साथ मेल नहीं खाता कि उनकी संधियां ताजके साथ हुई थीं—भारत सरकारसे उनका कोई सरोकार नहीं था। इतिहास तो यही प्रमाण देता है कि ये जितनी भी सन्धियां हुई हैं वे राजकी परोक्ष सत्ताके साथ नहीं हुईं किन्तु उस सत्ताके साथ हुई जो गवर्नर-जनरलके अधिकारोंके रूपमें भारतके शासन-प्रबन्धमें व्यक्त हो रही थीं।

देशकी सुरक्षाको समस्या

ब्रिटेनका सम्राट् जिस सार्वभौम सत्ताको भारतीय रियासतोंके प्रसङ्गमें व्यक्त करता है वह अखिल भारतकी परिस्थितियोंसे अस्पर्श्य रहकर विकसित नहीं हुई है—ताजका उसपर कोई एकांत अधिकार नहीं है। क्योंकि ताजको जो यह अधिकार मिला है उसकी उत्पत्तिका स्रोत भारत-सरकारमें ताजका स्वार्थ है। सारे भारतके स्वामीके रूपमें ही, न कि अपनी स्वच्छन्द और स्वाधीन हैसियतसे ब्रिटेनका सम्राट् सार्वभौम सत्ताके दायित्वोंको देशी रियासतोंमें कार्यान्वित करता आया है। जो ऐसी धारणाएं बनाये हुए हैं वे इतिहासकी अवहेलना करते हैं। चाहे ब्रिटिश गवनमेंट इस बातको नहीं माने किन्तु इतिहास, कानून, नैतिकता और राष्ट्रीय राजनीतिकी दृष्टिसे सार्वभौम सत्ताकी अधिकारिणी भावी भारत सरकार ही है। अभीतक ब्रिटिश सत्ताकी सार्वभौम शक्ति भारतके देशी राज्योंके शासन और अस्तित्वमें व्यक्त हो रही थी अब भारतकी नवीन सरकारके द्वारा वह कार्यान्वित होगी। देशी रियासतें उसके तंतुओंसे तभी बच सकती हैं जबकि वे विधान-परिषद्में विधान-निर्माणमें भाग लें और एक सुसंगठित राष्ट्रीय सरकारके निर्माणमें सहयोग दें।

भारतकी राष्ट्रीय राजनीतिको दृष्टिसे स्वतन्त्र देशी रियासतोंका होना भविष्यके लिये भयप्रद है। सर सन्मुखम चेट्टी, भूतपूर्व कोचीन-दीवानने इसी खतरेकी ओर निर्देश करते हुए लिखा है :—

"भारतकी एकता और स्वाभिमानके लिये असली खतरा इन रियासतोंका दृष्टिकोण है। यदि काफी तादादमें भारतीय रियासतें हैदराबाद और त्रावनकोरका अनुकरण करें तो इसका अभिप्राय बाहरी और भीतरी शान्तिके सभी प्रासंगिक खतरोंके साथ भारतका खण्ड-खण्ड हो जाना है हां, इन रियासतोंके दावे कानूनी या यथार्थवादी किसी भी कसौटीपर खरे नहीं उतरते।"

इतिहाससे भी इस आशङ्काकी पुष्टि होती है। ब्रिटिश गवर्नमेंटने भी देशी रियासतोंके बारेमें यही दृष्टिकोण अभी तक कायम रक्खा है। जिस रियासतने किंचित्मात्रकी स्वातंत्र्य-प्रेमके आसार प्रकट किये कि उसको उसका दंड भोगना पड़ा। कड़े प्रतिबन्धोंके अलावा राज्य-च्युत तककी सजायें इसी अपराधमें देशी नरेशोंको भोगनी पड़ीं—लेकिन आज देशकी एकता और नवीन भारत सरकारकी मैत्री और सहयोगकी मांग कुछ रियासतोंको बुरी ज्ञात हो रही है।

त्रावनकोरके दीवान सर सी. पी. रामस्वामी अय्यरने स्वतन्त्रताको घोषणा करके अपने विरोधियोंके साथ अपने मित्रोंको भी विस्मयमें डाल दिया है। दीवान साहब त्रावनकोरको स्वतन्त्र देखनेके लिये तुले हुए हैं और इसीलिये भीषण दमनकी तैयारियां की जा चुकी हैं और दीवान एवं उनकी छत्रछायामें बरसोंसे पलनेवाली ब्यूरोक्रेसी अपनी नमक हलालीका परिचय देनेवाली है। साथ अंग्रेजोंकी विभाजन नीतिका भी आश्रय लिया जा रहा है। सर सी. पी. रामस्वामी अय्यरने हाल ही में जो वक्तव्य दिया है उसमें एक नयी खोजकी ओर उन्होंने संकेत किया है। उनका सबसे नवीन आविष्कार यह है कि क्रिश्चियन और मुसलमान भारतकी यूनियनमें शामिल होना नहीं चाहते। नाजी लोग जैसे क्विजलिंग (देशद्रोही) पैदा कर लेते थे, उसी प्रणालीका आश्रय त्रावनकोरके निरंकुश दीवानने लिया है। प्रमाण यह है कि 'क्रिश्चियन और मुसलमान भाइयों' (सर सी. पी. का नवीन नारा) ने अपने मनका उद्वेग त्रावनकोरमें न कहकर ऊटीमें कहा। क्या सर सी. पी. को वे त्रावनकोरमें नहीं मिल सकते थे और वहीं अपनी शिकायतें नहीं सुना सकते थे? इस आशयका समाचार पढ़नेके बाद त्रावनकोरके क्रिश्चियन नेताने अपनी सम्मति इस प्रकार दी :—

"त्रावनकोरके ईसाईयोंका यदि कोई प्रथम श्रेणीका शत्रु है तो वह सर सी. पी. रामस्वामी है। त्रावनकोरसे उनका बहिष्कार चाहनेवाली जातिमें ईसाई ही सबसे आगे हैं और इस ध्येयकी पूर्तिके लिये वे इस तरहका बलिदान देनेको तैयार हैं।"

क्रिश्चियनोंके प्रति इस अचानक-जाग्रत प्रेमका रहस्य तो वे लोग भलीभांति समझते हैं जिन्होंने सर सी. पी. के शासन सम्बन्धी पिछले रिकार्डको देखा है। अभी कुछ ही महीने पूर्व क्रिश्चियनोंके साथ ममत्व दिखलानेवाले त्रावनकोर-दीवानने अपना यह संकल्प प्रकट किया था कि वह इस बातका पूरा प्रयत्न करेगा कि त्रावनकोर इन विद्रोही क्रिश्चियनोंसे मुक्त हो जाये। सर सी. पी. की यह केवल कोरी धमकी ही नहीं थी, वरन् उन्होंने इस नीतिको मूर्त रूप भी दिया है और त्रावनकोरके क्रिश्चियन इससे भलीभांति परिचित हैं। यही कारण है कि आज यदि दीवानके पथकी कोई सबसे बड़ी बाधा है तो, वह वहांकी ईसाई जनता है। अतः क्रिश्चियन 'देशद्रोही' (क्विजलिंग) के मुखसे 'हिन्दू-प्राधान्य' विधान-परिषद्का भ्रम व्यक्त करवाना कोई ठोस महत्व नहीं रखता।

राज्यमें भीषण दमन

त्रावनकोरके दीवान जो आजादी मांग रहे हैं वह उनके अनियन्त्रित अहंकार और दम्भका ही परिणाम है। उनकी स्वातन्त्र्य महत्वाकांक्षामें जनताके शोषनकी लिप्सा स्पष्ट है। आज वहां नागरिक स्वातन्त्र्यका पूर्ण अभाव है। व्यक्तिको स्वतन्त्र विचारकी रंचमात्र भी स्वतन्त्रता नहीं है। राजनीतिक कार्यकर्ताओंके लिये तो त्रावनकोर नाजियोंका जर्मनी है। सन्देह और बनावटी गिरफ्तारी वहांकी पुलिसके दैनिक कार्य हैं। राजनीतिक कार्यकर्ताओंको बड़े सङ्कटोंका सामना करना पड़ता है—उन्हें प्रायः बन्दी बनाकर जेलमें ठूंस दिया जाता है या उन्हें गुप्त कारागारमें फेंक दिया जाता है। सर सी. पी. रामस्वामी स्वयं कहते हैं कि अहिंसक असहयोगियोंके लिये उनके पास दूसरा कोई उपचार ही नहीं है। ऐसे वातावरणमें पत्र-पत्रिकाएं और समाचारपत्रोंको बड़ी क्षति उठानी पड़ती है। सरकारको जो बात नापसन्द है उसको निर्विलम्ब दण्डका पात्र बनना पड़ता है। समाचारपत्रोंके गले इसीलिये त्रावनकोरमें हर हफ्ते घोंट दिये जाते हैं। सारे त्रावनकोरमें सभा-सोसाइटी और जलूसोंपर प्रतिबन्ध हैं। दीवानने बाहरी दिखावेके लिये प्रतिबन्ध उठानेकी विज्ञप्ति कर दी है किन्तु इस दाम्भिक कारवाईसे परिस्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं हो पाया है। पुलिसको उचितसे अधिक अधिकार प्राप्त हैं—व्यक्तियोंको मारने-पीटने और जुलूसों एवं मीटिंगोंको भंग करनेका सारा काम सात रुपये मासिकपर भरती किया गया पुलिसमैन कर सकता है। प्रकारकी नागरिक स्वतन्त्रताके साथ सर सी. पी. ने त्रावनकोरको भारतसे विच्छिन्न करनेका संकल्प किया है। यह सब क्यों? यह नाटक क्यों हो रहा है? और सर सी. पी. रामस्वामी उसके सूत्रधार क्यों बने हुए हैं? त्रावनकोर उनकी जन्मभूमि नहीं है। वहां तो वे एक

प्रवासी हैंऔर आज नहीं तो कल चले जायेंगे। वे वहां ज्यादा ठहरेंगे नहीं-उन्हें वहांसे प्रस्थान अवश्य करना पड़ेगा त्रावनकोरकी जनताके लिये स्वतन्त्रताकी--भारतसे अलग रहकर आजाद रहनेकी--पैरवी करना उन्हें शोभा नहीं देता। क्योंकि वे किसी भी दृष्टिसे त्रावनकोरका प्रतिनिधित्व करनेके अधिकारी नहीं हैं।

नरेशोंका विश्वासघात

स्वतन्त्रताकी घोषणा करनेवाली ये रियासतें अपने भविष्यको संकटग्रस्त कर रही हैं। आंख मूंदकर दौड़नेमें वे अपने पथसे बाहर आ रही हैं और ऐसे गर्तमें गिरनेवाली है जिसमेंसे निकलना उनके लिये असम्भव हो जायेगा। हैदराबाद और त्रावनकोरमें किरायेकी फौजोंके आश्रय लिये जा रहे हैं और शक्ति प्रदर्शनके साथ सम्राटोचित सार्वभौमत्व अङ्गीकार किया जा रहा है। किन्तु वे नहीं समझते कि जनताकी अजेय शक्तिके सामने आज एटम बम भी शक्तिहीन हो चुका है। जनतासे लड़कर कितने दिनतक स्वतन्त्र प्रभुत्व भोगा जा सकेगा? दमन और शक्तिके आजमानेके परिणाम भयानक होंगे। राजनीतिक दृष्टिसे पूर्ण सजग जनताका मुक्ति अभियान किसी भी अवरोधसे रुक नहीं सकेगा। अन्तिम विजय जनताके ही पक्षमें है। स्वतन्त्रताके मनमोदक खानेवाले नरेश वस्तुतः विद्युतके ऐसे तारको छू रहे हैं जिसमें साक्षात मृत्युका निवास है।

सूबेदारसे शहन्शाह

आश्चर्यकी बात है भारतके ये देशी नरेश जो कभी स्वतन्त्र रहे ही नहीं और सदैव दूसरेके गुलाम रह कर प्रजाके शोषणमें सहायक रहे हैं आज वे स्वतन्त्र रहनेके सपने देख रहे हैं। भ्रांति और दिवानोंकी हद हो गई! हैदराबादका निजाम वस्तुतः कभी स्वतन्त्र नरेश ही नहीं रहा—आजतकके इतिहासमें उनकी अपनी स्वच्छंद सत्ता ही नहीं रही। मुगलोंके शासनकालमें वह दक्षिणका सूबेदार तैनात किया गया था और सूबेदारकी हैसियतसे ही वहांका प्रबन्ध करता था। अंग्रेजोंसे जब उसकी संधि हुई तो सूबेदारका खिताब ही उसके साथ था। स्वतन्त्र नरेश का व्यक्तित्व उसे प्राप्त नहीं हो सका था। अंग्रेजोंके शासनकालमें भी वह स्वच्छंद नरेश नहीं रहा। लार्ड वेलेजलीने १० जून १८०४ में निजामसे बरार-सम्बन्धी जो संधि की थी उसमें निजामको सूबेदार ही लिखा गया है।

"वस्तुतः हमारे द्वारा जीती गयी जमीनपर सूबेदारका कोई हक नहीं है, अतः यह आवश्यक है कि जो भूभाग हम दक्षिणके सूबेदारको दे रहे हैं उसे वह हमारा अनुग्रह ही समझे।"

बरारको हैदराबादमें शामिल करनेके लिये निजामने जो अपील की थी उसका जवाब देते हुए लार्ड रीडिंगने निजामको जो फटकार बतायी थी वह स्पष्ट प्रकट करती है कि निजाम जैसे बड़ी रियासतके स्वामीकी अंग्रेजोंके हृदयमें क्या इज्जत थी:—

"मुझे खेद है कि मैं हिज हाइनेसकी इस धारणाको नहीं मान सकता कि भारतमन्त्रीकी आज्ञायें उनके लिये कोई निर्णय नहीं होतीं। सार्वभौम सत्ताको इतना अधिकार और शक्ति है कि वह सभी झगड़ोंका फैसला कर सके।" तिरस्कार और अपमानकी ऐसी परिस्थितियोंमें अपना जीवनयापन करनेवाले निजामको आज सार्वभौम सम्राट् बननेकी महत्वाकांक्षाने आ घेरा है। उसे याद नहीं है कि सार्वभौम सत्ता आज सम्राटोंसे बिच्छिन्न होकर जनतामें समा गयी है—आज राजवंश या शक्तिशाली व्यक्तियोंका सार्वभौमत्वपर विशेषाधिकार नहीं रहा, सार्वभौम शक्तिका प्रवाह आज इनसे न निःसृत होकर जनताके बुनियादी अधिकारोंसे प्रस्तुत हुआ है। आज सत्ताका स्रोत जनता है; नरेश, सम्राट् या विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति नहीं। दूसरे महायुद्धके बादकी घटनाओंने इसे नग्न रूपमें स्पष्ट कर दिया है—प्रमाद और स्वार्थके चश्मोंमेंसे यदि भारतके देशी नरेश इसे न देखेंगे तो क्षति उन्हें ही उठानी पड़ेगी।

———

[हमारे वर्तमान जीवनका एक शब्द चित्र]

क्यासे क्या, पर क्यों ?

श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

वह गांव था, जहां मैं पैदा हुआ था, और जिसके साथ आजसे ११ साल पहले तक मेरा प्रायः प्रति दिनका सम्बन्ध था। चारों ओर एक खुशहाली दीखती थी। बंधा हुआ वहांका जीवन, साल पर साल ठीक एक ही तरह जोतने, बोने और काटनेके मौसम आते। सिंचाई, निराई, और नवान्नके दिन आते। खेत और खलिहान खेतिहर मजदूरिनोंके गानसे गूंज उठते। पनघटोंपर सुबह-शाम भीड़ होती। ताजिये उठते, दीवाली मनती और होलीके हुड़दङ्ग भी होते। जाति-पांत, मजहब धर्म, स्त्री-पुरुषका भेद कहीं भी उस जीवनकी हरियालीमें बाधक नहीं बनता। हिन्दू ताजिये रखते, मुसलमान दीवाली जलाते और होली के रंग उड़ाते। स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरेके प्रति कोई अजनबीपन महसूस किये बिना, एक दूसरोंके प्रति बिना किसी प्रकारका अस्वाभाविक आकर्षण अनुभव किये, खेतों और खलिहानोंमें काम करते। यह नहीं कि कड़ुए घूट पियेकी तरह वह आपसमें मुंह बिचकाये एक दूसरेकी तरफ पीठ किये रहते हों ; वरन् कामके बीच स्वस्थ चुहलके दौर भी चलते, जो श्रमकी विश्रान्तिका हरण कर अधिकाधिक कार्य करनेकी प्रेरणा देते।

× × ×

और यह शहर है, जहां आज ग्यारह सालसे रह रहा हूँ। रोज शामको आफिससे निकल कर अपने निवास-स्थानकी तरफ भागता हूँ। देखता हूं कहीं स्टेशनके कुली कतार बांधे दिन भरका काम खतम किये चले जा रहे हैं। कहीं रेलवेके और कल-कारखानोंके मजदूर झुण्डके झुण्ड लम्बे डेग बढ़ाये जा रहे हैं। ये दफ्तरोंके बाबू लोग साइकिलोंका एक अटूट सिलसिला चलाये जा रहे हैं और मैं आसानीसे कल्पना कर सकता हूं कि दिल्लीकी तरह ही संसारके शत-शत शहरोंकी अनेकानेक सड़कोंपर इसी तरह उत्पादक-श्रम (Productive labour) से निबट कर करोड़-करोड़ श्रमजीवी कहीं दौड़े चले जा रहे हैं। कुछ थकान, कुछ चिन्ता और कुछ अकेलेपनका भाव मैं उनके चेहरोंपर अंकित स्पष्ट देख पाता हूं। कोई गाता नहीं, कोई हंसता नहीं। जब कि खेतों और खलिहानोंसे लौटते समय गांवकी पगडण्डियोंको वृन्दाबन बना देनेवाली वे औरतें भी जैसे यहां आकर गूंगी हो गयी हैं। कलों और कारखानोंसे निकलते उनका गायन स्वर कहीं भी सुननेको नहीं मिलता। जैसे उनके गाने वहीं गांवकी अमराइयों में खो गये हों, या मशीनोंकी चीत्कार गोया उन्हें निगल गयी हो।

गांवोंका मनुष्य जहां समाजका प्राणी था, जहां परिवारमें उसका जीवन-केन्द्र था, वहीं यहांका इन्सान आज अकेला है। मात्र वह व्यक्ति रह गया है, समाजका जैसे वह कभी था ही नहीं, पारिवारिकता गोया उसके लिये अनजानी हो। हरएक अपने आपमें केन्द्रित है, हरेक एक दूसरेको अविश्वासकी निगाहसे देखता है यहां हरेक इन्सान होनेसे पहले, भाईचारेके बलिदानके मूल्यपर भी हिन्दू है, मुसलमान है, सिक्ख है। और यह बेलाग जिन्दगी, यह सहानुभूति-रहित जीवन, यह पड़ोसीपनकी भावनाओंसे खाली रहन-सहन, यह असहिष्णुता और कटुतासे भरी हुई दिनचर्या दिन-दिन और अपनी बुराइयोंसे भरती जा रही है, तीव्रतर होती जा रही है। आज यहां शायद ही कोई माईका लाल हो जो न सिर्फ ताजिये और होलीके दिनोंमें, बल्कि दिन प्रति दिनके जीवनमें भी सड़कपर गुजरते वक्त किसी अनजाने घातककी छुरियोंका रेंगना अपनी पीठपर और अपनी रगोंमें न महसूस करता जाता हो। यहां इन्सान-इन्सानके बीच जाति-पांति, धर्म-मजहबकी दीवारें दैत्याकार बन कर खड़ी हो गयी हैं। स्त्री पुरुष एक दूसरे

के प्रति अजनवी जैसे हो गये हैं। स्त्री कहां पुरुषकी छायासे भय खाने लगी हैं, और पुरुष स्त्रीको ऐसी निगाहों से देखता है, जैसे एक शिकारी अपने शिकारको।

× × ×

और फिर अभी कुछ ही दिन पहले मैं अपने उस गांव गया, जहां मैं पैदा हुआ था, जहांके कण-कणसे मेरा अपनाया था और जहांके जीवनकी सरसता याद कर इन ग्यारह वर्षोंमें मैं बराबर दुखके आंसू गिराता आया हूँ। पर एक सिरेसे दूसरे सिरेतक मैं देखता चला गया, उस पुरानी खुशहालीकी मजारपर जैसे एक भयानक वीरानापन फैल गया है, जैसे सोना उगलनेवाली वह उर्वरा वसुन्धरा जहरके सैलावमें डूब और सूख कर काली हो गयी हैं, उसमें दरारें पड़ आयी हैं। मैंने घबराहटके स्वरमें एक एकसे पूछा, भाई वह अमुक कहां है, जवाब मिला, भैया वह तो हवड़ेके चटकलमें काम करता है, गांव या तो अब रहा ही नहीं। पहले होली दीवालीपर आता भी था, तो अब कुछ सालसे वह भी बन्द। और मैं बार बार पूछता गया कि फलां और फलां और फलां कहां हैं। जवाब भी बार बार यही मिलता कि कोई पुतली घर, कोई स्टेशनके कुलीगिरी पर, कोई ट्रामवे कम्पनीमें, कोई बिजली कम्पनी में चला गया। तब उस पुरानी मधुर स्मृतियोंवाले गांव का वह सन्नाटा, वह उजाड़ जैसे मेरे मनप्राणोंको कुरेदने लगा। मैंने चिल्ला कर पूछा, "अरे भाई, आखिर गांवमें तुन बूढ़ों और इन मृत-प्राय कुत्तोंके अतिरिक्त और कोई अब रहा ही नहीं ? "जी नहीं", जवाब मिला, "जो शहरोंके कल-कारखानोंमें जानेसे बच रहे हैं वह यहांसे २० मील दूरके उस इलाकेमें अमुक जमींदारके फार्मपर कटाई करने गये हैं और मैं अपने एक सप्ताहके उस प्रवासमें देखता चला गया कि जिन किसानोंके घर साफ दूधिया मिट्टीसे बराबर पुते रहते थे, उनकी जड़ोंमें लोना लग रहा था, जो खेत-खलिहान मजदूर-मजदूरिनोंकी किलकारियां, बिरहा और कजरीकी मधुर किल्लोलोंसे गुंजरित रहते थे, वहां दिनका सन्नाटा जैसे एक भयानक अजगरकी तरह फूत्कार कर रहा है, और वही रातके सन्नाटेमें गीदड़ अपना मनहूस रोना रोते हैं। और मैं देखता चला गया कि जिन पनघटोंपर चूड़ियोंकी झंकार किसी समय मनहारिणी रिमझिमसे प्राणोंको आन्दोलित और उल्लसित कर देती थी, उन पनघटोंकी वह पुरानी ईंठ, जिन्हें गांवमें लाहौरी ईंट कहते थे, लाल-लाल धूल बनकर चारों ओर फैल रही थीं। कोई अकेला-दुकेला पानी भरने आ भी जाय, तो उसकी गगरीका पानीमें डूबना ऐसा स्वर-संचार करता मानो कोई आत्मघात करनेके लिये कुएंमें कूदा हो। उस बरगदकी वह घनी छांव जहां युवक-युवतियां सावनमें झूले झूला करतीं, जाने कैसे ठूंठकी तनिक-सी एकान्त छाया मात्र रह गयी हैं। मन्दिरका दरवाजा टूट गया है, शृङ्गार-सामग्रियां सुना चोरी हो गयीं, पुजारी मर गया और उसका लड़का कहीं शहरके किसीके यहां खाना बनानेका काम करता है। वह मैदान जहां ताजिये दफनाये जाते थे और जो साल-भर गर्व-पूर्वक अपनी विशिष्टताका सन्देश दूरसे ही दिया करता था ; आज ऐसे बना है, जैसे सदियोंका पुराना कब्रिस्तान, जहां बीसियों सालसे किसीने कदम भी न रखे हों। सुन कर जाना कि अब ताजिये नहीं रखे जाते। शाहजीका खानदान उजड़ कर कहीं कलकत्ते चला गया और मनिहारोंका वह कुनबा फिरोजाबादमें जाकर चूड़ियों के कारखानेमें खो गया।

× × ×

और फिर लौटकर मैं शहर आया। फिर उसी अविश्वास अहमन्यता और मशीनकी हृदय हीनता वाले जीवनमें। और मैं यह साफ देख पा रहा हूं कि गांव उजड़ गये परिवार टूट गये, समाजकी धुरी भंग हो गयी। धर्म प्रेम न रहकर कृपाण बन गया, मजहब मुहब्बत न रहकर छुरा बन गया। पड़ोसी हमदर्द और मददगार न रहकर गला घोटने का मौका तलाश करने वाला हैवान बन गया है।

यह तस्वीर भयानक है, संभव है कुछ इसमें अतिशयोक्ति दोष भी कहीं आ गया हो। पर इसमें एक मौलिक सचाई है जिससे कोई भी इनकार नहीं कर सकता। अब इस सत्यपर पर्दा नहीं डाला जा सकता कि हमारी समाज व्यवस्थामें एक भयानक विशृङ्खलता आ गयी है। उस विशृङ्खलताकी आंधीमें हमारा जीवन, हमारी कोमल भावनाएं यहां तक कि हमारी मनुष्यता बिनष्ट हो रही है। स्पष्ट ही

कंजूसों की दुनिया

('विश्वमित्र' संचालक की कलम से)

अर्थशास्त्रमें कंजूस, मितव्ययी, खर्चीला और फिजूल खर्च—ये चारों शब्द चार भिन्न अर्थ रखते हैं और इनका अर्थ बारीकीसे समझना जरूरी है, लोग जल्दीमें एकको दूसरा मान लेते हैं और बहुत बड़ा अनर्थ किया करते हैं। मितव्ययी होना उस पहलवानके समान है, जो शक्तिका प्रसार होनेपर भी भोग-विलास और व्यभिचारमें अपने शक्ति धनका ह्रास नहीं करता। खर्चीला वह है जो अधिक आमदनीके लिये अधिक खर्चमें विश्वास रखता है और फिजूल खर्च वह है जो रुपयेको पानीकी तरह बहानेके लिये बहाता है। महात्मा गांधी मितव्ययी हैं, परन्तु जवाहरलाल नेहरू खर्चीले माने जा सकते हैं और बहुतसे देशी राजा फिजूल खर्च हैं। कंजूसोंकी अपने देशमें कमी नहीं पर किसीका नामोल्लेख संभव नहीं। कंजूसका बृहत् रूप मक्खीचूस बताया जाता है। घीमें यदि कोई मक्खी पड़ जाये, तो उसे चूस कर घी निकाल लेनेवाले महारथीका नाम मक्खीचूस है, जो अर्थशास्त्रका वह प्राणी है जिसने जीवनमें धनसंचयको ही अपना सबसे बड़ा और पवित्र ध्येय मान लिया है। मुझे सर्वप्रथम अपने गांवके एक दो कंजूसोंकी याद आ जाती है। उन दिनों रुपयेका मूल्य आजसे कई गुना था और छोटेसे गांवका सहस्र प्रति शहरोंके वर्तमान लक्षाधीशोंसे कम न था। एक सहस्रपति महाशय और उनकी धर्म पत्नी अपने मकानका द्वार इसलिये हमेशा बन्द रखते थे कि कहीं कोई राहगीर प्यासा होनेपर पीनेके लिये पानी न मांग बैठे। गांवके सबसे बड़े महाजन होनेके कारण वे कई बार चोरोंके शिकार हुए, परन्तु अपने जीवनमें कभी किसी देवस्थान तकमें नहीं गये, क्योंकि जानेका अर्थप्रसाद और चढ़ौती चढ़ाना होता। जीवनमें कभी किसीकी बारातमें नहीं गये क्योंकि बारातके लिये पोशाक बनवाना पड़ता, जूता भी खरीदना पड़ता। दूसरे कंजूस तो कभी जूता पहनते ही न थे। इन कंजूसोंकी दुनिया बहुत बड़ी है और इनके विचित्र कार्यकलाप हैं। कलकत्तेमें आजसे पचास-साठ वर्ष पूर्व एक बङ्गाली महाजन लेन-देनका कारबार करते थे। वे एक अन्धेरी कोठरीमें बैठे रहते थे और कर्ज लेनेवालोंके लिये आवश्यक था कि अपने साथ दियासलाई और मोमबत्ती ले जायें, नहीं तो अन्धकारमें काम नहीं निकल सकता था। एक कंजूस सेठसे मेरा भी सम्बन्ध सौभाग्यसे जुड़ गया था। वे ऊपर अंधेरेमें बैठे रहते थे और मैं नीचेसे ऊपर जाते समय बिजली का बटन दबा कर रोशनी करता और लौटते वक्त बुझा कर चला जाता था। एक बार आप प्रेसमें पधारे और एक कोनेमें एक बोरा इसलिये रख गये कि कागजके टुकड़े उसमें ही डाल दिये जायें जिससे उनकी अफीमकी दुकानमें पुड़िया बनानेमें सुभीता हो जाये। एक कंजूस महाजनको सड़कमें गिर कर बेहोश होना पड़ा, क्योंकि आप अस्वस्थ अवस्था में ही पैदल चल दिये थे। एक बाबू साहबके मुख्तारको चार बार एक एक मील चल कर बाजार दौड़ना पड़ा क्योंकि बटन खरीदनेमें भावकी गड़बड़ीसे तीन पैसोंका फर्क पड़ गया था। कंजूस बाबू साहबके दरवाजेसे साग तरकारी बेचनेवाली डरके मारे नहीं निकलती थीं, क्योंकि सौदेमें घण्टा आध घण्टा लग जाना मामूली बात थी

अगर हम अपनी और आनेवाली पीढ़ियोंका भला चाहते हैं तो हमें इस अव्यवस्थाका अन्त कर एक ऐसा नया समाज गढ़ना होगा, जहां व्यक्ति फिर अपनेको समाजका और समाजके प्रति उत्तरदायी समझने लगे, जहां टूटते और टूटे हुऐ पारिवारिक जीवनको एक नया तरतीब दिया जा सके जहां प्रेम हो, सहिष्णुता हो, भाई चारा हो हमदर्दी हो। तभी नयी मनुष्यता पैदा होगी गांव फिर हरे भरे हो सकेंगे और शहरोंके निवासी भी अपने शून्य आखोंमें एक नयी रोशनी पायेंगे। अपने आफिससे घर तक वाले निरूद्देश्य जीवनमें एक नया अर्थ पायेंगे, एक नयी प्रेरणा पायेंगे।

——————

और चार पैसेके बैंगन खरीदनेके बाद धनिया मिर्च मुफ्तमें लेनेका प्रस्ताव होता था। दातूनका सौदा तो जल्दी पटता ही न था, क्योंकि दातूनके पैसे देनेमें बाबू साहबको महान् कष्ट होता था। वे कहते थे कि दुनिया कितनी लुटेरी हो गयी जो रास्तेमें खड़े नीम और बबूलकी डालियां तोड़ कर पैसे वसूल करती है। कंजूसोंकी मजलिसमें होनेवाली बातें खासी दिलचस्प होती हैं। एक वकील साहबने एक दिन कहा कि एक तरकारीवाली बुढ़िया मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ गयी है। मैंने कई बार उसे धमकाया कि मेरे घर न आये, परन्तु वह मानती ही नहीं। अभी उस दिन आयी और सिंघाड़ा बेचने लगी। मैंने कहा कि क्या भाव है। उसने कहा—सरकार, दो आना सेर। मुझे तो सिंघाड़े लेने ही न थे, मैंने कह दिया कि तीन पैसे सेर देना हो तो दे दे। वह बदमाश तीन पैसेमें ही देनेको तैयार हो गयी। तब मैंने उसे खूब धमकाया कि तू इसी तरह हमें फंसाने आ जाती है। हम तेरे जालमें आनेवाले नहीं। अपना रास्ता पकड़ो। वह तीन पैसे सेर देकर मेरी हजामत बनाना चाहती थी। मैं दाम लगाकर भी तुरन्त इनकार कर गया।

एक सेठजीको राय बहादुरी लेनेकी धुन सवार हुई। बाजारमें पता लगानेसे मालूम हुआ कि कमसे कम पन्द्रह हजार रुपया राय बहादुरीका वर्तमान रेट है। तब तो जमीन आपके पैरोंके नीचेसे खिसक गयी। परन्तु राय बहादुरीकी धुन रात-दिन परेशान कर रही थी। सौभाग्य से एक सलाहकार मिले, और उन्होंने कहा कि आप हजारोंके सौदेमें क्यों जाते हैं, अपनी पोजीशनके अनुसार करोड़ोंकी बात कीजिये, तो काम बनेगा। आपने कहा कि अगर आप बिना कीमत ऐसी कोई सलाह दे सके, तो मैं राय बहादुरीके साथ आपका अहसान भी जिन्दगी भर मानता रहूँगा। सलाहकारने कहा कि लड़ाईका जमाना है। जर्मनीसे ठनी हुई है। चारों तरफ अंग्रेजी झण्डेकी धूम है। आप भी एक दो करोड़ झण्डे बनवा कर गवर्नमेण्ट के हवाले करें। करोड़ोंका नाम और सैकड़ोंमें काम हो जायगा। सेठजीको सलाह बहुत पसन्द आयी और ऐसा करनेपर वे राय बहादुरी पानेमें सफल हुए। एक कोट्याधीश जमींदारके लिये दिल्लीकी एक नाटक कम्पनीने अभिनन्दनका प्रबन्ध इसलिये किया कि नाटक देखनेके लिये बड़े बड़े आदमी आयेंगे और इनाम भी अच्छा मिलेगा। काफी सजावट की गयी और सैकड़ों टिकट मुफ्तमें बांटे गये। मानपत्र लेकर मेहमान साहब यह कहकर रवाना हो गये कि मेरे शिरमें बड़े जोरोंसे चक्कर आ रहा है। बेचारे नाटकवाले खासे चक्करमें पड़े। एक कंजूस महाशयको शिक्षा संस्थाके उत्सवमें इस आशासे सभापति बनाया गया कि संस्थाको कुछ दान मिलेगा। अपने भाषणमें सभापतिजीने उपदेश दिया कि संस्थाओंको यदि बढ़िया और ठोस कार्य करना है, तो स्वावलम्बी बनना चाहिये और कभी किसी व्यक्तिके दानकी आशा न करनी चाहिये। मैंने तो इसी लिये दान न देनेका स्थायी नियम संस्थाओंके उपकारके लिये बना लिया है।

कण्ट्रोलके जमानेमें कंजूसोंको बड़ी मुसीबतोंका सामना करना पड़ा। आमदनी तो वे सबसे पहले करना चाहते रहे, परन्तु खर्चके नामपर नानी मरती थी। किसी चीजका ठेका लिया गया, तो अफसरके यहां जानेमें भय कि कहीं कुछ देना न पड़े। एक दिन टेलीफोन आया कि आप अपनी मोटर भेज दें। मेम साहब हवाखोरीके लिये जायेंगी। मोटर तो गेरेजकी शोभाके लिये थी। सेठजी तो पैदल चलना स्वास्थ्यवर्द्धक समझते रहे। पेट्रोलके डरसे बहाना कर दिया कि हुजूर, मोटर तो आपकी ही है, परन्तु आज खराब हो गयी है। हुजूरने यह बहाना नोट कर लिया और अगले मौकेपर ठेका केन्सिल कर दिया। बहुत दौड़-धूप और हजारोंके खर्चके बाद फिर आमदनी हाथ लगी। कंजूस किसी भी श्रेणीके हों, वे अखबार खरीद कर पढ़ना जानते ही नहीं। किसीसे यह भी नहीं कह सकते कि हम अखबार पाते नहीं। खबरें जाननेके लिये सबेरेसे ही इधर उधर दौड़ेंगे, परन्तु दस घंटे खर्च करनेपर भी चार पैसे खर्च नहीं कर सकते। मौका पड़नेपर कहेंगे कि महात्मा गांधीने बहुत ठीक कहा है कि समाचारपत्र प्लेगके कीड़े फैलाते हैं। इसी लिये तो मैं अपने यहां उन्हें घुसने ही नहीं देता। कंजूसके यहां मेहमान बनना एक खास समस्या है। आधा पेट भरते ही सुनायी देने लगेगा

कि दुनियामें संयम नामकी कोई चीज ही न रही। भूखे मरनेवाले कम और अधिक खाकर मरनेवाले ज्यादा हैं। मशहरीके अभावमें जब मच्छरोंके झुगड आक्रमण करने लगें, तो उपदेश सुनायी देगा कि शुद्ध वायु पानेके लिये खुले मै.ान सोना लाभदायक है। एक कंजूस महाशय कहा करते थे कि मुझे हंसी-मजाक जरा भी पसन्द नहीं, क्योंकि हंसी-मजाकके वायु-मगडलके लिये उन्हें कई बार पान बीड़ीकी सप्लाई करनी पड़ी। सोनेका गहना पहनने से क्या मिलेगा नहीं, इसलिये एक कंजूस सेठने परिवारमें गहने पहननेपर कगट्रोल लगा दिया था और कहते यह थे कि महात्मा गांधी ठीक कहते हैं कि स्त्रियोंको गहना नहीं पहनाना चाहिये। एक कंजूस वकीलको लोगोंने सार्वजनिक संस्थाका सभापति बना डाला, तो वे डरके मारे कभी संस्थाकी मीटिंगमें इसलिये नहीं गये कि चन्देका सवाल पैदा न हो जाये। कंजूसोंकी दुनिया निराली है।

———

पगडंडी

श्री हंसराज 'रहबर'

तारो वहां टहलती रही और करनैल बागसे निकल जानेकी राह ढूंढ़ने लगा। वह उस जगहके कोने कोनेसे परिचित था। और उसे मालूम था कि दक्षिणकी ओर दीवार कम ऊंची है। वह उसी ओरको चल दिया। दक्षिण पूर्वी कोनमें जहां तालाब बना था यह ऊंचाई और भी कम हो गयी थी क्योंकि यह स्थान आम सतहसे लगभग एक फीट ऊंचा उठ गया था। वह इसी जगहसे दीवारपर चढ़ कर दूसरी ओर फलांग गया। बागके इर्द गिर्द पहरा नहीं रहता था। इसलिये उसे किसीने नहीं देखा। दीवारके नीचे सूने खेत पड़े थे। वह उनमेंसे ऐसे गुजर रहा था जैसे किसीकी हत्या करके आया हो। मनुष्य तो मनुष्य पक्षियों तककी नजरसे अपने अपराधको छिपा लेना चाहता हो।

उसने सड़कपर पहुंच कर इत्मीनानकी सांस ली। उसके नये जूतेपर धूल पड़ गयी थी, उसे झाड़ा। हालां कि इस तकल्लुफकी बिलकुल जरूरत नहीं थी क्योंकि उसे पैदल चल कर गांव जाना था। रास्तेमें जूतेपर धूलका दोबारा पड़ जाना जरूरी था। उसने जूता झाड़नेका काम बिना सोचे ही किया था। शायद यह इस बातका ऐलान था कि अब मैं खतरेसे निकल आया हूं। अचेतन रूपमें ही उसे एक प्रकारकी सान्त्वना अनुभव हुई थी। उसके दिमागसे एक बोझ सा उतर गया था। वरना वह कुछ और ही सोच रहा था और सोचते सोचते गांवकी ओर चल दिया था। अगर उसे कोई चीज साथ ले जानी होती तो वह कदाचित याद न आती। अच्छा ही हुआ कि उसे कुछ साथ नहीं ले जाना था। कल उसका बड़ा भाई छकड़ा लेकर विवाहका सामान लेने शहर आया था। करनैलने अपने कपड़े और अन्य वस्तुएं उसीके हाथ भेज दी थीं।

वह सोच रहा था कि मैंने तारोको ठीक उत्तर नहीं दिया। वह नाराज हो गयी है। खैर कितनी ही जोखिम क्यों न उठानी पड़े उसकी बात तो माननी ही पड़ेगी। माननी ही पड़ेगी—'मर्द होकर मरनेसे डरते हो' वाकई मर्द होकर मरनेसे क्या डरना? और फिर करनैल—करनैल तो मरनेसे कभी नहीं डरता। वह तारोको बता देगा और सिद्ध कर देगा, कि मैं मरनेसे नहीं डरता। सिर्फ तारो तो ही देहातमें पैदा नहीं हुई। वह भी उसी देहातमें पल कर जवान हुआ है जिसकी मर्यादा यह है कि किसीने तनिक सिर उठाया तो उसका भेजा खोल दिया। कोई जरा खांस कर पाससे गुजरा तो आंखोंमें खून उतर आया। बातकी बातमें लाठियां चल जाती हैं। सिर फट जाते हैं। वे और सब कुछ सहन कर सकते हैं। पर यह बात असह्य है कि कोई उनकी वीरताको चैलेंज करे। ऐसे समय वह चुप्पी नहीं साध सकते।

वह गांवकी ओर बढ़ा जा रहा था। नये जूतेमेंसे 'चुरमुर' 'चुरमुर' की ध्वनि उत्पन्न हो रही थी, लेकिन वह उसे सुन नहीं रहा था। उसके मस्तिष्कमें अत्यन्त जलन

भरी थी। तारोका यह वाक्य 'मर्द होकर मरनेसे डरते हो' वायु-मण्डलमें गूंज रहा था! इसका एक एक शब्द बिच्छूके डंककी भांति चुभ रहा था। अगर यह शब्द किसी शत्रु अथवा प्रतिद्वन्द्वीने कहे होते तो वह उसी समय उसे कहनेका मजा चखा देता। इतनी शिद्दतसे महसूस न करता और अगर करता भी तो उसकी प्रतिक्रिया कुछ और होती। लेकिन यह शब्द उस औरतकी जबानसे निकले थे जो उसे मन प्राणसे प्यार करती थी। जिसका प्रेम उसकी आत्मामें घुलमिल गया था। जो उसकी जीवन संगिनी बन कर भविष्यको आलोकित और आनन्दित कर देना चाहती थी। वह स्वयं एक अजगरके मुंहमें फंसी थी और चाहती थी करनैल उसे पकड़कर बाहर निकाल ले, तब सहायता करनेके बजाय उसे भयसे पीछे हटते देखा तो वह यह बात कहनेपर मजबूर हो गयी। यह शब्द करनैलके क्रोधको नहीं बल्कि उसके कर्तव्यको उसकाते थे। उसे चाहिये था कि मृत्युके मुंहमें कूदकर भी तारोका हाथ पकड़ लेता। परिणामको तनिक परवा न करता। तारोने औरत होकर भी साहसका परिचय दिया और वह मर्द हो कर भी झिझकता रहा। उसकी आंखोंमें अवज्ञा उभर आई थी। वह उसे बुजदिल समझती होगी।

औरतकी दृष्टिमें और विशेषकर उस औरतकी दृष्टिमें जिसे वह प्यार करता हो मर्दका कायर बन जाना कितना दुखप्रद है। तारोके वे शब्द कानोंमें गूंज रहे थे और वह निगाहें सीनेमें चुभ रही थीं, वह कैसे बताये कि मैं बुजदिल नहीं हूं। वाकई वह बुजदिल नहीं था। वह सिपाही था। जानपर खेल जाना उसके लिये साधारण बात थी। यह सब कुछ क्षण भरमें हुआ और जरा सी गलतीसे हो गया। आत्म-रक्षाकी सहज भावनाने उसकी वीरताको पीछे छोड़ दिया। अगर तारोने पहले कभी चलनेका तनिक भी संकेत किया होता तो यह स्थिति पैदा ही न होती। लेकिन...लेकिन अब जो शब्द कहे जा चुके थे उन्हें अनकहे बनाना था। उसे तारोको अपनी वीरताका परिचय देना था।

वह चलते चलते रुक गया। उसके मनमें आया कि अभी जाकर तारोसे कहदे—चल! चल! मैं तुझे लेने आया हूँ। दुनियाका कोई भय मुझे अपने निश्चयसे डिगा नहीं सकता। अगर राजाका हाथी भी चुराना पड़े तो मैं उसे भी चुरा कर रख सकता हूँ। फिर तेरा छिपाना तो कठिन ही क्या है। तुझे तो मैं अपनी आंखोंमें, अपने हृदयमें छिपा सकता हूँ।

लेकिन इस समय तारोसे मिलना मुमकिन नहीं था। वह शोर क्या था। करनैलके अनुमानमें जमादारकी आवाज थी जो स्वभाव-गत मजदूरों और मशक्कतियोंपर रोब गांठ रहा था। सफाई और मरम्मतका मामला था। स्पष्ट था कि बहुतसे लोग वहां आये हैं। उनकी मौजूदगीमें करनैल किस तरह वहां जा सकता था? जब कि उसकी ड्यूटी भी नहीं थी। और फिर तारोसे मिलनेकी कोशिश व्यर्थ थी। उसे अपना भय भले ही न होता तारोकी बदनामीका डर तो था।

और तारोके कहनेका अभिप्राय यह तो नहीं था कि करनैल जरूर उसी समय उसे अपने साथ ले आता। वह तो एक ऐसे जीवात्माकी पुकार थी जो अपने वातावरणसे दुखी था। अगर करनैल उसके जजबातको समझता, उसके प्रति सहानुभूति दर्शाता, जरा इस ढंगसे उत्तर देता—"तारो! मेरे लौटनेका इन्तजार करो। अबके मैं रत्नीसे तुम्हारे जाने की बात पूछ आऊंगा, साथ ही सवारी आदिका प्रबन्ध भी करता आऊंगा। पैदल चलोगी तो कोमल पांव थक जायेंगे।" तारो खुश हो जाती और प्रसन्न कामनासे उसके लौटनेकी बाट देखती।

वह फिर आगे चल पड़ा। अब पछतावा तारोको साथ न लानेका नहीं था। बल्कि यह अफसोस था कि जवाब ठंडे दिलसे क्यों नहीं दिया। लेकिन, पश्चात्ताप आदमीके वशका रोग नहीं। चिन्तन शक्ति और क्रियाशीलता मानव स्वभाव के दो पहलू हैं। चिन्तन बुद्धि करती है और क्रियामन करता है। क्रियाशीलताके समय मन आगे और बुद्धि पीछे रहती है। कोई असाधारण स्थिति उत्पन्न हो जानेपर बुद्धि आगे आ जाती है और मन पीछे रह जाता है। पहला उत्तर बुद्धिने दिया था और दूसरा मनने सोचा था। बुद्धि और मनमें जो भेद है उसीका नाम पछतावा है।

पीछेसे किसी तेज कदम मुसाफिरने उसे आ घेरा। करनैलने मुसाफिरकी ओर देखा। वह भी कोई देहाती था।

लेकिन करनैल उसे पहचानता नहीं था। वे दोनों एक दूसरे के लिये अजनबी थे। मुसाफिरने करनैलसे पूछा:—

"शहरसे आये हो ?"

"जी हां।"

"कौनसे गांव जाओगे ?"

"मर्दनबास जा रहा हूँ। वहीं घर है। रहता मैं शहरमें हूं। पुलिसमें नौकरी कर रखी है। मेरी बहनका ब्याह है। सात दिनकी छुट्टी लेकर आया हूं।"—करनैलने देहाती रिवाजके अनुसार अपने सम्बन्धमें बहुतसी बातें बता दीं। अगर वह एक दम न बताता तो मुसाफिर एक एक करके यह सब बातें खुद पूछता।

"चलते-चलते रुक क्यों गये थे ? क्या पीछे कुछ भूल आये हो ?"

"जी नहीं भूला-भाला तो कुछ नहीं, वैसे ही जूती बदलनेको रुक गया था।" करनैलकी जबान देहाती और लहजा शहरी था।

फिर करनैलने भी मुसाफिरसे इसी प्रकारकी बातें दरियाफ्त की। मालूम हुआ कि इसे बहुत दूर जाना है। इसीलिये तेज चल रहा है। करनैल बातचीतके दौरानमें उसके साथ-साथ चलता रहा फिर कदम ढीला कर दिया और पीछे रह कर अपने आपसे कहा:—

"एक अजनबीसे क्या बताऊं कि मैं पीछे बहुत कुछ भूल आया हूं। कोई अपना सगा होता, दिली यार होता ?"

करनैल जैसे सहज स्वभाव आदमीकी जिन्दगी प्रकृति की भांति खुली किताब है। जिसे प्रत्येक व्यक्ति पढ़ सकता है। लेकिन उसकी सब बातें जाननेका अधिकारी तो केवल वही मनुष्य हो सकता है जो उसके निकट आकर बैठता है। फिर वह चाहे इन पृष्ठोंको पढ़नेकी भी कोशिश न करे वह हवाकी मददसे आप ही आप खुलते जाते हैं। शहरमें करनैल के करीब बैठनेवाला पनसारीका एक नौजवान लड़का श्यामलाल था। पहले पहल करनैल उससे महज सौदा सुलफ खरीदा करता था। फिर तनखाहके पैसे उसके पास जमा करने लगा और जरूरत पड़ने पर ले आता। उसकी ईमानदारीसे करनैल इतना प्रभावित हुआ कि करनैल अब उससे कोई भी बात छिपाकर नहीं रखता था। जिस प्रकार उसके पास जमाशुदा पैसोंको कोई जोखिम नहीं थी। उसी प्रकार मनके भेद भी उसके सीनेमें सुरक्षित रह सकते थे। अगर मुसाफिरके बजाय श्यामलाल होता तो वह अपने मनकी कैफीयत उसे देता। करनैल स्वयं उससे मिलने के लिये बेचैन था।

श्यामलालने एक बार उसे बात सुनाई थी कि वह एक रात सैर करते करते स्टेशन पर पहुंचा। उसे वहां एक सुन्दर और युवा स्त्री बैठी मिली। जो पतिके अनुचित व्यवहारसे तंग आकर घरसे निकल आयी थी। औरतने श्यामलालको बताया कि मेरा कोई अपराध नहीं। फिर भी न जाने क्यों जबसे ब्याह आयी हूं पतिने एक दिन भी सीधे मुंह बात नहीं की। वह किसी पर-स्त्रीको प्यार करता है। अकारण अपमान सहते-सहते नाकमें दम आ गया। आदमी मरता क्या नहीं करता। हार थक कर कदम बाहर निकाला है। अब मैं किसी भी मर्दके साथ जानेको तैयार हूं।

वाकई उसकी आंखोंमें एक ऐसे मर्दकी तलाश थी जो उसे प्यार कर सके। शायद गाड़ी ही उसे ऐसे मर्दके पास ले जाये।

श्यामलाल उसे वहीं छोड़ आया था करनैलने। औरत को देखा नहीं था। लेकिन यह दास्तान सुनकर ही उसका मन उसके प्रति हमदर्दीसे भर आया था। और उसने ताना दिया था:—"श्याम, तू भी अपने आपको मर्द समझता होगा। मर्द, और औरतको इस तरह छोड़ आये।"

इन शब्दोंमें जितनी श्यामलालकी आलोचना भरी थी उससे कहीं अधिक करनैलकी मनोकामना निहित थी। श्यामलालकी शादी उस समय हुई थी जब उसकी उम्र मुश्किलसे चौदह पन्द्रह वर्ष होगी और अब चौबीस पच्चीस वर्षकी उम्रतक वह पांच बच्चोंका बाप था। उसके जीवनमें वह दिन आया ही न था जब उसे औरतका अभाव खटका हो जब उसका मन औरतके लिये अधीर रहा हो। फिर उसकी अन्तरात्मामें औरतके लिये वह आकर्षण कहांसे उत्पन्न होता जो करनैलके दिलमें मौजूद था।

करनैलको यह घटना अकसर स्मरण हो आती थी और वह सोचा करता था—काश ! श्यामलालके बजाये

स्टेशनपर मैं होता। पांच भाईको ले देकर बड़े भाईका विवाह हुआ था। बाकी चारोंका विवाह कभी होगा इस बातकी आशा बहुत कम थी। करनैलकी उम्र पचीस छब्बीस सालके लगभग थी और वह सबसे छोटा था। तन्दुरुस्त नौजवान था। उसके मुकाबलेमें दस श्यामलाल एक साथ निकल आयें तो वह सबको मार सकता था। लेकिन उसे यह विश्वास नहीं था कि संसारमें कोई औरत उसके लिये भी सिर्जित हुई है। क उसीकी बात तो नहीं गांवके सैकड़ों नवजवान अभाव और असंतोषका जीवन व्यतीत करते थे। वे औरतके स्वप्न देखते पैदा होते थे और औरतके स्वप्न देखते मर जाते थे। उन्होंने औरतके लिये सुन्दरता, सुशीलता अथवा अच्छाई भलाईका कोई पैमाना तै नहीं किया था। विवाहमें जैसी भी औरत मिल जाये उसीके साथ विवाह कर लेते थे। विवाहके अतिरिक्त किसी दूसरे ढंगसे कोई और हाथ आ जाये तो वे उसे भी गनीमत समझते थे और खुलेबन्दों घरमें डालकर रखते थे।

उन्हें समाज मर्यादासे अधिक अपनी आवश्यकताका ध्यान रहता था। वे उद्दंड और विद्रोही थे। समाजने उनपर आलोचना करनी छोड़ दी थी।

सड़क छोड़कर करनैलने एक पगडंडीपर हो लिया। वह चन्द कदम चला होगा कि वृक्षोंमें तीतर बोल उठा। वृक्षोंका वह झुंड करनैलके दाईं ओर पड़ता था। दायें हाथ तीतरका बोलना अच्छा सगुन समझा जाता है। उसे बोलते सुनकर करनैल बहुत खुश हुआ। गांव करीब आ जानेके कारण वह पीछेकी बात भूलकर घरकी बात सोचने लगा। उसका मन क्षोभ और चिन्तासे मुक्त हुआ और वह होठोंसे सीटी बजाने लगा।

पगडंडी खेतोंमेंसे बलखाती हुई गुजर रही थी। मार्गमें नाले पड़ते थे—चौड़े और तंग। चौड़े नालोंके पुल बांध दिये गये थे और तंग नालोंको वह फांदकर गुजर रहा था। कई बार पगडंडी पुरानी रविशको छोड़कर नयी रविशपर चल निकलती थी। वह एक डगपर कभी नहीं चलती। इन्सानने उसे अपनी आवश्यकताके लिये बनाया है और वह उसे आवश्यकता अनुसार बदलता भी रहता है। इसमें वह अपनी सहूलियत जमीन और फासलेकी बचत देखता है। मगर सड़क एक बार जहां और जिस प्रकार बन गयी सदियोंसे उसी प्रकार चली आती है। हजारों आदमियोंका खून पसीना बन कर बहे तब कहीं उसमें परिवर्तन आ सकता है। इतना होने पर भी सड़कसे आदमीकी जरूरत पूरी नहीं होती। उसे देहातके दिल तक पहुंचनेके लिये पगडंडियां बनानी पड़ती है। सड़कका आराम टांगों और मोटरों पर चलनेवाले थोड़े आदमियोंको पहुंचता है। जनताकी अधिक संख्या पगडंडियोंसे लाभ उठाती है। सड़क भी उन्हीं लोगोंके लिये बनी है जिनके लिये समाज। देहाती लोग सड़ककी अपेक्षा पगडंडियों पर चलते हैं। पगडंडियां उनके पांवको लग चुकी हैं। उनके जीवनका अंग बन गयी हैं! खेतोंमें काम करते समय जब उन्हें भूख महसूस होती तो वो इन्हीं पगडंडियोंकी राह देखा करते हैं। कोई पतली कमरिया सुरमई आखोंमें अमृत भरे और सिर पर छांछकी मटकी रखे आती होगी। करनैल भी सड़कसे हटकर पगडंडी पर चलते हुए मंजिलके करीब पहुंच रहा था। जब कि परे कोई हलवाहा अथवा चरवाहा गा रहा था:—

डंडीडंडी जान वालिया मेरा डिगया रूमाल फडा जा।*

(अप्रकाशित उपन्यास "तारो" से।)

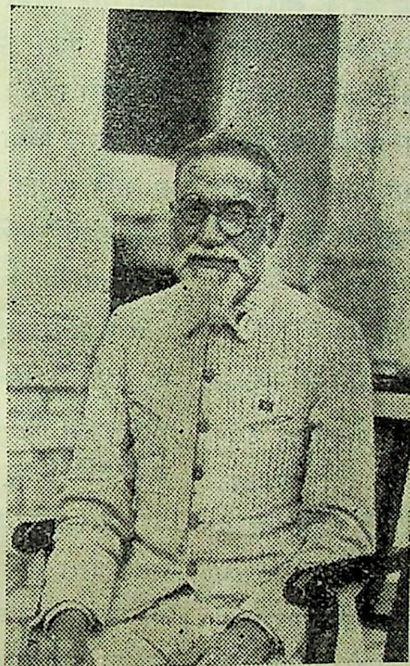
* ऐ पगडंडी पर चलनेवाले राही मेरा गिरा पड़ा रूमाल मुझे पकड़ाता जा।



स्वप्नदर्शी राजा महेन्द्रप्रताप

पण्डित मातासेवक पाठक, सम्पादक दैनिक विश्वमित्र

सम्पादकजीकी आज्ञा हुई है कि राजा महेन्द्रप्रताप सिंहके सम्बन्धमें मासिक 'विश्वमित्र' के पाठकोंके लिये कुछ लिखा जाये। हम लोगोंके सौभाग्यसे राजा साहब अब इतने वर्षोंके पश्चात् स्वदेशको लौटनेमें समर्थ हुए हैं और भारत भूमिपर पदार्पण करनेके साथ ही पुनः अपनी धुनमें मस्त हो रहे हैं, अतएव उनके कार्योंसे ही उनका परिचय प्राप्त होना सर्वसाधारणके लिये अपेक्षाकृत सुगम हो गया है। सन् १९१४ ई०में प्रथम विश्वव्यापी महासमर छिड़ जानेके कुछ ही दिनों पश्चात् राजा साहबने जब बड़ी बड़ी उमंगोंके साथ स्वदेशको स्वतंत्र करनेके उद्देश्यसे भारतसे प्रयाण किया था, उसके पहले इन पंक्तियोंके लेखकको उनके निकट सम्पर्कमें कई मास व्यतीत करनेका जो सुअवसर उपलब्ध हुआ था, उसीके नाते उनके सम्बन्धमें यहां दो शब्द लिखनेका साहस किया जा रहा है। स्वदेशसे मुक्त यूरोप-यात्राके पूर्व राजा साहब 'निर्बल सेवक' नामक साप्ताहिक पत्र देहरादूनसे हिन्दी और उर्दूमें निकालते थे और उससे भी कुछ समय पूर्व स्वसंस्थापित 'प्रेम महाविद्यालय' से उन्होंने 'प्रेम' नामक पत्र निकाला था। इन दोनों ही द्वारा वे जिस ढंगसे 'प्रेम धर्म' का प्रचार किया करते थे, इतने वर्षोंतक विश्वके इतने अधिक देशोंकी धूल छानने और अनेक अवसरोंपर सफलता या असफलताके साथ अनेक विकट कर्मोंमें प्रवृत्त होनेके पश्चात् आज जब पुनः स्वदेशके भीतर कार्यक्षेत्रमें पदार्पण करनेका अवसर लाभ हुआ, तो फिर वही तरंग और पुनः वही मौज। अभी तो वृन्दावनके प्रेम महाविद्यालयसे पुनः 'प्रेम' प्रकट हुआ है, जिसमें उनके 'प्रेम-धर्म' पर धारावाही लेख निकल रहे हैं, किन्तु देहरादूनसे अबकी हिन्दी और उर्दूके संग-संग अंग्रेजी भाषामें भी एक पत्र निकालनेकी योजनाएं बन रही थीं, पता नहीं कि इधर वे किस स्थानतक पहुंच चुकी हैं। 'प्रेम' के किसी भी अंकको उठा कर पढ़ लीजिये और मेरा दावा है कि मेरी भांति ही आप भी राजा साहबको पूरा स्वप्नदर्शी मानने लगेंगे। उनके पुरातन प्रेम-धर्मके भीतर अब 'विश्व-संघ' का भी पुट पड़ जानेसे वह अब पूर्णताको पहुंच चुका है, मुझे तो यही लगता है। राजा साहब चाहें तो किसी कविके शब्दोंमें यों सोच सकते हैं—



राजा महेन्द्रप्रताप

तेलीके बैलसे हम कम नहीं हैं,
फिरे उम्र भर फिर भी वहींके वहीं हैं।

यद्यपि राजा साहबके कार्यकलापसे कविकी इस उक्तिका स्मरण बरबस आ जाता है, किन्तु योगिराज भर्तृहरिजीने कहा भी तो यथार्थ ही है—

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रति हन्यमानाः,
प्रारम्भचोत्तमजनाः न परित्यजन्ति ॥

एक मनचले कविने बहुत दिनोंके गम्भीर विचारके पश्चात् ही यह कहा होगा—

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय,
ढाई अक्षर प्रेमका, पढ़ै सो पंडित होय॥

राजा महेन्द्रप्रतापके प्रेम-धर्मका मर्म जाननेके लिये तो पाठकोंको उनके 'प्रेम' का ही पारायण करना पड़ेगा, यहां तो उनका संक्षिप्त परिचय-मात्र देनेका विचार है।

जन्म, शिक्षा और भ्रमण

राजा महेन्द्रप्रतापका जन्म मुरसान नामक एक छोटेसे राज्यके अधिपति राजा घनश्याम सिंहजीके घरमें १८८६ ई०में १ दिसम्बरको या उसीके लगभग हुआ था। वे राजा साहबके तृतीय पुत्र थे और बाल्यावस्थामें ही हाथरसके राजा हरनारायण सिंहने उन्हें अपनी गोदमें ले अपना दत्तक पुत्र बना लिया। राजा महेन्द्रप्रतापकी शिक्षा अलीगढ़के मोहम्मडन ओरियण्टल कालेजमें हुई, किंतु स्वप्नदर्शी होनेके कारण वे कालेजमें बहुत अधिक समयतक नहीं टिक सके। झींद राज्यके महाराजाधिराजकी एक पुत्रीसे आपका विवाह हुआ था, जिससे एक पुत्र प्रेमप्रताप और एक पुत्री—रत्नको उन्हें प्राप्ति हुई। अपनी रानीके साथ राजा साहबने प्रथम बार विश्वका जब भ्रमण किया था, उसी समय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के महान् आदर्शपर उनकी आस्था अति दृढ़ हो गयी थी। स्वयं राजा साहब ने ही एक स्थानपर लिखा था—"१९०८ ई०में मैं गम्भीर भावसे विचार करने लगा कि अपनी सारी सम्पत्तिको अपने लिये रखना व्यर्थ है। अपने तथा अपने परिवारके लिये निर्वाह योग्य प्रति मास कुछ लेकर और सब राष्ट्रके लिये अर्पण कर देना अच्छा होगा।

राष्ट्रके लिये महान् त्याग

एक दिन राजा साहबने इस सम्बन्धमें अन्तिम निश्चय कर डाला और एक समारोहका आयोजन कर उसके लिये महामना पं० मदनमोहन मालवीय तथा अन्य इष्ट-मित्रोंको निमंत्रण भेज दिया। उसमें यह कहा गया था कि पुत्र उत्पन्न हुआ है, जिसके नामकरण संस्कारकी व्यवस्था की गयी है। किन्तु निमंत्रित सज्जनोंके पधारनेपर उसी सभाके बीच राजा साहबने अपनी सारी सम्पत्ति 'प्रेम महाविद्यालय' द्वारा राष्ट्रको अर्पण करनेका विचार उपस्थित किया और इस विद्यालयको ही अपना पुत्र बता उसके नामकरणकी आवश्यकता प्रकट की। महामना मालवीयजी आदिके आग्रहपूर्ण अनुरोधपर अन्तमें आधी सम्पत्तिका दान करनेका निश्चय किया गया और गांवों तथा मकानोंके रूपमें यह दान करके प्रेम महाविद्यालय नामक शिल्प महाविद्यालयकी स्थापना राजा साहबने कर दी। अपने बाल-बच्चोंके लिये जो आधी सम्पत्ति बचा ली गयी, उसकी आयका भी एक अच्छा खासा भाग किसी-न-किसी रूपमें राजा साहब स्वदेश-सेवाके कार्योंमें व्यय करते रहे हैं, यह जाननेवालोंको विदित ही है।

जर्मनीसे मित्रता

सन् १९१४ के अगस्तमें प्रथम विश्वव्यापी महासमर छिड़नेके साथ ही राजा महेन्द्र प्रतापको यूरोप जानेकी जल्दी पड़ गयी और येनकेन प्रकारेण वे वहां पहुंच भी गये। इस विषयमें अपने एक लेखमें स्वयं राजा साहबने यह लिखा था—"युद्ध छिड़नेके ठीक बाद १९१४ ई० में मैंने समझा कि हमलोग भारतको अंग्रेजोंकी दासतासे स्वतन्त्र करनेके लिये जर्मनीकी सहायताका अच्छी तरह उपयोग कर सकते हैं, इसीसे यूरोपको रवाना हो गया और किसी तरह स्वीजरलैंड पहुंच गया। वहां बर्लिनकी 'भारतीय समिति' द्वारा निमन्त्रणपर जर्मन सरकारसे मिलनेके लिये चला गया। वहांपर जर्मन बादशाह कैसर विलियमने मेरा स्वागत किया और जर्मन वैदेशिक कार्यालयके कार्यकर्ताओंने स्वागत किया और जर्मन वैदेशिक कार्यालयके कार्यकर्ताओंसे बातें हुईं।" राजा साहबके व्यक्तित्वसे कैसर इतने प्रभावित हुए कि अफगानिस्तानके अमीर हबीबुल्ला खांके नाम एक खास पत्र देकर उन्होंने राजा महेन्द्रप्रताप को भारतीय-जर्मन-तुर्की मिशनपर भेज दिया। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस मिशनका प्रधान उद्देश्य अमीरको अंगरेजोंके विरुद्ध युद्ध-घोषणा करनेके लिये तैयार करना था। उस समय तक तुर्कीका सुलतान विश्व भरके मुसलमानों द्वारा खलीफा माना जाता था, अतएव उसके आदेश की अवज्ञा काबुलका मुसलमान अमीर किसी प्रकार न कर सकेगा, यही सोचकर यह मिशन वहां भेजा गया था। राजा साहब इसी अभिप्रायसे जर्मन राजधानी बर्लिनसे अपने अन्य मित्रों और सहयोगियोंके साथ प्रस्थानकर सर्वप्रथम तुर्कीकी राजधानी कुस्तुन्तुनिया पहुंचे, जहां सुलतानने उनका स्वागत किया और काबुलके अमीर हबीबुल्लाके नाम एक पत्र भी दिया। राजा साहब अपने दलके साथ फारसकी राह काबुल पहुंच गये, जहां अमीरने उनके मिशनकी खातिर तो खूब की, किन्तु जर्मनी और

तुर्कीसे सीधा सम्बन्ध न होनेके कारण अंगरेजोंसे उस समय युद्धकी घोषणा करना उनके लिये सम्भव नहीं हुआ। कुछ कालतक काबुलमें रहकर राजा साहब अमीरके हाथ लिखे हुए कैसर और सुलतानके पत्रोंके उत्तर लेकर वहांसे बर्लिनको लौट पड़े। इस बार वे रूसकी राह जर्मनी लौटे और रूसमें उन्होंने लाल सेनाके संस्थापक एवं सेनापति विश्व क्रांतिके प्रचारक ट्राट्स्कीसे पेट्रोग्राडमें भेंट की तथा रूसी सीमा पारकर जर्मनी जानेकी अनुमति प्राप्त की। बर्लिनमें कैसरको अमीर का पत्रोत्तर देनेके उपरान्त राजा साहब तुर्की गये, जहां सुलतानको भी उन्होंने काबुलके अमीरका पत्रोत्तर दिया। पीछे तो कैसरके बुरे दिन आ गये और राजा महेन्द्रप्रताप भी जर्मनीके पूर्वसे सम्बन्ध रखनेवाले कार्यक्रमसे सहमत न होनेके कारण अपने राजनीतिक कार्योंसे संन्यास ग्रहण कर लिया। यह १९१८ ई० की गर्मीकी बात है। सच है—

कौन होता है बुरे वक्तकी हालतका शरीक,
मरते दम आंखोंको देखा है कि फिर जाती हैं।

राजा साहब तो जर्मनीकी सहायतासे भारतको स्वतन्त्र करनेके उद्देश्यको लेकर कैसरसे जा मिले थे, इसलिये जब कैसरकी हार निश्चित प्रतीत होने लगी, तो वे बुडापेस्ट चले गये और वहीं डेरा जमा पुन: अपने प्रेम-धर्मका प्रचार करनेकी रामधुनमें लवलीन हुए। जर्मनीकी पराजय हो गयी थी और यूरोपके देशोंमें क्रान्तिपर क्रांति हो रही थी, अतएव बुडापेस्टसे भी राजा साहबको शीघ्र ही अपना डेरा खड़ा करना पड़ा। वहांसे वे स्वीजरलेंड पहुंच गये।

अफगानिस्तानके मिशनपर

पीछे जब राजा साहबने यह सुना कि अफगानिस्तान के अमीरकी हत्या हो गयी है और उनके तृतीय पुत्र अमानुल्लाह खां गद्दीपर बैठे हैं, तो पुन: जर्मनी चले गये। वहांपर यह सुनते ही कि अमीर अमानुल्लाह खांने अंग्रेजोंसे युद्ध छेड़ दिया है, वे पुनः अफगानिस्तानके लिये चल पड़े। उन्होंने अबकी मास्कोकी राह पकड़ी और वहां रूसके उद्धारक महात्मा लेनिनसे साक्षात्कार करते हुए १९१९ ई० में १२ दिसम्बरको वे काबुल पहुंच गये। तबतक युद्ध समाप्त हो चुका था और अंग्रेजोंको अफगानिस्तानकी पूर्ण स्वतन्त्रता स्वीकार करनेको बाध्य होना पड़ा था। इस तरह अफगानिस्तान जो चाहता था, वह पा गया अतएव अब उसे अंगरेजोंसे वैमनस्य करनेके लिये कोई कारण ही नहीं रह गया था। तब तो राजा साहबको कदाचित् किसी कविकी यह उक्ति ही स्मरण आती रही होगी—

किस्मतकी खूबी देखिये टूटी कहां कमन्द,
दो-चार हाथ जबकि लबे बाम रह गया॥

परन्तु अमीर अमानुल्लाह राजा साहबकी प्रथम अफगानिस्तान-यात्रासे उन्हें जानते थे, अत: राजा साहबकी खातिर करनेमें उन्होंने भी कोई कसर नहीं रखी। अमीरने राजा साहबको चीन, तिब्बत और जापान आदि देशोंको एक खास मिशनपर भेजा और यहींसे उनका प्रधान कार्यक्षेत्र यूरोपके स्थानमें एशिया बन गया और वे चीन और जापानमें 'विश्वसंघ'की अपने स्वप्नकी योजनाका भांति भांति रूपसे प्रचार करते रहे। १९२३ ई० में वे पेकिंगसे उर्गा और वहांसे साइबेरिया और मास्को होते हुए पुनः काबुल लौट गये थे, जहां एक वर्षतक रहे थे। राजा साहब अफगान नागरिक भी बन गये। पीछे वे अमरीका भी गये थे, किन्तु थोड़े दिनों पश्चात् ही जापान पहुंच गये थे, जहां विश्वके समस्त राष्ट्रोंका एक संघ बनानेका स्वप्न वे तबतक देखते रहे, जबतक द्वितीय विश्वव्यापी युद्धमें जापानियोंने ब्रिटेन और अमेरिकासे लड़ाई नहीं छेड़ दी। जब १९३७ ई० में भारतके प्रान्तोंमें प्रथम बार कांग्रेसी मिनिस्ट्रियां बनी थीं, तब युक्तप्रांतके प्रधान मिनिस्टर पं० गोविन्द वल्लभ पन्तने राजा साहबको स्वदेश लौटनेकी सुविधा दिलानेके लिये चेष्टा करनेमें कोई कसर नहीं रखी थी किन्तु वे सफल नहीं हो सके थे।

द्वितिय विश्वव्यापी युद्धमें

राजा महेन्द्रप्रतापने द्वितीय बार विश्वव्यापी महायुद्ध का छिड़ना जापानसे देखा और एक बार फिर स्वदेशको स्वतंत्र करनेके लिये उनके तरंगी मनने जोर मारा था, किन्तु इस युद्धमें जो कुछ उन्होंने किया, उसका ठीक पता नहीं चल सका है। जब जापानने मित्र राष्ट्रोंको आत्म-

समर्पण कर दिया और उसपर जेनरल मेकार्थरने अधिकार जमा लिया, तब १९४५ ई० के १७ सितम्बरके येकोहोमा के तारमें अचानक यह पढ़नेको मिला—"जेनरल मेकार्थरने जापान सरकारसे जिन व्यक्तियोंकी मांग की थी, उनमेंसे सात कल उन्हें सौंप दिये गये। उनमें भारतीय 'आर्य सेना' के अध्यक्ष राजा महेन्द्रप्रताप भी हैं।" पीछे उन्हें छोड़नेके लिये भारतवासियोंकी ओरसे बहुत अनुरोध किया गया, पर तो भी कई महीनेतक वे नजरबन्द हो रखे गये। अन्तमें ८ फरवरी १९४६ को वे सुगामो जेलसे छोड़ दिये गये और उसके कुछ ही दिनों पश्चात् पुनः स्वदेश लौट आये हैं। इस बार तो केवल प्रान्तोंहीमें नहीं, केन्द्रीय सरकार भी कांग्रेसकी थी, अतएव राजा साहबके बेरोक-टोक लौटनेमें कोई विघ्न-बाधा नहीं उपस्थित हुई। यहां आकर अब वे एक बार फिर अपने 'प्रेम-धर्म' का प्रचार करनेमें व्यस्त हैं और विश्वके समस्त राष्ट्रोंका एक संघ बनानेका स्वप्न देख रहे हैं।

भारतीय व्यापारी इतने अशिष्ट क्यों हैं ?

भारतीय व्यापारियों और वाणिज्य व्यवसायियोंकी नीति और मनोवृतिका चित्रण प्रस्तुत लेखमें एक विदेशीने किया है और लेखकके अनुभव कटु भले ही हों, असत्य नहीं। लेख सद्भावनासे प्रेरित होकर लिखा गया है और हमें आशा है यह उपयोगी प्रमाणित होगा।

श्री चार्ल्स न्यूटन

'शिष्टाचार' और 'व्यापार' दोनों एक ही अर्थ रखने वाले शब्द होने चाहिए, लेकिन इस हिन्दुस्तानमें बात प्रायः उलटी-सी है। छोटेसे छोटे मोदीकी दूकान रखनेवाले बनियोंसे लेकर बड़ेसे बड़े व्यापारियों तकका एक ही हाल है। उन सभीकी यही नीति है कि "लेते हो, या चले जाओ।" ऐसा मैं इसलिये नहीं कह रहा हूँ कि मैं यहांके व्यापारियोंकी निन्दा करूं या उन्हें बदनाम करूं। यह तो मेरा निजी अनुभव है और ऐसा कहकर मैं उन्हें असली तस्वीर दिखा देना चाहता हूं और चाहता हूं कि वे वाणिज्य व्यवसायके साथ मनुष्यता भी अपनानेका प्रयत्न करें। मेरे कहनेका यह भी मतलब नहीं है कि यहां किसी व्यापारीमें शिष्टाचार की भावना है ही नहीं। ऐसा कहना तो घोर गैर जिम्मेदारी की बात होगी।

इतना तो सभी स्वीकार करेंगे कि यदि रोजगारी आदमी थोड़ा-सा मानवोचित शिष्टाचार दिखायें तो इसका आश्चर्यजनक प्रभाव वे देखेंगे। अगर उन्हें विश्वास दिलाया जा सके कि हमारी दैनिक आवश्यकताओंकी पूर्ति कर वे हमें न तो कोई खैरात ही बांट रहे हैं और न तो ऐसा करनेसे वे छोटे ही हो जाते हैं तो हालत बहुत कुछ सुधर जाय।

बनिया अपनी दूकानपर तकियेके सहारे बैठकर समझने लगता है मानों वह कोई खैरात बांटने बैठा है। तकियेपर ओंठगा हुआ अनाप शनाप खानेके कारण फूली हुई तोंद सहलाते हुए वह सभी दुखोंसे सन्तुष्ट बेपरवाहीसे बैठता है। अगर कोई देहाती आदमी किसी चीजके लिये दूकानके सामने जाकर खड़ा हो गया और दबी हुई जबान से कोई चीज मांगी तो दूकानदार उसे दूकानमें आकर देख लेनेका 'आदेश' देता है और अब भी वह समझता है कि मानों उसने दूकानमें ग्राहकको बुलाकर उसपर बहुत बड़ी कृपा कर दी है। परिणाम यह होता है कि देहातोंमें बनियेकी चर्चा दबी जबानसे होती है और चौकीदारसे भी अधिक लोग उससे आतंकित रहते हैं। और यही हालत सारे हिन्दुस्तानी बनियोंकी है।

कस्बोंमें अर्द्धशिक्षित सेल्समैन (दूकानपर माल

बेचने वाला) जल्दीमें कोई चीज दिखाना अपनी शानके खिलाफ समझता है। अपनी खुशीसे वह चीज दिखायेगा और तब भी ग्राहकपर कृपा करनेका भाव दिखाते हुए ग्राहकके पास वह स्वयं नहीं जायेगा, ग्राहकको खुद उसके पास बढ़कर जाना होगा। ग्राहकसे वह इतनी लापरवाही और रूखाईसे पेश आयेगा कि ग्राहक की इच्छा होगी कि फौरन दूकान छोड़कर भाग जाय। और अगर ग्राहक रुकना भी चाहे तो रुक नहीं सकता क्योंकि अगर चीज ग्राहकको पसन्द नहीं हुई तो उसके यह पूछनेपर कि अमुक चीज है, अमुक कम्पनी की चीज है या अमुक ढंगकी चीज है, दूकानदार इस रुखाईसे नकारात्मक उत्तर देगा कि ग्राहकको हिम्मत ही नहीं रह जायेगा कि वह किसी और ढंगकी चीज मांगे और सेल्समैनको न तो इतनी बुद्धि है और न इतना शिष्टाचार ही कि वह स्वयं ग्राहकके पसन्द की चीज खुद सुझाये।

बड़ी बड़ी दूकानोंका यह हाल है कि उनमें इतने कम आदमी रहेंगे कि आपको घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ेगी और तब कहीं सेल्समैनको आपके पास पहुंचनेकी फुरसत मिलेगी। प्रतीक्षा करनेके अलावा और कोई रास्ता नहीं है। ग्राहकोंके लिये यह सबसे अधिक उजलतमें डालनेवाली बात है और व्यापारके लिये तो यह घातक है ही। हिन्दुस्तानी दूकानदार गोरी चमड़ीवालोंका गुलाम होता है, भले ही उस के पास छदाम भरकी हैसियत न हो, लेकिन काली चमड़ी वालोंके साथ वह भारी गुस्ताखीसे पेश आता है। भले ही वह कोई अफसर ही क्यों न हो। व्यापारियोंकी यह हीन मनोवृत्ति है। अपनेको ही हीन समझनेकी यह घृणित मनोवृत्ति है।

भारतीय व्यापारियोंमें एक और उजलतमें डालने वाली बात आ जाती है, जब कि उनका व्यवसाय धड़ल्लेसे चल निकलता है। यह है उनकी लापरवाही। अखबारोंके लिये लिखे गये मेरे लेखोंको एक स्कूलका अध्यापक टाइप किया करता था। और वह मुझसे साफ कह दिया करता था कि 'उसे' टाइप करनेकी फुरसत कब मिलेगी। वह तत्काल मेरा काम करनेसे इन्कार कर दिया करता था क्योंकि वह हमेशा अत्यन्त व्यस्त रहा करता था। कभी कभी मुझे घण्टों इन्तजार करना पड़ता था और तब कहीं वह मुझे अपनी फुरसतकी सूचना देता। मुझे लेखोंके लिखनेमें जितना समय लगता, उससे कहीं अधिक समयमें मेरे लेख टाइप हो पाते। लेकिन फिर भी साहित्यिक क्षेत्रमें टाइपके काम की उपयोगिता भारतवासी अभी समझ नहीं सके हैं।

हिन्दुस्तानके अधिकांश वाणिज्य व्यवसायी जो सबसे घातक भूल करते हैं, वह यह है कि वे अपने कर्मचारियोंसे काम तो अधिकसे अधिक लेते हैं, लेकिन वेतन कमसे-कम देना चाहते हैं। परिणाम इसका यह होता है कि सुयोग्य व्यक्ति इसमें आना ही नहीं चाहते। इसलिये आज जो स्थिति है, वह स्पष्ट है। पाश्चात्य देशोंमें पत्र व्यवहार द्वारा जो वाणिज्य व्यवसाय इतना विस्तृत होता जा रहा है, और जिस पत्रव्यवहारकी कला वहां इतनी विकसित हो चली है, वह भारतमें विनष्ट हो रही है, क्यों कि यहांके व्यवसायी समयपर जवाब तक नहीं दे पाते।

छोटे छोटे व्यापारियोंके सम्बन्धमें जो बात कही गयी है वही भारी भरकम व्यापारियों की भी है। वे पसीने की कमाईमें विश्वास करते हैं और इसीलिये हिन्दुस्तानी फैक्टरियों और फार्मों की हालत संसार भरमें शायद सब से खराब है। वे सबसे सस्ती और सबसे भद्दी चीजें बाजार में लाते हैं और वह भी चौंकाने वाले दाममें! वे स्वयं तो आनन्द और विलासमें डूबे रहते हैं और उनके मजदूर दैन्य-दारिद्र्यमें।

मुझे तो बाजारमें कोई चीज खरीदनेके लिये निकलनेमें ही घृणा होती है। लेकिन लाचारी है, जरूरतके वक्त जाना ही पड़ता है। सौदेकी खींचतान, मानापमान, विलम्ब और परेशानी यह सब सोचते हुए बाजार करना रातके दुःस्वप्न-सा दिखायी पड़ता है।

काश हिन्दुस्तानी वाणिज्य व्यवसायी इस बातको महसूस कर पाते कि शिष्टाचारमें उनका पैसा लगता नहीं और यह इतने बड़े काम की चीज है तो वे देखते कि उन्हें कुबेरके भाण्डारकी चाभी मिल गयी है! और समझमें नहीं आता कि व्यापारी इस बातको महसूस करते क्यों नहीं?

भारतमें स्त्री-शिक्षा असफल क्यों ?

सुश्री विद्यावती वर्मा, एम० ए०

बीसवीं शताब्दीका आरम्भ, भारतवर्षके अनेक आन्दोलनोंके साथ हुआ। ये आन्दोलन सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय—प्रत्येक दिशामें घोर परिवर्तनका सन्देश लेकर आये। इनमेंसे बहुतसे लक्ष्य-सिद्धिकी ओर पहुंच चुके हैं। समाजकी ओर देखते ही हमें दिखायी देता है कि छुआ-छूत जैसी देश-व्यापी कुरीतिकी शृङ्खलाएं दिनों दिन ढीली पड़ती जा रही हैं। राजनीतिकी दिशामें अल्पकालमें ही हमने बहुत कुछ पा लिया है। हमारी राष्ट्रीय भावनाएं, मातृभूमिके प्रति प्रेम और आदरकी भावनाएं हमारे हृदयोंमें अधिकाधिक पुष्ट होती जा रही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें भौगोलिक सीमाएं मिटती जा रही हैं, देशोंका शक्ति-सन्तुलन छिन्न-भिन्न हो गया है। परन्तु इन सभी आन्दोलनोंके साथ आरम्भ हुआ स्त्री-शिक्षाका आन्दोलन ऐसी मन्थर गतिसे आगे बढ़ रहा है कि हमें उसकी ओरसे बड़ी दुराशा होने लगी है। हममेंसे बहुतसे ऐसे लोग दिखायी पड़ने लगे हैं, जो आगे बढ़ी हुई धाराको भी पीछे लौटा देनेको प्रस्तुत हो रहे हैं।

दूरसे देखकर, कन्या-विद्यालयोंकी बढ़ती संख्या देखकर शायद यह नहीं लगता कि हमारे भारतवासी आज भी स्त्री शिक्षाके विरुद्ध हैं। पर, शिक्षा-प्रगतिकी तहमें घुस कर देखनेपर हम यह अच्छी तरह प्रमाणित कर सकते हैं कि स्थिति वास्तवमें ऐसी है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होनेका कारण ढूंढ़नेपर हम पाते हैं कि इसमें सबसे बड़ा कारण तो है हमारा उतावला स्वभाव। हम ऊसरमें बीज डाल कर चाहते हैं कि वह बीज पड़ते ही तुरन्त अधिकसे अधिक उपजाऊ बन जाय। वास्तवमें हमारे हृदयमें सदियोंसे यह विचार स्थिर रहता चला आया है कि स्त्रीको मूर्ख रखना ही उचित है, उसे कभी भी स्वतंत्रता न देनी चाहिये। धर्म-ग्रन्थोंकी मुहर इन विचारोंपर लग चुकी थी। इस कारण हमने स्त्री-शिक्षाका आरम्भ एक दुविधामय परिस्थितिमें किया। हम कुपरिणामोंकी आशा करते रहे। और यह मनोविज्ञानका एक सत्य है कि हमारी बाह्य इन्द्रियों पर हमारे विचारोंका प्रभाव दिखायी पड़ता है।

तो, स्त्री-शिक्षाकी प्रगतिमें रुकावट डालनेका सबसे बड़ा कारण तो उससे होनेवाले दुष्परिणाम हैं। पर ध्यान से देखनेपर हम यह पायेंगे कि यह वास्तवमें शिक्षाका दोष नहीं—दोष है हमारी परिस्थितियोंका, हमारी मनोवृत्तियोंका, हमारे देशकी निर्धनता और परतन्त्रता का। हममेंसे अधिकांश भारतीयोंकी आय इतनी अल्प है कि अपनी सन्तानकी शिक्षापर खर्च करनेके लिये प्रायः हमारे पास कुछ भी नहीं बचता। दो से छै पैसे रोज तो हमारे देशकी औसत आय है, प्रत्येक व्यक्तिके लिये। फिर, थोड़ा सा कमानेवाला मजदूर शिक्षाके लिये पैसा कहांसे लाये। उसे तो यह सोचना पड़ता है कि अपने दुधमुंहे बच्चोंको भी किसी काममें लगा दे, जिससे बड़े परिवारका खर्च चल सके। फिर पुत्रको तो वह मनमें भविष्यमें होनेवाले किसी लाभकी आशा लेकर शायद शिक्षा दे भी ले—परन्तु पुत्री को किस आशापर शिक्षा देकर अपने सिरपर एक व्यर्थका भार ले।

मजदूरोंकी श्रेणीसे ऊपर उठे लोग भी शिक्षाके विरुद्ध ही हैं। उनके सन्मुख अर्थका प्रश्न इतना भारी नहीं है। पर उनका विचार यही है कि शिक्षासे कुछ लाभ नहीं। वास्तवमें हमारे देशका शिक्षा-संगठन बहुत ही विचित्र है। हमारी अधिकतर लड़कियोंको ऊंची शिक्षा पानेका अवसर नहीं मिल सकता। बहुत-सी छात्राएं प्राथमिक शिक्षा पाकर ही अध्ययन समाप्त कर देती हैं और इसमें कोई सन्देह ही नहीं कि इनकी शिक्षापर जो समय और धन लगाया जाता है वह व्यर्थ हो जाता है। क्योंकि उन्हें ऐसे वातावरणमें शिक्षा मिलती है, ऐसे ढंगसे शिक्षा मिलती है जो उनके मानसिक विकासके लिये सर्वथा अनुपयुक्त है। ऐसे शिक्षकों द्वारा शिक्षा मिलती है जो अपने वेतनके बदले उन्हें अक्षर और अङ्क-ज्ञान करा देना ही पर्याप्त

समझते हैं। कालान्तरमें ये देवियां केवल अक्षर ज्ञान ही करके, कुछ सस्ते उपन्यासोंका पारायण करके, उन गुणोंको भी खो बैठती हैं, जो अक्षर-ज्ञान रहित महिलाओंमें भी पाये जाते हैं। अर्द्ध-शिक्षा पाकर, विचार और ज्ञानसे रहित ये लड़कियां अपनेको औरोंसे श्रेष्ठ मानना आरम्भ कर देती हैं और बहुधा अपना जीवन, अपने परिवारका जीवन यहां तक कि पास-पड़ोसका जीवन भी विषमय बना देती हैं। इस परिणामको देख कर लोगोंने बिना गहराईमें उतरते ही यह मान लिया कि यह सारा दोष शिक्षाका है और लड़कियोंको मूर्ख रखना ही श्रेष्ठ है।

इसी प्रारम्भिक शिक्षाकी नींवपर माध्यमिक और उच्च शिक्षाकी भव्य इमारत भी निर्मित होती है। किन्तु यह उच्च शिक्षा भी उपयोग रहित रह जाती है। जिनके हाथों में उच्च शिक्षा अबतक है उनमें अधिकांश ऐसे ही लोग हैं, जिन्होंने भारतकी प्राचीन सभ्यताको फटे वस्त्रोंकी तरह फाड़ फेंका है। जिन्हें सोनेमें भी पश्चिमके ही स्वप्न दिखायी पड़ते हैं। इनके द्वारा शिक्षा प्राप्त कर लड़कियां जीवनका वास्तविक उद्देश्य भूल जाती हैं। उन्हें अपने घरोंके वातावरणसे अरुचि हो जाती है। उनकी कल्पनाएं ऊंची उड़ने लगती हैं। वे भूल जाती हैं कि जब देशमें न जाने कितने अभिशापोंका नग्न नृत्य हो रहा है, क्षुधित मातृ-शक्ति हाहाकार कर रही है, खुली सड़कोंपर नारीत्व का अपमान हो रहा है, तब देशकी माताका कर्त्तव्य उसे पुकार रहा है। उसकी आंखोंके आगे भारतीय नारीका सच्चा रूप आता नहीं। वह केवल दर्पणके सन्मुख खड़ी होकर रूप-विन्यास करनेमें ही अपना गौरव समझती है। वह देशकी शक्ति बनना तो दूर रहा—परिवारकी गृहिणी भी नहीं बन पाती। पुस्तकें रटते रटते उसका स्वास्थ्य जर्जर हो चुका होता है, तब वह रंग-रोगनसे उसे ही संवारनेसे अवकाश नहीं पाती। इन परिस्थितियोंमें शिक्षा पानेवाली नारी केवल एक बात सीख पायी है कि वह पुरुषोंके बराबर है—और इस समताका अर्थ उसने गलत समझा। वह भूल गयी कि पुरुष और स्त्री एक दूसरेके पूरक हैं, और इसलिये उनमें विरोधी गुणोंका होना परमावश्यक है। आधुनिक नारीका यह स्वरूप देख कर समाज भयभीत हो उठा। जो सम्पन्न हैं, जिनके घरकी स्त्रियोंका व्यवहारिक दृष्टिसे भाग्य अच्छा है, अर्थात् जिनका जीवन केवल आमोद-प्रमोदके ही लिये है; उन्हें छोड़ मध्यम वर्गके लोग अपनी कन्याओंको शिक्षा देनेसे पीछे हटने लगे हैं।

इसके अतिरिक्त एक और कारण भी है, जो स्त्री-शिक्षा की प्रगतिमें बहुत बड़ी बाधा है। हमारे समाजमें लड़कियों की स्थिति इसलिये गिरी हुई है कि उनके विवाहके अवसर पर उनके पिताको बहुत व्यथा सहनी पड़ती है। पहिले कन्याओंके पिताने आशा की कि शिक्षिता बना कर वे अपनी कन्याको विवाहकी तुलापर गुरु बना कर, उसके लिये बिना अधिक दाम दिये ही योग्य वर पा लेंगे। पर, उनकी आशा निर्मूल सिद्ध हुई। मानवकी अर्थ-लिप्सा सदासे प्रबल रही है और यह तो युग ही अर्थ-युग है। भारतीय समाजने घरमें प्रकाश लानेसे अधिक श्रेष्ठ धन लाना समझा। कन्याका पिता यदि साधारण स्थितिका था तो उसे पश्चात्ताप करना पड़ा। लड़कियोंकी शिक्षा लड़कोंसे अधिक खर्चीली रही। वह सोचने लगा कि यदि उन्हीं रुपयोंको उसने दहेजके लिये जुटा रखा होता तो अच्छा होता। उसने अपने भाई-बन्धुओंको परामर्श देना आरम्भ किया कि लड़कीको मत पढ़ाओ। उसका विचार भी उचित ही था। यदि भारतका पिता अपनी कन्याके लिये एक वर—चाहे वह वृद्ध, मूर्ख हो, कुरूप हो—न जुटा सके तो उसका जीवन दुर्वह हो जाय। साधारण घरकी कन्याको इस समय शिक्षा और पतिमेंसे एकको चुन लेना है।

हमारे समाजकी परिस्थिति कुछ ऐसी रही है कि पुरुष-हीन नारी सदा उपहासकी वस्तु समझी गयी है। स्त्रियोंके लिये व्यवस्था ही कुछ ऐसी रही है कि गृहस्थीका सुख ही उनके जीवनका चरम लक्ष्य रहा है। आज भी अनेक परिवर्तन हो जानेपर भी इस दिशामें हमारे विचार ज्योंके त्यों बने हैं। अतएव यदि साधारणसे कुछ भिन्न स्वभावकी नारी शरीरके सुखसे अधिक, आत्माका मस्तिष्क का सुख चाहे, यदि वह पिताकी गाढ़ी कमाईसे अपने लिये वर खरीदना न चाहे, तो उसकी विडम्बनाकी सीमा नहीं रहती। यहां ही तक होता, तब भी एक बात थी। पर,

लड़कीको देखकर, तो लोग स्त्री शिक्षासे ही भयभीत हो जाते हैं। वह लड़कीके विचारोंकी श्रेष्ठताको हीनता ही मानते हैं। अतः पचास वर्षों की अनवरत चेष्टापर भी, आज तक साधारण श्रेणीके व्यक्ति, कन्याकी शिक्षापर व्यय होने वाले धनको, दहेजके लिये ही बचा रखना उचित समझते हैं। जिस तरहसे विद्युत्-प्रकाश इत्यादि, विज्ञान की अनेक विभूतियां केवल श्रीमानों की पहुंचके ही अन्दर सीमित हैं, उसी तरहसे हमारे अन्तःपुरका प्रकाश-हमारी बहिनोंकी शिक्षा भी धनसे क्रीत विलासके अनेक उपकरणोंमें एक रह गया है। पर, धनवानोंकी संख्या बहुत अल्प है। और अल्प संख्याके अनुपातमें ही शिक्षाका विकास भी है।

आज शिक्षालयोंमें धनी घरकी कन्याओंके अतिरिक्त जो लड़कियां दिखायी भी देती हैं, उनके शिक्षा पानेका उद्देश सराहनीय नहीं है। कुछ तो शिक्षा इस लिये ग्रहण करती हैं कि उससे अर्थ-उपार्जन कर सकेंगी। मानों शिक्षा प्राप्ति अर्थ उपार्जनका साधन मात्र है। कुछ कन्याएं इसलिये स्कूलोंकी शोभा बढ़ाती हैं कि उच्च-शिक्षासे भय मानने वाले पुरुष भी निरक्षर पत्नी नहीं चाहते, अतएव अक्षर-ज्ञान उन्हें पाना ही होगा।

यह हम पहिले ही कह चुके हैं कि उपर्युक्त वातावरणमें शिक्षा न पानेसे स्त्रियां बहुधा अहंकार आदि दुर्गुणोंका शिकार हो जाती हैं। उनका अधिकांश समय अपने बनाव-श्रृंगारमें व्यतीत होने लगता है। और वे गृहस्थीके अयोग्य हो जाती हैं। बहुधा ऐसा होता है कि विचारोंका स्तर साधारण रहता है, पर जीवन का 'स्टैण्डर्ड' बढ़ जाता है। इससे वे भी कष्ट पाती हैं और उनका परिवार भी। इन सब बातोंको देखते हुए लोगोंका उत्साह शिक्षा-प्रसारकी ओर नहीं रह गया है।

इसलिये सबसे पहिले, यदि हम वास्तवमें भारतीय-नारीको शिक्षिता देखना चाहते हैं तो हमें अब वाद-विवाद छोड़ कर निर्माण-पथपर अग्रसर होना पड़ेगा। हमें अपनी मनोवृत्तियां बदलनी पड़ेंगी। अपनी शिक्षा-प्रणालीका संगठन अपने देश और समाजके अनुकूल करना पड़ेगा। राजकुमारी अमृतकौरने एक स्थानपर कहा है कि कालेज और यूनिवर्सिटियोंसे निकलनेवाली प्रत्येक लड़कीके लिये यह अनिवार्य होना चाहिये कि वह तीन वर्ष शिक्षण कार्यमें व्यतीत करें। हम, उनकी इस योजनासे पूर्णरूपसे सहमत हैं। यदि भाग्यकी दयासे हमें एक प्रज्ज्वलित दीपक प्राप्त हो गया है तो उसके प्रकाशको अपने अञ्चलमें न छिपाकर उसे वितरित करना। दूसरोंके पथमें प्रकाश फैलाना ही हमारा कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त हमें यह सोच लेना चाहिये कि हमारे उदाहरणपर आठ करोड़ बालिकाओंके जीवनका निर्माण निर्भर है।

इसके अतिरिक्त समाजको अपनी मनोवृत्ति बदलनी होगी। स्त्री-पुरुषके बीच जो नीच-ऊंचका भाव पुष्ट हो चुका है उसकी जड़ उखाड़नी होगी। स्त्री-शिक्षाका गला घोंट देने वाली कुरीतियों—दहेज, बाल विवाह इत्यादिका नाश करना होगा। हमें समाजको बता देना पड़ेगा कि हम शिक्षाको जीवनके, शरीरके सब सुखोंसे ऊपर की वस्तु मानते हैं। शिक्षाके व्ययकी बचतकरके अपने लिये पति क्रय करना हमारे लिये गौरवकी नहीं, लज्जाका विषय है। हमें अपनी दयनीय दशापर लज्जा आनी चाहिये। क्या पुरुष इतना श्रेष्ठ है कि हमारे गुण, हमारी विद्या सभी कुछ उसके सम्मुख मूल्य-हीन है?

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि हमारे सिर पर एक दो का नहीं, सैकड़ों, बल्कि सहस्त्रोंका भार है। हमें समाजके हृदयसे यदि अपनी हीनताकी भावना मिटानी है तो समुचित रूपसे अपने नारी समाजको शिक्षित बनाना होगा। हम यह जानती हैं कि शिक्षासे केवल स्त्रियोंमें ही दुर्गुण नहीं आये, पुरुष भी उससे बचे नहीं रहे। यदि सच पूछा जाय तो भारतकी संस्कृति-रक्षाका भार स्त्रीके ही कंधे पर है। नकल करनेमें पुरुष स्त्रियोंसे सौगुना सिद्धहस्त है पर पुरुषको समाजने कर्त्ताका स्थान दे रक्खा है, इस कारण उसको दोषोंके लिये हजार बहाने मिल सकते हैं। हमें तो अपनी शक्तिका बल है, और हमें अपना कार्य अपने आप करनेकी चेष्टा करनी होगी। हम यदि चाहें तो साक्षरता प्रचार करनेमें हमें कोई कठिनाई न हो; हां, हमें अपने स्वार्थोंकी थोड़ी बलि देनी होगी।

———

प्लेटका मूल्य

श्री नरेन्द्रलाल शाह 'जगाती' बी० ए० एल-एल० बी०

"तुमने मेरी जान खा ली। कितनी दफा तुम्हारी बेजा हरकतों की वजह से मुझे सरकारी अफसरोंके जूते चाटने पड़े और फिर आज तुम्हारी रिपोर्ट आ रही है। लो, देखो (एक पत्र देकर) क्या लिखा है ? समझाते समझाते थक गया कि कांग्रेस-कांग्रेसके फिजूल पचड़ेमें न पड़ो। कहां इतनी बड़ी अङ्ग्रेजी सल्तनत और कहां ये मुट्ठीभर-पागल कांग्रेसी। भला ये उसे मिटा सकते हैं ? इम्पौसिबिल ! इम्पौसिबिल !! लेकिन तुम्हारा तो दिमाग ही फिर गया। इसलिये आज साफ साफ फैसला हो जाना चाहिये।"

(पत्र पढ़कर)—"मैं अपना ध्येय छोड़नेमें असमर्थ हूँ, चाहे कितना ही कष्ट क्यों न सहना पड़े।"

अपने पुत्र जगदीश कुमार का यह कड़ुवा उत्तर सुन रायबहादुर जमींदार विजयकुमार जलभुन कर कोयला हो गये। वह कड़क कर बोले, "मैंने सांपको आस्तीनमें पाला। तुम्हारी वजह से मेरी रायबहादुरी निकल रही है। मैं ऐसे गद्दारों को अपने घर नहीं रख सकता।" और उठकर धड़-धड़ातेहुए चले गये।

× × ×

दो वर्ष पश्चात्——

"बहन जरा पानी पिला दो।" एक नरकङ्कालने टूटी-फूटी झोपड़ीके आंगनके चबूतरेमें बैठते हुए याचनाकी।

इस बीच दुनियामें बहुतसे परिवर्तन हुए। विदेशकी बातें छोड़िये अपने ही देशमें कांग्रेसका आन्दोलन छिड़ा जिसमें सोशलिस्ट जगदीश कुमार भी गिरफ्तार हो गया। × × × सरकारने किसानोंको जुर्माना लगाया और न देनेपर गाय-भैंसे जब्त कर लीं। उधर वर्षा समयानुकूल न हुई, जिससे खेती-बाड़ी सूख गयी। किसान चक्कीके दो पाटों के बीचमें फंस कर बुरी तरह पिस गये। एक तरफसे अंग्रेजी सरकार और उसके पिट्ठुओंका दमनचक्र तथा मनमाना अत्याचार ; दूसरी तरफसे दैवी मार ; खेतीका सफाया।

एक टूटी-फूटी झोपड़ीके आंगनमें एक श्याम वर्ण कृषक युवती धूप ले रही थी। वह खिन्न-चित्त मुंह लटकाये बैठी थी। लाज-निवारणार्थ उसने एक फटी-पुरानी, मैली-कुचैली, छिद्रदार धोती पहन रखी थी जिसके छोटे-बड़े छिद्रोंसे उसका यौवन झांक रहा था। उसके समीप ही दो नन्हें नन्हें दुधमुंहे बालक नङ्ग-धड़ङ्ग मिट्टीमें लोट रहे थे। पूसका महीना था किन्तु इन मासूम बच्चोंको तन ढकने के लिये कपड़ेका एक चिथड़ा भी नसीब नहीं।

इसी कृषक युवतीको सम्बोधित कर नरकङ्कालने पानी की याचना की थी। युवती झोपड़ीके अन्दर गयी और एक टूटा मिट्टीका घड़ा उठा लायी जिसमें पानी रखा था। उसने घड़ा तिरछाकर पानीकी धार फेंकी और नरकङ्कालने अंजुली भर खूब पिया। पानी पिलाते समय युवती और नरकंकालकी आंखें चार हुईं। युवतीके नेत्रोंमें क्षोभ, निराशा और गरीबीकी नग्नता झांक रही थी। नरकङ्कालने उन नयनोंमें पायी भावी क्रान्ति।

देखते देखते बच्ची रोने लगी, "लोतीऽऽ, लोऽतीऽ, मांऽ लोऽती।"

बच्चीकी तानमें बच्चेने भी सुर मिलाया, "म्मांऽऽऽ, म्मांऽऽऽऽ दू ऽऽ दूऽऽ।"

बच्चा कोई डेढ़ और बच्ची तीन-चार वर्षकी प्रतीत होती थी। अभी तक तो युवती सुना, अनसुना करती रही, किन्तु कबतक ? जब बच्चोंकी रोते रोते हिचकियां बंध गयीं तो मांका हृदय पिघल गया। वह भी अपनी बेबसीपर रोने लगी।

नरकङ्कालसे यह न देखा गया। वह चबूतरेसे उठकर युवतीके पास आया और उसे सान्त्वना देने लगा, जिससे उसे कुछ धैर्य बंधा। × × +

तदुपरान्त बहुत-सी दुःख-सुखकी बातोंके बाद युवती ने सिसकते सिसकते कहा "आज तीन दिनसे अन्नका एक दाना भी पेटके अन्दर नहीं गया।"

यह सुन नरकङ्काल एक दीर्घ निश्वास छोड़ रह गया। युवतीने भूखे बच्चोंको गोदमें लिया और अपना एक एक

स्तन उनके मुंहमें डाल दिया। वे चप-चप चूसने लगे, किन्तु दूध निकलता ही न था। निकले कहांसे ? कङ्कालसे ? तीन दिनसे भूखी मां से ? तब ? बच्चे पुनः धरतीपर लोट लोटकर रोने लगे। बच्ची क्षुधाग्नि तृप्त करनेके लिये टुकुर टुकुर मिट्टी ही चबाने लगी। बच्चा रोते रोते वहीं जमीनपर ही सो गया। मां देखती रही, देखती रही। क्या करती बेचारी। सिर्फ एक आह निकालकर रह गयी।

नरकंकाल सांझ तक युवतीको धीरज देता रहा तथा उसके लाड़ले लालोंको गोदमें खिलाता रहा। जब रजनीने अपनी बाहें फैला दीं तो नरकंकालने युवतीसे कहा, "यदि तुम्हें कोई असुविधा या तकलीफ न हो तो मैं आज रात यहीं कहीं एक कोनेमें पड़ा रहूँगा।"

युवतीकी नरकंकालसे क तरहकी स्वंयही कुछ हार्दिक सहानुभूतिसी उत्पन्न हो गई थी। किन्तु अपनी दीनावस्था देख वह कुछ असमंजसमें पड़ गयी। वह रुकते रुकते बोली, "तुम भूखे किस त..................।"

नरकंकालने बीच हीमें बात काट कर कहा, "नहीं नहीं ऐसा क्यों सोच रही हो। इसकी रत्ती भर भी परवा न करो। मुझे भूख नहीं है। मैं भी तुम्हारी ही भांति......।"

"लो, वो, आगये"। युवतीके चेहरेमें विषाद मिश्रित प्रसन्नता झूमने लगी। निराश नेत्रोंमें आशाकी धुंधली ज्योति खेलने लगी। हृदयमें धुकधुकी होने लगी। युवतीका पति लड़खड़ाते हुए पहुंचा और धमसे बैठ गया। कमजोरी और थकावटसे वह चूर चूर हो रहा था। उसकीसांस जल्दी जल्दी चल रही थी।

जब नरकंकालने रामधनको अभिवादन किया तो वह उसे आंख फाड़ कर देखने लगा। उसकी समझहीमें न आया कि यह अनजान व्यक्ति कौन है। तत्पश्चात् युवतीने रामधन को नरकंकालका बाहरी परिचय दिया जितना उसने दिनभर में उससे सुना था। × × × ×

"आप क्या करते हैं भैय्या!" रामधनने पूछा।

"क्या बतांऊ भैय्या", नरकंकालने उत्तर दिया, "मैं भी नसीबोंका ठुकराया हुआ बेगार हूँ। आपही की भांति गरीब हूँ।"

तत्पश्चात् इधर-उधरकी बहुतसी बातें हुईं और दोनों में आत्मीयता छा गयी। + + + फिर युवतीने रामधनका खाली हाथ देखकर डरते डरते दबी जबानसे पूछा, "बच्चों के लि–ये ....।" फिर आपही वह रुक गयी।

"चमेली", रामधनकी आंखें भर आयीं। उसने दो सख्त बासी रोटियां, जिसे कुत्ते भी नहीं सूंघते, अपने कमरमें खोंची धोतीकी गांठमेंसे खोल कर आगे बढ़ा दिये। चमेलीकी रही सही आस भी हिम सम पानी पानी हो गयीं। वह रोने लगी। रोनेके सिवा और धराही क्या था। रोनेसे ही कुछ शान्ति मिलती, दिल हलका होता।

"तुमने तो कुछ खाया होगा?" चमेलीने रोते रोते पूछा। रामधन मूक रहा।

"कुछ खाया ?"

रामधन पुनः मूक रहा। फिर जरा देर बाद सोचकर बोला, "हां, मार खायी।"

"मार !"

"हां, चमेली।"

अब चमेलीके धैर्य्यका बांध टूट गया। उसका कलेजा मुंहको आगया। वह सिसक सिसक कर रोने लगी। रामधन शान्त था। नरकंकाल विचारमग्न, प्रेमियोंकी मिलनकी सुखदायिनी रात्रिमें घोर सन्नाटा छाया था। इस पर पूसकी रात; कड़ाके की ठन्ड ; हिमसम तुषारपात और रामधनके घरका चूल्हा शान्त। सिर्फ चमेलीकी सुबकियां रात्रिकी निःस्तब्धता भंग करनेका व्यर्थ प्रयास कर रही थीं।

"न रो चमेली, भागमें यही लिखा होगा।" रामधनने चमेलीके सूखे केशों पर हाथ फेरते हुए धीरज दिया। "जा आग जला, बच्चोंको रोटियां खिला।"

चमेली उठी। आग जलाई। बच्चोंको फटी गुदड़ीमें लपेट आगके समीप रख दिया। फिर एक एक बच्चेके हाथ रामधनकी लायी एक एक रोटी पकड़ा दी। तत्पश्चात् रामधन, चमेली और नरकंकाल टिमटिमाती आगके तापसे ठण्ड भगानेकी चिन्तामें लगे। बैठे बैठे चमेलीने फिर वही दुखभरी गाथा छेड़ दी क्योंकि उसका दिल न माना, "मार क्यों खायी।"

"मार! क्या बताऊं चमेली। भाग ही फूटा हुआ। तुम जानती ही हो कल उतनी रात गये मालिकके यहांसे

बुलावा आया था। इसलिये आज सवेरे में यहांसे सीधे वहीं पहुंचा। इतनी जल्दी पहुंचनेपर भी वहांके नौकर-चाकरों ने मेरी छातीपर मूंग दलनी शुरू की। 'नवाबजादे अब पधार रहे हैं। दिमाग चढ़ गये...।' दिलका गुबार निकालने के बाद मुझे बैलकी तरह कामपर जोत दिया। आज वहां दावत थी। बड़े बड़े साहब लोग आये हुए थे। कामके मारे चूना-सुरती फांकनेकी भी फुरसत न मिली। एक तो पहले भाग ही खोटा हुआ, तिसपर मुझसे एक चीनीका पलेट हाथसे फिसल कर टूट गया। टूटना ही था कि मारे झापड़ों के मेरी खोपड़ी गंजी कर दी। 'तेरे मां की......। तेरे बापका......। तेरी औरत......। तेरी बहन......।' एक से एक बुरी गाली देकर मेरा सराध कर दिया। मैं उस समय खूनकी घूंट पीकर रह गया। क्या करता? परवश ठहरा। चुपचाप चोटीसे एड़ी तकका पसीना बहाता रहा। सांझ हो गयी। भूखके मारे उठनेकी ताकत न रही। आंखों के सामने अन्धेरा छाने लगा और झिलमिलाहट सा होने लगा। फिर भी ढेरों काम सिरपर। उसके ऊपर मालिकसे लेकर नौकरों तककी झिड़कियां और लाल-पीली आंखें। रह-रह कर तेरे और तेरे बच्चोंकी याद सताती थी। अन्तमें जब पेटमें चूहे कूदने लगे और मैंने खाना मिलनेका और कोई चारा न देखा तो मालिकसे खाना मांगनेकी बेअदबी की और......सैकड़ों बातें सुननी पड़ीं। आह! उस समय मुझे मालकिनकी याद आयी। दयाकी मूरत थीं। बेचारी अगर वे जिन्दा होतीं तो वे यह दशा......। खैर, जाने दो। क्या फायदा उन बातोंको सोच कर अब? बेचारी सरगमें चली गयी। मैं देख रहा था नौकर-चाकर मालिकका कितना सामान चुरा रहे थे, लेकिन मेरी खबर कौन लेता......।

"घरके आंगनमें चार-पांच रोटियां पड़ी थीं। मुझसे न रहा गया। अपने मनको कितना ही वशमें रखनेपर भी मेरे हाथ अपने आप ही उन रोटियोंको उठानेके लिये आगे बढ़ गये, सिरफ बच्चोंकी खातिर। मैंने रोटियां उठाई ही थीं कि धम्से पीछेसे मुझे एक जोरका धौल और धक्का लगा जिससे मैं चारों खाने चित्त धरतीपर जा गिरा। उसके बाद क्या हुआ मुझे कुछ होश न रहा। जब बादको होश आया तो क्या देखता हूं कि जमीन खूनसे लाल हो रही है और कपालमें दरद हो रहा है। आंखों तले अन्धेरा छा रहा है। मैंने कपालमें हाथ लगाया तो क्या देखा कपाल फट रहा है और उसमेंसे खून बह रहा है! दरदके मारे मैं उठ न सका और वहीं सर थाम कर बैठा रहा। कोई पन्दरा-बीस मिनट बाद मालिक टहलते हुए उधरसे निकले और मुझे वहां बैठा देखा तो पारा चढ़ गया। उन्होंने आव देखा न ताव गुस्सेमें बोले, "उतना काम रखा है और तू यहां बैठा आराम कर रहा है? हरामीका बच्चा। काम करनेको बुलाया और पलेट तोड़ कर पूरा सैट खराब कर दिया। मेरे पांच सौ रुपयेपर पानी फेर दिया। पाजी, कल तुझे तीस रुपये मेरे पलेटका मूल्य चुकाना होगा। मैं अपना मैनेजर भेजूंगा, समझा। उठ यहांसे।" इतना कह वे चले गये। मैं भी चुपचाप अपना सा मुंह लेकर आ गया। रास्तेकी एक नाली में पड़ी हुई मुझे ये दो रोटियां दिखाई दीं। वही मैं बच्चोंके लिये उठा लाया। क्या करता।" कहते कहते रामधन रोने लगा। उसने अपने सिरपर लपेटी पगड़ी खोली तो कपाल पर घाव नजर आया। घाव गहरा था। कपाल फट गया गया था और अभीतक कुछ कुछ खून निकल रहा था। यह देख चमेली फूट फूट कर रोने लगी।

"जरा पानी पिला दे चमेली।"

चमेली कोनेसे घड़ा उठा लाई तो देखा पानी भी खतम हो गया था। एक बूंद भी उसमें न बचा था। चमेली घड़ा भरने बाहर जाने लगी तो रामधनने रोक दिया, "रहने दे चमेली, प्यास नहीं है, बैठ जा।"

ओफ! भूखे मानवोंकी यह दुर्दनीय जीवन लीला देख नरकंकाल दो बूंद आंसू छोड़ तत्काल रात्रिके अन्धकार में निकल गया।

+ + +

दूसरे दिन फिर वही हमारा चिरपरिचित नरकंकाल कुछ खाना लेकर रामधनके घर पहुंचा और कमरेके अन्दर प्रविष्ट हुआ ही था कि उसके हाथसे समस्त वस्तुएं छूट कर भूमिपर बिखर गयीं। वह पाषाण-मूर्ति बन गया। आह! आज गरीबी और भूखका नग्न नृत्य हो रहा था। कितना हृदय-विदारक दृश्य था वह! बेचारे रामधनके ऊपर तो

पहाड़ ही टूट पड़ा। उसके घरका चिराग-भविष्यका सहारा आज भूखकी ज्वालामें भस्म हो सांसारिक झंझटोंसे दूर खड़ा मुस्कुरा रहा था। बच्चेकी निर्जीव देह उनके आगे पड़ी थी और वे रो-धोकर गम दूर करनेकी निष्फल चेष्टा कर रहे थे।

ओफ! मानव भी कितना दुर्बल जीव होता है। हाय रे पापी पेट! कहां तो उनके प्यारे पुत्रकी मृतक देह उनके आगे पड़ी थी और वे विलख रहे थे; और कहां नर-कंकालके हाथसे खाना छूटना था, वे अपना दुख-दर्द भूल कच्ची-पक्की चीजोंपर भूखे भेड़ियेकी भांति टूट पड़े और आंख मारते मारते जमीन साफ कर दी। इस समय वे अपनी दुधमुंहीं बच्चीको भी भूल गये। 'एक दिन' ने उनकी कोमल मानवीय भावनाओंको नष्ट कर दिया। वही चमेली जिसे कलतक अतिथि सेवाका ख्याल था और वही रामधन जो सिर्फ बच्चोंके लिये रास्तेकी नालीमें पड़ी दो रोटियां उठा लाया; आज क्षुधाग्निने उन्हें अपनी जानसे भी प्यारी बच्चीको भुला दिया। आज उन्हें 'कुछ' अपनी उदर-तृष्णार्थ प्राप्त हुआ था। खा चुकनेपर उनकी मूक दृष्टि मूक भावोंकी भाषामें नरकंकालके लिये कृतज्ञता प्रकट कर रही थी।

उधर लाडली बच्ची निद्रादेवीकी गोदमें मग्न थी, बच्चा स्वर्गमें विचरण कर रहा था, रामधन और चमेली दुनियाके झमेलेमें पड़े थे और इधर नरकंकालके हृदय पटलमें उथल-पुथल मच रही थी। सैकड़ों विचार उसके मस्तिष्कमें मंडरा रहे थे—

'मानव मानवके मध्य इतना विषम भेदभाव क्यों? यह समाजका कैसा अत्याचार? क्यों एककी कमाईपर दूसरा गुलछर्रे उड़ाता है? कोई दाने दानेको मुंहताज हो और कोई मौजसे लेटे लेटे आरामकी जिन्दगी बिताये? किसीको पेटभर खाना भी प्राप्त न हो और किसीको अत्यधिक खानेसे बदहजमी हो और डाक्टर-वैद्योंसे हाजमेंकी गोलियां तथा चूर्ण लेना पड़े? कोई खानेसे मरे, कोई फाकेसे? यह कैसा न्याय? यह कहांकी मनुष्यता? × × × × क्यों नहीं एक ऐसे सामाजिक प्रणालीकी स्थापना की जाय जिसमें सब मानव मानव बराबर हों। ऊंच-नीच अमीर-गरीबका भेदभाव न रहे। हर एकके लिये एक सी सुविधाएं प्राप्त हों। बेकारी, गरीबी, भूख सदाके लिये खत्म हो जाय। हर कोई……'

"बैठ जाओ।" नरकंकालकी विचारधाराको तोड़ते हुए चमेलीने कहा। वह चौंका जैसे उसने कोई दुःस्वप्न देखा हो। वह मुंह बाये खड़ा देखता रहा।

"बैठो।" चमेलीने पुनः मृदु भाषामें कहा।

नरकंकाल बैठ गया, बिलकुल मशीनकी भांति। विचारलीन। इसी बीच बाहरसे किसीने पुकारा, "रमियां, अबे रमियां।"

शेरकी गरज सुन जैसे हिरन चौंक पड़ते हैं वैसे ही यह आवाज सुन कर रामधन और चमेली चौंक पड़े। यह राय बहादुर जमींदार विजयकुमारके जालिम मैनेजरकी आवाज थी। रामधन भयभीत हो बाहर गया और मैनेजरको बड़ी दीनतासे झुक कर हाथ जोड़े, किन्तु उसने रामधनके ऊपर एक उड़ती हुई नजर डाली और प्लेटका मूल्य मांगा।

"हजूर, गरीब परवर", रामधनने हाथ जोड़कर गिड़-गिड़ा कर विनती की, "दया कीजिये सरकार, अकाल…।"

"अकालका बच्चा, खामोश, मुंह लगता है। मैं यह सुनने नहीं आया हूं।" मैनेजरने कड़क कर कहा, "रुपया ला रुपया।"

रामधनने सिरकी पगड़ी उतार कर मैनेजरके चरणोंमें रख दी और डबडबाई आंखोंसे विनती की, "माई-बाप, मालिक, तीन दिनसे…… ।"

मैनेजरने ठोकर मार कर रामधनकी पगड़ी बीस हाथ दूर फेंक दी और कड़क कर धमकाया, "दूर रह, नीच, बदमाश, तूने मुझे अपना नौकर समझा है जो सौ सौ बार तेरी मड़ैयाके चक्कर लगाऊं? तुझे प्लेटका मूल्य अभी देना होगा, यहीं पर।

"मालिक। दूंगा, कुछ मुहलत…… ।"

"मुहलत! अच्छा। आज नौ बजे राज तक खुद मालिकके घर रुपये हाजिर करना। तुझे इतना समय दे दिया, इससे ज्यादा और मैं कुछ रियायत नहीं कर सकता। और अगर रुपया नहीं लाया तो जानता है, क्या होगा? बेदखल।" इतना कह हवामें छड़ी घुमाते हुए मैनेजर अपने लठैतके साथ चला गया।

अन्दर चमेली और नरकंकालने भी सुना, लेकिन क्या कर सकते ? दिल मसोस कर रह गये। बेचारा रामधन अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे मैनेजरको बुत सा टकटकी लगाये देखता रहा। जब वह आंखोंसे ओझल हो गया तो एक आह निकली 'बे-द-ख-ल' और वह वहीं सिर पकड़ कर रोने लगा। × × × ×

सायंकालको मार्तण्डने दिनभरका चूसा हुआ रक्त उगल दिया, और रजनीने चन्द्रिका रूपी मलहम लगा कर मार्तण्डके घावोंको भरनेकी चेष्टा की।

बालककी मृतक देह अभीतक वहीं पड़ी थी। रामधन कमरेके एक कोनेमें पड़ा अपनी बेकसीपर आंसू बहा रहा था। चमेली दूसरे कोनेमें अपने लालकी लाशको हृदयसे चिपकाये सिसक रही थी। नरकंकाल अपनी ही उधेड़बुन में रत हो रहा था।

अन्तमें नरकंकालने ही मृदुलतासे चमेलीसे कहा, "बहन।"

'बहन !' नरकंकालके मुंहसे इतना मधुर सुनाई पड़ा कि चमेली पल भरके लिये अपना सारा दुख-दर्द भूल गयी। चमेलीने आनन्दित विषादमय आनन तथा सजल नेत्रोंसे नरकंकालकी ओर निहारा।

"मैं तुमसे एक भीख मांगता हूँ, दोगी।"

"भीख ! मुझसे ! मेरे पास धरा ही क्या है जो मैं तुमको कुछ दे सकूं।"

"बहन, मैं झूठ नहीं कह रहा हूँ। वह चीज तुम्हारे ही पास है। निराश न करना।"

"अगर होगी, तो मैं जरूर दूंगी।"

"दोगी बहन ?"

"हां, भैय्या।"

'भैय्या', सुन नरकंकाल पुलकित हो गया। कैसा जादू भरा शब्द था भैय्या।

"अपने लाड़ले लालकी लाश मुझे दे दो। मैं खुद दाह-क्रिया कर दूंगा। ना, न कहना बहन।"

चमेलीने अपनी आधी धोती फाड़ी और लाशके ऊपर डाल कर छलछलाते नेत्रोंसे नरकंकालके हाथोंमें कांपते हाथोंसे सौंप दिया। "भैय्या, तुम बड़े भले हो। तुम्हारा नाम क्या है, तुम किस भागवान्‌के बेटे हो जो तुम दूसरोंकी भलाईमें, सिरमें कफनी बांधे रहते हो। अपना जीवन कुछ नहीं समझते हो।"

"मैं ?!" नरकंकालके चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। एक रंग आता, एक रंग जाता। वह मौन रहा।

"नहीं बताओगे भैय्या ? बहनसे इतना छुपाव।"

ऐसा न सोचो बहन। मेरा नाम जगदीश है और मैं तुम्हारे जमींदार साहबका पुत्र हूँ। इतना वह सब एक सांसमें कह कर विद्युत् गतिसे लाशको लेकर रात्रिके अन्धकारमें खो गया। रामधन और चमेली पुकारते ही रह गये। जब वह कहीं नहीं दिखलाई दिया तो वे आंखें फाड़ फाड़ कर विस्मित हो एक दूसरेका मुंह देखने लगे।

× × ×

रात्रिके सवा नौ बज रहे हैं। रोशनीसे कमरा आंखों में चकाचौंध पैदा कर रहा है। राय बहादुर विजयकुमार भोजन कर रहे हैं और एक वेश्या बगलमें बैठी गलबहियां डाले लाल लाल मदिराका छलकता प्याला झूम झूम कर उन्हें बीच बीचमें पिलाती जा रही है। एक ओर छप्पन प्रकारका भोजन और दूसरी ओर सुन्दर, चञ्चल, चटकीली, यौवनसे ओतप्रोत वेश्या; साथमें नाजुक कलाईसे ढला हुआ छलकता प्याला विजयकुमारको मदमस्त बना रहा है। वे कभी एक ग्रास वेश्याके मुंहमें डाल देते हैं तो कभी उसे बाहुपाशमें जकड़ कर चूम लेते हैं। × × × ×

इस आनन्ददात्री प्रेम-क्रीड़ाकी रात्रिके बीच राय बहादुर विजयकुमारका नौकर जवाब लाया, "सरकार, आपसे एक दीन-हीन वैद्य इसी समय मिलना चाहता है। कहता है, वह सरकारके वास्ते कुछ दवा लाया है।"

"कह दो सरकार नहीं मिल सकते। फुरसत नहीं है।"

नौकर लौट कर दरवाजेके पास पहुंचा ही था कि वेश्याने विजयकुमारसे कहा, "पूछ तो लीजिये, कैसी दवा है ?"

तत्काल विजयकुमारने नौकरको वापस बुला कर हुक्म दिया, 'देखो, वैद्यसे पूछना कैसी दवा है। जाओ।"

नौकर चला गया और थोड़ी देर बाद लौट कर जवाब लाया, "सरकार, वैद्य कह रहा है, इस दवाके सेवनसे

हमेशा यौवन ही यौवन रहता है और कभी बुढ़ापा पास फटकने नहीं पाता ।"

"कह दो, नहीं चाहिये । जरूरत नहीं है ।"

"वाह ! यौवन किसे नहीं चाहिये मालिक ।" वेश्याने कहा, "जरा बुला कर देखिये तो सही ।"

"अच्छा, अन्दर भेजो ।" × × × ×

वैद्यने मस्त हाथी सी मस्तानी चालमें कमरेके अन्दर पदार्पण किया । उसके हाथोंमें भली भांति कपड़ेसे लपेटी हुई एक बड़ी सी वस्तु थी जिसे उसने धीरे धीरे खानेकी मेजके एक तरफ रख दिया और दमके दममें एक शब्द बोले वगैर चपला सम कमरेके बाहर हो गया । पलभरके लिये कमरेमें घोर निस्तब्धताका राज्य छा गया । कमरेमें उपस्थित व्यक्ति दंग रह गये । सब एक दूसरेका मुंह ताकने लगे । यहांतक कि किसीका मुंह भी न खुला । आखिर एक पेग और चढ़ा कर विजयकुमारने उत्साहपूर्वक डरते डरते कपड़ा हटाया तो वेश्या भयभीत हो एक चीख मार कर दूसरे कमरेमें भाग गयी । अन्य उपस्थित व्यक्ति आश्चर्यचकित हो दांतों तले उंगली दबाने लगे । राय बहादुर विजयकुमारकी नशेकी खुमारी हिरन हो गयी । वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो दाय-बाय झांकने लगे । एक कमसिन बच्चेकी लाश ! लाशके हाथमें एक लिफाफा ! लिफाफेपर राय बहादुर विजयकुमारका पता ! विजयकुमारने एक बार फिर साहस बटोर कर कांपते कांपते लिफाफा उठा कर खोला तो भीतर एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था—

"पिताजी,

यह लाश आपके प्लेटका मूल्य है जिसे रामधनने अपने एक मात्र लाड़ले पुत्रकी बलि देकर चुकाया । सहर्ष स्वीकार कीजिये ।

आपका निर्वासित पुत्र,
वैद्यके रूपमें,
जगदीश ।"

पत्र विजयकुमारके हाथसे छूट गया । नाच-रंग फीका पड़ गया । एक तरफ छप्पन प्रकारके भोज्य पदार्थोंसे सजी थाल और दूसरी तरफ भूखसे तड़पते हुए जान देकर एक कमसिन बालककी लाश ।

चारों तरफ घोर सन्नाटा छा गया और राय बहादुर विजयकुमारके कानोंमें यही गूंजने लगा—

'प्लेटका मूल्य, प्लेटका मूल्य...... ।'

स्मरण शक्तिके चमत्कार

श्री विनायक नानेकर

यह मजाक किसी स्कूलमें हुआ था और ऐसे मजाक स्कूलोंमें होते ही रहते हैं मगर इस मजाकसे हमारे विषय की पुष्टि होती है । मजाक यह है कि किसी 'साइन्स'के शिक्षकने एक विद्यार्थीसे पूछा, HNO_3 किस वस्तुका उपशब्द है ?" विद्यार्थी खड़ा हुआ और विचार करने लगा । मास्टरने कहा जल्द बताओ वरना 'मालूम नहीं' कह दो । बेकार समय बरबाद न करो । विद्यार्थीने कहा, मुझे मालूम है और वह मेरी जबानपर है मगर इस वक्त याद नहीं आ रहा है । शिक्षकने भयसूचक अभिनय करते हुए कहा—"क्या कहा" ? HNO_3 तुम्हारी जबानपर है ? जल्दी करो । बाहर जाकर थूक आओ । वह तेजाब है और देरी करनेसे तुम्हारी जबान जला देगी । स्कूलके लड़कोंकी हंसीका अन्दाजा आप लगा सकते हैं ।

× × ×

कहते हैं कि एक समय बादशाह अकबरने बीरबलसे पूछा, बीरबल तुम्हारी बीबीके हाथमें कितनी चूड़ियां हैं ? बीरबलने जवाब दिया, जहांपनाह,मेरी बीबीके हाथमें उतनी ही चूड़ियां हैं जितनी आपके शयनगृहकी सीढ़ियां हैं । लेकिन न अकबरने कभी सीढ़ियां गिनी थीं न बीरबलने चूड़ियां । तात्पर्य यह है कि ऐसी छोटी छोटी बातोंपर कोई भी ध्यान नहीं देता क्योंकि बिना किसी प्रयोजनके कोई उस तरफ नजर नहीं उठाता और उठाता भी है तो उसे मस्तिष्कमें जगह नहीं देता ।

दूसरे ऐसे लोग होते हैं जो एक नजरसे देखने पर ही नाम याद रख सकते हैं मगर उसका स्थान और पता याद नहीं रख सकते। किसीके पूछनेपर कि अमुक दूकान कहां पर है; लोग कह बैठते हैं, भाई कहीं 'साइनबोर्ड' जरूर पढ़ा है मगर ठीक याद नहीं आ रहा है। उसी तरह कोई आदमी मुद्दतके बाद रास्तेपर दिखायी पड़े तो दिमागमें खलबली मच जाती है कि इस श॰सको कहीं देखा है। कहां और कब यह ठीक याद नहीं आता। नाम शायद 'म' मा से शुरू होता है मगर ठीक याद नहीं आता। यही हालत दूसरे शख्सकी भी होती है। दोनों एक दूसरे की ओर इस आशासे देखते हैं कि वह कुछ बोलेगा। मगर दोनों अपने अपने रास्ते चल देते हैं और कोई नहीं बोलता।

आप कहीं बाहर जानेकी गड़बड़ीमें हों और पिताजीने कोई किताब इस बीचमें आपको दी और हिदायत कर दी कि सम्हाल कर रखना। आप कह देते हैं, 'बहुत अच्छा'। और किताब रखकर बाहर चल देते हैं। मगर दूसरे ही दिन जब पिताजी उस किताब की मांग करते हैं तब आप उसे ढूंढते ढूंढते हैरान हो जाते हैं मगर वह मिलती नहीं। आपको याद नहीं आता कि आपने उसे रखा कहां है। किताब देते वक्त पिताजीने क्या कहा था वह शब्दशः याद है मगर किताब रखनेकी जगह साफ भूल गये न जाने कहां गायब हो गयी, इसी सोच विचारमें आप परेशान हो जाते हैं।

कभी कभी कोई साहब ऐसे अवसरोंपर यहां तक कह बैठते हैं कि हमें कोई किताब ही नहीं दी गयी। फिर ऐसे गुमख्यालोंको सर ठिकाने लानेके लिये आपको उन्हें समझाना पड़ता है। जिस वक्त वह किताब दी गयी थी उसका चित्र खींचकर कि उस वक्त कैसे कपड़े पहने थे और कौन आदमी वहां थे, आप क्या काम कर रहे थे वगैरह वगैरह बातोंका वर्णन कर याद दिलाया जाता है तब कहीं हजरतके दिमागमें बात घुसती है और जबानसे 'हां' निकलता है अक्सर दृष्टिगोचर हुआ है कि लोग कपड़े बदलते समय कचहरीकी चाबियां, पैसे या फाउन्टनपेन वगैरह भूल जाया करते हैं और फिर ऐन मौकेपर परेशानीमें पड़ते हैं। हमारे एक पड़ोसी भूलनेके बड़े आदी हैं। एक रोजकी बात है कि वे मेरे साथ शाक-भाजी खरीदने जा रहे थे। आपने कुरता बदला। कुरतेमें से पैसे निकाल टेबुलपर रखे ताकि कुरता बदल कर उसे यादसे जेबमें रख लें। इतनेमें बीबी ने आवाज दी कि थैला ले जाओ और थैला देते वक्त क्या क्या शाक-भाजी लानी है इसकी सूची बतायी। सूची मगजमें रखी और पैरमें चप्पल चढ़ा कर बाजारकी ओर चले। बाजारमें पहुंच कर मोल भाव किया और काफी बकझकके बाद सौदा पटाया। शाक-भाजी थैलेमें डाली गयी। मगर जब जेबमें हाथ डाला तो वह सीधा तलेतक पहुंच गया। हाथ खाली ही बाहर निकला। चेहरा एकदम फक हो गया और लगे मेरी ओर एक गुनहगार बच्चे की तरह देखने। आप समझ गये होंगे कि ऐसे हमने केसी हालत होती है मनुष्यकी; क्योंकि ऐसे मौके म न्तोष जीवनमें एक न एक बार जरूर आते हैं। नना

नी

भूलना तो मनुष्यका धर्म हो बैठा है। हर मनुष्यसे भूल होती ही है। मगर कोई महत्वपूर्ण भूल होनेपर अक्सर लोग ताना मारते हैं। खानेको नहीं भूलते? खाना खाने को भूल जाय तो उद्धार न हो जाय? सब चीजोंकी संसारमें दवा है मगर भूलकी कोई दवा नहीं है। सिर्फ 'भूल गया' कहनेसे बचाव हो जाता है। दार्शनिकगण ऐसी साधारण भूल करनेके कारण प्रसिद्ध हो गये हैं। 'बगलमें लड़की और नगरमें ढिंढोरा' इस कहावतकी उत्पत्ति उनसे ही हुई है। सरपर टोपी है मगर घरवालोंको परेशान करते फिरते हैं कि उनकी टोपी कहां है? आमतौरपर देखनेमें आता है कि जो चीज याद रखनेकी है वह ख्यालसे उतर जाती है और जो भूलनेकी है वह जरूर याद रहती है और जितना ही उसे भूलनेकी कोशिश की जाती है उतनी ही वह जोंककी तरह चिपटी जाती है। बोलते बोलते भूलनेकी रीति कभी कभी मनोरंजनका साधन बन जाती है। रविवारका दिन था! अड़ोस-पड़ोसके आठ-दस लड़के मेरे इर्द-गिर्द जमा हो गये और लगे मजबूर करने कि कहानी कही जाय। कहानी शुरू हुई और बीचमें 'आइसक्रीम' का जिक्र हुआ तो कहानी छोड़ लड़कोंने 'आइसक्रीम' बनानेकी विधि बतानेको कहा। मैं उन्हें आइसक्रीम कैसे बनाया जाता है यह बता रहा था, इतनेमें

बीबीने आवाज दी, 'तरकारी काहेकी बनाई जाय।' थोड़ी देरके लिये ख्याल तरकारीकी ओर खिच गया। लड़कोंने कहा, 'हूँ फिर आगे क्या कहते हैं?' मैं उसी द्विभागमें बटे चित्तसे आगे बताने लगा, 'फिर उसमें आलू डाल कर उसे खूब चलाना चाहिये।' लड़के कहकहा मारकर हंस पड़े। 'आइसक्रीममें आलू।' हंसनेकी ही बात थी। बच्चोंकी साधारण बुद्धि भी मेरी भूलको समझ सकी। मैंने अपनी भूल समझा और लगा उनके साथ हंसने। बीबीको आलू की तरकारी बनानेको बता मैं अपने सही विषयपर आ गया।

× × ×

मित्रोंसे किताबें मांग कर ले जानेको याद रहती है उसे वापस करनेकी याद नहीं रहती। 'कल ला 'गा' कहकर ले जाते हैं मगर उनका 'कल' कभी आता ही नहीं। मनोवैज्ञानिकोंका कथन है कि ऐसे लोगोंको भूलने की आदत नहीं होती बल्कि किताबें हड़प करनेकी नीयत होती है। मनुष्यको एक बार याद दिलाना काफी है जिन्हें बार बार याद दिलाना पड़ता है उनके दिलमें जरूर कोई बदनीयती होती है।

× × ×

मनुष्यका मस्तिष्क मानों एक अजायब घर है। एकांत में चुपचाप बैठे-बैठे कभी कभी वर्षों पहलेकी पुरानी बातें याद आती हैं। कभी ये बातें सुखद होती हैं और कभी दुखद। मनुष्य मन ही मन हंसने या रोने लगता है। देखने वाले समझते हैं कि इस शख्सके सरकी नस तड़क गयी है। ऐसी ही पुरातन स्मृतियोंमें मनुष्य खो सा जाता है और घण्टा व्यतीत हो जाते हैं।

* ✽ ✽

उस मनुष्यकी स्मरण शक्ति असाधारण होती है जिसमें बेकार और त्रासदायक बातें भूलनेकी योग्यता होती है। नेपोलियन कहा करता था, 'मेरा मस्तिष्क ऐसा है कि जब मैं एक काम समाप्त करता हूं तो उसे ऐसे भूल जाता हूं जैसे कोई एक दराज बन्दकर दूसरा खोलता है।' ऐसी ही स्टैलिन, मेकाले, अकबर और चार्ल्स डिकेन्सकी स्मरण शक्ति थी। चार्ल्स डिकेन्स एक दूकानपर नौकर थे। उन्हें अपने दूकानकी हर वस्तु परिचित थी और घरसे दूकानतक जितनी दूकानें पड़ती थीं उनके और मालिकोंके नामके सिलसिलेवार बता सकते थे। लोकमान्य तिलककी असाधारण स्मरण शक्तिके विषयमें यह कहा जाता है कि वे आजकी दी हुई वक्तृताको ३० दिन बाद भी शब्दशः दुहरा सकते थे। 'चिरोल केस' में तिलक वकील थे। उनकी इच्छा थी कि 'चिरोल केस' 'केसरी'में छापा जाय मगर सरकारने इजाजत न दी। आखिर तिलकने एक नयी युक्ति निकाली। उन्होंने सरकारसे 'केस'को एक निगाह देखनेकी इजाजत मांगी। चारों ओर पुलिससे घिरे स्थानमें तिलक और उनके सहायक 'भानु'ने 'केस'परसे निगाह दौड़ानी शुरू की। पुलिसके बड़े अफसर वहां इस बातके लिये मौजूद थे कि कहीं कोई नकल न उतार ले। मगर दूसरे दिन वह 'केस' हूबहू 'केसरी'में जनताको पढ़नेको मिला। सरकार दंग रह गयी। तमाम 'केस' भानु और तिलकने मिलकर एक ही नजरमें पाठ कर लिया और अपने पत्र 'केसरी' में छाप दिया जिसका नतीजा जेल यात्रा हुई। अब्राहम लिङ्कनकी स्मरण शक्ति भी प्रखर थी। किसी वस्तुको स्मरण रखनेके लिये उसे जोर जोरसे पढ़ा करते थे। उनका कहना था "जोर जोरसे पढ़नेसे मुझे स्मरण रखनेमें दो तरहसे मदद मिलती है। पहली बात यह है कि मैं देखता हूं कि मैं क्या पढ़ता हूं और दूसरी यह कि मैं सुनता हूं कि मैं क्या पढ़ता हूँ। इस तरह आंख और कान दोनों इन्द्रियोंका एक साथ उपयोग करनेसे मुझे वह बात याद रखनेमें कठिनाई नहीं होती। वे यह भी कहा करते थे कि 'मेरी स्मरण शक्ति एक फौलादकी तरह है। बड़ी मुश्किलसे कोई बात उसमें समाती है मगर जब वह समा जाती है तो उसे भूलना भी उतना ही कठिन हो जाता है।' लोग सुनी हुई वस्तु अक्सर भूल जाया करते हैं मगर देखी हुई वस्तु दीर्घ कालतक याद रखते हैं। इसका कारण डाक्टर यह बताते हैं कि आंखोंसे जो नसें मस्तिष्कको जाती हैं वे कानोंसे मस्तिष्कको जानेवाली नसोंसे बीस गुनी लम्बी हैं। इसी कारण चीनी कहावत है कि १००० बार सुनना और एक बार देखना बराबर है।

× × × ×

जरूरी बातें भूल न जायं इसलिये लोग 'डायरी' रखते हैं और हर महत्वपूर्ण बात उसमें नोट कर लेते हैं। 'बेकन'ने एक नोटबुक बनायी थी जिसका नाम दिया, 'उपयोगमें आनेवाले कुछ आकस्मिक विचार।' मगर 'जान हण्टर' साहबने ऐसी आदतका विरोध किया है। वे कहते हैं कि ऐसा आदमी एक व्यापारीकी तरह है जो बिना दुबारा देखे यह नहीं जानता कि उसकी दूकानमें कौन-कौन-सी वस्तुएं हैं और कौन-सी वस्तुओंकी कमी है।' मगर सर्व-साधारण मनुष्य 'जान हण्टर'की तरह स्मरण शक्ति नहीं पाते। इसलिये उन्हें तो नोट करना ही अच्छा है। मगर एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। वह यह कि आपको यह जरूर ध्यानमें रखना चाहिये कि कौन-सी बात कहां नोट की है वरना वक्त और मेहनत बरबाद होती है। दूसरी बात विशेष ध्यान देने योग्य यह है कि जब कोई बात याद न आवे तो वह नोटबुक खोलकर देखनेकी आदतसे स्मरण शक्ति क्षीण होती है। पहले स्मरण करनेका प्रयत्न करना चाहिये और जब वह सम्भव न हो तभी नोटबुकमें देखना चाहिये। बारबार नोटबुक देखने वालोंकी वृत्ति आलसी और स्मरण शक्ति निर्बल हो जाती है। हर वस्तुमें व्यायामकी खास आवश्यकता है। यही नैसर्गिक नियम है। जो इन नियमोंका सख्तीसे पालन नहीं करते वे अपनी हस्ती खो बैठते हैं।

तीक्ष्ण स्मरण शक्तिका होना हर क्षेत्रमें जरूरी है। यदि स्मरणशक्ति कमजोर हुई तो नाहककी परेशानी उठानी पड़ती है और वक्त बरबाद होता है। स्मरणशक्ति कमजोर होनेके छोटे-बड़े कई कारण हैं जिनमेंसे तीन मुख्य हैं:—रोग, चिन्ता और लापरवाही। सुदृढ़ शरीर सुदृढ़ स्मरण शक्तिका द्योतक है। चिंता एक ऐसी बला है कि मनुष्य जब उसके जालमें फंस जाता है तो कभी सही विचार नहीं कर सकता। लापरवाहीसे मनुष्य सुस्त हो जाता है और सुस्त मनुष्यका मस्तिष्क खुश्क होता है। इसलिये मनुष्यको इन तीनोंका त्याग करना आवश्यक है। स्मरणशक्ति किस तरह दृढ़ बनायी जाय इसके फेरमें पड़ना चाहिये। स्मरणशक्ति बढ़ानेके कई जरिए हैं जिनमेंसे मुख्य ये हैं :— दुहराना: कागज और लिपिकी खोजके पहले हमारे यहां वेदों और ग्रन्थोंको मुखस्थ करनेकी प्रथा थी। मुसलमानोंमें कुरान पाठ करनेकी प्रथा है। यह दुहरानेसे ही संभव हो सकता है। नाटकोंमें अपना पार्ट याद रखनेके लिये अभिनेताओंको 'रिहर्सल' करना पड़ता है जिसका अर्थ दुहराना ही है। इसलिये याद करनेकी बात दुहरानेसे याद रहती है। पढ़ो, समझो और मनन करो और फिर बिना देखे लिख डालो तो वह वस्तु जरूर मस्तिष्कमें घुस जायगी। दस बार पढ़नेसे एक बार लिख डालनेसे वह अच्छी तरह याद रहती है। मगर रटना स्मरण शक्तिके विरुद्ध है। रटने वाला मनुष्य पढ़ाये हुए तोतेकी तरह होता है।

जब इस तरह भी वह बात पूरी याद न रहे तो दूसरा तरीका है कि उसे किसी समान प्रसिद्ध वस्तुसे मिलाना तुलना करना चाहिये। विद्यार्थी अक्सर शिकायत करते हैं उन्हें इतिहासकी तारीखें याद नहीं रहतीं। मगर यदि याद करनेकी तारीखको किसी महत्वपूर्ण तारीखसे जोड़ दें तो उसको स्मरण रखनेमें सहूलियत होती है जैसे १८१९ में रानी एलिजाबेथका जन्म हुआ था तो उसके १०० वर्ष बाद याने १९१९ में भारतमें 'माण्टेग्यूचेम्सफोर्ड सुधार' पेश हुआ था और उसके बराबर १० वर्ष बाद १९२९ में लाहौरमें इन्किलाब जिन्दाबादका जन्म हुआ और उसके ठीक १० वर्ष बाद १९३९ में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ था। इतिहासमें सौ वर्षके फरकमें काफी हलचलें हुई हैं। अधिकतः युद्ध ही हुए हैं। १७५७ में प्लासीका युद्ध हुआ था तो १८५७ में देशव्यापी गदर हुआ। १५३९ में हुमायूंकी शेरशाहके हाथसे पराजय हुई। १६३९ में अंग्रेजोंने मद्रास पर कब्जा किया। १७३९ में नादिरशाहने दिल्लीको तहस-नहस किया। १८३९ में पहली अफगान लड़ाई हुई और १९३९ में द्वितीय महायुद्धने जन्म लिया। कहनेका तात्पर्य यह है कि इस तरहसे एक दूसरेसे सम्बन्ध जोड़कर स्मरण रखनेमें काफी सहुलियत होती है। मेरे एक 'डच' मित्रको हिन्दुस्तानी नाम याद रखनेमें बड़ी तकलीफ होती थी। बसन्त लाल नामका उसका एक नौकर था। मगर उसका नाम उसे याद नहीं रहता था। मैंने देखा कि उस 'डच'को बसन्त ऋतु और गुलाबके फूलसे स्नेह था। मुझे एक युक्ति सूझी। मैंने उससे कहा कि वसन्तमें

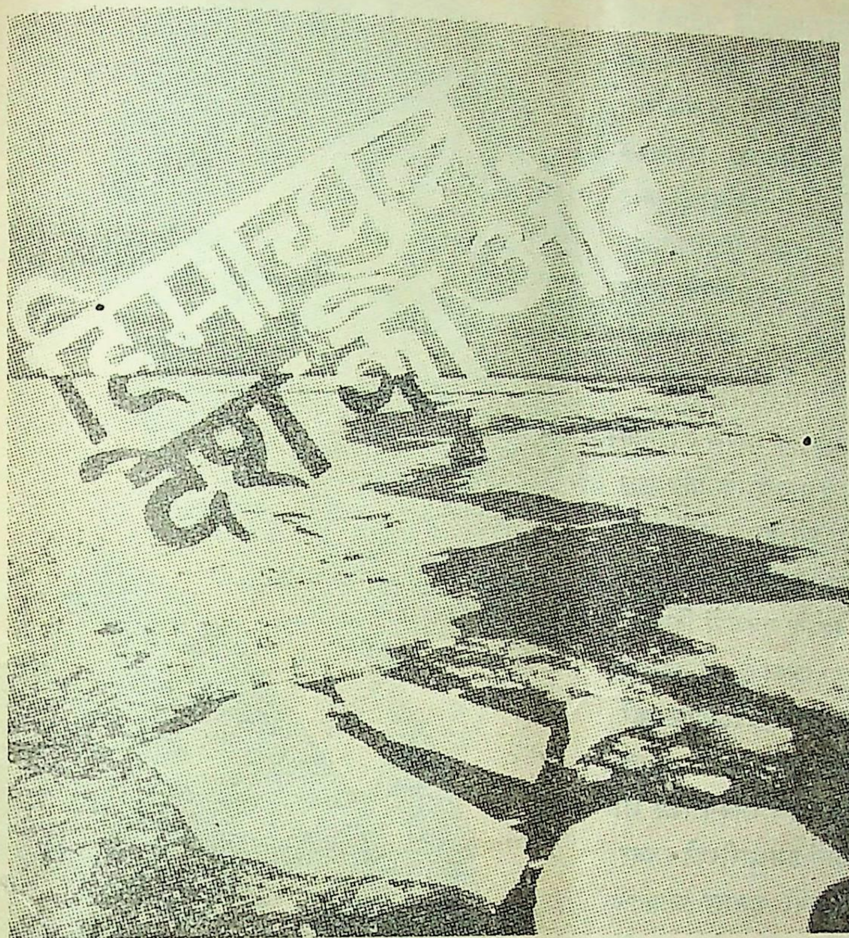
गुलाबका लाल रंग जोड़नेसे तुम्हारे नौकरका नाम हो जाता है। उसे यह ढंग पसंद आया और फिर उसने कभी उसे गलत नामसे नहीं पुकारा। तीसरी महत्वपूर्ण बात है तवज्जुह। मनुष्य उसी वस्तुमें ज्यादा एकचित्त होता है जिसमें उसे रस आता हो और रस आने या लाने के लिये, गरज, मनोरंजन और धर्म मनुष्यको मजबूर करते हैं। नवयुवक मनोरंजनार्थ सिनेमाके एक एक आदमीका नाम और काम याद रखते हैं। वकील गरज समझकर ही कानूनके किताबोंके पन्ने और लाइन तक याद रखते हैं और जो धर्म समझ कर रस लेते हैं और एकाग्रतासे कोई वस्तु लिये क[?]ध्यान देते हैं वे असाधारण पुरुष होते हैं। नेपोलियनको उपस्थि[?]ी फौजके सभी ओहदेदारोंके नाम याद थे। उसकी ताकत उ[?] करनेकी कला यह थी कि जिनके नाम जाननेकी उसे आ[?]'गा' [?]रूरत पड़ती थी उनके नाम वह एक कागजके टुकड़े पर नोट कर लेता था और कुछ समय उन्हें एकाग्रतासे पढ़ने और मनन करनेके बाद उस टुकड़ेको फाड़ कर फेंक देता था। इस ढंगसे उसकी स्मरण शक्ति इतनी तीक्ष्ण होगई थी कि कौन आदमी किस जगह कौनसे कामपर नियुक्त है सब उसे याद रहता था। किसी भी वस्तु पर दत्तचित्त होकर विचार करनेसे उस वस्तुकी छाप मस्तिष्कमें पड़ जाती है और फिर वह भूली नहीं जाती। भगवानकी प्राप्ति में भी यही नियम है कि भाव, जिसे हम रस कहते हैं, के साथ एकाग्रतासे ईश्वरकी प्रार्थना या नाम स्मरण करे तो वह प्राप्त होता है। जब तक विषयमें चाव उत्पन्न नहीं होता चित्त एकाग्र नहीं होगा। विद्यार्थी अपना सबक याद रखें इसलिये शिक्षकोंको चाहिये कि वे विषयको रसमय बनायें और जब विद्यार्थी विषयमें रस लेने लगेंगे तो शिक्षकके हर शब्दको वे एकाग्रचित्तसे सुनेंगे और याद रखेंगे। जो शिक्षक ऐसा करते हैं वे ही सफल शिक्षक होते हैं और विद्यार्थियोंके प्यारे होते हैं। साहित्यिकोंकी वही रचना अमर होती है जिसमें पाठकोंको रस प्राप्त होता है। जब पाठक उस रचना को चावसे पढ़ते हैं तो उन्हें उसकी बातें याद रहती है और वे फायदा उठाते हैं।

हर इन्सानको तारीफ पसंद होती है। इन्सान वे घटनाएं याद रखते हैं या कहिये उन्हें याद रहती हैं जिसमें उन का मान या अपमान होता है। अपना जन्म दिवस, परीक्षा उत्तीर्ण होनेके वर्ष, किसीके अवसानके दिन वगैह मनुष्य नहीं भूलते। हमारे यहां जो उत्साह और जयंतियां मनायी जाती हैं वे बड़ोंके स्मरणार्थ ही मनायी जाती हैं। किसी देश सेवक या समाज सुधारककी याद कायम रहे इसलिये जगह जगह स्मारक बनाये जाते हैं। शायद ही कोई भारतीय १८५७, १९४२ और १९४८ वें वर्षको भूलेगा।

फूलोंका मधुमास प्रिये!

तुहिन कणोंकी हरियालीपर, मुक्तासी जल ओस विन्दुसम।
सौरभ सी लुटती अंगड़ाई, तुम आयी बन कर पास प्रिये।
फूलोंका मधुमास प्रिये।
आंखों में नीरव भोलापन, तारों से कैसा खिलता है।
कैसे फूल झरें अम्बर से, जब रुदन वेदना पास प्रिये।
फूलोंका मधुपास प्रिये।
हंस रहा क्षितिजकी ओट लिये, रो पड़ा हृदय अब प्यार लिये।
जीवन मरना एक सभी, है यह कैसा आभास प्रिये।
फूलोंका मधुमास प्रिये।
हंसना ही जाना था मैंने, उसमें कुछ अनुराग नहीं।
जीवन भी छोटा ही होगा, फिर कैसा उसमें हास प्रिये।
फूलोंका मधुमास प्रिये।

—श्री कमलकिशोर पाराशर



मनुष्य स्वभावतः दुस्साहसिक है और विज्ञानने उसकी इस प्रवृत्तिको और भी प्रोत्साहित किया है। चन्द्रलोककी यात्रा और मंगल ग्रहके अनुसंधान, हिमालयकी चोटी नापनेकी लालसा और अतल समुद्रोंकी गहराई तक पहुंचने का दुस्साहस मनुष्यने किया तो विज्ञानने उसके लिये साधन जुटाये, उसने नये नये आविष्कारोंसे आकाश पातालके कुलाबे मिलानेकी तरकीबें बतायीं और अनन्तके अनेक रहस्योंको भेदकर उनके सम्बन्धमें अनेक अन्ध विश्वासोंका निराकरण किया। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंका रहस्य किसी दिन अभेद्य समझा जाता रहा है, लेकिन मनुष्यने उसे भी भेदा। हिमालयकी चोटी कितनी ऊंची है, मनुष्यने उसे नाप कर बताया। कड़ी धूप और रक्त सुखा देनेवाली हिमराशियोंने मनुष्यकी दुस्साहसिक प्रवृत्तिको कभी चुनौती न दी हो, यह बात नहीं। कितने ही प्रकृतिकी उदर दरीमें समा गये और कभी अपने साहस की कहानी कहने नहीं लौटे, लेकिन मनुष्य ने कभी पराजय स्वीकार नहीं की। उसने अपना अभियान जारी रखा और आज सभी संसार के रहस्यों के सन्बन्ध में मनुष्य इतनी जानकारी रखता है।

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंको कहानियां हमने सुनी हैं और उन कहानियों में विचित्रताएं इतनी रही हैं कि हमारा मनोरंजन तो हुआउनसे, लेकिन जानकारी हमारी बहुत नहीं हो सकी। नानी की कहानियोंमें भी बताया गया कि ऐसीजगहें हैं जहां सालमें छः महीने रात रहती है और छः महीने दिन। इतना तो सुना हमने लेकिन हमें इससे सन्तोष नहीं हुआ। हमने जानना चाहा कि आखिर जब ऐसी दशा हो तो उसमें मनुष्य कैसे रहते होंगे और मनुष्य न भी हों तो प्राणिमात्रके लिये—किसी भी जीवधारीके लिये वह कैसी स्थिति होगी। साधारण व्यक्तियोंके लिये यह विषय सदा ही जिज्ञासाका रहा और ऐसा ही यह बना भी रह जाता, लेकिन विज्ञानकी सहायतासे मनुष्यने इन रहस्योंका पता लगानेका निश्चय किया और उसने वास्तव में इसका पता लगाया भी। फिर भी ऐसे दुस्साहसिक कार्य करने वाले मनुष्यों की संख्या स्वभावतः बहुत नहीं हो सकती, क्योंकि

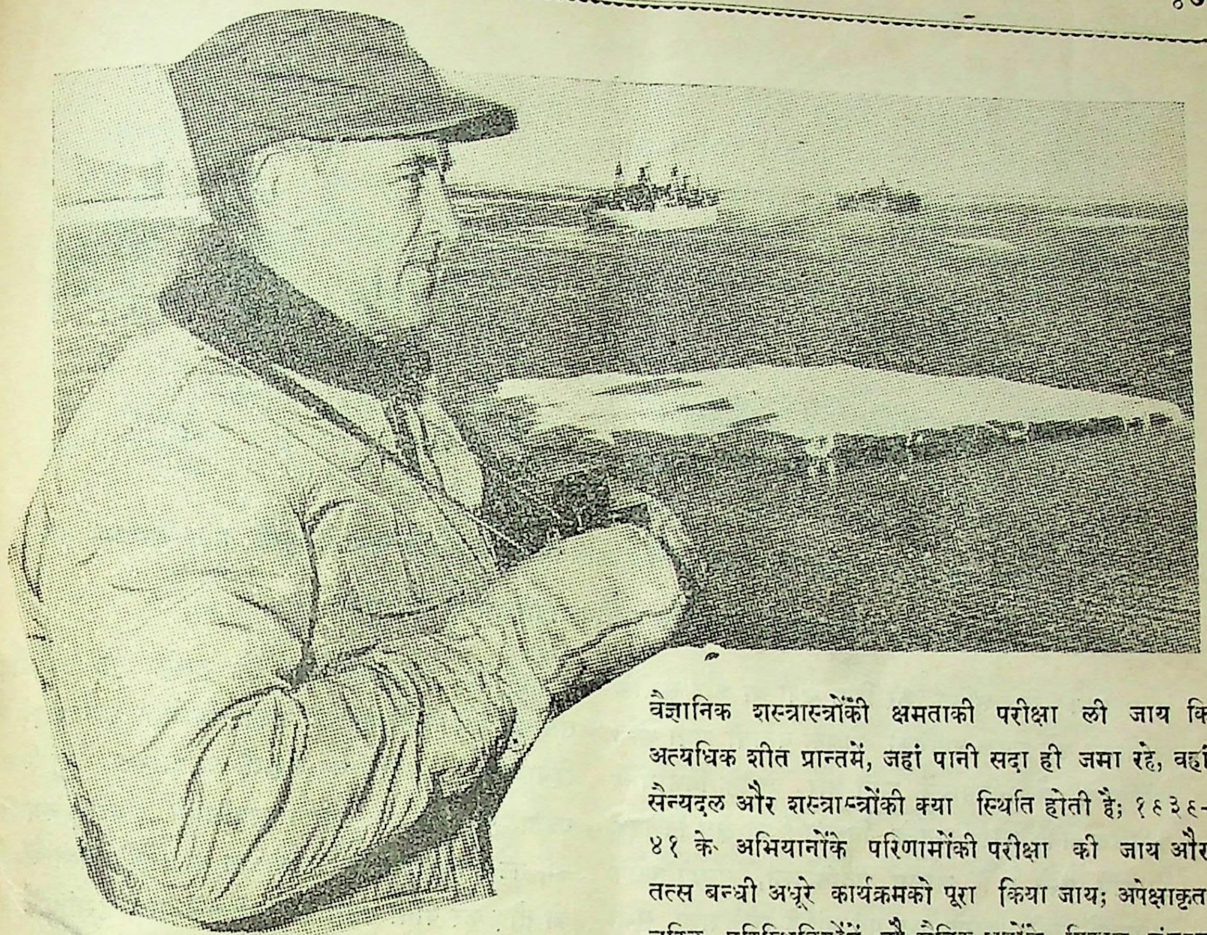
काम बड़े भारी जोखिमका है और प्राणोंका तनिक भी ममत्व जिनमें न हो, ज्ञान की खोजमें जो अपना सर्वस्व बलिदान कर देनेके लिये तैयार हों, वही ऐसे दुस्साहसिक कार्योंमें पड़ सकते हैं। इसलिये अमेरिकाका एडमिरल बायर्ड ही शायद एक मात्र साहसी है जिसने उत्तरी और दक्षिणी दोनों ध्रुवोंकी यात्रा की है। उसीने पुनः अन्टार्कटिक—हिमाच्छन्न प्रदेशकी यात्रा की है। उसका इस बारका अभियान बड़े अच्छे पैमानेपर हुआ है और अमेरिकन सरकारकी ओरसे उस अभियानकी तैयारी की गयी थी।

कुछ अजीब सी बात है कि भारतीय अपने शरीरको नश्वर और आत्माको अमर मानता है। शरीरके प्रति कुछ मोह या ममत्व न रखनेकी ही शिक्षा हमें हमारे धर्म ग्रन्थों ने दी है लेकिन हमारे युवकोंमें वह दुस्साहसिक प्रवृत्ति नहीं दिखायी पड़ती जो पाश्चात्य देशोंके युवकोंमें दिखायी पड़ती है। पाश्चात्य देशोंमें सिखाया जाता है भौतिकवाद और भौतिकवादका यह सिद्धान्त कि शरीर उपेक्षणीय नहीं है। शरीर भर ही सब कुछ है और परिणाम यह होता है कि शरीरके प्रति उनका ममत्व होता है। लेकिन फिर भी शरीरका मोह छोड़नेमें उनकी तुलनामें हम शरीरको नश्वर समझनेवाले कितने पीछे हैं! तो क्या हमारा जीवन-व्यापार हमारी धार्मिक एवं सांस्कारिक शिक्षासे कुछ भी प्रभावित नहीं हो सका है? बात बहुत कुछ सही है, किन्तु कारण एक मात्र यही नहीं है। स्वाधीन देशोंके युवकोंकी प्रवृत्तिकी तुलना पराधीन युवकोंसे नहीं की जा सकती। और फिर जैसे दु साहसिक कार्योंका उल्लेख किया गया है, उनके लिये प्रचुर साधनोंकी आवश्यकता है और सरकारी सहायताके बिना ऐसे कार्य नहीं उठाये जा सकते। तो फिर हमारी विदेशी सरकार ऐसा क्यों करे? यही कारण है कि सुदूर देशके लोग आकर हिमालयकी चोटी नापें और हिन्द महासागरकी अतल जल राशियोंका रहस्य-भेदन करें और हम भारतीय चुपचाप उनपर आश्चर्य चकितसे बैठे रहें। शरीर नश्वर हो या अनश्वर, भारतीय युवकोंमें साहसी ही नहीं, दुस्साहसिक भी काफी संख्यामें निकल आवेंगे, अगर प्रचुर सामग्री और साधन उनके लिये जुटा दिये जायें। बिना किसी सहायताके ध्रुवोंका अभियान



एडमिरल रिचर्ड ई० बायर्ड

नहीं किया जा सकता और सहायता हमारी विदेशी सरकार कैसे करती? जिस सरकारके शासनका हाल यह रहा है कि उत्तरोत्तर हमारे जीवनका धरातल नीचे ही खिसकता गया है और जिसमें अकालोंकी लम्बी लज्जाजनक सूची रही हो, वह अभियानोंपर अतुल सम्पत्ति विनष्ट करेगी? वह अमेरिकाकी सरकार थी जिसने बायर्डके अभियानोंके पहले भी १९३९-४१ के अन्टार्कटिकके अभियानों की सहायता की, अन्यथा क्या कर त दुस्साहसिक बायर्ड?

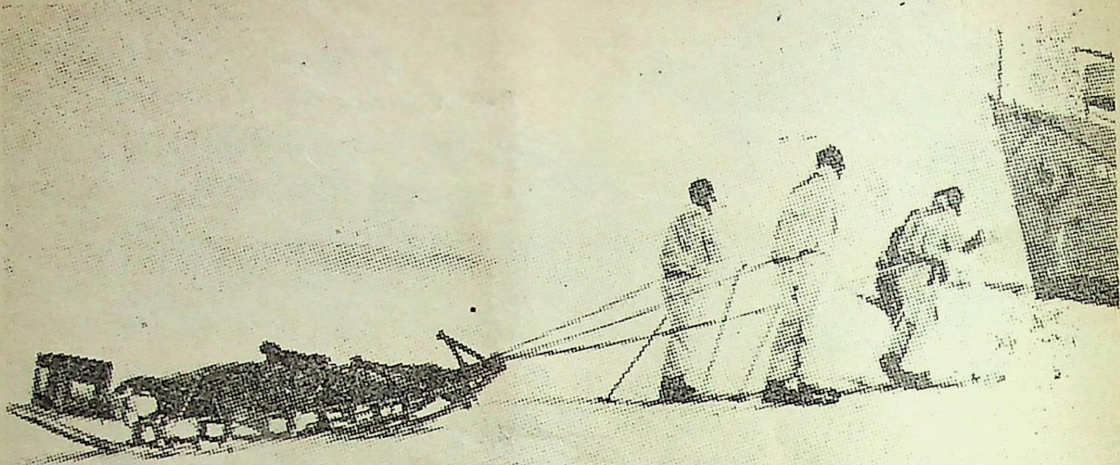


एडमिरल रिचर्ड क्रुजेन बर्फीली चट्टानोंको चूर्ण-विचूर्ण करनेवाले अपने जहाजके साथ

एडमिरल रिचर्ड ई० बायर्डके नेतृत्वमें गत जनवरीमें अन्टार्कटिकका जो अमेरिकन अभियान शुरू हुआ उसका उद्देश्य केवल जिज्ञासाकी शान्ति ही नहीं था, बल्कि उसका महत्वपूर्ण सामरिक उद्देश्य भी था और अमेरिकनोंने इस उद्देश्यको छिपाया भी नहीं। अमेरिकाके सैन्य विभागकी एक विज्ञप्तिके अनुसार इसका उद्देश्य यह था कि सेनाको हर प्रकारकी परिस्थितिमें रहनेका अभ्यास डाला जाय। इस उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये अमेरिकन जल सेनाके सैनिकों को लेकर अभियानकी तैयारी की गयी और २ जनवरी १९४७ को वर्जीनियासे सैन्यदल रवाना हुआ।

जब आखिरी घण्टी बजी और जहाज चलनेको उद्यत हुआ उस समय नौ-सेना-विभागने अभियानका उद्देश्य बताते हुए कहा कि इसका उद्देश्य है कि सैन्यदल और वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रोंकी क्षमताकी परीक्षा ली जाय कि अत्यधिक शीत प्रान्तमें, जहां पानी सदा ही जमा रहे, वहां सैन्यदल और शस्त्रास्त्रोंकी क्या स्थिति होती है; १९३९-४१ के अभियानोंके परिणामोंकी परीक्षा की जाय और तत्सम्बन्धी अधूरे कार्यक्रमको पूरा किया जाय; अपेक्षाकृत जटिल परिस्थितियोंमें नौ सैनिक अड्डोंके विकास, संगठन एवं यन्त्र-सम्बन्धी आविष्कारोंके सम्बन्धमें प्रयोग किये जायें, अन्टार्कटिक क्षेत्रोंका भौगोलिक, विद्युत् सम्बन्धी, भूगर्भ विषयक पता लगाया जाय और सभी प्रकारकी जानकारी प्राप्त की जाय।

अभियान यद्यपि सर्वथा अज्ञात प्रदेशकी ओर नहीं चला था, फिर भी बहुत सी बातोंकी जानकारीका अभाव था और शस्त्रास्त्रोंका, आविष्कारोंका और मानव-शरीरकी क्षमताका पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त था, अतः मनकी आशंकाएं थीं और खतरेकी सम्भावनाएं भी थीं, इसलिये सभी शस्त्रास्त्रों हवाई जहाज, एयरक्रैफ्ट तथा अनेक रूपोंमें सुसज्जित होकर अभियान चला। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इसका उद्देश्य एक मात्र प्रयोग और परीक्षण ही था। सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि अभियानके परिणामोंकी भावी सम्भावनाएं। इसीलिये अभियानके पहले ही सभी सरकारी विभागोंके सभी प्रकार



५०० पौण्डकी यह मछली अभियानमें पकड़ी गयी। अभियात्रियोंके साथके कुत्तोंको इसका मांस खिलाया गया और चमड़ा न्यूयार्कके राष्ट्रीय अजायबघरमें रखा गया।

के सहयोगके लिये सूचित कर दिया गया था और सभीके सहयोगसे उसे सफल बनानेकी योजना बनायी गयी थी। अमेरिकाके सैन्य-विभागमें खाने और कपड़ेके विभागोंके अतिरिक्त अनेक और विषयोंके विभाग हैं जो क्षेत्र विशेषके ही कार्य करते हैं। मौसम बतानेवाला, समुद्री तटोंके सम्बन्धमें सभी प्रकारके तथ्य एवं आंकड़े रखनेवाला, सभी के चित्र और मानचित्र रखनेवाला, जलके गुण-दोषके विशेषज्ञों और शीत तथा उष्ण जलवायुके विशेषज्ञोंवाले, भूगोल तथा ऐसे अनेक विभाग हैं जो कार्य विशेषमें दक्ष समझे जाते हैं और आप सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि अन्टार्कटिक जैसे हिमाच्छन्न अज्ञात प्रदेशकी यात्राके पहले कितने विभागोंके विशेषज्ञों एवं उनके विशेष अन्वेषणों, तथ्यों एवं आंकड़ोंकी आवश्यकता पड़ी होगी। अनेक वर्षोंसे कितने ही विभागोंने इस दिशामें कार्य करना शुरू किया था और अन्टार्कटिक यात्राके पहले अभियात्री सभी ज्ञातव्य बातोंसे अवगत हो चुके थे, क्योंकि खाद्य और कपड़ेकी सहायतासे ही वे जीवित नहीं रह सकते थे, शीत सहन करनेकी शक्ति अथवा उसके निराकरणके साधनोंकी तैयारी आवश्यक थी और सबसे अनिवार्य आवश्यकता थी समुद्री ज्ञान की। राहकी जोखिम बहुत थी और अनजान जोखिमें तो बहुत अधिक थीं।

इसलिये अभियान चला तो उसके १३ जहाजोंको तीन जत्थोंमें विभाजित कर उनके जिम्मेका काम सुपुर्द कर दिया गया। मध्यमें वह जहाजी जत्था रखा गया जिसमें ध्वजा फहराती थी, प्रधान कार्यालयसे सम्बन्ध स्थापित था, तट-रक्षकोंकी पंक्ति आयोजित थी और बर्फकी चट्टानों को तोड़ कर पानी पानी कर देनेवाले यन्त्र सुसज्जित थे। बीचके इस जत्थेके दायें बायें दूसरे जत्थे थे। पूर्वकी ओर जल-यान, तेलके जहाज और विध्वंसक रखे गये और पश्चिममें भी ऐसी ही व्यवस्था की गयी। लगभग चार हजार व्यक्ति अभियानमें थे और बायर्डने काफी झोंकीका काम लिया था। उसने पनडुब्बियों और रसदके जहाजों को भी मध्यकी पंक्तिमें ही ले लिया था।

बीचका जहाजी जत्था न्यूजीलैण्डके दक्षिणकी ओर बढ़ा और रास सागरमें पहुंच कर 'लिटिल अमेरिका' के पास अपना अड्डा बनाया। न्यूजीलैण्डसे दक्षिणकी ओर करीब २००० मीलकी दूरीपर यह स्थान है। पूर्वी और पश्चिमी जत्थोंने 'लिटिल अमेरिका' के पूर्व और पश्चिममें करीब १००० मीलकी दूरीपर अपनी खोज प्रारम्भ की। 'लिटिल अमेरिका' के तटपर मध्यके जहाजी जत्थेने डेरा डाल ही दिया था और अब पूर्वी और पश्चिमी जत्थोंने हवाई परिक्रमा शुरू की, बीचके जत्थेको केन्द्र बिन्दु बना



गोताखोर अपनी पोशाक और नकाबमें।

कर। जहाज जहांतक उड़ाये जा सकते थे, उड़े और जमीन आस्मानके कुलाबे मिलानेकी कोशिश की। उधर पनडुब्बियां थीं जिन्होंने अतल समुद्रके नीचे प्रवेश किया और उनके साथ लगे हुए यंत्रोंने जलके नीचेके चित्र लिये, प्रवाहका गति-मान अंकित किया और ऊपरके जहाजोंने शैवाल और प्रवहमान हिमतुंगोंका चित्रांकण किया।

इस बातकी भी व्यवस्था की गयी थी कि विमानोंके साथ अमेरिकासे रेडियोका सम्बन्ध बनाये रखा जाय ताकि किसी आकस्मिक संकटकालमें सहायता प्राप्त की जा सके। दूरकी उड़ानके समय उड़ाकोंके लिये बहुत मोटी पोशाककी व्यवस्था की गयी जिससे अगर विवशतः कहीं उतरना पड़े तो जीवन-रक्षा हो सके। ऐसे जहाजोंमें छोटे छोटे तम्बुओं, पोशाकों और ६० दिनके लिये खाद्यकी भी व्यवस्था की गयी। सूखे फल और सूखा गोश्त प्रचुर परिमाणमें रखा गया।

इस प्रकार शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित, खाद्य वस्त्रसे पूर्ण अभियात्रियोंने प्रकृतिकी शक्तिसे युद्ध करनेका अभियान प्रारम्भ किया। अमेरिकन सरकारकी यह सारी व्यवस्था रही और कोई भी यह स्वीकार करनेको तैयार नहीं हो सकता कि एक अज्ञात प्रदेशके रहस्योंके प्रति कोरी जिज्ञासाकी भावना से ही अमेरिकाके इतनी विशाल तैयारी की। आगे चल कर जब अभियानने परिणाम मालूम होंगे तब अमेरिकाकी तद्विषयक गतिविधि उसके उद्देश्योंपर प्रकाश डालेगी। उक्त अभियानमें अमेरिकाका कोई राजनीतिक उद्देश्य नहीं है, इसे स्वीकार करना कठिन है। सामरिक उद्देश्योंसे जब इतना बड़ा सैन्यदल वहां भेजा गया तब वह राजनीतिक उद्देश्योंसे रहित नहीं कहा जा सकता और फिर दक्षिणी अंचलोंकी छानबीनके परिणामसे वैसी ही जलवायु रखने वाले उत्तरी अचलोंका प्रयोग नहीं समझा जा सकता? जो भी हो, अमेरिकाने एक महान् बहुव्यय साध्य और अनोखा अभियान किया और उसके परिणामके प्रति संसारकी दिलचस्पी उत्पन्न हुई है।

———

चीनका सामाजिक स्वरूप

श्रीश्याम परमार

चीनी लोग सामाजिक होनेकी अपेक्षा कुटुम्बकी सीमामें बंध कर रहनेके आदी हो गये हैं। अतः उनमें व्यक्तिवादका बाहुल्य है। यह एक स्वभाविक स्वार्थ है कि मनुष्य अपने कुटुम्बका ख्याल पहले रखता है। चीनी लोगोंका विश्वास है कि यदि देशमें कुटुम्बोंकी दशा अच्छी रही तो सम्पूर्ण समाजमें शान्ति रहेगी। इसलिये यदि समाजको व्यवस्थित और शान्तिमय रखना हो तो पहले कुटुम्बोंकी अवस्थामें सुधार करना अनिवार्य है।

अमेरिका अथवा इङ्गलैण्डकी अपेक्षा चीनकी कुटुम्ब-प्रथाको मद्दे नजर रखते हुए चीनका सामाजिक कार्यक्रम भिन्न है। सार्वजनिकता, नागरिकता अथवा समाज-सेवा जैसे शब्दोंका चीनमें कम नहीं पाया जाता है। यह सच है कि वहां शादी, भोज, बौद्धधर्म सम्बन्धी आयोजन, वार्षिक उत्सव आदि होते हैं; परन्तु अमेरिका, इङ्गलैण्ड या दूसरे देशके मुकाबिलामें सामाजिक जीवनको बनाने खेल-कूद, राजनीतिक-भाषण, संगठित और भड़कीले आयोजनों का वहां अभाव है। चीनी लोग संगठित होकर कार्य करनेकी ओर उन्मुख कम हैं। उनके खेलकूद व अन्य कार्यक्रम सहयोगकी नींवपर कम स्थित हैं। दो दलोंमें होड़के खेलकूद उनमें कम पाये जाते हैं। 'महाजोंग' नामक खेल वहां बहुत प्रसिद्ध है, जो चीनी लोगोंकी व्यक्तिवादिता का अच्छा नमूना है। ताशका खेल वहां प्रायः एक ही व्यक्ति खेल कर अपना मन बहला लेता है।

चीनके किसी दैनिक पत्रकी व्यवस्थाका उदाहरण लेकर हम उसके व्यक्तिवादको और भी अच्छी तरह समझ सकते हैं। जिस तरह लोग अपना 'महाजोंग' खेलते हैं वैसे ही पत्रको भी चलाते हैं। चीनी पत्रका प्रधान सम्पादक अपने सम्पादकीय लिखनेके अतिरिक्त कोई काम करना अपनी शानके खिलाफ समझता है। बाकी बंटे हुए कालम जिन लोगोंके पास होते हैं वे लोग अपने दायरेमें अनावश्यक रूपसे स्वच्छन्द होते हैं। अपने मनके मुताबिक स्थान घेर लेते हैं। यह नहीं ख्याल करते हैं कि दूसरा मैटर भी छपेगा। प्रथम पृष्ठपर महत्वकी खबरें जानी चाहिए, इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता। इस तरह जो कुछ भी होता है चाहे जहां छपता रहता है। ऐसे पाठक भी नहीं मिलते जो इस ओर सुधार करनेका प्रयत्न करें। जो उन्हें पढ़नेको मिलता है, पढ़ते हैं। उनकी अपनी कुछ रुचि नहीं।

लेकिन समय बदल रहा है। नवयुवकोंमें एक नया जोश लहरा रहा है। सार्वजनिक शिक्षाकी भावना तेजीसे बढ़ रही है। फिर भी चीनके बहुसंख्यक जो कि अभी भी लकीरके फकीर हैं, उनकी इस प्रगतिका विरोध करनेमें नहीं चूकते। उनका दृष्टिकोण अभी भी उस पथपर भटकता है और रास्ता भूल कर भी नवीनताके प्रति सहानुभूति नहीं जाहिर करता। चीनके एक पुराने कमाण्डरने अपने एक भाषणमें कहा है कि विद्यार्थियोंको अपनी पुस्तकोंसे काम रखना चाहिये; जनताके कार्यक्रमसे उन्हें क्या मतलब। दुनियावाले अपने-अपने कार्यमें लगे हुए हैं, तुम उन्हें बरगला कर नष्ट करना चाहते हो। अनपढ़ तुम्हारे बीचमें रोड़े नहीं बनते तो तुम क्यों उनके बीचमें जाते हो। इन शब्दोंसे प्रगट होता है कि चीनके रूढ़िवादी परिवर्तनके कितने विरुद्ध हैं। सामाजिक सुधारका कार्य उनके अन्य कार्यक्रमके बीच रोड़ेकी तरह है। सामाजिक कार्यकर्त्ता उनकी दृष्टिमें हास्यास्पद बन जाता है। उसे लोग अच्छी नजरसे नहीं देखते।

भारतवर्षकी तरह चीनमें बालकको प्रारम्भसे शिक्षा दी जाती है कि माता-पिता और बड़े-बूढ़े अनुभवी हैं, उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। अपनेसे बड़ोंका सम्मान और उनके अनुभवसे शिक्षा ग्रहण कर उनके संरक्षणमें अपने कर्त्तव्यका पालन करना हर व्यक्तिका धर्म है। कुटुम्बकी सीमामें प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा ग्रहण कर समाजके



मादम चांग-काई शेक अपनी सहकर्मिणियोंके साथ

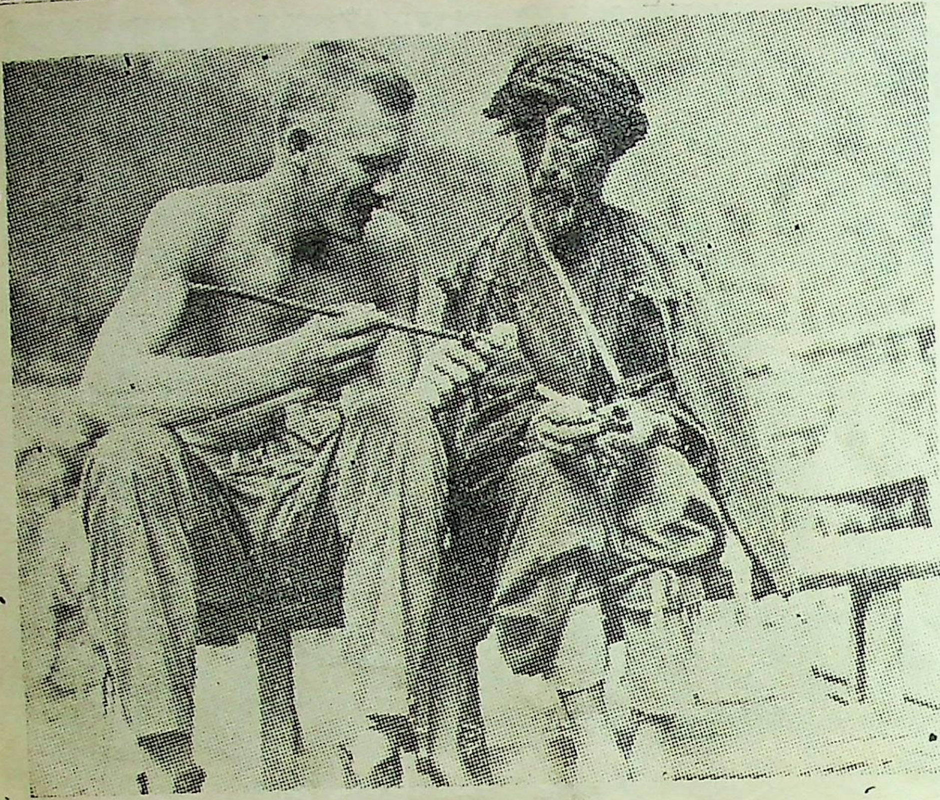
बीच आता है। इस दृष्टिसे कुटुम्ब समाजका आधारभूत स्तम्भ है, जहांसे शिक्षाका स्रोत फूट कर सर्वत्र फैलता है। हर प्रकारकी सामाजिकतामें कौटुम्बीय शिक्षा घूम फिर कर आ ही जाती है।

बड़े-बूढ़ोंकी व्यक्तिवादिता यहांतक बढ़ी हुई है कि उनकी मर्जीके खिलाफ कोई काम नहीं कर सकता। वे अपने लड़कों या लड़कियोंका शादी-ब्याह अपनी इच्छानुसार करते हैं। दिनमें एक तरफ जाकर पति-पत्नी बातें नहीं कर सकते। वे लोग अपने पुत्रके लिये पत्नी नहीं लाते बल्कि 'बहू' लाते हैं। इसके कारण कितने ही नवयुवक घबड़ा कर भाग खड़े होते हैं।

कुटुम्बका आदर्श यात्रा व खेल-कूदमें भी रोड़ा बन जाता है। बच्चोंको बताया जाता है कि यह शरीर माता-पितासे उनको प्राप्त हुआ है ; अतः उन्हें कोई अधिकार नहीं कि वे उसे चोट पहुंचायें। कन्फ्यूसियसने यात्राके सम्बन्धमें कहा है कि कोई व्यक्ति जहां उसके माता-पिता रहते हों, उस स्थानको छोड़कर दूर यात्राके लिये न जाये। और यदि वह जाता है तो उसका कोई खास स्थान निश्चित होना चाहिये। बिना निश्चित स्थानके कोई यात्रा नहीं होती। कहीं न कहीं तो यात्री पहुंचेंगे। पोते अथवा पोती को ऊंचे स्थानोंपर चढ़ना अथवा बुरे स्थानोंपर जाना कतई मना है। इस तरह स्पष्ट है कि दूसरेके व्यक्तित्वको अपने ढंगसे विकसित होने देनेमें चीनी कुटुम्ब-प्रथा स्वयं अपनेमें ही व्यक्तिवादका विरोध है।

कन्फ्यूसियसवाद

कन्फ्यूसियसवाद समाजके जरिये कुटुम्बोंमें अपनी जड़े जमाये हुए है। यह वह दर्शन है, जिसने चीनमें घर कर लिया है। साथ ही वह समाजके शरीर व उसके संचालनका एक सिद्धान्त है। वह मनुष्यके आपसी व्यवहार के सम्बन्धमें अपने सिद्धान्तपूर्ण रूपसे व्यक्त करता है। राजा और प्रजा, पिता और पुत्र, पति और पत्नी, भाई और मित्र, इन चारोंके सम्बन्ध कुटुम्बकी सीमाके बाहर नहीं हैं।



जोड़ दिया गया है। कुटुम्बतक तो उसकी उपयोगिता ठीक है, किन्तु उसके बाहर समाज के लिये वह हानिकारक है। उनका पुराना दृष्टिकोण सम्पूर्ण समाजके लिये सुचारु नहीं। दूरसे ही देखने पर अनुभव होगा कि कुटुम्ब एक ऐसा घेरा है जहां सब समान रूपसे हिलमिल कर रहते हैं। उसे बाह्य समाजसे कोई मतलब नहीं। अतः इस तरह वह एकांगी है।

चीनमें अफीम पीनेका व्यापक रिवाज है। एक चीनी एक अंग्रेजको अफीम पीनेकी प्रणाली बता रहा है।

अतः कुटुम्ब चीनी-जीवनमें आदर्शका स्थल बन जाता है। इसके अतिरिक्त दूसरी ओर कुटुम्बके द्वारा अति होनेपर जो विकृत परिणाम होते हैं उनका वर्णन एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हेन-फेइट्सने बहुत पहले किया है। उसने कितनी ही खामियोंको राज्यके सन्मुख रखा, परन्तु परिणामके नाम पर उसे सुकरातकी तरह जहर खा लेना पड़ा।

कन्फ्यूसियसके सिद्धान्तोंको देखनेपर इस बातका पता चलता है कि उसका विश्वास रहा है कि सम्पूर्ण सामाजिक आदर्शकी शिक्षा एक मात्र कुटुम्बके द्वारा दी जाये। जिन्हें घरके लोगोंसे प्रेम है, उन्हें प्रेमके नामपर दूसरोंसे घृणा नहीं करनी चाहिये। "जो अपने माता-पितासे प्यार करता है उसे दूसरोंसे घृणा करनेका साहस नहीं करना चाहिये।" इस प्रकार घरसे सहनशीलता, आज्ञा पालन, व दयाका स्रोत प्राप्त कर उसे सामाजिक बनाना उसका ध्येय रहा है। किन्तु उन सिद्धान्तोंका उचित अर्थ न लेकर जिसने उन्हें सीमित अर्थमें समझा है, उसने उस महात्माके प्रति अन्याय किया है। कुटुम्ब द्वारा दी जानेवाली शिक्षाको सिर्फ गलतीसे राजनीतिके साथ

चीनी कुटुम्ब और समाजके नये विचारोंमें भारी संघर्ष है। इस दृष्टिसे चीनी समाज कुटुम्बके रूपमें अलग अलग इकाइयोंमें विभक्त है। पर तु सिवा राज्यके कोई ऐसी संस्था नहीं जो इन इकाइयोंको एकत्र स्थापित करती हो। जिस तरह चीन संसारके सम्मुख अबतक अपने आपमें सीमित रहा, ठीक वैसे ही कुटुम्बोंकी इकाइयां अपने बने हुए दायरेमें पनपती रहीं। ऐसी स्थितिमें राष्ट्रवाद या समाजके प्रति नये दृष्टिकोणोंके विकासके लिये कोई खुला हुआ रास्ता नहीं मिला। इतना बड़ा युद्ध निकल गया किन्तु चीनमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। सब चीजें पुराने ढङ्गपर चलती रहीं। जो नयी बातें पैदा हुईं वे अच्छी तरहसे अभीतक विकसित नहीं हो पायी हैं।

वर्ग-भेद

चीनमें दो वर्ग प्रमुख हैं। एक वह वर्ग है जो कानून और अधिकारका अनुचित प्रयोग कर जी रहा है। जिस तरह भारतीय समाजमें सामन्ती लोगोंका गुट है, करीब-करीब

वैसा ही चीन का यह वर्ग है। इसे या-मेनके नामसे पुकारा जाता है। दूसरा वह वर्ग है जो कर देता है और कानूनके बाहर जानेकी हिमाकत नहीं करता। दूसरे शब्दों में ये वर्ग शोषक और शोषितके रूपमें विभक्त हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे खान्दान हैं जो समय समयपर अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियोंमें ऊपर या नीचे वर्गमें मिल जाया करते हैं।

या-मेन वर्ग चीनके समाजमें एक जालकी तरह फैला हुआ है। वह एक ऐसे पेड़की तरह है जिसकी शाखाएं एक दूसरे से मिलकर सम्पूर्ण चीनपर फैली हुई हैं। एक शाखा एक दूसरे पर अवलम्बित होकर एक दूसरेके विकासमें मदद करती है। ऐसे ही आशयकी चीनमें एक उक्ति प्रसिद्ध है कि बड़ेही बड़ेको बचाता है। जन साधारण एक प्रकारकी जमीन है जिससे यह या-मेन वर्ग रस पाकर बड़ा होता है ताकि वह उनपर राज्य करे। मेनसियसने एक बार साधारण मनुष्य और सभ्य पुरुषके अन्तर को व्यक्त करते हुए कहा था कि सभ्य पुरुषोंके अतिरिक्त साधारण जन समाज पर कौन राज्य करनेमें समर्थ है। इसी तरह बिना समाजके इन सभ्य मनुष्यों को कौन पाल सकता है। इसी तरह एक बार कन्फ्यूसियसके पूछनेपर एक राजाने कहा था, "महात्मा! यदि राजा अपने राजत्वमें न रहे और प्रजा अपना कर्त्तव्य पालन न करे तो मेरा पोषण कैसे होगा जब कि देशमें बहुत चावल है। इस तरह हम देखते हैं दूसरे देशों की तरह चीनमें भी यह वर्ग जनसाधारण की छातीपर पनप कर उनपर राज्य करने का प्रयत्न करता है।



शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित चीनी वीरांगनाएं

यह सच है कि भविष्य में या-मेन या उनके ढंग पर चलने वाले दूसरे खान्दान चीनमें हमेशाके लिये खत्म हो जायगें। अब ऐसे खान्दान कम हो गये हैं जो इस बातपर गर्वसे करनेका साहस करें कि उन्होंने चीनके लिये अमुक कार्य किया है। मन्चु घरानेने १६४४ के बाद कोई सराहनीय कार्य नहीं किया। कन्फ्यूसियसके खान्दान द्वारा पिछले दो सौ वर्षों में इतिहास प्रसिद्ध ऐसा कोई काम नहीं हुआ।

प्रतीक्रिया

इस आर्थिक असमानता की प्रतिक्रिया वर्तमान चीनमें तेजी से हो रही है। साम्यवादी सिद्धान्तोंका प्रचार जोरों से हो रहा है। यद्यपि यह साम्यवादी विचारधारा रूसी सिद्धान्तों पर पूर्ण रुप से अवलम्बित नहीं है। कन्फ्यूसियस बादके धरातल पर साम्यवादी भावना लोगों को सही रास्ता बतानेमें मदद करने लगी। इन सिद्धान्तोंका प्रचार इतनी गति से हुआ कि लोग या-मेन या बड़े अधिकारियों एक मनुष्यके नाते मिलने जुलने की हिम्मत करने लगे। इससे या-मेन या अन्य अधिकारियोंको अपने व्यवहार और सम्बन्धमें पुराने ढंगपर चलना मुश्किल हो गया है। वे भी समयके साथ व्यवहारको ऊपरी तौरसे बदलने लगे हैं परन्तु कुछ अभी भी उसी चाल से चलते हैं। फलस्वरूप उनके प्रति काफी असन्तोषकी आग भड़क रही है!

अन्धविश्वास

पक्षपात, चेहरा और भाग्य चीनी व्यक्तियोंके विचारपर बड़ी गहराई से असर करते हैं।

चीन का व्यक्तिगत सम्बन्ध हमेशा पक्षपात में रंगा हुआ होता है। यह आदत यहांतक बढ़ी हुई है कि अदालतोंमें न्याय और धर्म भी कुछ नहीं रहते। जब कोई व्यक्ति अपराध करनेपर पकड़ा जाता है तो उसके सम्बन्धी हमेशा ऐसे व्यक्तिका सहयोग प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं जो उच्च अधिकारियोंको जानता हो। वे कानूनके सहारे जानेके बजाये पक्षपातके बल पर छूट जानेमें अधिक भरोसा करते हैं।

दूसरी बात चेहरे की है। चीनी लोगोंका विश्वास है कि जिस व्यक्ति का चेहरा चौड़ा होगा, वह हर काम में सफल होता है। इस अन्ध विश्वासके आधार पर बड़ी बड़ी क्रान्तियां समाजमें उत्पन्न होती रहती हैं। पक्षपातके सम्बन्ध में घटनाओं की खोज खबर करने पर बड़ी विचित्र कहांनियां प्राप्त होती हैं।

१९३४ में एक स्त्री अधिक गर्मीके कारण अधूरे लिबास में घरसे बाहर निकल आयीतो उसे पकड़ लिया गया। परंतु जब मालूम हुआ कि वह एक बड़े घरानेकी स्त्री है, तो पुलिस अधिकारी द्वारा उसे पकड़नेवाला सिपाही, 'पक्षपात' के कारण, गोलीसे उड़ा दिया गया। यदि वह किसी अधिकारीकी स्त्री न होती तो ऐसा बदला शायद ही लिया जाता। चीनकी किसी पुरानी पुस्तकमें लिखा है कि "मेहरबानी साधारण मनुष्यों पर नहीं की जानी चाहिए, इसी तरह दंड-व्यवस्था बड़ोंके लिए नहीं है।"

भाग्य पर लोगोंको बहुत भरोसा है। यदि कोई व्यक्ति अपनी मेहनत और अपने सत्कार्योंसे कोई बड़ी रकम पा जाता है तो लोग उसके कार्योंको नहीं देखते बल्कि सोचते हैं, यह भाग्यके कारण हुआ है। यह भाग्यवाद चीनके जीवनमें बहुत आत्मप्रेरणा प्रदान करता है। न जाने कब भाग्योदय हो जाय; अतएव निराश होनेकी आवश्यकता नहीं। सतत परिश्रम करते जाना चाहिए।

चेहरेके बड़े होनेपर लोगोंपर प्रभाव अधिक पड़ता है। चीनी लोग चेहरेको अच्छा और भव्य रखनेके लिए जी जानसे कोशिश करते हैं। एक बार चाहे शरीरका कोई अंग कटवानेको तैयार हो जायेंगे, परन्तु चेहरे पर सल नहीं आने देंगे। यदि चेहरे की भव्यता और चौड़ाई नहीं हो तो दूसरे गुणोंका कोई महत्व नहीं।

जो असमानता चीनी समाजमें आज फैली हुई है वह कम नहीं। भविष्यमें इसकी प्रतिक्रिया उग्र होकर विस्फोटके रूपमें व्यक्त होगी, ऐसा विश्वास करना अनुपयुक्त नहीं है। सही मानेमें चीनमें जनतन्त्रवादको सफलता तभी प्राप्त हो सकती है जबकि जालकी तरह फैले हुए या-मेन घराने, तथा समाजके अंधविश्वास अपना कार्य करना बन्द कर दें। बढ़ते हुए प्रगतिशील विचारोंको इन परम्परागत विश्वासों और घरानोंके प्रकोप के विरुद्ध अपना मार्ग बनानेके लिये साधारण जनसमाजका संगठन करते जाना चाहिए।... भविष्य उनके साथ है। कल उनका होगा!

पायल

श्रीमती चन्द्रप्रभा द्विवेदी

पवनका एक तीखा झोंका आया, और कोठरीके बंद द्वारको खोलता चला गया। सुखियाने पीछे मुड़ कर देखा और मुस्कुरा दी। वह उठी और उसे फिर बन्द कर देनेके लिये द्वारपर आयी। पर द्वारके निकट आते ही न जाने क्यों उसके मस्तकपर सारीका पल्ला झुक आया, और वह द्वार बन्द कर चुपकेसे लौट जानेको आतुर होती हुई भी जम कर खड़ी हो गयी। उसकी दृष्टि अनायास ही, उस अमराईको पार कर—सुदूरकी पगडण्डीपर जा पहुंची; जहां से उसके घरको आनेवाला पथिक स्पष्ट हो दिखाई दे जाता था—सूना सा पड़ा था।

उसका हृदय धक् सा हो गया—"क्या कोई आ रहा है? इस एकाकी कोठरीको अपनी चहल-पहलसे भर देने ?? पर नहीं, यह तो तृष्णा और कोरा स्वप्न है।"

वह अधरोंसे इतना बुदबुदाई, फिर अमराईकी झुकी डालोंको देखने लगी—जो टिकोरोंके भारसे झुकी थीं। "इस साल रुपये खूब आयेंगे। ठाकुर साहबने सस्ते हीमें दे दिया है।"

कोठरीके भीतरसे ही सब कुछ उसने देख डाला। पतझड़के नग्न वृक्षोंपर नूतन पल्लव, कुसुम कलियोंके साथ वायुमें लहरा रहे हैं। सारे उजड़े प्रान्त भर गये, और भरे ही जा रहे हैं। सामनेकी लतिकाके भालपर सिंदूरी फूलों का जाल तन गया है, पर उस सुदूर—पगडंडीके आनेवाले पथिक!

उसकी आंखोंमें उसके पतिकी सूरत नाच उठी—"वह इसी पथपर ही जाकर, उड़ती हुई धूलके बादलोंमें छिप गये थे। पूरे दो साल हो गये। वह लौट कर नहीं आये।" उसके कानोंमें ऐसा ज्ञात हुआ-जैसे कोई हल्के-हल्के पग रखता हुआ आ रहा है। पगध्वनि उसकी चिर परिचिता है। वह चौंक उठी। पीछे मुड़ कर देखा, कोई ो नहीं है। हां, उस खिली लतिकाके बीचमें दो पक्षियों के पंख फड़फड़ाते अवश्य दिखाई पड़े। उसने देखा—'दो कबूतर हांफते हुए आ बैठे हैं। लतिका मानों आनन्दसे झूम रही है, 'दो पक्षी! कैसा सुन्दर इनका जीवन है?'

सोचती हुई वह विभोर सी हो उठी—'दोनों कबूतर कितने प्रसन्न हैं!' बड़े कबूतरने इसी समय साथीकी चोंच पकड़ ली, दूसरा दूर हट गया, पहला अपने परोंको फुला कर, मीठी आवाजसे बोलता हुआ नाचने लगा—दूसरा उसे दूरसे देख ही रहा है। फिर धीरेसे आगे बढ़ा और पहलेकी पीठपर अपनी नुकीली चोंच चुभा दिया, अब उसके भी चोंच खुल गये। सुखियाकी आंखें बन्द हो गयीं। पिछले तीन वर्षोंके लम्बे समयके अन्तरको दूर कर उसने अपने निकटतम पाया—बल्लाको। ऐसी ही सुनसान दोपहरी थी, ऊष्णा बढ़ती ही जा रही थी। आज ही की तरह उसकी सास और देवर ठाकुर साहबकी बगियामें कुएंके पाससे क्यारियों तककी नाली बनाने गये थे, बल्ला भी गया था। तब यह नई बहू आयी थी, इस कोठरीके जीवनका वह प्रभात ही था, यद्यपि आज भी वह वैसी ही रहती है—अपनी मोटी सारी और छोटी कोठरीमें सीमित। मुखका अवगुण्ठन प्रत्येक क्षण उसे दूसरोंकी नजरोंसे छिपाये रहता है, और वह उसीमें लजाई हुई, अपनी कजरारी आंखोंके कोरोंसे सबको देख लेती है, किन्तु अब वह दुनियाका नवीलापन नहीं है, जिसे वह पहले प्रत्येक क्षण पाया करती थी। सब कुछ वही होता हुआ भी नया था और बल्ला? वह तो उसके लिये आज भी वैसा ही नया, वैसा ही अप्राप्य एवं दुर्लभ है। उस समय यदि लज्जासे तो इस समय विदेशमें होनेसे।

आस-पासकी युवतियों और बूढ़ियोंमें उसके रूप और शीलकी चर्चा थी। यह उसकी सास और देवर तो कहते ही, बल्ला भी चुपकेसे कहता…

"क्या तुम दीपककी ज्योतिमें मुझे वह रूप देखनेकी आज्ञा दोगी?"

सुखिया लजा कर सिर नीचा कर लेती। कोठरीका

अन्धेरा वातावरण प्रकाशमय हो जाता। वह मनुहार करता और यह घूंघटके भीतरसे अपनी लम्बी गरदन हिला कर, एक मानिनी नायिका सी अस्वीकार कर देती। उस दिन बल्ला अपनी मां और भाईके साथ खाना खाकर उदास-उदास सा बगियामें जा रहा था और सुखियाने जोरसे द्वार भीतरसे बन्द करके मानों उसे औ भी चिढ़ा दिया था। वह हंस पड़ा, उसका भाई भी खिलखिला उठा और मांने कहा—

"वह रुठ गयी है।"

देवरने कहा—"उसने मुझे भगा दिया है।"

किन्तु बल्लाने कुछ भी न कह कर, हंसीका एक कहकहा लगाया था। सुखियाने सब कुछ कानोंसे सुना और द्वार की सन्धियोंसे आंखें लगा कर देखा था। फिर देरतक अपनी मैली शैयापर करवटें बदलती और कल्पनाके चित्रों को देखती रही, उसें झपकी ही लगी कि उसका द्वार धीरे से खड़क उठा था। जैसे चञ्चल पवनने उसे छेड़ दिया हो, किन्तु अस्फुट स्वर था—बल्ला का। सारे हाथ पैरमें सिहरन दौड़ गयी, वह तेजीसे उठी, किन्तु पगतल उठे धीरेसे। उसने कांपते हाथोंसे द्वार खोला। बल्ला भीतर आया, द्वार फिर वैसे ही बन्द थे। सुखियाने देखा—वह चुपचाप खाटपर गिर पड़ा है और सिरपर हाथ रखकर कराह उठा।

सारी सिहरन, सारा आमोद, उस कराहके स्वर डूब गया, और वह घबराई सी निःसंकोच उसके सिरहाने आ कर जमीनपर बैठ गयी—

"कैसे हो तुम!"

"मर रहा हूं।"

बल्लाका यह स्वर बाण-सा सीधा उसके मर्ममें प्रवेश कर गया। वह घायल मृगी सी उठी—चटपट बक्स खोल कर पिताके यहां पाये हुए तैलकी बोतल निकाल लायी, जिसमें सुगन्धित तैल भरा था। जिसे सासने रखवा दिया था, लड़कोंको बिरादर, पंचायतमें जानेके समय लगानेके निमित्त। सुखियाकी कोमल अंगुलियां, उसके धूल भरे बालोंमें उलझने लगीं। बल्लाने उच्छ्वासके साथ कहा—

"थोड़ा और आगे, सुल्ला फटा जा रहा है।"

सुखिया अब सीधी चारपाईपर आ बैठी और सावधानीसे मस्तक दबाने लगी। अवगुण्ठन उसका कहां है, यह उसे उस समय याद नहीं था, न उसकी चिन्ता थी। उसके तन-मनमें, बल्लाके सिरकी पीड़ा शत-शत बिच्छुओंके दंशनको लेकर फैल रही थी। सहसा बल्लाके शिथिल हाथ उठे, और उसकी कोमल कलाइयोंपर पड़ते ही दृढ़ हो गये। उसके हास्यसे वह कोठरी गूंज उठी और वह बोला—

"कैसा फंसाया?"

सुखियाका मस्तक अब तना न रह सका। वह झुका, उसका शरीर झुका और वह खाटके नीचे लटक पड़ा, किन्तु बल्ला नादान नहीं था। सुखियाने आंखें खोल कर देखा, उसका सिर बल्लाके वक्षपर है। अभीतक वह उसके इतने निकट नहीं आयी थी, ऐसा सोचते भी उसे लज्जा आ रही थी।

दृश्य बदला—उसी समय, पायलकी झंकार सुनाई दी, साथ ही मृदुल कण्ठकी खिलखिल। बल्लाके कान चौकन्ने हो गये, वह सुखियासे बोला—

"देखो, ठाकुर साहबके दुलारी बेटी आ रही हैं। मेरी कोठरीको तुमने स्वर्ग बना दिया है। यहांपर आज उनके चरण पड़ेंगे, तुम्हें देखने आ रही हैं।"

सुखियाके कानोंमें वह पायलकी पगध्वनि कठोर कुलिश सी बन कर भर गयी। उसका प्रसन्न मुख कुम्हला गया, उसके प्यासे नेत्र ऊपर उठे, उसके मनकी सारी व्यथा उनमें आ समाई थी, पर वह मौन रहे। बल्ला पीछेकी खिड़की धीरेसे खोल कर बाहर कूद गया, पायलकी झंकार कोठरीके द्वारपर आकर समाप्त हो गयी, और एक स्वर सुनाई पड़ा, जो उसकी सासका था—

"बहू, द्वार खोल दे।"

सुखिया उठी, उसके भारी पैरोंने आगे बढ़ कर उसे द्वार खोलनेको बाध्य किया। लक्ष्मी सी सजी एक तरुणी खड़ी थी। सुखियाने घूंघटसे देखा। देखती ही रहना चाहती थी—उस मूर्तिको, और जिससे वह कुछ खोज निकालना चाहती थी। इस समय न तो उसे कुलोचित व्यवहारकी याद रह गयी थी और न अपने स्वभाव की,

जिसे चलते-चलते तक मांने समझाया और सिखलाया था। वह निस्तब्ध ही खड़ी रह जाती, यदि सास उसे दुलारी बेटीके पैर छूनेकी याद न दिलातीं। वह धीरेसे झुकी और पैर छूकर बैठ गयी। दुलारी बेटी देरतक रुकीं या शीघ्रही चली गयीं, उसके बर्तावसे प्रसन्न थीं या अप्रसन्न, यह उसे कुछ भी न जान पड़ा था। हां, उनके जानेके बाद जब फिर बल्ला सामने आया, तो उसकी आंखोंमें एक नशा सा छाया था। अरुण आंखोंमें चमक थी, उसने छूटते ही पूछा—

"क्या दुलारी बेटीके पायल चमकते और चहकते तुम्हें अच्छे नहीं लगे थे ?"

सुखियाने उधर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया था, वह क्या उत्तर देती ? वह पगली सी उसका मुख देखने लगी थी। बल्ला अपने ही आप बोला—

"मैं तुमको वैसी ही सजी देखना चाहता हूँ।"

उत्तरमें सुखिया क्या कहेगी, यही देखनेके लिये उसकी पैनी चितवन सुखियाकी आंखोंपर आ जमी थी। पर सुखिया केवल मुस्कुरा कर रह गयी। बल्लाको लगा, जैसे उसने उसके मनकी थाह पा ली है। वह उसी दिनसे कलकत्ते जानेकी बात करने लगा था। सुखियाको लगा कि वह उसे केवल चिढ़ा रहा है और वह भी इसलिये कि वह उसके सन्मुख जो अपनेको निःसंकोच रख नहीं पा रही है। रख भी कैसे पाती ? उसकी पलकें स्वयं ही झुक जाती हैं, गर्दन नीची जो हो जाती है, वह उसके लिये क्या करे ! यद्यपि घूंघटकी ओटसे वह उसे प्रतिक्षण, जबतक उसके सामने वह रहता है, देखा ही करती है, इसीमें वह सास और देवरके सामने पकड़ भी जाती है, पर प्रत्यक्ष वह ऐसा करनेमें अपनेको असमर्थ पाती थी। कलकत्ते जानेकी चर्चा बल्लाने जोरोंसे छेड़ दी थी। यही नहीं मांका अनुनय भरा स्वर, भाईका रूठा मुख और सुखियाकी भरी आंखें भी उसे उस पथसे विमुख न कर सकीं। ठीक ऐसी ही एक दोपहरमें वह अपनी छोटी गठरी लेकर निकल गया था, जिसके पूरे दो साल हो गये हैं।

सुखिया अपनी सजल आंखोंसे उसी पथको देखने लगी—उसका हृदय भीतर ही भीतर खौलने लगा—"मेरी दुनियां, मेरे सपने !"

उसकी दृष्टि भी उसी लतिकामें जा उलझी—जिसमें वह दोनों पक्षी अपने प्रेम पुलकित पंखोंमें अपना आनंद समेट कर बैठे थे, सुखियाने अपनेसे पूछा—

"क्या यह भी पायलकी पागल झंकारके लोभी हैं ? क्या मेरे पायलोंसे अधिक मूल्यवान् मेरे सपने नहीं थे। मैंने आखिर मांगा ही कब था ? मैं जानती हूँ कि मेरे मनमें एक छिपी अभिलाषा अवश्य थी, पर मैंने उन्हें खो कर तो नहीं चाहा था ? क्या मानव होना ही सोने-चांदीके रूपमें अपनेको खो देना है ? यह पक्षी कभी नहीं एक दूसरेसे कुछ चाहते। चाहते हैं, केवल प्यार ! कितना सुन्दर इनका व्यापार है, न कहीं कोई बाधा है और न अभाव ! अपने पंखोंपर उड़ना और प्रत्येक क्षण अपने प्रियतमके निकट रहना, एक डालका झूला, एक घोंसलेका बसेरा और एक दानेमें दोनोंका चुगना।"

वह देख ही रही थी कि उसमेंसे एक कबूतर एक तेज झोंकेसे लड़खड़ा कर गिर पड़ा और दूसरा चीत्कार करता हुआ उसपर मंडराने लगा—जमीनपर पड़ा हुआ वह कबूतर लहू-लुहान तड़प रहा था। सुखियाकी आंखें सजल हो गयीं, साथ ही घृणा एवं क्रोधसे वह कांप उठी और लपक कर उसके निकट जा पहुंची। कबूतर तड़फड़ा रहे थे, एक मृत्युकी वेदनासे, दूसरा अपनी असहाय बेचैनीसे। सुखियाने एक बार उस मंडराते एवं चीत्कार करते पक्षीकी ओर देखा और दूसरे ही क्षण उसके हाथोंमें रक्त रंजित कबूतर आ गया, वह वेदना भरे स्वरसे बोली—

"न जाने किस पापीने...... !"

उसकी दृष्टि अचानक सामने एक मुस्कुराते युवकपर जा पड़ी। हड़बड़ा कर उसने घायल कबूतरको वहीं छोड़ दिया और मस्तकपर सारीका घूंघट बनाती हुई, अपनी कोठरीमें लपक कर घुस गयी।

पर पीछे मुड़ कर देखा, तो उसका रक्त सूख गया। वही युवक उसके निकट निर्भीकतासे खड़ा मुस्कुरा रहा है। सुखिया भयसे कांपने लगी। युवक और समीप आ गया और पूछा—

"क्या कह रही थी ?"

सुखियाने एकाकी बनमें अपनेको व्याधके निकट ही पाया, वह अपनेको बचानेके लिये दूसरे कोनेमें सट कर खड़ी हो गयी। युवक छायाकी भांति वहां भी जा पहुंचा और बोला—

"तू क्या कर रही थी ?"

"कुछ नहीं।" सुखियाका स्वर कांप रहा था।

"अच्छा कुछ नहीं, पर तू इस तरह भाग क्यों रही है ?"

युवककी निर्भीकतासे सुखियाका लजीला हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया, पर वह विनीत स्वरमें बोली—

"आप यहांपर क्यों आये ? क्या मेरी सास और देवर आपकी बगियामें हैं, आप नहीं जानते ?"

"जानता हूँ, तभी आया हूं। पर तू नासमझ है कि मैं समझाऊंगा ?"

सुखिया तिलमिला उठी, उसकी आंखोंमें खून उतर आया। उसने पलकें उठाईं और दर्दसे उत्तर दिया—

"मैं कोई ओछी नहीं—एक बहू हूँ...... ।"

"हां, और शायद मेरे ही परिवारकी।"

"मेरी इज्जत आपहीके परिवारकी है। इसका फैसला बड़े ठाकुर करेंगे।"

"अच्छा ? यह हिम्मत है ?? तो मैं तुझे मिट्टीमें ही क्यों न मिला दूं।"

इसी समय द्वारपर उसके देवरका स्वर सुन पड़ा। युवकने अपनी गुलेल संभाली और शानके साथ अकड़ कर बाहर निकल गया। देवरने देखा, उसकी आंखोंसे चिनगारियां निकलने लगीं। वह सीधा सुखियाके पास आया। सुखिया कोनेमें सहमी हुई खड़ी थी, अब उसे देखते ही उसकी आंखोंसे आंसूकी बूंदें टपकने लगीं।

आंसूकी उन गर्म बूंदोंको देखते ही वह कड़क उठा—"अब तू मुझे बहलाना चाहती है ? समझ गया कि क्यों भैया आज दो सालसे परदेशमें पड़े हैं, आखिर ठाकुरका चक्कर काटना खुल कर ही रहा।"

सुखियाने दोनों हाथ जोड़ कर सिसकते हुए कहा—

"मैं एकदम निर्दोष हूँ।"

"हां, वह घरके भीतरसे उनका निकलना ही बता रहा है कि तू अपनी कोठरीमें ही द्वार बन्द करके रहती थी।"

अब सुखियाके पास कोई उत्तर नहीं था। वह उसे बुरा-भला कहता बाहर आया और शोर मचा-मचा कर लोगोंकी भीड़ जमा कर दी। बूढ़े ठाकुर साहब तक यह बात पहुंची। उन्होंने बेटेको बुला कर उसे डांटा-फटकारा, सुखियाके देवरको भी समझा दिया ; पर उसे तो कलंकिनी भाभीको रख कर, अपनेको कुआंरा नहीं रखना था। मांके मरनेपर जातिसे अलग रह कर अपनी ओर अंगुली नहीं उठवानी थी। यह सब कुछ नहीं होने देगा—अपराधिनी तो भाभी ही थी, यदि वह न द्वार खोल कर ठाकुर साहब को बुलाती तो भला कभी वह आ सकते थे ? नहीं, सब कुछ वह सह लेगा, पर कुलटाके साथ न रहेगा। सालोंसे ठाकुर साहब चुपके से उसके घर आते रहे हैं, पर यह साफ झूठ बोल रही है।

(२)

दिन ढल रहा था। पंचोंकी अदालतके फैसलेने सुखियाको घर से बाहर हो जाने का फैसला सुनाया था। वह कभी घर से बाहर न निकलती थी। बाहर की दुनिया से सर्वथा अनभिज्ञ थी, पर सब कुछ होते हुये भी अब तो वह दूध की मक्खी थी। जिसका सम्मान लुट चुका था, सत्य पर आवरण चढ़ा था, जिसको खोलनेके लिये उसके पास एकही वाक्य था—"मैं निर्दोष हूँ।" पर नक्कारखानेमें तूती को आवाज कभी सुन पड़ी है ?

वह सीधी घर से बाहर निकल पड़ी, सुदूरकी दिखाई देने वाली पगडंडी धीरे-धीरे उसके पगतलों में आई, और उसने वहींसे उलट कर देखा—हरे-भरे उन्नत वृक्षोंके झुरमुट में उसकी अपनी कोठरी एक घोंसले सी अस्पष्ट झलक रही है। कितनी सुन्दर वहां की शोभा थी। वह क्षण भर देखती रही, फिर एकाएक उठकर चल दी। भगवान् सूर्य का लाल मुख तमतमा रहा था। फिर भी प्रकाश प्रतिक्षण क्षीण होता जा रहा था। सूर्यके रहतेही यह सब ? आचानक वह किसी से टकरा गई अपने को सम्भाल कर देखा—वही युवक मुस्कुरा रहा है।

सुखियाकी आंखें जल उठीं, पर वह झुका कर दूसरी ओर मुड़ गई। युवक ने रास्ता रोककर पूछा—

"अब तू कहां जायगी ?"

"जहां भाग्य ले जाय, तुम सामने से हट जाओ।"

"मैं, हट जाऊंगा, पर यह बता कि यह रूप राशि तुझे कहांतक सुरक्षित रखेगी, इस दुनियांमें उसका आखिर मूल्य ही क्या है ? सिवा उसके अपनाने के। यदि तू ऐसा नहीं करती, तो इसे जन-जनके द्वारा केवल लांछित ही तो होना है, तेरी मृत्यु भी उसे नहीं बचा सकती; क्यों कि अब तू एक बहू नहीं रास्ते की एक तिरस्कृत नारी है। आ, मैं तुझे अपनाता हूँ, इस प्रकार तू गली-गली का रोड़ा न होकर फिर एक गृहणी बन जायेगी।"

सुखिया की आखों में मूर्च्छिता भिखारीके और दलित स्त्रियोंके चित्र घूम गये। उसका सिर चकरा उठा, वह वहीं कटे वृक्ष सी गिर गई। वह कैसे कहती कि वह जिन जीवन साथी के सन्मुख कभी प्यारके एक शब्द नहीं बोल सकी, लज्जाने जिसे पंचोंके सन्मुख आप बीती कहनेका अवसर नहीं दिया, वह किस प्रकार एक पराये व्यक्तिके प्रणयको स्वीकार करेगी और कैसे अपने को चुपचाप समर्पित कर देगी? उसने अंतरिक्षकी ओर देखा,—किसी देवताकी छाया नहीं थी, जो उसे अभय करती। उसने मनसे पूछा—

"तो क्या मैं निश्चय ही इस तन-मन को बेचती फिरूंगी ? जहां केवल मेरे मानकी स्वर लहरी झंकृत है ?" पापी मन ने कहा—"हां, निश्चय हो।" उसने धीरे से कहा-"फिर यही क्यों न अपना लिये जायं।" वह चीत्कार करती हुई बोली—"नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा, मैं प्राण दे दूंगी, पर सहर्ष शरीर नहीं।"

युवक ने उसे अपनी बाहों में भर लिया। उसका शरीर पसीने से तर हो गया —"हाय" बीच रास्ते में नृशंसता ? एक झटके से उसकी मुट्ठियां युवक की गर्दन में जम गई। उसकी आंखें निकलने लगीं, बाहें शिथिल हो गयीं और सुखिया अब मुक्त थी।

रात्रि की गहन नीरवता को बेधती ट्रेन दौड़ी आ रही थी, जिसकी बर्थ पर बैठा बल्ला अपने गांव में अपना घर देख रहा था, पलकों में वह विस्तृत रूप में दिखायी दे रहा था- बूढ़ी मां चमकते रुपयों और नोटों की गड्डी को निहाल होकर देख रही है। भाई आकर मनुहार करेगा, रूठेगा, फिर अपने कामों का ब्योरा देगा और ताने कसेगा, तभी उसे 'जयपुरी' साफा दूंगा; बिलकुल ठाकुरों के जैसा। वह खिल उठेगा और सुखिया? वह घूंघट की ओट से मुस्कुराती हुई देखती रहेगी, मनके भावों को प्रगट करेगी। 'विदेशी' और छलिया' कहकर। तभी मैं गहनों की पिटारी खोल दूंगा, और चमकते पायल, रंगीन सारी, हाथोंकी चूड़ीयां, सभी कुछ तो, सेंट की शीशी। मेरा एक वक्तका भोजन, सारे दिन की मिहनत सफल हो जायेगी, तब देखूंगा वह किस दुलारी बेटी से कम है।

इसी समय उसका भाई स्वप्न देख रहा था-बल्ला रुपये, कपड़े और गहने लेकर लौट आया है। भाभी की चर्चा ने उसे पागल कर दिया वह अब उसके रास्ते से दूर हो गया है, मां उसे दूसरा ब्याह करनेको कहती है तभी वह भाग जाता है। रुपयों से उसका ब्याह हो गया, भाभीके कपड़ों, गहनोंमें लिपटी उसकी प्रेयसी सो रही है।

सुखिया ने प्रत्यक्ष देखा-ट्रेन आ रही है,क्या इसी पर उसका बल्ला आ रहा है ? यदि हां, तो फिर विलम्ब कैसा ? उनके चरणों में यह पापी प्राण पवित्र हो जायंगे।" ट्रेनमें एक झटका लगा, रक्तसे पहिया और पटरी लाल हो गयी।

———

कलाका समाजवादी धरातल

श्री 'नवरंग'

इस सामाजिक संक्रान्तिके युगमें जब कि सामाजिक जीवनकी शान्ति संघर्षों के झकझोरमें विलीन हो गयी। पीछे जब कि अर्थके वैषम्यने सारी मानवताको विषाक्त कर दिया है और जब कि भौतिक जीवनके राहुने आध्यात्मिक जीवनको पूर्णरूपेण ग्रस लिया है। कलाकी आध्यात्मिक नींव हिल गयी है और वह अब जिस ठोस धरातलपर आरूढ़ हो अपने नवीन स्वरूपको प्रगट कर रहा है वह है उसका समाजवादी धरातल जिसका निर्माण भौतिकताकी चट्टानोंसे हुआ है और जिसपर आध्यात्मिकताका पानी नहीं चढ़ पाता। इस धरातलपर कलाका अध्यात्म और दर्शनकी स्वर्णिम दुनियाका भ्रमण मर्त्यलोककी ऊबड़-खाबड़ पथरीली भूमिकी दौड़-धूप बन जाती है। आज अध्यात्म देवीकी मन्दिरकी नर्त्तकी कलाको भौतिकताकी सेवामें उपस्थित होना पड़ा है। आजके युगका तीखा स्वर गूंज उठा है कि आध्यात्मिकताकी सेवा करते-करते कलाकी मौत हो गयी है अब उसे इस दीन-हीन पार्थविक जीवनकी खबर लेनी होगी। उसे भौतिकवादकी क्षुधित शक्तियोंकी पुकारपर दौड़ना पड़ेगा। अब कला संकुचित दायरेमें आबद्ध होकर नहीं रह सकती, जीवनके विस्तृत प्रांगणमें खड़ी होकर ही वह अपने महत्वकी रक्षा कर सकेगी। आज जब जीवनमें संगति नहीं, साम्य नहीं, विशृङ्खलता, व्याकुलता और प्रखर दैन्यका साम्राज्य है तो फिर कला कबतक बाह्य आवश्यकताओं, स्थूल यथार्थोंकी उपेक्षा कर सिर्फ अन्तरकी, अवचेतनताको सूक्ष्मताओंके अन्वेषणतक ही अपनेको सीमित रख सकती है। आजका कठोर सत्य कलाकारको पृथ्वीसे भागने नहीं देना चाहता। "आजकी दुनियामें कलाकी सुन्दर कृतियोंके निर्माण मात्रसे कलाकारके कर्त्तव्यकी इतिश्री नहीं हो सकती, प्रत्युत् उसे सामाजिक सिद्धान्तोंको भी स्थापित करना पड़ेगा। और इसलिये उसे विचारोंका कवि, विचारोंका औपन्यासिक तथा संक्षेपमें धरतीका साहित्यिक संदेशवाहक बनना पड़ेगा। कलामें शुद्ध आत्माभिव्यञ्जनका स्थान कभी नहीं था और आज तो उसकी बात भी चलाई नहीं जा सकती है। संक्रान्तिकालका यह निश्चित और व्यापक परिणाम है कि कोई कलाकार जीवनसे भागकर शुद्ध कलाके देशमें नहीं छिप सकता। शुद्ध कला नामकी कोई चीज अभी नहीं है, उसका समय शायद खत्म हो चुका है या आगे आनेवाला है।"—दिनकर ('मिट्टीकी ओर' का 'प्रगतिवाद—समकालीनताकी व्याख्या')

इस धरातलकी कलाकी पृष्ठभूमि है सामाजिक द्वन्द्व और विप्लवकी भावनाएं। उसके जीवनका प्रेरक स्रोत सामाजिक संघर्षसे ही प्रसूत होता है। अब तो यह कहा जाने लगा है कि कलाके लिये साधनाकी आवश्यकता नहीं, जो व्यक्तिविशेषपर निर्भर करती है उसका उद्गम तो सामाजिक संघर्षकी द्वन्द्वात्मक गति है। सामाजिक जीवनके घात-प्रतिघातपर ही उसका स्वरूप निर्भर करता है। काडवेलने लिखा है कि सामाजिक संघर्षके परिपार्श्वमें स्वयं परिवर्तित चेतनाकी अभिव्यक्ति ही कलाका कार्य है। आज जब रूढ़िगत परम्पराएं विशृङ्खल हो रही हैं और समाजकी सृजनात्मक शक्तियां सजग हो गयी हैं तब कला समाजकी संघर्षशील चेतनाको जागृत करती है। अब वह समझौते और सामंजस्यका स्वर नहीं अलापती, वरन् क्रान्ति और विद्रोहकी दुन्दुभी बजाती है। आज जो कला समाजमें एक आमूल परिवर्तनकी मांग नहीं करती, जो सामाजिक विकृतियोंपर प्रचण्ड प्रहार नहीं करती वह एक विडम्बना मात्र समझी जाती है। आज कलाको समाजके द्वन्द्वात्मक विधानमें से सुख-समृद्धिका पथ खोज निकालना है। सामाजिक आवश्यकताओंकी परिपूर्तिका मार्ग प्रशस्त करना उसका प्रमुख कार्य है। उसे तो आज घनकी चोट बन कर सामाजिक जीवनके हर क्षेत्रके अन्यायोंपर तीक्ष्ण प्रहार करना है। यह युगकी मांग है कि कला एक ऐसी स्वस्थ सबल सामाजिक चेतनाको उत्पन्न करे कि अत्या-

चारोंको सन्तोषसे सहनेवाले कर्मफलवादी मानवका मूढ़ अन्धविश्वास मिट जाय और वह संघर्षके लिये प्रेरित हो, सदियोंसे उपेक्षित और शोषित समाजका वह दिन वर्ग अपनेमें शक्तिका अनुभव करे। सामाजिक परिस्थितियोंसे हार कर वह निष्क्रिय न हो जाय। कलाको आज जनताके संघर्षका अमोघ अस्त्र बनना होगा और तभी वह उसकी क्रान्तिके स्वरों और अधिकारोंकी मांगोंको तीव्रतर कर उसकी परिपूर्तिका पथ निष्कंटक कर सकनेमें समर्थ होगी। आत्मबलके नये-नये स्रोतोंको प्रसूत करनेमें ही आज कला की सार्थकता निहित है। आज कलाका यह महान् धर्म है कि वह परम्परागत शोषक रूढ़ियोंको भस्मसात कर उसकी समाधिपर एक ऐसे नव-नूतन भव्य समाजकी स्थापना करे जिसका आधार पूर्णतः मानवीय समृद्धि और सौख्यका सामंजस्य हो और जहां शोषणका नामोनिशान न हो। आये दिन कला-मन्दिरमें उन सामाजिक स्वरोंकी ही अमर गूंज है जो सदियोंसे अस्पृश्य समझे गये थे। आजके युगमें कला भौतिक निर्माण और आर्थिक दासताकी समस्यासे मुकर ही कैसे सकती ?

मगर, इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि समाज और भौतिकवादसे सम्बन्धित कलाकी अध्यात्म और दर्शनकी ऊंच भूमितक पहुंच नहीं। इसके विपरीत सत्य तो यह है कि भौतिकवादका अध्यात्मवादसे कतई विरोध नहीं, प्रत्युत् वह तो मानवके आत्यात्मिक आदर्शकी पूर्त्तिमें सहायक ही है। इन दोनोंमें विरोध होनेसे तो कलाकी सृष्टि ही सम्भव नहीं। परिदृश्यमान जगत्के साथ जब अध्यात्म जगत् (मनो जगत्) का संयोग होता है तभी कला जन्म ग्रहण करती है। बाह्य जगत् और अन्तः जगत् के सम्वन्वयमें ही कला निर्माणकी भावना अन्तर्निहित है। जिस प्रकारसे ऊंची स्वरमें समाजवादी आलोचक कहा करते हैं कि कोई भी कलाकार मिट्टी (भौतिकता) से नहीं भाग सकता, उसी प्रकार कोई भी गम्भीर विचारवान् कह सकता है कि स्वर्ग (आध्यात्मिकता) भी किसी कलाकार का पिण्ड नहीं छोड़ सकता। जबतक मानव अनन्त रहस्यमय विश्वके प्रति जिज्ञासु है, जबतक वह सुख शांतिके अनुसन्धानमें भटक रहा है तबतक उसे आध्यात्मिकताकी शरणमें जाना होगा। और यह पूर्णरूपेण निश्चित है कि दर्शन-अध्यात्मके अभावमें मानव सुख-शान्तिकी छायाको भी प्राप्त नहीं कर सकता। यह भी बहुत सत्य है कि आध्यात्मिकताके नामपर पाखण्ड किया जाता है, कापुरुषता एवं भीरुताको प्रश्रय दिया जाता है, इसके आवरणमें मानसिक दुर्बलता एवं अक्षमताको ढका जाता है। मगर इसमें अध्यात्म दोषी नहीं। यह तो साधना-विहीन तथाकथित कलाकारोंकी कुकृति है। जिस कलाकारकी साधना सजग होती वह भौतिकतासे भागता नहीं। दूसरे शब्दोंमें, अध्यात्मवादके ऊंचे स्तरपर पहुंच कर भी कला समाजकी भौमिक आत्माका प्रसार भूल नहीं जाती। आध्यात्मिक आदर्शकी ऊंच भूमिपर तो उसका स्वतः समाजीकरण हो जाता है। वह व्यक्ति भोग्य न होकर सर्वभोग्यकी वस्तु बन जाता है। साधनाकी चरमावस्थामें कलाकार जो दिव्यानन्द प्राप्त करता है उससे सिर्फ वही आनन्दित नहीं होता, वरन् जनताके दुख कातर जीवनमें भी वह पीयूषकी वर्षा करता है। और उक्त अवस्थामें वह तदात्म्यका जो अनुभव करता है वह उसे मानव-समाजको वेदनाओं और अशान्तिसे मुक्त पानेके मार्गको खोज निकालनेको प्रेरित करता है।

समाजवादी आलोचक भले ही साधनाको केवल एक नकारात्मक शक्ति कहकर उसकी उपेक्षा करें, किन्तु साधना के अभावमें जाग्रत कलात्मक चेतनाका उद्बोधन नहीं हो सकता और न सामाजिक संस्कार शीलताको बल देनेवाली कलाकी सृष्टि ही हो सकती है। रसात्मक कला सृष्टिके लिये आवश्यक है, स्वार्जित अनुभूति और जीवन दर्शन जिसमें अगर साधनासे काम न लिया जाय तो उसका व्यक्तिवादका रूप धारण कर सामाजिक स्वार्थोंके समक्ष खतरा उपस्थित कर देना कोई असम्भव नहीं। व्यक्तिको समष्टिके लिये उत्सर्ग करनेको बड़ी साधनाकी जरूरत होती है। कलामें जिस हृदय तत्वका होना जरूरी है वह व्यक्तिगत न होकर जातिगत और सम जगत हो, कलाके रसमें समाजकी जड़ सींचनेकी पौष्टिकता हो--इसके लिये आवश्यकता है साधना; अन्यथा वह सिर्फ व्यक्तिको तुष्ट करने मात्रकी सामग्री बन जाती है।

मैं तो यहांतक कहनेका दावा करूंगा कि कलाका उद्गम सामाजिक संघर्ष नहीं, साधना ही है। हां, यह बात अवश्य है कि सामाजिक संघर्ष कलासे शक्ति प्राप्त कर नवनिर्माणका आधार प्रस्तुत करता है। कलामें यह शक्ति है कि वह सामाजिक क्रान्तिके स्वरको तीव्र करे, मगर उसका स्रोत सामाजिक संघर्ष ही नहीं। अलबत्ते वह उसके स्वरूपपर अपना प्रभाव डाल देता है और कला भी उससे प्रेरणा ग्रहण करनेमें हिचकिचाहट नहीं करती।

इसी प्रकार कलाका ध्येय संकीर्ण भौतिकवाद किंवा भोंड़ा रोटीवाद भी नहीं हो सकता। इसके लिये तो बहुतसे शास्त्र-विज्ञान हैं। कलाका अपना अलग स्थान है। उसका महत्व कुछ और लेकर है। वह मानव जीवनको उन्नत, उज्ज्वल और विशाल बनाती है। अगर कला सिर्फ क्षुद्र सांसारिक स्वार्थोंकी पूर्त्तिमें उपयुक्त हो तो वह कला रह ही न जाय। कला हमें क्षुद्र स्वार्थोंकी परिधिसे मुक्त कर उस दिव्य लोकमें ले जाती है, जहां स्वार्थका अस्तित्व नहीं, प्रेम और सहयोगकी भावनासे जहां सभीके प्राणों का स्पन्दन स्पन्दित होता है। कला हमें सदैव कल्याणकारी नूतन संदेश देती रहती है। वह सत्यको सौन्दर्यके मार्गसे ले जाकर 'शिव' के (कल्याणकारी) रूपमें प्रसारित करती है। कलाकारका सत्य आधार सौन्दर्य साधन और शिव उसका उद्देश्य है। कलामें अभिव्यक्त भावनाएं हमारे व्यक्तित्वको निजत्वकी क्षुद्र-परिधिसे निकाल अखिल लोकमें परिव्याप्त करके हमारे प्रेमकी अन्तर्दृष्टिको खोल देती है और तब मनुष्य-मनुष्यके बीच जो रागात्मक सम्बन्ध है उसकी अनुभूति प्राप्त करते हैं। कलाकी वे भावनाएं हमें मानवताकी ऊंचतम शिखरपर पहुंचा देती है, हमारी विचार दृष्टिको व्यापक, हृदयको उदार एवं हमारी अनुभूति को विशाल बना देती है और यही उसकी सार्थकता है।

कला समाजको कलाकारकी देन है, वह उसका आत्मदान है और इस दानसे उसे आत्मिक सुख प्राप्त होता है। अतः यहां बहुजन सुखाय और स्वान्तः सुखायमें कोई विरोध नहीं। किन्तु समाजवादी आलोचक इस 'आत्मदान' शब्दपर कुपित हो उठते हैं। कोई कोई तो इतनी दूर चले जाते हैं कि मनुष्यको मात्र प्रकृतिका कठपुतली प्रमाणित कर उस मानवके महत्वको ही विनष्ट करनेपर तुल जाते, जिसके लिये ही संस्कृति, साहित्य, कला आदिका सारा आयोजन है। एक आलोचक महोदय लिखते हैं— "आत्मदानकी भावना सामान्तवाद और पूंजीवादकी देन ज्ञात होती है। 'दान' शब्द ही इसका सूचक है। ...... कलाकार तो एक ऐसी इकाई है जो समाजसे सम्बन्धित होकर देश और विश्वसे अन्य इकाईयोंके साथ जुड़ा हुआ है। उसका अस्तित्व कोई अलगकी इकाई नहीं। वह सामाजिक नियमोंसे निर्धारित होता है, राष्ट्रके नियमोंसे निर्धारित होता है, विश्व-बन्धुत्वसे निर्धारित होता है। यही नहीं, वह प्राकृतिक नियमोंसे उसी तरह निर्धारित होता है जैसे भौतिक वस्तुवादका संसार। उसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार उन्हीं नियमोंकी प्रक्रियामात्र होता है। फिर कलाकारका अपना कुछ रह ही नहीं जाता। मनुष्य का मस्तिष्क भौतिकवादकी ही योजनाका एक अंग है। कलाकार जो कुछ भी अपना कह कर देनेका अभिनय करता है वह उसका नहीं होता, एक मात्र भौतिक होता है जो कलाकारको पहले भौतिक जगत्से मिलता है जिसे वह, मानसिक प्रक्रियाके बाद, फिर संसारको लौटा देता है। इस मानसिक प्रक्रियाका कर्त्ता कलाकार नहीं है, उस क्रियाकी सारी जिम्मेदारी प्रकृतिके नियमोंपर है। इसलिये आत्मदान बेकारकी कल्पना है जिसका कोई अस्तित्व इस युगमें नहीं हो सकता।" यह थोथी दलील मानव एवं मानवताको कितना तुच्छ बना देती है यह कहना नहीं पड़ेगा। यह सही है कि आत्मदानकी ओटमें प्रवंचना भी की जा सकती है और किया जाता है। किन्तु इससे कुपित होकर मनुष्यकी सर्वश्रेष्ठताके अस्तित्व पर ही जिसके निर्माणमें ही संस्कृति संलग्न है, प्रश्नका चिन्ह बिठा देना कौन-सी बुद्धिमानी है।

व्यक्तिवादके घोर तथाकथित विरोधी तो कलाको विज्ञानके रूपमें देखना चाहते हैं जिसमें अभिव्यक्तिकी किसी भी तरहकी विभिन्नता न हो। दार्शनिकता एवं आध्यात्मिकताके सेवा-भारसे कलाको मुक्त करानेवाले ये समाजवादी समष्टिके प्रहारसे उसे पंगु ही बना डालते। समष्टिका आदर्श मान्य है। किन्तु समष्टि वहींतक समष्टि है जबतक

वह व्यष्टिके विकास, उसकी मर्यादाको अक्षुण्ण रखती है, अन्यथा वह समष्टि नहीं विनष्टि है। कलामें रूप-रस-शैली की भिन्नता, वैशिष्टता अवश्यमेव रहेगी चाहे वह साम्यवादी कलाकारकी ही कृति क्यों न हों।

व्यक्तित्व ही तो पशु और मानवके समष्टिवाद (समुदायिकता) के बीच एक मौलिक अन्तर है। पशुका जीवन समष्टि अन्दर अपनी कुछ भी विशेषता नहीं रखता जबकि मानव समष्टिके अन्दर ही अपने व्यक्तित्व को विस्तृत करनेका मार्ग पाता है। आये दिन कला सामाजिक सृष्टि है या वैयक्तिक इसको लेकर बड़ा मतभेद फैला हुआ है। किन्तु, कला न तो सामाजिक सृष्टि है और न वैयक्तिक, प्रत्युत् वह सामाजिक धरातलपर जीवनसे जीवनके लिये प्रवाहित एक स्रोत है जिसका उद्गम समाज के सबसे अधिक संवेदनशील व्यक्तिकी आत्मासे होता है। यों न तो व्यक्ति समाज निरपेक्ष है और न व्यक्तिके अभाव में समाज ही सम्भव है। फिर कला सामाजिक सृष्टि है या वैयक्तिक यह प्रश्न ही न उठता।

अनन्तोगत्वा, समाजवादी (प्रगतिवादी) धरातल पर कलाका जो परिवर्तित नूतन स्वरूप प्रस्फुटित हुआ है उसमें जीवनका ओज है, कर्त्तव्य-परायणताकी दीप्ति है मगर चिरस्थिरता, शाश्वतताका आलोक नहीं, जीवनकी चेतना नहीं, गति नहीं। स्वास्थ्यका सौंदर्य नहीं। आजकी अधिकांश कलात्मक रचनाओंमें जीवनके प्राणमय तत्वोंकी रसात्मक अनुभूति नहीं रहती और इसका एकमात्र कारण जीवनका अनुभवके बजाय सोचा जाना अधिक है। जीवन दर्शन और अनुभूतिके अभावमें सृजित कलामें प्राणोंको प्राणोंसे बांधनेवाली आत्मीयताका भाव कहांसे आ सकता? और इस कारण रसबोधका अभाव प्रायः रहा ही करता है। आज इस ओर इतनी उपेक्षा दिखाई जाती है कि सर्वशक्तिमान रचनाएं भी हमें कुछ भी प्रेरणा नहीं दे पातीं। मगर कला और रसका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। अनादिकालसे मानव रसकी शीतल छायामें अपने व्यथित मनको विश्राम देते आया है और कोई भी कलात्मक आदर्श तबतक जनता द्वारा नहीं अपनाया जाता जबतक कि वह रसात्मक न हो। परन्तु आजके कलाकारोंमें इस कलात्मक चेतनाका सर्वथा अभाव पाया जाता है। आज ऐसी रचनाओंकी बाढ़-सी आ गयी है जिनमें न तो जीवन की चेतना है और न जिनमें अभिव्यक्तिका कला-पक्ष ही पुष्ट होता है। इसका मूल कारण है सस्ते प्रचारकी भावना। फिर यह कैसे सम्भव हो सकता है कि इस प्रकारकी कला कृतियोंमें बौद्धिकता और हार्दिकताका उचित सामंजस्य हो? और इसका परिणाम यह हुआ कि कला आज मात्र बौद्धिक तर्कजालका रूप ग्रहण करती जा रही है। मगर क्या यह कभी सम्भव है कि हृदय तत्वकी भाव पक्षकी उपेक्षा कर कला अपने स्वरूपको स्थिर रख सकेगी? कलाकी मर्यादाकी रक्षा हार्दिकता और बौद्धिकताके उचित सन्तुलनमें ही है।

बौद्धिकता और हार्दिकताके सम्बन्ध-सा ही यथार्थ और आदर्शका भी सम्बन्ध है। नग्न यथार्थका चित्रण मनुष्यकी पशुजन्य सुलभ प्रवृत्तियोंको ही उत्तेजित करता है—कोरा यथार्थवाद अनैतिकताका ही प्रसार करता है। विषय-भोगका नाम सुन कर नाक-भौं सिकोड़नेकी जरूरत नहीं, मगर उसकी याद करनेको, चिन्तन करनेको दूसरों को निमन्त्रित करना अवश्य ही घृणास्पद है। अतः यथार्थ पर आदर्शकी छत्रछाया रखना बहुत जरूरी है। आदर्श यथार्थ-शरीरकी आत्मा है। आदर्शकी आघातकारिणी शक्ति ही सामाजिक जीवनके उन अशिवतत्वोंको विनष्ट कर, जो समाजके स्वास्थ्यको बिगाड़ता है, सत्यको सामाजिक शिवमें प्रसारित करती है। 'कलाका अस्तित्व ही आदर्शका, मंगलका, सूचक है।' कला इसलिये कला है कि वास्तविकताको वह संवारती है। यह सत्य है कि कलामें दैनिक जीवन, भौतिक जीवनकी घटनाओं एवं घात-प्रतिघातका अभिव्यक्तिकरण ही होता है, किन्तु यथातथ्य अभिव्यक्ति ही कला नहीं है। कलाके यथार्थवाद और वास्तव जीवनमें एक बड़ा मौलिक अन्तर है। कलाके अन्दरसे जो कुछ भी प्रकाशित होता है वह कलाकारके प्राणरससे सिक्त होता है।

कलाका यह समाजवादी (प्रगतिवादी) धरातल अभी निर्माणकी अवस्थासे ही गुजर रहा है। वह ठोस है, मगर सुथरा नहीं हो सकता है। आजके कलाकारोंको उस ओर ही ध्यान देना है।

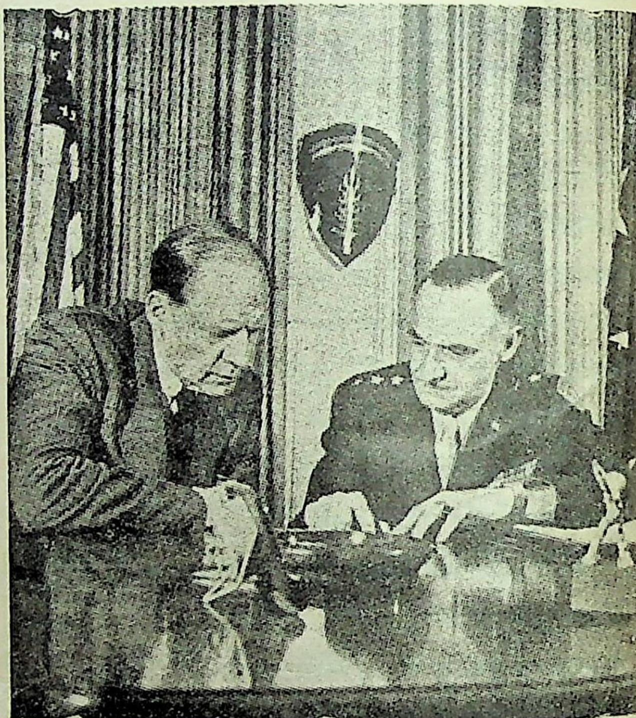
— — —

पराजित देशोंमें विजेता राष्ट्रोंको लोमहर्षक कहानी

प्रोफे० चन्द्रशेखर एम० ए० पी एच० डी०

लायड ज.र्ज कहा करता था कि वह गोलीके निशाने पर कैसरसे सन्धिकी शर्तें लिख.येगा, लेकिन पराजयके पहले ही कैसर भाग खड़ा हुआ, और लायड जार्जकी बात जहांकी तहां रह गयी। बादको कितनी ही बार लायड जार्जसे लोगोंने पूछा कि 'पिस्तौलके निशानेसे सन्धिकी शर्तें लिखानेका' मतलब क्या है लेकिन उसने कभी बताया नहीं। चर्चिलने ऐसी कोई बात नहीं कही थी, लेकिन कहता भी तो क्या करता, इस बार वही बात आयी—पराजयके पहले ही हिटलर लापता हो गया। मुसोलिनी गोलीका शिकार हुआ। लेकिन जापानका सम्राट् हिरोहितो बचा है और लायड जार्जके कथनकी व्याख्या मैकआर्थरके कार्य कर रहे हैं। देवताओंका उत्तराधिकारी बताया जानेवाला हिरोहितो एक साधारण मनुष्य बना कर छोड़ दिया गया है। अब न तो उसका सिंहासन ही पूज्य है और उसकाराज-महल ही देव मन्दिर समझा जाता है। नात्सी युद्ध—अपराधियोंकी तरह जापानी अपराधियोंपर मुकद्दमे चल रहे हैं, काफी ऊहापोहके बाद विजेता राष्ट्र नायकोंने हिरोहितोको अपराधियों की श्रेणीमें लेनेसे इन्कार किया। शायद मैक-आर्थरको यह दुरभिसन्धि हो और वह हिरोहितोका उपयोग अमेरिकन हितोंके लिये करना चाहता हो। जर्मनीकी हालत भी ऐसीही है। जर्मनीको गणतंत्रात्मक बनानेके नाम पर जर्मन बालकोंमें कापुरुषताका प्रचार किया जा रहा है। जर्मनीके शौर्यवीर्यका बखान उसके दुश्मन भी करते रहते हैं और हिटलरकी जो भी निन्दा की जाय, किन्तु उसने जर्मन जातिमें जिस स्वावलम्बन और वीरत्वकी भावना भर दी, वह अद्वितीय रही है, अतः आज जब विदेशी शासक जर्मन युवकको युद्ध भावनासे विरत करनेकी बात कहते हैं तब उसे उनकी बात पसन्द नहीं आती और वह हिटलरके नाम रोता है। युद्ध समाप्त हुए इतने दिन हुए, किन्तु क्या एक भी ऐसी घटना आयी जिसमें जर्मन युवकोंने हिटलरकी भर्त्सना की हो। बल्कि बर्लिनमें उस दिन एक उल्टी ही घटना दिखायी पड़ी। जर्मनोंने विजेता शासकोंके शृंखला-बद्ध नियंत्रणका तीव्र प्रतिरोध किया था। हिटलरने भी तो वार्साईकी सन्धिका पहले प्रतिरोध ही किया था।

लेकिन वार्साईकी सन्धि जैसी कोई सन्धि तो होती कभी दिखायी नहीं पड़ रही है। मास्को सम्मेलन अभी उस दिन विफल हो चुका है। लड़ाईके दिनोंमें बर्लिनपर प्रभुत्व स्थापित करनेके लिये एक ओर ब्रिटेन और अमेरिका तथा दूसरी ओर सोवियट रूसमें जो घुड़दौड़ शुरू हुई थी, वही आज जर्मनीपर आधिपत्य बनाये रखनेके लिये दिखायी पड़ती है। इसलिये उनमें जर्मनीको लेकर समझौता कठिन हो रहा है। और कहा नहीं जा सकता कि उनमें समझौता कब होगा।



अधिकृत जर्मनीके दो शासन संचालक लेफ्टिनेण्ट जेनरल क्ले और राजदूत मर्फी।

जर्मनीको लेकर विभिन्न राष्ट्रोंके विभिन्न कार्यक्रम हैं।

फ्रांस जर्मनीको एक मात्र खेतिहर देश बना कर रखना चाहता है। वह नहीं चाहता कि जर्मनी पुनः शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित हो। प्रथम युद्धोत्तरकालमें जिस प्रकार मो० ब्रायां और मो० क्लीमेन्सू जर्मनीको सर्वथा और सर्वदाके लिये अपदस्थ बनाये रखना चाहते थे, उसी प्रकार आज मो० रनादिये और मो० विदो भी चाहते हैं। सदासे जर्मनी फ्रांसके लिये एक आतंक स्वरूप र ा है और यद्यपि जर्मनो बिनष्ट हो चुका है, किन्तु वह आज भी फ्रांसके लिये आतंक स्वरूप ही है। ब्रिटेनकी स्थितिका विश्लेषण कठिन है। वहांकी सरकार तो समाजवादी है किन्तु सेना अनुदारदली इसलिये वैदेशिक मामलोंमें ब्रिटेनकी नीति जहां मजदूर दलियोंके कटु आलोचनाका विषय रही है, वहां अनुदार दलके नेताओंने वेबिनका समर्थन ही किया है। जर्मनीके सम्बन्धमें ब्रिटेनके मनोभाव जो अबतक व्यक्त हुए हैं, वे पूर्णतः स्पष्ट नहीं हैं और इसका कारण यह है कि मजदूर दलके कितने ही सदस्य जहां रूसके पक्षमें मन्तव्य प्रकट करते हैं, वहां ब्रिटेनके पुराने राजनीतिज्ञ रूसके विरोधी हैं और अमेरिकाकी ओर उनका झुकाव है। इसलिये जर्मनीके प्रति रूसी मनोभावके भी वे विरोधी हैं। रूस जर्मनीके प्रति स्पष्ट मनोभाव रखता है। वह जर्मनीको तबतक अपदस्थ रखना चाहता है, जबतक साम्यवादी आधारपर उसका गठन न हो जाय। ब्रिटेन और अमेरिकाके अधिकृत अंचलोंके अतिरिक्त रूसके अंचलमें आज अधिक क्रियाशीलता देखी जाती है। रूसने जिस वेगसे बर्लिनपर आधिपत्य जमाया, उसी वेगसे उसने अपने अधिक क्षेत्रोंका पुनर्गठन भी किया। जर्मन पतनके पश्चात् पहला अखबार रूसी अंचलसे निकला और अब तो उस अंचलसे रूसी भाषामें भी अखबार निकलते हैं। पदस्थ या अपदस्थ यूरोपीय राजनीतिमें जमनीका स्थान सदाही अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है और जर्मन विचारधाराने यूरोपकी विचारधाराको ही नहीं, यूरोपीय राजनीतिको भी अत्यधिक प्रभावित किया है, अतः रूस जानता है कि अगर जर्मनीमें साम्यवादकी प्रतिष्ठा हो जाय तो समस्त यूरोपको सा यवादी बना देनेमें कुछ भी कठिनाई नहीं होगी। ब्रिटेन और अमेरिका जानते हैं इसे और इसीलिये जर्मनीको लेकर रूसी नीतिसे उनका मौलिक मतभेद है। और चूंकि इस विषयमें ब्रिटेन और अमेरिका दोनों ही रूसके विरुद्ध हैं, अतः उक्त दोनों देशोंका गुट वैदेशिक सचिव सम्मेलनों अथवा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनोंमें रूसका वि ोध करता है और यही कारण है कि युद्धोत्तरकालके प्रायः सभी सम्मेलन अबतक अधिकांशतः असफल रहे हैं।

इस बीचमें जर्मनी चार भागोंमें विभक्त है और चार भागोंपर चार राष्ट्रोंके झण्डे उड़ रहे हैं। याल्टा सम्मेलनके एक गुप्त समझौतेके अनुसार यह चार अंचलोंकी व्यवस्था की गयी है। जर्मनीमें इस समय चार सिक्के चल रहे



एक रूसी सैनिक जर्मन बालिकाको खाना खिला रहा है।

हैं। डालर, पौण्ड, जर्मनीका अपना सिक्का रीख मार्क और मित्र राष्ट्रों द्वारा संचालित करेन्सीका सिक्का। जर्मनीके आर्थिक पुनर्गठनकी ओर वास्तवमें अभी किसीका ध्यान नहीं गया है। सभी अभी लूट खसोटमें लगे हैं और आर्थिक स्थिति इतनी खराब हो चली है कि चारों ओर भूखसे हाहाकार करते हुए नरनारी दिखायी पड़ते हैं। सुन्दरियां घरसे निकल कर होटलोंके सामने बरसातीमें खड़ी दिखायी देंगी या पार्कोंमें बैठ कर किसी मालदार असामीकी तलाशमें प्रतीक्षा करेंगी। प्रतीक्षा करेंगी कि

कोई मिल जाय और उन्हें होटलकी सैर करा दे। बूढ़ों और बच्चोंकी हालत बदतर है और जर्मनीके लिये जीवन निर्वाहकी समस्या जटिल हो चली है। खाद्य भी आज राजनीतिक अस्त्र बन गया है और विजेता पराजितोंके विरुद्ध इसका प्रहार निर्दयतापूर्वक कर रहे हैं। यही कारण है कि अभी सभी अंचलोंमें खींचातानी चल रही है। अभी सभी जर्मनीके भावी स्वरूपकी रूपरेखाका निर्माण करनेमें लगे हैं और इस बातके लिये सतर्क एवं प्रयत्नशील हैं कि जर्मन नागरिक पराजय जनित हीन भावनाको सहज ही भूल न सकें। जर्मनीपर आक्रमण होने के समय ही मित्र-राष्ट्रोंका संयुक्त संचालक दलने जेनरल आइसनोवरको आदेश दिया था कि "जर्मनीपर शीघ्रातिशीघ्र आधिपत्य जमाना चाहिये और वह भी इसलिये नहीं कि जर्मनीको मुक्त किया जाय बल्कि इसलिये कि जर्मनीको सर्वथा अपदस्थ करनेके लिये।" यह क्रोधावेशकी भावना थी। किन्तु आज भी यही भावना काम कर रही है और इसमें परिवर्तन अगर कुछ आया है तो जर्मनीके प्रति सद्भावना की प्रेरणासे नहीं, बल्कि इसके कारण कि रूसने आज जर्मनी, अमेरिका और ब्रिटेनसे होड़ लगायी है। और सम्भवतः इसीलिये गत सितम्बरमें स्टटगार्टमें जेम्स वायनर्जीने "जर्मन जातिको पुनः सम्मानपूर्ण शान्ति और पुनः अपने पूर्व सम्मानपूर्ण पदपर आसीन करनेके लिये सहायता देनेका" आश्वासन दिया था। अमेरिकाको चाहे परिस्थितियां विवश कर रही हों अथवा उसको सद्भावना काम कर रही है, उसकी नीति जर्मनीको लेकर आनको बन रही है, उसपर युद्धकालीन बमबाजी पैमाइश विभाग (U. S. Strategic Bombing Survey) के डाइरेक्टर जान केनेथ गलब्रेथने इस प्रकार प्रकाश डाला है :—(१) जर्मनीमें शान्ति रहे और वह तटस्थ रहे। (२) जर्मनी द्वारा की गयी क्षतिकी पूर्त्ति उसी द्वारा करायी जाय। (३) सीमित अधिकारोंके साथ प्रजातंत्रात्मक शासन प्रणालीके आधारपर जर्मनीका पुनर्गठन। (४) यथासम्भव सभी क्षेत्रोंमें अथवा कमसे कम अमेरिकन और ब्रिटिश क्षेत्रोंमें जर्मनीका आर्थिक पुनर्गठन किया जाय और (५) नये जर्मनीका नयी सीमाओंके अन्तर्गत निर्माण किया जाय।

उक्त उद्देश्योंसे ही स्पष्ट हो जायगा कि भविष्यमें भी जर्मनीसे सभी राष्ट्र आतंकित हैं और वे जर्मनीका पुनर्गठन इस प्रकार करना चाहते हैं कि भविष्यमें वह फिर जल्दी सिर न उठा सके। उसके आर्थिक पुनर्गठनकी जो आज इतनी चर्चा है और अमेरिका जो इस विषयमें इतना चिन्तित दिखायी पड़ता है, उसका भी यह एक प्रकट रहस्य है कि जबतक क्षतिग्रस्त जर्मनीके औद्योगिक यन्त्रोंका संचालन नहीं किया जाता तबतक उसके शोषणका द्वार भी नहीं खुलता। इसलिये नीति स्पष्ट है कि जर्मनीका एक ओर आर्थिक शोषण किया जाय, दूसरी ओर उसे नयी सीमाओंमें बांधा जाय, तीसरी ओर उसकी राज-



मांसका अभाव बतानेवाले इस व्यंग चित्रमें दिखाया गया है कि 'पपी (खिलौने का पिल्ला) मांगनेपर दूकानदार असली कुत्तेका पिल्ला समझकर जवाब देता है कि कितने लोगोंके खाने लायक—'न्यूयार्क टाइम्स'

नीतिक विचारधाराको परिवर्तित किया जाय और चौथी ओर उसे शस्त्रास्त्रोंसे सर्वथा विरत कर दिया जाय और मजेदार बात यह है कि यह सब विश्वशान्ति और गणतन्त्र के नामपर आसानीसे किया जा सकता है। और जब संसारके तीनों बड़े राष्ट्र—अमेरिका, ब्रिटेन और रूस, इसी भावनासे प्रेरित हों, तब उनकी आलोचना कौन करे ? 'चोर चोर मौसेरे भाई' वाली कहावत है, इसलिये लड़े तो स्वयं वे आपसमें। दूसरेने तो उंगलाई उठायी नहीं कि लुटेरोंका गिरोह एक मत होकर उसका विरोध करेगा।

जान केनेथने ईमानदारीसे इस लुटेरी नीतिके बारेमें सकारण लिखा है। उसने कहा है कि जर्मनी अब भी एक आतंककी भांति उपस्थित है और उससे सुरक्षित रहना अमेरिकाकी सबसे सतर्क नीति है। पश्चिम यूरोपमें सबसे घनी आबादी जर्मनीकी है और युद्धसे यद्यपि वह बहुत ही क्षतिग्रस्त हुआ है फिर भी औद्योगिक यन्त्रादि उसके सुरक्षित हैं और यदि जर्मनी अणु शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित हो जाय तो पुनर्गठित क्या कर सकता है, इसका अनुमान लगाना किसीके लिये भी कठिन नहीं है। लेकिन दिक्कत तो यह है कि जर्मनीको छुटभैया बना कर भी नहीं रखा जा सकता। रूसी-जर्मन युद्ध सारे यूरोपपर शासन कर सकता है और दूसरे पाश्चात्य देशोंके साथ जर्मनीका मैत्री-सम्बन्ध रूसको सशंकित करेगा। अमेरिका यह भी नहीं चाहता कि जर्मनी पूर्वी गुटमें शरीक हो। विश्वशान्ति और सुरक्षाके लिये जर्मनीको पूर्वी और पश्चिमी दोनों गुटोंसे अलग रखना होगा।

१९४५ के गर्मीके दिनोंमें पोस्टडममें होनेवाले सम्मेलनमें यह तय कर दिया गया था कि जर्मनीको उ नतिकी होड़से अलग रखा जाय और उसके शस्त्रास्त्रोंको विनष्ट कर उसकी औद्योगिक शक्तिको भी या तो सर्वथा विनष्ट कर दिया जाय या अन्यत्र स्थानान्तरित कर दिया जाय ताकि जमनी फिर सिर न उठा सके। गत मार्चमें जर्मनीकी औद्योगिक शक्तिको इस धरातलपर उतार देनेका भी निश्चय किया गया जिससे जर्मनीकी रहन-सहनका धरातल उसके १९३२ के धरातलके समान हो जाय। बाकीको या तो क्षतिपूर्तिके रूपमें ले लिया जाय अथवा ध्वस्त कर दिया जाय। सभी आतंकित हैं कि इस बार अगर जर्मनीको स्वतन्त्रता दे दी जाय और ७,५००,००० टन इस्पातके उत्पादनकी भी शक्ति उसमें आ जाय तो वह अणु-शक्तिका अन्वेषण और प्रयोग करने लगेगा। इस खतरनाक सम्भावनाको रोकनेके लिये बायर्नीजने अक्टूबरमें पेरिसमें कहा था कि एक छोटी सी अन्तर्राष्ट्रीय समिति गठित कर दी जाय और वह समय समयपर जर्मनीकी औद्योगिक क्षमता और उत्पादनका निरीक्षण किया करे। क्षतिपूर्तिके रूपमें



अमेरिकन और ब्रिटिश अधिकारी जर्मनोंके आर्थिक पुनर्गठन आयात-निर्यातके प्रचारके लिये निकले हैं।

जर्मनीके यन्त्रादि ले लिये गये हैं, लेकिन अभी भी वहां काफी पड़े हुए हैं। पुराने यन्त्रादि लेनेमें राष्ट्रोंकी दिलचस्पी बहुत नहीं दिखायी पड़ती, लेकिन अगर जर्मनीका औद्योगिक पुनर्गठन किया जाय और उत्पादित वस्तुओंको क्षतिपूर्तिमें लिया जाय, तो एक दूसरी कठिनाई उपस्थित होती है। कच्चे माल और खाद्यको लेकर जर्मनी सर्वथा ध्वस्त हो गया है अतः अमेरिका और ब्रिटेनको स्वयं कच्चा माल खाद्य देना पड़ेगा और इस तरह प्रकारान्तरसे अमेरिका

और ब्रिटेन रूस, फ्रांस, बेलजियम और अन्यान्य देशोंकी क्षतिपूर्ति करेंगे।

जर्मनीकी आर्थिक दुरवस्था चरमसीमापर पहुंच चुकी है। मुट्ठी भर अन्न और गजभर कपड़ेके लिये वहां हाहाकार उठा हुआ है। संसारमें सबसे अधिक दयनीय स्थिति इस समय वहांके नर-नारियोंकी है। युद्धमें ध्वस्त होनेसे बचे रहनेवाले थोड़े मकानोंमें आदमी कस कर भरे हुए हैं। जर्मनीकी इस दुरवस्थाका परिणाम यूरोपको भी भुगतना पड़ रहा है। क्योंकि जर्मनीमें कोयलेका उत्पादन रुका हुआ है और कितने ही देशोंको अनिवार्य कल-पुर्जे भी नहीं मिल रहे हैं।

अभी तो जर्मनी चार भागोंमें विभक्त है और चारों एक मात्र अपने शासकोंकी मर्जीपर हैं। चारोंमें कोई भी आर्थिक सामञ्जस्य नहीं है। अगर सामञ्जस्य कहीं है तो केवल उनकी आर्थिक दुरवस्थामें। भूखसे मरनेके अतिरिक्त और किसी प्रकारकी स्वाधीनता उन्हें नहीं दी गयी है। किन्तु एक बात निश्चित है। जर्मनीके सभी राजनीतिकदल जर्मन एकताके समर्थक हैं और वे एक होकर रहेंगे। विजेता राष्ट्र जानते हैं कि चाहे कितने भी प्रतिबन्ध लगाये जायें और चाहे जैसी भी नीति बरती जाय, जर्मनी एक और अखण्ड होकर रहेगा। जर्मनीने इतनी कठिनाइयोंके रहते हुए भी इसकी आवाज उठायी है। जर्मनीमें युवकोंका दल संगठित होना चाहता है और इतना पददलित किये जानेपर भी वह पराजयकी हीन मनोवृत्ति स्वीकार नहीं करना चाहता।

लेकिन जबतक जर्मनीका पुनर्गठन नहीं हो जाता और जर्मनी पुनः राष्ट्रोंके बीचमें सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं कर लेता तबतक सभी उसे लूट रहे हैं और अणु बमकी मारसे भी घातक आर्थिक प्रहारसे ध्वस्त कर रहे हैं। नात्सी जर्मनीके कारनामोंकी सराहना कभी नहीं की जा सकती, लेकिन नात्सीवादके पतनके पश्चात् जर्मनी के नागरिकोंकी जो दुर्गति की जा रही है, वह भी कम निन्दनीय नहीं। यह हाल है जर्मनीका। जापानकी हालत इससे अच्छी नहीं है। मैकआर्थर तलवारके बलपर शासन कर रहा है। और जबतक वह वहां है तबतक जापानके सच्ची खबरें भी बाहरी दुनियाको नहीं मिल सकतीं, इस दृष्टिसे जापानकी और भी दयनीय स्थिति है।

---

* गीत *

कुम्हलाई कलियां छोड़-छोड़ जगने खिलती कलियां चुन लीं !

ले ले कर फूलों की सुवास
अगणित मधु-मक्खी निर्माता !
भन-भन करतीं दिन-रात रहीं,
भरने को अपना मधु-छाता !
पर मधूकरी उनकी निचोड़,
शोषक ने निज प्याली भर ली !

रंगीन सदन को सजा रहे
कुछ मानव निज हित झाड़ पोंछ !
सब झाले धूली किये साफ
अपने दिमाग से सोच-सोच !
कोने में चिपकी मकड़ी ने
फिर से अपनी झाली बुन ली !

लेकर उत्पीड़न की पुकार
वह दौड़ पड़ा उस मन्दिर को !
पर, द्वार खड़े थे कुछ प्रहरी,—
वह पहुंच सका नहिं भीतर को !
मूर्छित, गिरा शोक आकुल
जब प्रतिमाने उसकी सुन ली !

बुझ न कभी पाया झंझा से
बहता रहा ज्वार-लहरों पर !
विजयी होने को-प्रकाश वह,
जलता रहता सभी प्रहरों भर !
बुझा दीप होते—प्रभात,
रजनीकी जब घड़िया गिन ली !

—'शलभ' साहित्य रत्न

स्वर्गका निर्माण

श्री छेदीलाल गुप्त

नर्क दावा करता है कि उसने स्वर्गको जन्म दिया,—

कलकत्तेसे सत्तर मीलकी दूरीपर बसा हुआ नर्क दावा करता है कि उसने स्वर्गको जन्म दिया है। नर्कके बुतेपर ही स्वर्गकी बुनियाद है।

स्टेशनसे पूरबकी ओर अवस्थित लाल ईंटोंके बड़े बड़े मकान और बंगले, हरी हरी घासवाले चौड़े मैदानको चीर कर निकली लम्बी सड़कके दोनों किनारे—इधर और उधर—शाल, विलायती सुगन्ध-विहीन फूलोंसे लदे गदराये वृक्ष, जिसपर ढुलकती शामको चिड़ियोंकी चहचहाट, वातावरणकी उस मौनतामें मद उड़ेलती जो असीम विषमताको विवश होकर अपनी गोदमें, आंचलकी ओट इसलिये किये हैं कि कहीं नर्कका दावा निर्माणात्मक रूप न ले ले, नहीं तो स्वर्गकी सुरक्षा सम्भव नहीं।

और इसी सड़कके मील भरके घेरेको समाप्त करनेपर सब कुछ ऐसा बदला हुआ मिलेगा जिसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। नरकंकालकी तरह डरावने और सड़ी कीचड़की तरह दुर्गन्धित वातावरण बंगले और मकानोंकी जगह गिरी भहराई मिट्टीकी दीवारें लाल फूलोंके गदराये वृक्षोंके बदले टेढ़े मेढ़े सूखे वृक्ष, जिनकी टहनियां इतनी सूख गयी हैं कि चिड़ियोंके सहारा लेते ही तड़तड़ा कर टूट जाती हैं और धूल धुसरित धरतीपर गिर कर कई छोटे छोटे टुकड़ोंमें बंट जाती है।

शामकी झुटपुटी अंधियाली हो चली है।

अगल बगलके वातावरणकी शून्यता उसके जीवनके सूनेपनसे कहीं अधिक गहरी है और गम्भीर थी। लेकिन सामनेके तालाबकी लहरें उतनी ही चंचल भी हैं। जिसके किनारे वह बैठा है, अविनाश घंटोंसे।

तालाबमें उसे अपनी परछाही दीख रही है—अस्थिर-सी, चंचल-सी। उसने कोमल और हरी हरी दूबको मुट्ठियोंमें भर लिया और अपने सूखे, स्याह होंठोंपर फेरने लगा।

उसकी बगलमें बैठा युवक अपलक दृष्टिसे आसमानकी ओर विषमताओंके वशीभूत होना नहीं चाहता। आसमान और जमीनके बीच एक दुनिया बसाना चाह रहा हो। जिस दुनियामें आसमानका चांद भी आसानीसे उतार लाया जा सके और जमीनके मनुष्यको भी यह महसूस न होने दिया जाये कि स्वर्ग एक सपना है, चांद एक चंचल छाया है जो मनुष्यकी पकड़के परेकी अनुभूति है।

सीमा रहित उस सान्ध्य मौनताको भंग करते हुए सड़कपर दूरसे एक साइकिल रिक्शा सपाटेके साथ चला आ रहा था।

अविनाश अपने आपसे उखड़ गया और पास ही बैठे युवकके कन्धेपर जोरसे हाथ मार कर धीरेसे कहा—'नवाब पूछताछ की जाये?'

'मैं तो ना नहीं करता' नवाबने छोटा-सा उत्तर दिया—'बुरा भी नहीं समझता। क्योंकि सत्यपर आवरण डालना शीशेसे किसी चीजको छिपाना एक ही बात है।'

रिक्शा पाससे गुजरा। अविनाशने रोक लिया—'क्यों रे, कुछ है।'

रिक्शावाला पहले सहमा पुनः धीरेसे बोला—'है तो।'

नवाब और अविनाश दोनों उठ खड़े हुए और सड़क पर खड़े रिक्शेवालेके पास जा पहुंचे—'कौन है?'

'विलासपुरनी।'

'अच्छी है?'

साब, अच्छी और बुरीकी बात मैं नहीं कह सकता।' रिक्शेवालेने सीधा सा उत्तर दिया।

सचमुच अच्छे और बुरेका प्रश्न व्यक्तिगत है। दुकानदार दुकान लगा कर बैठता है, खरीददार अपने पसन्दकी चीज खरीद लेता है।

'अभी नयी आयी है या……'

बीचमें ही रिक्शेवाला कह उठा—'नयी ही है, रहनेवाली यहींकी है। मिलिटरी साहबोंसे खराब हुई और अब पेशा करती है।'

'तू मेरे क्वार्टरमें पहुंचा देगा या वहां जाना पड़ेगा ?'

'आपको जाना पड़ेगा।' रिक्शेवालेने कहा।

'यह तो बुरी बात है'—अविनाश अपने आप बोलता नवाबको घूरने लगा—'क्यों ?'

'आप सोच लीजिये' नवाब बोला—मेरा तो यहां कोई परिचित भी नहीं, और मेरा ख्याल है बस्तीमें आपको सभी जानते होंगे।'

'बिलकुल ठीक, छोड़ो'—अविनाश निश्चय बदल चुका और रिक्शावाला अपने रास्ते लगा। अविनाश और नवाब स्टेशनकी ओर चल पड़े। यानी अपने बंगलेकी ओर। आपसमें बातचीत चल पड़ी बस्ती की।

'खास बस्तीमें ही वेश्यालय है ?' नवाबने पूछा।

'नहीं, गरीबीकी वजह दो एक घर ऐसा मिलेगा।'

'फौजी सिपाहियोंने बड़ा अनाचार किया क्यों ?'

'अनाचारकी तो इसमें कोई बात नहीं।' अविनाश बोला—'एक दूसरेके स्वार्थको पूरा करना अनाचार तो नहीं।'

'लेकिन मैं कह यह रहा हूँ कि'—नवाब अपनेको सही साबित करनेकी सफाईमें बोला—'जिस ढंगसे ऐसे स्वार्थों की पूर्त्ति होती है उसे सराहा तो नहीं जा सकता। अनाचार ही कहना ज्यादा अच्छा समझता हूं मैं। आप अपनी आयाको ले लें। वह आपके साथ श्रम बेचती है, अस्तित्व तो नहीं ?'

'लेकिन मैं चाहूं तो.........' अविनाश अभी अपना वाक्य भी पूरा न कर पाया था कि कोई गुजरा।

'नमस्ते डाक्टर।'

'नमस्ते, नमस्ते'—अविनाशने उत्तर दिया।

वह आदमी दूर निकल गया।

नवाब और अविनाश दोनों मौनताकी छातीपर हौले हौले कदम रखते बढ़ आये। बंगले तक पहुंच गये। सीढ़ियोंपर चढ़ने लगे ऊपर, ऊपर पहुंच गये। कालिङ्ग बेल दबाया। दरवाजा खुल गया। दोनों कमरेमें दाखिल हुए। बारामदेकी ओर जा पहुंचे। बेयराने दो कप चाय ला रखी। चाय पीने लगे। बंगलेके पिछवाड़े बाग है। शान्त, निर्जन। आकाशपर तारे उदित हो आये हैं। शून्यतामें झिंगुरकी झंकार झंकृत होने लगी है। आकाशके तारोंको लक्ष्य कर अविनाशने कहा—'नवाब, सोचता हूँ, अब ब्याह कर लूं !'

'यह सोचनेकी बात नहीं, समझनेकी है।' नवाबने नया रुख लिया—'और अप आपको समझना हर आदमी का काम नहीं। यह उसी आदमीका काम है जो अपनेमें विश्वास रखता हो।'

'तुमने जो कुछ कहा उसका अर्थ है मुझे अपने पर विश्वास नहीं।'

'बेशक !'

'नवाब मैं तुम्हें अक्लमन्द नहीं, भावुक समझता हूँ और इस भावुकताका स्थान है कल्पना विलासियोंके हृदय में।' अविनाशका हृदय जैसे असीम हो उठा है, शरीरकी सीमाके बन्धनको तोड़ कर प्रकृतिके वैभवकी सत्यतामें जा मिला हो कि विवेक बादलोंके ऊहापोहको भेद कर मर्मतक ले जाता है, कि जीवनका ही मोड़ विवेकका परिणाम है, कि विवेकी विचलित नहीं होता कारण न्याय उसका लक्ष्य है, सत्य उसका आदर्श।

अविनाश डाक्टर है। जीवन और मरणका खेल, दैत्य और देवताका संघर्ष वह प्रत्यक्ष देखता है किन्तु सर्जरी और इन्जेक्शनपर अविश्वास नहीं कर सकता। अकस्मात् दैत्य और देवताके आगे अपनेको हीन भी नहीं करना चाहता। इन दोनोंसे अपनेको ऊंचा मानता है, जानता हैं कि यह दोनों मनुष्यके मनोभावको व्यक्त करनेकी अभिव्यक्ति है।

थोड़ी देर पूर्व अविनाश नारीके शरीरका सहारा लेना चाहता था। चाहता था कि उसके अङ्कमें नारीकी नारकीय वृत्ति बेबश पड़ी रहे जिसमें सृजनकी सम्भावना नहीं सृष्टिका सम-भार नहीं दुर्बलताओंकी छाया होती है—दैत्यका स्थान यहीं है, रूप यही है।'

डाक्टर अविनाश बारामदेसे उठा, बेतरह परेशान सा सरपर चुहचुहा आये पसीनेको पोंछता, दवाकी आलमारीके सामने आ खड़ा हुआ। उसकी सांसकी गति तेज हो गयी। उसकी सुध-बुध खो गयी। उसकी आंखोंमें स्पष्ट दीख रही थी जहरकी शीशी। उसने आलमारीका दरवाजा खोल लिया।

'डाक्टर, डाक्टर'—नवाबकी आवाज आयी।

'डाक्टर ठकसे रह गया—'क्या है ?'

अबतक नवाब डाक्टर तक पहुंच गया था—'तुम यहां क्या कर रहे हो ?'

डाक्टरकी मुखाकृति ग्लानिकी गम्भीर छायासे आच्छादित थी।

'कुछ नहीं' अविनाश बोला—'विश्वास ढूंढ़ रहा हूँ।'

'तुम्हारे हाथमें क्या है ?' नवाबने उसकी कलाई अपने पंजेमें ले ली। देखा अंगुलियोंमें बन्द पड़ी है जहरकी शीशी। वह जरा मुस्कुराया। फिर बोला—अविनाश विश्वास इसमें नहीं अपने आपमें ढूंढ़ो और दुनियामें जीवित रहना सबसे बड़ा विश्वास है।' नवाबने नीतिकी बात कही—'मैं यह समझता हूँ अविनाश कि मनुष्य आज एक बड़े तादादमें भूख, मौतका बन्दी क्यों है ? क्योंकि उसने विश्वास खो दिया है। देवत्व क्या है ? देवता कौन है ? वैसे मनुष्य जिसने जगत्के विश्वासको नहीं समझा यानी जगत्की रूढ़ियोंमें, बन्धनमें बन्धना नहीं सीखा, जिसे अपने विश्वासपर भरोसा है।' नवाब क्षणभरको चुप हुआ पुनः कहने लगा—'प्रेम एक ऐसी हो कोमल वृत्ति है, जो जगतमें विश्वास और देवत्व की ओर ले जाती है। निर्माणात्मक प्रवृत्तियोंको उभाड़ देता है किन्तु प्रवंचनासे दूर रह कर।'

डाक्टर अविनाश मौन गम्भीर उस कटे वृक्षकी तरह खड़ा था जिसकी जड़ धरतीके नीचे और धड़ धरतीके ऊपर पड़ा होता है। और नवाब अपनी छातीको दोनों बाहोंसे जकड़े दीवालपर की उस तस्वीरको देख रहा था, जिसमें एक नारी नंगी खड़ी थी आवरण विहीन, उलंग ! जिसके नीचे लिखा था—'नारी नर्कका द्वार।'

यह वही लड़की है न अविनाश ?' नवाबने पूछा—'जो तुमसे प्रेम करती थी।'

'हां वही है, जो मेरे सामने आ गिरी।'

'लेकिन वे गिरती हैं, उठनेके लिये डाक्टर।' नवाबने कहा—'औरतकी सृष्टि इसीलिये हुई कि वह गिर कर उठे और उठनेकी प्रेरणा दे।......'

भोजनका समय हो चला। खानसामा खबर कर गया भोजन तैयार है। दोनों भोजनकी थालीपर जा बैठे। तभी चपरासीने आकर खबर दी। अचानक शीलाकी तबीयत खराब हो गयी है। डाक्टर भोजनसे उठ खड़ा हुआ। नवाबने रोका, 'भोजन तो कर लो।'

डाक्टर अविनाश रुका नहीं। बढ़ गया कर्त्तव्य पथकी ओर......।

काले बादल घिर आये थे, हवा तेजीसे बह रही थी। बादल गरज रहे थे—बिजली चमकी लेकिन डाक्टर रुका नहीं। बढ़ गया बढ़ा चला जा रहा है। नवाबने अविनाशके नाम एक पत्र लिखकर रख दिया और कमरेसे निकल पड़ा। चपरासी सामने आकर खड़ा हो गया।

'हुजूर......'

'साबको कहना मैं इसी गाड़ीसे जा रहा हूँ।'

'लेकिन आंधी तूफान......सरकार !'

'ओह इसकी परवाह मत करो तुम' और नवाबने जेबसे एक रुपया निकाल कर चपरासीकी हथेलीपर रख चला गया।

पथपर अंधियाली उमड़ घुमड़ रही थी। बरसाती बूंद पड़ने लगे थे। स्टेशनकी बत्तियोंकी जगमगाहट फीकी पड़ गयी थी। बंगलोंकी खिड़कियोंसे छन कर आती हुई रोशनी पथपर जगह बेजगह पड़ रही थी। नवाब स्टेशनकी ओर बढ़ा जा रहा था।

डाक्टर रातका गया सुबहको लौटा। नवाब नहीं नवाबका पत्र उसे मिला। जहांका तहां खड़ा हो वह पत्र पढ़ने लगा।

डाक्टर, मैं जा रहा हूँ। रातको रह जाता लेकिन कल मुझे एक महिला विद्यापीठका उद्घाटन करना है। दोस्तकी मेहमानदारी और दोस्तीका फर्ज अदा करनेसे ज्यादा महत्वपूर्ण है यह कार्य मेरे लिये—मैं नारीको नर्कका द्वार नहीं स्वर्गका निर्माता मानता हूं। मैं उनकी ओरसे तुम जैसोंको बार बार यह कह देना चाहता हूं कि वह उपभोगकी नहीं उपयोगकी वस्तु हैं, उपयोगकी।

—नवाब

भावी महायुद्धका रंगमंचः मध्यपूर्व

श्री रामचरित्र सिंह



मोलोटोव, बायर्नीज, बिदो और वांग

विश्व के संतप्त राष्ट्र समझ रहे थे कि इस महायुद्धके अन्त होने पर शान्तिकी सांस लेने का सुअवसर प्राप्त होगा और इसी बीच युद्धकालीन आघातोंके फल स्वरूप उत्पन्न घावोंको भरनेका प्रयास किया जायगा। लेकिन आजकी स्थितिको देखते हुए ऐसा विश्वास होरहा है कि इस प्रकारके स्वप्न स्वप्न ही रहेंगे। युद्धको समाप्त हुए दो वर्ष भी न हुए कि पुनः सभी अनुभव करने लगे हैं कि एकबारके उठे हुए बादल तो गरजते बरसते हुए चले गये हैं, किन्तु गगनांगन अभी साफ नहीं है। भविष्याकाशके एक कोनेसे तृतीय महायुद्धके बादल सिर उठाते हुए दीख पड़ रहे हैं। गत विश्वयुद्धमें मित्रताकी आड़में ब्रिटेन एवं अमेरिकाके गुप्त षड्यन्त्रोंके बावजूद सोवियट रूस पूर्वापेक्षा और भी अधिक तगड़ा सिद्ध हुआ। इसके साथ ही गत युद्धने ब्रिटेनको उसके उच्चस्तरसे कुछ नीचे खिसका दिया है। अब रूसके बढ़ते हुए प्रभावको देखकर इस बूढ़े सिंहके हृदय में ईर्ष्याग्निकी ज्वाला धधक रही है। रूसकी प्रभाव-विस्तार-नीति प्रगति पर है। फलस्वरूप रूस और ब्रिटेनमें इधर तनातनी बढ़ रही है तो उधर अमेरिका और रूसके बीचकी खाई पटने बजाय और भी गहरी एवं चौड़ी होती जा रही है जिसको पाटना अभी संभव नहीं दीखता। वर्तमान सामरिक तैयारियोंको देखकर ऐसा लग रहा है कि पिछले युद्ध और गत युद्धके बीचमें संसारकी संतप्त जनताको सांस लेने और विश्राम करने का जितना अवसर मिला था, उतना भी इसबार मिलने वाला नहीं। सिर्फ दिखावे और उसकी आड़में और अधिक तैयारी कर लेनेके लिये शान्ति सम्मेलनका नाटक रचा जा रहा है।

रूसकी परराष्ट्र नीतिका मुख्य लक्ष्य हर प्रकार प्रभाव विस्तार करना रहा है। ब्रिटेन और अमेरिका पहलेसे संसार मेंअपना प्रभाव-जाल फैलाये हुए हैं। अतः दोनोंके स्थापित स्वार्थोंके साथ रूसके स्वार्थका टकरा जाना स्वाभाविक है!



तीसरे महायुद्धका भविष्य वक्ता हेनरी वालेस

गत युद्धमें तो दो समान विचार धाराओं का ही संघर्ष था। विशुद्ध अर्थमें परस्पर विरोधी विचारधाराओंका संघर्ष तो अभी बाकी ही है। यही भावी संघर्ष वास्तविक तथा निर्णायक संघर्ष हो सकता है। एशियामें अङ्गरेजोंका बहुत बड़ा साम्राज्य है। यहां सबसे बड़ा अड्डा उसका भारत ही है। भारत एवं अन्य देशोंमें आने-जानेका मुख्य द्वार मध्यपूर्व ही है। मध्यपूर्व एवं भूमध्यसागरके ब्रिटेनके हाथ से निकल जानेपर भारतमें टिके रहना उसके लिये संभव नहीं। उसके लिये जिब्राल्टर, भूमध्यसागर और स्वेज होकर हिन्दमहासागरका मार्ग जबतक सुरक्षित है तभी तक ब्रिटेन अपने साम्राज्यकी रक्षा कर सकता है। इस क्षेत्रमें एक इंच रूसका बढ़ाव उसके लिये कुनैन मिक्श्चरका स्वाद दे रहा है तथा ब्रटेनके जीवनमें मरणबाईका दौरा ला रहा है। अभी खुले संघर्षके क्षेत्रमें न उतर कर दावपेंचका ही संघर्ष चल रहा है। इसका कारण है। ब्रिटेनके सामने जो सबसे बड़ी दिक्कत है वह यह है कि एक तरफ तो रूस जैसी अपनेसे जबर्दस्त ताकतका मुकाबला करना है और दूसरी ओर अपने साम्राज्यके विद्रोह भावनासे बेचैन अंगोंको किसी प्रकार भी शान्त करना तथा गत युद्धके फलस्वरूप बिगड़ी हुई अपनी आर्थिक स्थितिको भी संभालना है। वहां केवल ब्रिटेन हीका स्वार्थ नहीं है। आज के इस मशीनयुगमें अमेरिकन पूंजीपतियोंके लिये अन्य कई प्रकारके कच्चे मालोंका मध्यपूर्व भण्डार है। ईराककी पेट्रोल कम्पनीका चतुर्थांश ब्रिटेनका ही है। मोसलसे हैफा तककी सभी तेल लाइन, हैफामें तेल साफ करनेका कारखाना सभी ब्रिटिश नियन्त्रणमें है। ईरान की ऐंग्लो-ईरानी तेल कम्पनी प्रसिद्ध ही है। इधर ईरान, ईराक, सउदी अरब आदिकी अनेक तेल कम्पनियोंमें उसी जगह अमेरिकाने भी अपना हिस्सा बना रखा है। फिलस्तीनका झंझटभी रहस्यपूर्ण है। अंग्रेज और अमेरिकन मिलकर यहूदियोंको वहां बसाना क्यों चाहते हैं? क्या वे यहूदियोंके हितैषी बन कर? कदापि नहीं! संपूर्ण अरब इलाकेके तेलकी नालियां फिलस्तीन होकर ही भूमध्यसागर की ओर जाती है। इसलिये उसपर शासनाधिकार बना रहना नितान्त आवश्यक है। यहूदियोंके बसानेसे अरब और यहूदी सदैव लड़ते झगड़ते रहेंगे अतः दोनों पर शासन करनेकी सुविधा रहेगी। वास्तवमें ये दोनों राष्ट्र फिलस्तीन में यहूदी-अरब झगड़ेको कभी भी समाप्त होने देना नहीं चाहते। एक बात और है और वह सबसे बड़ी बात है। वह यह है कि यद्यपि विश्वमें आज यहूदियोंकी संख्या कुछ लाख ही बची है; किन्तु फिरभी संख्यामें इतनी छोटी जाति होते हुएभी संसारके व्यापारमें उसका महत्वपूर्ण स्थान है। अमेरिका और ब्रिटेन वाले चाहते हैं कि यहूदी लोग फिलस्तीनमें चले आते तो वहां रात-दिन झगड़नेसे ही फुरसत नहीं होती, फिर बाहरके व्यापारसे इनका सम्बन्ध कम अवश्य हो जायगा। फलस्वरूप वह व्यापार अंग्रेजों अथवा अमेरिकनोंके हाथ आजायगा। स्वेजके लिये फिलस्तीनपर आधिपत्य कायम रखना आवश्यक है ही। बगलमें मृतसागर खानीजके रूपमें अथाह धन छिपाये हुए है। इसीलिये इस क्षेत्रमें अमेरिकाने पहलेसे अपना प्रभाव जमा रखा है और अपना जाल फैलाना चाहता है। फलस्वरूप रूसकी प्रभाव-वृद्धि अमेरिकाको आंखोंमें भी कांटोंकी तरह चुभ रही है। सुदूर पूर्वकी कई बातोंको लेकर रूस एवं अमेरिकाके बीच काफी चख-चख चलही चुकी है। रूस मध्यपूर्व एवं पूरे भूमध्यसागरपर अपना प्रभाव जमानेके लिये वर्त्तमान युग के सभी संभव साधनों का उपयोग कर रहा है। परिणामस्वरूप मध्यपूर्वमें ही विश्वके वर्त्तमान तीन बड़े राष्ट्रोंके संघर्षके सामान इकट्ठे हो रहे हैं। ब्रिटेनकी भांति अमेरिका भी कुछ कारणोंसे तुरत युद्ध नहीं चाहता है। अमेरिकाके मजदूरोंमें भयंकर बेचैनी है।

यूरोपके बहुत बड़े क्षेत्रमें रूसका प्रभाव स्थापित हो चुका है। उसने ब्रिटिश प्रभावको खदेड़ कर यूरोपके पश्चिमी किनारे पहुंचा दिया है। बाल्टिक और बालकनके बाजार से काफी फायदा उठाता था और अभी भी उठाता; किन्तु वहांके बाजारोंपर भी रूसका नियन्त्रण स्थापित हो गया है। रूस बालकन देशोंके साथ व्यापारकी सुविधा किसीको भी देना नहीं चाहता। इस क्षेत्रमें कच्चे मालका अधिक है। बगलमें रूमानियांमें भी तेल और गेहूँका अधिकार है। इसलिये अमेरिका यहां अपना हाथ-पांव फैलाये रहना चाहता है। यूनानमें ब्रिटेनने युद्धोपरान्त क्या-क्या

किया है, सारा विश्व भलीभांति जानता है। ब्रिटेनकी अपनी काली करतूतोंके कारण ही वहां रूसी प्रभाव बढ़ रहा है। वहांकी कम्युनिस्ट पार्टी आज पूर्वकी अपेक्षा अधिक तगड़ी बन चुकी है। यूनानको रूसी प्रभावसे बचाये रखनेके लिये ही ब्रिटेन उसके मामलेमें नाजायज़ दखल देता है। डर है, कहीं रूसका प्रभाव जम जानेपर वहां कम्युनिस्ट सरकारकी स्थापना न हो जाय। ऐसी दशामें भूमध्यसागरसे ब्रिटेन का सारा प्रभाव ही जाता रहेगा। इटलीका प्रश्न भी तीनों के मतभेद के कारणोंमें प्रमुख हो रहा है। वहां भी कम्युनिस्ट-पार्टी काफी मजबूत बनती जा रही है। अबतक ब्रिटेन फ्रांस और इटली को प्रसन्न रखकर चलता रहा और भूमध्यसागर का उपयोग करता रहा लेकिन अब तो रूस का कदम वहां पहुंच चुका है। फ्रांसमें आज कम्युनिस्टपार्टी सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी है। युद्धके बाद अन्नाभावकी दशामें रूसने अन्नकी सहायता देकर वहांकी कम्युनिस्ट पार्टीकी प्रतिष्ठाको और भी बढ़ा दिया है। लेबनानमें फ्रांसके विरुद्ध जो बखेड़े हुए, उसमें ब्रिटेनवालों का हाथ था, फ्रांसवाले ऐसा ही मानते हैं। इसलिये मध्यपूर्वमें ब्रिटिश विरोधी भावनाओंको रूसके साथ ही फ्रांसका भी समर्थन प्राप्त है। जिब्राल्टरके द्वारको बचाये रखनेके लिये ही फासिज्मके विरोधी मजदूरदली एटली भी फासिज्मके अवशिष्ट गढ़ स्पेनके जेनरल फ्रैंकोसे किसी भी मूल्य मित्रता रखनेको लालायित हैं। डर है, जेनरल फ्रैंकोकी सत्ता खतम होनेपर वहां भी कम्युनिस्ट सरकार की स्थापना न हो जाय और फलस्वरूप ब्रिटिश सरकारका मार्ग ही अवरुद्ध हो जाय। लेकिन स्पेनके मामलेमें ब्रिटेन और अमेरिकाकी स्थिति 'भई गति सांप छुछुन्दर केरी' की जैसी हो रही है। आज विश्वका लोकमत स्पेनकी फासिस्ट सरकारके विरुद्ध है। दोनों बड़े राष्ट्र अपने स्वार्थके वशीभूत होकर अपने सिद्धान्तके खिलाफ यदि फ्रैंकोका समर्थन करते हैं तो लोकमत उनके विरुद्ध होता है और इसका परिणाम रूसकी प्रतिष्ठा और प्रभावके अनुकूल होगा। यदि अपना स्वार्थ छोड़ कर सिद्धान्तका ख्याल करते हैं तो स्पेनमें फासिज्मके लिये क्षण भर भी टिके रहना सम्भव नहीं। बगलमें फ्रांस उसके विरुद्ध फुफकार रहा है। उधर से रूस गुर्रा रहा है और फ्रांसकी पीठ ठोक रहा है। यदि ब्रिटेन और अमेरिका स्पेनके मामलेमें तटस्थ हो जाय तो फ्रांस और रूस मिल कर स्पेनपर कब टूट पड़ेंगे और उसकी शकल बदल देंगे, पता नहीं। फिर वे लोग यदि विरोधी हो जायं तब तो कुछ पूछना ही नहीं। ऐसी दशामें वहां कम्युनिस्ट सरकारकी स्थापना होगी और वह सरकार रूस के साथ ही नहीं उसके हाथकी कठपुतली भी रहेगी। इसका कारण है। गृह-युद्धके समय स्पेनकी प्रजातन्त्र सरकारकी आर्त्त-पुकार सुन कर भी जब मित्र-राष्ट्र कानमें तेल डाले सो रहे थे तब अकेला रूस ही था जिसने हिटलर मुसोलिनीके बलपर लड़नेवाले जेनरल फ्रैंकोके विरुद्ध वहां की प्रजातन्त्र सरकार की सहायता की थी। अतः वहां के प्रजा-तन्त्रीय भावनावाले रूसके कृतज्ञ हैं। स्पेनके रूस के प्रभाव में जाते ही ब्रिटेनके हाथ से जिब्राल्टर के निकल जानेका खतरा है। जिब्राल्टरके निकलजाने पर भूमध्यसागर और मध्यपूर्व तथा भारत आदि सम्पूर्ण साम्राज्यका मार्ग समाप्त हो जानेका खतरा है। उत्तर अफ्रिकाके ट्रिपोलटानिया की समस्यामें रूस टांग अड़ाना चाहता है। इस प्रकार वह चाहता है कि मध्यपूर्वकी ओर ब्रिटेनको आनेके मुख्य द्वार भूमध्यसागरपर अपना प्रभाव स्थापित कर ले और ब्रिटिश प्रभावको धीरे-धीरे समाप्त कर दे। अबतक रूमानिया, बलगेरिया, चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया, फिनलैण्ड एवं अलबानिया आदि देशोंमें सोवियट समर्थक सरकारोंकी



अरबमें देशी प्रभुत्व का सबसे बड़ा विरोधी—मुफ्ती आजम

स्थापना हो चुकी है। इससे ब्रिटेन एवं अमेरिकाका भय और भी बढ़ गया है। यूनानकी जनताके बहुत बड़े समूह ने वहांकी राजसत्ताके सामने झुकनेसे साफ इनकार कर दिया था। वहांकी जनताकी राजनीतिक अभिरुचि रूसकी समाजवादी व्यवस्थासे अनुप्राणित हो चुकी थी। यही कारण था कि वहांकी लोकतन्त्रीय-भावनाको कुचल डालने के लिये यूनानमें बहुत दिनोंतक चर्चिलकी तोपें गरजती रहीं और अमेरिका चुपचाप देखता रहा। आजतक वहां चर्चिलकी तोपोंके बलपर स्थापित सरकार ही काम चला रही है; किन्तु वहांकी प्रजा उसे जड़से उखाड़ फेंकनेके लिये कुलबुला रही है। उधर रूसकी ओरसे दर्रेदानियाल स्थापित हो जायगी और ग्रीस भी रूसके प्रभाव क्षेत्रमें आ जायेगा; ऐसी स्थितिमें भूमध्यसागरपर रूस पूर्णरूपेण हावी हो जायगा और तब तुर्कीके चारों ओरसे घिर कर रूसके सामने झुकनेको विवश हो जानेकी पूरी सम्भावना है। उधर पोलैण्डके गत चुनावमें सोवियट समर्थकोंकी शानदार विजय हुई और वहांकी सरकार सोवियटके साथ है।

यूरोपमें ब्रिटिश प्रभावको खदेड़ कर, सभी देशोंमें कम्युनिस्ट पार्टीको प्रोत्साहन देकर भूमध्यको अपने घेरेमें लाकर उधर ब्रिटेनके मध्यपूर्वके मार्गको ही अवरुद्ध करनेपर रूस तुल गया है। इधर मध्यपूर्वमें ब्रिटिश चालबाजियों का भण्डाफोड़ हो चुका है। उसकी कठोर साम्राज्यवादी

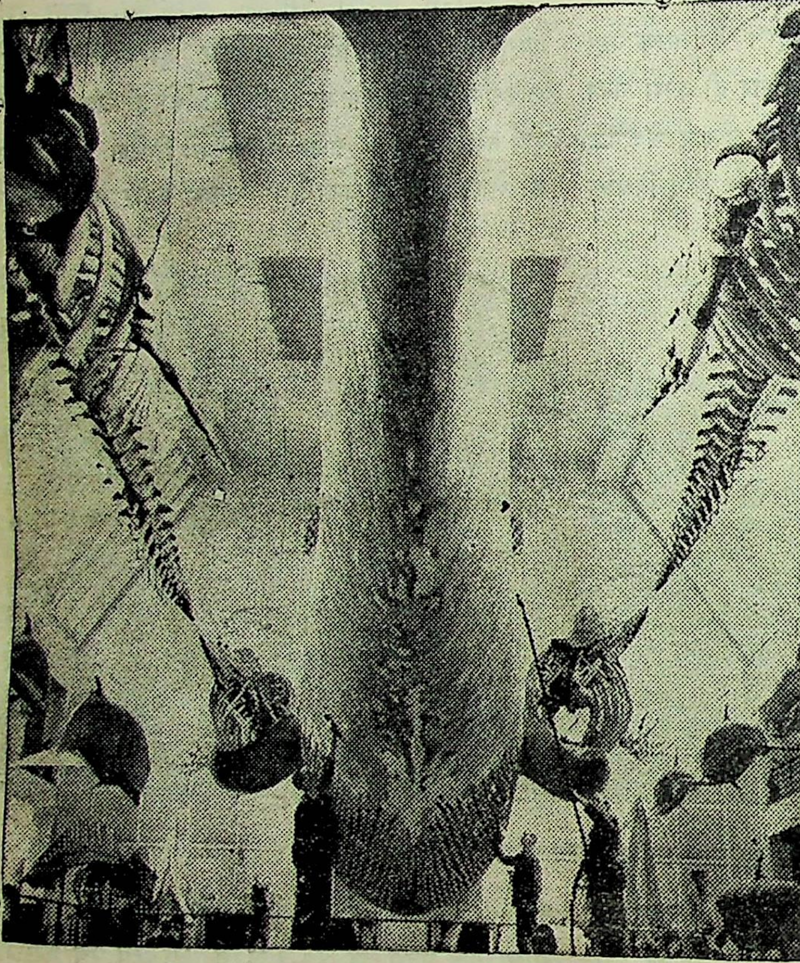


शाह इब्न सऊद अमेरिकन प्रतिनिधियोंके साथ।

की मांगके कारण टर्कीका भविष्य संकटापन्न हो रहा है। बाहरी ताकतके प्रोत्साहन और सहायताके बिना वह रूस के मुकाबले एक क्षण भी टिक सकेगा, सम्भव नहीं। इन्हीं सब बातोंके कारण अमेरिकाने यूनान एवं टर्कीको ४० करोड़ डालरके कर्जकी स्वीकृति दी है ताकि वहां अपना पाया दृढ़ बनाया जा सके। वहां वह अमेरिकन सैनिक-विशेषज्ञोंको भेज कर उन देशोंको अपने अनुकूल तैयार करनेकी चेष्टा कर रहा है। ग्रीक सरकारकी स्थिति भी डावांडोल ही है। अमेरिकाको भय है कि इस सरकार का खात्मा हो जानेपर सोवियट समर्थक लोगोंकी सरकार नीतिके कारण यहांपर उसकी स्थिति डांवाडोल हो रही है। साम्राज्यके मदमें चूर अंग्रेज अपने औद्धत्य एवं कमीनेपन के व्यवहारके कारण आज सर्वत्र अपने ही हाथों अपनी कब्र खोद चुके हैं। अंग्रेजी सत्ताको अब इराक, ईरान, सीरिया, लेबनान, फिलस्तीन और मिस्रके लोग कितनी घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, वहांके युवकोंसे मिलनेपर ही ज्ञात हो सकता है। ईरानपर रूसी नेताओंने बड़े कौशलके साथ ऐसा अधिकार जमा लिया कि ब्रिटेन एवं अमेरिकाके राजनीतिज्ञ दांतों तले उंगली दबाते रह गये थे। किन्तु अमेरिकाकी रूस विरोधी नीति की प्रेरणा पाकर ईरानकी

• •

केन्द्रीय सरकारके हाथ मजबूत हुए और षड्यन्त्र करके अमेरिकनोंने अजरबैजानकी सोवियट समर्थक सरकारको भंग करवा दिया। लेकिन फिर भी आस-पासका वातावरण गर्म ही है। टर्कीमें कुर्दिस्तानवाले रूसी प्रोत्साहन पाकर तुर्क सरकारके विरुद्ध विद्रोह कर रहे हैं। इसके पूर्व ईरानी कुर्दिस्तानको सफलता मिल ही चुकी है। टर्कीके उभाड़ रहा है तथा प्रत्यक्षतः आत्म-निर्णयके अधिकारके नामपर उसका समर्थन कर रहा है। अभी कुछ दिन पूर्व वाशिंगटन स्थित ईरानी राजदूत मि० हुसैन पाशाने कहा है कि "अजरबैजानकी यह क्रान्ति शीघ्र ही तुर्की और इराकतक फैल जायगी। समस्त मध्यपूर्वकी स्थिति अत्यधिक खराब हो चुकी है।" सम्पूर्ण अरबमें अब ब्रिटिश-विरोधी भावना जोर पकड़ती जा रही है। रूस ईरानपर प्रभाव जमा कर अफगानिस्तानसे सन्धि करके ही सन्तुष्ट नहीं है। वह अरबोंके भीतर उठती हुई राष्ट्रीय-भावनासे लाभ उठा कर पत्रों, रेडियो, यात्रियों, व्यापारियों आदि के रूपमें प्रचारक भेज कर ब्रिटेनके प्रभावकी जड़ खोदनेमें लगा है। फिलस्तीनके प्रश्नपर अरबोंको सभी मुस्लिम एवं गैर-मुस्लिम राष्ट्रोंका समर्थन प्राप्त है। सबसे बड़ी बात है कि उसको रूसका सहयोग मिल रहा है। ब्रिटेन और अमेरिकाके विरुद्ध सहायता पानेका एक ही स्थान है—रूस। क्योंकि, आज संसारकी ताकतें दो भागोंमें स्पष्टरूपेण विभाजित हो गयी हैं। एक तरफ हैं ब्रिटेन, अमेरिका एवं उसके पिछलग्गू शक्तिहीन पूंजीवादी और साम्राज्यवादकी समर्थक फासिस्ट ताकतें तथा दूसरी ओर हैं सोवियत रूस



६० फीट लम्बी यह नीली ह्वेल मछली लन्दनके अजायबघरकी शोभा बढ़ाती है, इसे आदमी बिजली द्वारा परिचालित यन्त्रोंसे साफ कर रहे है।

विद्रोही कुर्दोंको ईरानके सफल विद्रोही कुर्दोंसे हर प्रकार की सहायता मिल रही है। ईराकके अन्तर्गत भी कुर्द लोग अब चेत रहे हैं। ब्रिटिश ताकतको घेरेमें पड़ते देख तुर्क एवं इराक रूसके अनुसार ही चलनेको प्रस्तुत रहेंगे और इसीमें उनका कल्याण भी है। उनपर दवाव डालनेकी नीतिसे कुर्दोंको विद्रोह करनेको रूसका परराष्ट्र-विभाग एवं उसके साथ विश्वकी सभी प्रगतिशील शक्तियां। इस सहयोग और समर्थनके पीछे मध्यपूर्वमें ब्रिटिश प्रभावको गिराना या उखाड़ फेंकना ही मुख्य लक्ष्य है। वहांके आन्दोलनको और भी प्रभावशाली बनानेके लिये जरूशलमके बड़े मुफ्तीको षड्यन्त्रके द्वारा मुक्त कर दिया गया। अंग्रेजोंका विश्वास है कि फ्रांस और ब्रिटेन

ने मिल कर ही ऐसा किया है। बड़े मुफ्तीके आ जानेसे अरबोंका आन्दोलन और भी गम्भीर तथा भीषण रूप धारण करने जारहा है। अभी कुछ दिन हुए बड़े मुफ्ती मिस्र के शाह परिवारके साथ थे। अंग्रेजोंने मिस्रसे मुफ्तीको अपने हवाले कर देनेकी मांग की; किन्तु स्वाभिमानी मिस्रके मुंहतोड़ उत्तरको सुन कर कट्टरपंथी अंग्रेज दांत पीस कर रह गये। विवशता है उनके सामने। यदि इस बातको लेकर वे मिस्रको छेड़ते हैं तो मिस्रको अप्रसन्नता स्वेजके लिये एक निश्चित खतरा सिद्ध होती है क्योंकि अरबकी भांति वहां भी रूसी गुप्तचरों एवं प्रचारकोंका जाल बिछ चुका है। सबसे बड़ा कारण इन लोगोंके टकरानेका जो रहा है वह है मध्यपूर्वका तेल। संसारके तेल का तृतीयांश मध्यपूर्वके क्षेत्रों और इसके आस-पासके क्षेत्रों में ही होता है। भूमध्य सागर पर रूसका प्रभाव स्थापित हो जाय और वहां नियन्त्रण करनेकी सुविधा भी उसे मिल जाय तो ब्रिटेनकी बची-खुची प्रतिष्ठाका भी खात्मा ही सम-झिये। इधर ईरानके पश्चात अफगानिस्तानसे भी सन्धि करके रूसने भारतके सीमांततक अपना प्रभाव जमा लिया है। इसलिये यह स्पष्ट होता जा रहा है कि मध्यपूर्वमें ब्रिटेनका साम्राज्य-सूर्य अस्ताचल की ओर चल चुका है।

ब्रिटेनके राजनीतिज्ञ इस बातको समझते हैं कि विश्व में जनचेतना जाग्रत हो चुकी है। साम्राज्यवादकी आयुका अन्त अब सन्निकट है। किन्तु, फिर भी वे इस प्रयत्नमें हैं कि जबतक हो सके अपने साम्राज्यकी रक्षा करते चलें। इन दिनों अपने मध्यपूर्वके साम्राज्य को रूसी घेरेमें पड़ते देख कर वे व्याकुल हो उठे हैं। रूसी प्रभावको कम करनेके लिये सम्पूर्ण यूरोपमें ब्रिटेन कम्यूनिष्ट बिरोधी ताकतोंको प्रश्रय दे रहा है। ब्रिटेन समझ रहा है कि इस क्षेत्रमें अब रूसी भालूके मुकाबले बूढ़े ब्रिटिश सिंहका टिकना संभव नहीं। फलस्वरूप अमेरिकाको कुछ स्वार्थ देकर भी अपने साथ कर लेनेको आतुर है। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि यूरोप एवं मध्यपूर्वमें अमेरिकन बढ़ाव ब्रिटेनके लिये प्रसन्नता



कमाल अतातुर्क और उनके उत्तराधिकारी इस्मत इनन्यू।

का कारण हो रहा है। ब्रिटेन नहीं चाहता है कि उसका हक कोई दूसरा ले ले; किन्तु अपनी ताकतमें बिश्वास नहीं रहने के कारण अमेरिकन सहायताके बदले कुछ अंशोंमें अपने स्वार्थका बलिदान किसी प्रकार आंख मूंद कड़वे घूंटकी तरह गलेके नीचे उतार रहा है। ब्रिटेन और अमेरिकाका एक गुट हो जाना ही आज बिश्व शान्तिके लिये सबसे बड़ा खतरा है। अभी कुछ दिन पूर्व चर्चिल साहब अमेरिका गये थे। रूसके खिलाफ प्रचार करके अमेरिकाको फंसाने, ताकि

संघर्ष होने पर ब्रिटेनकी लाजकी वह रक्षा कर सके। दोनों राष्ट्रोंकी विचार धारा भी रूसके बिरूद्धही है। इसके अतिरिक्त मध्यपूर्व के क्षेत्रमें अमेरिका का कुछ निजी स्वार्थ भी है जिससे खुद वह चिन्तामें पड़ा हुआ है। अभी हालमें ही भण्डाफोड़ हुआ है कि ब्रिटन एवं अमेरिका दोनोंके पर राष्ट्र-विभाग रूसके बिरूद्ध कुछ षड़यंत्र रच रहे हैं ताकि उसको संघसे निकाल वाहर कर सकें और स्वयं जो चाहें सो स्वतन्त्र होकर निर्णय कर लिया करें। रूस दोनोंकी चालों से खूब वाकिफ है। पिछले महायुद्धमें ही दोनों मिल कर मित्रताकी आड़में ही उसको फंसाने पर थे। किन्तु वह अपने बल परही किसी प्रकार शानके साथ बिजयी हुआ। पिछले युद्धमें भी दूसरे मोर्चेका प्रारंभ तब तक नहीं किया गया जबतक ब्रिटेनको यह बिश्वास न हो गया कि अब कुछ भी न करनेसे रूस केवल जर्मनी परही नहीं बल्कि सम्पूर्ण यूरोप पर अपना अधिकार कायम कर लेगा। यह कहना अनुचित न होगा कि दूसरा मोर्चा जर्मनीके खिलाफ न खोल कर वह रूसके खिलाफ ही खोला गया था। इसलिये इस बार रूस खूब साबधानीसे अपने प्रभावका बिस्तार तथा ब्रिटिश प्रभावका ह्रास कर रहा है। मध्यपूर्वकी ब्रिटिश बिरोधी भावनाके पीछे रूसका हाथ आज ब्रिटेनको उसकी मर्जीके खिलाफ भी बहुत कुछ करनेको वाध्य कर रहा है। स्वेजकी रक्षाको दृष्टिमें रख कर ही मिस्रसे ब्रिटिश सेना हटानेकी घोषणा की गयी है। इसके अतिरिक्त ट्रांसजोर्डनको स्वतंत्र घोषित करके उससे संधि कर ली गयी है ताकि ब्रिटिश फौज स्वेजकी रक्षाके लिये वहां रह सके। इसके लिये ट्रांसजोर्डन वालोंको रूसका भय दिखलाया गया है कि हम तुम्हारी रक्षाके लिये यदि फौज यहां नहीं रखेंगे तो पता नहीं किस क्षण रूस तुम्हारी स्वतन्त्रताको हड़प ले। भारत को कुछ देकर समझौतेका प्रयत्न इसी प्रयत्नका एक अंग है। इसके अतिरिक्त योरोपमें भी रूसके विरुद्ध पश्चिमी राष्ट्रों का एक संयुक्त मोर्चा बनानेके पीछे ब्रिटेन आज बेतरह परेशान है। अंग्रेजोंकी बेईमानी एवं बिश्वासघातोंकी बार बार आवृत्ति होनेसे अरबवाले पूर्णरूपेण परिचित हो चुके हैं और अब वे जानकी बाजी लगा कर भी ब्रिटिश सत्ताका मूलोच्छेदन करनेको कटिवद्ध हो चुके हैं। दूसरी ओर ब्रिटेनके इसी कमीनेपनके कारण उसीके बसाये यहूदी भी उसके विरुद्ध आज सशस्त्र क्रान्ति करनेपर तुल गये हैं। ब्रिटेनने बड़ी धूर्ततासे लन्दनमें अरबों एवं यहूदियोंके प्रतिनिधियोंको बुलाकर गोलमेज सम्मेलन किया। सफलता न मिली। ब्रिटेनने अब उनकी समस्याको राष्ट्र संघके सम्मुख पेश करनेका निर्णय किया है। वहां उसको अपने अनुकुल फैसलेका पूर्ण बिश्वास है तो फिर स्वयं फैसला देकर जबरदस्ती करनेका दोष अपने सिर क्यों ले? फिलस्तीनमें यहूदियोंका आधिपत्य कायम हो जाने पर आर्थिक दृष्टिसे पिछड़े राष्ट्र ब्रिटेन की मदद अपनी अपार संपत्तिसे यहूदी लोग कर सकते हैं, यदि अंग्रेज खुलकर उनके पक्षमें होकर उनकी जड़ जमा दें। ब्रिटेन भी यहूदियोंकी सहायताकी आकांक्षा रखता है, किन्तु अरबोंको शत्रु बना कर नहीं। अरबोंकी शत्रुता उसे मध्यपूर्वमें कितनी महगी पड़ेगी इसे वह भली भांति जानता है इसीलिये १० लाख यहूदियोंको फिलस्तीनमें बसानेके अमेरिकन निर्णयपर वह चुप्पी साधे है, ताकि अरबोंकी सहानुभूति उसे मिले। अमेरिका मध्यपूर्वके तेलका निकास फिलस्तीनको ही बनाना चाहता है। इस लिये यहूदियोंको आश्वासन एवं सुविधानुसार कुछ कार्य करके उन्हें कृतज्ञ बनाने की फिक्रमें है। दूसरी ओर अरबी सरदारोंको भी तरह तरहके प्रलोभनोंमें फंसाकर अपना बनानेकी चेष्टामें अमेरिकन कूटनीतिज्ञ संलग्न हैं।

असलमें सभी झगड़ोंकी जड़ तो है ब्रिटेनका साम्राज्य। अपने साम्राज्यन्तर्गत सभी देशोंको स्वाधीनता देकर अपने ही देशमें वह हाथ पैर समेट कर बैठ जाय तो फिर किसी से उसकी शत्रुता ही क्यों होगी? शत्रुता होनेका कारण ही नहीं रह जायेगा। आज ब्रिटेनमें है तो मजदूर दलकी सरकारही किन्तु वहां के मजदूर दल या समाजवादी दल वाले भी केवल ब्रिटेनमें ही मजदूर राज्य और समाजबादकी स्थापना चाहते हैं। अपने साम्राज्यके पराधीन देशोंको स्वाधीनता देकर अपने मक्खन रोटीको खतरेमें डालनेको वे तैयार नहीं तथा साम्राज्यकी रक्षाके प्रश्नपर वहांके सभी दल वाले करीब-करीब एक ही हैं। जैसे नागनाथ वैसे ही सांपनाथ। फलस्वरूप ब्रिटेनको रूसी ताकतसे टकराना ही

है। उधर अमेरिका अपनी बड़ी ताकतसे भी संतुष्ट नहीं है। वह प्रशान्त और अतलान्तकके सभी अड्डोंपर प्रभुत्व स्थापित करनेको आतुर है। अणु बम जैसे भयंकर अस्त्रसे भी उसको संतोष नहीं। पता चला है कि वहांके वैज्ञानिकोंने इस प्रकारका बम तैयार किया है कि उसे फेंकनेसे उस क्षेत्रमें रोगके कीटाणु फैलेंगे जिससे वहांके सभी प्राणी तड़प-तड़पकर मर जायेंगे और धरतीके भीतरके बीज तक जलकर नष्ट हो जायंगे।

आज दुनियामें दो प्रकारकी व्यवस्थाएं चल रही हैं जिनमें एकका प्रतिनिधित्व रूस एवं दूसरीका प्रतिनिधित्व ब्रिटेन तथा अमेरिका कर रहे हैं। आपसमें भय, तनाव एवं अविश्वासकी मनोवृत्ति इस हद तक पहुंच चुकी है कि तीनों किसी प्रश्नपर एक नहीं होने पा रहे हैं। यों तो संसारमें बहुत स्थल हैं जहांपर झंझट हो सकते हैं। मध्यपूर्व सबका केन्द्र बिन्दु हो रहा है जहां तीनों आकर टकरा जायेंगे। तीनों बड़ोंके मनोमालिन्य एवं कलहका धरातल भी मध्यपूर्व ही करीब करीब तैयार हो चुका है। वाशिंगटन स्थित ईरानी राजदूत श्री हुसैन पाशाने कहा है कि 'मध्यपूर्व किस प्रकार द्रुतगतिसे विपत्तिके सामने होता जा रहा है, इसे ब्रिटेन अच्छी तरह जानता है।' ब्रिटेन जान लड़ाकर भी मध्यपूर्वमें अपने प्रभुत्वकी रक्षा करना चाहता है। मध्यपूर्वसे हमारा मतलब मिश्र, सूडान, इथोपिया, इरीट्रिया, सुमालीलैंड, सउदी अरब, एमेन, ऐंग्लो अरब, फिलस्तीन, ट्रान्स जोर्डन, लेबनान, सीरिया, टर्की, ईराक, ईरान आदिसे है। यह इलाका अफ्रिका, यूरोप, एशिया तीनोंका केन्द्र हैं। तीनोंमें जाने-आनेका हवाई एवं सामुद्रिक मार्ग यहीं होकर है। मिश्र, सुडान आदि कुछ देश यद्यपि भौगोलिक दृष्टिसे तो मध्यपूर्वसे भिन्न कहे जा सकते हैं, किन्तु वर्त्तमान राजनीतिक समस्याओंकी दृष्टिसे वे एक ही श्रृङ्खला में कहे जा सकते हैं और तब तो जरूर ही जब मिश्र वाले अरब राष्ट्र संघके दलमें अपना महत्वपूर्ण स्थान बनानेकी चिन्तामें हैं। स्वेज को लेकर तो मिश्रका मध्यपूर्वकी समस्याओंसे गहरा सम्बन्ध है। रूसकी प्रगति एवं सभी राष्ट्रों के पास हथियारोंकी वृद्धि, जंगी जहाजोंकी उन्नति, परमाणु बमकी खोजकी तत्परता और उसपर एकाधिकार रखनेकी चेष्टा आदि सामरिक तैयारियोंको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि द्वितीय महायुद्धके पहले हम जिस मुकाम पर थे, ठीक उसी जगह हम पहुंचा दिये गये हैं। प्रसिद्ध मजदूर नेता श्री डांगेने, जो अभी कुछ दिन पहले मास्को से लौटे हैं, कहा है कि "तृतीय महायुद्ध अनिवार्य-सा है। इस बारका युद्ध गणतन्त्र वादी एवं गणतन्त्र विरोधी शक्तियोंके बीच होगा।" विश्वके मालका ठीक बंटवारा नहीं होनेके कारण विजेताओंमें अनबन हो गयी है। ब्रिटेन कुछ और सम्भलना चाहता है तथा अमेरिका भीतरी अशान्ति ठीक कर लेना चाहता है। बस इसीकी देरी है। नहीं तो काफी तैयारी हो चुकी है। घटनाओंकी गति नाजुक बिन्दुपर पहुंच गयी है। पता नहीं, कब तोपों की गड़गड़ाहटसे मध्यपूर्वका सारा आसमान कांप उठे? भावी तृतीय महायुद्धका केन्द्र बिन्दु मध्यपूर्व ही बनेगा क्योंकि यहींपर तीनोंके स्वार्थ आकर टकराते हैं।

हिन्दू और मुस्लिम मनोवृत्तिमें अन्तर

श्री सन्तराम बी० ए०

जब कोई काम बार बार किया जाता है तो वह मनुष्यका स्वभाव बन जाता है और स्वभाव प्रकृतिका ही एक अंग है। इस लिये किसी मनुष्य और किसी जातिके साथ व्यवहार करते समय उसके स्वभाव और प्रकृतिका ध्यान रखना आवश्यक होता है। महाराजा रणजीत सिंह के सेनापति सरदार हरिसिंह नलवा एक समय काश्मीरसे लौट रहे थे। जब वे मुजफ्फराबाद और गढ़ी हबीबुल्ला खां के रास्ते पखलीके क्षेत्रमें पहुंचे तो सीमा प्रांतके अन्तर्गत हजाराके जदूव और तनावलीपठानोंने उनका रास्ता रोक लिया। सरदारने उन्हें बहुतेरा समझाया कि मैं केवल इस रास्तेसे हो कर पंजाबमें चले जाना चाहता हूँ, मेरा उद्देश्य तुमको कोई हानि पहुंचानेका नहीं। पर वे एक न माने। जदुवोंका एक बिशेष स्वभाव है। यदि उन्हें नरमीमें कोई बात समझाई जायतो वे ठीक उससे उलटा करते हैं। परन्तु जब उनको करारे हाथ दिखला, जांयतो अधीनता स्वीकार करनेमें भी सबसे पहले होते हैं। नलवा सरदारको बिश्वास हो गया कि ये लातोंके भूत बातोंसे न मानेंगे। वे वेस बदल कर मांगलीकी ओर निकल पड़े और शत्रुके मोर्चों और बाका वंदियोंको देखने लगे। उस समय एक बिचित्र घटना घटी। नील निर्मल आकाश एक दममेघोंसेछा गया पलके पलमें मूसलाधार वर्षा होने लगी। थोड़ी देर बरसने के बाद आकाश फिर निर्मल हो गया और धूप निकल आई इतनेमें सरदार साहब क्या देखते हैं कि मांगलीके सभी निवासी मोगरिया लेकर अपने अपने कोठोंपर चढ़ेहुए छत्तों को कूट रहे हैं। सरदारने एक जदूबसे पूछा कि क्या यहांकी सभी छत्तें टपकती हैं। क्या वे लोग छत्तोंको लीपते-पोतते नहीं हैं! इस पर उस मनुष्यने उत्तर दिया कि लीपते पोतते तो हैं, पर यहांकी मिट्टीही ऐसी है कि जब तक उसे कूटा न जाय वह अपने स्थानपर नहीं टिकती। इस लिए यहां की मिट्टी "कूटनी मिट्टी" कहलाती है।

यह सुन सरदार हरिसिंह झट अपनी छावनीमें लौट आए और सब सरदारोंको इकट्ठा करके बोले मैंने आपकी बिजयके लिए एक गुप्त रहस्य मालूम कर लिया है। उसके अनुसार काम करनेसे आप अवश्य बिजयी होंगे। सरदार साहबने कहा कि यहांकी मिट्टीका नाम 'कूटनी मिट्टी" है। वह पीटनेसेही ठीक होती है। यदि आप आजही बिजय पाना चाहते हैं, तो अभी कमर बांध कर इन जदूवों पर धावा बोल दें और इनको पीट पीट कर ठीक मार्गपर ले आये। बस, फिर क्या था। सिक्ख सेनाने एकदम पठान सेनापर धावा बोल दिया और उसके छक्के छुड़ा दिये। मांगलीपर सिखोंका अधिकार हो गया।

हिन्दू और मुसलमानकी मनोवृत्तिमें आपको अनेक बातोंमें अन्तर देख पड़ेगा। मुसलमानको जितना मुहम्मद प्यारा है उतना अल्लाह (परमेश्वर) नहीं। आप अल्लाको चाहे जो बुरा-भला कह लीजिये, मुसलमान उतना बुरा नहीं मानेगा। पर हजरत मुहम्मदके विरुद्ध वह एक शब्द भी नहीं सुन सकता। वह छुरा भोंकनेको तैयार हो जाता है। इसी प्रकार हिन्दू ईश्वर और वेदकी निन्दाकी परवाह नहीं करता, वरन् वह आप भी उनकी खिल्ली उड़ाता है। पर वर्णव्यवस्था या जातिभेदके विरुद्ध वह कोई बात सुनने को तैयार नहीं। जाति-भेदका खण्डन सुन कर बड़े बड़े राष्ट्रवादी, समाजवादी और अनीश्वरवादी हिन्दू भी उसकी रक्षाके लिये कमर बांध कर खड़े हो जाते हैं। कल २२ जूनकी सांझकी बात है। लाहौरके शाह आलमी दरवाजा और पापड़मण्डी नामक हिन्दू मुहल्ले धू धू जल रहे थे। मकानोंमें बन्द हिन्दू स्त्री, बच्चे मकानको आग लगनेपर भी, उसे बुझानेके लिये, कर्फ्यूके डरसे बाहर नहीं निकल पाते थे। एक जगह कुछ हिन्दू खड़े मुसलमान पुलिस और मुसलमान मजिस्ट्रेटके पक्षपातकी चर्चा कर रहे थे। बातों बातोंमें मैंने कहा पाकिस्तानका सबसे बड़ा डर यह है कि वहां रहने वाले स्पृश्यास्पृश्य हिन्दुओंका भय और लोभसे धर्मान्तर कराया जायगा। समूचे पश्चिमी पंजाबके

मुसलमान हो जाने पर पाकिस्तानकी जड़ पातालमें पहुंच जायगी। इस पर एक ग्रेजुएट राष्ट्रवादी हिन्दु बोले अजी जो लोग इतने निकम्मे हैं कि लोभसे या भयसे मुसलमान हो जायेंगे उनको हिन्दू रखनेमें लाभही क्या है ! ऐसे बेहूदे मुसलमान हो जायेंगे, तो हिन्दू समाजकी टांग नहीं टूट जायगी। इस पर एक दूसरे सज्जनने उससे कहा भले आदमी इस तरह निकालते जानेसे ही तो आज मुसलमान लोग दस करोड़ होगये हैं, और लाहौर धायं धायं करके जल रहा है यदि यह धर्मान्तर क्रिया अबाध गतिसे चलती रहीतो दूसरोंको निकम्मा और बेहूदा कहने वाले कितने दिन हिन्दू और पवित्र बने रह सकेंगे ! तब मैंने कहा कि हिन्दूओंको चाहिए कि जहां गुण्डोंका मुंह तोड़नेके लिए अपनेको संगठित करें वहां विधर्मियोंको अपनेमें पचाने और दलितों एवं शूद्रोंको मुसलमान और ईसाई बननेसे रोकनेके लिए अपने जाति भेदको मिटा दें। इसके बिना मुसलमानोंसे सदा लड़ते भिरते रहनेसे काम न चलेगा। इस पर वही पहले सज्जन बोल उठे—अजी, जात-पात तो मुसलमानोंमें भी है। क्या कोई नबाब अपनी लड़की किसी कुजड़ेको देता है ? वहां भी सैयद सैयद से और अराई अराई से बेटी व्यवहार करता है। मैंने कहा आपकी बात ठीक है। पर आप भूल जाते हैं कि श्रेणी (क्लास) औरजाति (कास्ट) में अन्तर है। नबाब और कुजड़ेमें श्रेणीका अन्तर है। कुजड़ा भी यत्न करके अमीर और नबाब बन सकता है, पर कहार यत्न करके ब्राह्मण नहीं बन सकता। मुसलमानोंमें रोटी व्यवहार में तो कोई रुकावट नहीं। बेटी व्यवहार वे अवश्य प्रायः अपने परिवारमें ही करते हैं। वे जातिभेदको हिन्दुओंकी तरह अपने धर्मका कोई अंग नहीं बरन् हिन्दुओंके संसर्गसे आई हुई एक बुराई समझते हैं। यदी कोई जुलहा किसी सैयद कन्यासे बिवाह करलेतो, हिन्दुओंकी तरह, उसे समाजसे बहिष्कृत नहीं कर दिया जाता। इस पर वह सज्जन चुपतो होगये, पर मुझे आश्चर्य एवं खेद हुआ कि जो व्यक्ति मुसलमानों और अंगरेजोंके बिरूद्ध बातें करके और उनको कोस अभी इतना प्रसन्न हो रहा था, वही अपने दोष-जात पात को दूर करनेसे कितना कतरा रहा है।

हिन्दू और मुस्लिम मनोवृत्तिमें दूसरा अन्तर यह है कि मुसलमान किसी भी अच्छी चीजको बांट कर खाना चाहता है। इसके बिपरीत हिन्दू उसे अकेले ही हड़प कर जाता है मुसलमान इस्लामको एक अमूल्य ईशवरीय वरदान समझता है। इस लिये वह सबको भागीदार बनानेका यत्न करता हैं। वह किसी व्यक्तिके साथ तब तक द्वेष करता है जब तक वह व्यक्ति इस्लाममें नहीं आ जाता। इस्लाम ग्रहण कर लेने पर वह उसे भाई समझने लगता है। कुरान कहता है—सब मोमिन अर्थात मुसलमान भाई हैं। इसके बिपरीत हिन्दू किसी दूसरेको अपने धर्ममें साझी बनानेको तैयार नहीं। जब तक कोई चमार अपनेको हिन्दू कहता है तब तक वह अछूत रहता है। उसके मुसलमान बनतेही वह पवित्र हो जाता है। वह हिन्दू कुएंसे पानी भर सकता और ब्राह्मणसे स्पर्श कर सकता है। हिन्दू अपने ही भाई बहनोंको किस प्रकार बाहर निकाल कर अपने पांवों पर आप कुल्हारा चला रहे हैं, इसका एक ताजा उदाहरण सुनिए।

मध्यप्रदेशके एक हिन्दू रईसके कोई सन्तान न थी। उसने एक मुसलमान लड़कीसे विवाह कर लिया। उससे तीन लड़के और एक लड़की हुई। लड़कीका विवाह एक मुसलमान स्टेशन मास्टरसे हो गया। उसके बाद लड़की की मुसलमान मां मर गयी। बाकी बच्चोंका पालन-पोषण हिन्दू रईसकी पहली हिन्दी स्त्रीने हिन्दू ढंगसे किया। अब उस लड़कीको मुसलमान स्टेशन मास्टरसे तीन लड़कियां हैं। उनका पालन-पोषण बिलकुल हिन्दू ढंगसे हुआ है। बाप तक हिन्दू हैं। मां ठाकुर-पूजा करती हैं। लड़कियोंके माता-पिता उन लड़कियोंको हिन्दू युवकोंको देना चाहते हैं। मध्य-प्रदेशमें कोई वर न मिलने पर उन्होंने एक मित्रके द्वारा हमारे जात-पांत तोड़क मंडल को लिखा। मैंने आर्य-समाजियों और सनातनियोंसे कहा। पर सबने असमर्थता प्रकट की। तब हताश होकर मैंने भारतके दस-बारह अंग्रेजी पत्रोंमें इस बातकी चर्चा करके नवयुवकोंसे अपील की। इसपर साठ-सत्तर युवकोंने भावुकतामें बह कर विवाहके लिये अपनेको पेश किया। मैंने सब पत्र स्टेशन मास्टर साहबको भेजवा दिये और समझ लिया कि चलो, अब संकट दूर हो जायगा। पर

मेरी आशा दुराशा मात्र सिद्ध हुई। लड़कियोंके पिताका जो पत्र मेरे मित्र श्री ओमूकारचन्द डोयगरको हालमें प्राप्त हुआ है, उसका कुछ अंश आगे देता हूँ। श्री ओमूकार चन्दजीके द्वारा ही स्टेशन मास्टर साहबका मुझसे परिचय हुआ था। वे लिखते हैं—

प्रिय ओमूकारचन्द,

नमस्ते! आपका कार्ड एक अर्सेके बाद मिला। मुझ को यह मालूम न था कि आप कहां हैं, नहीं तो अवश्य उत्तर मिलता रहता। मैं आपको विस्तारपूर्वक क्या लिखूं। सिवा परेशानीके और क्या हो सकता है? पंजाब, देहली, नागपुर, बनारस पत्रोंके उत्तरमें चुप्पी रही। देहलीसे कुछ नवयुवकोंके पत्र मिले। उनके हालात देखकर आश्चर्य हुआ। मैं अपने मामलोंको लिख कर ज्यादा परेशानीमें पड़ा! नहीं मालूम वे लोग कैसी समझके निकले। कहते हैं, आपका आना व्यर्थ है। लड़कियोंको अपरूवल (Approval) पर लाओ। इसका अर्थ यह है कि मां-बाप अपनी लड़कियोंको लेकर फिरते फिरें और बतलाते फिरें। खेद है, अधिकतर जो बातें मिलीं, वे जोशमें आकर हुईं, आधार कुछ नहीं। मेरी ओरसे जो स्वीकृति हुई तो उनकी ओरसे चुप।

ओम्प्रकाश आजतक आते हैं। जवाब भी गायब। कप्तान साहब अहमदनगरने लिखा, नौकरीकी दासताके कारण विचार स्थगित। जब्बलपुरवाले साहबका जोश सोडेकी बोतलके सदृश निकला। कमसे कम पांच पत्र भेजे। एकका भी उत्तर नहीं आया। बनारस कालेजवालेने लिखा, मैं स्वयं मां-बापके खर्चपर हूँ. विवश हूँ। बम्बई-वाले साहबके आनेकी प्रतीक्षा हो रही है।···मेरी ओरसे कोई त्रुटि नहीं। मेरा जो संकल्प है वह दृढ़ बना रहने वाला है। खेद इस बातका है कि ओफर्ज (Offers) निरंकुशता और एकाएक जोशके निकले और अन्त निराधार पाया। प्रत्येक व्यक्ति आपकी तबीयतका नहीं हो सकता। सब लोग नमस्ते कहते हैं।

आपका—नू० मु०।

इस चिट्ठीपर किसी टीका-टिप्पणीकी आवश्यकता नहीं। केवल इतना कहना ही पर्याप्त है कि समूचे हिन्दुस्तानमें तीन युवक भी ऐसे न मिल सके, जो और नहीं तो हिन्दू-समाजकी वृद्धिके निमित्त हो, इन लड़कियोंके साथ विवाह करनेके लिये तैयार हों। इसके विपरीत सैकड़ों हिन्दू स्त्रियां प्रति वर्ष मुसलमान-समाज पचा जाता है और डकार तक नहीं लेता। बहुतेरी मुसलमान लड़कियां हिन्दू कालेजोंमें पढ़ती और होस्टलमें रहती हैं। उनके माता-पिताको वहां उनके सम्बन्धमें किसी प्रकारका डर नहीं रहता। पर कोई भी हिन्दू लड़की किसी मुसलमान कालेज में पढ़ती और उसके होस्टलमें रहती हुई कभी हिन्दू नहीं रह सकती।

भारतके विभाजनसे पाकिस्तानी प्रदेशके हिन्दू तो घर-बार उठाये हिन्दुस्थानकी ओर भाग रहे हैं, पर हिन्दुस्थान के मुसलमान भाग कर पाकिस्तानमें आते अभीतक नहीं देखे गये। इसका कारण यह है कि जात-पांत सूलक हिन्दू समाज अपने बल-बूतेपर स्वतन्त्र रूपसे नहीं जी सकता। इसकी रक्षाके लिये सदा राजसत्ताकी आवश्यकता रहती है। ऐसा बैरागनके सहारे खड़ा होनेवाला कृत्रिम समाज जीवन-संग्राममें कभी विजयी नहीं हो सकता। जो हिन्दू किसी दूसरे हिन्दूके साथ बने, खाने, पीने, बैठने, विवाह करनेसे ही अपनेको धर्मभ्रष्ट समझने लगता है, उसके बढ़ने-फूलनेकी आशा दुराशा मात्र है। हिन्दू मुसलमानोंको ताने देकर चिढ़ाते हैं कि पाकिस्तान आर्थिक रूपसे दीवा-लिया होगा, उसके पास यह वस्तु नहीं, वह वस्तु नहीं। यदि अपनी हारको छिपानेके लिये वे ऐसी निरर्थक बातें करना बन्द करके पाकिस्तानका सामना करनेके लिये कोई उपाय करें, तो अच्छा है। अन्यथा इनको पछताना पड़ेगा।

———

सचित्र मासिक

विश्वमित्र



र्षिक मूल्य ६)

एक प्रति ।।)

विश्वमित्र कार्यालय

कलकत्ता

मासिक विश्वमित्र

अक्टूबर १९४७,

विषय-सूची

विषय सूची



मासिक
विश्वमित्र

सम्पादक—
देवदत्त मिश्र

अक्तूबर' ४७   वर्ष १५,   संख्या---६ आश्विन २००४

चार कवितायें

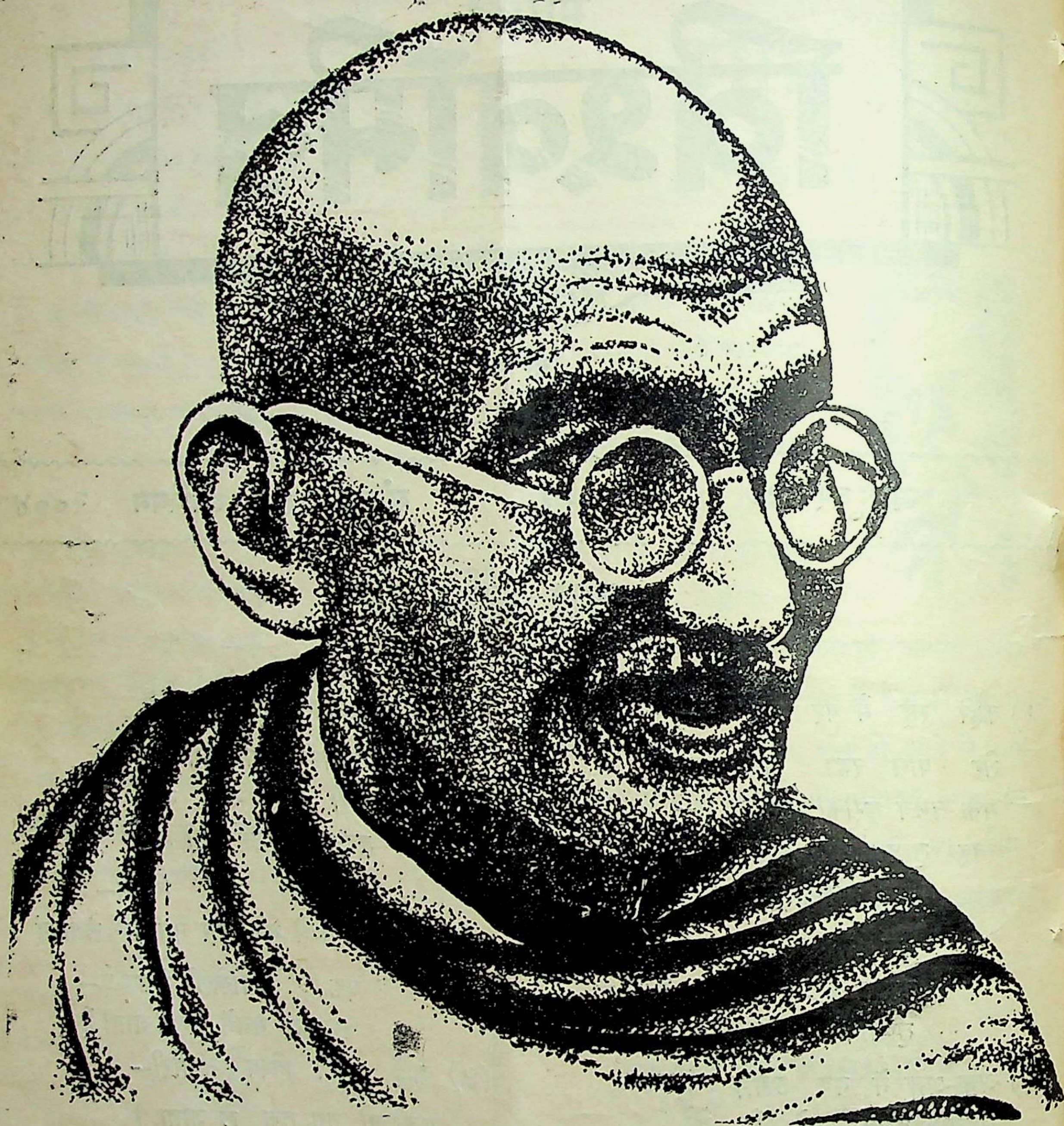
प्रोफेसर 'अञ्चल'

(१) कहीं रहूं मैं पर मन मेरा—
तेर पास रहा करता है,
मुक्त समय दूरीकी पारिमिति से—
स्वर तृप्ति लहा करता है,
जब मिलता हूं तब मेरा तन,
तुझ से दूर चला जाता है,
नश्वर मिलन अनश्वर जीवन—
तृष्णा विकल सहा करता है !

(२) अङ्ग-अङ्ग में नव उमङ्ग के,
गहने दमक रहे हैं तेरे,
किस सुमधुर इच्छा से—
दृग में सपने चमक रहे हैं तेरे!
किस सुधि के दर्पण में
अपने रक्तिम होंठ संवार रही हो,
किस बहार से बिंधे प्रेम के
गुच्छे गमक रहे हैं तेरे !

(३) रिमझिम पावस की घड़ियों में
याद तुम्हारी आ जाती है ।
लाज भरी सन्ध्या-सी डूबी
मूर्ति हृदय पर छा जाती है ।
नभ की ओर निरख—
मेघों-से भरे नयन नत कर लेता हूं ।
एक अधखिली अंगड़ाई—
क्षण भर मनमें मुस्का जाती है !

(४) कोई नहीं विश्व में मेरी--
पूजा जो तुम तक ले जाता ।
कोई नहीं, विकलता मेरी—
जो तुम से कहता समझाता !
जो न स्वयं मैं कह पाया,
उसको तुमसे प्रिय ! कौन कहेगा
कोई नहीं सुना दे कितनी बार,
तुम्हें मैं रोज बुलाता !



भारतके प्राण पूज्य महात्मा गांधी

आप २ अक्टूबर ४७ को ८० वर्षके होंगे। भगवान उनको शताधिक वर्ष तक चिरायु रखे, यही प्रत्येक भारतीयकी कामना है।



फिर युद्धका ओर—

संक्रान्ति-कालसे शान्तिकी ओर संसारके बढ़नेकी आशा शनैः-शनैः क्षीण पड़ती जा रही है। संसार युद्धकी ओर बढ़ रहा है। महाशक्तियोंने अपनी मदान्धताके वश जो स्थिति उत्पन्न कर दी है यदि संयुक्तराष्ट्र सङ्घ जिसका जन्म अभी उस दिन युद्ध समाप्तिपर हुआ है, इस थोड़ेसे अरसेके भीतर कुछ न कर सका तो दोष उसका नहीं संसारपर नियन्त्रण और आधिपत्य रखनेके महत्वाकांक्षी राष्ट्रोंका है।

संसारके सामने उपस्थित समस्याओंकी जटिलता और दुरुहताको देखते हुए उनके समाधानके लिये इतना समय पर्याप्त नहीं समझा जा सकता, किन्तु हम देख रहे हैं कि संसारके ऊपर अपने स्वार्थोंको सर्वोपरि रखनेवाले विजेता राष्ट्र अपने केवल अपने लिये इतने आतुर और व्यग्र हो उठे हैं कि धैर्यके साथ काम कर सकनेकी सहिष्णुता उनमें नहीं रह गयी। बहुमत और वीटोंका प्रश्न उठानेके पहले आवश्यक था कि राष्ट्रसङ्घको इस योग्य समर्थ बनाया जाता कि वह धीरे-धीरे संसारकी समस्याओंको नियन्त्रणमें लाता और संसारको प्रगति और लोकतन्त्रीय शान्तिके पथपर ले चलता। किन्तु निजी स्वार्थको आगे रखनेके कारण यह नहीं हो सका। दूसरे युद्धसे विरासतके रूपमें सङ्घको जो शान्ति सङ्कट प्राप्त हुआ है वह धीरे-धीरे फिर युद्ध सङ्कटमें परिणत होने जा रहा है, क्योंकि युद्ध समाप्त होते ही महाशक्तियोंके बीचमें जिन बातोंको लेकर मतभेद उत्पन्न हुए वे धीरे-धीरे बढ़ते ही गये और अब तो ये मतभेद युद्ध-विभीषिकाका रूप धारण कर रहे हैं। असफलताके बाद असफलता युद्ध-स्थितिकी ही सृष्टि करती है और अबतक ऐसे कोई लक्षण नहीं दिखायी पड़ते जिनसे यह समझा जाये कि संयुक्तराष्ट्र सङ्घका वर्त्तमान अधिवेशन युद्धकी ओर बढ़ते हुए संसारको शान्ति और प्रगतिकी ओर मोड़ ले जानेमें समर्थ होगा।

संयुक्तराष्ट्र सङ्घ—

न्यूयार्कमें इस समय संयुक्तराष्ट्र सङ्घका साधारण अधिवेशन हो रहा है। ब्राजिलके प्रतिनिधि डा० अरानहा बहुमतसे सङ्घके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। सङ्घ आज संसारके सामने एक विराट प्रश्न-सूचक चिन्ह बना हुआ है। पुराने राष्ट्र सङ्घका नक्शा संसार भूल सके, अभीतक इस नवीन सङ्घने ऐसा कुछ किया नहीं है। उसके भविष्यके सम्बन्धमें सन्देह और आशङ्कासे परिपूर्ण वातावरणमें सङ्घके वर्तमान अधिवेशनकी कार्यवाही आरम्भ करते हुए डा० अरानहाको यह स्वीकार करना पड़ा है कि गत अधिवेशनके बाद संयुक्तराष्ट्र सङ्घने जो कुछ प्रगति की है वह नगण्य है। उसका कार्यक्रम और विषय-सूची काफी भारी भरकम है, लेकिन सब बातोंकी बात तो इस जगह आकर सीमित हो जाती है कि चुना गया रास्ता शांतिकी ओर ले जायेगा या संघर्षको ओर? हम इस प्रश्नपर एकाधिवार स्पस्ट रूपसे लिख चुके हैं कि जबतक संसारका नेतृत्व इने-गिने दो चार बड़े-बड़े राष्ट्रोंके हाथोंमें रहेगा तबतक शांति नहीं हो सकती। संसारमें शांति बनाये रखनेके लिये तीन या चार महानोंकी ठेकेदारीका अन्त कर सचमुच राष्ट्रसङ्घ जबतक अपने हाथोंमें विश्व-नेतृत्वकी बागडोर नहीं पकड़ता, दूसरे शब्दोंमें जबतक अमेरिका, रूस और ब्रिटेनके उचित अनुचित प्रभावसे सर्वथा मुक्त और स्वतन्त्र राष्ट्र सङ्घके साधारण सदस्योंके कमसे-कम तीन चौथाई बहुमतका निर्णय मानकर चलनेको तीन महान् अपनेको बाध्य नहीं

समझेंगे तबतक सङ्घ संसारको शान्ति-मार्गपर कदापि नहीं चला सकेगा।

यह विश्वासघात है—

यह कहा जाता है कि सङ्घका यह अधिवेशन खोयी हुई प्रतिष्ठाको पुनः प्राप्त करनेका अन्तिम प्रयास करेगा। सङ्घके सामने दो टूक निर्णय लेनेके मामलोंमें, मिस्र, फिलस्तीन, हिन्देशिया, हिन्दचीन, दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयके प्रति व्यवहार आदि प्रश्न हैं जिनका विशेषतया एशियासे सम्पर्क है। यूरोपसे सम्बन्धित विषयोंमें युद्धमें पराजित राष्ट्रोंके साथ सन्धिका प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण है। सङ्घका अधिवेशन आरम्भ होनेके पूर्व उसके प्रधान मन्त्री मो० लीने महान् राष्ट्रोंको चेतावनी देते हुए कहा है कि संयुक्तराष्ट्र सङ्घ और संसारके साधारण राष्ट्रोंके दृष्टिकोणसे इस कार्यमें एक-एक दिनका विलम्ब घातक है। राष्ट्र सङ्घकी स्थापना जिस विचार और उद्देश्यको सामने रखकर की गयी थी, महाशक्तियोंके बीचमें मतभेदकी पुरानी परम्पराको बनाये रखना उसके प्रति विश्वासघात है। राष्ट्र सङ्घके प्रधान मन्त्रीका यह वक्तव्य इस सम्बन्धके हमारे विचारोंका पूर्ण समर्थन करता है। एशियाई राष्ट्रोंके प्रति गोरी जातियोंका जो विद्वेष और घृणा-मूलक भाव है वह किसीसे छिपा नहीं है, यह हिन्दचीनकी स्वतन्त्रताके सम्बन्धमें फ्रांसकी सरकारकी घोषणा और हिन्देशियाके प्रति डच सरकारके दुराग्रहपूर्ण रुखसे बिलकुल स्पष्ट है। मिस्रके प्रति ब्रिटेनके रुखमें भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ और वह मध्य एशियाके इस भागको ब्रिटिश नियन्त्रणसे पूर्ण मुक्त करना नहीं चाहता। अमेरिकाने यूरोप और पूर्व तथा मध्य एशियामें जो राजनीतिक शतरञ्ज बिछायी है वह किसीसे छिपी नहीं है। किन्तु इस शतरञ्जकी बाजी युद्धके बिना, अमेरिकाके हाथ रहेगी, इसकी सम्भावना कम है, क्यों कि उसका प्रतियोगी रूस उसकी चालोंका तुर्की-बतुर्की जवाब देकर अपनी बेढब चालके द्वारा ऐसी किश्त या शह देता है कि अमेरिकाके सारे मनसूबे हवा कर देता है और उस समय किसी तरह जिचकी स्थिति पैदा करके शतरञ्ज छोड़ हाथा-पाईपर उतर आनेके सिवा अमेरिकाके सामने दूसरा रास्ता नहीं रह जाता। किन्तु इसका उत्तरदायित्व अमेरिकापर है। वह संसारमें पूंजीवादी व्यवस्थाके विरुद्ध विचार-क्रान्तिके मार्गमें अपने डालरोंके प्रभावसे समाजवादकी ओर आकर्षित होनेवाले राष्ट्रोंको पथ-भ्रष्ट करनेके लिये मायाजाल फैला रहा है। आज ब्रिटेन दिलसे इस मायाजालके कितना ही विरुद्ध क्यों न हो किन्तु उसमें खुल्लम-खुल्ला अमेरिकाका विरोध करनेका साहस नहीं है—इस लिये अमेरिकाका मुकाबला करनेके लिये रूस अकेला रह जाता है और वह दृढ़तापूर्वक कर भी रहा है।

पावर पालिटिक्स—

अमेरिका अपने अमित साधनोंके रहते हुए भी रूसकी प्रगतिको रोकनेमें असमर्थ ही सिद्ध हुआ है। पूर्व यूरोपपर एक छत्र प्रभाव रूसका है। पश्चिमी यूरोपमें अमेरिकासे सभी दबे हुए हैं फिर भी परिस्थितियां ऐसी नहीं हैं कि अमेरिका अपनेको एकमात्र नेता समझ सके। ब्रिटेनके प्रभावकी उपेक्षा कर सकनेका नैतिक साहस अमेरिकामें नहीं है। हिस्सा बंटानेको फ्रांसकी लोलुप दृष्टि भी अमेरिकाको विचलित तो कर ही देती है। इन राष्ट्रोंकी यह पावर पालिटिक्स ही यूरोपके राष्ट्रोंके साथ सन्धिके मार्गमें बाधक है तथा इसीने जर्मनीकी स्थिति अनिश्चित बना रखी है। यूरोपका भविष्य जर्मनीके भविष्यपर अवलम्बित है। जर्मनीका पुनर्संगठन किस तरह किया जाये, इसे लेकर एक तरफ रूस और दूसरी तरफ अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांसके बीचमें गहरा मतभेद है। रूस नहीं चाहता कि शीघ्र ही फिर वैसी स्थिति लायी जाये कि केवल जर्मनीके पड़ोसियोंकी ही नहीं, सम्पूर्ण संसारकी शान्ति और सुरक्षा खतरेमें पड़े। रूसका कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौतोंकी उपेक्षा करके अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस एकतरफा कार्यवाहियों द्वारा ऐसी ही स्थिति उत्पन्न कर रहे हैं। संसारको दो भागोंमें बांटने और यूरोपके एक बहुत बड़े हिस्सेको अवशिष्ट संसारसे पृथक रखनेके प्रयासको सफल करनेके लिये ही अमेरिकाकी आर्थिक योजना सामने लायी गयी है। ऐसी स्थितिमें हम नहीं समझते कि संयुक्त राष्ट्र सङ्घके प्रधान मन्त्री मो० लीकी चेतावनीका असर इन शक्तियोंपर पड़ेगा।

मार्शल योजना—

एक बात धीरे-धीरे स्पष्ट और प्रत्यक्ष होती जा रही है कि संयुक्तराष्ट्र सङ्घके विधाता राष्ट्रसङ्घको शक्तिशाली और प्रभावशाली नहीं बनाना चाहते। सङ्घके पिछले साधारण अधिवेशनमें हिन्दुस्तानके मुकाबले सङ्घ और उसके घोषणा-पत्रके निर्माणमें प्रमुख भाग लेनेवाले फील्डमार्शल स्मट्स-को अभियुक्तके कठघरेमें खड़ा होना पड़ा था। यद्यपि उस मामलेमें हमारी जीत हुई किन्तु फैसला समझौतेके रूपमें हुआ। मिस्रके मामलेमें सङ्घके जिन सदस्योंने ब्रिटेनके साथ मिस्रके झगड़ेमें सङ्घके हस्तक्षेपका विरोध किया था उन्होंने अनुभव किया कि वे जो चाहें वही सङ्घसे करा लेनेमें असमर्थ हैं। पश्चिमी राष्ट्रोंका यह ख्याली पुलाव ठीक नहीं उतरा कि वे एशियाके अधिकांश भागपर अपना आधिपत्य बनाये रख सकेंगे और राष्ट्रसङ्घ इस कार्यमें उनका सहायक होगा। हिन्देशिया और हिन्दचीनके मामलेमें सङ्घके हस्तक्षेपने उनकी स्थिति सुरक्षित नहीं रहने दी और घरेलू मामला कहकर अपनी अन्धाधुन्ध धींगा-धींगी चलाते रहनेकी उनकी स्वतन्त्रताको सङ्घने माननेसे इनकार किया। रूसके कठिन प्रतिरोधके सामने सङ्घको अपनी महत्वाकांक्षाओंकी पूर्तिमें सहायक बनानेकी अमेरिकाकी कल्पनाको भी ठेस पहुंची। फलस्वरूप इन गौरांग प्रभुओंकी सङ्घको शक्तिशाली बनानेकी दिलचस्पीमें शिथिलता आने लगी और अमेरिकाने यूरोपकी आर्थिक स्थितिको समुन्नत करनेके बहाने सङ्घकी उपेक्षा करके एक स्वतन्त्र योजना तैयार की जो मार्शल योजनाके नामसे मशहूर है। रूस और पूर्व यूरोपके राष्ट्रोंके प्रबल विरोधसे इस योजनाका रस भी कटु-तिक्त कषाय हो गया।

राष्ट्र सङ्घ जैसे सगठनोंके सामने जैसी कठिनाइयों और सीमाओंका रहना स्वाभाविक है उनके रहते हुए भी सङ्घने दलित और पीड़ित राष्ट्रोंकी अपीलोंपर ध्यान दिया और दूसरे राष्ट्रोंकी छातीपर मूंग दलनेवाले विदेशी शासनोंका अन्त करनेकी ओर अपना कदम बढ़ाया। लेनेके देने पड़ते देख पश्चिमी गोरे राजनेता सङ्घकी बदलती हुई ताकत भिन्ना उठे और जेजरल स्मट्स उन यूरोपियन नेताओंमें सबसे पहले हैं जो राष्ट्र सङ्घके इस रूप और शक्तिको देख अपनेको जब्त नहीं रख सके और उबल पड़े। उनको संघके रूपमें एशियाई ताकतें सङ्गठित, सघ बद्ध और तगड़ी पड़ती दिखायी दीं और उसके भावी परिणामकी कल्पनासे वे कांप उठे और न्याय अन्याय उचित अनुचितका विचार छोड़ उन्होंने दक्षिणी पश्चिम अफ्रिकाके सम्बन्धमें संघके फैसलेके अनुसार काम करनेसे साफ इनकार कर दिया और यह घोषणा की है कि दक्षिण पश्चिम अफ्रीकामें संघका ट्रस्टी शासन नहीं हो सकता क्योंकि वहांके निवासी यूनियन सरकारके राज्य में परम सुखी हैं। विदेशी निरंकुश शासनमें परम सुखकी दलीलसे भारतीय भली भांति परिचित हैं। गोरी ब्रिटिश सरकार भारतपर अपने शासनका औचित्य यही कह कर प्रकट करते थे कि भारतीय ब्रिटिश शासकोंसे परम सन्तुष्ट हैं।, यह स्वतन्त्रता आन्दोलन तो कुछ शरारती आवारोंका काम है

संघका भविष्य—

ऐसी स्थितिमें सवाल यह है कि संयुक्तराष्ट्र संघका भविष्य क्या होगी। क्या पुराने राष्ट्र संघकी तरह वह भी बड़ी-बड़ी ताकतोंकी दलबन्दीका अखाड़ा बनकर जीवित मृतकी अवस्था प्राप्त करेगा या सचमुच संसारमें शांति और सुरक्षा स्थापित करनेमें प्रभावशाली संगठन सिद्ध होगा। इस समय संघके दो सर्व प्रधान सदस्यों, रूस और अमेरिकाके बीचमें प्रतिस्पर्द्धा और प्रतिद्वन्दिता इस चरम सीमाको पहुंच गयी है कि लोगोंकी यह आशंका धीरे धीरे बद्धमुल धारणामें परिणत हो रही है कि यह संघ या तो निकम्मा हो जायेगा और इसके सदस्य अपने मनचाहे रास्तेपर चलते रहेंगे या उक्त दोनों राष्ट्रोंकी प्रतियोगिता की चट्टानसे टकराकर यह संघ दो नवीन संघोंमें खण्ड-खण्ड हो जायेगा। अवश्य ही अब भी इस तरहके आशावादी हैं जो एक दृष्टि सेठीक ही समझते और कहते हैं कि संयुक्त-राष्ट्र संघका उद्देश्य प्रतिद्वन्द्वियोंको एकत्र करना है विभिन्न कैम्पोंमें विभाजित करके पृथक करना नहीं। जबतक संयुक्त-राष्ट्र संघ का अस्तित्व है तबतक झगड़े और प्रतिद्वन्द्विताओंको इसकी सीमाके अन्तर्गत ही रखा जाना चाहिये। रूस और अमेरिकाके बीचमें खाई जितना चौड़ी होती जा

रही है संयुक्तराष्ट्र संघकी आवश्यकता उतनी ही बढ़ती जाती है। अधैर्य निरुत्साह अथवा संघर्ष की अनिवार्यतामें विश्वासके कारण संघको दुर्बल नहीं बनाया जाना चाहिये साहस और सहिष्णुतासे काम लेनेकी आवश्यकता है तभी हम संघको शक्ति शाली और संकीर्ण दायरेसे निकालकर उसे फला सकेंगे। इसमें तो जरा भी सन्देह नहीं कि विश्वशांतिके हितकी दृष्टिसे ऐसा ही किया जाना चाहिये। मार्शल स्टालिन एक नहीं अनेक बार यह कह चुके हैं कि संयुक्तराष्ट्र सङ्घको शक्तिशाली सङ्गठन बनानेमें रूस कोई बात उठा नहीं रखेगा और जो लोग यह समझते हैं कि युद्ध अनिवार्य है मैं उन लोगोंमें नहीं हूँ। अभी उस दिन प्रेसिडेण्ट ट्रूमैनने भी बाजीलियन कांग्रेसमें ब्राजिलके १२५ वें स्वतंत्रता समारोहके अवसरपर बोलते हुए संसार को शपथ पूर्वक विश्वास दिलाया है कि संयुक्तराष्ट्र सङ्घको छिन्न-भिन्न न होने दिया जायगा। आपने सङ्घके भविष्यके सम्बन्धमें संसारको दृढ़ आश्वासन देते हुए कहा है कि अमेरिका अपनी पूरी ताकतके साथ संयुक्तराष्ट्र सङ्घका समर्थन करेगा। प्रेसिडेण्ट ट्रूमैनकी इस घोषणको राजनीति और कूटनीतिक भाष्यकार एवं टीकाकार बताते हैं कि यह उन सबको जबाब है जो समझते हैं कि पुराने राष्ट्र सङ्घकी भांति यह भी असमर्थ और अन्तमें असफल सिद्ध होगा।

रूस विरोधी योजना—

प्रेसिडेण्ट ट्रूमैनने किस आधारपर संयुक्तराष्ट्र सङ्घको भङ्ग न होने देनेका सङ्कल्प प्रकट किया है, हम नहीं कह सकते, किन्तु सङ्घके वर्त्तमान अधिवेशनमें, इन पंक्तियोंके लिखनेके समयतक, अमेरिकाके राष्ट्र सचिव मि० मार्शलने सङ्घके स्वरूप और विधानमें नये परिवर्त्तन करनेके उद्देश्यसे जो प्रस्ताव रखा है उसे प्रेसिडेण्टके सङ्कल्पका पूरक तो हरगिज नहीं समझा जा सकता। सिक्यूरिटी कौंसिलके सामने पद-पदपर उपस्थित गतिरोधोंको दूर करनेके उद्देश्यसे मि० मार्शलके प्रस्तावमें सङ्घकी एक सर्वथा नयी कार्य समितिका सङ्गठन करनेका सुझाव है ताकि सङ्घके घोषणा-पत्रकी शर्तोंके अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ोंका फैसला किया जा सके। इस प्रस्तावको नवीन 'शान्ति योजना' का नाम दिया गया है। इसके अनुसार तमाम सङ्घ सदस्योंको लेकर एक इण्टेरिम कमेटी बनेगी। जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिको खतरा उपस्थित करनेवाले प्रत्येक मामलेपर विचार करके उपयुक्त कार्यवाही करेगी। यह कमेटी शान्तिपूर्ण समझौतेके लिये सङ्गठनको शक्तिशाली बनायेगी और इस तरहके समझौतोंका उत्तरदायित्व सङ्घके सभी सदस्योंपर रहेगा। प्रस्तावमें दूसरा महत्वपूर्ण सुझाव वीटोके सम्बन्धमें है। महाशक्तियोंका वीटो अधिकार सीमित करनेके उद्देश्यसे यह सुझाव पेश किया गया है कि जिन मामलोंमें सङ्घ आर्थिक या सैनिक कार्यवाही करना अपना उत्तरदायित्व समझे उनमें मनमाने ढङ्गसे वीटोका प्रयोग न किया जा सके। रूस एवं उसके समर्थक मि० मार्शलके इस प्रस्तावको सङ्घके चार्टरमें संशोधन समझते हैं और कहते हैं कि इस तरह महाशक्तियोंके बीचमें सर्वसम्मत समझौतेके सिद्धान्तको सदाके लिये नमस्कार किया जा रहा है। यह निश्चित बात है कि रूस इस प्रस्तावका विरोध करेगा क्यों कि दर-असल सङ्घमें उसके अल्पमतमें होनेके कारण उसके प्रभावको नष्ट करनेके उद्देश्यसे ही वीटोके अधिकारको सीमित करनेकी बात उठायी जा रही है। वास्तवमें मूलतः वीटोका अधिकार इसी लिये रखा गया था कि सङ्घका बहुमत अल्पमतकी उपेक्षा न कर सके और अपनी नीति जबर्दस्ती उसपर लाद न सके। वीटोके अधिकारका प्रवर्तन महाशक्तियोंको सर्वसम्मत समझौतेपर पहुंचनेको बाध्य करनेके उद्देश्यसे ही किया गया था। अमेरिका आज इस वीटोको अपनी नीतिके प्रचार और प्रसारमें बाधक समझ इससे किनाराकसी करना चाहता है। हम मानते हैं कि रूसकी तरफसे वीटोका अधिकार अत्यधिक काममें लाया गया है, किन्तु हम यह भी मानते हैं कि बहुमतके घमण्डमें अमेरिका यह भूल गया है कि बीचका रास्ता निकालनेका नैतिक उत्तरदायित्व, जिसमें अल्पमत भी चल सके, उसीपर है। अमेरिका जब अपनी नीति और आधिपत्यके लिये सङ्घमें अपने बहुमतका योग करनेमें नहीं हिचकिचाता तो रूस अपने वीटोके अधिकारको कैसे छोड़ सकता है। अतएव मि० मार्शलकी यह शांति योजना संयुक्तराष्ट्र सङ्घको भंग करने और इस तरह संसारको दो-भागोंमें विभक्त करनेके लिये उत्तरदायी समझी जायगी, यदि इस दरम्यान बीचका कोई रास्ता न मिला। इस प्रस्तावने स्थितिको पहले की अपेक्षा अधिक भयंकर कर दिया है। संयुक्तराष्ट्र सङ्घका भविष्य प्रेसिडेंट ट्रूमैनके हालके आश्वासनके बावजूद आज पहलेसे अधिक अन्धकारमें समा गया है।

व्यक्तिवाद-वर्गवाद समाजवाद

व्यक्ति और वर्गका झगड़ा अनन्तकालसे चला आ रहा है। व्यक्ति वर्गका अङ्ग होनेपर भी सदासे वर्गके ऊपर उठकर, उसका शासन करनेका प्रयत्न करता चला आ रहा है। यह कोई अप्राकृतिक बात नहीं है। एक कारण है जिसका स्रोत व्यक्तिके स्वभावमें सन्निहित है, हमारे शास्त्रोंमें जिस अहं भावका पर्याप्त वर्णन किया गया है, वही इसका कारण है। अहंभाव हमें अपनी महत्ता तथा प्रभुता स्थापित करनेके लिये प्रेरित करता है। यही अहंभाव डिक्टेटर या स्वच्छन्द शासक भी बना देता है।

पर, व्यक्तिकी इस प्रवृत्तिको पश्चिमके वैज्ञानिकों तथा दार्शनिकोंने भी परीक्षाकी कड़ी कसौटीमें परखा है। वेदान्ती पश्चिमी पंडित जुङ्ग [Jung] आन्तरिक चेतनाको मानते हैं। साधारण व्यक्ति अन्तः प्रेरणाको नहीं समझता पर उसके अधिकांश कार्य अन्तः प्रेरणासे ही होते हैं। इस प्रेरणाका दो आधार होता है—एक तो प्रेममयी, जिसके कारण मनुष्य सृजन करता है, उत्पन्न करता है, प्यार करता है, प्रेममें डूबा रहता है, दूसरी प्रेरणा केवल स्वार्थमयी होती है; ऐसा व्यक्ति केवल अपने स्वार्थको, अपनेको ही प्यार करके आगे बढ़ता है। जुङ्गने इन दो प्रेरणाओंकी प्रचुर समीक्षा की है पर आज अगर देखा जाये तो स्वार्थ-की प्रेरणा अधिकतम मात्रामें वर्तमान है। इसी लिये वर्ग-वादके नामपर भी काम करनेवाले अधिनायकत्व या डिक्टेटरशाहीकी शरण लेते हैं। संसारका इतिहास साक्षी है कि उसकी सबसे अधिक प्रगति तथा समृद्धि स्वच्छन्द शासक या अधिनायकोंके शासनकालसे ही हुई है। प्रजा-तन्त्र या गणतन्त्रमें काम ढीला होता है, धीरे-धीरे होता है। इसी लिये, जनता सचेत और सतर्क होती है। पर काम देरसे ही चलता है। भौतिक जगत शीघ्रतासे आगे बढ़नेका आदी है। इसी लिये स्वार्थकी प्रवृत्ति जल्दी काम करती है, सफल भी होती है।

दार्शनिक फ्रांयड [Freud] ने बड़े गहन अध्ययन-के बाद मानव जातिकी मानसिक स्वतन्त्रताका प्रतिपादन किया है। पर, बोजांके [Bosanqut] को तरह उनको भी मानना पड़ा है कि जगतके काममें उच्चस्व' यानी उच्च आत्म-विचार तथा आत्मा काम नहीं करती। अधि-कांशतः नीच 'स्व' या आत्मा या आत्म-विचार ही काम करता है।

ऐसी दशामें आधुनिक पंडित बीनफेल्ड [Bien feld] का यह कहना है कि हमारे वर्तमान शासक न्यायकी हत्या कर रहे हैं, कोई असम्भव बात नहीं है। न्यायकी हत्या तो वही करते हैं जो न्यायको शासनकी मर्यादाके भीतर मानते हैं। ऐसा कौन राज्य है जो न्यायको शासनकी मर्यादाके बाहर समझता हो। नरेम्बर्गका फासिस्ट मुकदमा और नाजी नेताओंको प्राणदण्ड न्यायके कारण नहीं, शासनकी आवश्यकताके कारण हुआ था। सीमा प्रान्तमें खां—मन्त्रिमण्डलकी बर्खास्तगी न्यायके कारण नहीं, जिनाके अन्यायके कारण हुई। तो फिर इस संसारमें न्यायकी दुहाई देनेसे ही काम न चलेगा। काम तो समाजकी आवश्य-कताको देखकर ही होगा।

श्री- परिपूर्णानन्द वर्मा

बीनफेल्ड (Bienfeld) यह सही कहते हैंकि समाज एक कुटुम्बके समान है जिस प्रकार कुटुम्बके सुखी जीवनके लिये व्यवस्थाका होना लाजिमी है उसी प्रकार समाजके लिये भी। यह व्यवस्था कायम रखनेके लिये समाज या कुटुम्बके प्रधानकी आज्ञाका पालन होना चाहिये। पर, अगर कुटुम्ब का प्रधान पागल हो जाय, बुढ़ापेसे सठिया जाय, या अपने स्वार्थवश, अपने परिवारको पीड़ा देने लगे तो कुम्टुब के सदस्य उसे पदच्युत कर देंगे, उसी प्रकार समाजके नेता या सरकारके प्रधानको भी हटाना पड़ता है। अतः सिद्धान्ततः समाजका हरेक व्यक्ति ही असली प्रभु, स्वामी तथा प्रधान है। सरकार जनता स्वयं है, शासक चाहे जो भी हो, अधिकार वर्गका ही है। चाहे उसका प्रबन्धक एक व्यक्ति ही क्यों न हो।

समाजवादी या वर्गवादी यदि राज्यका सब कुछ अपना या जनताका मानते और कहते हैं तो वे कोई भी अनुचित बात नहीं कहते। प्रश्न केवल यह रह जाता है कि क्या वर्गमें व्यक्तिको निजी कोई स्थान प्राप्त है या नहीं? क्या सब काम वर्गको, समूहको करना चाहिये या व्यक्तिके प्रयास अलग-अलग होने चाहिये।

व्यक्तिका स्थान—

सामाजिक संगठनमें व्यक्तिका स्थान क्या है। इसका निर्णय करनेके लिये दो बातें जरूरी होती हैं। पहली तो यह कि किस प्रकारका काम है जिसमें व्यक्तिके स्थानका निर्णय करना है। दूसरे उस खास देश तथा स्थानका ऐतिहासिक तथा आर्थिक ढांचा क्या मांग करता है, क्या चाहता है? रूसने ऐसे विषयमें बड़ा भारी अनुभव किया है, प्रयास किया है। वहां उद्योग धंधेके संबन्धमें यह सिद्धान्त बहुत अच्छी तरह पालन किया गया है। पर अन्य क्षेत्र में निजी प्रयत्न तथा निजी उद्योग की काफी गुंजायश है। कई कार्योंमें लैसेंस प्राप्त कर निजी कमाई की जा सकती है, कच्चा माल खरीद कर उससे तैयारो माल बनाना सख्त मना है। डाक्टर, वकील वगैरः निश्चिन्त राज-सेवाके बाद समय निकाल कर अपनी अलग से कमाई कर सकते हैं। दस्तकारीके काम भी अलगसे किये जाते हैं। कुछ उद्योग सहकारी यानी कोआपरेटिव ढंगपर हो सकते हैं। आराम, विलासकी चीजें लोग खुद बनाकर बेंच सकते हैं। विदेशी व्यापार पूर्णतः राज्यके हाथमें है। उसमें व्यक्तिको कोई स्थान नहीं मिलता। सन् १९२८ में रूसमें २५० लाख पृथक खेत थे। अब २,४०,००० सुसंगठित सामूहिक खेत रह गये हैं, एक सामूहिक खेतमें लगभग १२०० एकड़ भूमि होती है। इसका परिणाम यह हुआ कि तीन चौथाई भूमिमें, सन् १९३८ में, पुराने हलके स्थान पर ट्रैक्टरसे काम लिया जाता है। रूसमें स्वामित्वका यह भाव नहीं रहा कि जमींदार अपने एक किसानको किसी दूसरे जमींदारसे एक शिकारी कुत्ता लेकर उसके बदलेमें गुलामी करनेके लिये दे दे। व्यक्तिके इस भयानक प्रभुत्व को समाज सहन नहीं कर सका और उसने ऐसे स्वामित्व को प्रणाम किया।

वर्गीकरणके दोष—

पर यह सब होनेपर भी राज्यने समाजकी समस्याको पूरी तरह नहीं सुलझा लिया, जो कठिनाइयां वर्गीकरणके विषयमें ऐतिहासिक कालसे चली आ रही हैं, वे हल न हो सकीं। वर्गीकरणमें एक नये ढंगका आर्थिक दृष्टिकोण पैदा करना पड़ता है। राज्यको इतना अधिक बोझ अपने ऊपर उठाना पड़ता है कि उसकी शक्तिको केन्द्रीभूत करनेके लिये बड़ा प्रयास करना पड़ता है। तीसरे, व्यक्तिके निजी उत्साह, प्रेरणा तथा प्रयासको दबने न देकर राज्यके कार्यके लिये प्रवृत करना पड़ता है।

इन कठिनाइयोंको दूर करना साधारण काम नहीं है। जब राज्य हरेक परिवारके भरण-पोषण तथा भविष्यकी जिम्मेदारी लेता है तो आदमी बेकार हाय-हाय करके अपना सर नहीं पीटेगा। वह उतना ही काम करेगा जितना कि उससे करनेके लिये कहा जाता है, यानी राज्यके लिये वह अपना तन देगा, मन अपने पास रखेगा। दूसरे, अगर राज्यको अपनी उन्नति करनी है तो हरेक दिमाग वालेसे अधिकसे अधिक सहयोग प्राप्त करनेके लिये उसे उत्साहित करना पड़ेगा। यह उत्साह सबके बराबर भोजन, वस्त्र या विनोद मिलनेसे न होगा। दूसरेके अभावसे वैभवशालीको अपना वैभव बढ़ानेकी प्रेरणा मिलती है। दूसरेके सामने अपना महत्व बढ़ानेके लिये ही आदमी बहुत हाथ पैर

मारता है। इसीलिये रूसमें भी व्यक्तिको बहुत कुछ स्वतन्त्रता देनी पड़ी, अब बैंकमें रुपया जमा करनेकी आज्ञा मिल गयी है। बुद्धि-जिवी, वैज्ञानिक, डाक्टर, इञ्जिनियर आदिको साधारण मजदूरके मुकाबलेमें कहीं अधिक वेतन, विश्राम तथा सुख मिलता है। पर चूंकि वर्गवाद ही रूस का उद्देश्य है, इसलिये वर्ग या समाजको प्रधानता तथा महानता देनी ही पड़ी। अतएव समाज उच्छृंखल न हो जाय, अपने अधिकारका दुरुपयोग न करे, इसलिये उसकी नकेल एक पार्टी, एक सरकार तथा एक शासक, यानी एक डिक्टेटरके हाथमें दे दी गयी। इसलिये अन्ततः हुआ वही जो सब जगह होता है यानी समाजका शासन एक आदमी, एक व्यक्तिके हाथमें है, जैसे एक मिलके १०,००० मजदूर एक मिल मालिकके हाथमें होते हैं। मिलकी उत्पत्ति को सरकारी मान लेनेपर भी प्रबन्ध निरंकुश ही रहा। रूसी तानाशाही को वर्गवादके हितमें मान लेने पर भी यह मानना ही पड़ेगा कि समाज तथा व्यक्ति दोनोंकी स्वतन्त्रता समाप्त हो गयी है और चूंकि व्यक्ति तथा समाजकी स्वतन्त्रता अन्योन्याश्रित है, अतएव दो में से किसी एकका सीमासे अधिक प्रभुत्व दूसरेको दास बना देता है।

झूठा तथा सच्चा व्यक्तिवाद—

सन् १९४५ में मि० एफ० ए० हायेक(F.A.Hayik) ने एक बड़ी सुन्दर पुस्तक लिखी थी जिसका नाम था IndiavidualismTrue and False यानी 'व्यक्तिवाद सच्चा और झूठा' इस विद्वान लेखककी एक बात बड़ी मार्के की थी। उनका कहना था कि हम लाख कहें, पर हमारी अन्तरात्माके भीतर एक ऐसा शासक, एक ऐसा तानाशाह बैठा है 'जो यह करो वह करो' कहता ही रहता है। अतः इस तानाशाहको ईश्वर कहिये, शासक कहिये, राजा कहिये प्रधान मन्त्री कहिये, वह किसी न किसी रूपमें शासन तो करेगा ही। किसीके लिये उसका पैगम्बर या अवतार या तानाशाहका काम करता है तो किसीके लिये उसका नेता। वर्गवादी या यों कहिये कि उनके नेता कार्लमार्क्स कहते हैं कि उद्देश्यकी पूर्तिके लिये कोईभी उपाय ठीक हो सकता है। यानी सबके सुखके लिये यदि तानाशाही भी जरूरी हो तो वह उचित है। अब अगर हम यह कहें कि स्थायी सुखके लिये एक नेता या व्यक्तिके हाथमें कारोबार का सौंप देना जरूरी है तो क्यों अनुचित है। रूसकी तानाशाही की यही सफाई दी जाती है कि वर्गवादका यह प्रथम युग है। जिस दिन समाज इस योग्य हो जायगा। कि सब काम स्वयं कर सके, उस दिन तानाशाहीकी जरूरत भी न रहेगी। पर, २७ वर्ष हो गये रूसी तानाशाही को और समाज तैयार न हुआ। यदि सौ दो सौ वर्षमें वह पूर्णता आने वाली है तो दूरसे ही उसको नमस्कार करना ठीक होगा। तब तक जनता गुलामसे भी ज्यादा बदतर हो जायेगी। जिन राज्योंने तानाशाहीको धार्मिक, सामाजिक, तथा नैतिक रूपसे उचित नहीं स्वीकार किया, वहांसे वह१०-१५ वर्षमें उठ गया। पर रूस तो उसको जरूरी समझता है। इसलिये स्टालिनके रूपमें रूसमें जार निकोलसका ही शासन है।

व्यक्तिगत रुचि तथा स्वार्थका ध्यान दिये बिना जो राज्य अपनी योजना बनायेगा वह योजना अवश्य ऐसी होगी कि सबको कहीं न कहीं खटकेगी। अतएव वह व्यक्ति को दास तो बना ही देगी। इसका यह मतलब नहीं है कि समाजवादका यह रूप यदि व्यक्तिको दास बना देता है तो पूंजीवादका नग्न व्यक्तिगत रूप उसे दास नहीं बनाता। जहांतक व्यक्तिगत स्वाधीनताका प्रश्न है, दासता दोनोंमें ही करनी पड़ती है, लुई फिशर(LouisFisher) ने यदि रूस सरकारकारको भी फासिस्त सरकारका प्रतिबिम्ब सिद्ध किया है तो युद्धकालीन चर्चिल सरकार या वतमान अमेरिकन ट्रूमैन सरकार भी कम फासिस्त नहीं है यह सत्य है कि सभी कम्यूनिस्ट तानाशाहीके हिमायती नहीं हैं। यह भी सही है कि सभी पूंजीपति या मिल-मालिक मजदूरोंका खून नहीं चूसते। यह भी सही है कि व्यक्तिके स्वार्थकी एक सामा रखनी पड़ेगी। पर प्रश्न तो यह रह ही जाता है कि ऐसा क्या किया जाय कि न तो व्यक्तिकी हत्या हो न उसकी स्वाधीनताकी हानि हो और न वह समाजका शोषण कर सके। इस प्रश्नका उत्तर देते समय अपने मनमें स्वाधीनता तथा स्वार्थकी परिभाषाके विषयमें स्पष्ट भावना रखनी चाहिये। परस्पर विरोधी भावना से काम न चलेगा। सही या गलत समयके अनुकूल होता

रहता है, आज जिस देशमें जो बात सही है, वही कल दूसरे देशमें गलत तथा दूसरे अवसरपर अनुचित बन जाती है। जैसा कि मैंडेविल (Mandevlle) ने कहा है, जो चीजें व्यक्तिमें दोष समझी जाती है, वही समाजके लिये गुण बन जाती हैं, जैसे हत्या करना व्यक्तिके लिये महापाप है, पर युद्धमें समाजके लिये बड़ा पुण्य है। एडम स्मिथ प्राकृतिक स्वातंत्र्यके पुजारी थे। पर यह प्राकृतिक स्वतन्त्र्य तो सड़क चलते व्यभिचार करनेमें भी हो सकता था। पर ऐसा करना वे नितान्त अनुचित समझते। पर इसी प्राकृतिक स्वातंत्र्यके कारण ही स्वछन्दताको हम जरूरी समझते हैं और जब यह मिल जाती है तो उसीके द्वारा समाज ऐसा बन जाता है कि परस्परकी समानता या बराबरी नष्ट हो जाती है। आज अगर कांग्रेसके हाथमें शासन है तो वह सदैव अपने हाथमें रखना चाहेगी। इसलिये वह हर प्रकारसे अपने विरोधी दलको अपनेसे छोटे राजनैतिक पदपर रखनेका प्रयत्न करेगी। यह स्वतन्त्रताका प्रतीक है पर, स्वतन्त्रताका असली रूपतो यह नहीं रह सकता।

समाजवाद—

व्यक्तिवाद तथा वर्गवाद समन्वय समाजवादमें होता है। समाजवादी अधिनायकत्वको नहीं स्वीकार करता। वह यह नहीं मानता कि समाजकी आदर्श-रचनाके लिये, एक क्षणके लिये भी किसीके हाथमें सार्वभौम सत्ता दी जा सकती है। वह यह भी नहीं स्वीकार करता कि किसी भी दशामें व्यक्ति इतना महान् होगा कि सब गुण उसमें मान लिया जाय। निजी स्वार्थ रखना व्यक्तिका गुण है। अतएव वह व्यक्तिको भी प्रधान्य नहीं दे सकता, पर व्यक्तिकी हत्या कर समाजकी रचना आदर्श हो सकती है, यह वह नहीं मानता। राज्यका जर्रा-जर्रा राज्यकी जनताका, प्रजाका, समाजका है। पर, उनके सञ्चालन, नियन्त्रणके लिये केवल राज्य ही जिम्मेदार है, यह समाजवादी नहीं स्वीकार करेगा। निजी प्रयत्न होंगे, उनका फल भी व्यक्ति भोग सकता है, पर एक सीमातक। व्यक्तिको जनताकी, मजदूरकी सत्ता स्वीकार कर काम करना होगा, उसका जो अंश वह जनता या समाज या राज्य उसको दे दे, उसपर निर्भर करना होगा। उसको जो मिलता है, वह राज्यकी कृपासे, उसके जन्म-सिद्ध अधिकारके कारण नहीं। और जो भी मिलेगा, उसकी सेवाके अनुसार। घर बैठे, पुश्तैनी जमींदारीका मजा लूटनेवाला उसके सुखका अधिकारी नहीं है। पर दिल व दिमाग लगाकर मिल चलानेवाला अपने परिश्रमका पुरस्कार अवश्य प्राप्त करेगा।

यदि स्वतन्त्रता सच्ची है तो व्यक्तिको काम करनेका अवसर देना चाहिये। बुद्धिजीवोंको महत्व देना चाहिये। राज्यको धर्म तथा विचारकी पूर्ण स्वतन्त्रता देनी चाहिये। हरेक प्रकारके विचारवालेको अपना विचार प्रकट करना चाहिये। केवल वर्गवादको वेदवाक्य मानकर सबपर उसे लादना नासमझी होगी। समाजवादी काम करके, काम दिखाके लोगोंको अपनी ओर खींचना चाहता है। वह सब प्रकारके विचार की खिड़की बन्द करके व्यक्तिका दम नहीं घोंटना चाहता। वह यह नहीं चाहता कि हवाके एक झोंकेसे समाजका सब सुधार हो जाये उसे क्रमागत विकासमें भी आपत्ति नहीं है। वह व्यक्तिको सोचने समझनेका अवसर देता है। सिद्धान्तः वह यही चाहता है कि जो वर्गवादी, पर वर्गवादी अपनी सिद्धिके लिये व्यक्तिकी हत्या करके काम शुरू करता है और अन्तमें उसी व्यक्तिको ताज पहनाकर अपनी हत्या कर लेता है। समाजवाद व्यक्तिको तथा समाजको बराबरकी दृष्टिसे देखकर 'उच्च स्व' तथा उच्च स्वार्थको प्रचलित करता है और अन्तमें उसके शासनमें व्यक्ति भी कायम रहता है। शोषण समाप्त हो जाता है और समाज सर्वोपरि हो जाता है।

बहुत संक्षेपमें, इन तीनों वाद यानी व्यक्तिवाद, समाजवाद, तथा वर्गवादका यही समीक्षण है। आज स्वतन्त्र भारतमें हरेकके मनमें यह प्रश्न उठ रहा है कि हमको क्या अपनाना चाहिये। साम्राज्यवाद मर चुका। वह तो आत्माका पतन है। वर्गवाद दासताका अभिशाप लेकर आता है। पूंजीवाद शोषणकी चरम सीमा है। व्यक्तिवाद तानाशाहीका प्रतिबिम्ब है। अतः यदि कोई मध्यम मार्ग बचा तो वह है साम्यवाद।

———

दाम्पत्य जीवन और प्रेम

प्रो० जगन्नाथ मिश्र

"Love chooses the women. not the wife" 'अर्थात् प्रेम नारीको वरण करता है, पत्नीको नहीं'सुप्रसिद्ध नाट्यकार इब्सनके इस कथनमें कितना सत्य छिपा हुआ है। इब्सनने अपने सारगर्भित कथन द्वारा मानो हमारी आंखोंमें अंगुली डालकर हमें दिखा दिया है कि विवाह और प्रेम एक वस्तु नहीं है। सफल प्रेमिक बनना और सफल पति बनना एक बात नहीं है। यौवनके प्रारम्भमें नारीका जो मोहक रूप एक तरुणके मन प्राणको मुग्ध करता है वह रूप नारीके वास्तविक रूपसे कुछ और ही होता है। वास्तव जीवनके रूढ़-कर्कश सत्यकी छाया-स्पर्शसे वह परे होता है। कल्पना-जगतकी वह रूपसी नारी, कविहृदयका वह स्वप्न, रोमान्सकी वह कुहकिनी माया एक युवककी आंखोंपर इस तरह पर्दा डाल देती है कि उस नारीके नारीत्वसे प्रेम न करके उसके लावण्यमय रूपसे प्रेम करने लग जाता है। वह नारी जिसके कण्ठमें मधु, आंखोंमें स्वप्न और स्पर्शमें अमृत होता है। कल्पना लोककी यह अप्सरा कितनी उन्मादनामयी होती है। शरद्‌की राका-रजनीमें इस अप्सराको लेकर कविता करनेमें, कठिन भुजपाशमें उसकी देह-लताको आबद्ध करनेमें स्वर्ग-सुखका अनुभव किया जा सकता है। वह स्निग्ध संध्यामें कानोंके पास प्यार अस्फुट गुञ्जन करती है, ज्योत्स्ना पुलकित यामिनीमें गलेमें हाथ डालकर मनुहार करती है। रक्तकी एक एक शिरा नृत्य-चञ्चल हो उठती है, हृदय वीणाका एक-एक तार सिहर उठता है और पलकें आनन्दातिरेकमें छिप जाती हैं। एक क्षणके लिये भी कल्पना लोककी रानी इस प्रेममयी, मधुमयी रूपसीको अपनेसे दूर रखनेका जी नहीं चाहता, यदि वह मानकरके रूठ जाय, मृदु-मधुर आलाप करना बन्द कर दे तो सारा संसार शून्य प्रतीत होनें लगता है। सब कुछ निरानन्द, नीरस। जब वह चुपचाप सामने आकर आवेशपूर्ण रसीली आंखोंसे देखने लगती है—एक-एक शिरामें आनन्दकी लहर नृत्य करने लगती है, रोम-रोम स्पर्श पुलकित हो उठता है। पुरुष यौवनकी उन्मादनामें आत्म-विभोर बनकर अपनी कल्पनाकी सजीव प्रतिभा, इस रहस्यमयी नारीके चरणोंमें सब कुछ न्योछावर कर देता है, अपने आपको वह खो बैठता है। और अपने अस्तित्वको प्रेमकी दुनियामें भुला देनेमें उसे कितना सुख मिलता है। अपने मनकी माधुरी-से नारीके इस स्वप्नमय रूपकी कल्पना करके पुरुष अपनी प्रेयसीके गलेमें वर-माला डाल देता है। कुछ दिनोंतक तो ऐसा लगता है कि कल्पनाकी वह रहस्यमयी नारी सजीव साकार बनकर सामने आ गयी है। सपनेकी दुनियामें सुनहले दिन और रसभरी रातें। तरुण-तरुणी एकान्तमें अपनेको पाकर जब प्यार भरी आंखोंसे एक दूसरेको देखने लगते हैं उस समय अपने-आप, तकको वे खो बैठते हैं। जीवनके उस वसन्तमें मानो कभी पतझड़ आयगा ही नहीं। चूड़ियोंकी झनकार, जूतेकी मसमस आवाज, साड़ीकी फर-फराहट दोनोंके कानोंमें परिचित होकर गूंजती रहती है। दोनोंके लिये एक दूसरेका सान्निध्य कितना आह्लादजनक होता है। थोड़ी देरके लिये भी नयनोंकी ओट होते ही मन-प्राण व्याकुल हो उठते हैं। पतिका आदर, प्यार, सोहाग और मनुहार पाकर पत्नी मन-ही मन अपने सौभाग्य को सराहती है, अपने रूप-यौवनको कृतार्थ समझती है और अपने भावी सुखमय दाम्पत्य जीवनके सुनहले सपने देखती है।

किन्तु हाय! अभी साल-दो साल भी तो नहीं बीते रोमान्सकी वह दुनिया देखते-देखते कहां चली गयी? उसके वे सुनहले दिन सपनेकी वे रङ्गीनी रातें इतनी जल्दी कैसे बीत चलीं? जीवनके वसन्तोद्यानमें अब उस कोकिलाका कलकूजन क्यों नहीं सुनायी देता? जिसका एक क्षण भी वियोग असह्य मालूम होता था उससे एक प्रकारकी क्लान्ति क्यों बोध होने लगी? कानोंके पास मुंह रखकर चुपकेसे पतिके पास कोई कह जाता है 'tired,' 'fed-up' पत्नी एकान्तमें अपने प्रेमिक पतिके इस भाक-

स्मिक भाव परिवर्तनपर लाख सोचती-विचारती है, कोई कारण समझमें नहीं आता। अपनी किसी अन्तरङ्ग सहेलीसे वार्त्तालापके प्रसङ्गमें कहती है—'समझनेमें मैंने भूल की, बहन !' इसके साथ-साथ एक दीर्घनिश्वास।


इनको लेकर घर गृहस्थी नहीं चलायी जा सकती ?

सारा जीवन जिन दोप्राणियोंको एक साथ रहकर सुख-दुख, सङ्कट-विपद्में परस्पर एक दूसरेका अवलम्बन बनना पड़ेगा, जिन्हें अपने प्रेमपूर्ण व्यवहारसे, स्नेह, माधुर्य सहानुभूतिसे जीवनकी धूसर मरु-भूमिको भी वसन्तकी शोभा श्री से सरसित रखना पड़ेगा, जिनकी प्रेमकी दुनिया पुरानी हो जानेपर भी रोमान्सकी रङ्गीनीसे नित-नूतन चिर-नवीन बनी रहेगी—उनका थोड़े समयके अन्दर ही इस तरह एक दूसरेसे विरक्त या उदासीन हो जाना कितना अशोभन एवं शोचनीय मालूम होता है। किन्तु चाहे यह कितना ही अशोभन, अवांछनीय एवं शोचनीय क्यों न हो, है यह एक प्रकृत तथ्य। अधिकांश गृहस्थ जीवनमें आज यही ट्रैजिक देखी जाती है।

ऐसा क्यों होता है ? इस लिये कि यौवनके द्वार देशमें प्रवेश करके रोमान्सकी अवास्तव दुनियामें विचरण करते हुए जिस अपूर्व सुन्दरी नारीकी कल्पनामूर्त्ति अपने मानस पटलपर अङ्कित कर रखी थी वही नारी जब काल-क्रमसे गृहणीके रूपमें परिणत हो जाती है, गृहस्थीका भारग्रस्त जीवन लेकर जब वह पतिके सामने अपने सहज स्वाभाविक रूपमें उपस्थित होती है कि उसका वह स्वप्न विलीन हो चुका है। जिस रहस्यमयी रमणीके कपोलोंमें एक विलक्षण आभा, उसकी रसीली चितवनमें एक मादक आकर्षण, गतिमें एक अपूर्व छन्द और कण्ठमें एक अनुपम माधुर्य था। वही जब गृहणीका स्थूल रूप लेकर सामने आयी है तब न तो कपोलोंमें वह आभा, चितवनमें वह आकर्षण, गतिमें वह छन्द और वाणीमें वह माधुर्य प्रेमिक पतिकी दृष्टिमें रह जाता है जो पहले उसे रोमान्सकी दुनियामें प्रतिक्षण दिखायी पड़ताथा। कल्पना लोककी कुहकिनी नारीको लेकर सुन्दर काव्य लिखे जा सकते हैं, विरह-वेदनापूर्ण गान गाये जा सकते हैं उपन्यास और कहानियोंमें रोमान्स और कौतुककी रङ्ग-विरङ्गी फुलझड़ियां छोड़ी जा सकती हैं, मगर उनको लेकर घर-गृहस्थी नहीं चलायी जा सकती। जीवनकी समस्याओंको हल नहीं

किया जा सकता। कल्पनाकी नारी तभीतक रहस्यमयी बनी रहती है जबतक कि नित्यके जीवनकी तुच्छ घटनायें उसे स्पर्श नहीं कर पातीं। विवाहके बाद नारीको लेकर बहुत दिनोंतक रोमान्स नहीं चलाया जा सकता, इस तथ्यको विवाहके पूर्व जिस व्यक्तिने अच्छी तरह उपलब्ध नहीं किया उसे आगे चलकर निराश होना ही पड़ेगा और उसका गृहस्थ जीवन कभी सफल नहीं हो सकता।

नर-नारी परस्पर एक दूसरेके रूप यौवनपर मुग्ध होकर भले ही प्रेम करने लग जांय मगर जब वे इस प्रणयके परिणाममें रूपान्तरित करके पति-पत्नी बनना चाहते हैं उस समय उन्हें और भी कई बातोंपर विचार करना पड़ता है। विचारके बाद केवल प्रेम को लेकर ही कारबार नहीं चलता बल्कि विभिन्न प्रकृतिवाले व्यक्तियोंके अत्यन्त सन्निकट रहकर जीवन बिताना पड़ता है। पुरुषको अब एक ऐसे मनुष्यके साथ व्यवहार करना पड़ता है जिसके शरीर ही नहीं है बल्कि मन, प्राण और आत्मा भी है। दाम्पत्य जीवनमें केवल देह मिलनसे ही काम नहीं चलता, बल्कि दो हृदयों का दो प्राणोंका भी मिलन होना चाहिये। देहके मिलनके साथ जो यह मनका मिलन है यह मनका मिलन ही तो आध्यात्मिक प्रेम है। बिना इस आध्यात्मिक प्रेमके दैहिक मिलनमें वह तल्लीनता आत्म समर्पणकी वह भावना आ ही नहीं सकती जो इस स्थूल दैहिक मिलनको भी एक दिव्य आनन्द रससे सरसित कर देती है। प्रेममार्गी भक्त कवियों और रहस्यवादी सन्तोंने भक्त और भगवानके मिलनमें, आत्मा और परमात्माके एकीकरणमें जिस लौकिक प्रेमको प्रतीकके रूपमें ग्रहण किया है और जिस ब्रह्मानन्दका यत्किंचित आभास उन्हें नर-नारीके इस दैहिक मिलनमें प्रतीत होता है वह यही आध्यात्मिक प्रेमसे रञ्जित दैहिक मिलन है। इसलिये नर नारीकी मिलन-समस्यापर विचार करते समय इस बातपर ध्यान रखना ही होगा कि पुरुष अपनी भोग वासनाको चरितार्थ करनेके लिये यथेच्छ रूपमें नारीका व्यवहार नहीं कर सकता। नारीके मनका ख्याल रखकर उसे चलना पड़ेगा। अपनी, अपनी उद्दाम वासना, अपनी खामखयालीको लेकर वह नारीके शरीरके साथ कौतुक नहीं कर सकता। नारीका शरीर स्थूल क्रीड़ा-कन्दुक न होकर कोमल वृत्तियों और सुकुमार भावनाओंकी सजीव प्रतिमा है। वह केवल यौनक्षुधाकी निवृत्तियोंके लिये भोग्य पदार्थके रूपमें नहीं है बल्कि जीवन संगिनी और सहधर्मिणीके रूपमें भी है। उसका प्रयोजन केवल शरीरके लिये ही नहीं बल्कि मन और प्राणके लिये भी है। उसके संगमें केवल देहकी क्षुधा ही निवृत्त नहीं होती बल्कि प्राणोंकी पिपसा भी शांत होती है। देहकी स्थूल प्रयोजन यौवन-वासनाकी चरितार्थतासे उर्ध्व नारीका जो अस्तित्व है उन अस्तित्वको हृदयङ्गम करके ही पुरुष इस योग्य होता है कि वह अपनी प्रेयसीका पाणिग्रहण करके उसे जीवनसंगीनी के रूपमें ग्रहण करें। उसके इस अस्तित्वकी उपलब्धि किये बिना दाम्पत्य जीवनमें प्रवेश करनेका अधिकार किसी पुरुष को नहीं होना चाहिये।

बर्नार्ड शाने अपने नाटक Man and Super man में विवाहकी इस समस्याको लेकर नारी-चरित्रपर अभिनव रूप में प्रकाश डाला है। पुरुषका यह समझना कोरा भ्रम है कि नारी के रूपकी स्तुति करनेसे, उसके सौन्दर्यकी अतिरञ्जना करनेसे तथा जो वह नहीं है वैसा उसे समझने और अपनी कल्पना द्वारा उसे अपने मनोनुकूल रूपमें चित्रित करनेसे वह प्रसन्न होती है और अपने प्रेमिकके मुखसे यह स्तुति-गान सुनकर उसे मन प्राणसे चाहने लगती है। 'मैन एण्ड सुपरमैन' नाटककी नायिका ऐन के प्रेमिक जैक और अक्टेभियस दोनों ही थे। दोनोंही उसे पत्नीके रूपमें प्राप्त करना चाहते थे। अक्टेभियस कविका हृदय रखता था। वह भाव विलासी था। अपनी इस भावविलासिताको चरितार्थ करनेके लिये उसने ऐन के रूप-गुणकी जो कल्पना अपने दिलमें कर रखी थी, ऐन-वास्तव ऐन उससे भिन्न थी। वह अक्टेभियसके भावोच्छासको सुनकर प्रेम गद्गद् तो अवश्य हो जाती थी मगर साथ ही इसके वह यह भी सोचने लगती थी कि इस भाव विलासी खामखयाली युवकको लेकर संसार नहीं चलाया जा सकता। जिस दिन उसकी आंखोंपरसे यौवनका नशा दूर हो जायगा, प्रेयसीके चेहरेकी रङ्गीनी फिकी पड़ जायेगी, वास्तवके सम्पर्कसे सपनेकी दुनिया मिट जायगी और अपनी सुकुमार कल्पना द्वारा उसने जिस अपूर्व नारीत्वकी कल्पना अपनेमनमें कर

रखी थी उस कल्पनाका जादू वास्तव स्पर्शसे दूर हो जायगा उस दिन उसे निराश होना पड़ेगा। इसलिये ऐन अकटेभियसको प्यार तो करती है मगर उसके गलेमें वर-माला डालनेमें हिचकती है। प्रेमिक अकटेभियस जिस दिन पति अकटेभियस बनकर अपनी प्रेयसीके पति रूपसे परि-चित हो जायग उस दिन उसकी कल्पनाकी वह रानी न मालूम कहां विलीन हो जायगी। तभी तो ऐन अकटेभियस से कहती है 'तुमने मुझमें जिस अलौकिक देवी रूपकी कल्पना कर रखी है उसके अनुसार ही मुझे बराबर रहना पड़ेगा। तुम्हारा वह मोह स्वप्न भंग न हो जाय इसपर मुझे ख्याल रखना पड़ेगा। इसलिये हम दोनोंमें विवाह होजानेपर तुम्हारे समीप सब समय मैं देवी बनकर नहीं रह सकूंगी। नारीका सहज स्वाभाविक मानवी रूप है, उस रूपमें ही वह पुरुषकी प्रेयसी-पत्नी बनना चाहती है। वह यह नहीं चाहती कि पुरुष उसका भक्त बनकर उसकी स्तुति करता रहे, उसके रूप गुणकी प्रशंसा करते- करते उसे मानवीसे देवी बना डाले और उसके सामने घुटने टेककर उसके चरणोंमें श्रद्धांजलि अर्पित करे। वह पुरुषसे प्रेम करती है और बदलेमें प्रेम चाहती है—शीतल वासना विमुक्त प्रेम नहीं बल्कि उष्ण भावोच्छ्वासपूर्ण मांसल प्रेम। इसी प्रेमके आवेशमें वह पुरुषके बाहुपाशमें अपनेको संपूर्ण समर्पित कर देती है सृष्टि की उन्मादनाकी वशवर्त्तिनी बनकर। सृष्टिकी यह उन्मा-दना ही नारी जीवनकी सबसे बड़ी प्रेरक शक्ति है। उसे वास्तव आनन्द मिलता है पुरुषके गाढ़ालिंगनमें आवद्ध होने में, देवी बनकर अपनी स्तुति सुननेमें नहीं।

इब्सनने अपने एक नाटक Loves' Comedz में दिख-लाया है कि नारी उस प्रेमके प्रति आकर्षित नहीं होती जिस प्रेममें केवल भवोच्छ्वास ही होता है। जिस प्रेममें पौरुषका प्रकाश होता है वह प्रेम ही नारीके मनको आकर्षित करता है चाहे आप अपनी प्रेयसीको लेकर सुन्दर गीतोंकी रचना करें, या चित्रांकण करें, अथवा उसे साथ लेकर झीलके किनारे सैर करने या सिनेमा देखने जांय, या उसे प्रेमकी कविताएं और कहानियां पढ़कर सुनायें या गा बजाकर उसे रिझानेकी कोशिश करें मगर यह सब करके आप उसके हृदयको जीत नहीं सकते। हृदयको जीतनेके लिये पुरुषत्व चाहिये। Loves comedzकी नायिका Svanhild नामक Falk से प्रेम करती थी अवश्य, फिर भी वह उससे विवाह नहीं कर सकी। क्यों? इसलिये कि विवाह करके वह अपनी प्रेमिकके कवि हृदय पर ठेस नहीं पहुंचाना चाहती थी। वह नायकसे कहती है —'प्रेमके लिये मैं तुम्हारा बलिदान करना चाहती हूं। इस जीवनमें मैं तुम्हें खो चुकी हूं अवश्य, मगर मैंने तुम्हें सदाके लिये प्राप्त कर लिया है।

रवीन्द्रनाथके 'शीर्षक कविता' उपन्यासमें लावण्यने जिसे पति रूपमें वरण किया वह उसका प्रेमिक अमित राय न होकर शोभनलाल था। अमित राय मन,प्राणसे लावण्य कोचाहता था, लावण्यकी ओरसे भी प्रेम-प्रदर्शनमें कोई कसर नहीं रखी जाती थी, फिर भी लावण्यसे यह बात छिपी नहीं थी कि अमित एक सफल प्रेमी होनेपर भी एक सफल गृहस्थ नहीं बन सकता। विवाह करके घर गृहस्थी बसाने योग्य उसने अपनेको नहीं बनाया है। जिस लाव-ण्यसे वह प्रेम करता था वह लावण्य जब उसकी पत्नी बन-कर गृहिणीके रूपमें उसके सामने उपस्थित होगी, उस समय उसका स्वप्न सहज ही भंग हो जायगा और उसकी कल्पनाकी परी लावण्य, एक साधारण मानवीके रूपमें उसके कवि मनको मुग्ध नहीं कर सकेगी।

परिणाम सूत्रमें आवद्ध होकर दाम्पत्य जीवनको सफल बनानेके लिये यह आवश्यक है कि पुरुष विवाहके उत्तर-दायित्वको समझे। वह नारीमें जो नारीत्व है उसीको एकान्त सत्य समझे, उसके स्वप्नमय या रहस्यमय रूपको नहीं। उसे मानवी समझकर उसके साथ मनुष्योचित व्य-वहार करे। वह गृहिणीके रूपमें, जननीके रूपमें उसके नित्य केजीवनकी सहचरी बनेगी, उसके सुख-दुःखमें, हर्ष-विषादमें हाथ बंटायगी और उसके जीवनको कठोर वास्तवके बीच भी सुखी बनायगी। पति-पत्नी दोनोंको यह सदा स्मरण रखना पड़ेगा कि दो भिन्न-भिन्न, माता-पिताकी सन्तानके रूपमें दोनोंकी शिक्षा-दिक्षा पालन-पोषण भिन्न रूपमें हुआ है। दोनोंके विचार, दोनोंकी रुचि और दोनोंकी प्रवृत्तियोंमें भिन्नता होगी ही। ऐसी स्थितिमें दोनोंको अपने किसी अभ्यास या रुचिमें परिवर्तन लाकर जीवनको सामञ्जस्य पूर्ण बनाना ही होगा। किसी प्रकारके भी सन्देहको मनमें स्थान नहीं देना होगा। सन्देह उत्पन्न होते ही अ-यथा-र्थता एक दूसरेको अच्छी तरह समझा देंगे। कभी-कभी ऐसा भी होता है अकारण पति या पत्नीके मनमें सन्देह उत्पन्न हो जाता है। इसलिये यह आवश्यक है कि समय-समयपर प्रेमको खुलकर प्रकट किया जाय। मूक प्रेमको भाषा द्वारा व्यक्त करनेका प्रयोजन होता है।

महादान

श्री भैरव प्रसाद गुप्त

बहुत पुराने जमानेकी बात है। एक गांवमें एक साधु रहता था। अपनी छोटी झोपड़ीमें उसने ठाकुरजीकी छोटी-सी मूर्त्ति स्थापित कर रखी थी। उसी मूर्त्तिकी पूजा-अर्चामें वह अपने दिन बिता रहा था।

ठाकुरके भक्तोंकी कृपासे उसे रोज चार आनेकी आमदनी हो जाती थी। इसीसे वह ठाकुरका भोग लगाता, आरती करता, प्रसाद बांटता और स्वयं भी प्रसाद पाता। कुछ ऐसी बात थी, कि उसे रोज चार ही आने मिलते, न एक पैसा कम, न एक पैसा अधिक। साधु सन्तोषी जीव था। चार आनेमें ही वह बड़े मजेमें गुजर कर लेता था। उसे कभी कोई कठिनाई नहीं होती थी

दिन यों ही कटते जा रहे थे, कि एक दिन एक ऐसी बात हो गयी, जिससे उस साधुका जीवन सदाके लिये धर्म-सङ्कटमें पड़ गया।

सन्ध्याका समय था। दाहिने हाथमें आरतीका दीप लिये, बायें हाथसे घंटी टुनटुनाता साधु ठाकुरकी आरती करता हुआ, भक्ति और श्रद्धाके नशेमें बेहोश-सा हो झूम रहा था। पास ही कुछ भक्त लोग हाथ जोड़े खड़े थे। झोपड़ी धूप और कपूरकी महकसे गमक रही थी। भक्ति-रसमें डूबी घंटीकी मधुर टुनटुनाहट जैसे अमृतकी वर्षा कर रही थी। पाससे ही गुजरते एक संन्यासीने घंटीकी आवाज सुनी, तो झोपड़ीके सामने आ, वहां एकत्रित बच्चोंके बीच हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

जय-जयकारके साथ आरती समाप्त हुई। ठाकुरके चरणोंमें आरतीका दीप रख, साधुने ठाकुरका अभिषेचन किया। फिर भक्तोंको चरणामृत और प्रसाद बांट, प्रसादकी थाली लिये बाहर बाल-गोपालोंके बीच आ खड़ा हुआ।

ललचाई आंखोंसे साधुकी ओर देखते बालकोंने एक ही साथ थालीकी ओर हाथ बढ़ा दिये। साधुने थाली ऊंची कर प्रसाद बांटना शुरू कर दिया। संन्यासी एक ओर हट गया।

बच्चोंको निबटानेके बाद साधुकी दृष्टि संन्यासी पर पड़ी। उसने उसका अभिवादन 'जय ठाकुरजी' कहकर किया। फिर वह उसे प्रसाद देने लगा, तो सन्यासी बोला—'भगवन, पहले जरा पानी दें! हाथ मुंह धोकर ही मैं प्रसाद पान करूंगा। बड़ी दूरसे आ रहा हूं।'

'अच्छा-अच्छा!' बड़ी नम्रतासे कह, साधु झोपड़ीके अन्दर चला गया, और कमण्डल लाकर, पास ही पड़े पत्थरपर रख, संन्यासीसे हाथ-मुंह धो लेनेका निवेदन किया।

हाथ-मुंह धोकर संन्यासी जब प्रसाद पान करने लगा, तो साधुने यों ही पूछा—'कहांसे आना हो रहा है, भगवन?'

'मैं काशीजीसे आ रहा हूं। पैदल ही चलकर प्रयागराजके माघ-मेलेमें सम्मिलित होनेका विचार है।'—उसने जल-आचमन करते हुए कहा।

'अहो भाग्य कि आपके दर्शन हुए।' साधुने कृतज्ञता दर्शाते कहा।

'सब ठाकुरजीकी महिमा है, भगवन!' संन्यासीने कहा—'भण्डारे-वण्डारेका कुछ प्रबन्ध हो सकेगा आपके यहां? आपके ऐसे भक्तकी संगत भाग्यसे ही मिलती है। चलते-चलते थक भी बहुत गया हूँ। सन्ध्या भी झुक चली। यदि कुछ प्रबन्ध हो जाता, तो रात आपके ठाकुरजीके चरणोंमें बिता आपकी संगतिके सुयोगसे लाभ उठा, प्रातः होते ही चला जाता।'

साधुने नम्रतापूर्वक सर हिलाकर कहा—'ठाकुरजीकी कृपासे जो भी साग-सत्तू मिल सकेगा, मैं आपकी सेवामें अर्पण करूंगा। आपके आतिथ्यका यह सुअवसर मिलना मेरे लिये बड़े भाग्यकी बात है! आप सहर्ष विश्राम करें, महाराज।'

संन्यासी पत्थर पर मृगछाला बिछा, निश्चिंत हो लेट गया। साधु उसके सत्कारकी चिन्तामें झोपड़ीके अन्दर घुसा। ठाकुरके चरणोंमें पड़ी थालीमें बिल्कुल थोड़ा प्रसाद

बच रहा था। संन्यासी न होता, तो सदाकी तरह साधु उसे ही पाकर रात काट लेता। पर अब इतने प्रसादसे कैसे काम चलेगा? साधुको अपनी चिन्ता न थी। यदि यह प्रसाद संन्यासीके लिये पर्याप्त होता, तो वह यों ही बिना कुछ खाये-पिये सो रहता। पर प्रसाद तो इतना कम था, कि उसे संन्यासीके सामने रखते भी लज्जा लगी।

यही सब सोचकर, वह झोपड़ीसे बाहर निकला, और गांवकी ओर चल पड़ा। सोचा, सम्भव है, ठाकुरजीका कोई भक्त इस अवसरपर उसकी सहायता कर दे।

साधु कभी गांवमें नहीं जाता था। उसने आजतक किसीसे कुछ न मांगा था। आज शायद उसे किसीके सामने हाथ फैलानेकी आवश्यकता न पड़ेगी। ठाकुरजीकी कृपा होगी, तो सब आप ही हो जायगा। यही विचार कर वह गांवमें चक्कर लगाने लगा।

लोगोंको उसे गांवमें देख आश्चर्य हुआ कइयोंने पूछा, कि बाबाने आज कैसे कष्ट किया। उसके मुंहसे अपनी आवश्यकताकी बात न निकली। उसने एक आदमीसे भी खुलकर न कहा, कि उसे एक सीधेकी आवश्यकता है, कोई भक्त कृपा कर दे।

फल यह हुआ, कि जैसे वह गया था, वैसे ही उसे लौटना पड़ा। मन दुःखसे भरा हुआ था। कैसे वह अपने अतिथिका सत्कार करेगा? क्या ठाकुरजीके सामने ही उसके भक्तको एक संन्यासीके सामने अपमानित होना पड़ेगा? ग्लानिके मारे उसका बुरा हाल हो रहा था।

अपनी झोपड़ीके पास पहुंचा ही था, कि सहसा साधुकी दृष्टि पासकी ही एक छोटी दुकानपर पड़ गयी। उसके मनने कहा कि क्यों न वह बनियेकी दुकानसे एक सीधा उधार ले ले। ठाकुरजीके पुजारीपर क्या बनिया एक-दो आनेका भी विश्वास न करेगा? यही सोचकर वह दुकान पर जा खड़ा हुआ। गाहकको निबटाकर, बनियेने साधुपर दृष्टि उठायी। कहा—'आज यहां कैसे, बाबा?'

'मेरे यहां आज अचानक एक संन्यासी अतिथि पधारे हैं। उनके लिये एक सीधेकी आवश्यकता है। क्या तुम उधार दे सकोगे? मैं कल ही पैसा चुका दूंगा।' साधुने विनयके स्वरमें कहा।

बनियेने भरे स्वरमें कहा—'उधार तो मैं किसीको देता नहीं, बाबा! पर जब आप आये हैं, तो देना ही पड़ेगा। मगर एक बात है,' कुछ हिसाब जोड़कर उसने कहा—'दो आनेका सीधा होगा। जबतक आप उसे चुका न देंगे, तबतक आपको इसके दो आने सूद रोज देने पड़ेंगे। अरे हां, सूद आज ही से लगना शुरू हो जायगा! क्षमा करें, महाराज, हमें व्यापार चलानेके लिये ऐसा करना ही पड़ता है।'

साधुने सोचा इसमें क्या बात है। कल तो वह चुका ही देगा। उसने स्वीकार कर लिया।

अगौछेमें सीधा बांध, प्रसन्न हो अपनी झोपड़ीमें आया, और संन्यासीके भण्डारेका प्रबन्ध कर उसने निश्चिन्तताकी सांस ली।

(२)

संन्यासी साधुको कोटि-कोटि धन्यवाद दे प्रातःकाल ही चला गया। पर साधुको वह जिस धर्म सङ्कटमें फंसा गया, उससे छुटकारा पाना साधुके लिये असम्भव हो गया। साधुकी कुल आमदनी रोजाना चार आनेकी थी। किसी तरह कतर-ब्योंत कर, दो आनेमें ही ठाकुरजीके भोगका प्रबन्ध उसने उस दिन किया था। प्रसाद बांट देनेके बाद कुछ भी न बच पाया पर इसकी उसे चिन्ता न हुई। एक दिनके उपवासकी बात उसके लिये कोई कठिन बात न थी।

सन्ध्याकी आरतीके बाद वह बची हुई दुअन्नी ले बनियेके यहां पहुंचा, और उसके हाथमें दुअन्नी रख दी।

बनियेने दुअन्नी देखकर कहा—'बाबा, यह दुअन्नी तो सूदकी हुई, मेरी उधारवाली दुअन्नी नहीं लाये क्या?'

साधुके मस्तिष्कमें जैसे कुछ झन्न-से बज उठा। ओह, यह बात तो उसके ध्यानमें ही नहीं आयी थी। पुनः संभल कर कहा—'उसका भी प्रबन्ध हो जायगा। आज इतना ही मेरे पास है।'

'अच्छा-अच्छा।' कहकर बनियेने सिर हिला दिया।

साधु वहांसे लौटा, तो उसका मस्तिष्क दुश्चिन्ताओंसे भन्ना रहा था। वह बार-बार ऋण चुकानेके विषयमें सोचता, पर किसी तरह हिसाब बैठता ही न था। बार

आने रोजकी आमदनी। उसमेंसे कमसे-कम दो आने ठाकुर-के भोगमें खर्चा होंगे हो। इससे कमका भोग लगेगा, तो प्रसाद इतना अपर्याप्त हो जायगा, कि भक्तोंको थोड़ा-थोड़ा भी न अटेगा, उसे स्वयं न मिले, तो कोई बात नहीं; पर भक्तोंको प्रसाद न मिलेगा, तो आरतीमें वे पैसे ही क्यों डालेंगे। किसी तरह कठिनाईसे दो आने ही वह बचा सकेगा जिससे वह बनियेके सूदकी ही रकम जमा कर पायेगा। असल ऋण तो उनपर बना ही रहेगा। ओह, कैसे सङ्कटमें फंस गया वह!

फिर उसने सोचा, क्यों न एक दिन वह ठाकुरका भोग ही न लगाये, और चारों आने बनियेको दे, इस ऋणसे मुक्त हो जाय? पर ठाकुर, भक्तके रहते, उपवास करें, यह बात कैसे सहन कर सकता था ठाकुरका वह पुजारी? फिर भोग न लगेगा, तो भक्तगण क्या कहेंगे, और फिर वे ठाकुरकी आरतीमें ही क्यों आयेंगे, प्रसादके लिये पैसे ही क्यों देंगे? नहीं, इससे तो मामला और चौपट हो जायगा! ठाकुरका भोग लगाना भी कठिन हो जायगा तब तो!

कोई चारा न था। रोज साधु बनियेको दो आने सूदके दे आता, और बाकी दो आने ऋणके तकाजे का भार सिर पर लिये, चरणामृत पान किये बिना कुछ खाये सो रहता।

यों बिना कुछ खाये कितने ही दिन बीत गये। चरणामृत, तुलसी-दल और जलके बल पर वह कब तक टिका रहता? शरीर दुर्बल हो गया। शक्ति नष्ट होने लगी। चलना-फिरना भी उसके लिये कठिन हो गया। फिर भी अपने ठाकुर को पूजा-अर्चा करता रहा, भोग लगाता, प्रसाद बांटता और संध्याको किसी तरह चलकर बनियेको दो आना सूद चटा आता। धीरे-धीरे उसका स्वास्थ्य बहुत गिर गया। भक्तोंने देखा, तो पूछा—'बाबा, आपको क्या हो गया है, जो यों दिन-दिनसूखते जा रहे हैं? क्यों नहीं किसी वैद्यको दिखा कर कुछ दवा-दारू ले लेते। यों कब तक चल सकेंगे आप?'

साधुने ठाकुरकी मूर्तिकी ओर देख, एक करुण मुस्कान होंठों पर ला कहा—'सब ठाकुरकी कृपा है, भैया उनकी जो इच्छा!'

योंही कुछ दिन और बीते। साधु अब बिल्कुल अशक्त हो गया। उसे अपने मर जानेकी चिन्ता न थी। चिन्ता थी केवल इस बातकी, कि कहीं वह बनियेके कर्जका भार लिये ही न मर जाय। पहले उसे आशा थी कि ठाकुरकी कृपासे एक-न-एक दिन वह इस कर्जसे अवश्य मुक्त हो जायगा, पर अब वह आशा भी टूट गयी। अब तो मृत्यु उसके सामने नाचती हुई दिखायी देने लगी। आज नहीं, तो कल; कल नहीं, तो परसों वह अवश्य मर जायगा। ओह, जिसने जीवनमें कभी किसीका कोई एहसान न लिया, आज वही कर्जका भार अपनी आत्मा पर लिये कैसे मर सकेगा?

दूसरे दिन दुर्बलताके कारण सुबहमें वह बड़ी देर तक विक्षिप्तावस्थामें पड़ा रहा। ज्ञान लौटा, तो किसी तरह उठा, और ठाकुरकी आरती की तैयारी की।

मूर्तिके सामने पता नहीं कहांसे बल पाकर वह दाहिने हाथमें आरतीकी थाली और बायें हाथमें घंटी लिये खड़ा था। भक्तोंको लग रहा था, कि आज साधु नहीं, बल्कि उसका प्रेत आरती कर रहा है। कइयोंने काना-फूंसीकी, कि आज साधु जरूर मर जायगा।

आरती समाप्त हुई। आज प्रसाद बांटनेका बल साधुमें न था। उसके एक भक्तने यह काम कर दिया। दूसरे भक्तने आरती से पैसे निकालकर, गिनकर साधुके हाथमें देते हुए कहा—'बाबा, चार आने हैं।'

चार आने! हां, चार आनेही सदासे मिलते आये हैं! आज अधिक कैसे मिलते? तो आजभी जब साधुकी आखिरी घड़ी उसके सिर पर मंडरा रही है, उसे चारही आने मिले। भक्त चले गये। साधु मुट्ठीमें पैसे लिये ठाकुरके चरणोंमें थका-वटकी अन्तिम सीमापर पहुंचे हुए यात्रीकी तरह बैठा, ठाकुरको वह अपनी फटी-फटी आंखोंसे, हृदयमें जाने कैसे कैसे भाव लिये, निहार रहा था। आंखोंसे आंसूकी धारें बही जा रही थीं। लग रहा था, जैसे ठाकुरके चरणोंमें बैठी करुणाकी मूर्ति स्वयं रुदन कर रही हो।

साधुने मुट्ठी खोलकर एक बार उन पैसोंको देखा, फिर सहसा फूट पड़ा। हृदयमें कबका दबा क्रन्दन उपालम्भका रूप धारण कर अनियन्त्रित धाराकी तरह बह निकला। वह बोला—'ठाकुर, जीवनमें मैंने तेरी पूजा और भक्तिके सिवा कुछभी नहीं चाहा। तेरेही चरणोंकी सेवामें मैंने पूरा जीवन

लगा दिया ! पर तुझसे कभी भी, कुछ भी न चाहा, न मांगा। मैं सोचता था कि अपने भक्तका कष्ट तू समझता है, और कभी-न-कभी कृपा कर उसका निवारण करेगा ही। पर आज मेरी आखिरी घड़ी आ गयी, और तू अब भी चुप है, जैसे कुछ हुआ ही नहीं ! ठाकुर, तुझसे मेरी कोई शिकायत नहीं, क्या तेरी मर्यादाको यह शोभा देता है, कि तेरा एक भक्त अपनी आत्मा पर कर्जका लांछन लियेही मर जाय ? नहीं-नहीं, ठाकुर, मेरे जीवन भरके पुण्य-अर्जन पर इस दो आनेके कर्जका कलंक लगनेसे मेरी रक्षा कर। इस महा धर्म-सङ्कटसे मेरी आत्माको मुक्त कर।' कहकर अत्यधिक आवेशके कारण मूर्त्तिके चरणोंपर उसने सिर पटक दिया। दुर्वलता तो थी ही, सिरपर चोट लगनेसे वह विक्षिप्त हो गया।

वह इस विक्षिप्तावस्थामें घंटों पड़ा रहा। यह अवस्था मृत्युके पहलेकी अवस्था थी। बुझनेके पहले एक बार जैसे दीपकी शिखा फड़क उठती है, उसी तरह साधुकी चेतना भी एक बार लौटी। उसकी डूबी हुई आत्माकी गहराइयोंमें भी जैसे वही ऋणकी बात गूंज रही थी। उसने बंधी मुट्ठीकी ओर एक बार पथराई आंखोंसे देखा, और वह बड़बड़ाता उठा—'ठाकुर, तेरे भोग लगानेके समयतक मैं जीवित न रहूंगा। ये चार आने बनियेको दे, मैं उसके ऋणसे उऋण होकर ही जीवन-त्याग करूंगा। तेरे भक्तने कितने ही दिन उपवास किये, आज एक वक्त तू अपने भक्तकी मृत्युपर उपवास कर लेना।' किन्तु अभी उठ भी न पाया था, कि वह गिर पड़ा। पिंजड़ेका आकुल पंछी उड़ गया।

(३)

सन्ध्याको आरतीके समय भक्त लोग जब पहुंचे, तो देखा, साधु ठाकुरजीके चरणोंमें मरा पड़ा था। उसके हाथ फैले हुए थे। एककी हथेलीपर चार आने पैसे पड़े हुए थे।

गांव भरमें शोर हो गया, कि बाबा मर गया। बनियेको जब खबर मिली, तो वह अपनी स्त्रीसे बोला—'सुना कुछ ? बाबा मर गया। उसपर मेरे चार आने उधार रह गये। जरा दुकानपर तू बैठ, देखें, शायद कुछ हाथ लग जाय।' कहकर वह धोती संभालता साधुकी झोपड़ीकी ओर दौड़ा।

साधुकी झोपड़ीमें लोग चन्दा करके साधुके कफन इत्यादिके प्रबन्धकी बात तै कर रहे थे, कि बनिया उनके पास आ खड़ा हुआ, और बोला—'क्यों, भाई, बाबा मर गये ?'

एकने कहा—'हां, भाई, मर गये। ऐसा सच्चा साधु मैंने कहीं भी नहीं देखा। ठाकुरकी पूजा छोड़कर इसने संसारकी किसी बातसे कोई मतलब न रखा।'

'ओफ।' बनियेके मुंहसे जान-बूझकर निकल गया।

'अब दुःख करनेसे क्या हो सकता है, भाई ?' उसी आदमीने कहा।

बनियेने दुःख भरे जैसे स्वरमें कहा—'मुझे दुःख इनके मरनेका नहीं है भाई। साधु-संन्यासीका क्या मरना, क्या जीना। दुःख तो मुझे इस बातका है, कि इनके जीवित रहते हो मैं इन्हें उऋण न कर सका। मेरे चार आने पैसे इनपर रह ही गये।'

पास ही खड़ा एक दूसरा आदमी, जो उसकी बात सुन रहा था, बोला—'अच्छा, तो आपके चार आने पैसे बाबा पर कर्ज रह गये थे। कहीं वही पैसे तो बाबाके हाथमें नहीं हैं ? अच्छा हुआ, कि आप आ गये। अब तो आप ये पैसे ले, बाबाको उऋण कर दें, नहीं तो इनकी आत्मा ऋणके बन्धनमें बंधी ही रहेगी।' कहकर उसने साधुके उस हाथकी ओर संकेत किया, जिसमें पैसे पड़े थे।

बनियेने देखा, तो आंखें झपकाने लगा। जी में आया कि पैसे ले ले, पर उसका साहस उसका साथ न दे सका। किसी शङ्कासे वह कांप-सा उठा। आंखें उठीं, तो ठाकुरकी मूर्त्तिपर दृष्टि पड़ गयी। उसे लगा, कि ठाकुरकी आंखोंसे कोपकी अग्नि निकल रही है। वह एक पग पीछे हट गया।

'क्यों, आप बाबाको उऋण क्यों नहीं करते ?' एकने कहा। बनिया संभला, फिर ही-ही हंसकर अकिंचन-सा बन बोला—'इनके कफनके लिये आप लोग चन्देकी बात कर रहे थे न ? उसीमें ये चार आने भी मेरी ओरसे दान ले लें ! ही-ही।'

———

अन्तर्राष्ट्रीय राजमञ्च और ब्रिटेनकी भारत-नीति

श्री रतनलाल जोशी एम० ए०

भारतीय स्वातंत्र्यकी प्राप्तिमें जनताके सशक्त तकाजों और आन्तरिक दबावको कभी भी नगण्य नहीं समझा जा सकता; किन्तु इस सत्यको भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि स्वातंत्र्य-अर्जनकी दिशामें ब्रिटेनने जब-जब और जैसा भी कुछ भारतको देना स्वीकार किया उसमें जितना उसका औदार्य्य और जनमतका दबाव समझा जाता है उतना वह नहीं है अपितु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिको परिवर्तित परिस्थितियां हो उसे कुछ दे देनेपर विवश करती रही हैं। अतः हमारा यह दृष्टिकोण पूर्णतया सह नहीं रहा है कि भारतीय राजनीति भारत-सरकार, भारत-मन्त्री और नौकरशाहीमें ही केन्द्रित है और बाकी दुनियाकी राजनीतिक प्रगतिसे उसका कोई सरोकार नहीं है। कांग्रेसमें एक इसी विचार धारासे प्रेरित पक्ष है जो यद्यपि आज निःशक्त हो चुका है किन्तु भूतकालमें इस पक्षने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिकी दिशामें प्रवृत्त राष्ट्रीय प्रगतिको काफी अवरुद्ध किया है। राजनीतिका मार्ग पकड़कर आज सारे संसारकी बौद्धिक प्रवृत्तियां विश्वैक्यकी दिशामें द्रुतगतिसे बढ़ती जा रही हैं—चाहे आजके मानवको यह अनुभव होता हो या नहीं। साथ ही यह भी हुआ है और आज भी हो रहा है कि मानवैक्यकी राहपर बढ़नेवाली इन प्रगतियोंपर संकुचित स्वार्थपरता और शोषणके ठेकेदारोंने अपना अधिकार जमाया है और मानवताके अनिन्द्य उद्देश्योंको कलुषित किया है। आजकी प्रभुत्व-प्रसारोन्मुख अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिपर ऐसे ही विषैले मंतव्योंका अधिकार है।

कांग्रेसका अभाव—

भारत-हितैषी अमेरिकनोंकी यह धारणा आजकी परिस्थितियोंमें शत-प्रतिशत सत्य है कि यदि भारतकी राष्ट्रीय कांग्रेस अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें भी उतना ही ओजस्वी व्यक्तित्व बना पाती जितना उसने अपने आन्तरिक जनमतमें बनाया है तो भारतको स्वतन्त्रताके उपार्जनमें इतना लम्बा समय नहीं लगता। इस सत्यकी अनुभूतिके साथ ही पंडित जवाहरलाल नेहरूकी व्यक्तिमता सम्मुख आती है जिन्होंने सबसे पहले भारतके राष्ट्रीय प्रश्नको अन्तर्राष्ट्रीय राजमंचकी पार्श्व भूमिमें देखनेपर जोर दिया है। इसके साथ ही कांग्रेसके उन नेताओंकी स्मृति भी आंखोंमें भूल जाती है जिन्होंने पंडितजीकी 'अन्तर्राष्ट्रीयता' को 'बे-सिर-पैरकी बातें' और 'दिवा-स्वप्न' कहकर मखौल उड़ाया था और जो चेतावनियां दिया करते थे कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रासंगिकता प्राप्त करनेकी धुनमें कांग्रेस अपने असली ध्येयको खो बैठेगी। स्वयं गांधीजी भी इसी धारणाकी ओर ज्यादा प्रवृत्त थे—उन्होंने 'हरिजन' के एक लेखमें इस गलतीको स्वीकार भी किया है। अभिप्राय यह है कि इस संकुचित दृष्टिकोणसे भारतको बड़ी क्षति उठानी पड़ी है और कूपमंडूकताके जो परिणाम आजकी दुनियामें हो सकते हैं वे सब भारतको झेलने पड़े हैं। वस्तुतः यह 'समुद्र-पार नहीं जाने' की पौराणिक निषेधाज्ञाकी परम्परा थी जो आज समाप्त हो गयी है। इसका सारा श्रेय समाजवादी विचार-धाराको है। आज हमें अपने अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोणको बड़ी तेजी और सतर्कतासे विस्तृत करना होगा क्योंकि सारे संसारकी राजनीति आज एक केन्द्रमें समाती जा रही है।

एशियाका शोषण—

पिछले चार सौ वर्षोंसे यूरोपने एशियाका व्यापक शोषण किया है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि यूरोपकी शोषक जातियां संस्कृति या सभ्यताकी दृष्टिसे एशियाके निवासियोंकी अपेक्षा अधिक परिष्कृत थीं। वस्तु-स्थिति इसके विपरीत थी। हां, उनमें रक्त-तृष्णा और हिंस्र-वृत्तियां अपेक्षाकृत अधिक प्रबल थीं। जब पुर्तगीज सबसे पहिले एशियामें प्रविष्ट हुए तो वे निरे हिंस्र लुटेरे थे जिनके पास बारूद और बन्दूकें थीं। शिक्षा और विराट् जन-सम्पर्कने अब श्वेत जातियोंके पाशविक पक्षको प्रच्छन्न कर दिया है

किन्तु उनकी संस्कारगत विशेषता में अभीतक कोई परिवर्तन नहीं आ पाया है। इंडोनेशियामें जो नरमेध किया गया है, और भारतके पुर्तगीज गोआमें जो नृशंसताका परिचय दे रहे हैं उससे यह सत्य प्रमाणित हो जाता है। श्वेत जातियों के रक्तमें मौलिक रूपसे विद्यमान हिंसाका सबसे ज्वलन्त प्रमाण आजका हिरोशिमा और नागासाकी है। ऐसा सर्व-नाश एशियाकी जातियां नहीं वरन् यूरोपीय परम्पराकी जातियां ही कर सकती हैं। सभ्यता और शिक्षामें पर-मोन्नत कहे जानेवाले अमेरिकनोंने जब यह नारकीय कृत्य कर दिखाया तो अन्य पिछड़ी श्वेत जातियां इस प्रसंगमें कितनी दुर्बल हो सकती हैं यह आसानीसे समझा जा सकता है।

रूस-जापान सन्धि—

किन्तु वैज्ञानिक उत्कर्षने ज्यों-ज्यों संसारके सब देशों-को परस्पर-निर्भर और अन्योन्याश्रित किया त्यों-त्यों लोकमतके प्रति श्वेत जातियोंमें संकोच आता गया। वे लोक-निन्दा और उपेक्षासे डरने लगीं। ब्रिटेनके निवा-सियोंमें भी इसी क्रमसे मानसिक परिवर्तन हुआ है जिसका प्रभाव उनके द्वारा संचालित साम्राज्यकी प्रगतिपर भी पड़ा है।

राजनीति अंग्रेजोंकी रक्तगत विशेषता है। समस्त श्वेत जातियोंमें राजनीतिके सर्वांगीण व्यक्तित्वको सफलता-के साथ अंग्रेजोंने ही साक्षात्कार किया है। इस विशेषताने उन्हें पराभव और पतनके अवसरोंपर आत्मरक्षाकी प्रकृत जागरूकता भी दी है। इस लिये यद्यपि आज उन्होंने सर्वस्व खो दिया है किन्तु उनका मेरुदण्ड पूर्ववत् ही दृढ़ है और मन, कर्म एवं वचनोंमें वही परम्परागत धैर्य, नीति और चातुर्य्य हैं।

५ सितम्बर, १९०५ एशियाके इतिहासकी चिर-स्मरणीय तिथि रहेगी! अमेरिकाके तत्कालीन प्रेसीडेंट रूज़वेल्टके प्रयत्नोंके फलस्वरूप इस तारीखको रूस-जापान-की पोर्टस्माउथमें सन्धि हुई थी। महा प्रतापी जारकी सेना और जहाजो बेड़ा जापानियोंके हाथों पूरी तरह पराजित हो गया था और सारे श्वेत-विश्वमें एक तहलका मच गया था। एक रंगीन जातिका पराक्रम किसीको सहन नहीं हो रहा था। अमेरिकाके मध्यस्थ बननेका एक कारण यह भी था।

एसियाका जागरण—

यद्यपि गोरी जातियोंके अनुचित दबावके कारण जापानको अपनी विजयका पूरा लाभ नहीं मिल सका किन्तु उसकी विजयने टोकियोसे फारसकी खाड़ीतक राष्ट्रीय शौर्यकी प्रेरणाएं बद्धमूल कर दीं। एशियाका विशाल महा-द्वीप अंगड़ाई लेकर उठा। 'एशिया एशियावासियोंके लिये' का नारा इसी समयसे प्रारम्भ हुआ जिसे बादमें अपने ही पड़ोसियोंपर आक्रमण करनेवाले जापानने अपने साम्राज्य-वादी स्वार्थोंके लिये उपयोगमें लिया।

एशियाके अन्य देशोंकी भांति भारतपर इस ज्वरका प्रभाव दूसरे ही रूपमें हुआ। देशके नवयुवकोंकी मनः-स्थितिमें विदेशी शासनके प्रति प्रतिरोधकी एक तीव्र लहर उठी। विदेशियोंके बहिष्कारके साधन ढूंढे जाने लगे। राष्ट्रीय सम्मानके अनुभवका यह श्रीगणेश था।

कांग्रेस अनेक बाधाओंको पार करते हुए आगे बढ़ रही थी। नौकरशाही और गोरे शासकोंने कांग्रेसका परोक्ष दमन शुरू कर दिया था। दक्षिणी-पश्चिमी भारतमें लोक-मान्य तिलकने क्रान्तिका जो शंख फूंका था उसकी प्रति-ध्वनि पेशावरसे लेकर रंगूनतक गूंज रही थी। १८९५ में लोकमान्यने शिवाजीका स्मृति-दिवस मनाकर राष्ट्रीय उत्सवोंके मनानेकी परम्परा प्रचलित की। इस समयतक कांग्रेस एक निर्दोष सुधारवादी संगठन था। अतः लोक-मान्यका राष्ट्रवाद राजनीतिकी दिशामें सबसे पहला प्रयत्न था।

क्रान्तिकारी संस्थाएं—

व्यापक राष्ट्रीय चेतनाके अभावमें आतङ्कवादके आधार पर वैयक्तिक शौर्यकी लहर उठी। सन् १९०५ में आतङ्क-वादकी योजनाएं कार्यान्वित की जाने लगी थीं। पहले बम बनानेका प्रयत्न किया गया किन्तु उसमें सफलता नहीं मिली। आतङ्कवादियोंने अपनेमेंसे एक व्यक्तिको पेरिस भेजा। १९०८ में वह वापस लौटा और कलकत्ताके उप-नगर मानिक तल्लामें एक बम-फैक्टरी स्थापित की गयी। कुछ समय बाद पुलिसने फैक्टरीपर कब्जा कर लिया।

आतङ्कवादियोंने पुलिससे प्रतिशोध लिया। भेद खोलनेवाले एक व्यक्तिको दो बन्दियोंने अलीपुर जेलमें गोलीसे उड़ा दिया। तीन अफसरोंको भी इसके कुछ समय बाद ही मार डाला गया। आयर्लैण्ड और जापानसे भारतीयोंको प्रेरणा और सहायता मिल रही थी। उधर चीनमें भी क्रान्ति संस्थाएं कायम हो रही थीं—उनका आधार भी आतङ्कवाद ही था। सन् १९०६ में ढाकामें जो 'अनुशीलन-समिति' बनी उसपर तो जापानी प्रभावकी पूरी पूरी छाप थी। १९०७ में पंजाबमें लाला लाजपतराय और अजीत सिंहने सन् ५७ की क्रान्तिकी अर्द्ध-शताब्दी मनायी। सारा पञ्जाब प्रज्वलित-सा हो उठा। लाहौर और रावलपिंडीमें गोरोंपर हमले किये गये। अंग्रेजोंके सामने गदरकी तस्वीर खिंच गयी। दोनों नेताओंको बन्दी बनाकर निर्वासित कर दिया गया। उधर चीनमें सन् १९११ में भयङ्कर क्रान्ति हुई जिसकी लपटोंसे सारा एशिया सुलग उठा। भारतपर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। लोगोंको दमन और निरंकुश शोषणसे मुक्त होनेके नये साधन मिलने लगे। 'लाल-बालपाल' के विचार कांग्रेसके दक्षिण पक्षको भयभीत करने लगे थे।

साम्राज्यकी चिन्ता—

इसी समय अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियोंमें बड़ी तेजीसे परिवर्तन आ रहा था। तुर्कोंने यूनानियोंको पराजित कर दिया था। इस समाचारने सारे मुस्लिम जगतमें हर्ष और स्वाभिमानकी लहर बहा दी थी। पूर्वीय देशोंकी जनता गोरोंकी 'अजेयता' के अन्ध-विश्वासको छोड़ती जा रही थी। बोअर-युद्धमें इङ्गलैंडने बड़ी दुर्गति झेली थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि ब्रिटेन दूसरी श्रेणीकी शक्ति होता जा रहा है और अमेरिका और जर्मनी उसके प्रथम श्रेणीके अन्तर्राष्ट्रीय प्रभुत्वको छीनकर आगे बढ़ते जा रहे हैं। अंग्रेजोंको जर्मनीकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शक्तिसे भय हो गया था। उधर अफगानिस्तानमें जारकी कूटनीति अंग्रेजोंको भारतके विषयमें चिन्तित कर रही थी और मध्य पूर्व एवं तुर्कीमें जर्मनोंका प्रभाव गहरा होता जा रहा था। जर्मनीके कूटनीतिज्ञ जापानतक पहुंच गये थे और उसे प्रत्येक प्रकारकी सैन्य-संगठन सम्बन्धी सहायता दे रहे थे।

एशियाकी आन्तरिक अवस्था भी अंग्रेजोंसे छिपी हुई नहीं थी। काहिरासे लेकर पेकिंग तकका जन-समुदाय क्षुब्ध होता जा रहा था। अंग्रेजोंको अपने भारतीय साम्राज्यकी चिन्ता हुई। लार्ड मार्ले सन् १९०५ में भारत मन्त्री बना और लार्ड कर्जनकी असन्तोष-जनक नीतिमें परिवर्तन करनेके लिये लार्ड मिंटो वायसराय बनाया गया। मिंटो कनाडाका गवर्नर-जनरल रह चुका था। किन्तु लार्ड मार्ले सबसे अशुभ भारत-मन्त्री साबित हुआ। मार्ले-मिंटो सुधारोंमें उसके मनका विक्षेप नग्नरूपसे स्पष्ट है। वस्तुत: उसने लार्ड कर्जनकी परम्पराको ही आगे बढ़ाया।

मार्लेकी सुधार-योजना—

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिकी इन परिस्थितियों और एशियाके व्यापक असन्तोषने ही मार्ले-मिंटो सुधारोंको घोषित करनेके लिये ब्रिटेनको विवश किया था। भारत एवं आयरलैंडमें सुधारोंको स्थूल रूप देनेके प्रसंगमें पार्लमेंटमें कई महीनोंतक वाद-विवाद होता रहा था। स्वयं लार्ड मार्ले सुधारोंके खिलाफ था। सुधारोंकी पार्श्व-भूमिपर प्रकाश डालते हुए उसने घोषित किया था :—

"यदि मैं भारतमें पार्लमेंटरी प्रणालीकी स्थापना करनेका प्रयत्न कर रहा हूं, या यदि यह कहा जा सके कि सुधारोंका यह प्रकरण प्रत्यक्ष या आवश्यक रूपसे भारतमें पार्लमेंटरी संस्थाको जन्म दे रहा है तो मैं यह कहूँगा कि मेरा उससे कोई सरोकार नहीं है।"

इस घोषणासे लार्ड मार्लेके सुधारोंका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि सुधारानुसार निर्मित धारा-सभाओंसे देशमें कोई जनतन्त्रीय शासन स्थापित नहीं हो रहा था और उन्हें केवल अपनी सलाहें देनेका ही अधिकार-भर था तो भी अंग्रेजी सरकारने इस बातका पूरा ध्यान रखा कि एक सम्प्रदाय दूसरेके विरुद्ध खड़ा किया जाये और, जमींदारों एवं व्यापारियोंको मनचाही सीटें दी जायें जिससे सुधार-लाभ पहुंचानेके बजाय भारतके राष्ट्रीय जीवनमें साम्प्रदायिक एवं वर्ग-संघर्षके गरलको सींचनेका काम करें।

जनतन्त्रकी हिलोर—

प्रथम महायुद्धके बाद जनतन्त्रकी प्रलम्ब हिलोर यूरोपमें एक छोरसे दूसरे छोरतक फैल गयी। क्रान्तिकारी

विचार-धाराकी दृष्टिसे वह जनतन्त्र-प्रणालीका आवेग था जो सारे पाश्चात्य संसार पर तो छा ही गया था किन्तु जिसकी प्रतिक्रिया एशियाकी राष्ट्रीयतापर भी काफी प्रगाढ़ हुई थी। जनतन्त्रात्मक सिद्धान्तोंने आत्म-निर्णयका विवादात्मक सिद्धान्त भी अपने बहावके साथ लपेट लिया था और प्रत्येक देशकी राजनीतिक समस्याके हलके लिये वह अचूक समझा जाने लगा था। 'मत्स्य न्याय' कहा जाने लगा था और श्वेत जातियोंके राजनीतिवेत्ताओंने यह निर्णय दे दिया था कि इससे प्रासंगिक सिद्धान्त बीते युगके गर्तमें समा गये हैं तथा पाश्चात्य सभ्यता काफी परिष्कृत हो चुकी है। सन् १९२१ में वाइकाउंट हाल्डेन (Viscount Haldane) ने युद्धोत्तर मनोवृत्तिपर अपना निर्णय देते हुए लिखा था:—

"तलवारसे शासन करना उत्तरोत्तर असम्भव होता जा रहा है। महायुद्धमें जर्मनीकी सैनिक असफलता इसका अन्तिम एवं सर्वमान्य प्रदर्शन था। आजके युगमें तो समझौते और संगठनका परस्पर गठ-बन्धन है।"

सन् १९१९ सेही ब्रिटेन जैसे रूढ़ि प्रिय देशमें भी उच्चवर्गतकमें ऐसी मनोवृत्ति पायी जाती थी।

श्वेतोंका 'मूढ़-स्वप्न'—

जार कैसर, अस्ट्रियाका सम्राट किंग एडवर्ड और शाह फर्दिनेंद जैसी परम्परागत शक्तियोंके राजमुकुट भूलुंठित हो चुके थे और यूरोप जनतन्त्रोंका अखाड़ा बन गया था ये विराट शक्तियां, परिवर्तनकी एक ही लहरमें दब गयी थीं और ब्रिटेन एवं अमेरिका ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिके 'महाप्रभु' अवशेष बच गये थे। रूसकी लाल-क्रांति और सोवियत शासन प्रणालीने जहां एक ओर पूंजीवादी जगतको कपा दिया था वहां वर्गवादकी भित्तिपर नयी राजनीतिक समस्याएं भी खड़ी कर दी थी। ब्रिटेनके राजनीतिज्ञोंके सामने अपने साम्राज्यवादको जर्मन साम्राज्यवादके दुर्भाग्यसे बचानेकी आतुरता भी इन्हीं परिवर्तनोंने पेश कर दी थी।

पूर्वके देशोंकी जनताके भविष्यका जो चित्र ब्रिटेनके जन-समाजके सामने था वह टुकड़े-टुकड़े हो चुका था श्वेतांग जातियोंकी धारणा थी कि पूर्वीय देशोंकी जनता राजनीतिक दृष्टिसे सदैव प्रसुप्त ही रहेगी—युद्धोत्तर एशिया के इतिहासने इसे मूढ़-स्वप्न साबित कर दिया था। क्यों कि सारे पूर्वीय देशोंमें महायुद्धने एक ऐसी प्रबल राष्ट्रीय चेतना पैदा कर दी थी जैसी ठीक सौ वर्ष पूर्व नेपोलियेनिक युद्धोंने यूरोपमें की थी। भारत, सिलोन, बरमा, मेसोपोटामिया, मिस्र, फिलस्तीन आदि देशोंमें ऐसी घटनाएं घट रही थीं जो व्यक्त करती थीं कि यदि ब्रिटेनके साम्राज्यवादको अधिक मधुर, सहिष्णु और आकर्षक नहीं बनाया जायेगा तो ये राष्ट्र चिन्गारीके रूपमें साम्राज्यसे अलग हो जायेंगे और जारके साम्राज्य या 'कैसरके किले' की भांति ब्रिटिश साम्राज्य भी बिखर जायेगा।

असहयोगसे भय—

इस अन्तर्राष्ट्रीय पार्श्वभूमिमें ब्रिटेन भारतके भविष्यके विषयमें नये मंतव्य गढ़ रहा था। विशाल साम्राज्यको अपने आधिपत्यमें रखनेके लिये ब्रिटेनको अमेरिकाके आर्थिक सहयोगकी अपेक्षा थी। अतः अमेरिकन जनताकी जनतन्त्रीय मनोवृत्तियोंको संतुष्ट करनेके लिये उसे भारतमें अपने निरंकुश शासन-विधानमें कुछ परिवर्तन करने आवश्यक थे। सन् १९२१ में प्रकाशित जोसिया सी० वेजवुडकी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि इण्डो-ब्रिटिश कामन्वेल्थ' तत्कालीन अंग्रेजी जन-समाजकी भारत-विषयक भावनाओंका यथार्थ प्रतिबिंब है। भारतके विषयमें कर्नल वेजवुडने लिखा है:—

किन्तु नये राष्ट्रमण्डलके व्यापक कार्यके लिये और विश्वैक्य एवं शान्तिकी बुनियादके लिये भारतका सहयोग आवश्यक है। भारतके असहयोगसे प्राचीरकी आधारशिला ही उखड़ जाती है। हमें एशियाकी आवश्यकता है। एशियामें ही शान्तिके लिये खतरा है। मेरी सम्मतिमें यथार्थ खतरा इतना बड़ा है कि सुरक्षाके साथ-साथ न्याय एवं विश्व शान्तिके लिये भी भारतको शीघ्र आना ही चाहिये।"

चेम्सफर्ड सुधार—

इसी वातावरणमें मांटेग्यू चेम्सफर्ड सुधारोंकी घोषणा की गयी थी और तत्कालीन भारत मन्त्री स्वयं सरकारकी व्यवस्था देखनेके लिये भारत आये थे। इन सुधारोंमें भार

तीयोंको रञ्चमात्र भी राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर सकनेकी गुंजायश नहीं थी। शासनके समस्त महत्वपूर्ण विभाग 'सुरक्षित विभाग' के रूपमें भारतीयोंकी पहुंचसे अस्पृश्य रक्खे गये थे और ब्रिटिश अफसरोंको ही उनका एकाधिकार सौंप दिया गया था। अवशिष्ट विभाग जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य भारतीयोंको सौंपे गये थे। श्रीमती एनी बेसेन्टने इन सुधारोंकी आलोचना करते हुए कहा था कि "इन सुधारोंका देना ब्रिटेनके लिये और इन्हें स्वीकार करना भारतीयोंके लिये लज्जाकी बात होगी।"

एशियाकी अग्नि-शिखाएं—

एशिया असन्तोषसे तिलमिला रहा था। मिस्रसे लेकर कोरिया तक आग सुलग रही थी। ब्रिटेनके सामने गांधीजीके नेतृत्वमें भारतके राष्ट्रवादकी भयावनी तस्वीर थी। यूरोपकी साम्राज्यवादी श्वेतांग जातियां देश-कालकी परिवर्तित परिस्थितियोंको नहीं देख पा रही थीं। भारतमें घोर दमन चल रहा था। पंडित मोतीलाल नेहरूके नेतृत्वका दशक चल रहा था। इसी समय सन् १९२७ में 'साइमन कमीशन' भारत आया। मोतीलालजीने इस अवसरपर बड़े ओजस्वी नेतृत्वका परिचय दिया। अंग्रेजों द्वारा किये गये 'भारतीयोंकी वैधानिक असमर्थता' का उत्तर मोतीलालजीने नेहरू-रिपोर्ट बनाकर दिया जिसे देखकर ब्रिटेनके टोरी भी दङ्ग रह गये थे।

गोरोंका दमन—

चीनमें एक ओर डा० सनयात सेन द्वारा प्रवर्तित राष्ट्रवाद अपनी रचनात्मक रूपरेखा बना रहा था और दूसरी ओर समवेत रूपसे गोरी जातियां उसके अर्थ-स्रोतको चूस रही थी। चीनकी राष्ट्रीयताके दमनके लिये जहाज भर-भर कर गोरे सैनिक चीनी बन्दरगाहपर उतर रहे थे। सन् १९२७ और १९२९ में ईस्ट इण्डीजके राष्ट्रीय आन्दोलनोंको डचोंने जिस पाशविकतासे दबाया श्वेतांग जातियोंके इतिहासमें वैसा कलङ्क अन्यत्र दुर्लभ है। स्वातंत्र्य, समत्व और भ्रातृत्वके नारेपर क्रान्ति करनेवाले फ्रांसने इस 'धर्म-युद्ध' में मुक्त-हृदयसे सहयोग दिया। १९२९-३१ में हिन्द-चीनमें राष्ट्रीय विद्रोह हुए—उनके दमनमें फ्रांसकी फौजोंने स्त्री-बच्चोंपर जिस नृशंसताके साथ गोलियां बरसायीं उससे स्वयं फ्रांसकी जनता ही कांप उठी थी।

उधर यूरोप दिन प्रति दिन दिवालिया होता जा रहा था और अमेरिका सारे पाश्चात्य देशोंको ऋण देनेवाला साहूकार बन बैठा था। व्यावसायिक क्षेत्रमें प्रथम महायुद्धमें उसने वही स्थान प्राप्त कर लिया था जो नेपोलियनिक युद्धोंमें सौ वर्ष पूर्व ब्रिटेनने अर्जित किया था। अमेरिकाका प्रसिद्ध पूंजीपति हूवर प्रेसीडेण्ट मनोनीत हो गया था और सारी असंतुलित पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था चूर-चूर होनेके लिये अपने ही बनाये हुए पर्वतसे टकरानेका उपक्रम कर रही थी। सन् १९२९ में पाश्चात्य देशोंका आर्थिक सङ्कट अपनी चरम परिणतिपर पहुंच रहा था। रम्जे मेकडनल्डकी घोषणा और गांधी-इर्विन पेक्टकी यही मनोवैज्ञानिक भूमिका थी। सङ्कटापन्न ब्रिटिश साम्राज्यवादने आत्मरक्षाके लिये ही भारतीय नेताओंको गोलमेज-परिषद्में आमन्त्रित किया था।

डिक्टेटरोंका युग—

लेकिन छः महीने बाद ही अन्तर्राष्ट्रीय मामलेमें एक नया ज्वार आया। पुनर्निर्माणके लिये हरजानों और युद्ध-ऋणोंने उत्पादन, मजदूरी और सोनेको एक ही संकुचित प्रणालीमें सीमित कर दिया। प्रत्येक देशने अपनी राष्ट्रीय महत्वाकांक्षाओंकी तुष्टिके लिये चुंगी और व्यापारिक अवरोधको और भी कठोर कर दिया। सारे संसारमें फलतः आर्थिक विश्रृंखलता उत्पन्न हो गयी। जनतन्त्रमें जनताका विश्वास अचल नहीं रह सका। अधिनायकतन्त्र सब रोगोंकी अचूक औषध समझा जाने लगा। एक दलके स्वार्थमें सारे राष्ट्रीय स्वार्थोंको केन्द्रित करती हुई एक ओर सोवियत रूसकी शासन-प्रणाली अपना सुदृढ़ अधिनायकतन्त्र खड़ा कर रही थी। दूसरी ओर इटलीमें मुसोलिनी फासिस्ट प्रणालीकी निरंकुश समाज-व्यवस्था कायम कर रहा था और तीसरी ओर जर्मनीमें नाजी पार्टी अपनी कुटिल महत्वाकांक्षाओंको राष्ट्रीय समाजवादके नामपर स्थूल रूप दे रही थी। इन तीन निरंकुश सीज़रोंके अलावा यूरोपके राष्ट्रोंमें अनेक छोटे-छोटे सीज़र पैदा हो गये थे। तुर्कीमें कमाल पाशा, हंगेरीमें हार्थी, स्पेनमें प्रिमो डी रिवेरा

पोलैण्डमें पिल्सुड्स्की आदि इनमें काफी शक्तिशाली होते जा रहे थे। ब्रिटिश मनःस्थितिपर इस वातावरणका प्रभाव शुभ नहीं पड़ा। जनतन्त्रसे उसकी आस्था डावांडोल हो गयी और सम्मिलित प्रयत्नोंमें परिस्थितिपर काबू पानेके लिये राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना हुई। जिसमें टोरी दलने अधिनायकका काम किया।

सन् १९३५ का इण्डिया एक्ट इसी सरकारने बनाया था। टोरी अधिनायकत्वके सारे दोष उसमें विद्यमान है। सन् १९१९ के बाद धीरे-धीरे भारतीय शासन-विधानमें जो जनतन्त्रकी क्षीण झलक आती जा रही थी वह सर सेम्युअल होर एवं उसके साथियोंने सारी वहिष्कृत कर दी।

क्रिप्स—प्रस्ताव---

रंगून-पतनके चार रोज बाद ब्रिटेनके प्रधान-मन्त्री चर्चिलने क्रिप्स-मिशनकी घोषणा की थी। १४ अगस्त १९४१ को चर्चिल और रूजवेल्टके परस्पर विचार-विनिमयने अटलांटिक-चार्टरको जन्म दिया था। साम्राज्यवादी स्वार्थोंके परित्याग और पशुबलके वहिष्कारकी इस घोषणामें मूलभूत शर्तें थीं। पहली जनवरी १९४२ तक इस चार्टरपर २६ राष्ट्रोंने हस्ताक्षर कर दिये थे। उधर नाजी सेनाएं वोल्गातक बढ़ गयी थीं। दिसम्बर १९४१ में जापानने पर्ल-हार्बरपर आक्रमण बोल दिया था। इस प्रकार सैनिक और नैतिक दोनों रूपोंमें भारतके साथ न्याय करनेकी परिस्थितियां पेश हो गयी थीं और अमेरिकाके जनमतका दबाव ब्रिटेनपर गहरा होता जा रहा था। अमरीकी प्रतिनिधि फिलिप और जान्सनके स्पष्ट विवरण इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। किन्तु टोरी अधिनायकतन्त्र जिस परम्परामें पली थी उससे प्रतिकूल कैसे जाता? क्रिप्स-प्रस्तावोंमें जिस हाथसे जो दिया था उसी हाथसे निःसंकोच होकर ले भी लिया। अमेरिकाके जनमतको बहलाकर चुप करनेके लिये ही सब कुछ किया गया था। कांग्रेस इसे बादमें समझ गयी थी और पंडित जवाहरलालने अपनी प्रेस-परिषद्में इसको व्यक्त भी किया था।

ब्रिटेनकी विवशता—

सन् १९४७ तक अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियोंके तकाजे काफी स्पष्ट और सुगम हो गये थे। संयुक्त राष्ट्रके सिद्धांतोंको कार्यान्वित किया जाने लगा था और विश्व-प्रभुत्व-प्रतियोगिताके क्षेत्रमें रूस एवं अमेरिका ही सर्वप्रमुख रह गये थे। ब्रिटेन तृतीय श्रेणीकी शक्तिके रूपमें अपने जराग्रस्त साम्राज्यकी बागडोरको थाम नहीं पा रहा था। दूसरी ओर सारा एशिया नव-जागरणकी विद्रोहिणी चेतनामें प्रदीप्त हो उठा था। औपनिवेशिक शोषणको जीवित रखनेवाली सारी परिस्थितियां पराभूत हो चुकी थीं। ब्रिटेनको विश्वास हो गया था कि भारतको साम्राज्यके अन्तर्गत रखना असम्भव है। २० फरवरी १९४७ के प्रातः में प्रधान मन्त्री एटलीने जो घोषणा की थी वह इन्हीं सारी परिस्थितियोंके दबावका परिणाम थी। भविष्यमें भी भारत ब्रिटेनके सम्बन्धोंमें दोनोंके अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व ही निर्णायक साबित होंगे। आज तो सारा विश्व-राजतन्त्र ही अन्तर्राष्ट्रीय विचार धाराओंको शतरंज बना हुआ है—अतः भारत जो अभीतक इस दृष्टिकोणसे परे रहा उसे अब बड़ी द्रुतगतिसे इस दिशामें कदम बढ़ाना होगा। आज भारत जिस स्वातंत्र्यको प्राप्त करके इतना प्रसन्न है उसे इस दायित्वका भी ज्ञान होना चाहिये।

———

बन्धन दिये तो मुक्ति भी दो!

बांध शत शत बन्धनों में,
दुख दिया मधुमय क्षणों में,
वेदना को सह सकूं
ऐसी मुझे तुम शक्ति भी दो!
ऊब कर इस निखिल जग में,
डग-मगाते पैर मग में,
आज जग के कार्य में
इस हृदय को अनुरक्ति भी दो!
अति सरल विश्वास लेकर,
आंसुओं का अर्घ्य देकर,
मांगती बरदान
चरणों की मुझे चिर-भक्ति भी दो!

—सुश्री तारा पांडेय

हर नागरिकको रोजगार देना शासनका कर्त्तव्य है

प्रो० प्रेमचन्द मलहोत्रा

यद्यपि औद्योगिक देशोंमें शासन बेकारीके प्रश्नपर सदासे ही ध्यान देता आया है और बेकारोंकी सहायता करना अपना कर्त्तव्य समझता रहा है किन्तु प्रथम विश्व युद्धतक तो यह विचार व्यापक था कि बेकारीका दायित्व वयैक्तिक है। यदि कोई बेकार है तो यह उसकी अपनी गलती-का परिणाम है, वह प्रतियोगिताकी दौड़में पीछे पड़ गया है और यह उसका अपना अपराध है। जैसे-जैसे बेकारीके कारणोंको समझनेका प्रयत्न किया जाने लगा वैसे-वैसे यह स्पष्ट होने लगा कि आर्थिक व्यवस्था और विश्वकी आर्थिक प्रतियोगिताके सामने एक व्यक्तिका कोई बस नहीं चल सकता। उधर आर्थिक इतिहासके अध्यनसे यह ज्ञात हुआ कि पहले विश्व-युद्धके समयमें बेकारी लुप्त-सी हो गयी थी। और दूसरे विश्व-युद्धकी अवधिमें तो यह विश्वास और भी गहरा हो गया क्यों कि इस समयमें काम करनेकी अपेक्षा काम करनेवालोंकी न्यूनता अनुभव हुई। सोवियट रूसके बारेमें यह विश्वस्त रूपसे कहा जाने लगा कि १९३० में वहां बेकारीकी सहायतापर शासनको धन खरचनेकी आवश्यकता न रही क्यों कि वहांकी बेकारी दूर हो चुकी थी। रूसने जो आर्थिक योजनाको कार्य रूपमें परिणत किया उससे बेकारीका बिलकुल नाश हो गया। पर पूजीवादी देशोंका भी तो यही अनुभव था कि युद्धकी अवधिमें काम अधिक था और काम करनेवाले कम। क्योंकि गत विश्व-युद्धमें आर्थिक व्यवस्थापर शासन-का नियन्त्रण पर्याप्त रूपसे हो गया इससे यह सिद्ध होने लगा कि यदि शासन चाहे तो बेकारी दूर हो सकती है। पर अब यह प्रश्न उठा कि क्या युद्ध इस बेकारीको दूर करनेके लिये आवश्यक है? शान्तिकालमें क्या सरकार बेकारी दूर नहीं कर सकती? लड़ाईमें जिन पुरुषोंने अपने जीवनको जोखिममें डालकर देशकी सेवा की है क्या उनको शान्ति कालमें काम दिलवाना शासनका कर्त्तव्य नहीं है? उनको अपने-आपपर छोड़ना कृतघ्नता होगी।

१९४२ में मिस्टर बेवरिजने इङ्गलैण्डके लिये 'सोशयल सिक्युरिटी' की योजना निकाली। इस योजनाके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जो काम करनेको तैयार हो और 'सोशयल इन्शयोरेंस' के चलानेके लिये अपनी आयका कुछ अंश देता रहे उसको कमसे-कम इतनी आय बेकारीके अवसरपर जरूर मिलती रहे जिससे वह स्वस्थ दशामें रह सके और अपने कुटुम्बका पालन कर सके, बेकारीका कारण चाहे जो भी हो। 'सोशयल सिक्युरिटी' की नींव पूर्ण रोजगारपर है और जिस देशमें 'सोशयल सिक्युरिटी' को स्वीकार कर लिया गया है वहां पूर्ण रोजगार कायम रखना सरकारका स्वयं दायित्व हो जाता है।

वर्तमान युग विज्ञानकी उन्नतिका युग है। नयी कलों-का बहुत शीघ्र आविष्कार होता है। उत्पादनके साधन दिन प्रति दिन बदलते रहते हैं। नयी-नयी वस्तुओंके पैदा होनेसे पुरानी किस्मकी वस्तुओंके उत्पादकोंको बेकारीका सामना करना पड़ता है। फिर नये-नये आविष्कारोंके कारण औद्यो-गिक केन्द्रोंमें भी परिवर्तन हो जाता है। जो स्थान कभी रोजगारका गढ़ बना हो वह तब उजाड़ हो जाता है जब उस जगहका औद्योगिक महत्व नष्ट हो जाता है। इन सब शक्तियोंका व्यक्तिगत रूपसे सामना करना असम्भव हो जाता है. इस लिये इन कारणोंसे उत्पन्न समस्याओंका समाधान करना शासनका कर्त्तव्य हो जाता है।

बेकारीका सम्बन्ध व्यवसाय चक्कर [Trade Cycle] से है। कभी तिजारत तीव्र है तो कभी मन्दी। क्या यह जरूरी है कि तिजारतकी मन्दीका उपचार युद्धसे ही हो? कोई भी व्यक्ति व्यवसाय चक्करके भंवरमें फंसकर अपने-आप उससे मुक्ति नहीं पा सकता। शासनकी सहायता आवश्यक है।

बेकारी दूर करनेके लिये सारे देशका ध्येय होना चाहिये। हिटलरकी घृणाने उसकी शक्तिको नाश करनेके लिये एक ऐसा लक्ष्य पैदा कर दिया जिससे युद्धकी अवधिमें

बेकारी लुप्त हो गयी। हम बेकारीका नाश तभी कर सकते हैं यदि निर्धनता, बीमारी, अशुद्धता, अज्ञानता और बेकारी इन दैत्यपर युद्धकी घोषणा कर दें। प्रत्येक शासनका कर्त्तव्य है कि ऊपर कथित सामाजके शत्रुओंपर आक्रमण करें।

बेकारीका राजनैतिक पहलू उतना ही महत्व रखता है जितनाकी आर्थिक। कोई शासन चिरस्थायी नहीं रह सकता जिसने बेकारी पर काबू न पा लिया हो।

अब नागरिक अपने अधिकारोंके प्रति बहुत सचेत हो गये हैं। आर्थिक व्यवस्थामें क्रान्ति बेकारीका एक इलाज है जैसा रूसमें हुआ। पूंजीवाद व्यवस्थाके होते हुए आर्थिक योजनाके द्वारा बेकारी दूर की जा सकती है।

रोजगारीके प्रश्नके दो रूप हैं। एक तो बेकारीसे लड़ना और दूसरे उपयोगी रोजगारके लिये प्रबन्ध करना—ऐसा रोजगार जिससे देशकी उत्पादन शक्ति बढ़े।

बेकारी निम्नलिखित प्रकारकी हो सकती है:— [१] काम करनेवालेको काम नहीं मिलता, (२) अधूरी रोजगारी, काम करनेवालेको पूर्ण समयके लिये काम नहीं मिलता जैसे हमारे देशके किसान वर्षमें छः महीने बेकार रहते हैं, (३) अनुचित रोजगारी, जैसे डाक्टरको दफ्तर का काम करना पड़े, [४] वे रोजगारी जो "उन्नति" के कारण हो, जैसे नये कलोंके आविष्कारके कारण बेकारी उत्पन्न हो जाये।

शासनको सब प्रकारकी बेकारीसे युद्ध करना पड़ेगा। पूर्ण रोजगारकी दशामें काम करनेवालोंकी अपेक्षा काम अधिक होता है। उचित वेतनपर काम मिलता है। आवश्यकता पड़नेपर एक कामको छोड़कर दूसरे कामको ग्रहण करनेमें कमसे कम समय लगता है जबकी शासनने नये कामकी शिक्षा देनेकी उचित व्यवस्था की हो।

जिस शासनने बेकारीकी समस्याका समाधान कर लिया है उस देशमें शान्ति और वैभवकी गहरी नींव रखी गयी है।

—०—

भावुकता

मेरी भावुकता से जग का तो हित हो ही जायेगा।
राग जगाता फिरता हूँ मैं अभी यहां की गली-गली में
और खोजता फिरता हूं मकरन्द यहां की कली-कली में

मेरे इस गुंजन से कुछ तो मधु संचित हो ही जायेगा।
मेरी भावुकता से जग का कुछ तो हित हो ही जायेगा।

व्यर्थ नहीं पूजा करता हूँ मैं अपनी एकाकिनि सुधिको
व्यर्थ नहीं लहराता रहता अपने अन्तर के अंबुधि को

धीरे-धीरे, सरल - सुधाकर प्रतिबिम्बित हो ही जायेगा।
मेरी भावुकता से जग का कुछ तो हित हो ही जायेगा।

व्यर्थ नहीं देखा करता हूं नभ के नक्षत्रों की पांतें
व्यर्थ नहीं करता रहता हूँ अम्बर के तारों से बातें

धीरे-धीरे, नव-भावों का भानु उदित हो ही जायेगा!
मेरी भावुकता से जगका कुछ तो हित हो ही जायेगा!

व्यर्थ नहीं बिखराया करता परिवर्त्तन के रंग निराले
व्यर्थ नहीं रहता आशा की तूली नूतन नित्य संभाले

धीरे-धीरे, मानस-पट पर 'प्रिय' चित्रित हो ही जायेगा!
मेरी भावुकता से जगका कुछ तो हित हो ही जायेगा!

व्यर्थ नहीं सहता फिरता हूं जीवन में निस्सीम-व्यथायें
व्यर्थ नहीं कहता फिरता हूं जगसे पीड़ा भरी कथायें

धीरे-धीरे, दुखभी सुखमें परिवर्तित हो ही जायेगा!
मेरी भावुकता से जगका कुछ तो हित हो ही जायेगा!

—श्री शीलचतुर्वेदी

नागार्जुनकोण्डाकी भव्य कलाएँ

श्री गजानन वर्मा, विशारद



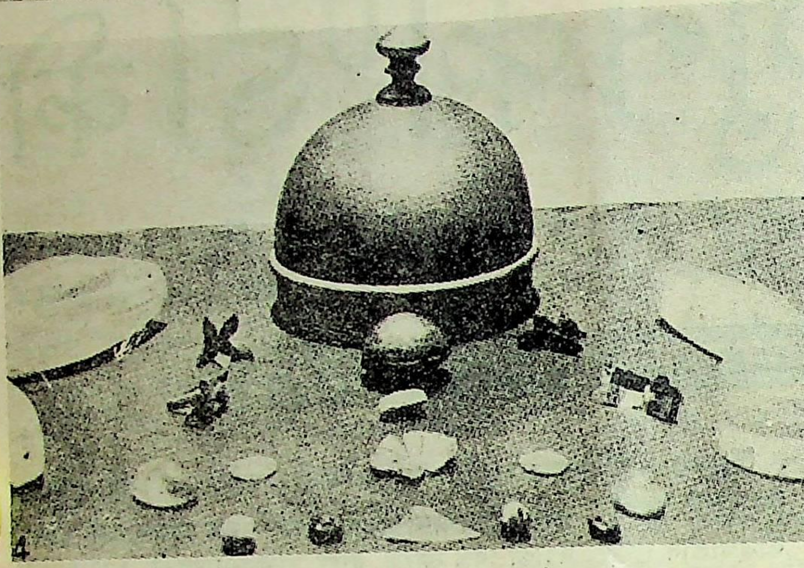
लेखक

लगभग दो हजार वर्ष पूर्वकी बौद्धकालीन सुन्दर शिल्प - कलाके अमूल्य नमूने नागार्जुनगोण्डा में, कांटोंकी बागरोंसे घिरे हुए खुले मैदान में पड़े हैं। कृष्णा नदी के किनारेपर—जो बौद्ध लोगोंकी तमाम बातोंका केन्द्र था,हमें कई अमूल्य कलात्मक प्राचीन खण्डहर मिलते हैं। और नागार्जुनकोण्डा इन सब बौद्ध खण्डहरोंसे ठीक उत्तरकी ओर स्थित है। समयके अनुसार खुदाई करनेपर कई वर्षोंकी पुरानी कला-कृति लेकर यह प्रकट हुआ है और हमारा ध्यान इस प्रकार आकर्षित करता है मानों यह इसके आस पास वाले सब स्मारकोंमें श्रेष्ठ है। उसके अनेक स्मारक चिन्ह, चैत्य स्तूप, बिहार शिलालेख और मूर्त्तियोंकी खोज करनेपर हमें यह बात विदित हुई है। इसके शिलालेखोंसे यह ज्ञात होता है कि कई साधु और सम्राट इसकी कला-वृद्धि करनेमें एक दूसरेसे स्पर्द्धा करते थे क्योंकि इस नगरकी ख्याति दूर-दूर देशों, जैसे—यूनान, चीन, काश्मर, गान्धार, तूशाली, अपरान्ता, वंग, वनवासी, ताम्बपानी और सीलोनतक फैली हुई थी। इन सब स्थानोंके कला रसिक भक्त दर्शक कृष्णानदीके द्वारा इसस्थानपर आये क्योंकि इस नगरका प्रवेश भूमि-मार्गके द्वारा उस समय कठिन रहा होगा। नदीकी एक नहरके द्वारा दक्षिण-भारतकी आरकियॉलाजिकल सोसाइटीके भूतपूर्व निरीक्षक मि० लांगहर्स्ट उस स्थानपर जानेमें सफल हुए हैं जिस स्थानपर उस समय यह नगर स्थित था।

इन खोजे गये स्मारकोंमें 'महाचैत्य' नामक अवशेष बहुत महत्वपूर्ण है। उसकी साईज और डिजाईनकी सादगी की तुलना सीलोनके अनुराधापुरके बड़े-बड़े दगबा (Dagbas) से की जा सकती है। पहाड़ीपर साधुओंके उपयोगके लिये एक विहार था जहां अब यात्रियोंके लिये एक छोटा-सा बंगला बना दिया गया है। इस विहारके कुछ खण्डोंसे पता चलता है कि वहां कोठरियां थीं जिनमें भिक्षु लोग रहा करते थे। इमारतके बीचमें ऊंचाईपर प्रार्थना भवन है। इसके अन्दर चारों तरफ एक रास्ता बना हुआ है। सीलोनके भिक्षुओंके लिये एक अलग मठ था जो बौद्ध धर्म सम्बन्धी अनेक कार्यों तथा उत्सवोंके उपयोगमें लाया जाता था।

भव्य मूर्त्तियां

इस खण्डहरके पूर्वी हिस्सेमें, पहाड़ीपर एक आकर्षक और महत्वपूर्ण चैत्य था जिसमें पत्थरके बने कई कलात्मक चौखटें पाये गये हैं। इस चैत्यके नीचेके ओढलेपर चारों ओर चट्टानोंकी किनारोंपर सुन्दर नक्काशीदार खुदाई है। इसके ऊपरकी ओर मुंडेरपर मूर्त्तियां खुदी हुई हैं। छोटे-छोटे स्तूपोंको देखनेसे ही हमारी कल्पना द्विगुणित हो जाती है कि ये कितने सुन्दर बने हुए हैं। कई छोटे-छोटे नमूने कुछ फुटसे अधिक ऊंचे नहीं हैं परन्तु फिर भी उनकी



भगवान बुद्धका अस्थि संग्रहालय

नक्काशी इतनी बारीक होकर भी साफ है कि हम आश्चर्य किये बिना नहीं रह सकते।

इन नक्काशीके गुणोंके विषयमें मि० लांगहर्स्ट्का मत है:—'भारतवर्षमें आज तककी ऐतिहासिक खोजमें ये नमूने अद्वितीय हैं!' इनमेंसे बहुत-सेमें हाथी दांतके काम जैसी कला है तथा मूर्तिकारोंने सुन्दर-सुन्दर चित्र, जो वहां खोदे हैं उनसे पता चलता है कि मनुष्यों और स्त्रियोंके हृदय, मस्तिष्क तथा अन्य शरीर-सम्बन्धी बातोंको गहराईके साथ एक विशेष भावना प्रकट करते हुए उन्हें व्यक्त करनेका ज्ञान उस कालके शिल्पकारोंको था।

बुद्ध और उनके जातकोंकी जीवनियां इन शिल्पकारोंकी कला द्वारा एक अटूट भावना प्रकट करती है। उस स्थानके तत्कालीन रीति-रिवाजके परिवर्तनके साथ साथ या शिल्पकारोंकी कल्पनाके सहारे समय-समयपर यत्र-तत्र खुदे हुए शिला लेखोंके अनुवादोंमें कुछ सुधार किये गये होंगे। अतः इससे उनकी असली जानकारी मालूम करनेका कार्य कठिन हो गया है। इस प्रकारकी कुछ चौकोर शिलाएं वहां हैं, जिनमेंसे एक है जिसपर इन्द्र बड़े वेगसे एक हथियार भगवान बुद्धकी ओर फेंक रहा है परन्तु बुद्ध शान्त और स्थिर ही हैं। दूसरी चट्टानपर एक मेंदा एक सम्भ्रान्त व्यक्तिकी गोदमें बड़े लाड़-प्यारसे बैठा है। तीसरी चट्टानमें हनूमान तीन व्यक्तियोंको ऊंचे उठाकर ले जाते हुए बतलाये गये हैं।

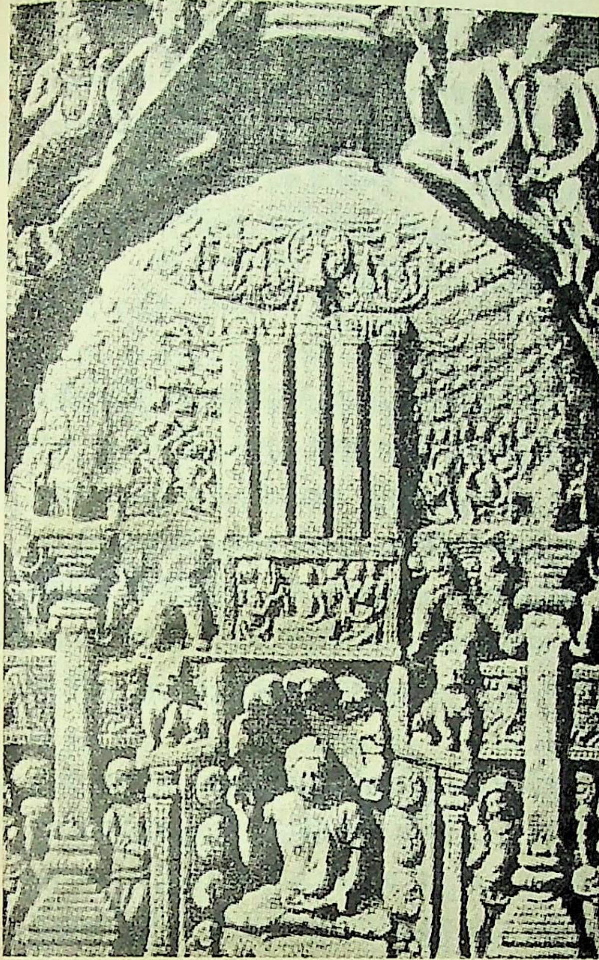
दूसरी तरफ कुछ अच्छी चट्टानें हैं जिनका विषय देखने और समझनेमें स्पष्ट है। चद्दन्थ (Chaddantha) जातकमें यह व्यक्त किया गया है कि बनारसकी रानीको आज्ञा द्वारा एक ६ सूंड वाले हाथीका शिकार किया गया है जो रानीको प्रसन्न करनेके लिये अपनी सूंड ऊंची उठा रहा है।

शशजातकमें एक उदार-हृदय खरगोश अपने ब्राह्मण महमानके सम्मुख बलिदानके रूपमें अपनेको अर्पित कर रहा है। वेशान्तर जातकके चित्रोंमें यह चित्रित है कि वेशान्तरके राजपुत्र उस समय तकके लिये अपनी-पत्नी, बच्चे राज्य सबका त्याग करके वन-गमन कर रहे हैं—जब वे ज्ञान प्राप्त करके आयेंगे और उनके पिता फिर उनका राज्याभिशेक करेंगे।

एक कपि-राजने अपनी सम्पूर्ण जातिको एक नदीपर अपने शरीरका पुल बांधकर ब्रह्मदत्तसे मुक्त करायी। यह-कपि-जातक है। ये सब चित्र बुद्धके पूर्व जन्मकी कथाओं परसे बनाये गये हैं।

बुद्धके जीवनकी दन्तकथाओंका एक महत्वपूर्ण प्रदर्शन हुआ है। और इन प्रस्तर मूर्त्तियोंमें लगभग बुद्धकी सम्पूर्ण जीवनी अङ्कित है। चार चट्टानोंपर नन्दके धर्म परिवर्तनके चित्र अङ्कित हैं जब वह किसी राजकुमारीसे विवाह करनेके इरादेमें था। एक चित्रमें बुद्धका दुष्ट चचेरा भाई देवदत्त नालगिरी नामक एक भयानक हाथीपर बैठा हुआ उसके पैरोंसे बुद्धको कुचलनेके लिये उस हाथीको आगे बढ़ा रहा है परन्तु अपने स्वामीको देखकर नम्रतासे घुटनोंके बल बैठ जाता है। बुद्धके प्रति कामदेवके आसक्त होनेवाली प्रसिद्ध घटना भी इन प्रस्तरोंमें अङ्कित है। पिशाच अपनी कन्याओंको बुद्धकी ध्यानस्थित मुद्राको भङ्ग करनेके लिये भेजते हैं परन्तु उनका प्रयत्न निष्फल हो जाता है। और कामदेव बुद्धके सम्मुख अपनी पराजय स्वीकार कर चले जाते हैं।

नागार्जुनकोण्डाके डीयर-पार्कमें बुद्धकी दी हुई प्रथम शिक्षा भी खुदी हुई हमें मिलती है।



दक्षिण भारतका एक प्राचीन स्तूप

छतके नीचे चौखटों और महरावों परकी कला भी देखने योग्य है। या तो वे उस कालकी लोक-सम्मतिके आधारपर बनी हुई है अथवा उनके द्वारा किसी विशेष भावनाको बतलानेका उद्देश्य रहा है। शिल्पकारने उनमें कुछ-न-कुछ असम्बन्ध बात बतलानेका प्रयत्न किया है। वहां अनेक पंखुरियों वाले कमल पुष्प खुदे हुए हैं। कहीं-कहीं प्रेमोन्मत्त स्त्री पुरुषोंके चित्र (मूर्तियां) भिन्न-भिन्न दशाओंमें बने हुए हैं।

भारतके लिये बौद्ध शिल्पकलाका दूसरा भव्य नमूना सुन्दर तोरण अथवा वन्दनवार हैं। इनमें बड़ी चतुरतासे आवश्यकता समझकर नाटे ढङ्गके स्त्री पुरुष बतलाये गये हैं जो अपने हाथोंमें सुन्दर पुष्पहार और बेलें ले जा रहे हैं। एक असाधारण प्रकारकी दुतरफा पुष्प-बेलें बड़ी चतुरतासे खोदी गयी हैं।

प्राचीन प्रभाव

इन खोदी हुई वस्तुओंमें कुछ मूर्तियां यूनान तथा यवन कालीन हैं और कुछ रोमन कालीन प्रतीत होती हैं जो अपना विशेष महत्व बतलाती हैं। रोमन पद्धतिपर बनी हुई बौद्ध कालीन शिल्पकलाके अतिरिक्त कुछ ऐसी मूर्त्तियां भी वहां मिली हैं जिनपर प्राचीन युगकी गहरी छाप है। (इन मूर्तियोंके कन्धों परसे बड़ी भव्यताके साथ लम्बे-चौड़े शाही वस्त्र इधर-उधर बिखरे हुए अपना ऐश्वर्य प्रकट करते हैं) कुछ शिला लेखोंमें भी कई स्थानोंपर 'मोतो' (Mote) ऐसा शब्द आया है जो यवन-कालकी ओर संकेत करता है। यहां रोमन सिक्के भी पाये गये हैं।

इन सब बातोंसे हम अनुमान कर सकते हैं कि पूर्व शताब्दियोंमें आन्ध्र देशके कलाकार रोम और यूनानकी



प्राचीन रोमन योद्धाका एक कलापूर्ण मूर्ति

कलाकसे प्रभावित हुए होंगे। परन्तु जैसा कि सर जांन मार्शल सांचीके विषयमें कहते हैं—'हमें विदेशी प्रभावोंको अधिक महत्व नहीं देना चाहिये क्योंकि भारतकी इन शिल्पकलाओंमें कोई विदेशी अनुकरण नहीं है। और न ये किसी निम्न कोटिकी कला पर ही निर्भर है। जो कुछ कलाएं इनमें प्रस्तुत की गयी हैं वे निश्चय रूपसे भारत की है। बौद्धधर्म की कलाओंको भारतीय शिल्पकारोंने अपनी बुद्धि, चातुर्य और कल्पनाके बलसे सरल रूपमें परन्तु अत्यन्त स्पष्टतासे प्रदर्शित की है। और इसीसे वे हमारे हृदयमें इतनी गहराई तक उतर गयी है और एक असाधारण भावना हमारे मनमें पैदा करती है कि हम दूसरी कलाकी सराहना नहीं कर सकते।"

नागार्जुनकोण्डामें पाये गये अवशेषोंमें श्रेष्ठ अवशेष वह है जो स्वयं बुद्धके शरीरका एक अङ्ग है। यह एक छोटा-सा हड्डीका टुकड़ा है जो मुश्किलसे ही एक मटरकी फलीसे बड़ा होगा। लेकिन इसका महत्व उन लोगोंकी दृष्टिमें—जिन्होंने इसे बड़े यत्नके साथ रखा था—इस रूपसे अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्होंने किस तरीकेपर इसे सुरक्षित रखा था? उन लोगोंने इस हड्डीके टुकड़ेको एक पेटीमें बन्द करके जमीनकी गहराईमें एक असाधारण व सुरक्षित स्थान पर रखा था। मि० लांगहर्स्ट का मत है कि ऐसा इस इरादेसे किया होगा कि कोई लालची लुटेरे उसे न ले जा सकें। और इसका श्रेय भी मि० लांगहर्स्ट को ही है जिनने बड़ी सावधानीसे इस ध्वस्त स्थानकी खोजकरके ये अमूल्य वस्तुएं बौद्ध-धर्मावलम्बियों और कला रसिकोंके लिये खोज निकाली हैं।

इस पेटीमें कई स्फटिक और बिल्लौरके टुकड़े भी मिले हैं। रक्तमणियों, मोतियों और स्वर्णके फूलोंसे बुद्धका वह अवशेष ढका था। ये सब चीजें एक २॥" इंच ऊंची पेटीमें, जो एक स्तूपके आकारकी बनी हुई थी—मिलीं। शायद कुछ दूसरे व्यक्तियोंके अवशेष भी यहां मिले हैं।

ईसाके बाद दूसरी या तीसरी शताब्दिका एक बौद्ध-स्तूप भी गोली नामक गांवमें—जो कृष्णा नदीके किनारे पर है—कुछ समय पहले मिला है। आंन्ध्रकलाके कुछ सुन्दर नमूने यहां मिले हैं। वे मद्रास म्यूजियमकी ओरसे प्रकाशित भी किये जा चुके हैं।

नागार्जुनकोण्डाकी खुदाईमें कुछ अजीब प्रकारके मिट्टीके वर्तन भी मिले हैं जिनमें जानवरोंकी हड्डियां पायी गयी हैं। ये हड्डियां खरगोश व बैल वगैरहकी जान पड़ती हैं। ये सब मठोंमें मिले हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि बौद्ध-साधुओंका पालन-पोषण दूसरे लोगोंके बीच हुआ होगा और बुद्धने अपने पिछले जन्मोंमें इन जानवरोंकी योनियां पायी होंगी।

शिलालेख

नागार्जुनकोण्डामें हमें कई शिलालेख भी मिलते हैं। शिलालेखोंकी भाषा और लिपि ब्राह्मी (Brahmi) है जो बड़ी अलंकृत ढंगकी है तथा यह अनुमान लगाया जाता है कि वह क्रिश्चियन युगकी प्रथम तीन शताब्दी की है। अमरावतीकी इमारतोंसे इन खण्डहरोंकी तुलना करनेपर समय (काल) की दृष्टिसे दक्षिण भारतकी इन वस्तुओंका प्रमाण स्पष्टरूपसे हमें उसी कालकी ओर ले जाता है।

शिलालेखमें चान्तिश्री नामक एक राजकुमारीका वर्णन आया है। इससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन राजा लोग जो नये धर्मोंको प्रचारित करते थे उनमें राजकुलकी देवियां बड़े उत्साहसे भाग लेती थीं। ऐसी स्त्रियोंमें चान्तिश्रीने सदा अगला कदम रखा था। इसके प्रमाणमें यह कहा जाता है कि "महाचैत्य" को (जैसा कि एक शिलालेखमें लिखा है) उसने बड़े प्रयत्नसे बनवाया था। जिसमें बुद्धके अवशेषोंको बड़े यत्नसे रखा गया था।

चान्तिश्री राजा वीर पुरिशाकी पत्निकी ओरसे उसकी समधिन थी। वह बड़ा प्रसिद्ध शासक था और उस समय उसकी राजप्रभुता बहुत बढ़ी हुई थी। उसके वंश का अन्तिम शासक बाहुबाला था। इन सबने नागार्जुन नामक भिक्षुके प्रभावसे ही बौद्धधर्म स्वीकार किया था।

नागार्जुनकोण्डाकी खोजके विषयका कोई भी वर्णन तबतक अधूरा रहेगा जबतक कि इस स्थानका यह नाम देनेवालेकी ओर संकेत न किया जाय। नागार्जुन बौद्धधर्म की महायान शाखका एक बड़ा महन्त हुआ है जो भिक्षुही नहीं वरन् एक बड़ा दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, कवि और वैद्य भी था, जिसे दूसरे धर्मवाले भी बड़ा सम्मान देते थे।

क तिब्बतके शिलालेखसे ज्ञात होता है कि उसने बौद्ध-धर्ममें कई सुधार किये थे और लगभग ६० वर्षों तक (सन् १३७ से १६४—ईसाके बाद) बौद्ध मठोंका शासन भी किया था। उसने दक्षिणकी बौद्ध परिषदका भी संचालन बड़ी रक्षात्मक ढंगसे किया था। अब उसकी वे अपूर्व सेवाएं कई शताब्दियां बाद भी उस स्थानपर मिलती हैं जो उसके नामसे आज प्रसिद्ध हैं। उसने वहां मठ बनवाया था जिसमें कई पवित्र पुस्तकें थीं और कई विद्वान विद्यार्थी वहां ज्ञान प्राप्त किया करते थे।

चीनी यात्री कुएनसांगका मत है कि सदवाह (Sadhava) नामक राजाने—जो नागार्जुनका आश्रय-दाता, मित्र एवं समकालीन था—एक चट्टानको काटकर नागार्जुनके लिये एक मठ बनवाया था और बादमें नागार्जुनने अपने रसायन शास्त्रके ज्ञानसे उस मठको सोनेमें परिवर्तित कर दिया था ताकि राजा सदवाह नागार्जुन कोण्डामें मठ, विहार स्तूप आदि बनवा सके। इस स्थानकी खोज जबसे आरम्भ हुई तबसे आजतक विद्वान लोग बड़ी चतुराईसे उस स्थानको ढूंढ़नेमें लगे थे जिसकी ओर चीनी यात्रीने संकेत किया था क्योंकि हजारों वर्ष बीतने पर नागार्जुनकोण्डा पूर्णरूपसे अबतक दृष्टिसे ओझल हो चुका था और सघन जङ्गलोंमें खो चुका था।

नागार्जुनकोण्डाकी भव्य प्राकृतिक स्थिति एक ओरसे तो घने जंगलोंमें—जिसकी चट्टानों पर कृष्णा नदी क्रीड़ा करती रहती है—हमें दिखाई देती है तथा इसके दूसरी सब तरफ उस प्राचीन भिक्षुका कलात्मक स्थान है जो ऊंची ऊंची पहाड़ियोंसे सुरक्षित है और इसी कारणसे राजाओं और साधुओं दोनोंने इस स्थानका मूल्य अधिक समझा था। राजाओंने सेनाओंके उद्देश्यसे और साधुओंने शान्ति प्राप्त करनेको यह स्थान चुना था। इस प्रकार यह स्थान दो चीजोंके योगसे एक नगर बना गया था। एक तो धार्मिक केन्द्र दूसरा लौकिक। क्योंकि धार्मिक केन्द्रके कला-भण्डारके साथ-साथ आज नागार्जुन की पहाड़ीपर किलेके भव्य अवशेष भी नजर आते हैं।

—०—

जूझने दे इस लहरसे

सांस जब तक चल रही है जूझने दे इस लहर से
है न अमृत, दे बुझाने प्यास तो जलती, जहर से
मर चुके अरमान, जीना और मरना है बराबर
हर कदम मैं हार खा - खा लौटता आया समर से
है खड़ा संघर्ष सम्मुख सत्य बनकर जो विकट यह
आज लड़ लूं, स्वप्नका श्रृंगार कल मैं भी करूंगा
प्यार कल मैं भी करूंगा

❀

जिन्दगी हो जब नहीं क्या मौतकी होगी कहानी
फांक कर जो धूल जीती आ रही बेकस जवानी
ओ छली संसार, तू ही ने बुझा चिनगारियां दीं
दौड़ती थीं जो युगों से खून में बनकर रवानी
भार शव का ढो चला जो जा रहा कङ्काल नर वह
प्राण भर दूं, कल्पना संभार कल मैं भी करूंगा
प्यार कल मैं भी करूंगा

❀

यह किसीका स्नेह जो सौ बार बुझकर जल रहा हूँ
मौन साये में गरजती आंधियों में पल रहा हूँ
बद-नसीबी आज मेरी ही मुझी को छल रही है
यह मरण-पथ और निर्भय चल चुका मैं, चल रहा हूं
तोड़ती दम जिन्दगी जो सांस का ले तार टूटा
आग भर दूं अश्रुका व्यापार कल मैं भी करूंगा
प्यार कल मैं भी करूंगा

❀

आज जो दुर्दिन चतुर्दिक घेर कर मुझको खड़ा है
मैं विजित, पथमें गयी यह काल जो चट्टान-सा है
धूल भी तो कर रही उपहास मेरा हर कदम पर
मिट रहा कुछ हर घड़ी जो प्राण में तूफान-सा है
यह मरी-सी जिंदगी जो, भर चलूं उसमें ज्वलित ये
बिजलियां, सौन्दर्यका श्रृंगार कल मैं भी करूंगा
प्यार कल मैं भी करूंगा

—श्री उपेन्द्र

—

देवता या मनुष्य

श्री भगवन्तशरण जौहरी एम० ए०

आवेशकी परिभाषा कुछ भी हो पर वह साहसको उत्तेजित कर मनकी बतायी राहपर व्यक्तिको बढ़ा तो देता है, भय, ममता, लज्जा सबसे परे।

उस दिन जब पिताजीसे उलझकर मैं सहसा सीधे स्टेशन पर आ गया तो कौन जानता था कि वह दिन मेरी मातृभूमिके हेतु अन्तिम दिन होगा।

कुछ ठिठका अवश्य, सोचा किसी मित्रके यहां ही डेरा डाल दूं। ज्यों त्यों कुछ समयके बाद सब ठीक हो ही जायगा पर अब मेरा विद्रोही मानस यह चाहता ही न था कि समझौतेके घिसे मार्गको फिर दुहराया जाय।

गाड़ी आनेमें कुछ देर थी इस लिये कुछ सूनेमें जहां कोई आ न सके, बैठकर, मैं विचारोंमें डूब गया। होश सम्भालनेके दिनसे आजतक सब कुछ फिल्मकी तरह मेरी पुतलियोंमें घूम गया। वर्षोंसे मेरा घरका जीवन बहुत ही उद्भ्रान्त था, खाना-पीना, लिखना-पढ़ना, मिलना-जुलना तो दूर रहा किसीसे बाततक नहीं करता था। पांच वर्षसे मेरा यह हाल देख मां-बाप, भाई बहन सभी संतप्त थे। दूसरोंको तो मैं दोषी कहता था, अपराधी स्वयं था। कभी मैंने यह न सोचा कि पिता कुढ़ते क्यों हैं? मेरा सूना कमरा भलाकि मैं! किसीका साहस न होता था कि मुझसे आकर दो बातें करे। पढ़ाई पिछड़ ही चुकी थी। स्वास्थ्य आत्ममंथनमें चौपट हुआ जा रहा था। कमानेसे दूर ही था। सबसे बड़ा मेरा अपराध यह था कि जब किसी विवाहका प्रस्ताव आता मैं स्पष्ट नाहीं कर देता। एक साल और पढ़ लेता तो डाक्टरीका कोर्स ही पूरा हो जाता परन्तु प्रेम भी कोई दुनियादारीका सौदा है? मेरी आभा मुझसे दूर कर दी गयी और मैं फिर भी उसी समाज व घर-गृहस्थीका सेवक बना रहूं। यह कैसे हो सकता था। प्यार करना भी यदि आतङ्क है तो घानीके बैल-सा जीवन-की गाड़ीको खींचते जानेमें कौनसा बड़प्पन है। मैं आभाकी रूप-ज्वालाका पतङ्ग न था, उसके गुण और संस्कारोंका मुझपर जादूसा असर हुआ था। माना कि वह युवती थी तो इसी भयसे मैं दूर भागता रहूं, इसमें क्या है। वह सजातीय नहीं थी इसीसे उसे पा ही न सकूं, यह तो कोई उद्बोधन नहीं। मां बापने उससे अवहेलना कर जबसे मुझे शून्य बना दिया। वे ही मेरे ओठोंपर कब मुस्कराहट आंक सकें? अब, इकलौती सन्तानका निरन्तर वियोग उन्हें बता देगा कि प्रिय वस्तुका खो जाना क्या होता है। जब मेरी ही कुटी उजड़ी व अन्धेरी पड़ी है तो उनके ममत्मका दीपक भी क्यों जलता रहे? मेरी आंखें प्रति-शोधसे चमक उठीं और दूसरे ही क्षण गाड़ी प्लेट फार्मसे आ लगी। मैं शिथिल भावसे जा बैठा और ज्यों-ज्यों गाड़ी बढ़ी मेरा मन हल्का होता गया।

पिछली रात जब डब्बेके यात्री खर्राटे ले रहे थे एक लड़की खिड़कीमेंसे बार-बार उचकने लगी। गाड़ी पूरे वेगसे चली जा रही थी। अचानक एक मोड़पर ज्योंही उस लड़कीके पांव उचके और वह बाहर जानेको ही थी कि मैंने दौड़कर उसे थाम लिया। हलचलसे सब उठ बैठे। लड़कीका बाप मेरे चरण छूने लगा। उसकी पत्नी मर चुकी थी। और कोई घरमें था नहीं। विवाह करनेका विचार वह छोड़ चुका था। यह लड़की ही उसकी आंखोंकी रोशनी थी। बोला—'भय्या तुम कहां जा रहे हो?'

'मैं स्वयं नहीं जानता।'

'यह खूब रही।'

'हमेशाके लिये घर छोड़ आया हूं।'

'तब तुम मेरे ही साथ चलो और वहीं रहना। मैं कलकत्ता जा रहा हूं। वहां मेरा कोयलेका रोजगार है। ईश्वर दो रोटियां देगा ही।'

'अच्छा यही सही' कहकर मैं राजी हो गया।

२

कलकत्तेके जीवनने फिर मेरा मन कुछ स्वस्थकर डाला। घरकी रोक-टोकसे बचकर मानो मेरा खून बढ़ने लगा पर कुछकाम न होनेसे समय बिताना दुष्कर हो गया। अन्तमें

हारकर मैंने मेडिकलके अन्तिम वर्षमें नाम लिखा दिया और अपनी आभाकी मुक्त स्मृतिके प्रकाशमें बिना कुछ खास पढ़े लिखे भी डाक्टरी पास हो गया।

गरीब कोयलेवालेने यह सुना तो निहाल हो गया पास ही एक दुकान किराये पर ले दी। फर्नीचर और अन्य सामानके लिये भी उसने पांच सौ रुपये खर्च कर दिये और मैं डाक्टरी करने लगा।

धीरे-धीरे मैं अनुभव करने लगा कि जीवनको गला गलाकर समाप्त कर देना ही सब कुछ नहीं है, यदि वह किसी विशेषके कामका नहीं रहा है तो सेवा और परोपकारमें ही वह उत्साह और आनन्द पा सकता है और मैं मन-प्राणसे इस पथपर बढ़ता ही गया।

कर्मकी चेतनामें मेरे सब आत्मीय विलीन हो चुके थे। चिट्ठी पत्री तो क्या मैं कभी किसीकी याद तक न करता था परन्तु आभा, उसे विस्मरण कर सकना भी क्या कभी सम्भव था। यद्यपि उसका विवाह कभीका हो चुका था परन्तु मैं जानता था कि न वह सुखी है न हो ही सकती है। एक बार उसे जीवनमें देख ही पाता तो—परन्तु सभी कुछ मनुष्यके वशमें कहां!

एक दिन डिस्पेन्सरीमें बैठा था। रातका सन्नाटा प्रारम्भ हो रहा था कि एक महरी आयी, बोली 'डाक्टर बाबू, बाईकी तबियत बिगड़ती जा रही है, चलकर देख लो। घरपर और कोई है नहीं।'

मैंने यथाभ्यास बैग संभाला और चल दिया। शीघ्रही एक बड़े मकानके सामने फिटन रुकी और महरी मुझे तीसरे मञ्जिलके रोगीका कमरा बता कर, चाय बनाने चली गयी।

रोगिणी चादर ओढ़े लेटी थी। मैंने आवाज दी तो लगा सो गयी है या झपकी ले रही हो। अन्तमें मुझे झकझोरकर ही जगाना पड़ा। देखता क्या हूं कि वह तो मेरी आभा थी। मेरी आंखें चौंधिया गयीं मन हजारों हाथ उछलने लगा 'हे भगवन्, यह क्या!' और संभलूं संभलूं कि वही कह बैठी:—

'तुम हो विनोद, बैठ जाओ'

आभाकी स्मृति मेरे जीवनका वह अङ्ग बन चुकी थी कि हर स्वप्न उसकी आकृतिको लेकर आता था। प्रत्येक श्वास उसके आह्लादसे सुरभित थी पर इसे स्वप्न माननेका कोई कारण न था। वर्षों बाद उसे देखा था एतदर्थ मैं उसे देखता ही रहा मानो आंखोंकी राह उसे पी जाऊंगा। कुछ कहूं न कहूं कि उसीने मौन भंग किया—'वह दिन याद करो विनोद, जब मेरे स्नेहमन्दिरके तुम देवता बने थे। जीवनकी किस गहराई और प्राणोंकी किस तरलतासे मैंने तुम्हें चाहा इसे तुम तक न जान सके! अपनी धड़कनोंको मैंने अपनी श्वासोंमें विलीन किया। कौनसा पल, तुम्हारे ध्यानकी वेला न बन आया। वे मिलन-स्वप्न आज भी बिजलीसे कौंध उठते हैं; परन्तु विवाह, धर्म, कर्तव्य और हिन्दू नारीके सर्वस्व पातिव्रतकी श्रृंखलाओंने मुझे सिखाया कि मैं तुम्हें भूलूं पर कौन जानता है, भूल सकी कि नहीं।'

'तुम देवत्वके आकाशमें भले विचरो आभा, पर मैं तो साधारण मनुष्य भी न रह पाया। सुना था विवाहके बाद तुम मुझसे घृणा करने लगीं। तुमने मुझे भले छुट्टी दे दी हो, पर मैं अभी जीने तकका बल नहीं समेट पाया। तुम्हें सब कुछ प्राप्त है, तुम आगेकी राह ढूंढ़ो पर मेरा तो सर्वस्व ही लुट चुका है मेरा सर्वनाश ही मुझे भी अभीष्ट है।'

उसकी अटपटी आकृति देख मैंने ही कहना चालू रक्खा—'कई बार फेल हुआ। माता-पितासे दूर छिटकता रहा। विवाहके झगड़ोंमें घर छोड़नेको बाध्य होना पड़ा और आज यहां हूं। तुम्हारी घृणा भी मेरे मोहको ठंढा न कर सकी। तपस्या कभी निष्फल नहीं जाती। मैं जानता था तुम मिलोगी और अवश्य मिलोगी। मनुष्यकी निष्ठुरताका बोझ कितना भी असह्य हो, पर स्नेहकी कोमलता उससे कहीं आगे है। समाजके स्वनिर्मित बन्धन और व्यक्तिकी विवशता कैसी भीषण हैं, ओह कितनी!'

'जीवन टालमटोलकी वस्तु नहीं है, विनोद, तुम तो मनुष्य हो। तुम्हें फौलादका दिल रखना चाहिये। जो न है, न अपना हो सकता है उसके नामपर सब कुछसे आंखें मींच लेना आत्महनन है, अज्ञान है। मुझे पाना ही एकमात्र लक्ष्य क्यों और फिर मेरा शरीर, मेरा साहचर्य

क्यों चाहता है मेरा विनोद ! यदि मेरे प्रेमके ज्वलन्त सत्यको निहारते हो तो मेरे संकेतपर मर मिटना सीखो।'

रह रह कर आभा जटिल होती जाती थी।

'इच्छा, आशासे छुटकारा पाना मनुष्यके वशकी बात नहीं। हर व्यक्ति देवता नहीं बन सकता। यदि तुम हृदय चीरकर देख सकतीं, तो जानती कि हर सांसमें तुम्हीं देवता बन पुज रही हो। सारी कोमलताको कुचल मैं उसपर कैसे विजय पाऊं। मैं मनुष्य हूँ, मनुष्य मात्र रहना है मुझे। क्या वर्षोंसे बहते हुए मेरे आंसू भी विकारका ही चिन्ह हैं। मैं तुमसे विवाह करना नहीं चाहता पर तुम्हारे समीप रहना चाहता हूँ, मुझे सेवक बनाकर ही तुम अपने समीप रख लो। इससे अधिक मैं कुछ न चाहूँगा। तुम्हारा समाज युवक-युवतीको दाम्पत्य के अतिरिक्त साथ रहनेका और अवसर ही कौन-सा देता है। बोलो मेरे लिये तुम्हारी क्या आज्ञा है। तुम्हारी बात टाल सकूं, इतनी सामर्थ्य तो कभी संचित न कर पाऊंगी।'

'विनोद, तुम चतुर हो, विद्वान हो। जीवनकी अनन्त राहें तुम्हारे सामने खुली पड़ी हैं, तुम पुरुषार्थ करो परन्तु यदि मुझे जीवित देखना चाहो तो मुझे सदाके लिये भूल जाओ।

और मैं प्रणाम कर चल दिया।

(३)

कलकत्तेकी कल्पित शान्ति भी, दिवास्वप्न भी मेरे लिये भीषण हो गया। खाटपर अनमनासा पड़ा रहता और सूनेमें धंसता जाता। धीरे-धीरे बीमार होता गया और कुछ दिन बीते मैं वायुके प्रकोपमें न जाने क्या बकता। लगा कि थोड़े दिनमें जीवनके धन्धोंसे सदाके लिये मुक्त हो जाऊंगा। कोयलेवाला और उसकी लड़की मेरी देख-रेख करती। वे घर तार देनेकी बात करहते पर मैं पता तक न बताता था। हालत गिरती गयी और मुझे अनुभव हुआ कि अन्तिम समय समीप है, एक बार आभाको देख पाता ! इस इच्छाने मुझमें एक नवीन जीवनका संचार किया और मैंने लिखा—

प्रिय आभा,

अन्तिम समय एक क्षणको तुम्हें और देख पाता। पूर्व प्रेमके नाते ही आना।

मरणासन्न

विनोद।

उस लड़कीके हाथ पत्र भेज तो दिया जो महरीको दे आयी पर मेरा रोम-रोम कांपने लगा किसी अज्ञात भयसे। मैं कितना स्वार्थी हूं। मुझे उसके हिताहितका विचार तो रखना था। भारतीय नारीकी स्थिति कितनी विपन्न है?

तीसरे दिन प्रातः चार बजे कोई सांकल बजाने लगा। मैंने लड़कीको जगा द्वार खुलवाया, देखा आभा थी, मैं धक रह गया।

पागलों-सी भरभरा कर वह मेरे चरणोंपर लोट गयी, बोली—'विनोद मैं तुम्हें मरने न दूंगी। अपने ऊपर इतना निर्मम अभिशाप न लूंगी। तुम्हारे उत्सर्गशील प्रेमने मेरी आंखें खोल दी हैं। मेरी यादमें घुल-घुलकर तुमने जीवनके सबसे महत्वपूर्ण भागको व्यर्थ ही नहीं, भार बना डाला। तुम मुझे जो-जानसे चाहते हो न, तो लो जहां चाहे चलो, अब श्वास श्वास साथ रहेंगे।'

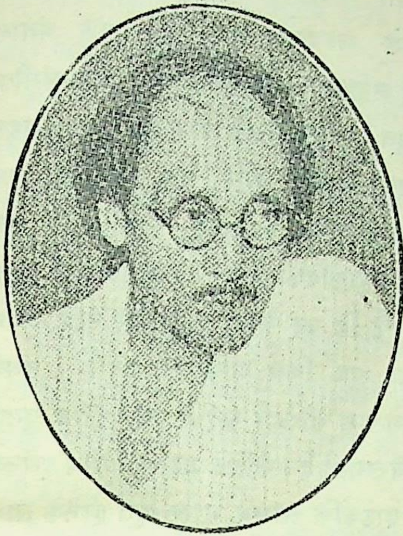
मन ऐसा कुण्ठित हो रहा था कि उसे ठोकर मारकर कहूं कि अब तुम्हारा नारीत्व और देवत्व कहां है? मनुष्य के दोष और वासनाको अब क्या वह भूल गयी। अवश्य ही पत्र इसके पतिके हाथमें पड़ गया था और उसने इसको घरसे निकाल दिया होगा। पर इस सबके बाद भी मेरी भावुकता मुझे दबोचती गयी। मैं आगे बढ़ा और हाथ पकड़ चल दिया। मील-दो मील चुपचाप चलते जानेपर वह सहसा मूर्छित हो गयी, कहती थी 'मेरे देवता मुझे क्षमा कर दो, मैं निरपराध हूं।'

और मैं हक्का-बक्का खड़ा था।

———

जापानका महाकवि योन नोगुची

श्री गौरीशंकर ओझा



स्वर्गीय योन नोगुची

कवीन्द्र रवीन्द्र के महा प्रस्थान के पश्चात् जापान के सर्वश्रेष्ठ कवि योन नोगुची का पिछले मास १४ जुलाई, १९४७ को देहान्त हो जाना, एशिया की सांस्कृतिक क्षेत्रमें एक असहनीय क्षति समझी गयी है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त महाकवि योन नोगुची जापानकी कला-संस्कृति और काव्याभिरुचिके सर्वमान्य प्रतिनिधि थे। जापानी भाषाके अतिरिक्त अंग्रेजी भाषामें काव्य-धाराको प्रवाहित करनेकी उनके समान शक्ति कवीन्द्र रवीन्द्रके सिवाय अन्य किसी एशिया-वासीमें दृष्टिगोचर नहीं होती। उनका काव्य-प्रदीप निर्मल और तनिक श्वास लेते ही कम्पित हो उठने जैसा है। प्रभातकी अरुणिमासे लेकर सन्ध्याकी छाया तक, जितने-जितने वर्ण परिवर्तन होते हैं, उतनी ही ऊर्मियां उनके काव्य-सागरमें उठती हैं। प्रकृतिके विविध रंगों और सब स्वभावोंको कविने कलापूर्ण और सूक्ष्मतापूर्वक व्यक्त किया है। योन नोगुचीकी सौन्दर्योपासना, जापान की वार-वनिताओं--गाइशा कुमारियोंके रूप तकको नमन करती हैं। 'सौन्दर्य ही सत्य है'— इस सिद्धान्तको माननेवाला वह महाकवि देह और आत्माके संयोगको किसी भी सांसारिक तुलामें न रखते हुए सौन्दर्य-नीतिकी कवि-तुलासे ही तौलता है। कविकी काव्योर्मियोंमें मार्दव और कुछ अपरिमेय दिव्य सौन्दर्य है। उनकी कविताओं में कौमुदीके रंग छलकते हैं, वायु-लहरियोंमें निःश्वास उठते हैं और पक्षियोंके गान सुनाई देते हैं।

अपनी मातृ-भाषा जापानी और विश्व-भाषा अंग्रेजी—दोनोंमें नोगुचीने सुन्दर काव्योंकी रचना की है। अंग्रेजी भाषामें रचित उनके काव्य संसारके श्रेष्ठ उज्ज्वल काव्य रत्नोंमें स्थान पा चुके हैं। किन्तु जापानी भाषामें रचे गये प्रकृति-प्रेम और जीवन दर्शी उनके काव्य अंग्रेजी काव्योंसे भी अधिक सुन्दर हैं। योन नोगुचीको, उनकी असाधारण काव्य-प्रतिभाके कारण 'जापानका वर्ड्सवर्थ' कहा जाता है।

सन् १८७५ में कवि नोगुचीका जन्म हुआ था। सन् १८९३ में वह पाश्चात्य संस्कृतिका अवलोकन करने अमेरिका गये थे। उस समय उनकी विद्यार्थी अवस्था थी, किन्तु वहां उन्हें एक जापानी आन्दोलनकारी दलके आश्रम में रहना पड़ा। उस दलकी ओरसे एक समाचार पत्र भी निकलता था। युवा नोगुची उस पत्रको बेचने, 'होकर,' का काम करता, किन्तु बदलेमें पारिश्रमिक कुछ नहीं, केवल रातभरके लिये आफिसमें सो रहनेको स्थान मिलता था। वह रातभर मेजपर तकियेके अभावमें 'इनसाइक्लो पीडिया ब्रिटानिका' का सिरहाना लगाकर सो रहते थे। फिर भी वह निर्धनतामें संघर्ष करते चले गये—कठिनसे कठिन परिश्रम तक उन्होंने किया और अन्तमें निर्धनता पर विजय प्राप्त की।

अमेरिका-निवासके समय कैलिफोर्नियाके प्रसिद्ध साधु-प्रकृति कवि जोकिनमिलरसे नोगुचीकी घनिष्टता हो गयी और तीन वर्ष तक उनके पास नोगुची उनके प्रिय शिष्य बनकर रहे और अंग्रेजीमें कविता करने लगे। नोगुचीने उनसे बहुत कुछ सीखा। वहांसे वापस लौटकर उन्होंने अपना प्रथम कविता-संग्रह 'The Lark' (बुलबुल) के नामसे अमेरिकाके एक मासिकपत्रमें प्रकाशित कराया।

सन् १८९७ में नोगुचीको भ्रमण करनेकी इच्छा हुई और अमेरिकाके प्रसिद्ध योसेमाइट पार्कके प्राकृतिक सौन्दर्यने युवक कविके हृदयपर गहरा प्रभाव डाला। अगले वर्ष नोगुचीने कैलीफोर्निया स्टेटका अधिकांश भाग पैदल तै किया।

सन् १९०३ में नोगुची इङ्गलैण्ड गये। वहां वह लन्दनमें अज्ञात अवस्थामें रहते थे। उसी समय उन्होंने एक छोटी सी १६ पृष्ठोंको 'पूर्वीय समुद्रसे' नामक-कविता-पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तकके प्रकाशित होते ही इङ्गलैण्डके बड़े-बड़े साहित्य-मर्मज्ञोंकी दृष्टि इस जापानी कविपर पड़ी और उन्होंने उसकी प्रतिभाकी प्रशंसा की। सन् १९१३ में नोगुचीने पुनः इङ्गलैंडकी यात्रा करके आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीमें जापानी काव्यपर भाषण दिये।

सन् १९३५ में योन नोगुची भारत आये और यहांके अनेक विश्वविद्यालयों तथा शान्ति निकेतनमें उनका अभिनन्दन किया गया और उनके सांस्कृतिक तथा साहित्यिक भाषण हुए। कवीन्द्र रवीन्द्रने आपकी काव्य-प्रतिभा और व्यक्तित्वकी प्रशंसा की। नोगुचीके भारतसे जानेके कुछ दिन पूर्व यद्यपि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने उनके द्वारा जापानके सैनिकवादके समर्थनके विरोधमें अपने विचार प्रकट किये, किन्तु इससे नोगुचीके हृदयमें कवीन्द्र रवीन्द्रके व्यक्तित्व और साहित्यके प्रति श्रद्धा भावमें तनिक भी कमी न आयी। ७ अगस्त १९४१ को रवीन्द्रनाथ ठाकुरके देहावसानपर जब जापानमें वहांकी इंडिया सोसाइटीकी ओरसे एक शोक-सभा की गयी उस समय कवि नोगुचीने स्वर्गीय महान् आत्माके प्रति मर्मस्पर्शी उद्‌गार प्रकट किये। उन्होंने कहा था कि 'रवीन्द्रनाथ पूर्वीय साहित्यके नूतन युगके महानतम और सर्वश्रेष्ठ साहित्याकार तथा एक मात्र सांस्कृतिक प्रतिनिधि थे।'

कवि नोगुची भी पूर्वीय साहित्यके नवयुगके एक तेजस्वी प्रतिनिधि थे। उनकी जनताकी संस्कृतिमें अपार श्रद्धा थी। उनका विश्वास था कि जबतक संस्कृति सर्व-साधारण जनताकी न बने तबतक वह संस्कृति ही नहीं। जापानी कलाकी सुकुमारता, माधुर्य और सूक्ष्मता नोगुचीकी कविताओंमें पूर्णरूपसे व्यक्त हुई है। फिर भी उनकी अनेक कविताएं वीर-रससे ओत-प्रोत, अत्यन्त ओजस्वी तथा प्रवाहपूर्ण हैं।

भारतसे जापान लौटनेपर कवि नोगुचीने भारतीय परिस्थितियोंसे प्रभावित होकर ['The Gangescall'sme'] 'गंगा मुझे बुला रही है' शीर्षक एक काव्य लिखा। इस पुस्तकमें एक कविता गंगाके सम्बन्धमें है। शेष कविताएं भी भारतसे सम्बन्ध रखती हैं—'एक बंगाली महिला,' 'काशीकी महिला,' भारतीय नर्तक,' 'प्रेम-संगीत,' 'काली देवी,' 'त्रिमूर्ति,' 'बोधि वृक्षके नीचे बुद्ध' 'ताज महल' 'सन्ध्याके समय नयी दिल्ली' और एक महाराजा तथा महात्मा गांधी, आदि अनेक कविताएँ संग्रहित हैं। योन नोगुचीकी पंक्तियोंमें महाकविकी प्रतिभा स्पष्ट दिखायी पड़ती है और विदित होता है कि वह केवल कल्पनासे नहीं, अपनी अनुभूतिके आधारपर एक चित्र अंकितकर देते हैं। उनकी कविताओंको पढ़नेसे इस बीसवीं सदीमें भी वेदान्त युगकी प्रतिभा दिखायी पड़ने लगती है। कविने जहां भारतीय दर्शनका वर्णन किया है वहां पाठकोंके सामने भारत-मूर्त होनेके साथ-हो-साथ कविकी आत्माकी उच्चाशयता और उसके आध्यात्मिक विकासका भी स्पष्ट प्रतिभास होने लगता है।

अजन्ताके एक चित्रको देखकर कविने लिखा है:—

'अरे नश्वर कलाकार, यहां तो तुमने कलाको समय और दूरीके भी ऊपर उठा दिया है। जादूगर! तुमने एक पुराने उत्सवपर कुछ ऐसा जादू फूँका कि वह बिना समाप्त हुए युगोंतक चलता रहा है।

'यह तुम्हारी ही मधुर इच्छाका परिणाम है कि यह सुन्दरी सदैव ही हाथमें दर्पण लिये अधरोंको रंगती रहेगी। यह तुम्हारी ही कृपा है कि इस युवक और युवतीका प्रेम-राज्य सदा जीवनसे परिपूर्ण रहेगा, जहां उनके प्रेमके बसन्तकी एक भी पत्ती पीली होकर न झरेगी।

'अजन्ता! सैकड़ो आहोंकी मोमबत्तियोंके प्रकाशसे झलमल काम (वासना) की मूर्ति तुम हो!'

ताज महलको देखकर कवि उसे सौन्दर्य और संगीतका तीर्थ कहकर यह कहता हुआ अभिनन्दन करता है कि प्रेम ही सौन्दर्यका सर्वोत्तम निर्माता है।' आगे उसने बड़े ही गर्वके साथ कहा है:—

'जब इसका चक्कर लगाते समय हम सौन्दर्य और प्रेमकी सराहना करते हैं, उस समय हम सभी शाहजहां हैं।' ताजके सौन्दर्यका वर्णन करते-करते कविने एक स्थलपर उसकी परछायीं यमुनामें देखकर कहा है—'किन्तु यह चोरी, जो यमुनामें नीचेकी ओर संकेत कर रही है कहती है कि इससे कुछ

महान् वस्तु नीचे है।' ऐसा कहकर उसने 'खाक' की ओर इशारा किया है।

गंगाके सम्बन्धमें कविने भारतीय आदर्शको सफलतापूर्वक व्यक्त किया है। इसी प्रकार एक बङ्गाली महिलाका वर्णन भी अत्यन्त कुशलतापूर्वक सुन्दर व्यक्त हुआ है। 'काली देवी' शीर्षक ओजस्वी कवितामें कवि नोगुचीने कहा है कि :—

'हे काली ! हमें विनाशका कुछ भी भय नहीं है। हम प्रकृतिके इस महत्तम नियमके स्वागतको सदैव तैयार हैं।' कविकी कल्पना विनाशकी ओर जाग्रत हो उठती है और वह बेचैन होकर कहता है :—

'हे काली ! तू उन्मत्त हो जा, सम्पूर्ण आकाशको तिमिराच्छन्न कर दे दुर्भावनाओं और दुष्टोंका तू अन्त कर दे, उनकी हड्डियोंका पहाड़ कर दे। रक्तकी एक नदी बहा दे।' कवि फिर इस वीभत्स स्थलपर भी अपनी घृणा और अधीरता न प्रदर्शित होने देनेके लिये कह पड़ता है—'मैं उस वीभत्सकालमें भी शोणितकी नदीमें दौड़ूंगा और तेरे चरणोंपर गिर पड़ूंगा।'

इतना धैर्य और इतनी विनम्रता उस विनाशमें भी स्वस्तिका रूप ला देगी। कवि कहता है—'हे कालिके ! संसार इसलिये विचलित हो सकता है कि उसे ज्ञात नहीं है, किन्तु मैं जानता हूँ कि एक दिन तेरा यह विनाशकारी विकराल रूप अत्यन्त कोमल हो जायगा, तुम्हारी भुजाओंमें कल्याणप्रद स्वस्तिका फिर दीखने लगेगी और तुम्हारे नेत्रोंमें शान्ति चमक उठेगी।'

इसी प्रकार अन्य अनेक कविताएं भारतके सम्बन्धमें कवि नोगुचीने लिखी हैं और इस तरह जापान तथा भारतको एक सूत्रमें पिरोनेका प्रयत्न किया है। उनकी कविताओंमें 'मुक्त-आकाश-मेदिनीका महारव' शीर्षक कविता अत्यन्त सुन्दर और श्रेष्ठ है।

निःसन्देह योन नोगुचीकी काव्य-साधना महान् है। वह जापानके सर्वश्रेष्ठ कवि और एशियाकी सांस्कृतिक श्रेष्ठताके प्रचारक थे। वह पूर्वके महान् कवियोंमेंसे एक थे। उनके निधनसे एशियाकी एक बहुत बड़ी सांस्कृतिक तथा साहित्यिक क्षति हुई है।

जय भारती

जय भारती !
जय भारती !
स्वर्गने भी जिस तपोवन की
उतारी आरती !
जय भारती !
जय भारती !
ज्ञान - रवि - किरणें जहां
फूटीं प्रथम विस्तृत भुवन में !
साम्य-सेवा - भावना —
सरसिज खिला प्रत्येक जन में !
मृत्यु को भी जो अमर
गीता-गिरा ललकारती !
जय भारती !
जय भारती !

ध्यान में तन्मय जहां
योगस्थ शिव सा है हिमालय !
कर रही झङ्कार पारावार—
वीणा दव्य अव्यय !
कोटि जन्मों के अघों को
जाह्नवी है तारती !
जय भारती !
जय भारती !
दिग्दिगन्तों में मलय—
वाही समीरण डोलता है !
मुंह जहां सीपी उगलने
मोतियों को खोलता है !
फुल्ल कुसुमों पर मधुर
भ्रमरावली गुंजा ती !
जय भारती !
जय भारती !

द्राविड़, उत्कल, बङ्ग, गुर्जर,
पञ्चनद, कश्मीर, कोशल,
आंध्र, मिथिला, अवध,
राजस्थान आदि समस्त अंचल !
गोद में जिसकी सभी,
सबको समान सवारती !
जय भारती !
जय भारती !
देश यह जो एक मानव—
जाति केवल जानता है;
धर्म, भाषा, रङ्ग को
सब से पृथक ही मानता है !
शान्ति-भू सब के लिये
जो मुक्त बांह पसारती !
जय भारती !
जय भारती !

—श्री आरसी प्रसाद सिंह।

ललिता

कुमारी मृणालिनी राय, लन्दन

दोपहरका वक्त है । सारे घरमें शान्ति है । घरमें इस समय केवल चार प्राणी हैं, छः सात बरसकी ललिता, दो बरसका ललिताके भाईका लड़का मोती एकलम्बी बिमारीसे पीड़ित किन्तु उसे शान्ति पूर्वक सहन कर रही ललिताकी मां और रसोइया । मकान बहुत बड़ा है । उसमें बीस पच्चीससे कम कमरे न होंगे और घरके चारों ओर दस बारह बरामदे भी ।

ललिताकी, घरके सभी दरवाजों खिड़कियों, अलमारियों सीढ़ियों, मेजों, कुर्सियोंसे मैत्री है । वही उसके दोस्त और दुश्मन हैं । उसकी अधिकतर बातचीत इन्हीं सभी चीजोंसे होती है । और मकानके बरामदेकी छतपर लगे मधु-मक्खियोंके छत्ते तकके साथ उसका एक निजी सम्बन्ध है। घरके सामनेकी सड़कपर गिल्ली और आंख मिचौनी आदि खेलें खेलते मुहल्लेके लड़के लड़कियोंके साथ उसकी बात-चीत कम हो.हुई है किन्तु हर रोज बरामदेमें झुककर उसने उनकी खेलोंमें ऐसी दिलचस्पी ली है जैसे वह उनके साथ ही खेल रही हो । बहुत बार उसका जी चाहा है कि वह नीचे जाकर उनकी खेलोंमें शामिल हो जाय । किन्तु बाबूजीके डरसे वह नीचे नहीं जाती । बाबूजी कहते है कि गली-मुहल्लेके लड़के-लड़कियां मैले कुचैले गन्दे हैं, उनके साथ खेलनेसे ललिताके सरमें जुएं पड़ जाएंगी । ललिताको जुओंका इतना डर नहीं जितना बाबूजीकी, जिनसे वह बहुत डरती है, डांट पीटका है । सामने पेड़ोंपर बैठनेवाले पक्षियोंसे भी उसने मनही मन बातचीत की है । किन्तु परिवारके दस बारह प्राणियोंसे जो, आयुमें उससे काफी बड़े हैं ।

ललितासे बड़ी कमला उससे छः साल बड़ी है । उससे मैत्री होनेका कभी मौका नहीं आता । मां, बाबूजी विश्वास भैया ,बिमला और शालिनी बहन, कमला सभीको प्रातः उठकर वह नमस्कार करती है, वे भी नियमानुकूल उसे उत्तर देते हैं । मां बीमार हैं तो एक उसे सवेरे नहला धुलाकर कपड़ा पहना देती है, बाल संवार देदी है, और दूसरी उसके और लोगों के नाश्ते आदिका प्रबन्ध करती है । घरके लोगोंसे बातचीत भी होती रहती है लेकिन अधिकतर इस प्रकारकी—"ललिता जाओ बाहर बरामदेमें जाकर अपनी गुड़ियोंसे खेलो, मेजपर पड़ी किताब तो उठा लाओ ललिता, फिर कमीज गन्दी कर दी न ललिता ! आलमारीमें पड़ी हुई चीजें न छेड़ो ललिता, नौ बजने वाले हैं ललिता अब जाओ अपने बिस्तरपर सो जाओ" आदि-आदि । ललिता मानो सभीके जीवनमें एक बाधा स्वरूप है जिसे घरके लोगोंने जीवनमें एक स्वाभाविक बाधा स्वरुप स्वीकार कर लिया है । और ललिताके लिये भी घरके लोग अधिकतर उसकी विचित्र एकाकी, किन्तु नाना प्रकारकी मैत्रियोंसे व्यस्त जिन्दगीमें बाधा स्वरूप हैं, किन्तु यह बाधाएं उसके जीवनका एक स्वभाविक भाग है इसलिये उसने भी इन्हें स्वीकार किया है । वैसे परिवारके बाकी सभी लोग एक अन्य जगतमें बसते हैं और ललिता एक अन्य जगतमें । छोटा मोती भी है किन्तु वह तो अभी अच्छी तरह दौड़ भाग भी नहीं सकता, सीढ़ियोंपर भी रुक रुककर चढ़ता है और कई बार आधी ही सीढ़ियां चढ़ एकाएक नीचे लुढ़क जाता है—वह उसका साथी कैसे बन सकता है । मांको मोतीसे बहुत स्नेह है । चारपायीपर लेटी-लेटी वे अपनी कमजोर आवाजमें मोतीको पुकारती है और गोल-मटोल मोती सुन्दर मोतीहीकी तरह टेढ़े सीधे पांव रखता तुतलाता मांकी चारपायीके पास पहुंच जाता है । ललिताकी मांकी आवाज सुनकर मोतीके पीछे-पीछे मांके कमरेतक पहुंच जाती है । किन्तु मांको वह नहीं जानती । उसे साहस नहीं होता कि वह कमरेकी दहलीज पार करके मांके पलङ्गपर बैठे और उनसे बातचीत करे । इसलिये वह केवल दरवाजेकी ओटमें खड़ी हो मोती और मांकी बातचीत सुनती है । मोती जब रोटीको 'लोती' और कुरसीको 'तुलछी' कहता है तो मांका पीला चेहरा कुछ देरके लिये

खिल उठता है और अपनी क्षीण हंसी हंसती-हंसती वे मोतीसे उसीकी तुतली भाषामें बातचीत करती हैं। ललिता जानती है कि यदि वह भी कुरसीको 'तुलछी' कहे तो मां या घरका अन्य कोई प्राणी उसे डांट देगा। मां मोतीसे बातचीत करती रहती है किन्तु उनकी नजर कभी दरवाजेकी ओटमें खड़ी ललिताकी ओर नहीं आती और यदि कभी आती भी है तो वे लापरवाहीकी हंसीसे कह देती हैं—'देखन दरवाजेकी ओटमें ललिता कैसे छिपी खड़ी है।' और एक-दो बार जब मांकी तबियत अधिक खराब रही है तो उन्होंने यह भी कहा है,—'निगोड़ी इसका जन्म ही मेरी बीमारीका कारण है।'

मां जो कुछ कहती है सत्य ही है। ललिताका जन्म न होता तो वे आज मृत्युके द्वारपर न खड़ी होतीं। किन्तु निगोड़ी ललिता अपना यह अपराध समझनेकी कोशिश करनेपर भी नहीं समझ पाती। पहले-पहल वह मांकी इस खीज भरी आवाजसे भयभीत होकर रो पड़ती थी किन्तु अब केवल सिसियाती-सी होकर वह दरवाजेसे हट जाती है और बरामदेमें झुककर अपने चिरपरिचित पेड़ों, पक्षियों और सड़कपर खेलते लड़के-लड़कियोंकी क्रीड़ाओंमें तल्लीन हो जाती है।

कल सुबहसे सुन रखा है कि देशके महाराजा साहब मृत्यु-शय्यापर हैं। ललिताने अपनी बीमार मांको देखा है जो सारा वक्त चारपायीपर पड़ी रहती हैं। उसने मृत्यु-शब्द कई बार सुना है। यद्यपि वह इस शब्दका अथ नहीं जानती तो भी इस शब्दके साथ उसके मनमें एक अजीब भयका भाव छुपा हुआ है और यही भाव कलसे उसके मनको अशान्त किये हुए है। उसे आश्चर्य और क्लेष इस बातका है कि परिवारके किसी अन्य प्राणीके चेहरेपर या बातचीतसे इस प्रकारकी घबराहट या चिन्ता नहीं दीखती जो उसे कलसे परेशान किये है हालांकि अक्सर उसने मां, बड़ी बहन या बाबूजीको किसीकी मृत्युके बारेमें बातचीत करते, दुःखी और परेशान देखा है, उन्हें कभी-कभी इस बातका जिक्र करते आंसू बहाते भी देखा है।

उसने देशके महाराजाको कभी नहीं देखा। किन्तु उनका चित्र घरकी बैठकमें टंगा है सुन्दर वस्त्राभूषण पहने मूछोंवाला मोटा-सा एक आदमी, बस! किन्तु उसके हृदयका एक कोना जो किसी अज्ञात भावनाके अभावमें अभीतक रिक्त था कुछ देरके लिये भर गया है। किसीसे अपनापन अनुभव कर सकनेकी जितनी चेतना और क्षमता उस छोटी-सी ललितामें है, वह सब उस अज्ञात व्यक्ति, जिसे वह महाराजा साहबके नामसे जानती है, उसका चित्त उनके कल्पित व्यक्तित्वकी ओर केन्द्रित हो गयी है। घरके एक-दो व्यक्तियोंसे उसने इस बारेमें बातचीत, पूछताछ करनेकी कोशिश की है। एक अजीब अस्पष्ट भाषामें उसने उनके सामने अपने भावोंको व्यक्त करनेका प्रयत्न किया है। किन्तु उसके प्रश्नोंको मूर्खता समझकर किसीने उत्तर नहीं दिया उसके व्यथित, परेशान मनको सांत्वनाकी कितनी आवश्यकता है यह किसीको ज्ञात नहीं! रसोइया चरणदाससे भी उसकी अधिक मित्रता नहीं। वह भी ललिताकी अपेक्षा मोतीको अधिक चाहता है। हमेशा उसे ही गोदीमें उठाये फिरता है। फिर भी ललिता उसे घरके अन्य प्राणियोंसे अधिक जानती है।

रसोईकी खिड़कीके पास खड़ी ललिता चरणदाससे पूछती है—'सच-सच बताओ दास, क्या महाराजा साहब मर जायेंगे?'

'मर जायेंगे। वे तो आज सवेरे मर भी गये पगली। वे तो मर भी गये, खत्म हो गये। घरके सभी उनके जनाजेका जुलूस देखने गये हुए हैं, तुम्हें पता ही नहीं।'

'नहीं महाराज साहब नहीं मरे, तुम झूठ बोलते हो' ललिता रोती हुई कहती है।

'महाराजा साहब तेरे चचा लगते हैं? देखो तो सही बेवकूफ पागल लड़की रो रही है!' चरनदास हंसता है और कुछ गुनगुनाता रसोईके काममें इस तरह लग गया जैसे उसे इस घटनासे कोई लगाव, कोई सम्बन्ध नहीं। मानो यह समाचार सुनकर उसे खुशी हुई है।

एकके बाद दूसरी तोप छूटनेकी आवाज आती है।

'लो तुम्हारे महाराजा साहबको जलानेके लिये ले चले हैं लोग। मुझे घरके कामसे छुट्टी मिलती तो मैं भी जुलूस देखने जाता। बड़ा शानदार जुलूस होगा, विश्वास भैया, कमला, विमला सभी सेठ चन्दुलालके मकानके बरा-

मदेमें खड़े जुलूस देखेंगे। स्कूलों कालेजोंके लड़के बैण्ड बजायेंगे, पैसे रुपयोंकी बारिस होगी। मुझे कामसे छुट्टी मिलती मैं भी पांच रुपये जमा कर लाता' चरणदास कहता है।

'नहीं मरे, नहीं मरे, नहीं मरे महाराजा साहब, तुम झूठे हो, झूठ कहते हो' ललिता रोते हुए कहती है।

'मर गये हैं, मर गये हैं, मर गये हैं तुम्हारे महाराजा साहब। मैं मांजीसे कहता हूं कि ललिता रो रही है फिजूल —कहूँ जाकर !'

'ना, ना, ना झूठा, मैं तेरे साथ नहीं बोलती, मेरी तेरे साथ कुट्टी' और ललिता रसोईसे भागकर मधुमक्खियोंके छप्परवाले बरामदेमें जाकर चुपचाप सिसकने लगती है।

एकके बाद दूसरी गरज रही आसमानमें भयानक गूंज पैदा करती तोपोंकी आवाजसे उसका भय और रोदन भी बढ़ जाते है।

बरामदेके सामने किसी पड़ोसीके घरके आंगनमें मुर्गियां अपने नन्हें बच्चोंके साथ टहल रही हैं। अनाज और कीड़े मकोड़े पकड़कर खा रही हैं। कभी-कभी एक टांगपर खड़ा मुर्गा नींदसे चौंक जोरसे बोल उठता है। आंगनकी एक तरफ चारपाइयोंपर धान सूखनेके लिये पड़े हैं, दूसरी तरफ कटे हुए टमाटर, शलगम, बैंगन आदि। रोते-रोते ललिताको याद आयी कि कैसे उस दिन घर वापस आते समय उसने सड़कपर पड़ी चारपाइयोंपर सूखते धानको अपने पैरोंसे इधर-उधर बिखेर दिया था। लेकिन उसी वक्त गन्दे कपड़े पहने एक मोटी सी औरत उसे पकड़नेके लिये दौड़ी थी पर उसे पकड़ न सकी थी। यह सोचकर उसे हंसी आ गयी। लेकिन उस औरतने कहा था, 'भाग जाओ, भाग जाओ तुम्हारे बाबूजी मिलेंगे तो उनसे तुम्हारी शरारतोंकी शिकायत करूंगी।'

अभी तक उससे घरमें किसीने धान बिखेरनेके बारेमें कुछ न कहा था। लेकिन शिकायत तो होगी ही और फिर डांट भी पड़ेगी ही। यह सोचकर उसने फिर सिसकना शुरू कर दिया।

मुर्गियां और उनके चञ्चल बच्चे दाना और कीड़े-मकोड़े पकड़-पकड़कर खाते रहे। मुर्गा कभी एक मुर्गीके पीछे और दूसरी मुर्गीके पीछे भागता और मुर्गियां 'कड़ै-कड़ै' सी आवाज निकालती, पंख फड़फड़ाती हुई इधर उधर भाग गयी। तोपोंकी आवाज बन्द हो चुकी थी। ललिता अपना रोना और रोनेकी वजहको फिलहाल मुर्गियों, मुर्गे और उनके बच्चोंकी भाग दौड़में भूल चुकी थी लेकिन रह रहकर उसे हिचकी आ जाती।

बरामदेमें अब काफी जोरोंसे धूप पड़ रही थी और अब वह ललिताके सर और पीठपर भी आन पहुंची थी। ललिताको नहीं मालूम कब वह मुर्गियों और उनके नन्हें बच्चोंकी दिलचस्प हरकतोंमें डूबी फर्शपर लेटकर सो गयी।

गीत

किसने मेरे अन्तर में—
सुख का शीतल स्रोत बहाया !
किसने मेरी उर-वीणा पर
एक मधुर संगीत सजाया !
संगिनि, तुझको ज्ञात नहीं क्या ?

किसने मेरे मधुर स्वप्नों को
जागृति में साकार किया है !
किसने मेरे मृदु भावों को
कोमलतम आधार दिया है !
रंजिनि, तुझको ज्ञात नहीं क्या ?

किसने प्रणय-पाश में कर—
आबद्ध मुझे लाचार किया है !
किसने स्नेह-रश्मियों से—
स्वर्णिम मेरा संसार किया है !
रंगिनि, तुझको ज्ञात नहीं क्या ?

—श्री जितेन्द्र कुमार

परमाणु-युगकी सम्भावनाएं

श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

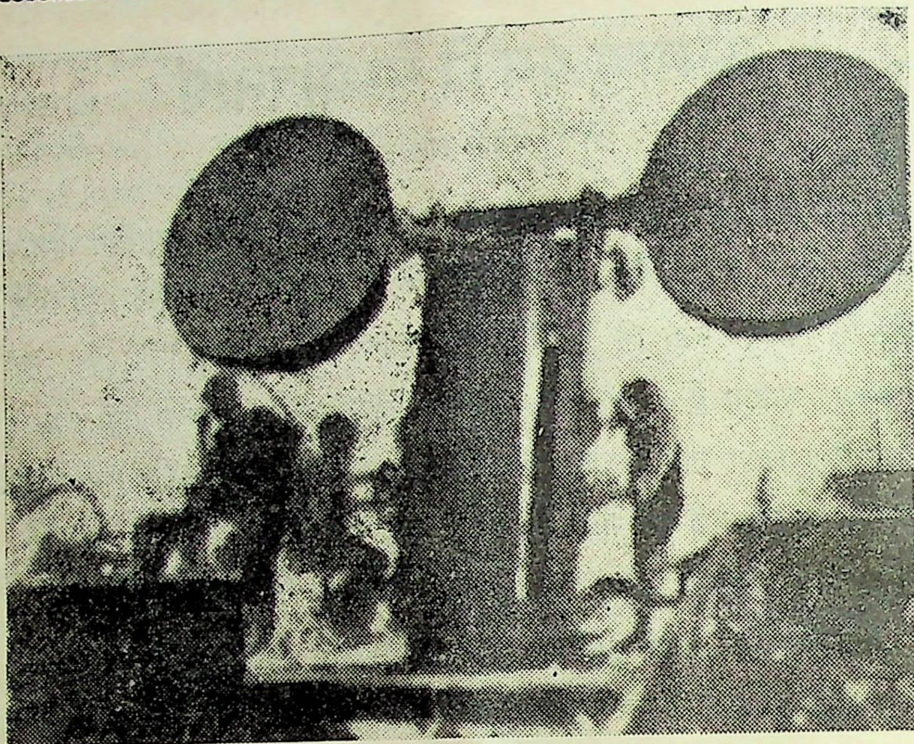
संयुक्त राष्ट्र सङ्घके अणु-शक्ति कमीशनने अणु-शक्तिके अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रणके सम्बन्धमें द्वितीय रिपोर्ट भारी बहुमतसे स्वीकार कर ली है। केवल रूसने विरोध किया और पोलैण्डने वोट नहीं दिया। रूसने द्वितीय रिपोर्टके विरोधमें कहा कि इसके द्वारा अमेरिका अणु-अस्त्रके निर्माणपर एकाधिकार स्थापित करना चाहता है। अतः यह सम्भव नहीं कि अणु समस्याओंमें एक देशका आधिपत्य मान लिया जाय। रूसके विरोधके बावजूद द्वितीय रिपोर्टको १२ राष्ट्रोंने स्वीकार कर लिया है जो शीघ्र ही सुरक्षा कौंसिलके सामने पेश की जायेगी।

द्वितीय रिपोर्टके मुख्य प्रस्ताव इस प्रकार हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय अणु एजेन्सीके लिये अपने यूरेनियम खानकी जरूरत नहीं है बल्कि इसके कोटापर कड़ा नियन्त्रण होना चाहिये। अणु-शक्ति मशीनोंका मालिक एजेन्सी हो और उसीके द्वारा संचालित की जाय। उक्त एजेन्सीको उन सब स्थानोंके निरीक्षणका अधिकार होगा जहां अणु-शक्ति उत्पादनकी सम्भावना होगी।

वैज्ञानिक आविष्कारोंकी उत्तरोत्तर सफलता बीसवीं सदीकी अपनी सफलता है। परमाणु-सम्बन्धी आविष्कारोंकी सफलतासे ऐसा प्रतीत होने लगा है कि हम तीव्र गतिसे उस परमाणु-युगकी ओर अपने कदम बढ़ा रहे हैं, जिसमें कल-कारखानोंवाले क्षेत्रोंको धुएंके काले और स्वास्थ्यको क्षति पहुंचानेवाले बादलोंके बीच न रहना पड़ेगा। उस युगमें शहरोंकी प्रशस्त सड़कोंपर बिजली, टेलीफोन आदिके तारोंका मकड़ी जैसा जाला न दिखलायी पड़ेगा। मोटरोंको पेट्रोलके लिये मुंहताज न रहना पड़ेगा, कारण परमाणु-युगमें मोटरें बिना पेट्रोलसे ही सरपट दौड़ेंगी। रसोईघरोंमें धुएंसे काली हो चुकी जो दीवारें हमें आज भली नहीं लगतीं और जिनकी तरफ दृष्टि जाते ही एक घृणाका भाव हमारे मनमें आ जाता है, यह सब परमाणु-युगमें नहीं होगा।

आनेवाले परमाणु-युगमें प्रकाश और गर्मी यूरेनियम २३५ अथवा रैडियम (रांगे-जैसी एक धातु), शीशा अथवा पैराफीन आदिमें सन्निहित शक्ति द्वारा पर्याप्तसे भी अधिक मात्रामें प्राप्त होने लगेगी।

प्रश्न उठता है कि ऐसा युग सचमुच कभी इस दुनियामें आयेगा अथवा नहीं? यदि आयेगा तो कब—दस, पचास, सौ या हजार वर्षोंमें? समय चाहे जितना लग जाये, लेकिन अब इसकी सत्यतामें, वैज्ञानिक आविष्कारोंकी सफलताको देखते हुए, सन्देह करनेकी कोई गुंजाइश नहीं। परमाणु-युगको अब किसी कविकी कपोल कल्पना नहीं कह सकते। निरन्तर प्रयत्नशील वैज्ञानिकोंके लिये यह युग अब असम्भव अथवा बहुत दूर नहीं प्रतीत होता। हां, इसे प्राप्त करनेके पहले अभी अनेक जटिल समस्याओंको हल अवश्य करना होगा। जो रोड़े इस मार्गमें हैं, उन्हें दूर करना होगा। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि परमाणु-युग एक सदीके भीतर ही इस पृथ्वीपर आ पहुंचेगा।



क्षितिजके उस पार क्या है? यह यन्त्र इसीप्रश्नकाउत्तर देगा।

परमाणु-युग में पहुंचनेका जो मार्ग है, सन्देह नहीं कि फिलहाल बड़े-बड़े रोड़ोंसे अवरुद्ध है। लेकिन विज्ञानने इन रोड़ो की तुलना में कहीं बहुत बड़े-बड़े रोड़ोंको पार कर लिया है। आजसे ४१ वर्षपूर्व जब सर जे० सी० बोस ने पहले-पहल बेतारके तारकी 'शार्ट वेव्ज' (लघु लहरें) प्रस्तुत की थीं, तब बहुत कम लोगोंने यह सोचा था कि एक दिन ऐसा भी आयेगा जब दुनियाके किसी भी एक छोरपर बैठ कर एक आदमी, दूसरे छोरपर बैठे दूसरे आदमीसे इस आविष्कारके द्वारा सहज ही बातचीत कर सकेगा। इसी तरह सन् १६२४ ई० में जब जे० एल० बर्डने पहले-पहल टेलीविजनका प्रदर्शन किया था, तब लोगोंने इसे एक वैज्ञानिक सनककी संज्ञा दे डाली थी और बड़ा मंहगा सिद्ध होनेवाला आविष्कार कहकर इसकी उपेक्षा कर दी थी। सर सी० वी० रमणने जब छः वर्षके अनवरत परिश्रम और धैर्यके बाद प्रकाश सम्बन्धी आविष्कार किया था, तब बहुत कम लोगोंने इसे युगकी अनोखी देन स्वीकार किया था।

प्रत्येक वैज्ञानिक आविष्कारका प्रायः यही हाल रहा। प्रारम्भमें लोग इन आविष्कारोंकी महत्ता, उपयोगिता और प्रचारका समर्थन शायद इसलिये नहीं र सक्ते थे कि ये बड़े कष्ट-साध्य, श्रम-साध्य और व्यय-साध्य प्रतीत होते हैं। लेकिन वैज्ञानिकोंने सदा ऐसे प्रतिरोधों और रोड़ोंपर विजय प्राप्त की है। आजके वैज्ञानिक परमाणु सम्बन्धी बातोंको उतनी ही बारीकी से समझने लगे हैं, जितनी कि हम अपने कमरेकी चीजोंको जानते, समझते हैं।

वैज्ञानिक आविष्कारों के इतिहासमें परमाणु-शक्ति का प्रवेश सर्वथा अभूतपूर्व रहा। भले ही यह प्रवेश तब हुआ जब कि दूसरा महायुद्ध समाप्त हो चुका था। जापानके दो शहरों-हिरोशिया और नागासाकी को जब परमाणु-बमने पलक मारते ध्वंस कर दिया, तब दुनिया इस परमाणु-शक्तिकी बात सुनकर अवाक् रह गयी! इस परमाणु-शक्तिने आलीशान इमारतें धराशायी कर दीं, लोहेकी दीवारोंको भाप बना कर उड़ा दिया, पृथ्वीके धरातलपर भूकम्प मचा दिया। इस विनाश-लीलामें जो हजारों प्राणी मकानों आदिके भग्नावशेषोंके नीचे जीवित बच रहे थे, उन्हें परमाणु-बमकी बची-खुची किरणोंका बुरी तरह शिकार हो जाना पड़ा और अपने प्राणोंसे सदाके लिये हाथ धोना पड़ा।

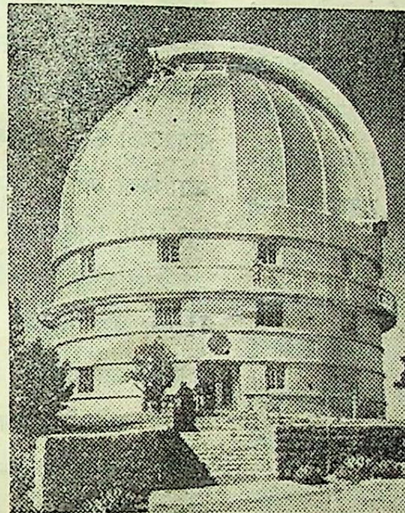
बहुतसे लोग यह समझते हैं कि इस विनाशकारी और प्रलयंकर परमाणु-शक्तिका उपयोग मात्र ध्वंसकारी है। लेकिन यह धारणा गलत है। परमाणु-शक्तिका उपयोग युद्धास्त्रके अतिरिक्त सृजनात्मक कार्योंमें भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

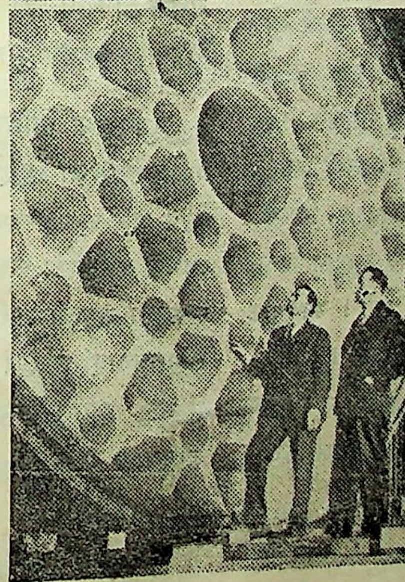
लेकिन परमाणु-बमका रहस्य उसके सृजकों द्वारा एकदम गुप्त रखा जा रहा है। इससे प्रतीत होता है कि पर-

माणु शक्तिका विकास दुनियाके सभी राष्ट्रों द्वारा सम्मिलित रूपसे अथवा मिल-जुलकर न किया जा सकेगा। विज्ञानकी उन्नतिकी दृष्टिसे यह रुख घातक है।

यों तो परमाणु-बमका ९५वें प्रतिशत रहस्य ऐसा है जिसे सभी वैज्ञानिक जानते समझते हैं। बीज सम्बन्धी किसी भी उन्नत विज्ञानमें यह रहस्य स्पष्ट रूपसे ज्ञातव्य है। बाकी ५ प्रतिशत रहस्य, जिसे गुप्त रखा जा रहा है, उन्हीं वैज्ञानिकोंतक सीमित है। जो युद्ध अथवा विनाशके पथपर बढ़ रहे हैं। जब तक दुनियाकी महती शक्तियां कमजोर राष्ट्रोंको इस परमाणु-बमके भयसे भयावह बनाये रहेंगी और उन्हें हड़प लेनेकी अनुचित प्रवृत्तियोंका शिकार बनी रहेंगी, तबतक यह रहस्य गुप्त ही रहेगा। लेकिन बीज सम्बन्धी-विज्ञान क्या है और उसकी प्रयोग-विधि क्या है, यह कोई रहस्यपूर्ण बात नहीं है। यह रहस्य जो हुए हैं वह यही कि विशालतम शक्तिको संकुचित कर लघुतम रूपमें इस प्रकार केन्द्रीभूत किया जाता है कि किसी निश्चित स्थान और समयपर उसका विस्फोट किया जा सके।

पदार्थ विज्ञानके अनुसार समस्त सृष्टिके प्रमुख तत्व ९२ हैं। पदार्थ को अलग करते-करते जो लघुतम अंश बच रहता है, उसे परमाणु कहते हैं। परमाणुको पहले स्थिर अथवा निश्चेष्ट समझा जाता था। परन्तु अङ्गरेज रासायनिक टामसनने यह पता लगाया कि परमाणुके भीतर भी हलचल होती रहती है। उन्होंने परमाणुके इलेक्ट्रोन तत्वका पता लगाया। इस आविष्कारके लिये उन्हें 'नोबिल' पुरस्कार भी मिल चुका है। यह भी सिद्ध हो चुका है कि परमाणुमें इलेक्ट्रोन, प्रोटान और न्यूट्रान तत्व रहते हैं।





चन्द्रलोकके निरक्षणके लिये निर्मित एक प्रयोगशाला।

परमाणुके भीतर सन्निहित हलचल को यदि फोड़ा जा सके, तो प्रलयंकर शक्ति उत्पन्न किये जानेका पता भी यूरोपके रसायन-शास्त्रियोंको पहलेही लग चुका था। डाक्टर टुवेने यह पता लगाया कि परिमाणुके प्रोटान तत्वमें पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणसे भी अधिक शक्ति है। सूर्यमण्डलमें जिस भांति केन्द्रमें एक सूर्य है और उसीके आस-पास अन्य ग्रह चक्कर काटते रहते हैं, उसी प्रकार परमाणुमें भी एक केन्द्र रहता है, जिससे आस-पास उसके अन्य घटक फिरते रहते हैं। दो परमाणुओंके घटक जब निकट आते हैं, तब उनमें एक अरब, दस करोड़ वोल्टस् बिजलीकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है। प्रकाशके लिये हम जो बल्ब जलाते हैं, उसमें साधारणतः २५० वोल्ट्स बिजलीकी शक्ति होती है। इसी उदाहरणसे हम परमाणु शक्तिकी प्रचण्डताकी कल्पना कर सकते हैं।

परमाणु की भयङ्कर शक्तिका रहस्य ज्ञात हो जानेपर, लारेंस नामक एक अमरीकन रसायनिकने इसे तोड़ने फोड़नेका भी आविष्कार कर डाला। सायक्लोट्रान नामक एक यन्त्र बनाया गया जिसमें बिजली और मेगनेशियममें कुछ परमाणुओंको चक्कर खिलाकर एक ऐसी विशेष शक्ति उत्पन्न की गयी जिसे परमाणुपर गिराया गया तो वह टूट गया। इस आविष्कारके लिये भी लारेंसको नोबिल पुरस्कार मिल चुका है।

परमाणु के टूटने फूटनेसे प्रलयकर संहारक शक्ति प्राप्त करनेके लिये संसारकी लगभग १५००

संस्थाएं और अगणित प्रयोग-शालाएं अपने प्रयत्नोंमें लगी रहीं।

सन् १६४२-४३में अङ्गरेज सैनिकोंने ऐसी दो नाजी प्रयोग शालाओंपर छापा मारा था। अपार क्षति सहकर भी अङ्गरेजोंने इन दोनों प्रयोग-शालाओंको विनष्ट कर दिया था।

परमाणुकी सुप्त अमोघ शक्तिको जागृत करनेके लिये अमरीकन और अङ्गरेज रसायन शास्त्रियोंकी एक समिति पहलेसे ही अपने प्रयोग कर रही थी। इन दोनों देशोंने अरबों मुहरें इस प्रयोगपर पानीकी तरह बहा दी है।

अमरीका टेनसी परगनेमें इस प्रयोगके लिये 'ओकरीज' शहर बसाया गया था और ७५,००० कर्मचारी इस कार्यमें संलग्न थे। प्रयोग-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातें एकदम गुप्त रखी जाती थीं। मुश्किलसे चार छः आविष्कारक ऐसे थे, जो एतद् विषयक समस्त रहस्योंको जानते थे। इस शहरको फौजी ढङ्गपर बसाया गया था ताकि दूसरोंको पता ही न चले — शङ्का ही न हो कि यहां कोई अभूतपूर्व वैज्ञानिक प्रयोग किया जा रहाहै! कहते हैं, १,००० हथियार बन्द सिपाही चौबीसों घण्टे यहां पहरा देते रहते थे और सदा इस बातका ख्याल रखते थे कि इस प्रयोगकी गुप्त बातें कहीं किसी प्रकार फूट तो नहीं रही हैं।

संसारका निर्माण जिन ९२ तत्वोंसे हुआ है उनमें यूरेनियम सबसे कड़ा है। इसका परमाणु टूटना बड़ा कठिन है। इसलिये इसमें अपरमित शक्ति है। यूरेनियमके परमाणुपर अन्य जातिके परमाणुका न्यूट्रान गिरतेही वहफूट गया। यूरेनियमके फटतेही उसके निजी न्यूट्रान निकलें, जो यूरेनियमकेही भीतर चले गये। बारम्बार न्यूट्रान निकलने लगे और केन्द्रमें तीव्रतापूर्वक पहुंचने लगे। प्रतिबार अधिकतर शक्ति और प्रकाश उत्पन्न होता गया। यूरेनियमके एक घनफुटमेंसे एक सेकण्डके सौवें हिस्सेमें सूर्य-सदृश विलक्षण प्रकाश चमकने लगा। यह शक्ति दस लाख किलोवाट थी। कहते हैं, १५० मीलकी दूरीपर बैठी एक अन्धी लड़कीको इसके कारण ऐसा अनुभव हुआ कि कहीं कुछ चमक अचानक उत्पन्न हुई है। इस प्रकाश और चमकपर नियन्त्रण प्राप्त कर उसे एक छोटेसे डब्बेमें बन्दकर रखने और यथा समय उसका विस्फोट किये जानेका रहस्य भी ज्ञात हो गया।

वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि परमाणु बमका उपयोग ध्वंसात्मक कार्यों तक ही सीमित नहीं रहेगा, प्रत्युत सृजनात्मक कार्योंमें भी सफलता-पूर्वक किया जा सकेगा। वर्फके विशालकाय पहाड़ोंको तोड़-फोड़कर उनके बीचमें आने-जानेके लिये प्रशस्त और सुविधाजनक पथ निर्माणकर लेना परमाणु-बमके लिये साधारण सा कार्य होगा। वायु-मण्डलकी सर्दी गर्मीको घटा बढ़ाकर अपने मनके माफिक बना लेना भी सहज सम्भव हो जायगा। लोहा, मेगनेशियम आदि धातुओंकी खानोंका पता लगाकर उनमेंसे अत्यन्त आसानीसे हजारों मन धातु निकाली जा सकेगी। कोयला और बिजली द्वारा जो शक्ति आज बड़ी कठिनाईसे प्राप्त की जा रही है, वह यूरेनियम २३५ से कई गुनी उत्पन्न हो सकेगी। तब दुनियाको इस बातकी चिन्ता न रहेगी कि पृथ्वीके गर्भसे निकालनेवाला कोयला यदि कभी समाप्त हो गया, तो बिजली कैसे उत्पन्न की जायगी और दुनियाका मशीन-युग कैसे स्थिर रह सकेगा।

दुनियाके विभिन्न भागोंमें तत्परतापूर्वक एतद् विषयक प्रयोग किये जा रहे हैं। सस्ते मूल्यपर परमाणु-शक्ति प्राप्त करने और सृजनात्मक कार्योंके लिये उसे व्यवहृत किये जानेके तरीकोंका पता लगाया जा रहा है। इन प्रयोगोंकी सफलता अवश्यम्भावी है, और तब परमाणु-युगकी समस्त सम्भावनाएं साकार हो जायेंगी, जिनके बीच इस दुनियांमें और हमारे भारतवर्षमें भी युगान्तर उपस्थित हो जायगा।

———

बिन श्रम मिले न काहि

श्री विनायक नानेकर

एक भक्तपर प्रसन्न होकर भगवानने उससे वर मांगने को कहा। भक्तने मांगा, भगवन् सब संसारी सुखी हों, भगवानने मुस्कुराते हुए कहा, 'तथास्तु' इस वरदानके कुछ काल पश्चात् धुवाधार वर्षाके कारण उस भक्तका मकान गिर पड़ा। भक्तने उसके मरम्मतके लिये काम करनेवालोंकी तलाश किया मगर कोई काम करनेको राजी नहीं होता था क्योंकि सब अपने-अपने घरमें सुखी थे। किसीने भक्तके घरकी मरम्मत नहीं की। भक्त बड़े धर्म संकटमें पड़ा उसने फिर भगवानसे याचना की। भगवान प्रकट हो बोले, इसी कारण तो मैंने संसारमें मनुष्योंको कुछ न कुछ घाटेमें रखा है। कर्म और धर्म समझकर न सही तो गरज समझकर ही सही रहें एक दूसरेके उपयोगमें आये और प्रयत्नशील रहें। यदि मनुष्य सुखी रहे तो संसार जड़वत् हो जायेगा और कोई काम हो नहीं होगा। इसीसे संसारमें मैंने कर्म प्रधान रखा है।'

किसीने प्रसिद्ध नाटककार बर्नार्डशासे उनके ९० वीं सालगिरहपर प्रश्न किया, 'इस उमरमें भी आपके उत्तम स्वस्थका रहस्य क्या है ?'

शाने जवाब दिया, रहस्य यही है कि मैं हमेशा अपने को कुछ न कुछ काममें लगाये रखता हूँ।। जिसे निरोग और दीर्घायुगी होनेकी आशा है उसे अपनेको हमेशा किसी न किसी काममें लगाये रखना चाहिये।'

× ×

मनुष्यका जन्म संसारमें कुछ न कुछ करनेके लिये ही होता है। यह नैसर्गिक नियम है कि मनुष्यको परिश्रमी और चरित्रवान होना चाहिये वरना जिस तरह पड़े लोहेको जङ्ग लग जाती है, इकट्ठा पानी गंदा हो जाता है उसी प्रकार कर्महीन मनुष्य अपने तन और मनको बिगाड़कर आयु घटा लेता है। मनुष्योंके रोगी, चरित्रहीन और दरिद्र रहनेका कारण यही है कि वे प्राकृतिक नियमोंका पालन नहीं करते। परिश्रमसे चित्तपर बड़ा असर पड़ता है और मनुष्य सदाचारी बनता है। खाली खोपड़ीमें बुराइयां रेंगने लगती हैं। उदाहरणार्थ एक परिश्रमी मनुष्यको लीजिये। दिन भरके परिश्रमके पश्चात् रूखी-सूखी रोटी खा कैसे आनन्दसे गहरी नींदमें सोता है ? न कभी चिन्ता सताती न कोई रोग दबाता है।

वही एक बड़े पेटवाले सेठको देखिये। दिन भर तकियेके सहारे पड़ा रहता है और चिकनी-चुपड़ी खाकर मी बिस्तरेपर पड़े-पड़े करवटें बदलते-बदलते ही रात बीतता है। चिन्ताके मारे खाना हजम नहीं होता और उसके घरका डाक्टर हमेशा चक्कर लगाया करता है।

जिसे आरामका आनन्द लूटना हो उसे परिश्रम करना चाहिये। हम देखते हैं कि इस संसारमें हर वस्तुके लिये विरोधार्थी शब्द हैं और उनका एक दूसरेसे घनिष्ट सम्बन्ध है। बिना एकके दूसरेका कोई महत्व नहीं। दुःखके बिना सुख कोई वस्तु नहीं। उसी प्रकार परिश्रमके बिना विश्राम शब्द ही नहीं रह सकता। इसलिये आरामके लिये परिश्रमकी आवश्यकता है। परिश्रमके वगैर आरामका कोई महत्व नहीं। मुफ्तमें पायी हुई वस्तुसे कोई आनन्द प्राप्त नहीं होता न उससे आदर ही मिलता है। मगर पुरुषार्थसे कमाई वस्तुसे एक प्रकारका मन उत्फुल्ल हो उठता है और मनुष्य सम्मानका पाम भी होता है। खुदकी बनायी रोटी बड़ी स्वादिष्ट होती है। हम खुदकी कमायी दौलतको खर्च करनेमें उत्साहित होते है। परिश्रममें सुख है और स्वाद भी है।

काम और नाम दोनों मनुष्यके दाहिने और बायें हाथ हैं। मेरे दो-तीन मित्र हैं जिनके नाम हैं दुर्गादास शिवाजी और विक्रम। मगर ये लोग केवल नामके ही हैं। न उन्हें कोई जानता है न उनका कोई सम्मान है, न उनकी पूजा करता है। इससे स्पष्ट है कि मनुष्यकी कद्र नामसे भी नहीं होती। मनुष्यकी महिमा उसके कामको देखकर ही गायी जाती है। कामके कारण ही नामकी महिमा है।

धार्मिक ग्रन्थ और इतिहास ऐसे ही पुरुषार्थी मनुष्यके कर्मोंके उदाहरणोंसे भरे हैं।

दुनियामें उसीकी कद्र है जो कर्मवीर है। सोते हुए शेरसे भौंकनेवाले कुत्तोंको लोग ज्यादा पसन्द करते हैं। इकट्ठे पानीसे बहते पानीकी महिमा अधिक है। सुस्त बैलसे मेहनती बैलको लोग ज्यादा कीमत देते हैं। बैठे-बैठे पिताकी कमाई उड़ानेवाले लड़केसे कमाउत पूतको बाप ज्यादा प्यार करता है। अर्थात् संसारमें उसीकी कद्र है जो कामका है।

कोई यह आक्षेप करे कि दुनिया स्वार्थी है तो हम कहते हैं कि दुनियांके मूलसे ही शुरू कीजिये। ईश्वरने जो सृष्टिकी है उसका टिकाव ही इस आधारपर है कि वह चलायमान रहे। चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी और समस्त तारागण गतिशील हैं, ऋतुएं बदलती हैं, मनुष्यकी अवस्थाएं बदलती हैं, रूप बदलता है, ऊंचाई बदलती है, शरीर बदलता है स्वभाव बदलता है। समय परिवर्तनशील है, सम्पत्ति चञ्चल है। चलती हवाको लोग धन्यवाद देते हैं, भभकती अग्निसे ही सब कार्य होते हैं, धान, खनिज और वृक्ष पैदा करनेवाली भूमिके लिये ही लोग कुरवानी करते हैं। याने यों कहिये कि सबकी श्रेष्ठता उनके चलते, फिरते और कर्मरत रहनेके कारण ही है। मनुष्यकी रचना भी इस ढङ्गसे की गयी है कि वह बेकार न बैठने पाये। बेकार बैठनेसे उसके शरीरका खून जिसपर शरीरकी जिन्दगी निर्भर है, जम जाता है और मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है। खाना खाये वगैर मनुष्यका निर्वाह नहीं हो सकता और खाना चबाये वगैर हलकके नीचे उतर नहीं सकता। इन सब उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि परिश्रम करना मनुष्यका परम धर्म है।

'श्रम ही सों सब मिलत हैं, विन श्रम मिले काहि।' हम देखते हैं परिश्रमके सिवाय संसारमें कुछ भी प्राप्त नहीं होता। किसान यदि परिश्रम न करें तो हमें अन्न प्राप्त नहीं हो सकता। जुलाहे या मजदूर परिश्रम न करें तो हमें तन ढंकनेको कपड़ा मुअस्सर नहीं हो सकता। साहित्यिक यदि परिश्रम न करें तो हमारी मानसिक भूख शान्त नहीं हो सकती। कलाकार यदि परिश्रम न करें तो हमारा मनोरंजन नहीं हो सकता। और हम यदि परिश्रम न करें तो हमारा संसारमें टिकाव नहीं हो सकता। हम अपने या दूसरेके परिश्रमपरही संसार में टिके हैं। यदि हमारे नेता परिश्रम नहीं करते तो हमारी गुलामीकी जञ्जीर नहीं टूटती। परिश्रम करनेसे स्वार्थ तो सिद्ध होता ही है मगर सतत परिश्रमसे कार्य भी सुगम हो जाता हैं। परिश्रम करते रहनेसे कठिनसे कठिन, दुष्करसे दुष्कर कार्य सहजसे सहज और सुगमसे सुगम हो जाते हैं। दुर्लभ, सुलभ और असाध्य, सुसाध्य हो जाता है। यहां तक कि परिश्रम करनेसे राईका पहाड़ और पहाड़का राई हो सकता है। नित्य अभ्यास करनेवालेको परीक्षा एक खेल की तरह प्रतीत होती है मगर सुस्त विद्यार्थीको वह एक भयानक देवीकी तरह प्रतीत होती है। सुस्त मनुष्यको पहाड़ भयंकर प्रतीत होगी। मगर सिकन्दरको पृथ्वी छोटी लगती थी। परिश्रममें यही गुण है कि यदि मनुष्य चतुर है तो परिश्रम उसे बढ़ाता है और यदि मनुष्यमें चातुर्यकी न्यूनता है तो परिश्रम उसकी पूर्ति करता है। परिश्रम करते रहनेसे मनुष्य अनुभवी और पक्का होता है। दुनियाके छक्के पंजोंसे वह परिचित हो जाता है। परिश्रमीको न दुःख व्यापता है न वह मृत्युसे घबड़ाता है। न उसे अतीतपर दुःख होता है न भविष्यका डर। उसे यही संतोष होता है कि वह कुछ करके मरा। वही निष्कर्म मनुष्य कुटुम्ब, समाज, देश और पृथ्वीकी आंखोंमें खटकता है और उसकी जिन्दगी दुःखदायी हो होती है।

× × ×

लक्ष्मी-पुत्र कहेंगे कि परिश्रमकी हमें कोई जरूरत नहीं। परिश्रमकी जरूरत उन्हें है जिन्हें किसी चीजकी कमी महसूस होती है सब मनुष्य एक सा नहीं होते उसी तरह परिश्रम भी हर मनुष्यके लिये जरूरी नहीं कि सब मनुष्य एक सा नहीं होते मगर सब आदमी उस एकसे उत्पन्न हुए मैं यह तो सब मानते हैं और यह भी मानना पड़ेगा कि सबके लिये नियम भी एकहीसे बनाये गये हैं। जैसे चन्द्र, सूर्य और पहाड़ रचे गये हैं और वे सबको ठण्डी, गर्मी प्रकाश और वर्षा एक सा ही देते हैं। ये जो कुछ करते हैं वे अपने ही लिये तो नहीं करते दूसरोंके लिये ही करते हैं।

राजाको भी सब भोग उपलब्ध हैं मगर वह भी परिश्रम करता है सिर्फ इसी लिये कि उसकी प्रजा सुखी रहे। परिश्रम अपने लिये ही करना चाहिये ऐसा कोई नियम नहीं है। अपने लिये करो या दूसरोंके लिये करो मगर परिश्रम करो यह नियम है।

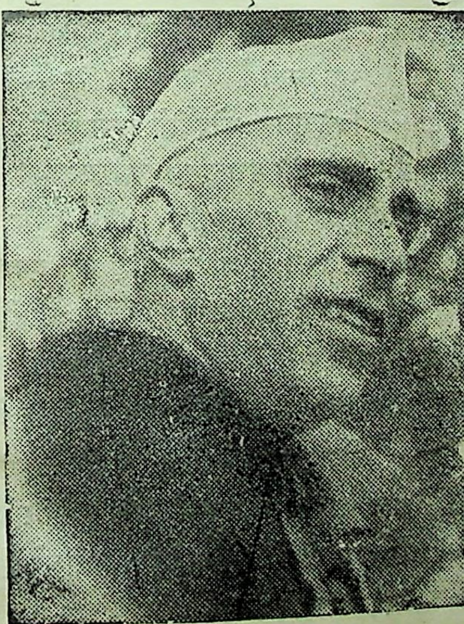
नियम संसारका यही है कि जो हिलते डुलते नहीं, वे हिला-डुलाकर जगाये जाते हैं या दफनाये जाते हैं। मुर्दों को दफनाया जाता है सुस्त राजाको उसके राज्यपर आक्रमण कर जगाया जाता है। लक्ष्मी चंचल है मगर यदि उसे निःचल बनाया जाय तो चोर डाकू उसे चलायमान करनेमें मदद देते हैं। इसीसे कहते हैं कि हमेशा चलते फिरते नजर आओ ताकि दूसरोंकी दृष्टिका केन्द्र बननेसे बचे रहो।

पक्षियों तक इस नियमका सख्तीसे पालन करते हैं। जब बच्चेके पर निकल आते हैं तब पक्षी उसे चोंच मारकर घोंसलेके बाहर कर देते हैं ताकि वह परिश्रमी और स्वावलम्बी बने। इसी नियमके सिद्धान्तपर अमल करनेके कारण अमेरिका आज पृथ्वीपर सबसे धनाढ्य और उन्नत देश बन पाया है। वहां समय सेकेण्डोंसे गिना जाता है। लोग कभी बेकार नहीं बैठते। विद्यार्थी तक अपने स्कूलकी फीस और अपना खर्चा खुद कमा लेते हैं। समझदार होने पर भी लड़कोंको घर छोड़ने की स्वतन्त्रता होती है। मगर हमारे पालक लड़कोंको 'कूप मण्डूप' बनाये रखते हैं जिसके कारण देशकी हालत आप देख ही रहे हैं। उनकी वृत्ति इतनी हीन है कि मनुष्य होकर उनकी तुलना पक्षियोंसे भी नहीं की जा सकती। पक्षी भी उनसे ऊंचा विचार रखते हैं।

× ×

दूसरे श्रेणीके वे लोग हैं जो कहते हैं--परिश्रम करनेसे क्या फायदा? तकदीरमें होगा तो आप ही मिलेगा। हमारी तकदीरमें गरीबी लिखी है और हम कभी बड़े नहीं बन सकते। यह दलील तो सुस्तोंकी है। नियम एक ही है कि जो बोता है वह जरुर काटता है। जो मनुष्य कामको हाथमें ले निराश हो अधूरा छोड़ देता है वह मूर्ख है। परिश्रमका फल मिलता ही है। फर्क इतना ही है कि १०० के लिये प्रयत्न करता है तो सबकी जगह आधा, और आधा भी नहीं तो चौथाई तो जरुर पाता है। मेहनत फजूल नहीं जाती। मगर जो हाथपर-हाथ धरे बैठा है उसे तो कुछ भी नहीं मिलेगा। लोग दिलके कमजोर और हिम्मतमें हलखोर तथा परिश्रमके बाबत कामचोर हैं। वे पहलेसे ही अपनेको नीच और निकम्मे समझते हैं और इसी भावनावश नीच रहते हैं। संसार के महापुरुषोंकी जीवनियों पर गौर करें। इनमेंसे अधिक तो गरीबीमें ही पले थे। कितने तो ऐसे थे जिन्होंने कितनी ही रातें भूखों पेट काटीं। गोल्डस्मिथ जीवनके प्रारम्भिक दिनोंमें इतना गरीब

दूसरोंके लिये परिश्रम करने वाले व्यक्तित्व


पण्डित जवाहर लाल नेहरू


युगान्तकारी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"

था कि गाना गा और बांसुरी बजा गुजारा करता था। इसी हालतमें उसने यूरोपकी यात्रा की। उस वक्त उसकी गणना भिखारियों में होती थी अब उसकी गणना इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध कवियोंमें होती है। संसारमें कामकी कीमत होती है दाम और नामकी नहीं। एच०जी० वेल्स १४ वर्षकी उम्रमें एक होटलमें सफाई करनेका काम करते थे। दिन भरकी मेहनतके पश्चात् शरीरमें शक्ति नामकी कोई वस्तु न रह जाती थी। ऐसी नौकरीसे तङ्ग आ उन्होंने आत्म-हत्या करनेका विचार किया मगर उनके एक पुराने शिक्षकने उन्हें प्रोत्साहन दिया और लगातार परिश्रम कर वे साहित्यमें ऊंचे स्थानको प्राप्त हुए अब्राहम लिंकन और बेंजामिन फ्रेंकलिनको गरीबीके दिन काटनेके बाद ही प्रसिद्धी मिली। रास्तेपरकी बत्तीके उजालेमें इन्होंने अध्ययन किया था। मगर परिश्रम इतना किया कि झोपड़ी-से निकले तो सीधे 'व्हाइट हाल' तक पहुंच गये। हेनरी-फोर्डने किसानके घर जन्म लेकर १३ वर्षकी आयुमें नौक-रीकी तलाशमें घर छोड़ा। सात घाटका पानी चखा और अपने अनुभव और बुद्धिमत्तासे वह दर्जा हासिल किया कि जिसके कारण अमेरिकाका मस्तक ऊंचा है। रामकृष्ण डालमियांने १२ वर्षकी आयुसे १०) रु० माहवारपर नौकरी कबूल कर संसारके क्षेत्रमें कदम रखा मगर आज वे भारतके अग्रगण्य व्यवसायी हैं। इन सर्व परिचित उदा-हरणोंसे यही सिद्ध होता है कि गरीब कुलमें जन्म लेना पाप नहीं है। अपनेको गरीब समझना और परिश्रम न करना पाप है। जो मनुष्य सिर्फ बातें ही बातें बनाता है, सिर्फ विचार ही विचार करता है और परिश्रम नहीं करता उसे निरा मूर्ख ही समझना चाहिये। क्योंकि बातें और विचार करनेसे न किसीका पेट भरा है और न भरेगा।

हर काममें पहले तकलीफ होती है, असफलता हाथ लगती है मगर अन्त उसका सुखद ही होता है। दुनियामें कोई भी वस्तु आसानीसे नहीं मिलती। जो मनुष्य आसानीसे प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखते हैं वे बेकार वस्तु पाते हैं। समुद्रके किनारे बैठकर लहरोंसे मोति-योंकी आशा करनेवाले कूड़ा-कचरा ही पाते हैं। मोती प्राप्त करनेवाले तो समुद्रकी गहराईमें ही डुबकी लगाते हैं। दुनियामें जन्म लेकर कष्टों और दुःखोंसे डरनेवाला, मनुष्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि 'नर तन सुखिया कोई न देखा, जो देखा वही दुखिया हो।' दुःख तो सबके पीछे है ही। सुख प्राप्त करनेके लिये भी पहले दुःख ही उठाना पड़ता है क्योंकि दुःखके वगैर सुखका कोई महत्व नहीं है। इस लिये यही उत्तम है कि परिश्रम किया जाना चाहिये। चीनके जन्मदाता सन-यात-सेनने अपने ध्येयको प्राप्त करनेके लिये जो कष्ट झेले हैं, जो जोखिमें और जिम्मेदारियां सरपर उठायीं वह प्रशंसनीय हैं। आठ बार उन्हें उनके प्रयत्नोंमें विफलता प्राप्त हुई। दो बार उनके सरके लिये ५० हजारसे ५ लाखके इनाम जाहिर किये गये। दो बार वे मृत्युके मुंहमें जाकर वापस आये। अपने देशके लिये उन्होंने क्या नहीं किया? अर्दलीकी नौकरी की, डाक्टरी सीखी, अप-मान सहा, कुटुम्बियोंको छोड़ा, भूखे दिन काटे, कई मील पैदल यात्रा की, जङ्गलोंमें फिरे, वेष पलटा। एक समय तो २० सिक्के देकर उन्हें भिखारीसे कपड़े मोल लेने पड़े। मगर कर्मवीर सेनने हिम्मत न हारी और अन्तमें सब दुःखोंका पराजय कर अपने ध्येयको प्राप्त करनेमें सफल हुए। चीनके इतिहासमें 'वर्तमान चीनका जन्मदाता डा० सन-यातसेन अमर रहेगा।

सुर्खरू होता है इन्सां आफतें सहनेके बाद।
रङ्ग लाती है हिना पत्थर पर घिस जानेके बाद।

विशेषता झोपड़ीमें जन्म लेती है और अन्त महल में। जिसे अंत पसन्द हो वही महलकी आशा करे। दुनिया वीरोंकी है। दुनियाका नियम है कि जो डरता है वही डराया जाता है, जो दबता है वही दबाया जाता है, मगर जो निडर है और मस्तक तानकर, छाती फुलाकर आगे बढ़ता है उसके रास्तेमें कोई आनेकी हिम्मत नहीं करता। सूर्यकी तरफ मुंहकरनेवालोंकी परछाईं उनके पीछे ही पड़ती है।

जवाहरलाल नेहरूका कहना है, 'भाग्य भी उसीका साथ देता है जो साहसी और कर्मवीर हैं। वे डरपोंक और निकम्मे लोग हैं जो नतीजेपर सोचते हैं और हाथपर हाथ दिये बैठे रहते हैं।'

भाग्य क्या है? भाग्य कर्महीनोंके नित्यका बहाना है।

(शेष ५४ वें पृष्ठ-पर)

शीशेका दिल

श्री विजयकुमार मुन्शी बी० ए०, एल० एल० बी, साहित्यरत्न

उफ् उस लड़कीमें गजबकी मस्ती थी। उसके अंग-अंगमें यौवनका पंछी खेल रहा था। उसके हाव भाव और क्रिया-कलापमें एक आगन्तुक-सी सरलता थी। हाथमें तीन तीन चमकती चूड़ियां, उसपर दो दो सोनेकी चूड़ियोंके बन्द। गलेमें सोनेके बड़े-बड़े अनार दानों-सी माला। हल्के बासंती रङ्गकी साड़ी और उसपर जरा गहरा केशरिया ब्लाउज! पैरोंमें चप्पल। हाथ पर्याप्त खुले किन्तु कन्धों तक नहीं। मुख भरा हुआ जरा गोल। आंखें नारङ्गीकी फांक-सी रसमय और बड़ी-बड़ी। उसके अधर प्राचीके गुलाबी बादलसे रङ्गीन और किसलय से कोमल प्रतीत होते थे।

होटलवालेने गिलासको अपने हाथमें उठा लिया और देर तक वह उस लड़कीको देखता रहा। दूध लेकर लड़की अपने डेरेकी ओर चली गयी।

दूसरे दिन सुबह ज्योंही मैं अपने डेरेसे बाहर आया वह मुझे पास ही डेरेके सामने खड़ी ब्रशसे दांत मांजती दिखायी दी। मैं खाली गिलास लिये पूंजीपतियोंके इन्तजामकी खूबियोंपर विचारकर रहा था जिन्होंने प्रदर्शनी और साहित्यिक आयोजनका प्रबन्ध किया था। हजारों रु० के साथ होली खेली जा रही थी किन्तु आमन्त्रित साहित्यिकोंके डेरोंमें बराबर पानीका प्रबन्ध भी नहीं था। मैं खाली गिलास लिये उनकी ओर बढ़ा और बोला, 'पानी है?'

उसने ब्रशको मुंहसे दूर करके कहा, 'जी हां लीजिये' और हाथ मुंह धो अन्दर चली गयी।

मुझे पानी देते हुए वह बोली, 'आपका नाम……हैं! ……मैं आपकी रचानाओंको बराबर पढ़ती रहती हूं। मेरा ख्याल था कि आप वयस्क होंगे?'

'जी' मैंने जरा तैशमें आकर कहा 'जिन साहित्यिकोंके सहयोगके कारण ये आयोजन सफल होते हैं उनकी कितनी फजीती होती हैं। कोई प्रबन्ध नहीं। ये समझते हैं जैसे कलाकार हवा खाकर जी सकता है, नाम पाकर मर सकता है। पूंजीपतियों द्वारा आयोजित साहित्यिक आयोजनोंमें या तो 'हाल' या 'चन्द' बनकर जाना चाहिये या दूरसे ही प्रणाम करना चाहिये। इन पूंजीपतियोंमें मानकी भूख, भूखे भिखमंगे से भी अधिक होती है। एक दृष्टिकोणका फर्क है समझीं आप……'

'आप क्या कह रहे हैं? साहित्यिकोंको समाज बड़े आदरसे देखता है!'

'इसी आदरके नामपर साहित्यिककी हत्याकी जा रही है। उसकी अनमोल कलमपर चांदीके टुकड़े बांध दिये जाते हैं जिससे उसकी सहज स्वाभाविक गति बंध जाय। साहित्यिकको भी तो समाजमें एक आत्म सम्मानको लेकर जीना है। उसे जीने दिया जाना चाहिये वरना साहित्यिक और सच्चे कलाकारोंका विद्रोह 'खूनी विद्रोहसे भी घातक प्रभावशाली होता है— केवल एक चीज जरूरी है कि कलाकार अपने प्रति, साहित्यके प्रति ईमानदार और जागरूक हो। प्रायः दुनिया उसे गलतही समझती है। लोग समझते हैं जैसे उसे जीवनमें खोनाही खोना है, पाना कुछ नहीं।'

मै गिलास लेकर जानेको हुआ तो वह बोली, 'दूधवालेकी दूकानपर कल आपही खड़े थे।'

'जी! तुम्हें घूर रहा था।'

'ऐं' वह कांप उठी'

'सच! तुम्हें पहिचाननेकी कोशिश कर रहा था!'

'पहिचान पाये?' उसने कहा।

'अध्ययन क्रम जारी है।'

'कभी दिल्ली आइयेगा'—उसने बात बदते हुए कहा। उसने मुझे एक कार्ड दिया था जिसे मैं आपसे छिपाकर रखना चाहता हूं।

❀ ❀ ❀

कहानी मुझे कहनी है। फिर झूठ क्यों बोलूं! अपने

को कथाकारको धोका नहीं देना चाहिये। मैं इसे इस बार दिल्ली मिलने गया था। घरमें उसके पिता थे और वह। नौकर चाकर दासीकी कमी नहीं। परायेपनके धागे टूट गये। घर मेरा लगा। जब चाय सुबह टेबिलपर आयी तो वह मेरे सामने रखते बोली,—

'मुझे कलाकार भाते हैं!'

'क्यों?'

'कभी कभी उनकी कल्पना किसीके जीवनकी सीधी सच्ची तस्वीर बना दिया करती हैं।'

'कलाकार इन्सान भी होता है।' मैंने कहा।

'जी, आप शादी कर चुके हैं।'

'हां, एक युग बीत गया!'

'आपने लिखना कब शुरू किया था?'

'एक युग बीत चुका है!'

'नारीने आपको क्या दिया?'

'प्रेरणा, प्यार और तिरस्कार मुझे नारी जीवधारी प्राणीसे जीवनमें मिले हैं। मेरी नारी, मेरी पत्नी, मां या बहिन नहीं सर्वव्यापी नारी है। हृदयकी परख कलाकारको करनी पड़ती है। वह हार खाता है जलील भी होता है। जलील न हो तो निर्माण कैसे हो?'

'आपने मुझे क्या समझा?'

'एक राहगीर, जिसने जीवनकी राहकी मोड़पर एक चिन्ह निर्माण किया। कुछ ऐसी धुंधली, तुमने जीवनके खिचे केनवासपर धुमिल तस्वीरें बनायीं, कि उनमें मैंने स्वप्न का प्यार और यथार्थकी अस्पष्ट ध्वनि पायी जिसे सोचकर मैं झूमा।'

'चाय आप अधिक नहीं पीते।'

'नहीं। अधिक चाय नहीं पीया करता।'

वह हंस पड़ी!

शामकी गाड़ी से जब मै आने लगा कि उसने एक कांचका 'पेपरवेट' मुझे दिया था जिसपर उसका नाम लिखा था।

❀ * ❀

पेपरवेट मेरे हाथसे छूटकर गिरगया टूक हो गया है। मैं कांचके बिखरे टुकड़ोंकोदेख रहा हूँ और उन शीशेके टुकड़ोंकी रङ्गीनियामें मुझे उसकी तस्वीर कांपतीसी दिखाई दे रही है।

——❀——

(५२ वें पृष्ठका शेषांश)

कोई मनुष्य नहीं जानता कि उसके भाग्यमें क्या है, कितना है और वह कब मिलेगा। इसते भाग्य एक मौकेके समान है। वह जब भी आता है अक्समात ही आता है। फिर खाली बैठनेवाले और विचार करनेवाले कैसे उसका फायदा उठा सकेंगे? उसका फायदा तो परिश्रमी ही उठा सकता है। किसी आदमीमें काबलियत है मगर जबतक वह उसे लोगोंके सामने पेश न करे औरउसे उपयोग में लानेको प्रयत्नशील न रहे तबतक उसे ऊंचा दर्जा प्राप्त नहीं हो सकता। यदि वह भाग्यके भरोसे बैठा है तो उसकी बुद्धिमानी उसके पास ही रहेगी। घर बैठे कोई उसे ऊंचा ओहदा देनेवाला नहीं, यह तो मानी हुई बात है। बैठे रहने और सोचते रहनेसे तो मौका आता है और निकल जाता है और मनुष्य बैठेका बैठा ही रह जाता है। जिस तरह जो मनुष्य हमेशा चलता फिरता रहता है वह सब चीजोंसे परिचित रहता है और थोड़े समयमें बहुत सा काम करनेकी कला हासिल करता है मगर जो कभी बाहर ही नहीं निकलता उसे यदि कभी बाहर जानेका मौका मिले तो वह पूछताछ करनेमें वक्त बरबाद करता है और कभी-कभी उसके भूल जाने और ठगाये जानेकी सम्भावना रहती है इससे स्पष्ट है कि परिश्रम करते रहनेसे ही भाग्य भी मदद करता है। परिश्रम खुद ही सुविधा, सुसमय और सुयोग जुटा देता है।

——

गोविन्द चन्द्रकवर्ती द्वारा इस्टर्डेंचल इण्डिया प्रेसमें मुद्रित तथा प्रकाशित

